वीर कवि कृत

जंबूसामिचरिउ

सम्पादन-अनुवाद

डॉ० विमलप्रकाश जैन

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक-७

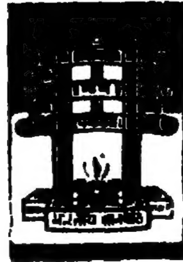
[जबलपुर विश्वविद्यालयकी पी-एच. डी. उपाधिके लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध]

वीर कवि विरचित

जंबूसामिचरिउ

[विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना, अनुवाद तथा परिशिष्टों सहित]

सम्पादक
डॉ० विमलप्रकाश जैन, एम. ए., पी-एच. डी.
रीडर, संस्कृत, पालि-प्राकृत विभाग
जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर



भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

प्रथम संस्करण— वीर नि० सं० २४९४, वि० सं० २०२५, सन् १९६८
मूल्य पन्द्रह रुपये

स्व० पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसादजी-द्वारा

संस्थापित

भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाके अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड, तमिल आदि प्राचीन भाषाओंमें उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन-साहित्यका अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उसका मूल और यथासम्भव अनुवाद आदिके साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन भण्डारोंकी सूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, विशिष्ट विद्वानोंके अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित हो रहे हैं।

●

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, डी० लिट्०

डॉ० आ० ने० उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्०

●

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रधान कार्यालय : ९ अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता–२७

प्रकाशन कार्यालय : दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

विक्रय केन्द्र : ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

मुद्रक : सन्मति मुद्रणालय, दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी–५

●

स्थापना : फाल्गुन कृष्ण ९, वीर नि० २४७० ● विक्रम सं० २००० ● १८ फरवरी सन् १९४४

भारतीय ज्ञानपीठ



स्व० मूर्तिदेवी, मातुश्री श्री शान्तिप्रसाद जैन

JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ JAINA GRANTHAMĀLĀ : Apabhraṁśa Grantha No. 7

[Thesis approved for the Ph. D. Degree of the University of Jabalpur.]

JAMBŪSĀMICARIU

of

VĪRAKAVI

[Critically Edited with Hindi Introduction, Translation, Appendices etc.]

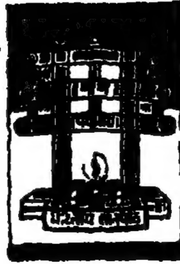
Edited by

Dr. Vimal Prakash Jain, M. A., Ph. D.

Reader in the Deptt. of Sanskrit, Pali &

Prakrit, University of Jabalpur

JABALPUR



BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA PUBLICATION

First Edition— VĪRA SAṀVAT 2494, V. S. 2025, 1968 A. D.

Price Rs. 15/-

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA MŪRTIDEVĪ

JAINA GRANTHAMĀLĀ

FOUNDED BY

SĀHU SHĀNTIPRASĀD JAIN

IN MEMORY OF HIS LATE BENEVOLENT MOTHER

SHRĪ MŪRTIDEVĪ

IN THIS GRANTHAMĀLĀ CRITICALLY EDITED JAIN ĀGAMIC, PHILOSOPHICAL, PURĀNIC, LITERARY, HISTORICAL AND OTHER ORIGINAL TEXTS AVAILABLE IN PRĀKRIT, SANSKRIT, APABHRAṀSA, HINDI, KANNAD, TAMIL ETC., ARE BEING PUBLISHED IN THERE RESPECTIVE LANGUAGES WITH THEIR TRANSLATIONS IN MODERN LANGUAGES

AND

CATALOGUES OF JAINA BHANDARAS, INSCRIPTIONS, STUDIES OF COMPETENT SCHOLARS & POPULAR JAIN LITERTURE ARE ALSO BEING PUBLISHED.

●

General Editors

Dr. Hiralal Jain, M. A., D. Litt.
Dr. A. N. Upadhye, M. A., D. Litt.

●

Bharatiya Jnanpitha

Head office : 9 Alipore Park Place, Calcutta-27.
Publication office : Durgakund Road, Varanasi-5.
Sales office : 3620/21 Netaji Subhash Marg, Delhi-6.

●

Founded on Phalguna Krishna 9, Vira Sam. 2470, Vikrama Sam. 2000.18th Febr. 1944

प्रधान सम्पादकीय

जम्बूस्वामी जैन या श्रमण संघके एक विशेष पूज्य व्यक्ति हैं। वे महावीरके साक्षात् शिष्य सुधर्म द्वारा संघमें दीक्षित किये गये थे, अन्तिम केवली थे और उनका ४६३ ई० पू० में निर्वाण हुआ। आगम ज्ञानकी परम्परामें जम्बूस्वामीका योगदान स्मरणीय है। अर्धमागधी आगमके अनुसार सुधर्मस्वामीने जम्बूको अंग ग्रन्थोंका उपदेश दिया और जम्बूस्वामीने अपने शिष्योंको। यद्यपि वे ऐतिहासिक व्यक्ति थे, फिर भी उनके जीवनके विषयमें समकालीन या आगम स्रोतोंसे हमें बहुत कम जानकारी प्राप्त होती है। तथापि उनके सम्बन्धकी बहुत कुछ बातें हमें अन्य स्तरोंके परवर्ती जैन साहित्यसे उपलब्ध होती हैं। उनके जीवनकी मौलिक घटनाएँ अश्वघोष रचित 'सौंदरनन्द' काव्यमें चित्रित नन्दके चरित्रके समानान्तर प्रतीत होती हैं। कालान्तरमें जम्बूस्वामीकी यह परम्परागत जीवनी विविध स्रोतोंसे प्राप्त अनेक उपाख्यानोंसे जुड़ गयी और समृद्ध हुई। जैन लेखकोंमें जम्बूस्वामीका जीवन इतना लोकप्रिय और प्रेरक सिद्ध हुआ कि विभिन्न भाषाओंमें लगभग ९५ रचनाएँ इस विषयको लेकर रची गयी हैं।

प्रस्तुत संस्करणमें महाकवि वीर-द्वारा रचित 'जंबूसामिचरिउ' नामक अपभ्रंश ग्रन्थ प्रस्तुत किया जा रहा है। इसके रचयिता विशेष ज्ञानी हैं। उन्होंने कालिदास, पुष्पदंत आदि पूर्व कवियोंके साहित्यिक गुण परम्परासे प्राप्त किये हैं तथा उनके काव्यने नयनन्दी, रइधू, राजमल्ल आदि परवर्ती कवियोंको प्रभावित किया है। उनकी रचनाओंमें प्रस्तुत काव्यसे समानता रखनेवाले अनेक खंड सरलतासे खोजे जा सकते हैं। वीर कविने अपने जीवन सम्बन्धी अनेक बातें कही हैं। उनका जीवन-काल विक्रम संवत् १०१०–१०८५ तक पाया जाता है। उन्होंने १०७६ वि० सं० अर्थात् १०१९ ई० में जंबूसामिचरिउको पूर्ण किया।

डॉ० विमलप्रकाश जैनने प्रस्तुत संस्करणमें अपभ्रंश काव्य जंबूसामिचरिउका सम्पादन पाँच हस्तलिखित प्रतियोंके आधारसे किया है जिनमें सबसे प्राचीन प्रति वि० सं० १५१६ की है। उन्होंने उन सभी प्राचीन प्रतियोंके पाठान्तर संक्षिप्त रूपसे अंकित किये हैं। अपभ्रंश पाठके नीचे हिन्दी अनुवाद है जो मूलानुगामी होते हुए भी ऐसी धारावाही शैलीसे प्रस्तुत किया गया है कि वह स्वतन्त्ररूपसे भी पढ़ा जा सकता है। उक्त प्राचीन प्रतियोंमें-से तीनमें संस्कृत टिप्पणी पायी जाती है जिसे सावधानीपूर्वक सम्पादित कर अन्तमें जोड़ दिया गया है। शब्दकोशमें वर्णानुक्रमसे अपभ्रंश शब्दोंकी सूची, उनके संस्कृत रूपों तथा सन्दर्भों सहित संकलित की गयी है। अन्तमें ग्रन्थमें आये भौगोलिक नामोंकी एक सूची है जिनका आवश्यक स्पष्टीकरण और उचित सन्दर्भ दिया गया है।

डॉ० वि० प्र० जैनकी प्रस्तावना ग्रन्थका एक सर्वांग सुन्दर अध्ययन प्रस्तुत करती है। सम्भवतः यह अपने ढंगका प्रथम सर्वांगपूर्ण प्रयास है, जिसमें जम्बूस्वामीके जीवनका सभी दृष्टियोंसे अध्ययन किया गया है। उन्होंने उसके महाकाव्यात्मक लक्षणों, विषय-वस्तुसे सम्बद्ध विभिन्न चरित्रों, विषयके आभ्यन्तरवर्ती उपाख्यानों, काव्यरसों तथा अलंकारों एवं कवि-द्वारा प्रयुक्त छन्दोंका अध्ययन किया है। प्रस्तावनाके एक भागमें काव्यकी शैलीका ग्रन्थके सन्दर्भों सहित मूल्यांकन किया गया है। वीर कवि-द्वारा प्रयुक्त अपभ्रंश-भाषाका उसकी ध्वनियों, संज्ञारूपों और क्रियारूपों आदिका विस्तारसे विवरण दिया गया है। वीर कवि कृत इस जंबूसामिचरिउके आधारसे जम्बूस्वामीके जीवनके आलोचनात्मक अध्ययन-द्वारा लेखकने जबलपुर विश्वविद्यालयसे पी-एच० डी०की उपाधि अर्जित की है जो उचित ही है।

वीर कवि कृत अपभ्रंश काव्य, जंबूसामिचरिउके इस महत्त्वपूर्ण संस्करणको प्रस्तुत ग्रन्थमालामें प्रकाशनार्थ प्रदान करनेके लिए ग्रन्थमालाके प्रधान सम्पादक डॉ० वि० प्र० जैनके आभारी हैं। वे न केवल एक अप्रकाशित अपभ्रंश रचनाको प्रकाशमें लाये हैं, किन्तु उन्होंने उपयोगी हिन्दी अनुवादको भी प्रस्तुत किया है तथा अपनी विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावनामें इस ग्रन्थ और ग्रन्थकारसे सम्बद्ध समस्त बातोंका आलोचनात्मक एवं परिपूर्ण अध्ययन भी प्रस्तुत किया है। वास्तवमें ऐसी अपभ्रंश रचनाओंका प्रकाशन अपभ्रंश भाषा और साहित्यके अध्ययनकी प्रगतिका एक बढ़ता हुआ चरण है जो कि आधुनिक भारतीय-आर्य भाषाओंके विकासके ज्ञान हेतु नितान्त आवश्यक है।

हम श्रीमती रमादेवी जैन और श्री साहू शान्तिप्रसादजी जैनके प्रति आभार प्रदर्शित करते हैं जिनकी उदारतासे मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला भारतीय साहित्यकी दुर्लभ रचनाओंको ऐसे सुन्दर रूपसे प्रकाशमें ला रही है। हम इस ग्रन्थमालाके मन्त्री, श्री लक्ष्मीचन्द्र जैनको भी धन्यवाद देते हैं जो ऐसी रचनाओंके प्रकाशनमें अत्यन्त उत्साहशील हैं। डॉ० गोकुलचन्द्र जैन भी धन्यवादके पात्र हैं। उन्होंने बनारसमें रहकर, जहाँ यह रचना मुद्रित हुई, हमें अनेक प्रकारसे सहायता दी है।

हीरालाल जैन
आ० ने० उपाध्ये

General Editorial

Jambūsvāmin is an important dignitary of the Jaina or Śramaṇa Saṁgha. He was initiated into the order by Sudharman, the immediate pupil of Mahāvīra. He passed away as the last Kevalin in c. B. C. 463. In the inheritance of scriptural knowledge Jambūsvāmin has played a memorable role. As presented in the Ardhamāgadhī canon, the Aṅga texts are addressed by Sudharman to Jambū who, then, imparted the same to his pupils. Though he was a historical person, we know very little about his biography from contemporary or even canonical sources. A good deal of information about him, however, is available in different strata of later Jaina literature. The basic details of his biography appear to have been parallel with those of Nanda's life as depicted in the Saundarananda, a poem by Aśvaghoṣa. With the passage of time, this traditional biography of Jambūsvāmin got interlinked with and enriched by a large number of sub-stories in different sources. With the Jaina authors the life of Jambūsvāmin has proved to be so popular and inspiring that some 95 works in different languages have been written on this theme. In the present edition is presented the Apabhraṁśa work, Jaṁbūsāmicariu composed by Vīra. The author is a man of learning. He has inherited the influence of earlier poets like Kālidāsa, Puṣpadanta etc.; and his poem has left as well its influence on later authors like Nayanandī, Raidhū, Rājamalla and others. A number of parallel passages in their works are easily traceable. The author Vīra gives plenty of autobiographical details. He is assigned to a period Vikrama Samvat 1010-1085. He completed the Jaṁbūsāmicariu in V. S. 1076, i. e., A. D. 1019.

Dr. V. P. Jain has carefully edited in this volume the Apabhraṁśa text of Jaṁbūsāmicariu based on five mss. (the earliest of the V. S 1516) and noting their various readings in a concise manner. The text is accompanied below by a Hindi translation which is close to its contents and is so fluently presented that it can be read by itself. The Sanskrit gloss on this text available in three Mss. is carefully edited and presented at the end. The Śabdakośa gives an alphabetical register of Apabhraṁśa words with their Sanskrit equivalents and references to the text. At the end there is a list of Geographical names found in this work with necessary explanation and suitable references.

Dr. V. P. Jain's introduction is a thorough piece of study. Perhaps here is an exhaustive attempt, first of its kind, to study the biography of Jambūsvāmin in all its aspects. The editor has critically evaluated the Jaṁbūsāmicariu as a Kāvya. He has studied its charactristics as a Mahākāvya, the different characters involved in its plot, the sub-stories intervening the theme, poetical sentiments and embellishments permeating the presentation and the metrical forms employed by the author. A special section is devoted to the stylistic estimate of the poem with necessary references to the context. The Apabhraṁśa dialect used by Vīra is described in

details with regard to its phonology, declensions and verbal forms etc. This critical study of the Life of Jambūsvāmin on the basis of Jaṁbūsāmicariu of Vīra has justly earned the Ph. D. degree of the University of Jabalpur for its author.

The General Editors of the Mūrtidevī Granthamālā are thankful to Dr. V. P. Jain for giving us his valuable edition of the Jaṁbūsāmicariu, in Apabhraṁśa, composed by Vīra for being included in this Series. Not only he brings to light an unpublished Apabhraṁśa work but has also presented here a helpful Hindi translation and a critical and exhaustive study of all the details about the author and his works in his learned Introduction. Publication of such Apabhraṁśa works is indeed a forward step in the progress of studies of Apabhraṁśa language and literature the understanding of which is quite essential to work out the growth of New Indo-Aryan.

We record our sense of gratitude to Smt. Ramadevi Jain and to Shri Sahu Shantiprasadji Jain through whose minificence such rare works of Indian literature are being brought to light in the Mūrtidevī Granthamālā in a samptuous form. Our thanks are due to Shri L. C. Jain, the Secretary, who is very enthusiastic in pushing the publication of such works. Dr. Gokulchandra Jain deserves our thanks. He helped us in various ways by his presence in Banaras where this work was printed.

A. N. Upadhye
H. L. Jain

प्राक्कथन

वीर कवि द्वारा रचित 'जंबूसामिचरिउ' विक्रमकी ११वीं शतीका एक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश चरित महाकाव्य है। इसका परिचय सर्वप्रथम पं० परमानन्दजीने अनेकान्तमें प्रकाशित किया था। लगभग सात वर्ष पूर्व पूज्य डा० हीरालाल जैनने इस ग्रंथके संपादनकी ओर मेरा ध्यान आकृष्ट किया था। उसी समय कारंजा जैन शास्त्रभंडारकी एक हस्तलिखित प्रति (क) तथा आमेर जैन शास्त्र भंडारकी हस्तलिखित प्रतिकी फोटो प्रति (ख) ये दो प्रतियाँ भी मुझे उनसे उपलब्ध हुईं। इन दो प्रतियोंके आधारपर संपादन कार्य प्रारंभ करनेके बाद 'जंबूसामिचरिउ'की तीन और प्रतियाँ (ग घ ङ) उपलब्ध हुईं। इनमें सबसे अधिक प्राचीन प्रति (ख) वि० सं० १५१६ की है। इन सब प्रतियोंका पूर्ण विवरण आगे 'संपादनपरिचय'में दिया गया है।

हस्तलिखित प्रतियोंकी खोजके प्रयासोंमें 'जंबूसामिचरिउ'की एक संस्कृत पंजिका (पं) भी उपलब्ध हुई, जो संक्षिप्त होनेपर भी महत्त्वपूर्ण है। अतः उस पंजिकाको अन्य प्रतियों (ख एवं ग) में उपलब्ध टिप्पणोंके साथ संपादन करके प्रस्तुत ग्रंथके अंतमें दे दिया गया है। काव्यके मूलपाठ चयन एवं हिंदी अनुवाद, दोनोंमें इन संस्कृत टिप्पणोंसे पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है।

मूल अपभ्रंश प्रतियोंकी खोजके ही सिलसिलेमें जंबूस्वामीकथासे संबंधित शताधिक ऐसी रचनाओंकी जानकारी प्राप्त हुई जो विविध भारतीय भाषाओंमें भिन्न-भिन्न प्रदेशों व कालोंमें रची गयीं। उनका संक्षिप्त विवरण आगे दिया गया है।

प्रस्तुत संस्करणमें वीर कवि कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरिउ'को मूलानुगामी हिंदी अनुवादके साथ सुसंपादित रूपमें सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। समालोचनात्मक संपादनकी परंपराके अनुसार इस महाकाव्यके प्रत्येक पहलूका विशेष अध्ययन करके उसके निष्कर्ष प्रस्तावनामें दिये गये हैं। ग्रंथका विशद शब्द-कोष भी प्रबंधके अंतमें दिया गया है।

जंबूस्वामीके जीवनचरितके संबंधमें आगमिक साहित्यसे लेकर संपूर्ण प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत जैन साहित्यमें जो कुछ भी सामग्री उपलब्ध है, उसका सूक्ष्मतासे अध्ययन कर प्रस्तावनामें जंबूस्वामीके जीवनचरितपर यथासंभव पूर्ण विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। 'जंबूसामिचरिउ' महाकाव्यके परिप्रेक्ष्यमें इस संपूर्ण सामग्रीके अध्ययनसे यह प्रमाणित होता है कि जंबूस्वामी जैन श्रमण-परंपरामें एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरुष थे, जिन्होंने ई० पू० ५२७ में भगवान् महावीरके तीर्थमें उनके साक्षात् शिष्य आचार्य सुधर्मासे जिन-दीक्षा स्वीकार की थी। अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं कठोर तपःसाधनाके कारण वे जैन श्रमण संघके न केवल प्रधानाचार्य ही बने, बल्कि उन्होंने श्रमण-साधनाकी परंपरा और पुरातन आगमिक साहित्यिक संपत्तिको सुरक्षित रखने, उसका प्रचार-प्रसार करने तथा चिरस्थायी बनानेमें भी अपना अभूत-पूर्व एवं अद्वितीय योग-दान दिया। प्रश्नोंके माध्यमसे जंबूस्वामीने सुधर्माचार्यसे सारे आगमोंको सुनकर धारण किया, और जंबूस्वामीसे वह सारा ज्ञान उनकी शिष्य-संततिको प्राप्त हुआ और उनके द्वारा आगेकी संततियोंको। इस प्रकार गुरु-शिष्य परंपराके द्वारा आगम साहित्यकी स्थायी सुरक्षा तथा प्रचार-प्रसार, ये दोनों ही कार्य सिद्ध हुए।

आगमिक साहित्यमें जंबूस्वामीके जीवनचरितके विषयमें उपलब्ध सामग्री अत्यल्प है। बादके जंबू-स्वामीकथा एवं चरित साहित्यसे उनके जीवनपर कुछ विशेष प्रकाश पड़ता है। परंतु अबसे ढाई हजार वर्ष पूर्व होनेवाले इस महापुरुषके वास्तविक जीवनचरितकी सामग्री, इस कथाके परंपरागत होनेपर भी,

कथा-अंतर्कथाओंके ताने-बानेमें दुःखद आश्चर्यकारक रूपसे ऐसी खो गयी या छूट गयी है कि इनके जीवनचरितके सूत्र ऐतिहासिक संदर्भोंके साथ पूर्ण रूपसे जोड़ पाना आज संभव नहीं है। तथापि अद्यावधि प्राप्त समस्त ऐतिहासिक साहित्यिक सामग्रीके आधारसे उनके जीवनकी प्रमुख घटनाओं जन्म, दीक्षा, केवलज्ञानोपलब्धि, जैन श्रमणसंघका कुलपतित्व (आचार्यत्व) एवं मोक्षप्राप्तिको ऐतिहासिक तिथियोंके साथ जोड़ा गया है।

ऐतिहासिक जीवनचरितकी दृष्टिसे जंबूस्वामीका चरित जितने महत्त्वका है, साहित्यिक कथानायककी दृष्टिसे भी किसी भी प्रकार उससे कम महत्त्वका नहीं है। कामदेव सदृश सौंदर्य, कुबेर सरीखा वैभवविलास, बृहस्पतिके समान अलौकिक प्रतिभा एवं ऐंद्रियिक भोगविलासकी वासनाके दुर्निवार-दुर्दम्य जनक तथा प्रेरक अधिष्ठाता उद्दाम यौवनकालमें कामदेवकी रतिके समान अनुपम सुंदरी एकाधिक कन्याओंसे विवाह; इन सारे स्वर्गोपम सुखसाधनोंको लात मारकर, महावीर और बुद्धके समान मुनि जीवन अंगीकार करके जीवनके चरमलक्ष्य—परिपूर्णबोध अर्थात् केवलज्ञान और मोक्षको प्राप्त करना, इन सारे तत्त्वोंने पाँचवीं-छठी शती ई०से लगाकर अद्यावधि गत पंद्रह सौ वर्षोंमें प्रत्येक शतीमें और देशके लगभग प्रत्येक राज्यमें जैन साहित्यकारोंको बलात् अपनी ओर आकृष्ट किया है। यही कारण है कि प्राचीन प्राकृत साहित्यसे लेकर संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती और हिंदी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओंमें जंबूस्वामी चरितकी एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है, जो वसुदेव-हिंडी(प्राकृत)के रचयिता संघदास गणि (पाँचवीं-छठी शती ई०)से लगाकर बीसवीं शतीतक अविच्छिन्न रूपसे चली आयी है।

आभार—इस ग्रन्थको तैयार करनेमें हस्तलिखित प्रतियोंको उपलब्ध करानेसे लेकर प्रस्तुत रूप देने तकमें जिन पूज्य गुरुजनों, विद्वानों, श्रीमानों तथा मित्रोंका सहयोग प्राप्त हुआ है उनकी सूची बहुत बड़ी है, और उन सबके प्रति नामोल्लेखपूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करना यहाँ संभव नहीं है, तथापि कुछ अवश्य उल्लेखनीय व्यक्ति और संस्थाएँ हैं—पूज्य डॉ० हीरालाल जैन, जिन्होंने प्रस्तुत काव्यकी प्रतियाँ प्रदान करते हुए मुझे इसके संपादन करनेकी प्रेरणा दी और जिनसे मैंने आलोचनात्मक अध्ययन तथा संपादनकी पद्धति सीखी और निरंतर मार्गदर्शन प्राप्त किया; जैन शोधसंस्थान, महावीर भवन जयपुरके डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल तथा जैन महाविद्यालय जयपुरके प्राचार्य पं० चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ, जिनकी कृपासे मुझे जयपुरके भंडारोंकी तीन प्रतियाँ, पंजिका, फोटो प्रतिकी मूल प्रति एवं ब्रह्म-जिनदासकृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्रकी प्रतियाँ उपलब्ध हुईं; लालभाई दलपतभाई शोधसंस्थान, अहमदाबादके निदेशक पं० दलसुख भाई मालवणिया, जिनके सहयोगसे मुझे उस संस्थानसे भिन्न-भिन्न जंबूस्वामीचरितोंकी सत्रह हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं; प्राच्य शोध संस्थान बड़ौदाके संचालक डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, एवं भंडारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूनाके मैनुस्क्रिप्ट्स विभागके अध्यक्ष डॉ० ए० डी० पुसालकर, जिनसे मुझे जंबूस्वामी-अध्ययन नामक रचनाकी भिन्न-भिन्न कई प्रतियाँ तथा मानसिंह कृत संस्कृत जंबूस्वामीचरित्र उपलब्ध हुए; प्राकृत, जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान वैशाली (बिहार)के निदेशक डॉ० नथमल टाटिया, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान वाराणसीके निदेशक डॉ० मोहनलाल मेहता तथा स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके प्राचार्य पू० पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जिनके कृपापूर्ण सहयोगके कारण मुझे इन संस्थाओंसे सहायक ग्रंथ उपलब्ध हुए तथा डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री आरा, जिन्होंने समय-समयपर मेरा मार्गदर्शन किया और मेरी समस्याओंको सुलझाया, इन सबका हृदयसे आभारी हूँ।

भारतीय ज्ञानपीठके मंत्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा मूर्तिदेवी ग्रन्थमालाके प्रधान संपादक डॉ० आ० ने० उपाध्येका मैं हृदयसे कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने इसे भारतीय ज्ञानपीठसे प्रकाशित करनेकी स्वीकृति प्रदान की। भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसीके व्यवस्थापक डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, उनके अन्य सहयोगी तथा श्री पोल्हाचनजीका भी आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रंथके यथाशीघ्र, सुंदर और शुद्ध मुद्रणमें आद्योपांत अत्यंत आत्मीयतासे बहुत अधिक सक्रिय सहयोग प्रदान किया। इस प्रसंगमें तारा-प्रकाशन,

वाराणसीके प्रबंध-संचालक श्री रमाशंकरजी पंड्याका स्मरण और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करना मेरा प्रिय कर्तव्य है जिन्होंने मुझे डा० ही० ला० जैन-द्वारा संपादित 'सुदंसणचरिउ'की पूर्ण प्रूफ कॉपी प्रदान की, जिससे मैं जंबूसामिचरिउ तथा 'सुदंसणचरिउ' का तुलनात्मक अध्ययन सरलतासे कर सका। इन सबके अतिरिक्त मैं सहायक एवं संदर्भ ग्रंथोंके सभी विद्वान् लेखक-संपादकोंके प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। अन्तमें मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमलेश, जिन्होंने इस कार्यको पूर्ण करानेमें मेरे साथ अथक परिश्रम किया और अनगिन कष्ट प्रसन्नतासे सहन किये, उनके प्रति कुछ न कहकर ही सब कुछ कहा जा सकेगा। मेरे अत्यन्त शुभेच्छु एवं परम-स्नेही आत्मीय मित्र और बांधव जो वर्षोंसे मुझे कार्य पूर्ण करनेकी निरंतर प्रेरणा व उत्साह प्रदान करते रहे, उनकी सद्भावनाओंका ऋण शब्दोंमें व्यक्त कर मैं उऋण होना नहीं चाहता।

प्रकाश पर्व १ नवंबर १९६७ — विमलप्रकाश जैन

विषय-सूची

प्रस्तावना

मूलपाठ

संस्कृत टिप्पण और शब्द-कोष

प्रस्तावना

१. संपादन परिचय

प्रति परिचय

वीर कवि विरचित जंबूसामिचरिउ नामक यह अपभ्रंश महाकाव्य प्रथम बार संपादित होकर प्रकाशमें आ रहा है। इसका संपादन निम्नलिखित पाँच प्राचीन प्रतियोंके पाठोंका पूरा मिलान करके किया गया है :

क प्रति कारंजा भंडारसे पू० डॉ० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है। प्रतिमें कुल १०४ पत्र हैं, जिनमें-से प्रथम पत्र केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११"×४½"; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ अधिकांशतः ९, और किन्हीं किन्हीं में १०; अक्षर प्रति-पंक्ति लगभग ३६; हाशिया दोनों पार्श्वोंमें १", ऊपर-नीचे ¾"। लिखावट सर्वत्र समान नहीं है। कहीं अक्षर बड़े-बड़े लिखे हैं, तो कहीं छोटे-छोटे। लेख सर्वत्र सुंदर है।

प्रतिका प्रारंभ '॥ स्वस्ति ॥ ओं नमो वीतरागाय' से होता है; और ग्यारहवीं संधिके अंतमें 'इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्त' यहीं तक आकर अधूरी पुष्पिका पर ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे कोई भी प्रशस्ति नहीं है। अतः इस प्रतिके लेखन-कालका अनुमान लगाना कठिन है।

इस प्रतिकी निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :—

(१) यह प्रति अनुस्वार प्रधान है, तथा इसमें निरर्थक अनुस्वारका अत्यधिक प्रयोग हुआ है।

(२) 'न'के स्थानपर सर्वत्र 'ण'का प्रयोग हुआ है, केवल दो स्थानोंको छोड़कर (१) कामिनी, (२) अन्यः>अन्नु।

(३) अनेक स्थलों पर 'इ' के स्थान पर 'य' श्रुति, और 'य' श्रुति के स्थान पर 'इ' का प्रयोग मिलता है। इ>य जैसे—अवइण्ण>अवयण्ण (अवतीर्ण); छइल्ल छयल्ल—(हि० छैला, विदग्ध-पुरुष); कइवय>कयवय (कतिपय); वइतरिणि-वयतरिणि (वैतरणी); पइवय>पयवय (पतिव्रत) आदि; एवं य>इ जैसे वेयल्ल> वेइल्ल (विचकिल्ल); आयउ>आइउ (आगतः) आदि।

(४) कहीं कहीं 'य' श्रुतिके स्थानपर 'व' श्रुतिका भी प्रयोग मिलता है; जैसे जुयल> जुवल (युगल);

(५) क्वचित् 'व'कारके स्थान पर 'म'कारका प्रयोग—ताव>ताम (तावत्), एवहिं> एमहि (इदानीम्)

(६) तृतीया तथा सप्तमी विभक्तियोंमें सर्वत्र 'इ' का प्रयोग—(तृ०) करिणि, अब्भासि, पियरि; तथा (स०) हियवइ, घरि घरि, आवसि आदि।

ख प्रति—यह पोथी जयपुरके आमेर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध है। प्रतिमें कुल ७६ पत्र हैं, जिनमें ६२वाँ पत्र नहीं है। प्रथम पत्र इस प्रतिमें भी केवल एक ओर लिखा गया है। आकार ११"×५¾"; पंक्तियाँ प्रति-पृष्ठ (पत्र १ से ७४ तक) १४; और बीच बीचमें कुछ पत्रोंपर (२०, ३१, ३३) १५;

तथा पत्र ७५ व ७६ पर मोटे-मोटे अक्षरोंमें पृष्ठतः ९, ८, ९ व ११ पंक्तियाँ; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३५; हाशिया पार्श्वोंमें १$\frac{3}{4}$" व १$\frac{1}{2}$" तथा ऊपर-नीचे १", १"। लेख असमान, कहीं अक्षर छोटे-छोटे, कहीं बड़े-बड़े परन्तु सामान्य रूपसे सर्वत्र स्पष्ट, शुद्ध एवं सुन्दर।

इस प्रतिकी एक फोटो-कॉपी भी संपादकको पू० डॉ० हीरालालजीके सौजन्यसे उपलब्ध हुई है, और संपादन कार्यका आरंभ उसी प्रतिके पाठोंके मिलानसे किया गया था। पीछे जयपुर जानेपर उप-युक्त मूल प्रति उपलब्ध हो सकी। फोटो कॉपीका आकार है ६$\frac{1}{2}$"×३"; हाशिया पार्श्वोंमें $\frac{3}{8}$" व $\frac{3}{4}$" तथा ऊपर नीचे $\frac{1}{2}$", $\frac{1}{2}$"।

इस प्रतिका आरंभ 'ओं नमः सिद्धेभ्यः' से होता है। अंतमें वीर कविकी स्वकृत प्रशस्तिके उपरांत 'इति जंबूसामिचरित्तं समाप्तं' लिखा गया है, और इसके पश्चात् निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है—

> मन्ये वयं पुण्यपुरीव भाति सा झूंझुणेति प्रकटीबभूव।
> प्रोत्तुंगतन्मंडनचैत्यगेहाः सोपानवद्दृश्यति नाकलोके ॥१॥
> पुरस्सराराम-जलप्रकूपा-हर्म्याणि तत्रास्ति रतीव रम्याः।
> दृश्यंति लोकार्थनपुण्यमाजा ददाति दानस्य विशालशाला ॥२॥
> श्री विक्रमार्कर्केन गते शताब्दे षडेक-पंचैक (१५१६) सुमार्गशीर्षे।
> त्रयोदशीयातिथिसवंशुद्धा श्री जंबूस्वामीति च पुस्तकोऽयं ॥

इससे ज्ञात होता है कि यह प्रति संवत् १५१६ में मार्गशीर्ष शुक्ल त्रयोदशीके दिन झूंझणपुर (राजस्थान) नामक अति समृद्ध नगरीमें लिखी गयी, जो अपनी शोभामें स्वर्गलोकके समान थी। प्रति लेखक अथवा लिखानेवालेके संबंधमें इससे कोई ज्ञान नहीं होता।

उपलब्ध पाँचों प्रतियोंमें यह प्रति सबसे अधिक प्राचीन है। पाठोंकी दृष्टिसे भी यह प्रति सबसे शुद्ध है। अतः मुख्य रूपसे इस प्रतिके पाठोंको ही मूल ग्रन्थका आधार माना गया है। इस प्रतिकी विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदि 'न' का नियमित रूपसे सुरक्षित रहना।

(२) मध्यवर्ती असंयुक्त 'न' के स्थानपर 'ण' का सर्वत्र प्रयोग, कुछ अपवादों, जैसे झाणानल, लिनद्द, दावानल, मुहियएन आदिको छोड़कर।

(३) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्न' का सुरक्षित रहना, जैसे आसन्न, उप्पन्न, संछन्न, सन्नद्ध आदि।

(४) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्य' तथा 'र्न' के स्थान-पर अनियमित रूपसे 'न्न' अथवा 'ण्ण' का प्रयोग, जैसे मन्नइ-मण्णइ, सेन्न-सेण्ण, निन्नासिय आदि।

(५) अनेक स्थलों-पर 'इ' के स्थानमें 'य' श्रुतिका तथा कहीं कहीं 'य' श्रुति के स्थानमें 'इ' का प्रयोग इ>य जैसे जइवि>जयवि, वइसवण>वयसवए, अवइण्ण>अवयण्ण, पइसइ>पयसइ, सेणावइ>सेणावय आदि; य>इ वेयलल>वेइलल (वेगवान)।

(६) क्वचित् 'व' के स्थानपर 'म' का प्रयोग, जैसे सकिवाए>सकिमाण; और कहीं 'म' के स्थानपर 'व' का, जैसे भामिणी>भाविणि।

(७) तृतीया एवं सप्तमीके प्रत्ययों, कृदंतके पूर्वकालिक क्रिया रूपों तथा अन्यत्र भी 'ए' व ॆ मात्राका बाहुल्य जैसे (तृ०) अब्भासें, पियरें, करणे [न], मुणेंदें; (सप्तमी) रयणे, घरे घरे, आउसे; (कृ० पूर्व० क्रिया) परिहरेवि, करेवि, मुणेवि आदि; अन्यत्र तेत्थ, जेत्थ, जे, एत्तहे, तेत्तहे, सेट्ठं (विष्टम्), रोट्ठ-अनिष्ट (शत्रु) आदि; और कहीं कहीं 'इ' मात्रा भी जैसे घरि घरि, वायाणिवि आदि;

तथा कृ० पूर्व० क्रिया प्रत्ययोंमें जायवि, पढवि, करवि, परिहरवि ऐसे रूप भी बहुधः उपलब्ध होते हैं।

(८) यह प्रति सटिप्पण है, जिसके चारों हाशियों-पर छोटे-छोटे अक्षरोंमें आद्योपांत टिप्पण लिखे गये हैं। टिप्पणोंके संबंधमें विशेष जानकारी मूल ग्रन्थके अंतमें संस्कृत टिप्पणोंकी भूमिकामें दी गयी है।

ग प्रति—यह भी जयपुरके शास्त्र भंडारमें सुरक्षित है। इसमें कुल ११४ पत्र हैं। आकार १२"×४$\frac{3}{4}$"; हाशिया दोनों पार्श्वोंमें १$\frac{1}{2}$"; १$\frac{1}{2}$", ऊपर-नीचे १", १"; पंक्तिसंख्या पत्र २ से ३१ तक प्रति पृष्ठ ८, ८, बीचमें पत्र २६ में ९, ९। पत्र ३२ से पत्र ११४ तक पंक्ति संख्या कहीं ८, कहीं ९। इस प्रकार कुल ६३ पत्रोंमें ८, ८ पंक्तियाँ हैं; पत्र १०६ तथा ११० पर १०, १०; तथा प्रथम-पत्रपर एक ओर कुल ८; अक्षर प्रतिपंक्ति ८, ८ पंक्तियोंवाले पत्रोंमें लगभग ३२, व ९, ९ पंक्तियोंवाले पत्रोंमें लगभग ४०; लिखावट असमान, अक्षर कहीं छोटे, कहीं बड़े; परंतु हस्त-लेख आद्योपांत सुंदर, स्पष्ट व शुद्ध। स्थान-स्थानपर बीच-बीचमें अक्षरोंकी स्याही समयके प्रभावसे उड़ गयी है।

यह प्रति भी सटिप्पण है। चारों हाशियोंपर स्पष्ट अक्षरोंमें सुंदरतासे टिप्पण लिखे गये हैं; जो अधिकांशतया ख प्रतिके टिप्पणोंके समान हैं, परन्तु अनेक स्थानों पर उनसे भिन्न और विशद हैं।[1]

पाठकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्णतया ख प्रतिसे मेल खाती है, और इसीको आदर्श मानकर लिखायी गयी प्रतीत होती है। अतः इस प्रतिकी समस्त पाठगत विशेषताएँ वे ही हैं, जो उपर्युक्त ख प्रतिकी। इन दोनों प्रतियोंमें यदा-कदा विरले ही परस्पर कोई पाठ-भेद उपलब्ध होता है, और अधिक करके वह पाठ ख की अपेक्षा शुद्ध सिद्ध हुआ है। परन्तु ये दोनों प्रतियाँ निश्चयतः एक ही परंपराकी हैं।

ग प्रतिका आरंभ ख प्रतिके समान ही 'ओं नमः सिद्धेभ्य' से होता है, और अंत कवि प्रशस्तिके उपरांत 'इय जंबूसामिचरितं समाप्तं' से। इसके उपरांत निम्नलिखित प्रति प्रशस्ति उपलब्ध होती है :—

संवत् १६०१ वर्षे आषाढ़ सुदि १३ भौमवासरे तोडागढ़वास्तव्ये राजाधिराज्य-राव श्री रामचंद्र-विजयराज्ये श्री आदिनाथचैत्यालये श्री मूलसंघे नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भ० श्री पद्मनंदिदेवास्तत्पट्टे भ० श्री शुभचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री जिनचंद्रदेवास्तत्पट्टे भ० श्री प्रभाचंद्रदेवास्तच्छिष्य मं० श्री धर्म्मचंद्रदेवास्तदाम्नाये खंडेलवालान्वये साहगोत्रे जिनपूजापुरंदरदानगुणश्रेयो नृपतिः॥ सा० महसा तद्भार्या सुहागदे तत्पुत्र सा० मेघचंद द्वितीय कोजू। सा० मेघचंद भार्या माणिकदे द्वितीय नौलादे तत्पुत्र सा० हेमा द्वितीय सा० हीरा तृतीय सा० छाजू। सा० हेमाभार्या हमीरदे तत्पुत्र चिरंजी भीषा। सा० हीराभार्या हीरादे। सा० कोजूभार्या कौतिगदे तत्पुत्र सा० पदारथ द्वितीय घीवा। सा० पदारथभार्या पाटमदे तत्पुत्र सा० धनपाल। सा० घीवाभार्या षिवसिरि तत्पुत्र डूंगरसी। एतेषां मध्ये सा० हेमाभार्या हमीरदे एतत् जंबूस्वामिचरित्रं लिखाप्य रोहिणीव्रत-उद्यापनार्थं ज्ञानपात्राय मंडलाचार्य श्री धर्म्मचंद्राय दत्तं॥

ज्ञानवा ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः। अन्नदानात् सुखी नित्यं निर्व्याधिर्भेषजाः भवेत्॥
॥ श्रीरस्तु॥ जैनधर्मं चिरं जीयात्॥ कल्याणं जयतु॥

इस बृहत् प्रशस्तिसे निम्न बातोंकी जानकारी होती है :—

(१) यह प्रति संवत् १६०१ में आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी मंगलवारके दिन महाराज श्री रामचंद्र-विजयके राज्यमें तोडागढ़नगरमें श्री आदिनाथ चैत्यालयमें मंडलाचार्य श्री धर्मचंद्रको प्रदान

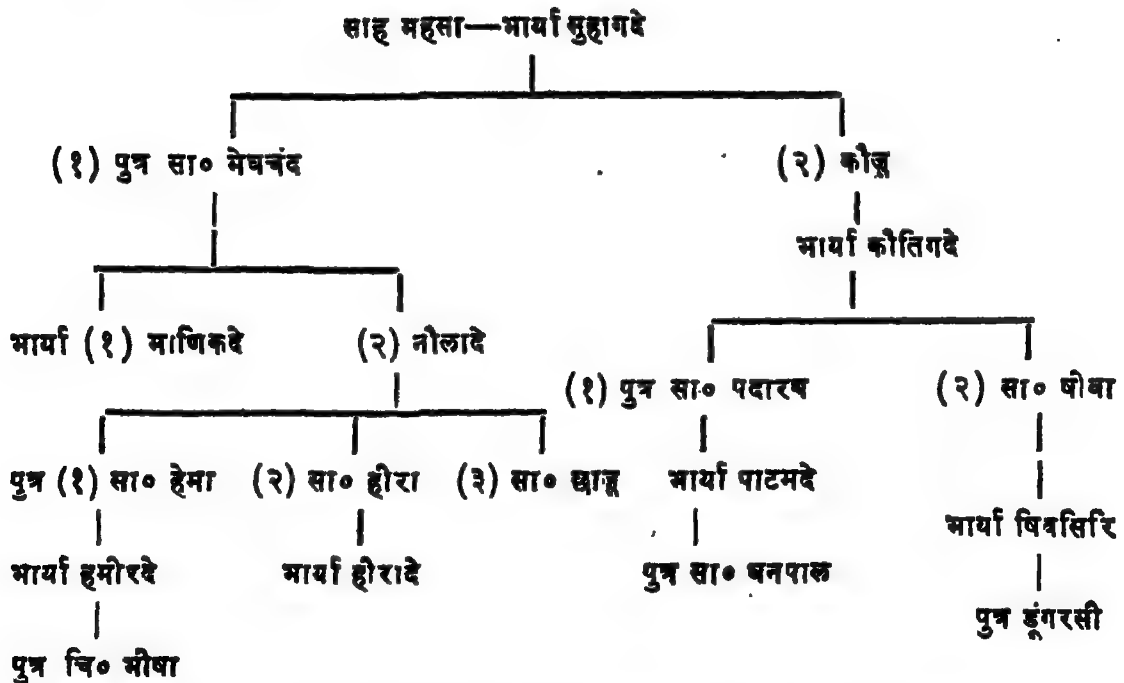
१. टिप्पणोंके विस्तृत परिचयके लिए देखें : ज० सा० च० 'संस्कृत टिप्पण'।

करने हेतु लिखवायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्न प्रकार थी :—

मूलसंघ, नंद्याम्नाय, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ श्री कुंदकुंदाचार्यान्वयमें :—

भ० पद्मनंदि
|
भ० शुभचन्द्र
|
,, जिनचन्द्र
|
,, प्रभाचन्द्र
|
मंडलाचार्य मुनि श्री धर्मचन्द्र

इन मं० धर्मचन्द्रके आम्नायमें खंडेलवालान्वयमें इनके श्रावक शिष्योंकी परम्परा चली, जिनमें साहु हेमाकी भार्या हमीरदेने रोहिणीव्रतके उद्यापनार्थ इस जम्बूस्वामिचरित्रको लिखवाकर आचार्य धर्मचन्द्रको प्रदान किया। इस श्राविकाका वंशवृक्ष निम्नप्रकार है :—



ग प्रतिसे उपलब्ध उपर्युक्त समस्त तथ्योंको ध्यानमें लेनेसे स्पष्ट है कि कुछ बातोंमें यह ख प्रतिसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रति है।

घ प्रति—यह भी जयपुरके शास्त्र भंडारमें उपलब्ध है। पत्र संख्या दो भागोंमें दी गयी है। पहले पत्र संख्या १ से ५१ तक है, और पुनः १ से ४७ तक, इस प्रकार कुल पत्र संख्या ९८ होती है। इसे बीचमें पत्र ५१ तक लाकर नये सिरेसे १ से प्रारम्भ करनेका कोई कारण प्रतीत नहीं होता। आकार ११"×५ ३/४"; पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ ११; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३४; प्रथम व अंतिम पत्र दोनोंपर केवल एक ओर कुल १०, १० पंक्तियाँ लिखी गयी हैं। हाशिया दोनों पार्श्वोंमें १ ३/४", १ ३/४"; ऊपर-नीचे १",१"। लेख सुन्दर स्पष्ट व शुद्ध है।

प्रतिका प्रारंभ "स्वस्ति श्री गणेशाय नमः ॥ ओं नमो वीतरागाय ॥" इन दो मंगल नमस्कारोंसे होता है। इससे प्रतीत होता है कि प्रति-लेखक कोई गणेश भक्त अजैन पंडित था। अंतमें प्रति अपूर्ण है। ११वीं संधिमें १५वें कडवकके घत्ताकी दूसरी पंक्तिका 'सोक्खपरंपरु' बस इतने प्रारंभिक अंशके उपरांत ही प्रति समाप्त हो जाती है। इसके आगे किसी प्रकारकी कोई प्रशस्ति नहीं है। अतः प्रतिके लेखनकाल आदिका अनुमान लगाना कठिन है।

प्रतिगत विशेषताएँ :—

(ख) इस प्रतिकी ध्वन्यात्मक विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :—

(१) आदिमें सर्वत्र तथा मध्यमें 'न्न' न्य, एवं 'र्न' इन संयुक्त रूपोंमें विद्यमान 'न्' ध्वनिकी पूर्ण सुरक्षा; कहीं-कहीं मध्यमें भी असंयुक्त 'न' का सुरक्षित रहना; अन्यत्र जैसे 'ज्ञ' और 'ण्ण' के स्थान पर प्रचुरतासे तथा कहीं-कहीं ष्ण, स्न, ह्न, एवं ण्य के स्थान-पर भी न्न, न, न्ह के प्रयोगका बाहुल्य। आदि 'न' सुरक्षित रहनेके संबंधमें यह ख एवं ग प्रतियोंसे पूर्णतः मेल रखती है। अन्य स्थितियोंमें न् के प्रयोगोंमें-से कुछ उदाहरण निम्नप्रकार हैं :—

मध्य असंयुक्त न > न नमिविनमि, झाणानल आदि; न्न > न्न जीवासाछिन्नु, आसन्नभव्व, भिन्न, पन्नय, संछिन्न, सन्निह आदि; न्य > न्न अन्न, अन्नुन्न, धन्न रायकन्ना, सिन्न आदि; र्न > न्न पुणुन्नउ (पुनर्नवः), निन्नासिय, दुन्निरिक्ख आदि; ष्ण > ण्ह तुन्हिक्को; स्न > न नेह; स्न > न्ह न्हाण; ह्न > न्न मज्झन्न; ण्य > न्न लावन्नवन्न, तारुन्न, महापुन्न, अन्नइ, आदि; ज्ञ > न संपन्ननाण; ज्ञ > न्न सन्नालुय, विन्नत्त, विन्नाण आदि; ण्ण > न्न अवइन्न, फलिहवन्न, वन्निऊण, उन्नामय, संपुन्न, कन्नपुड, निव्वन्नमि, महन्नव आदि आदि।

(२) तृतीया एवं सप्तमी विभक्तियोंमें, एवं अन्य शब्द रूपोंमें 'इ' एवं 'ि' मात्राके प्रयोगमें यह क प्रतिसे मेल रखती है।

(३) अन्य पाठोंमें इस प्रतिका मेल अधिकांशमें क एवं ङ प्रतियोंसे तथा अल्पांशमें ख एवं ग प्रतियोंसे है, और अनेक पाठ चारों प्रतियोसे भिन्न तथा अधिक शुद्ध हैं। अत. यह प्रति क ङ और ख ग इन प्रति परंपराओंकी अपेक्षा किसी अन्य स्वतंत्र प्रतिसे संबंध रखती है। संभव है इस परम्पराकी कोई अन्य प्रति किसी शास्त्र-भंडारमें कभी अधिक शोध-खोज होनेपर उपलब्ध हो सके। 'जंबूसामिचरिउ पंजिका'से भी उपर्युक्त दोनों प्रति-परम्पराओं (क ङ, ख ग) से भिन्न प्रति होनेके संकेत मिलते हैं।

ङ प्रति भी जयपुर शास्त्र-भंडारमें उपलब्ध है। कुल पत्र संख्या १०६; आकार १०" × ४½"; पंक्तियाँ प्रति पृष्ठ १०; अक्षर प्रति पंक्ति लगभग ३४; अंतिम पृष्ठपर कुल आठ पंक्तियाँ हैं, और अन्य प्रतियोंके समान इसमें भी प्रथम पत्रपर केवल एक ही ओर कुल १० पंक्तियाँ हैं। हाशिया दोनों पार्श्वोंमें लगभग ¾", ¾", तथा ऊपर नीचे ½", ½"। लिखावट बहुत सुन्दर और चमकीली है, पाठ भी अनेक स्थलों-पर क प्रतिकी अपेक्षा शुद्ध है। इसके लेखनकी दीर्घ कालावधिके प्रभावसे प्रतिके पत्र बहुत जीर्ण और टूटनेवाले हो गये हैं।

प्रतिका आरंभ '॥ स्वस्ति ॥ ओं नमो वीतरागाय ॥' इस प्रकार होता है। प्रति पूर्ण है। कवि प्रशस्ति इसमें नहीं है, परन्तु निम्न प्रति प्रशस्ति उपलब्ध है :—

संवत् १५४१ वर्षे आसोजवदि ७ सप्तमें शनिवारे श्री मूलसंघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे कुंदकुंदाचार्यानए [°यान्वये] भट्टारक श्री पद्मनंदिदेवा तत्पट्टे भट्टारक श्रीशुभचंद्रदेवा तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचंद्र देवा तत्शिष्य श्री रत्नकीर्ति देवा षंडेलवालानवे [°न्वये] पाटणीगोत्रे संघही धनराज सर्गस्ति [स्वर्गस्थः] तस्य भार्या कोडो। तयो पुत्रा संघही देवराज। मूलराज। तस्य पुत्र [पुत्राः] सोनपाल। रणमल। महिपाल। मलू। ज्ञानावरणीकर्म्मक्षयनिमित्तं मु० [मुनि] श्री विशालकीर्त्ति जोगु दत्तो [?] पाटणी पुस्तक घटापितं ॥ शुभं भवतु ॥

इस प्रशस्ति-पर-से इतनी बातें जानी जा सकती हैं :—

(१) प्रतिका लेखन संवत् १५४१ में आश्विन कृष्ण सप्तमी शनिवारके दिन पूर्ण हुआ।

(२) यह प्रति मुनि श्री विशालकीर्त्तिको प्रदान करनेके निमित्तसे लिखायी गयी, जिनकी गुरु-परंपरा निम्नप्रकार थी :—

मूलसंघ-बलात्कारगण-सरस्वतीगच्छ-कुंदकुंदाचार्यान्वयमें भ० श्री पद्मनंदी (सं० १३८५-१४५०)[1]
|
भ० श्री शुभचंद्र (सं० १४५०–१५०७)
|
„ „ जिनचंद्र (सं० १५०७–१५७१)
|
श्री रत्नकीर्त्ति
| (?)
मुनि श्री विशालकीर्त्ति

खंडेलवालान्वयमें, पाटनी गोत्रमें श्री रत्नकीर्त्तिके एक (श्रावक) शिष्य संघही (संघाधिप-संघपति) धनराज थे, वे स्वर्गस्थ हो गये। उनकी कोडी नामकी भार्या थी। उसके दो पुत्र थे, संघही देवराज और मूलराज। संभवतः मूलराजके चार पुत्र हुए सोनपाल, रणमल, महिपाल और मल्लू। इसके बादका अंश स्पष्ट नहीं है। इसी पाटनी परिवारके किसी व्यक्तिने जो मुनि श्री विशालकीर्त्तिका भक्त था, उनके लिए यह पुस्तक लिखवायी।

प्रतिगत विशेषताओंकी दृष्टिसे यह प्रति पूर्ण रूपसे क प्रतिसे समानता रखती है तथा निश्चित रूपसे ये दोनों प्रतियाँ एक ही प्रति-परंपराकी हैं। ङ प्रतिका लेखनकाल उपर्युक्त प्रशस्तिके अनुसार बिलकुल निश्चित है, परंतु क प्रतिमें कोई प्रशस्ति न होनेसे उसके लेखनकालका अनुमान लगाना कठिन है, यह पहले ही कहा जा चुका है। तथापि प्रतियोंके पत्रोंकी अपेक्षाकृत जीर्णता तथा ङ प्रतिमें क प्रतिकी अपेक्षा अनेक पाठ शुद्ध होने एवं क प्रतिके अधूरेपन आदि तथ्योंपर विचार करनेसे ऐसी दृढ़ प्रतीति होती है कि ङ प्रति क प्रतिसे बहुत अधिक प्राचीन है। और इस दृष्टिसे देखनेपर वास्तवमें इन प्रतियोंके संकेत बिलकुल विपरीत अर्थात् ङ के स्थानपर क, और क के स्थानपर ङ ऐसा होना चाहिए था। परन्तु क्योंकि संपादकको क प्रति सर्वप्रथम उपलब्ध हुई और ङ प्रति सबसे पीछे। अतः इनकी उपलभ्यता-की दृष्टिसे ही इनके ये संकेत मान लिये गये हैं।

उपर्युक्त पाँचों प्रतियोंमें ख प्रति सबसे प्राचीन है, संवत् १५१६ की। इसके बाद कालक्रममें ङ प्रतिका नाम आता है जो ख के ठीक २५ वर्षोपरांत संवत् १५४१ में लिखी गयी थी। इसके उपरांत ग प्रतिका समय आता है, जो ङ प्रतिके ६० वर्षोपरांत संवत् १६०१ में लिखकर पूर्ण हुई। क एवं घ प्रतियाँ अंतमें अपूर्ण हैं, शेष इनके संबंधमें ऊपर लिखा गया है।

यहाँ संपादन-सामग्रीके परिचयमें 'जंबूस्वामीचरित्रपंजिका' (पं) का परिचय देना इस दृष्टिसे आवश्यक है कि संस्कृत टिप्पणोंके साथ मूल पाठके जो उद्धरण इसमें दिये गये हैं, वे पाठ-संशोधनमें बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं, और कहीं-कहीं तो केवल पंजिकाका पाठ ही शुद्ध रहनेसे उसे मूलमें स्वीकार कर अन्य सब प्रतियोंके पाठोंको पाठभेदोंमें दे दिया गया है।

---

१. मूलसंघ बलात्कारगण उत्तरशाखाके विस्तृत इतिहासके लिए देखें : डॉ० जोहरापुरकर कृत 'भट्टारक-संप्रदाय' पृ० ८९ से पृ० ११२।

पं की प्रतिमें कुल पत्र संख्या ३१ है; आकार १०$\frac{1}{2}$"×४$\frac{3}{4}$"; पंक्तियाँ प्रतिपृष्ठ १२; अक्षर प्रति-पंक्ति लगभग ४०; हाशिया दोनों पार्श्वोंमें १", १" से कम, ऊपर-नीचे $\frac{3}{4}$", $\frac{3}{4}$"। पत्र २३ अ, (पृ० ४५) पर कुल ९$\frac{1}{2}$ पंक्तियाँ हैं। प्रथम पत्रपर दाहिनी ओरके हाशियेपर 'जंबूस्वामीचरित्रस्य पंजिका' लिखा हुआ है। यह प्रति जयपुरके छोटे तेरापंथी मंदिरके शास्त्र-भंडारमें उपलब्ध है।

पंजिका (पं) का प्रारंभ "ओं नमो श्री वीतरागाय। मन्दमतीनां सुखावबोधार्थं जंबूस्वामी-चरित्रे करोमि टिप्पणकं" इस प्रकार होता है और अंतमें निम्न अपूर्ण प्रति प्रशस्ति भी उपलब्ध होती है :—

श्री शुभं भवतु। संवत् १५६५ वर्षे फाल्गुण सुदि १० गुरुवासरे पुष्यनक्षत्रे श्रीमूलसंघे नंद्याम्नाए सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनंदिदेवा तत्पट्टे भ० श्री० शुभचंद्रदेवा तत्पट्टे भ० श्री जिनचंद्रदेवा तत्शिष्य मंडलाचार्य मुनि श्री रत्नकीर्तिदेवा तत्शिष्य मंडला० मुनि श्री हेमचंद्र तदाम्नाए षंडेलवालानुए [°न्वये] टोग्या गोत्र संघभारधुरंधरं ....सं० ।

इस अपूर्ण प्रशस्तिसे यह जानकारी होती है कि यह पंजिका (पं) संवत् १५६५ में फाल्गुण शुक्ल दशमी गुरुवारके दिन लिखी गयी; और जिन्होंने (?) इस पंजिकाकी रचना की; अथवा अपने गुरुसे अर्थोंको सुनकर लिखा, या स्वयं लिखवाया, उनकी गुरुपरम्परा निम्नप्रकार थी :—

'मूलसंघ-नंद्याम्नाय-सरस्वतीगच्छ-कुंदकुंदाचार्यान्वयमें :—

भ० श्री पद्मनंदी [सं० १३८५—१४५०]

„ „ शुभचंद्र [सं० १४५०—१५०७]

„ „ जिनचंद्र [सं० १५०७—१५७१]

|

मंडला० मुनि श्री रत्नकीर्ति [इन्होंने सं १५७२ में दिल्ली जयपुर शाखासे अलग नागौर शाखा स्थापित की।]

|

मंडला० मुनि श्री हेमचंद्र

इनके आम्नायमें खंडेलवालान्वयमें टोग्या गोत्रके संघपति...(अपूर्ण) ....[ने इस प्रतिको मुनि हेमचन्द्रजीके निमित्त लिखवाया]।

सम्पादनमें सहायक सामग्रीके रूपमें दो और रचनाओंका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है।

(१) ब्रह्म-जिनदासकृत 'जंबूस्वामीचरित' और (२) पं० राजमल्लकृत 'जंबूस्वामीचरित'। ब्रह्म जिनदास भ० सकलकीर्तिके शिष्य थे और इन्होंने संवत् १५२० में जंबूस्वामिचरित्रकी रचना पूर्ण की थी। यह चरित प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यके समान ११ परिच्छेदोंमें पूर्ण हुआ है, और अधिकांशतया सभी बातोंमें न केवल भावात्मक रूपसे बल्कि शब्दात्मक रूपसे भी इससे इतनी अधिक समानता रखता है कि इसे यथार्थमें प्रस्तुत अपभ्रंश-काव्यका संस्कृत रूपांतर कहना अनुचित न होगा। अतः स्वाभाविक रूपसे इस संस्कृत रूपान्तरसे मूल अपभ्रंशके पाठ संशोधन और हिंदी अनुवादमें बहुत अधिक सहायता मिली है।

पं० राजमल्लकी रचना सं० १६३२ में आगरेमें पूर्ण हुई। इसमें १३ पर्व हैं, और इसका भी विषयानुसार पर्व-विभाजन प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यसे अत्यधिक मिलता-जुलता है। प्रारंभमें कुछ पर्व केवल आगरे आदिका वर्णन होनेसे वास्तवमें मूल रचनासे विशेष संबंध नहीं रखते। इसका अध्ययन करनेसे स्पष्ट होता है कि यह भी अपभ्रंश जंबूसामिचरिउका अधिकांशमें संस्कृत रूपांतर ही है। अतः इससे भी पाठसंशोधन व अनुवाद कार्यमें पर्याप्त सहायता उपलब्ध हुई है।

---

१. भट्टारक संप्रदाय पृ० ९९, ११२ तथा ११४; लेखांक १०९।

प्रति-प्रशस्तियोंकी प्रामाणिकता

ख ग क प्रतियों तथा पं की प्रशस्तियोंमें मूलसंघ, बलात्कारगणके जिन भट्टारकों एवं मुनियों, तथा खंडेलवालान्वयमें पाटनी, टोंग्या (या ठोल्या ?) और साहु गोत्रोंमें उनके श्रद्धालु श्रावकों तथा प्रतिलेखन स्थानोंके नाम आये हैं, उनकी ऐतिहासिक सचाईकी परीक्षाके लिए यहाँ कुछ चर्चा कर लेना लेना उचित होगा।

दिगंबर जैन-संघके इतिहासमें बलात्कारगणका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, और जैन साहित्यकी सुरक्षा एवं संवर्द्धनमें इस गणके भट्टारकों, आचार्यों, मुनियों तथा श्रद्धालु श्रावकोंका अभूतपूर्व एवं अनुपम योगदान रहा है। केवल साहित्य ही नहीं, जैनधर्म, संप्रदाय और जैनतीर्थों व मंदिरोंकी सुरक्षा, प्रचार-प्रसार और निर्माणमें सदैव ही इस संघका बहुत बड़ा हाथ रहा है।

यूँ तो इस गणका उद्‌भव आचार्य कुंदकुंदसे ही माना जाता है, और तदनुसार इसके साथ कुंदकुंदाचार्यान्वय, नंद्याम्नाय, सरस्वतीगच्छ आदि पद भी जुड़े रहते हैं, परन्तु इस गणका प्रथम उल्लेख आचार्य श्रीचंद्रने किया है, जो धारा नगरीके निवासी थे, और जिन्होंने सं० १०७०, १०८०, एवं १०८७ में क्रमशः पुराणसार, उत्तरपुराण व पद्मचरितकी रचना की थी। यहींसे इस गणकी ऐतिहासिक परंपरा चालू होती है, और विक्रम की १५वीं शती तक जाती है। दक्षिणमें इस गणकी कारंजा एवं लातूर शाखाएँ वि० की १६वीं शतीसे प्रारम्भ होकर वर्तमान तक चल रही हैं।

बलात्कारगणकी उत्तर-शाखा मंडपदुर्ग (मांडलगढ़-राजस्थान) में भट्टारक वसंतकीर्तिके द्वारा सं० १२६४ में प्रारंभ हुई, तथा विशालकीर्ति-शुभकीर्ति-धर्मचंद्र-रत्नकीर्ति एवं प्रभाचंद्र भट्टारकोंसे होती हुई भ० पद्मनंदी (सं० १३८५–१४५०) तक आकर उनके बाद दिल्ली-जयपुर; ईडर एवं सूरत इन तीन प्रमुख शाखाओंमें विभक्त हो गयी। दिल्ली-जयपुर शाखामें-से दो और उपशाखाएँ निकलीं, नागौर शाखा एवं अटेर शाखा। अटेरशाखामें से सोनागिर प्रशाखा; ईडरशाखामें-से भानपुर उपशाखा; और सूरत शाखामें-से जेरहट उपशाखा। इन सबका दीर्घकालीन इतिहास है, और इनमें-से बहुत-से भट्टारकपीठ आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बलात्कारगणकी शाखा, उपशाखा और प्र-शाखाएँ संपूर्ण उत्तरभारतमें व्याप्त थीं। दिल्ली-जयपुरके निकटवर्ती उत्तरप्रदेश एवं पंजाबमें हिसार तकका सारा प्रदेश इसी शाखाके प्रभावमें था। गुजरात, राजस्थान एवं मालवामें भट्टारक-संप्रदायका अत्यधिक प्रभाव था; और दिल्ली जयपुर, पंजाबमें आजका कुरुक्षेत्र तथा उत्तरप्रदेशमें मेरठ व आगराके संभाग, इन समस्त प्रदेशोंमें बलात्कारगणके भट्टारकों, मुनियों तथा भक्तश्रावकों-द्वारा निरंतर धर्म व साहित्यकी सुरक्षा और संवर्द्धनका कार्य संपन्न किया जाता रहा।

यहाँ उपर्युक्त विस्तृत टिप्पणी देनेका तात्पर्य यह है कि जंबूसामिचरिउकी ख ग एवं क प्रतियों तथा पं की प्रशस्तियोंमें बलात्कारगणसे संबद्ध जिन-जिन आचार्यों, खंडेलवालान्वय, पाटणी, साहु तथा टोंग्या [ठोल्या ?] गोत्रों एवं झूंझणपुर और तोडागढ़ नगरों तथा रावराजा रामचंद्र (सोलंकी) के नामोल्लेख हुए हैं, वे सभी पूर्णतः ऐतिहासिक हैं, तथा भट्टारक संप्रदायसे संबद्ध लेखों, प्रशस्तियों व पट्टावलियोंमें इन सबके नाम उपलब्ध होते हैं। अतः प्रतियोंकी प्रशस्तियोंमें दी गयी सूचनाएँ ऐतिहासिक सत्य हैं।

पाठ-सम्पादनकी पद्धति

§ १ सामान्य सिद्धांतके रूपमें ख एवं ग प्रतियोंकी परंपरागत सर्वप्राचीनता, तथा पाठोंकी प्रामाणिकताको ध्यानमें रखकर इन प्रतियोंके पाठोंको ही मूलमें स्वीकार किया गया है। परन्तु अर्थ औचित्य तथा व्याकरण एवं छंदशुद्धिकी दृष्टिसे जहाँ कहीं भी आवश्यक प्रतीत हुआ है वहाँ क घ एवं क प्रतियों-

१. भट्टारक सम्प्रदाय पृ० ४७।

के, या केवल क ङ प्रतियोंके, तथा बहुत बार केवल किसी एक ही प्रति, विशेष रूपसे घ में उपलब्ध पाठको ही ले लिया गया है। क्वचित् केवल ग में उपलब्ध पाठको भी इसी आधारपर स्वीकार किया गया है, और इसी प्रकार कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जहाँ सब प्रतियोंके पाठोंके आधारपर उनसे भिन्न शुद्ध पाठ बनाया गया है। ऐसे समस्त स्थलोंमें यह पाठ परिवर्तन कहीं भी एक अक्षर, एक मात्रा अथवा एक अनुस्वारसे अधिक नहीं किया गया।

§ २ 'न' और 'ण' के प्रयोगके सम्बन्धमें निम्न प्रणाली अपनायी गयी है :—

(i) आदि 'न' की सर्वत्र सुरक्षा।

(ii) मध्यवर्ती संयुक्त 'न्न' की सुरक्षा; जैसे सन्नद्ध, भिन्न, आसन्न आदि।

(iii) आदिमें 'न' के पश्चात् 'नं' आनेपर 'न्न' का प्रयोग, जैसे निन्नासियं।

(iv) झाणानल, अनल तथा नेह (स्नेह) शब्दोंमें 'न' की सुरक्षा।

(v) अन्य सब स्थितियोंमें मध्यवर्ती असंयुक्त तथा संयुक्त न् के स्थानपर सर्वत्र ण् का प्रयोग किया गया है। इस संबंधमें घ प्रतिका साक्ष्य भिन्न है, और जैसा कि घ प्रतिके परिचयमें प्रतिगत विशेषताओंके अन्तर्गत § १ में कहा गया है कि यह प्रति 'न'कार बहुला है और इसमें र्न, न्य, ज्ञ, ण्य, र्ण, ण्ण, स्न और ह्न के स्थानपर प्रचुरतासे न, न्न, न् का प्रयोग हुआ है, इन प्रयोगोंको स्वीकार नहीं किया गया। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि स्वयं इस प्रतिमें भी ये प्रयोग सर्वत्र नियमित रूपमें नहीं किये गये हैं, कहीं हैं, कहीं नहीं; और दूसरा यह कि जो एक परंपराकी प्राचीनतम व प्रामाणिकतम उपलब्ध प्रतियाँ ख और ग हैं, उनमें ये प्रयोग नहीं पाये जाते। अतः यह साक्ष्य इस अकेली घ प्रतिका रह जाता है, जिसकी प्राचीनताका कोई निश्चय नहीं है।

'न' के इन प्रयोगोंके सम्बन्धमें यहाँ दो साक्ष्य प्रस्तुत हैं। प्रथम साक्ष्य श्रीचंद्र कृत अपभ्रंश 'कहकोसु'[1] (कथाकोष, वि० सं० ११२३) का है, जिसमें उपर्युक्त घ प्रतिके ठीक समान, परंतु अधिक नियमित रूपसे शब्दोंके आदि एवं मध्यमें असंयुक्त तथा संयुक्त सभी स्थितियोंसे न एवं न्न का प्रयोग अत्यंत प्रचुरतासे किया गया है। दूसरा साक्ष्य जिनदत्तसूरि (वि० सं० ११३२-१२११) विरचित अपभ्रंश काव्यत्रयी[2] (चर्चरी, उपदेशरसायनरास, कालस्वरूपकुलक) का है, जो गुर्जरदेशीय थे और जिन्होंने वीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यकी रचनाके अधिकसे अधिक एक सौ वर्षोंके अंदर ही अपनी काव्यत्रयीकी रचना की थी। इस अप० काव्यत्रयीमें उपर्युक्त पाँचों स्थितियोंमें न, न्न एवं न् का प्रयोग किया गया है, जिनके कुछ उदाहरण ये हैं :—नमिवि (च० १) गुणवन्नण (च० २) पुन्निहिं (पुण्यैः च० ७), मन्निउ (मानितः च० १४), न्हवण (उप० ४८), निव्विन्नी (उप० ६७), सुन्नउ (काल० १२) तथा नेह (काल० १३)। परंतु प्रस्तुत रचनामें इस संपादकने कुछ विशिष्ट स्थितियोंमें ही न, न्न का प्रयोग स्वीकार किया है, इसका कारण ऊपर ही लिखा जा चुका है।

§ ३ सभी प्रतियोंमें लगभग सर्वत्र 'ब' के स्थानपर 'व' का प्रयोग मिलता है, इस संबंधमें मैंने मूल-संस्कृत शब्दके अनुसार यथास्थान ब् व् दोनोंका प्रयोग किया है।

§ ४, दो स्वरोंके बीचमें 'य' श्रुति एवं 'व' श्रुतिके प्रयोगमें प्रतियोंमें एकरूपता नहीं है, कहीं इनका प्रयोग हुआ है, और कहीं केवल उद्वृत्त स्वर ही शेष रहा है। इस संबंधमें जहाँ दो या अधिक प्रतियोंमें श्रुतिका प्रयोग हुआ है, उसे स्वीकार किया गया है। 'व' श्रुतिका प्रयोग उन दो स्वरोंके

---

१. संपादक : डॉ० हीरालाल जैन; प्रका० प्राकृत टैक्स्ट-सोसायटी अहमदाबाद ग्रन्थ शीघ्र प्रकाश्यमान है।

२. संपादक : लालचंद भगवानदास गांधी, प्रका०-गायक० ओरि० सिरीज़ ग्रन्थ क्र० xxxvii बड़ौदा १९२७ ई०

बीच किया गया है, जिनमें पूर्व स्वर 'उ' हो, अन्यत्र साधारणतः प्रतियोंके अनुसार 'य' श्रुति ही रखी गयी है। जहाँ प्रतियोंमें किसी श्रुतिका प्रयोग नहीं मिलता, वहाँ नियमतः उद्वृत्त स्वर ही रखा गया है।

§ ५. तृतीया एवं सप्तमीके कारक प्रत्ययों तथा कृदन्तके पूर्वकालिक क्रियाके क्त्वा तथा ल्यप् प्रत्ययोंके स्थानपर और अन्यत्र भी ख ग प्रतियोंके साक्ष्यके अनुसार छन्दकी आवश्यकताको ध्यानमें रखते हुए सबसे अधिक 'ए' व 'ऍ' तथा इनकी मात्राएँ (े, ॅ) और जहाँ ये नहीं हैं वहाँ 'इ' अथवा 'इ' की मात्रा (ि); अथवा इन दोनोंसे रहित जैसे करवि, पढवि, परिहरिवि आदि रूपोंको (ख ग प्रतियोंके अनुसार) स्वीकार किया गया है।

§ ६. क एवं क प्रतियोंके अनुस्वारबहुल शब्दोंको इन प्रतियोंपर प्रादेशिक बोलीके प्रभावको दिखलानेकी दृष्टिसे इस प्रथम संस्करणमें पाठभेदोंमें रख लिया गया है। भविष्यमें किसी दूसरे संस्करण-में इन्हें रखनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी।

§ ७. प्रतियोंमें लिखावट संबंधी निम्नप्रकारकी भूलें हैं, परन्तु शुद्ध-पाठ लेना सर्वत्र संभव हुआ है :—(i) °ठं न > °पुण्ण उट्ठिठं न > उट्ठिपुण्ण (ख ग)
> °ऊ ण ,, ,, > उट्ठिऊण (क क)

(ii) ए > प, त > त्त } —पारए तरट्टि > पारपत्तरट्टि (क क)

(iii) च > व तवचरण > तववरण (क क)
चिराउसइं > विराउ° (,,)
°संकेयचत्तो > °वत्तो (क क)
व > च वेयइ > चेयइ (क ख ग क)
ववगयसत्त > चवगय° (क क)

(iv) च्च > त्थ, त्थ > च्छ } चणुच्चत्थणीणं > चणुच्चच्छणीणं (क क)

(v) च्छ > त्थ सच्छा > सत्था (ख ग)

(vi) त्थ > च्छ वित्थिण्ण > विच्छिण्ण. (क क)

(vii) भ > त भुवडाल > तुयडाल (घ)

(viii) म > व, व > म } उवसावमि > उवसामवि (क क)
म > स समुद्दरहि > सुसुद्दरहि (क क)

(ix) र क > क्ख पर-केवलइं > पक्खेवलइं > (क)

(x) ल > स तण्हालुयउ > तण्हासुयउ (क क)

इसपर-से स्पष्ट है कि लिखावटकी ये अधिकांश भूलें क एवं क प्रतियोंमें हुई हैं। इससे इन प्रतियोंके पाठोंकी प्रामाणिकता कम जाती है।

साधारणतः उपर्युक्त सिद्धान्तोंके अनुसार इस रचनाका संपादन किया गया है।

२. ग्रन्थकार परिचय

जन्मभूमि, परिवार, पिता, काव्यरचना प्रेरक, समय, पूर्ववर्ती और समकालीन कवि तथा आचार्य, समकालीन राजा, व्यक्तित्व और कृतित्व :

महाकवि वीरने जंबूसामिचरिउ (१. ४—५) में अपना परिचय स्वयं दिया है। उनका जन्म मालव देशके गुलखेड नामक ग्राममें हुआ था। उनके पिता लाडवर्गगोत्रके महाकवि देवदत्त थे,

जिन्होंने पद्धडिया छंदमें (१) वरांगचरित[1], (२) चच्चरिया शैलीमें शांतिनाथका यशोगान (शान्तिनाथरास)[1]; (३) सुन्दर काव्य शैलीमें सुद्धयवीरकथा[1]; एवं (४) अंबादेवीरास[1] की रचना की थी, जिसका नृत्याभिनय वीर कविके कालमें किया जाता था। कविने अपने पिताको कवि स्वयंभू तथा पुष्पदंतके पश्चात् तीसरा स्थान प्रदान किया है और कहा है कि 'स्वयंभूके होनेपर एक, पुष्पदंतके होनेपर दो तथा देवदत्तके होनेपर तीन कवि विख्यात हुए (५.१)।' कविके इस कथनमें अतिशयोक्ति अवश्य संभावित है, तथापि इससे इतना तो निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि अवश्य ही कविके पिता देवदत्त अपने समयके प्रख्यात व उच्चकोटिके कवियोंमें रहे होंगे।

कविकी माँका नाम श्रीसंतुवा था, और (१) सीहल्ल (२) लक्षणांक तथा (३) जसई नामोंसे प्रख्यात तीन अनुज थे। कविकी चार पत्नियाँ थीं। प्रथम जिनमती, दूसरी पद्मावती, तीसरी लीलावती एवं अंतिम (चतुर्थ) भार्याका नाम जयादेवी था। उनकी प्रथम पत्नीसे उन्हें नेमिचंद्र नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। यद्यपि वीर संस्कृत काव्य-रचनामें निपुण थे, किन्तु पिताके मित्रोंकी प्रेरणा, उत्साह संवर्द्धन एवं आग्रह, तथा संस्कृत काव्य-रचनाको छोड़कर सर्वजनप्रिय प्राकृत (अपभ्रंश) प्रबन्ध शैलीमें जंबूसामिचरिउकी रचना करनेके अपने पिताके आदेशके कारण कवि अपभ्रंश-प्राकृतमें महाकाव्यकी रीतिसे 'जंबूसामिचरिउ' की रचनामें प्रवृत्त हुआ।[2]

लाडवग्ग वंशकी ऐतिहासिकता

कविका जन्म लाडवग्ग अर्थात् लाट-वर्गट वंशमें हुआ था। इस लाट-वर्गटवंशका इतिहास बहुत पुराना है। वास्तवमें इस वंशका प्रारम्भ पुन्नाट संघसे हुआ है। इस संघके आचार्य पहले पुन्नाट अर्थात् कर्नाटक प्रदेशमें विहार करते थे, इसलिए इसका नाम पुन्नाट था। बादमें इसका प्रमुख कार्यक्षेत्र लाडबागड (सं० लाट-वर्गट) अर्थात् गुजरात और सागवाडेके आसपासका प्रदेश हुआ। इसलिए इसका नाम लाड-बागड गच्छ पड़ा।[3]

पुन्नाट संघके प्राचीनतम ज्ञात आचार्य जिनसेन हैं, जिन्होंने शक सं० ७०५ (वि० सं० ८४०) में वर्द्धमानपुरके पार्श्वनाथ तथा दोस्तटिकाके शांतिनाथ मंदिरमें रहकर हरिवंशपुराणकी रचना की।[4]

आचार्य जयसेन लाड-बागडसंघके नामसे ज्ञात प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने वि० सं० १०५५ में सकली करहाटक (करहाड, आधुनिक कराड, बम्बई प्रदेश) ग्राममें रहकर धर्म-रत्नाकर नामक ग्रन्थ लिखा।[5] प्रायः इसी समय इस गणके दूसरे आचार्य महासेनने प्रद्युम्नचरित लिखा[6], तथा सं० ११४५ में इसी गणके आचार्य विजयकीर्तिके उपदेशसे एक मंदिर बनवाया गया[7]।

---

१. दुर्भाग्यतः महाकवि देवदत्तकी इन चारोंमें-से किसी एक भी रचनाका अभीतक कोई पता नहीं चलता। संभव है कि कालांतरमें जिन-शास्त्र भंडारोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचियाँ अभीतक पूर्ण रूपसे प्रकाशित नहीं हो पायी हैं, उनमें-से किसीमें कोई रचना उपलब्ध हो सके।

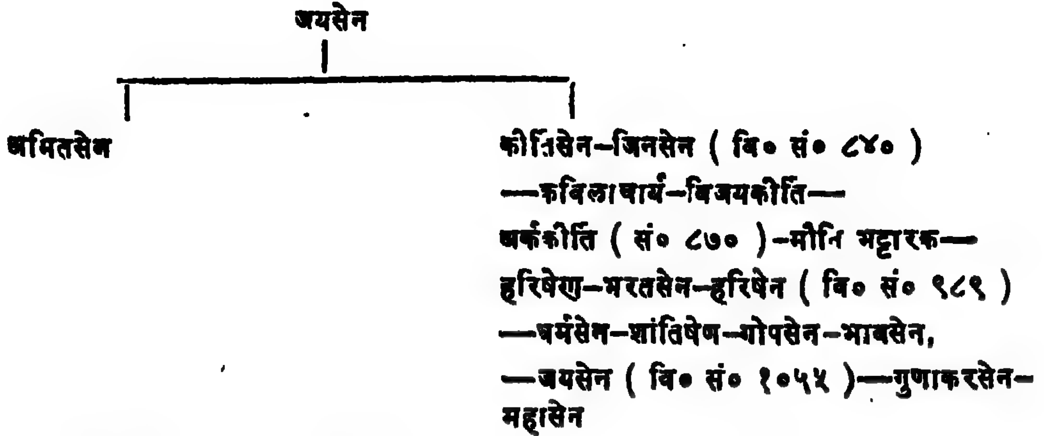
२. जं० सा० च० १.४.५. तथा १.१८. घत्ताके उपरांत संस्कृत पद्य २-३।

३. पुन्नाट और लाड्बागड संघोंकी एकताके लिए देखिए : म० संप्र० ले० १३१, व ७३७ तथा पृष्ठ २५७।

४. भ० संप्र० ले० १३२

५–७. वही, पृ० २५७, तथा पं० नाथूराम प्रेमी कृत 'जैन साहित्य और इतिहास' द्वि० सं० पृ० २७८

आ० जयसेनसे लेकर महासेन तक इस संघकी गुरु-शिष्य परम्परा निम्नप्रकार है[1] :



शांतिषेणके शिष्य आ० विजयकीर्ति (सं० ११४५) की भी गुरु परम्परा इस प्रकार थी—देवसेन—कुलभूषण—दुर्लभसेन—शांतिषेण—विजयकीर्ति। ऐसे भी देवसेन गुरु तक यह परम्परा वि० सं० १०५० के पूर्व तक आ पहुँचती है।

प्रस्तुत काव्यके रचयिता कवि वीरके पिता देवदत्त मालवामें इसी संघके अनुयायी वंशमें उत्पन्न हुए थे। वीर कृत 'जंबूसामिचरिउ' का रचनाकाल वि० सं० १०७६ निश्चित है।[2] अतः उनके पिताका समय सरलतासे वि० सं० १००० के लगभग माना जा सकता है। आ० विजयकीर्ति (सं० ११४५) के आगे भी वि० सं० १५०० तक लाड-बागड संघकी परम्परा अखण्ड रूपसे चलती रही।

वीर कविके काव्य-रचनाका प्रेरक

वीर कविने लिखा है ? (१-४ २) कि मधुसूदनके पुत्र और उसके पिताके मित्र तक्खड नामक श्रेष्ठी जो कि मालवदेशमें सिन्धुवर्षी नामक नगरीके रहनेवाले थे; ने वीरको संस्कृत काव्य रचनामें निपुण जानकर प्राचीन कवियोंके द्वारा अनेक ग्रन्थोंमें उद्धृत (उल्लिखित या लिखित) 'जंबूस्वामिचरित' को सर्वजनप्रिय प्राकृत (अपभ्रंश) प्रबन्ध शैलीमें संक्षेपमें लिखनेकी प्रेरणा दी। कविके संकोच करनेपर तक्खडके अनुज भरतने अग्रजकी बातका समर्थन किया और कविको काव्य रचनेका उत्साह दिलाया। तक्खडके पिताका नाम मधुसूदन था, और वह धक्कडवग्ग अर्थात् धर्कटवंशका आभूषण था।

धर्कट या धक्कडवाल वंश यह वैश्योंकी ही एक जाति है। अपभ्रंश भविसयत्त कहा (भविष्यदत्तकथा) के रचयिता महाकवि धनपाल (१०वीं शती ई०) इसी धक्कड वणिक् वंशमें उत्पन्न हुए थे।[3] उन्होंने 'भविसयत्तकहा' (सन्धि २२) में कहा है :—

धक्कडवणिवंसि माएसरहो समुब्भविण।
धणसिरिदेविसुएण विरइउ सरसइसंभविण॥

अपभ्रंश भाषाकी धम्मपरिक्खा (धर्म परीक्षा)के कर्त्ता हरिषेण भी इसी धक्कडवंशके हैं जिनका

---

१. भ० सम्प्र० पृ० २६१

२. देखें, आगे प्रस्तावना : समय निर्धारण।

३. देखें, डॉ० दलाल और गुणे-द्वारा संपादित 'भविसयत्तकहा' प्रका०—गायक० ओरि० सि० क्र० XX—बड़ौदा सन् १९२३; तथा प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास पृ० ३०९।

समय वि० सं० १०४४ है। आगे भी देलवाड़ा तथा आबूके शिलालेखोंमें इस जातिका उल्लेख है।[1] हरिषेणने 'सिरउंजपुरणिग्गयधक्कडकुल' लिखा है, अर्थात् सिरिउंजपुरसे निकला हुआ धक्कडकुल। 'सिरिउंजपुर' संभवतः टोंक राज्यके सिरोंजका ही पुराना नाम है। मेवाड़की पूर्वसीमापर टोंक राज्य है, और सिरोंज पहले मेवाड़में ही शामिल था। हरिषेणने अपनेको मेवाड़ देशका कहा भी है। यह धक्कडजाति अब भी विद्यमान है। ये लोग दिगम्बर जैनधर्मका पालन करते हैं, तथा अपने मूल निवास राजस्थानसे महाराष्ट्रके अकोला और यवतमाल जिलों तक फैल गये हैं। मुनि जिनविजयजी-के अनुसार मूलतः धक्कडकुल उपकेश (ओसवाल) जातिकी एक शाखा है।[2]

समय-निर्धारण

'जंबूसामिचरिउ' की प्रशस्तिके साक्ष्यके अनुसार वि० सं० १०७६ में माघ शुक्ल दशमीके दिन इस काव्यकी रचना पूर्ण हुई, तथा इस रचनाको पूर्ण करनेमें कविको एक वर्षका समय लगा।

प्रस्तुत काव्यके अंतःसाक्ष्य तथा अन्य बाह्य साक्ष्योंसे भी प्रशस्तिमें उल्लिखित समय ठीक सिद्ध होता है। जैसा ऊपर कहा गया है कि कविने अपने पूर्वाचार्योंमें महाकवि स्वयंभू (लगभग ८वीं शती विक्रम) पुष्पदंत (वि० की नौवीं शती का उत्तरार्द्ध एवं दसवींका पूर्वार्द्ध) तथा स्वयं अपने पिता देवदत्तका उल्लेख किया है। पुष्पदंतके उल्लेखसे ऐसा प्रतीत होता है कि जब यह महाकवि अपने जीवन-का उत्तरार्द्ध काल-यापन कर रहा था, और जिस समय राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयकी मृत्यु (वि० सं० १०२४) के पाँच ही वर्ष उपरान्त धारानरेश परमारवंशीय राजा सीयक या श्रीहर्षने कृष्ण तृतीयके उत्तराधिकारी व अनुज खोट्टिगदेवको आक्रमण करके मार डाला था, एवं मान्यखेटपुरीको बुरी तरह लूटा तथा ध्वस्त कर दिया था (वि० सं० १०२९), तथा इनके महापुराणकी रचना पूर्ण हो चुकी थी; तबतक इस निष्परिग्रही, निरासक्त, निःस्वार्थ एवं अभिमान-मेरु महाकविकी ख्याति वीर कविके मालव-प्रान्तमें भी पूर्णरूपसे व्याप्त हो चुकी होगी; उसी समय वीर कविने अपने बाल्यकालमें ही वागेश्वरीदेवीके इस वरद पुत्रकी ख्याति सुनी होगी तथा होश संभालनेपर अवश्य उनकी रचनाओंका अध्ययन किया होगा।

'जंबूसामिचरिउ' पर पुष्पदन्तकी रचनाओंका गंभीर एवं व्यापक प्रभाव भी इस तथ्यकी पुष्टि करता है। अतः वीर कविके समयकी पूर्वसीमा वि० सं० १०२५ के लगभग निश्चित हो जाती है। प्रश्न उत्तरसीमा निर्धारित करनेका है।

वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य साधक प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० में होनेवाले मुनि नयनंदिके 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ' का अत्यन्त गम्भीर और प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।[3]

एक और बात जो इस संबंधमें कही जा सकती है वह यह है कि प्रस्तुत काव्यकी ५ वीं-६वीं एवं ७वीं संधियोंमें हंसद्वीपके राजा रत्नशेखरके द्वारा केरलके घेर लिये जाने, व मगधराज श्रेणिककी सहायतासे राजा रत्नशेखरको परास्त किये जानेके बहानेसे वीर कविने जिस ऐतिहासिक युद्ध घटनाकी ओर संकेत किया है, जिसमें कविने स्वयं भी एक पक्षकी ओरसे भाग ले लिया हो, ऐसा प्रतीत होता है, वह घटना परिवर्तित रूपमें मुंजके द्वारा केरल, चोल तथा दक्षिणके अन्य प्रदेशों-पर वि० सं० १०३० से १०५० के बीच चढ़ाई करके उन्हें विजित करनेकी मालूम पड़ती है।

१-२. धक्कडकुलकी उत्पत्ति और वर्तमान स्थितिपर जिनविजयजीके मतके लिए देखिए: प्रेमी, जै० सा० और इति०, पृ० ४०९ तथा उस पर पाद टिप्पण।

३. देखें: आगे प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

परवर्ती एवं बाह्य साक्ष्य

वीर कविके परवर्ती साक्ष्योंमें प्रथम साक्ष्य ब्रह्म जिनदासकृत संस्कृत जम्बूस्वामिचरित है, जिसे उन्होंने वि० सं० १५२० में पूर्ण किया। यह रचना वीरकृत अपभ्रंश काव्यका अधिकांशतया संस्कृत रूपांतर मात्र है। कवि रयधूने (१५वीं शती ई०) भी अपनी दो रचनाओंमें वीर कविका नामोल्लेख किया है। इसके पश्चात् वि० सं० १५१६, १५४१ एवं १६०१ की जंबूसामिचरिउकी हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं, जिनका पूर्ण उपयोग इस काव्यके संपादनमें किया गया है। वि० सं० १६३२ में आगरामें पं० राजमल्ल-द्वारा रचित जम्बूस्वामिचरित्र भी प्रस्तुत अपभ्रंश काव्यका संस्कृत रूपान्तर ही है।

कवि-द्वारा उल्लिखित पूर्ववर्ती कवि और काव्य

कवि वीरने अपनी इस रचनामें स्पष्ट रूपसे सर्वप्रथम अपभ्रंश महाकवि स्वयंभूका स्मरण किया है।[1] तत्पश्चात् अपने पिताश्री महाकवि देवदत्तका।[2] आगे चलकर कविने यह कहते हुए कि स्वयंभूके होनेपर लोकमें एकमात्र (अपभ्रंश) कवि हुआ, पुष्पदंतके जन्म लेनेपर दो हो गये, तथा देवदत्तके होनेपर तीन[3], इस प्रकार अप० महाकवि पुष्पदंतका आदरपूर्वक स्मरण किया है। संधिके दूसरे कडवककी निम्न पंक्तिके द्वारा त्रिभुवन स्वयंभूका भी अप्रत्यक्ष उल्लेख होना संभावित है—'सो चेय गव्वु जइ ण उ करइ, तहो कज्जे परणु तिहुयणु धरइ'। अपभ्रंश कवियोंकी प्राचीन परंपरामें इनके सिवाय किसी अन्य कविका उल्लेख प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष किसी भी रूपमें वीर कविने नहीं किया।

अपने पिता कवि देवदत्त-द्वारा रचित जिन चार काव्य कृतियों[4] (१) पद्धडिया छंदमें रचित 'वरांगचरित' (२) 'सुद्दयवीरकहा' (३) 'शांतिनाथचरित' अथवा रासके रूपमें शांतिनाथका महान् यशोगान तथा (४) 'अंबादेवी-रास' का उल्लेख कविने किया है, दुःख है कि उनमें-से किसी रचनाका अभी तक कोई पता नहीं चल चका।

प्राकृत साहित्यके निर्माता कवि और काव्योंमें वीर कविने 'सेतुबन्ध' महाकाव्यका[5] अप्रत्यक्ष उल्लेख किया है।

संस्कृत साहित्य और साहित्यकारोंमें सर्वप्रथम उल्लेख 'प्रदीप' नामक शब्दशास्त्रका[6] तथा बादमें छंदशास्त्र,[7] एवं निघंटु (नामकोश)[8] और तर्क[9] (शास्त्र) का उपलब्ध होता है। सेतुबंधके साथ ही रामायणमें सेतुबंधकी घटनाका संकेत है। रामायणके उल्लेख प्रस्तुत 'जम्बूसामिचरिउ' में एकाधिक बार प्राप्त होते हैं।[10] महाभारतकी चर्चा भी स्पष्ट रूपसे काव्यमें हुई है।[11] भरतमुनि और उनके

---

१. जं० सा० च० १.२.१२;५.१.१.

२. वही १.४.२.

३. वही ५.१.२.

४. वही १.४.३-५.

५. जं० च० १.३.४.

६. पतंजलि कृत व्याकरण महाभाष्यपर कैयट कृत 'प्रदीप' नामक प्रख्यात टीका, जिसका रचना-काल संस्कृत साहित्यके इतिहासकारोंने वि० सं० ११०० से पूर्व निर्धारित किया है।

७. वही १.३.३ यहाँ उल्लिखित छंदःशास्त्रसे तात्पर्य पिंगलसे होना चाहिए, क्योंकि आगे चलकर ४.१.२. में स्पष्टतः 'पिंगल' नाम आया है अर्थात् कविने पिंगल छंदःशास्त्रका अध्ययन किया था।

८-९. जं० च० १.३.३.

१०. वही १.३.४;३.१२.१-२;५.८.३३-३४.

११. वही ५.८.३१-३२; ७ ,, ,,

नाटयशास्त्रका स्मरण कविने जिस रूपमें किया है[1] उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भरतमुनिके नाटय-शास्त्रका वीर कविने मनोयोगपूर्वक अध्ययन किया, और उनके नाटयशास्त्रके शास्त्रीय नियमोंके आदर्श पर अपनी काव्यकृतिमें रसों, भावों, अलंकारों आदि काव्य तत्त्वोंका समावेश किया। यह तथ्य 'जंबूसामिचरिउ' के तुलनात्मक अध्ययन[2] से और भी अधिक परिपुष्ट होता है। इनके अतिरिक्त वीर कविने संस्कृतके अन्य किसी कवि या काव्यका कोई उल्लेख नहीं किया, तथापि प्रस्तुत काव्यकृतिका सूक्ष्मतासे अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कवि संस्कृतके महाकवि कालिदास, हर्षचरितकार, बाण, शिशुपालवधके प्रणेता कवि माघ एवं उत्तररामचरितके रचयिता भवभूतिसे अवश्य प्रभावित था।[3] संस्कृत कवियोंमें कवि वीर कालिदाससे सबसे अधिक प्रभावित है, और प्रस्तुत काव्यके अनेक वर्णनोंमें यह प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है, यहाँ तक कि कुछ स्थलोंपर[4] तो वीर कविने कालिदासके श्लोकोंको शब्दशः अपभ्रंश रूपान्तर करके अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है।

समकालीन कवि और आचार्य

जैन साहित्यके इतिहासमें विक्रमकी ११वीं शती सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। जैन साहित्यके विविध-अंगों अथवा अनुयोगों—सिद्धांत व दर्शन, आचार, ज्योतिष, गणित, भूगोल एवं पुराण कथा व चरित इन सब विषयोंपर अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथोंकी रचनाकी दृष्टिसे यह ११वीं शती प्रारंभसे लगाकर अंत तक अत्यधिक क्रियाशीलता और उत्साहकी रही है।[5] संस्कृत, प्राकृत एवं अप-भ्रंश सभी भाषाओंमें इस शतीमें बहुत उच्चकोटिके महाकाव्य, चरितकाव्य, चंपूकाव्य एवं कथा-कृतियों-की रचना की गयी है। संस्कृतमें वीरनंदिकृत चंद्रप्रभचरित (महाकाव्य); अजितसेनके शिष्यका चामुंडपुराण, महासेनका प्रद्युम्नचरित (सं० १०३१-१०६६ के बीच); जंबूनागका मणिपतिचरित्र, जिनेश्वरसूरि कृत निर्वाणलीलावतीकथा एवं वीरचरित्र, सोमदेव कृत यशस्तिलकचंपू (वि० सं० १०१६) धनपाल कृत नवसाहसांकचरित ये प्रमुख रचनाएँ हैं। प्राकृतमें धनेश्वर सूरिकृत सुरसुंदरी-चरियं इसी शतीकी एक विशिष्ट रचना है। अपभ्रंशमें इस शतीकी प्रमुख रचनाएँ हैं:—महाकवि पुष्पदंतकृत 'तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार' या महापुराण, णायकुमारचरिउ एवं जसहरचरिउ; हरिषेणकृत 'धम्म-परिक्खा' (वि० सं० १०४४); महेश्वरसूरि कृत संयममंजरी कहा; सागरदत्तकृत पार्श्वपुराण एवं जंबू-चरिउ (वि० सं० १०७६) तथा नयनंदिकृत सुदंसणचरिउ (वि० सं० ११००)।

उपर्युक्त संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंमें जिनका कवि वीरके साथ विशेष संबंध रहा होगा, वे हैं—संस्कृतमें (१) यशस्तिलकचंपू आदिके रचयिता सोमदेवसूरि; (२) सुभाषितरत्नसन्दोह (वि० सं० १०५०), धर्मपरीक्षा (वि० सं० १०७०), पंचसंग्रह एवं उपासकाचार आदि ग्रन्थोंके प्रणेता आचार्य अमितगति; (३) कविके ही पितृकुल लाड-बागड वंशसे संबद्ध तथा प्रद्युम्नचरित्र (वि० सं० १०३१ से १०६६ के बीच) के कर्ता महासेन, (४) नव-साहसांक चरित (लगभग वि० सं० १०५०) के लेखक पद्म-या परिमल तथा (५) पाइयलच्छीनाममाला और तिलकमंजरीके कर्ता धनपाल। एक सोमदेवको छोड़कर ये सभी परमार राजा मुंजकी राजसभाके रत्न थे, और अधिकतर इन सबने धारा नगरीमें रहकर अपनी कृतियाँ पूर्ण कीं थीं। सोमदेवने कृष्णतृतीयके राज्यकालमें शक सं० ८८१ (वि० सं० १०१६) में कृष्ण-तृतीयके चालुक्यवंशी सामंत अरिकेसरीके ज्येष्ठ पुत्र वागराजकी राजधानी गंगधारामें रहकर

---

१. वही ३.१.३–७.

२. देखें: प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

३. वही।

४. देखिए मूल ४.३.९–१२; मिलाइए रघुवंश १–२–४।

५. विशद जानकारीके लिए देखें: कलाशचंद्र बेळाणी: 'जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार' पृ० १०–१४।

अपने ग्रंथोंकी रचना की थी। संभव है धारवाड़के निकट गंगवाटी नामक स्थानका ही प्राचीन नाम गंगधारा रहा हो।[1]

अपभ्रंशमें महाकवि पुष्पदंत तथा धम्मपरिक्खा (वि० सं० १०४४) के रचयिता हरिषेण इन दोनोंसे कविका विशेष साक्षात् संपर्क होनेकी सम्भावना है। इनमें-से पुष्पदंतने तो मान्यखेटपुरी (मलखेड़, बरार) में राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके मन्त्री भरतके आश्रयमें रहकर अपनी काव्य प्रतिभा दिखलायी और हरिषेण मुंजके आश्रयमें धारानगरीमें रहकर अद्भुत कथाकोषके समान विभिन्न कथाओंसे भरी हुई अपनी धम्मपरिक्खाकी रचना की। अपभ्रंशभाषामें ही पार्श्वपुराण तथा 'जम्बूचरिउ' के कर्ता सागरदत्त विशेष ध्यान देने योग्य हैं। जैन ग्रंथावलिमें उनके 'जंबूचरिउ' का रचनाकाल भी ठीक वही कहा गया है जो वीर कृत प्रस्तुत 'जंबूसामिचरिउ' का है, अर्थात् वि० सं० १०७६। संधियोंकी संख्या भी इसी काव्यके अनुसार ग्यारह बतलायी गयी है। अतः इन दो रचनाओंका तुलनात्मक अध्ययन सबसे महत्त्वकी वस्तु होता; क्योंकि एक ही भाषा, एक ही नाम, एक ही नायक, एक ही विधा, एक-सा ही परिमाण तथा ठीक एक-सा ही समय, फिर भी दो सर्वथा भिन्न रचनाओंका होना प्राचीनकालकी एक महत्त्वपूर्ण घटना है। परंतु खेद है कि सागरदत्त कृत 'जंबूचरिउ'की एकमात्र जिस प्रतिका उल्लेख जैन ग्रंथावलिमें किया गया है, वह प्रयास करनेपर भी संपादकको उपलब्ध नहीं हो सकी। रचना स्थानका भी कोई अनुमान लगाया नहीं जा सकता। अतः इन दोनोंके परस्पर संबंध, सादृश्य या वैषम्य किसी भी संबंधमें कुछ कहा नहीं जा सकता।

समकालीन राजा

वीर कवि यद्यपि अपने समकालीन राजाओं तथा राजनैतिक स्थितिके संबंध स्पष्ट उल्लेख नहीं किये किंतु प्रकारांतरसे जो जानकारी दी है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। जंबूसामिचरिउकी प्रशस्ति (पंक्ति ९-१०) में कविने कहा है कि बहुत-से राजकार्य, धर्म, अर्थ एवं काम गोष्ठियोंमें विभाजित समयवाले वीर कविको इस चरित-काव्यकी रचना करनेमें एक वर्षका समय लगा। पाँचवींसे लेकर सातवीं संधि तक युद्धका जो वर्णन है, वह अपने आपमें विशेष महत्त्व रखता है। निश्चित समय (वि० सं० १०७६) तथा उसका निवास स्थान गुलखेड़ इस सामग्रीके विषयमें विचार करनेके लिए एक निश्चित आधार देते हैं। गुलखेड़ नामक ग्राम या नगर मालवामें सिंधुवर्षी नगरी (?) के संनिकट ही कहीं रहा होगा। सिंधुवर्षी नगरीकी भौगोलिक स्थितिका इतना ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है कि पूर्वी मालवामें यमुनासे निकलनेवाली एक छोटी नदीका नाम काली-सिंधु या सिंधु नदी है। यह नदी प्राचीन दशार्ण क्षेत्र, जिसकी प्राचीन राजधानी विदिशा थी, से बहती हुई पद्मावती नामक स्थानपर आकर चर्मण्वती (चंबल नदीसे भोपालके निकट निकलनेवाली पारा नदीमें मिल जाती है। वहाँसे आगे दोनों नदियाँ मिलकर बेतवामें गिर जाती हैं। इसी सिंधु नदीके तीरपर भोपालसे पूर्व और विदिशासे उत्तरमें कहीं सिंधुवर्षी नामक नगरी रही होगी। इससे अधिक ठीक स्थिति कह सकना कठिन है।

इन दो सूचनाओंका आश्रय लेकर अर्थात् मालव देश एवं वि० सं० १०७६ (के आस पास) का समय, देखनेपर ज्ञात होता है कि मालवामें वि० सं० १०२४ में मुंजके पिता सीयक, श्रीहर्ष या सिंहभट राज्य कर रहे थे। वि० सं० १०२४ के पहले वे राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीयके द्वारा हराये गये थे। परंतु वि० सं० १०२९ के प्रारंभमें कृष्ण तृतीयकी मृत्यु हो जानेपर उनके अनुज खोट्टिगदेव गद्दीपर बैठे। खोट्टिगदेवके गद्दीपर बैठते ही सीयकने पूरी तैयारीके साथ मान्यखेटपर आक्रमण किया और खोट्टिगदेवको हराकर मान्यखेट नगरीको बुरी तरह लूटा व ध्वस्त किया। सीयककी राजधानी धारानगरी थी। इससे वे धारानरेश या धारानाथ कहलाते थे। सीयकके उपरांत उसके पुत्र प्रसिद्ध मुंज राजा गद्दीपर बैठे। इन्होंने अपने पितासे प्राप्त राज्य सीमाओंकी न केवल रक्षा की वरन् उनका विस्तार भी

१. पं० कैलाशचंद्र शास्त्री, सोमदेवकृत उपासकाध्ययन, प्रस्तावना पृ० १२।

किया। कर्णाटक, लाट, केरल, चोलके राजाओंको उन्होंने जीता था, और अन्य भी कई प्रदेशों पर चढ़ाई की तथा अपने राज्यकी सीमा वृद्धि की थी।[1] उन्होंने सोलंकी राजा तैलप द्वितीयको छह बार हराया था, पर सातवीं बार गोदावरीके पासके युद्धमें वे कैद कर लिये गये और वि० सं० १०५०–१०५४ के बीच मार डाले गये।[2] मुंजराजका दूसरा नाम वाक्पतिराज भी था।[3]

मुंजराजकी मृत्युके बाद सिंधुल, सिंधुराज, कुमारनारायण या नव-साहसांक नामोंसे विख्यात उनके छोटे भाई गद्दीपर बैठे। इन्होंने हूणोंको तथा दक्षिण कोसल, वागड़, लाट और मुरल तथा अन्य कई प्रदेशोंके राजाओंको युद्धमें हराया।[4] ये गुजरात नरेश सोलंकी चामुण्डराजके साथकी लड़ाईमें मारे गये। वि० सं० १०५० और १०६६ के बीच किसी समय इनके मारे जानेका अनुमान किया गया है।[5]

सिंधुराजकी मृत्युके उपरांत भोजराज गद्दीपर बैठे और वि० सं० ११११ तक लगभग ४५ वर्ष राज्य किया।[6] राज्याधिरूढ़ होते ही भोजने दिग्विजयका उपक्रम किया और अनेक युद्ध किये। उनमें-से बहुत-से युद्धोंमें ये विजयी हुए, परंतु दक्षिणमें इनकी विजय अस्थायी रही और जयसिंहके पुत्र सोमेश्वर प्रथमने कर्णाटकी गद्दीपर बैठनेके बाद दक्षिणके संघर्षमें भोजदेवकी भयानक दुर्दशा की। गुजरातमें भी भोजराजको विजयश्री हाथ नहीं लगी। भोजराज अतिशय साहित्यिक अभिरुचि संपन्न राजा थे और इनकी सभा अनेक विख्यात कवियों-साहित्यकारोंसे अलंकृत रहती थी।

इस पृष्ठभूमिपर वीर कविकी सूचनाओं और वर्णनोंको जाँचनेमें विशेष सुविधा होगी।

जं० सा० च० की प्रशस्ति (पंक्ति ९-१०) में कविने लिखा है कि बहुत-से राजकार्यमें लगे रहकर इस काव्यकी रचना करनेमें उन्हें एक वर्षका समय लगा। इससे यह प्रमाणित है कि कविका किसी राजाकी राज्य सभासे घनिष्ठ संबंध था।

काव्यकी पाँचवीं संधिमें कविने लिखा है कि केरलमें मृगांक नामका राजा था, उसकी विलासवती नामक कन्या दैवज्ञ मुनिके कथनानुसार मगधके श्रेणिकराजको ब्याही जानी थी। परंतु हंसद्वीपके राजा रत्नशेखरने उसके रूप-गुणोंकी प्रशंसा सुनकर उसके पिता मृगांकसे विलासवतीको अपने लिए माँगा, और न देनेपर केरलपुरीको चारों ओरसे घेर लिया। यह समाचार मृगांकके साले गगनगति विद्याधरसे सुनकर श्रेणिक राजाने सैन्य सहित केरलकी ओर प्रस्थान किया। परंतु काव्यके नायक अकेले जंबूस्वामीने ही गगनगति विद्याधरके साथ जाकर मृगांककी सेनाकी सहायता करके रत्नशेखर विद्याधरको हरा दिया"" आदि। छठी सातवीं संधियोंमें दोनों सैन्यों एवं प्रमुख व्यक्तियों गगनगति—रत्नचूल, मृगांक-रत्नचूलके बीच युद्धमें केरल पक्षकी पराजय तथा अंतमें जंबूकुमार-द्वारा रत्नचूलके पराजयका वर्णन है, और फिर आठवीं संधिकी प्रारंभिक पंक्तियोंमें कहा है कि आर्षप्रोक्त कथासे अधिक जो मैंने युद्धादिका वर्णन किया उसके लिए गुरुजन मुझे क्षमा करें। कविके इस कथनसे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि उसने अपने काव्यको महाकाव्य बनानेकी दृष्टिसे अपनी ओरसे यह सारा युद्धका प्रसंग जोड़ दिया। यह युद्ध वर्णन सर्वथा काल्पनिक भी हो सकता था, परंतु कविने फिर कहा है कि हाथमें धनुष, तथा दो भुजाओंमें विक्रम वीर कविका सहज परिकर है""आदि (६.१.३–६)। इससे ज्ञात होता है कि कविने स्वयं भी किसी युद्धमें

१-२. प्रेमी, जैन साहित्य और इतिहास, द्वि० सं० पृ० २८२।

३. पृ० २८३, बल्लाल कृत भोजप्रबंधके संपादक पं० जगदीशलालशास्त्रीने ग्रंथकी भूमिका पृ० ग पर इन्हें 'वाक्पतिराज द्वितीय'के नामसे प्रसिद्ध कहा है।

४. जगदीशलालशास्त्री; बल्लालकृत भोजप्रबंध भूमिका पृ० ङ।

५. प्रेमी, जै० सा० इति० पृ० २८२ द्वि० सं०।

६. श्री गांगुलीके मतानुसार भोजराज लगभग वि० सं० १०५६–५७ में गद्दीपर बैठे और ५५ वर्ष राज्य किया; देखिए : ज० ला० शास्त्री भो० प्र० भूमिका पृ० च।

भाग लिया था। देखना यह है कि वह युद्ध कौन-सा, किस राजाके द्वारा, कहाँ किया हो सकता है, जिसमें वीर कविने भाग लिया हो और जो उसके वर्णनके अनुकूल भी पड़ता हो।

इस भूमिकापर जब हम विचार करके देखते हैं तो उपर्युक्त परमारवंशीय राजाओंमें सर्वप्रथम सीयक या सिंहभटके जीवनके ऊपर अनायास हमारी दृष्टि पहुँच जाती है, जिन्होंने दक्षिणमें कर्णाटक, लाट, केरल और चोलदेशके राजाओंको जीता था, और जिनका राज्यकाल सं० १०२४ से लगाकर सं० १०५४ तक तीस वर्षोंकी दीर्घ अवधि पर्यंत बना रहा। इसके बाद परमार वंशके राजाओंको दक्षिणमें ऐसी विजय प्राप्त नहीं हुई। अतः उपर्युक्त सारी चर्चाको ध्यानमें रखकर, तथा सब साक्ष्योंको एक साथ मिलाकर देखने-पर ऐसा अनुमान होता है कि सीयककी दक्षिण-विजय यात्रामें कवि अपने यौवनकालमें उनके साथ रहा, और प्रौढ़त्व अथवा वृद्धत्व आनेपर राजकाजमें लगे रहते ही उसने जं० सा० च० की रचना अपने पिताके मित्र मधुसूदन श्रेष्ठिके पुत्र तक्खडकी प्रेरणा और उसके अनुज भरतके अति उत्साह संवर्द्धन करनेसे की और सीयककी दक्षिण-विजय यात्रा, जिसमें केरल भी सम्मिलित था, को ही अपने काव्यके अनुरूप परिवर्तित करके कविने उसे यह काव्योचित रूप दे डाला। यह अनुमान करनेमें कोई असंगति या असंभाव्यता प्रतीत नहीं होती।

सीयककी मृत्युके उपरांत भी कवि कमसे कम २५–३० वर्ष जीवित रहा, और इस बीच मुंज व सिंधुल राजा हुए तथा उनके बाद भोजदेव गद्दी पर बैठे। भोजदेवके शासनकालमें भी वीर कवि कमसे कम १५-२० वर्ष जीवित रहा, और उसकी राज्यसभाका सदस्य रहा होना चाहिए। इस विषयमें अभी अन्य साक्ष्योंकी अपेक्षा बनी रहती है।

उपर्युक्त समस्त विवेचनके आधारसे राष्ट्रकूटवंशीय कृष्णराज-तृतीय तथा परमारवंशीय सीयक, मुंज, सिंधुल और भोजदेव वीर कविके समकालीन व उसके संरक्षक राजा कहे जा सकते हैं। और इन तथ्योंपर-से कविका जीवनकाल भी बहुत कुछ निश्चित हो जाता है जो लगभग वि० सं० १०१० से लगाकर वि० सं० १०८५ तक ठहरता है।

कविकी शिक्षा तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

इस विषयमें कविने अपनी रचनामें पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। आदिमें तीर्थंकर महावीर, पार्श्व एवं आदिनाथ-ऋषभकी स्तुति तथा महाकाव्योंकी रीतिके अनुसार सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा व काव्यदोषोंको क्षमा करनेके लिए मध्यस्थ ज्ञानी जनोंकी अभ्यर्थना तथा महाकवि स्वयंभूका नाम स्मरण व गुण संकीर्तन करके, कवि अपनी विनयशीलता प्रदर्शित करते हुए कहता है[1]—सुकाव्य रचनामें मनसे प्रवृत्त होकर भी मैंने उसके लिए विद्यासाधन रूपी कौन-सी सामग्री एकत्र की? क्या मैंने प्रदीप[2] नामक शब्दशास्त्रका अध्ययन किया; या छंदशास्त्र सहित निघंटुको जाना; या कि तर्कशास्त्रको समझा या कि महाकवि रचित विशिष्ट काव्य सेतु[3]—का अध्ययन किया? व्याकरणकी गुण, वृद्धि आदि क्रियाओं, समास-विधान, अपशब्द व शुद्ध शब्दोंका भेद, अथवा छंदशास्त्र इनमें-से किसीको भी तो मैंने नहीं समझा; हाँ रामायणमें समुद्रपर सेतु बाँधा गया था, यह मैंने अवश्य सुना है....आदि-आदि। कविके इन वाक्योंसे स्पष्टतया यह प्रकट होता है कि वह शब्दशास्त्र, छंदशास्त्र, निघंटु (नामकोश), तर्कशास्त्र तथा प्राकृत काव्य सेतुबंध इन सबका विशेष रूपसे गहन अध्ययन करनेके उपरांत काव्य रचनामें उद्यत हुआ। प्राचीन प्रणालीके अनुसार जैन साहित्यके चारों अनुयोगों (विधाओं) प्रथमानुयोग (पुराण, कथा, चरित, साहित्य), द्रव्यानुयोग (सैद्धांतिक साहित्य), चरणानुयोग (आचारपरक धार्मिक साहित्य) एवं करणानुयोग (जैन-भूगोल,

---

१. जं० सा० च० १.३.१-१०।

२. देखिए ऊपर पृ० १७, पाद टिप्पण ६।

३. महाकवि प्रवरसेन (५वीं शती ई०) विरचित 'सेतुबन्ध' महाकाव्य।

गणित ज्योतिष आदि) का कविने आचार्य-परंपरासे गंभीर एवं तात्त्विक ज्ञान प्राप्त किया था, यह तथ्य संपूर्ण रचनामें पद-पदपर झलकता है। मूल ग्रंथमें अनेक पौराणिक घटनाओंके उल्लेखोंसे[1] ज्ञात होता है कि कविको केवल जैन पौराणिक परंपराका ही नहीं, बल्कि वाल्मीकि-रामायण व महाभारत इन दोनों पौराणिक महाकाव्यों तथा शिवपुराण आदि पुराणोंसे भी गहरा परिचय था। इनके अतिरिक्त प्राचीन कवियोंके प्रसिद्ध काव्यग्रंथों व शास्त्रीय लक्षणग्रंथों, विशेषरूपसे भरतके नाट्यशास्त्रके अनुसार अलंकार व अन्य काव्य-लक्षणोंका कविको तलस्पर्शी ज्ञान था, इसके भी अनेक प्रमाण प्रस्तुत काव्य-कृतिमें[2] हमें उपलब्ध होते हैं। संस्कृत साहित्यके कुछ प्रमुख-कवियों, लेखकोंकी रचनाओंसे कवि सुपरिचित एवं प्रभावित था, जिनमें-से महाकवि कालिदास, तथा बाण विशेषरूपसे उल्लेखनीय हैं।[3]

शास्त्रीय ज्ञानके अतिरिक्त कवि लौकिक शिक्षामें भी निष्णात था। केवल काव्य-रचना ही उसका एक-मात्र जीवन व्यापार अथवा साधन नहीं था, बल्कि वह अन्य भी बहुविध राजकार्य, धर्म, अर्थ, व काम चर्चाओंमें लगा रहता था, और इन सब कार्योंमें व्यस्त रहते हुए इस 'जंबूसामिचरिउ' नामक चरितकाव्यकी रचना करनेमें उसे एक वर्षका समय लगा।'[4] अर्थात् कविको समाजके विभिन्न वर्गों एवं जीवन-यापनके विविध साधनोंका साक्षात् अनुभव था। वीर कवि एक श्रद्धा-भक्तिवान् जैन सद्गृहस्थ था; और उसने मेघवनपत्तनमें भगवान् महावीरकी प्रतिमाकी स्थापना करायी थी।[5] अन्यत्र कविने स्वयं कहा है कि दरिद्रोंको दान, दूसरोंके दुःखमें दुःखी, सरस-काव्य [की रचना] को ही सर्वस्व माननेवाले पुरुषोंको धारण करनेसे ही धरित्री कृतार्थ होती है; तथा हाथमें धनुष, साधुचरित्र महापुरुषोंके चरणोंमें शिरसः प्रणाम, मुखमें सच्ची वाणी, हृदयमें स्वच्छ-प्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए श्रुतका ग्रहण, तथा दो भुज-लताओंमें विक्रम यह वीर (पुरुष, कवि) का सहज परिकर हुआ करता है।[6] अर्थात् वीर कवि पूर्ण रूपसे एक अनुकंपावान सल्लक्षण जैन गृहस्थ होनेके साथ ही साथ एक सच्चा वीर पुरुष भी था।

कवि केवल अपभ्रंश रचनामें ही सिद्धहस्त नहीं था। संस्कृत एवं प्राकृतमें भी उसे निर्बाध नैपुण्य एवं गति प्राप्त थी। संस्कृतके कुछ श्लोक प्रथम संधिके अंतमें तथा एक आर्या पंचम संधिके ११वें कडवकमें उपलब्ध है, और प्राकृतकी अनेक गाथाएँ प्रत्येक संधिके प्रारंभमें विद्यमान हैं। प्रशस्ति भी प्राकृत गाथाओंमें लिखी गयी है। पहली और सातवीं संधियोंके बीचमें भी (१.११; ७.६) प्राकृत गाथाएँ हैं। इन गाथाओंकी भाषा गूढ़ अर्थ प्रधान व क्लिष्ट है, और ये शुद्ध साहित्यिक शैलीमें निबद्ध हैं, तथा अत्यंत गंभीर और विशद भावोंसे द्योतित हैं। संपूर्ण रचना संस्कृतके तत्सम शब्दोंसे भरी है, और शैली भी संस्कृत काव्योंके अनुरूप समास, अलंकार तथा श्लेष प्रधान है। ये बातें यह सिद्ध करनेके लिए पर्याप्त हैं कि संस्कृत रचनामें निपुण होनेका कविका दावा असत्य नहीं है, और प्राकृत रचनामें उसकी सिद्धहस्तता प्रकट करनेके लिए तो कविकी प्रस्तुत रचनामें उपलब्ध गाथाएँ ही पर्याप्त प्रमाण हैं। इस प्रकार कविकी एक मात्र कृति 'जंबूसामिचरिउ' से प्रमाणित है कि कवि संस्कृत-प्राकृत एवं अपभ्रंश तीनों भाषाओंमें निष्णात था, तथा किसी भी भाषामें काव्य रचना करनेमें समर्थ था।

---

१. जं० सा० च० १.१०.७-८; ३.१२.१-२; ४. १८.१२-१३; ५-८.३१-३६, एवं ५.९.१४.।

२. वही, ३.१३.४; ७.१.३-६; ८.१.३-१०; ९.१.१-४; एवं १०.१.१-४।

३. विशेषके लिए देखें—प्रस्तावना—पूर्ववर्ती साहित्यकारोंका प्रभाव।

४. जं० सा० च० प्रशस्ति गाथा ५।

५. जं० सा० च० प्रशस्ति गाथा ४।

६. जं० सा० च० ६.१.१-६।

३. कथासार, कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन और मौलिकता

तीन तीर्थंकर महावीर, पार्श्व एवं ऋषभकी स्तुति वंदना करके (१.१) अपने विद्याभ्यास, (१.३) माता-पिता (१.४) एवं प्रेरणादायकोंका परिचय देकर कवि जंबूस्वामीचरितकी कथा प्रारंभ करता है (१.५-६)। मगधदेश (१.६-८) के राजगृह नगर (१.९-१०) में श्रेणिक नामका राजा (१.११) था, उसकी कई सहस्र सुंदर रानियां (१.१२) थीं। एकबार भ० महावीर अपने समवशरण सहित विपुलाचल पर पधारे (१.१३)। राजा अपने समस्त परिवार, परिजन, पुरजन, व सेना सहित भगवान्के दर्शनोंको गया (१.१४-१६) तथा स्तुति-वंदना करके (१.१७-१८) उचित स्थानपर बैठ गया। (संधि—१)।

श्रेणिकके अनुरोध करने पर भगवान्ने जीवादि तत्वोंका उपदेश दिया (२.१-२)। उसी समय एक महातेजस्वी देव अपनी चार देवियों सहित अपने आकाशगामी विमानसे उतरा व भगवान्को वंदना करके समवशरणमें देवताओंके कोठेमें बैठ गया। श्रेणिकके प्रश्न करने पर भगवान्ने कहा यह विद्युन्माली नामका देव है, जो सातवें दिन स्वर्गसे च्युत होकर इसी नगरमें मनुष्य रूपमें जन्म लेगा व तप करके उसी भवसे मोक्ष जायेगा (२.३)। श्रेणिक-द्वारा पुनः पूछे जाने पर भगवान् ने उस देवके पूर्व भवोंकी कथा इस प्रकार कहनी प्रारंभ की—

इसी मगध देशमें वर्द्धमान नामका ब्राह्मणोंका अग्राहार ग्राम है (२.४)। वहाँ सोमशर्म नामका वेदज्ञ ब्राह्मण रहता था, जिसकी सोमशर्मा नामक पत्नी थी। उनके दो शास्त्रज्ञ पुत्र हुए, बड़ा भवदत्त तथा छोटा भवदेव। कुछ काल पश्चात् व्याधिग्रस्त होकर उनका पिता विष्णुका स्मरण करता हुआ जीवित ही चितामें प्रविष्ट होकर मृत्युधर्मको प्राप्त हुआ। पतिव्रता सोमशर्माने भी चितामें जलकर तत्क्षण पतिका अनुगमन किया। माता-पिता दोनोंके वियोगको स्वजनोंके धैर्य बंधाने पर (२-५) किसी-किसी तरह सहन करते हुए बड़ा भाई भवदत्त न्याय-नीतिपूर्वक गृहस्थधर्मका पालन करने लगा। उस समय बड़ा भाई भवदत्त अठारह वर्षका था, और छोटा भवदेव बारह वर्षका। कुछ दिन बाद सुधर्म मुनिका उपदेश (२.६) सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और छोटे भाई भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर वह संघमें दीक्षित हो गया (२.७)। बारह वर्ष पश्चात् मुनिसंघ विहार करते-करते पुनः उसी गाँवमें आया। छोटे भाई भवदेवको भी दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुकी अनुज्ञा लेकर भवदत्त मुनि भवदेवके घर आये (२.८)। उस समय भवदेवका विवाह हो रहा था। बड़े भाईका आगमन सुनकर वह नववधूको अर्द्धमंडित ही छोड़कर तुरंत बाहर आया (२.९), और मुनिके पूछने पर उसने बताया कि मैंने इसी गाँवके दुर्मर्षण नामक ब्राह्मण व उसकी नागदेवी नामक पत्नीकी नागवसू नामक कन्यासे विवाह किया है (२.११)। भवदेवके आग्रहसे वहीं आहार लेकर भवदत्त मुनि जहाँ संघ ठहरा था, वहाँ लौट चले। नगरके अन्य नर-नारी कुछ दूर तक मुनिको छोड़कर नगरको लौट गये, पर मुनिने भवदेवको वापिस लौट जानेको नहीं कहा। अतः भाईके प्रति श्रद्धा व लज्जाके कारण भवदेव घर जानेको अत्यंत उत्सुक होने पर भी लौट नहीं सका और मुनिके साथ जहाँ संघ ठहरा था, वहाँ पहुँच गया (२.१२)। संघमें आकर अन्य मुनिजनोंकी प्रेरणासे तथा भाईकी भी वैसी ही अंतरंग इच्छा जानकर उसके सम्मानकी रक्षाके लिए बे-मनसे भवदेवने आचार्यसे दीक्षा ले ली (२.१३)। तदनंतर संघ वहाँसे विहार कर गया। भवदेव दिन-रात नागवसूके ध्यानमें लीन रहता हुआ, घर लौटकर पुनः उसके साथ कामभोग भोगनेके अवसरकी प्रतीक्षामें समय व्यतीत करने लगा (२.१४)। बारह वर्ष पश्चात् मुनिसंघ पुनः उसी वर्द्धमान गाँवके निकट आकर ठहरा। भवदेव इससे बहुत उल्लसित हुआ, और बहाना करके मनमें प्रेय व श्रेय वृत्तियोंके द्वंद्वमें पड़ा हुआ अपने घरकी ओर चला (२.१५-१६)। गाँवके बाहर ही एक जिन-चैत्यालयमें उसकी नागवसूसे भेंट हो गयी। व्रतोंके पालनेसे अति कृशगात्र, अस्थिपंजर मात्र शेष रहनेसे भवदेव उसे पहचान नहीं सका (२.१६)। अपने कुल व पत्नीके संबंधमें पूछने पर नागवसू उसे पहचान गयी कि यह भवदेव है, और धर्मच्युत होना चाहता है। तब नागवसूने उसे अपना परिचय दिया और अपना तपः शुष्क शरीर दिखलाकर व नानाप्रकारसे धर्मोपदेश

देकर भवदेवको प्रतिबुद्ध किया (२.१७-१८)। इस प्रकार बोध प्राप्त करके भवदेवने आचार्यके समक्ष जाकर सब कुछ बतलाकर प्रायश्चित्त किया, पुनः दीक्षा ली (२.१९) और अति कठोर तप करने लगा। तप करके दोनों भाई मरकर तीसरे स्वर्गमें देव हुए (२.२०)। (संधि-२)।

मंदराचलसे पूर्व दिशामें पूर्व-विदेहमें पुंडरीकिणी नामकी नगरी (३.१-२) है। बड़े भाई भवदत्तका जीव स्वर्गमें अपनी आयु पूरी करके, वहांके राजा वज्रदंत व उसकी रानी यशोधनाका सागरचंद्र नामक पुत्र हुआ (३.३)। उसी देशमें वीतशोक नामक नगरीमें, छोटे भाई भवदेवका जीव, वहांके राजा महापद्म और उसकी वनमाला नामक पट्टरानीका शिवकुमार नामक पुत्र हुआ (३. ३)। युवा होनेपर उसका युवराज पद-पर अभिषेक एवं अनेक राजकन्याओंके साथ परिणय करा दिया गया। उधर पुंडरीकिणी नगरी में सुबंधुतिलक नामके एक महामुनि पधारे (३.४)। उनसे धर्म श्रवण एवं दोनों भाइयोंके पूर्वजन्मका ज्ञान प्राप्त करके कुमार सागरचंद्र वहीं दीक्षित हो गया (३.५)। मुनिसंघके साथ विहार करते हुए मुनि सागरचंद्र छोटे भाई भवदेवके जीव युवराज शिवकुमारको प्रतिबोध देनेकी इच्छासे वीतशोक नगरीमें पधारे। उन्हें देखकर अपने पूर्वजन्मका स्मरण होनेसे शिवकुमारको भी वैराग्य हो गया और उसने दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी (३-७)। परंतु दीक्षाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञा न मिलनेसे घरमें ही मंत्रीपुत्र दृढ़धर्मके हाथों केवल कांजीका शुद्ध आहार लेते हुए अनेक वर्षों तक कठोर तप करके आयुष्यके अंतमें संन्यास-पूर्वक मरण किया (३-९)। उसी तपके प्रभावसे पहले भवदेव, फिर स्वर्गमें देव और फिर शिवकुमारका वह जीव विद्युन्माली नामका यह अति तेजस्वी देव हुआ है। उधर बड़ा भाई भवदत्त, फिर देव, और फिर सागरचंद्र मुनिका जीव भी आयुष्य पूरा करके स्वर्गमें देव हुआ। अब विद्युन्माली देव मनुष्य जन्म लेकर विद्युत्प्रभ नामक चोरके साथ दीक्षा लेगा (३-१०)।

विद्युन्माली देवकी चार देवियोंका पूर्वभव पूछनेपर भगवान्‌ने कहा—भारतदेशमें चंपानगरीमें सूर्यसेन नामका एक सेठ जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी और यशोमती नामकी चार अतिसुंदर पत्नियोंके साथ रहता था (३-१०)। कुछ काल बाद कर्मविपाकसे सूर्यसेनको कुष्ठ आदि अनेक भयानक व्याधियाँ हो गयीं और वह अपनी पत्नियोंसे बड़ी ईर्ष्या रखने लगा, तथा द्वेष व शंकासे उन्हें नानाप्रकारकी यातनाएँ देने लगा (३-११)।

एक बार वसंतऋतु (३.१२) में नागयक्षकी यात्रा (पूजा)-के अवसर-पर वे चारों भी नागदेवताके दर्शन कर निकटस्थ वासुपूज्य भगवान्‌के मंदिरमें गयीं। वहाँ सुमतिनामक मुनिसे उन्होंने श्रावकोंके व्रत ले लिये। सूर्यसेनकी मृत्युके उपरांत सब संपत्ति मंदिर निर्माणमें लगाकर चारों बहुएँ सुव्रता आर्यिकाके पास आर्यिकाएँ हो गयीं। वे ही चारों तप करके मरणोपरांत स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी चार प्रियाएँ हुई हैं (३.१३)।

पुनः विद्युच्चोरके संबंधमें पूछने पर भगवान्‌ने कहा—मगधदेशमें हस्तिनापुर नामक नगरमें विसंध्र नामके राजा व उसकी श्रीसेना नामक प्रिय रानीसे विद्युत्प्रभ नामका पुत्र हुआ जो चोरीके व्यसनके वशीभूत होकर पिताका राज्य छोड़कर राजगृह नामक नगरमें आकर कामलता नामक वेश्याके घरमें रहता है, व चोरीका धन ला-लाकर उसका घर भरता है (३-१४)। (संधि ३)।

तब विद्युन्माली देवके जन्मकुलके संबंधमें पूछनेपर भगवान्‌ने कहा कि यह देव इसी राजगृह नगरी-के निवासी व यहीं समवसरणमें उपस्थित श्रेष्ठी अरहदास व उसकी प्रिय भार्या जिनमतीके पुत्ररूपमें जन्म लेगा। भगवान्‌के ये वचन सुनकर एक यक्ष अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ प्रसन्नताके कारण उठकर नाचने लगा (४.१)। इसका कारण पूछने पर भगवान्‌ने कहा कि इसी नगरीमें धनदत्त नामका सेठ रहता था। उसकी गोत्रवती नामकी भार्या थी। उसके दो पुत्र हुए, बड़ा अरहदास जो बहुत सज्जन व धर्मात्मा हुआ; और छोटा जिनदास जो जवानीके वेगमें कुसंगतिके प्रभावसे जुआ आदि व्यसनोंमें बुरी तरह पड़ गया। एक दिन वह जुएमें छत्तीस सहस्र स्वर्णमुद्राएँ हार गया। घरसे मुद्राएँ लाकर देनेका वचन देने पर भी छलक नामके एक जुआड़ीने जिनदाससे व्यर्थ झगड़ा करके उसके पेटमें कटारी मार दी (४-२)। यह सूचना

मिलने पर बड़ा-भाई अरहदास उसे घर ले गया, और सब उचित उपचार किया। पर वह बच नहीं सका, और भाईके सदुपदेशसे शुभ भावोंसे मरकर उसने यक्ष योनिमें इस रूपमें जन्म लिया है। अतः अपने पूर्व-जन्मके पितृकुलमें भाईके घरमें अंतिम केवलीके जन्म होनेकी बात सुनकर अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ आनंदके कारण नाच रहा है। (४.३)।

इसके पश्चात् भगवान्‌ने नानाप्रकारसे धर्मोपदेश किया व आगे होनेवाले संपूर्ण जंबूस्वामी चरित्र-को विस्तारसे बतलाया। धर्म श्रवण करके व नानाप्रकारसे श्रावकव्रतोंको लेकर राजा सहित सब पुरजन नगरको लौट आये। सात दिन पश्चात् अरहदासकी जिनमती भार्याने सोते समय रात्रिके अंतिम प्रहरमें पाँच मांगलीक स्वप्न देखे (४-५) :—

(१) अत्यंत सुगंधित जंबूफलोंका समूह, (२) समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला धूम्ररहित अग्नि, (३) फूला हुआ व फलभारसे नम्र सुगंधित शालिक्षेत्र; (४) चक्रवाक् हंस आदि पक्षियोंके मधुर कलरवसे युक्त सरोवर एवं (५) नाना मगरमच्छ—कच्छपादिसे भरा हुआ विशाल सागर। इसी समय विद्युन्माली देव जिनमतीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ (४.७)। नौ मास पूर्ण होने पर बसंतकी शुक्ल पंचमीको सोमवारके दिन जब चंद्रमा रोहिणी नक्षत्रमें विद्यमान था, प्रत्यूष कालमें पुत्र जन्म हुआ। बहुत आनंदसे पुत्र जन्मोत्सव मनाया गया। स्वप्नमें जंबूफलोंका प्रथमदर्शन होनेसे पुत्रका नाम जंबूस्वामी रखा गया (४-८)। उचित समयपर बालककी शिक्षा-दीक्षा हुई और उसके रूप (४-९) व गुणोंकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी (४-१०)। जहाँ भी वह जाता नगरकी नारियाँ उसे देखकर अपनी सब सुध-बुध खो बैठतीं और कामबाणोंसे पीड़ित हो जातीं (४-११)।

अरहदासके चार धनाढ्य-बालमित्रोंने बचपनमें खेल-खेलमें की हुई प्रतिज्ञानुसार अपनी अपनी चार कन्याओंको (जो पूर्वभवमें विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ थी), जिन्हें सब प्रकारकी स्त्रीजनोचित विद्याओं व कलाकौशलकी शिक्षा दी गयी थी (४-१२), जो जन्मसे ही अद्वितीय सुंदरियाँ थीं, और दिन-दिन पूर्ण यौवन (४-१३-१४) को प्राप्त हो रही थीं, अरहदाससे जंबूस्वामीके लिए वधू रूपमें स्वीकार करनेका अनुरोध किया। जिनमतीकी अनुमति लेकर अरहदासने इस प्रस्तावको सहर्ष स्वीकार किया (४-१४)। पाँचों श्रेष्ठियोंके घरोंमें विवाहकी पूरी तैयारियाँ होने लगीं (४-१५)। इतनेमें बसंत आ पहुँचा (४-१५)। नगरके स्त्री-पुरुष युगलोंके साथ राजा नगरसे निकला और उपवनमें पहुँचा (४-१६)। वहाँ यथेच्छ उद्यान क्रीड़ा की गयी (४-१७)। जंबूस्वामीने भी उन्मुक्त भावसे कामिनियोंके साथ हास-परिहास किया (४-१८)। पश्चात् सबने देर तक जलक्रीड़ा की (४-१९)। जलक्रीड़ा समाप्त करके जब सब लोग नगरमें आनेकी तैयारी कर रहे थे (४-२०) कि राजाका विषमसंग्रामशूर नामक पट्टहाथी बंधन तुड़ाकर भाग निकला, और उसने नगर व उपवनमें सर्वत्र मृत्यु एवं विनाशका भयावह दृश्य उपस्थित कर दिया (४-२०-२१)। उसे कोई वशमें नहीं कर सका। जंबूस्वामीने सरलतासे उसपर विजय प्राप्त कर ली (४.२२)। इसपर राजाने बहुत प्रकारसे जंबूस्वामीकी प्रशंसा की। (संधि–४)।

विविध प्रकारसे जंबूस्वामीका सम्मानादि करके राजाने उसके साथ नगरमें प्रवेश किया और अपनी राजसभा लगायी (५.१)। एक दिन जब राजा जंबूस्वामीके साथ सभामें बैठा था, तो गगनगति नामका विद्याधर अपने विमानसे राजसभामें आकर उतरा, और प्रणाम करके निवेदन करने लगा—देव, मैं सहस्र-शृंग नामक पर्वतपर रहनेवाला गगनगति नामका विद्याधर हूँ। मलयाचलमें केरल नामकी नगरीके राजा मृगांकसे मालतीलता नामक मेरी बहन ब्याही गयी है। उनकी विलासवती नामकी अपूर्व सुंदरी कन्या है। मुनिके कथनानुसार उसका परिणय आपसे किया जाना है (५.२) उधर हंसद्वीपके रत्नचूल नामक प्रचंड बली विद्याधर राजाने बलपूर्वक उस कन्याको प्राप्त करने हेतु अपनी सेनाके साथ केरल नगरीको चारों ओरसे घेर लिया है, तथा वहाँ बड़ा विनाश कर रहा है। अब अन्य कोई उपाय न देख, क्षात्रधर्मकी रक्षा हेतु अपने सीमित सैन्य साधनके साथ मृगांक राजा कलके दिन नगरसे बाहर निकलकर रत्नशेखरसे

युद्ध करेगा, और सर्वनाशको प्राप्त होगा (५.३)। मैं अपना धर्म निभाने वहीं जा रहा हूँ। रास्तेमें आपकी सभा देखकर प्रासंगिक समाचार आपसे निवेदन कर दिया है। उसके इतना कहने पर जंबूस्वामी राजाकी अनुज्ञा लेकर, उसके साथ विमानमें बैठकर अकेले ही केरल नगरीकी ओर चल दिये। इधर राजाने भी अपने सेनापतियोंको केरल नगरीकी ओर प्रयाण करनेके लिए तैयार होनेका आदेश दिया (५.५)। प्रयाणकी तैयारियाँ की गयीं व राजाने सेनाके साथ प्रस्थान किया (५.६)। रास्तेमें विन्ध्याटवी पड़ी (५.८)। उसे पार कर राजाने विन्ध्यप्रदेशमें प्रवेश किया (५.९)। आगे रेवा नदी पड़ी और उसके तट पर कुरल पर्वतके निकट राजाने सेना सहित पड़ाव डाल लिया (५.१०)। उधर गगनगति विद्याधरके साथ जंबूस्वामी केरल नगरीमें पहुँचे और नगरके बाहर ही विमानसे उतरकर मृगांक राजाके दूत बनकर रत्नशेखरकी छावनीमें प्रविष्ट हो गये (५.११)। रत्नशेखरकी सभामें पहुँचकर, दूसरेके निमित्त दी हुई कन्याको बलपूर्वक लेनेके कदाग्रहपर उसे बहुत बुरा-भला कहा (५.१२-१३)। इससे रत्नशेखर बहुत क्रुद्ध हो गया और उसने अपने भटोंको जंबूस्वामीको पकड़कर मार डालने की आज्ञा दी। सभास्थलमें ही भयानक युद्ध प्रारंभ हो गया। गगनगतिने जंबूस्वामीको एक दिव्य ढाल व तलवार भेंट की, व स्वयं भी युद्ध करने लगा। स्वामीने अकेले ही नाना प्रकारके पैंतरे बदलते हुए सहस्रों शत्रु भटोंको मार गिराया व उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया (५.१४)। (संधि—५)।

अपने चरोंसे यह सब समाचार पाकर मृगांक राजाने तुरंत अपनी सेनाको युद्धमें चलनेकी तैयारी करनेके आदेश दिये। वीर वधुओंने अपने प्रियतमोंको नाना संदेश दिये (६.३)। सेनाने नगरसे प्रयाण किया (६.४)। दोनों सेनाओंमें भीषण युद्ध हुआ (६.५-६)। संग्रामका भीषण दृश्य (६.७)। भटोंकी अवस्था (६.८)। युद्ध (६.९)। गगनगति और रत्नशेखर विद्याधरमें आकाशमें युद्ध हुआ, उसमें गगनगति घायल हो गया (६.१०-११)। रत्नशेखर आकाशसे नीचे उतरा, और मृगांक राजासे युद्ध करके, उसे परास्त करके बाँधकर ले गया (६.१२-१४)। इससे केरल राजाकी सेना पराभूत भावसे निश्चेष्ट व अधोमुख होकर बैठ रही। (संधि—६)।

छावनीके भीतरसे युद्ध करते हुए बाहर निकलने पर जंबूस्वामीको गगनगतिसे युद्धके सब समाचार ज्ञात हुए, व स्वामीकी प्रेरणासे केरल सेना पुनः युद्धके लिए तत्पर हो गयी। दोनों सेनाएँ पुनः आमने-सामने डट गयीं (७.१-५) फिर वीरोंका परस्पर महान् युद्ध हुआ, व अनेक कायर जन भाग खड़े हुए (७.६)। इधर रत्नशेखरसे सामना होने पर जंबूस्वामीने उसे अपने साथ द्वंद्व युद्धके लिए ललकारा, जिससे व्यर्थ नरसंहार न हो। दोनों सेनाओंको अलग-अलग दूर हटा दिया गया (७.७)। जंबूस्वामी एवं रत्नशेखरमें महाभयानक युद्ध हुआ (७-८१०)। जंबूस्वामीने युद्धमें रत्नशेखरको परास्त करके बाँध लिया, और मृगांक राजाको बंधनसे छुड़ा लिया, तथा मृगांक राजाके अनुरोधसे केरल नगरीको गये। वहाँ जाकर रत्नशेखर विद्याधरको भी बंधन मुक्त कर दिया, व केवल क्षात्रधर्मकी रक्षा हेतु युद्ध करनेके लिए क्षमा माँगी। तत्पश्चात् कुछ दिन केरल नगरीमें रहकर पत्नी व कन्या सहित मृगांक राजा, गगनगति विद्याधर एवं रत्नशेखर विद्याधरादिके अनेक विमानोंके साथ कुमारने मगधकी ओर प्रयाण किया। इन सबके साथ पर्वतके निकट ही ससैन्य श्रेणिक राजासे भेंट हो गयी। राजाने जंबूस्वामी व अन्य सबका समुचित स्वागत किया। गगनगति विद्याधरने सबका परिचय दिया, विलासवती कन्याका राजासे परिणय करा दिया गया। मृगांक व रत्नशेखरमें मैत्री करा दी गयी। सब लोग अपने-अपने स्थानोंको विदा कर दिये गये। श्रेणिक राजाने भी राजगृहकी ओर प्रयाण कर दिया। राजगृह पहुँच कर नगरके बाहर ही उपवनमें सुधर्म स्वामी ५०० मुनियोंके साथ विराजमान दिखाई दिये। राजा व अन्य सबने मुनिकी वंदना की, और जंबूकुमारने भी प्रणाम किया (७.११-१३)। (संधि—७)।

आठवीं संधिके प्रारंभमें कवि विनयपूर्वक निवेदन करता है कि आर्षप्रोक्त कथासे अधिक वसंतक्रीड़ा, हस्तिका उपद्रव, नरेंद्रका प्रस्थान एवं युद्धका वृत्त, यह जो मैंने कहा, उसके लिए गुणीजन मुझे क्षमा करें। इसके पश्चात् कई गाथाओंमें काव्यके लक्षणोंपर प्रकाश डालकर कवि कथासूत्रको आगे बढ़ाता है। सुधर्म

स्वामीको देखकर अपने मनमें अनायास उनके प्रति बड़ा स्नेह उमड़ आनेसे जंबूस्वामीने सुधर्म गणधरसे इसका कारण पूछा। तब सुधर्मस्वामीने भवदत्त-भवदेवके जन्मसे लगाकर दोनोंके पाँच भवोंका वर्णन किया। तू पहले भवदेव था, मैं भवदत्त। तत्पश्चात् दोनों स्वर्गमें एक साथ देव हुए। अनंतर तू शिवकुमार हुआ, मैं सागरचंद्र। इसके पश्चात् फिर दोनों देव हुए। तू विद्युन्माली देवके रूपसे च्युत होकर यहाँ जंबूस्वामी हुआ है; और मैं स्वर्गसे च्युत होकर इसी मगध देशमें संवाहन नामक नगरमें सुप्रतिष्ठ राजा व रुक्मिणी रानीका सुधर्म नामका पुत्र हुआ। एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा सपरिवार महावीर जिनेंद्रके समवशरणमें गया, और भगवान्‌का उपदेश सुनकर वहीं दीक्षित हो गया। सुधर्मकुमारने भी उसी समय पिताके मार्ग-पर अनुगमन किया। पिता भगवान्‌के चतुर्थ गणधर हुए और मैं सुधर्म उनका पाँचवाँ गणधर बना। वही मैं ऋषिसंघके साथ विहार करते हुए यहाँ आया हूँ। तथा वे जो तुम्हारी चार देवियाँ थीं, उन्होंने भी पूर्वजन्मके स्नेहसे बँधे हुए सागरदत्तादि चार श्रेष्ठियोंकी चार अति सुंदर कन्याओंके रूपमें जन्म लिया है। आजसे दसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा (८.१-५)। यह सब इतिवृत्त सुनकर जंबूस्वामीको संसारसे वैराग्य हो गया, और उसने आचार्यसे दीक्षा देनेका अनुरोध किया, व आचार्यके आदेशसे घर जाकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। माता-पिताके अनेक प्रकारसे पुत्रको समझाने व सांसारिक सुख भोगनेके लिए प्रेरित करनेपर जब वह किसी भी प्रकार नहीं माना तो उन्होंने कन्याओंके पिताओंको यह समाचार भिजवाकर अनुरोध कराया कि कन्याओंके लिए अन्य वर देख लिया जाये। कन्याएँ इसके लिए प्रस्तुत नहीं हुईं, व अपने अपूर्व सौंदर्य और काम-चेष्टाओं द्वारा (८.११) जंबूस्वामीको अपने वशमें कर लेनेके विश्वाससे स्वामीको यह समाचार भिजवाया कि स्वामी केवल एक दिनके लिए विवाह कर लें, अगले दिन प्रातः दीक्षा ले लें, तब उन्हें कोई नहीं रोकेगा। स्वामीने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। वणिक् गोत्राचारकी श्रेष्ठ रीतिसे विवाह हुआ (८.१२-१३) विवाहके उपरांत जंबूस्वामी चारों वधुओंके साथ अपने घर आये। इतनेमें सायंकाल हो गया, व थोड़ी देरमें चारों ओर घना अंधेरा छा गया (८.१४)। कुछ देर बाद चंद्रोदय हुआ और स्वामी वधुओं सहित अपने वासगृहमें प्रविष्ट हुए (८.१५)। सब समागत मित्र-स्वजन अपने अपने घरोंको विदा कर दिये गये, वासगृहके द्वार निश्छिद्ररूपसे बंद कर दिये जानेके उपरांत वधुएँ जंबूस्वामीको वशमें करनेके लिए नानाप्रकारकी कामचेष्टाएं करने लगीं (८.१६)। (संधि.८)

नौवीं संधिके आदिमें दो गाथाओंमें पुनः काव्यके कुछ लक्षण कहकर कवि कथाको आगे ले चलता है। वधुओंको उन सब कामचेष्टाओंका जंबूस्वामीपर रंचमात्र भी कोई प्रभाव न पड़ते देखकर वधुओंको बड़ी निराशा हुई, और उन्होंने क्रम क्रमसे जंबूस्वामीपर व्यंग्य करते हुए उसे इंद्रिय सुखोंमें प्रेरित करनेके लिए प्रचलित लोक कथाएँ सुनानी आरंभ कीं। जंबूकुमारने भी प्रत्येक वधूकी कथाके उत्तर स्वरूप, उसके आशयको खंडित करनेवाली उतनी ही कथाएँ कहीं। (इन सब कथाओंके लिए देखिए : प्रस्ता० 'जंबूस्वामी चरितकी अंतर्कथाएँ' एवं मूलका हिंदी अनुवाद ९.४ से ९.११)।

इस प्रकार परस्परमें कथा वार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी। इधर चोरीके हेतु वेश्यावाट (९.१२) में-से निकलकर मिथुनोंकी कामक्रीड़ा—(९.१३) को देखता हुआ विद्युच्चर नामक चोर जंबूकुमार (स्वामी) के घर पहुँचा व भित्तिसे लगकर छिपकर खड़ा हो गया परंतु वर-वधुओंके सारे कथा-संलापको सुनकर उसका चित्त बदल गया। जंबूकुमारकी व्याकुलतासे जागती, बार बार जाती आती माँने उसे देख लिया व पूछा तू कौन है व क्या चाहता है ? विद्युच्चरने अपना परिचय दिया, और माँकी व्याकुलताका कारण पूछा। माँसे सब सुनकर उसने कहा—माँ किसी तरह मुझे भीतर प्रवेश कराओ, तो मैं भी कुमारको समझानेका प्रयत्न करके देखता हूँ। यदि समझ जाये तो ठीक, अन्यथा मैं भी विहान होते ही इसीके साथ तपश्चरणका अनुसरण करूँगा। माँने अपना छोटा भाई कहकर पुत्रकी अनुमति लेकर उसे भीतर प्रवेश कराया। जंबूस्वामीने छद्म मामाका उचित स्वागत अभिनंदन किया, और पूछा कि मामा इतने वर्षों तक आपने कहाँ-कहाँ भ्रमण किया (९.१८)। विद्युच्चरने दक्षिण दिशामें समुद्रसे लगाकर, क्रमशः दक्षिण, पश्चिम, उत्तर व अंतमें पूर्व दिशामें अपने भ्रमण किये हुए सब देशोंके नाम लिये (९.१९)। (संधि-९)।

इसके उपरांत जंबूस्वामीकी स्तुति करके विद्युच्चरने उसे भोगोंकी ओर प्रेरित करनेके लिए भौतिक दर्शनोंके तर्क दिये। स्वामीने युक्तिपूर्वक विद्युच्चरके समस्त तर्कोंका खंडन कर उसे निरुत्तर कर दिया (१०.१-५), और अपने पूर्व जन्मोंका वृत्तांत भी कहा (१०.६)। यह सुनकर विद्युच्चर बोला, यदि किसी तरह तुम्हें पूर्वजन्मोंमें देवसुख प्राप्त हो गया तो बार-बार हृदयेप्सित सुख कहाँसे प्राप्त होंगे। इस संबंधमें विद्युच्चरने उस ऊँटका आख्यान सुनाया जिसने एक बार कहीं मधुका स्वाद लेकर, मधुकी आशामें अन्य कुछ खाना ही छोड़ दिया (१०.७)। इसपर जंबूस्वामीने वणिक्पुत्रकी कथा सुनायी (१०.८)। क्रमशः दोनोंने उत्तर-प्रत्युत्तर स्वरूप बार-बार कथाएँ कहीं। (कथाओंके लिए देखिए आगे, प्रस्तावना—जंबूसामिचरिउकी अंतर्कथाएँ व हिंदी अनुवाद १०.७ से १०.१७) इस समस्त चर्चाके होते-होते विद्युच्चरको भी प्रतिबोध हो गया, और भक्तिपूर्वक जंबूस्वामीकी स्तुति करके स्वयं भी उनके साथ दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की (१०.१८) जंबूस्वामीकी चारों वधुओं व माता-पिताको भी ज्ञान हो गया। ये सारे समाचार मिलनेपर श्रेणिक राजाने बड़े उत्साहसे जंबूस्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। जंबूस्वामी व राजा सहित सब कोई सुधर्मगणधरके पास पहुँचे (१०.१९)। जंबूस्वामीने आचार्यसे दीक्षा ग्रहण की व एक एक कर समस्त वस्त्राभूषणोंको उतार फेंका, तथा सिरसे केश लोंच कर लिया। विद्युच्चरने भी दीक्षा ले ली। जंबूस्वामीके पिता अरहदास भी निर्ग्रंथ साधु हो गये। उनकी माता व चारों वधुएँ भी आर्यिकाएँ हो गयीं, व कठोर तप करने लगीं। जंबूस्वामी गुरुके साथ रहकर बारह प्रकारका महान् तप करने लगे (१०.२०-२२)।

अठारह वर्ष बीतनेपर माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल विपुलगिरिके शिखरसे सुधर्मस्वामी निर्वाणको प्राप्त हुए (१०.२३)। उसी दिन जंबूस्वामीको भी कैवल्य प्राप्त हुआ। देवताओंने बड़ा उत्सव मनाया। इसके पश्चात् जंबू अठारह वर्षों तक धर्मोपदेश करते हुए, अंतमें विपुलगिरिके शिखरपर निर्वाणको प्राप्त हुए। पिता-माता व चारों वधुएँ तप करके समाधि एवं सल्लेखनापूर्वक मरकर विभिन्न स्वर्गोंमें देव हुए (१०.२४)।

जंबूस्वामीके निर्वाणगमनके उपरांत विद्युच्चर मुनिसंघके साथ विहार करते-करते ताम्रलिप्ति पधारे व नगरके बाहर ही ठहर गये। वहाँ भूत-पिशाचोंने समस्त संघपर महान् उपसर्ग किया। एक विद्युच्चर महामुनिको छोड़कर अन्य कोई मुनि उस उपसर्गको सहन नहीं कर सके और योग-ध्यान छोड़कर भाग निकले। उस महान् उपसर्गमें विद्युच्चर मुनि बिलकुल अडिग व निर्भय रहे (१०.२५-२६) (संधि-१०)।

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग बढ़ता गया, वैसे-वैसे मुनि अनित्य, अशरण, अशुचित्व आदि बारह भावनाओंका चिंतन करते हुए कर्मोंको काटने लगे। दशविध धर्मोंका ध्यान व अनुप्रेक्षाओंकी भावना करते हुए, परीषहोंके वशीभूत न होकर, समाधिपूर्वक मरकर विद्युच्चर महामुनि सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुए। वहाँ आयुष्य पूरा कर वे एक ही बार मनुष्य जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करेंगे। (संधि-११)।

कथावस्तुका महाकाव्यात्मक गठन एवं मौलिकता

महाकवि वीरने जंबूस्वामीके पौराणिक आख्यानको महाकाव्यकी कथावस्तुके रूपमें ग्रथित किया है। यही कारण है कि मूल आख्यान और अंतर्कथाओंका गठन बहुत सुदृढ़ रूपमें हुआ है। इस काव्यमें प्रयुक्त अंतर्कथाएँ मूलकथाधाराके छोटे-छोटे जलस्रोतोंके समान हैं, जो आगे चलकर मूलकथासे मिलकर उसकी धाराको पृथुलतर, गंभीरतर और विशालतर बना देते हैं। लघु कथाएं स्वतंत्र होते हुए भी मूलकथासे संबद्ध हैं। सभी कथाओंसे नायकके फलागमपर प्रभाव पड़ता है। कथावस्तुका आरंभ एक दिव्य विभूतिके दर्शनसे होता है। श्रेणिककी दृष्टि आकाश मार्गसे आये हुए विद्युन्माली देवपर पड़ती है और वे उसके सौंदर्य, ऐश्वर्य, एवं प्रभावसे आकृष्ट हो उसका इतिवृत्त जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करते हैं। इस प्रकार यद्यपि कथावस्तुका आरंभ शुद्ध-पौराणिक रूपमें हुआ है, वक्ता और श्रोताके रूपमें [illegible] हुई है, तो भी कविने इतिवृत्तके साथ वर्णन-व्यापारोंका समावेश कर कथाको महाकाव्योचित गरिमा प्रदान

की है। कविने पौराणिक मान्यताओंको पुराणके रूपमें ही प्रस्तुत किया है, पर कथा सानुबंध होनेसे उसमें महाकाव्यत्व आ गया है।

महाकवि वीरके पूर्व जंबूस्वामीचरितकी कथावस्तु संघदासगणिने वसुदेवहिंडीमें कथाकी उत्पत्ति नामक प्रथम प्रकरणमें, गुणभद्रने उत्तरपुराणके छिहत्तरवें पर्वमें तथा कवि गुणपालने गद्य-पद्य मिश्रित शैलीमें रचित प्राकृत जंबूचरियंमें ग्रथित की है। पुष्पदंतने अपभ्रंश महापुराणके उत्तरखंडमें सौवीं संधिमें 'जंबूसामि-विवसवण्णणं'में पूर्ण रूपसे गुणभद्रका ही अनुकरण किया है। इन आचार्योंने नायकको प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित कर तदनंतर उसकी भव-परंपरा प्रस्तुत की है। पर वीर कविने विद्युन्माली देवके चमत्कारसे आकृष्ट हो श्रेणिक-द्वारा उसके पूर्वभवोंको जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त करायी है। अतः कविने प्रारंभमें ही यह दिखलानेका सफल प्रयास किया है कि सर्वसाधारण विषयासक्त मनुष्य भी साधनाके बलसे भगवत्पदको प्राप्त कर सकता है। आत्मा परमात्मा है, पर उसकी यह शक्ति अप्रकटित है। इसे प्रकाशमें लानेके लिए पुरुषार्थ अपेक्षित है। इस तथ्यको मनमें निहित रखकर ही कविने नायकका उत्तरोत्तर विकास दिखलाया है। अतः आध्यात्मिक साधनाकी व्यंजना उत्तरोत्तर वर्द्धमान है। कथावस्तु आरंभसे ही पाठक और श्रोताके मनमें जिज्ञासाके साथ यह द्वंद्व उत्पन्न कर देती है कि भवदेवकी भूमिकामें जंबूस्वामी किस प्रकार आत्मोद्धारके लिए प्रयास करता है।

कविने 'विषयोंसे ठुकराया हुआ व्यक्ति आत्मसाधनाकी ओर अग्रसर होता है,' इस तथ्यकी यथार्थ पुष्टि की है।[1] हिंदीके महाकवि तुलसीदासका जीवन भी इसी तथ्यका एक और उत्कृष्ट उदाहरण है। कथागठन-में भी कविने अपनी मौलिकताका परिचय दिया है। संघदासगणि, गुणभद्र एवं गुणपाल कथाकारके रूपमें हमारे सामने आते हैं, जबकि वीर कवि एक महाकाव्य रचयिताके रूपमें। कथाकार केवल कथातत्त्वोंके निर्वाहका ध्यान रखता है। जबकि वीर कविने वस्तुव्यापार-वर्णनों तथा यथास्थान छोटी-बड़ी अनेक अवांतर कथाओंका समावेश करके 'जंबूसामिचरिउ'में कथाका विकास महाकाव्योचित आयामके मध्य किया है। कविकी मौलिकता इस बातमें भी है कि उसने अपने नायकका प्रतिद्वंद्वी नायक भी कल्पित किया, यतः महाकाव्यमें प्रतिनायकका रहना आवश्यक है। विद्याधर रत्नशेखरका आख्यान वसुदेवहिंडी, उत्तरपुराण तथा प्राकृत जंबूचरियं इन तीनों ही पूर्ववर्ती ग्रंथोंमें नहीं है। कविने कन्या-प्राप्ति, विरक्त नायकके जीवनमें न दिखलाकर नायकके स्वामी श्रेणिकके जीवनमें दिखलायी है, और कन्याके अधिकारी श्रेणिकको युद्धमें न भेजकर नायक जंबूस्वामीको युद्धमें भेजा है। अतः नायकके शौर्य, पराक्रम, साहस एवं युद्धकला प्रवीणता दिखलानेका कविको पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ, और उसने इस अवसरको निर्माण कर उससे पूर्ण लाभ भी उठाया। नायकके चरित्रके इन गुणोंका उद्घाटन किये बिना कविकी इस रचनामें महाकाव्यत्व नहीं आ सकता था। रत्नशेखर-विषयक आख्यानकी सृष्टि करके कवि अपनी कृतिमें महाकाव्यके संपूर्ण तत्त्वोंका यथोचित समावेश कर, अपने काव्यको महाकाव्योचित गरिमा प्रदान करते हुए अपनी मौलिक सूझ-बूझका परिचय देनेमें पूर्ण रूपसे सफल हुआ।

४. जंबूस्वामी : एक ऐतिहासिक कथापुरुष, कथाकी दीर्घ परंपरा और मूलस्रोत

जैन साहित्यकी ऐतिहासिक परंपरा भ० महावीरसे प्रारंभ होती है, जिनका निर्वाणकाल भारतीय इतिहास, साहित्य एवं संस्कृतिके स्वदेशी एवं विदेशी लगभग सभी विद्वान् अब एक मतसे ५२७ ई० पू० अथवा ४७० वि० पूर्व मानते हैं।[2]

१. नागवसु द्वारा भवदेवको बोध प्रदान करनेका वृत्त उत्तरा० २१ में राजुल और रथनेमिके आख्यानसे तुलनीय है।

२. डॉ० ही० ला० जैन भा० सं० में जैन धर्मका योगदान पृ० २६–३९; पं० कैलाशचन्द्रशास्त्री : जैन सा० और इति० की पूर्वपीठिका पृ० २८७–३१० आदि ग्रन्थ।

भ० महावीरके पश्चात् उनके प्रमुख गणधर इंद्रभूति गौतमका नाम आता है। वि० पू० ४७० में कार्तिक कृष्ण अमावस्याको प्रातःकाल महावीरका निर्वाण हुआ; उसी दिन संध्याकालमें गौतमको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। बारह वर्ष तक केवली रूपसे धर्मोपदेश देते रहकर जिस दिन गौतम निर्वाणको प्राप्त हुए, उसी दिन महावीरके दूसरे प्रधान शिष्य सुधर्माको कैवल्यकी प्राप्ति हुई और वे बारह वर्षों तक संघके प्रधान रूपसे धर्मोपदेश देते हुए विचरण कर निर्वाणको प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्माके प्रमुख शिष्य जंबू केवली पदको प्राप्त हुए, तथा जैन श्रमणसंघके प्रधानाचार्य अथवा कुलपति बने और अड़तीस वर्षों तक जैनधर्म व श्रुतका प्रचार-प्रसार करते रहकर वि० पू० ४०८ (ई० पू० ४६५)में निर्वाणगामी हुए। ये ही जंबू प्रस्तुत चरितके नायक जंबूस्वामी हैं। जैन परंपरामें इन्हें अंतिम केवली माना जाता है, तथा ये एवं इनकी शिष्य-संततिके द्वारा ही भ० महावीरके उपदेशोंकी अर्द्धमागधी जैनागमके रूपमें सुरक्षा हो सकी यह ऐतिहासिक सत्य है। इस कारण जैन परंपरामें जंबूस्वामीका स्थान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। गौतमको केवलज्ञान होनेसे लगाकर जंबूस्वामीको मोक्ष होने तक वीर निर्वाणके १२ + १२ + ३८ = ६२ (या श्वे० परंपरानुसार १२ + ८ + ४४ = ६४ वर्ष) पूर्ण होते हैं। जंबूस्वामीके पश्चात् दिगंबर परंपरानुसार विष्णु या नंदी १४ वर्ष, नंदिमित्र १६ वर्ष, अपराजित २२ वर्ष, गोवर्द्धन १९ वर्ष और भद्रबाहु २९ वर्ष, इस प्रकार आगामी १४ + १६ + २२ + १९ + २९ = १०० सौ वर्षोंकी अवधिमें ये पाँच श्रुतकेवली हुए, और कुल मिलाकर वीर निर्वाणके १६२ वर्ष पूरे हुए।

श्वेतांबर गुरु पट्टावलियोंके अनुसार वीर निर्वाणके बारह वर्ष पश्चात् इंद्रभूति (गौतम गोत्र) का निर्वाण हुआ और इनके आठ वर्ष, तथा वीर नि० के बीस वर्ष पश्चात् सुधर्मा (अग्नि वेश्यायन गोत्र) और सुधर्माके निर्वाण जानेके उपरांत चवालीस वर्षों तक केवलज्ञानी रूपसे धर्मोपदेश देते हुए विचरण करते रहकर जंबूस्वामी (काश्यप गोत्र) मोक्षको गये। इस प्रकार वी० नि० के चौंसठ वर्षों तक तीन केवलज्ञानियोंकी यह परंपरा अविच्छिन्न रूपसे चली। जंबूस्वामीके बाद इनके समकालीन गुरुबंधु प्रभव, जिन्हें दिग० आम्नायके साहित्यमें विद्युच्चर नामसे जाना जाता है, और जो हमारे चरित काव्यके एक अन्य प्रमुख पात्र हैं, वे ११ वर्ष तक संघके प्रधान रहे; इनके उपरांत शय्यंभव २३ वर्ष, यशोभद्र ५० वर्ष, संभूतिविजय ८ वर्ष और भद्रबाहु १४ वर्ष = ६४ + ११ + २३ + ५० + ८ + १४ अर्थात् वी० नि० १७० वर्ष।

उपर्युक्त दोनों गुरु-परंपराओंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि जंबूस्वामीके निर्वाणकाल—अर्थात् वी० नि०के ६२ या ६४ वर्षों तक दोनोंकी गुरु शिष्य वंशावली एक समान है। जंबूके पश्चात्से इनमें स्पष्ट भेद पड़ जाता है। दिग० परंपरामें जंबूके उपरांत विष्णु या नंदिका नाम आता है, तथा गुरु-पट्टावलीमें कहीं भी विद्युच्चर (प्रभव) का नाम नहीं आता; जबकि श्वे० परंपरामें प्रभवके ११ वर्ष तक संघप्रधान रहनेका उल्लेख है। आगेके अन्य नाम भी भिन्न हैं। गुरु-शिष्य वंशानुक्रमके इस मतभेदमें पड़ना प्रस्तुत प्रसंगमें आवश्यक नहीं है। अतः जंबूस्वामी तककी मतभेद रहित वंशावलीको स्वीकार करके जंबूस्वामीके जीवन-चरितके विषयमें ऐतिहासिक दृष्टिसे यहाँ कुछ विचार किया गया है।

प्रस्तुत काव्यकृतिमें वीर कविने कहा है[1] कि जंबूस्वामीके दीक्षा लेनेके अठारह वर्षोपरान्त माघ शुक्ल सप्तमीके दिन प्रातःकाल सुधर्माको मोक्ष हुआ, और उसी दिन जंबूको केवलज्ञान; तथा सुधर्माके निर्वाणके अठारह वर्ष व्यतीत होनेपर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ। ये दोनों मिलाकर (१८ + १८) छत्तीस वर्ष पूरे हुए। अब श्वे० एवं दिग० दोनों संप्रदायोंकी ऐतिहासिक गुरु-परंपरानुसार यदि वी० नि० के ६२ या ६४ वर्ष पीछे जंबूका निर्वाण माना जाये तो इस रीतिसे वीर कविके उपर्युक्त उल्लेखानुसार वी० नि० से २६ या २८ वर्ष पीछे गौतमका निर्वाण मानना होगा, जो अबतक उपलब्ध अन्य सभी जैन साहित्यिक-ऐतिहासिक प्रमाणोंसे सर्वथा विपरीत है। तिलोयपण्णत्तिके रचयिता यतिवृषभाचार्य (दूसरी-तीसरी शती ई०) शौरसेनी षट्खंडागमके धवला टीकाकार वीरसेन, और गोम्मटसारके रचयिता नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती

---

१. जं० सा० च० १०,२३-२४।

(९ श० ई०) एवं उत्तरपुराण (ई० ८९८ से पूर्व) के कर्त्ता गुणभद्र तथा अपभ्रंश महापुराण (या तिसट्ठि-महापुरिसगुणालंकारु) के प्रणेता महाकवि पुष्पदंत इन सभीने वी० नि० के १२ वर्ष पश्चात् गौतम, इनके १२ वर्षोपरान्त सुधर्मा, एवं सुधर्माके ४० वर्ष (तिलोयपण्णत्तिके अनुसार ३८ वर्ष) पीछे जंबूस्वामीको मोक्ष प्राप्त होना एक मतसे मान्य किया है।

अब यदि हम अन्य उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीकी ओर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि म० बुद्धका निर्वाण ५४४ ई० पू० में हुआ।[1] बुद्धके निर्वाणसे ८ वर्ष पहले ५५२ ई० पू० में अजातशत्रु गद्दीपर बैठा और लगभग उसी समय राजा श्रेणिक बिंबिसारकी मृत्यु हुई।[2] जंबूस्वामीके जन्मके संबंधमें स्वयं म० महावीरसे अथवा कहिए गौतम गणधरसे राजा श्रेणिक बिंबिसारने प्रश्न किये, ऐसा उल्लेख सभी जैन साहित्यकारोंने किया है। तदनुसार जंबूका जन्म श्रेणिकके स्वर्गवाससे कुछ काल पूर्व अथवा उसीके आसपास लगभग ५५२-३ ई० पू० में होना चाहिए। और ऐसा होना असंभव भी नहीं है कि जंबूस्वामीकी आयु अस्सी वर्ष न होकर उससे अधिक नब्बे वर्ष रही हो। वीर कविने और उसके अनुसार ब्रह्म जिनदास (१३ श० वि०) तथा राजमल्ल (१७ श० वि०) ने यह भी कहा है कि जंबूस्वामीने राजा श्रेणिक बिंबिसारके राज्यकालमें ही दीक्षा अंगीकार की थी, और राजाने स्वयं उनका दीक्षोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया था। इस कथनपर विचार करनेसे जंबूका जन्म ५५२ ई० पू० में श्रेणिककी मृत्युके कमसे कम १६, १७ वर्ष पूर्व अर्थात् ई० पू० ५६८-६९ में मानना पड़ेगा, और ऐसा माननेसे जंबूका आयुष्य ४६३ ई० पू० से ५६८ ई० पू० तक लगभग १०५ वर्षका, तथा गौतम इंद्रभूति, सुधर्मा एवं जंबू तीनोंके केवलज्ञान कालके संबंधमें श्वे० तथा दिग० दोनों संप्रदायों-द्वारा स्वीकृत कालक्रमका खंडन करना होगा, जिसके लिए हमारे पास कोई पुष्ट प्रमाण नहीं हैं। अतः वीर कविका यह कथन ऐतिहासिक दृष्टिसे समीचीन प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार वीरके अनुसार सुधर्मा और जंबूका केवली रूपमें रहनेका समय कुल १८, १८ वर्ष माननेमें भी ऐतिहासिक साक्ष्य विरुद्ध है, यह ऊपर ही कहा गया है। संभव है वीर कविके समक्ष ऐसी कोई गुरु-पट्टावलियाँ रही हों, जिनमें गुरु-वंशावलीके संबंधमें कोई ऐसे उल्लेख रहे हों, पर वर्तमानमें उपलब्ध ऐतिहासिक-सामग्रीसे संग्रहीत तथ्योंसे यह सर्वथा विपरीत है।[3] इसी प्रसंगमें श्वे० आम्नायमें प्राप्य गुरु-पट्टावलियोंमें[4] गौतम, सुधर्मा एवं जंबूके संबंधमें जो कुछ जानकारी उपलब्ध होती है, उसपर विचार कर लेना उचित है। इनके अनुसार इंद्रभूति गौतमका जन्म ई० पू० ६०७ में हुआ। वे ५० वर्ष गृहस्थ रहे तथा ३० वर्ष साधु और ई० पू० ५२७ में म० महावीरके निर्वाणके दिनसे ई० पू० ५१५ तक १२ वर्ष केवली रहकर निर्वाणको प्राप्त हुए। सुधर्माका जन्म भी ६०७ ई० पू० हुआ। ये भी ५० वर्ष गृहस्थ रहे, ३० वर्ष साधु, १२ वर्ष तक गौतमके केवलज्ञान कालमें संघ प्रधान तथा ८ वर्ष (दिग० परंपरानुसार १० वर्ष) केवली; इस प्रकार सौ वर्षकी आयुमें लगभग ५०७ ई० पू० इनका निर्वाण हुआ। जंबूस्वामीका जन्म ५४३ ई० पू०; दीक्षा १६ वर्षकी अवस्थामें म० महावीरके निर्वाणसे कुछ पीछे ५२७ ई० पू०; केवलज्ञान ५०७ ई०

---

१. म० बुद्धके निर्वाणकालके संबंधमें भी बहुत मतभेद है, तथापि अब सामान्य रूपसे सभी विद्वान् यह स्वीकार करते हैं कि म० बुद्धका निर्वाण म० महावीरके निर्वाणसे १६ वर्ष पहले लगभग ५४४ ई० पू० में हुआ; द्रष्टव्य : बौद्धधर्मके २५०० वर्ष।

२. पं० कै० च० शास्त्री : जैन सा० इति० पूर्वपीठिका पृ० २०३-२११।

३. जंबूके जन्मके संबंधमें महाकवि-पुष्पदंतने लिखा है कि जिस रात जंबू गर्भमें आयेंगे, उसी रात म० महावीरका निर्वाण होगा (म० पु० १००-२)। तदनुसार जंबूस्वामीका जन्म वीर निर्वाणके एक वर्ष पश्चात् ई० पू० ५२६ में मानना होगा। महाकवि पुष्पदंतका यह कथन भी अन्य किसी ऐतिहासिक उल्लेखसे समर्थित न होनेसे माननीय नहीं है।

४. जैन सत्यप्रकाश वर्ष ७, अंक १-२ पृ० ४९-७१ : मुनि न्यायविजयजीका 'गुरु-परंपरा' नामक लेख।

पू० तथा निर्वाण ४६३ ई० पू० । जंबूस्वामीके जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान एवं मोक्ष कालके संबंधमें अद्यावधि उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्रीके आधारपर यह मत ही सबसे अधिक समीचीन है।

उपर्युक्त रीतिसे जंबूस्वामीके जीवनकालके संबंधमें चर्चा करनेके उपरांत अब हमें उनके जीवन चरित विषयक प्राचीनतम उपलब्ध सामग्री, कथाकी पूर्व परंपरा एवं मूलस्रोतोंपर विचार करना है। इस विषयमें हमारा ध्यान सर्वप्रथम अर्द्धमागधी जैनागमोंपर जाता है। जैन संप्रदायकी इस पुरातन पवित्र साहित्य संपत्तिका अवलोकन करनेसे हमें जंबूस्वामीके संबंधमें इतनी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं कि वे महावीर स्वामीके पाँचवें गणधर अग्निवेश्यायन गोत्रीय आर्य सुधर्मा (सुधर्मस्वामी) स्थविरके प्रधान शिष्य थे, और कश्यप गोत्रके थे। संघमें दीक्षा लेनेके उपरांत इन्होंने आर्य सुधर्मासे क्रमशः एक-एक जैनागमको कहनेका अनुरोध किया, व आर्यसुधर्माने जैसा भ० महावीरके मुखसे सुना था, तदनुसार जंबूको एक-एक आगम कहकर सुनाया।[1] स्थान-स्थानपर जंबूस्वामीने श्रमण भ० महावीरके धर्म व सिद्धांतके संबंधमें भी अनेक प्रश्न किये और सुधर्माने उनका उत्तर दिया।[2] इस प्रकार समस्त जैनश्रुत गुरु-शिष्य परंपरासे भ० महावीरसे आर्य सुधर्माको, सुधर्मासे आर्य जंबूको एवं जंबूसे उनकी शिष्य संततिको प्राप्त हुआ। जंबूस्वामीके जीवनके संबंधमें इससे अधिक सामग्री आगम साहित्यसे प्राप्त नहीं होती।

आगमिक परंपराके अध्ययनके उपरांत कालक्रमसे यतिवृषभाचार्य (दूसरी तीसरी शती ई०) कृत तिलोय-पण्णत्तिका नाम आता है, जिसमें जैन दृष्टिसे त्रेसठ पौराणिक महापुरुषों [२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव (नारायण), ९ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण)] के जीवनचरित अथवा जैन महापुराणों व चरितग्रंथोंकी सामग्री बीज रूपमें नामावलियोंके रूपमें प्राप्त है, जिनमें माता-पिता, वंश, जन्मस्थान, निर्वाणस्थान व महापुरुषोंके जीवनसे संबद्ध प्रमुख व्यक्तियों, स्थानों व घटनाओंके नाम मात्र उल्लिखित हैं। परंतु जंबूस्वामीके संबंधमें इस ग्रंथमें केवल इतनी ही संक्षिप्त सूचना उपलब्ध होती है कि जिस दिन भ० महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधरको केवलज्ञान प्राप्त हुआ। पुनः गौतमके सिद्ध होनेपर उनके पश्चात् सुधर्मस्वामी केवली हुए।[3] सुधर्मस्वामीके मुक्त होनेपर जंबूस्वामी केवली हुए। पश्चात् जंबूस्वामीके भी मोक्षको प्राप्त होनेपर फिर कोई अनुबद्ध केवली नहीं रहे।[4] गौतमादिक केवलियोंके धर्म-प्रवर्तनकालका प्रमाण पिंड (एकत्र) रूपसे बासठ वर्ष है (१२ + १२ + ३८ = ६२)।[5]

तिलोयपण्णत्तिके पश्चात् जंबूस्वामीके जीवनचरितकी दृष्टिसे सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ संघदास गणि (५ वीं-छठी शती ई०) कृत वसुदेव-हिंडी है, जो न केवल प्राचीन ही है, बल्कि पर्याप्त विशद भी है, और जिसे पीछेके समस्त जंबूचरितके रचयिता कवियों, लेखकोंका प्रमुख आधार ग्रंथ बननेका गौरव प्राप्त है।

---

१. आगमोंमें जंबूस्वामी विषयक उल्लेखोंके लिए देखें: आया० १.१.१; सूय० १.१; २.१.१; २.३.४३; २.४.६३ और २.७.८१; ठाण० १.१; समवाय० १.१; भगवती० १.१.४; नाया० १.४; ५.३१-३३; उवासग० १.१ आदि; अंतगड०, अणुत्तर० एवं विवाग० के अध्ययनोंका प्रारंभ व अंत; पण्ह० वाग० में पाँच आस्रवद्वार, पाँच संवरद्वार आदि प्रश्नोंका प्रकरण; नंदी० गाथा २२; निशीथ चू० २, पृ० ३६०; कल्पसूत्र-विनयविजय पृ० २४९; कल्पसूत्र-धर्मविजय पृ० ११२; कल्पसूत्र-स्थविरावलीचरित ५.५–७; निरयावलिया १.१; तित्थोगालिय ६९८ ff; व्यवहार भाष्य १०,६९९; दशवैका० चू० पृ० ६।

२. देखिए सूय० ३.१.१-२; ५.२.१; ६.१.१–२; ८.१.१; ९.१.१, ११.१.१-३।

३. तिलोयपण्णत्ती ४.१४७६।

४. वही ४.१४७७।

५. वही ४.१४७८. इससे अगली गाथामें एक और महत्त्वपूर्ण उल्लेख है कि केवलज्ञानियोंमें अंतिम श्रीधर कुंडलगिरिसे सिद्ध हुए (४.१४७९)।

इसके संबंधमें विद्वानोंका यह मत है कि वसुदेव हिंडी[1] गुणाढ्य कृत पैशाची बृहत्कथाका सबसे प्रामाणिक जैन रूपांतर है।[2] भाषाकी अपेक्षा भी यह गुणाढ्यकी पैशाची बृहत्कथाके सबसे अधिक निकट है।[3]

वसुदेव-हिंडोके कथाकी उत्पत्ति[4] नामक प्रथम अधिकारमें मंगलाचरणके उपरांत जंबूस्वामीकी कथा इस प्रकार प्रारंभ होती है—प्रथमतः सुधर्मास्वामीने जंबूस्वामीको प्रथमानुयोग ग्रंथमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती तथा दशार वंशके व्याख्यानके प्रसंगमें आये हुए वसुदेवचरितको कहा था। अतः वसुदेवचरित प्रारंभ करनेसे पूर्व जंबूस्वामी तथा उनके शिष्य प्रभवकी उत्पत्तिकी कथा कहनी चाहिए। यह कथा इस प्रकार है :

मगध देशके राजगृह नामक नगरमें श्रेणिक नामका राजा था, व चेलना रानी। इनका कूणिक नामक पुत्र था। इसी राजगृहमें ऋषभदत्त नामक सेठ था, जिसकी धारिणी नामक पत्नी थी। एक बार वह अर्द्ध-जाग्रत् अवस्थामें निम्न पाँच स्वप्न देखकर जाग उठी—(१) धूम्ररहित अग्नि (२) पद्मसरोवर (३) फलभारसे नम्र शालिक्षेत्र (४) धवल मेघके समान श्वेत व उद्धत चतुर्दंतयुक्त हाथी, एवं (५) वर्ण-गंध व रसपूर्ण जंबूफल। उसी रात्रिको स्वर्गसे च्युत होकर विद्युन्माली देवका जीव धारिणीके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। नवमास पूर्ण होनेपर बालकका जन्म हुआ, एवं बालकके बड़े होनेके साथ-साथ उसके रूप व गुणोंकी ख्याति सब ओर फैलती गयी।

उसी कालमें सुधर्मास्वामी राजगृहके गुणशील नामक चैत्यमें संघ सहित पधारे। जंबूस्वामी सब लोगोंके साथ आर्य सुधर्माके दर्शनोंको गये। आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर जंबूको वैराग्य हो गया, और दीक्षाके लिए माता-पिताकी अनुज्ञा लेने हेतु घरकी ओर चले। नगरके एक द्वारपर भीड़ देखकर सारथीको रथ घुमाकर दूसरे द्वारसे चलनेको कहा। वहाँ शत्रु सैनिकोंके घातके लिए शिला-शतघ्नी आदि शस्त्रोंको डोरसे लटकते हुए देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि अचानक कोई शस्त्र ऊपर आकर गिरे तो बिना व्रत लिये ही मेरी मृत्यु होगी। यह विचार मनमें आते ही जंबू रथ लौटाकर पुनः आर्य सुधर्माके पास गये, और आजन्म ब्रह्मचर्यका व्रत लेकर घर आये। आकर माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति माँगी। तब माता-पिताने कहा कि धर्म श्रवण सब कोई करते हैं, पर कोई वैराग्य तो नहीं लेता। इसपर जंबूस्वामीने कहा—धर्म श्रवण करनेपर किसीको तत्त्वार्थोंका निश्चय देरमें होता है, और किसीको तुरंत हो जाता है, तथा वह धर्मके मार्गपर लग जाता है। इस संबंधमें जंबूस्वामीने उन पाँच मित्रोंकी कथा सुनायी जो एक बार उद्यानमें गये। वहाँ तीर्थंकरका दर्शन कर व उनका उपदेश सुनकर परस्पर विचार-विनिमय करके वहींके वहीं दीक्षित हो गये, तथा अंतमें केवली होकर मोक्ष गये। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेको अनुमति दें। फिर भी माता-पिताने जंबूको विपुल संपत्तिसे दुर्लभ विषयभोग भोगकर पीछे दीक्षा लेनेको कहा। इसपर जंबूस्वामीने उस वानरकी कथा कही जो अपनी विषय लोलुपताके कारण अंतमें शिलाजीतमें चिपककर दुःखद अंतको प्राप्त हुआ। नानाप्रकारसे समझानेपर भी जब जंबूस्वामी नहीं माने तो माताने समुद्रश्री, सिंधुमती आदि उन आठ कन्याओंके माता-पिताके पास यह समाचार भिजवाया जिनका बहुत पहलेसे ही जंबूके साथ वाग्दान किया जा चुका था। ऐसा जानकर कन्याओंने कहा जंबूस्वामीसे हमारा वाग्दान हो चुका है, अतः जो मार्ग

---

१. प्राकृतमें हिंडधातुका अर्थ है चलना, फिरना, परिभ्रमण करना, अतः वसुदेव-हिंडीका अर्थ हुआ 'वसुदेव (वासुदेव कृष्णके पिता) का परिभ्रमण (वृत्तांत)।' इस ग्रंथमें वसुदेवके गृह त्यागकर चले जानेके उपरांत अनेक वर्षोंके परिभ्रमण व नाना कन्याओंसे परिणयके वृत्तांत एवं अनुभव कल्पना रंजित साहित्यिक शैलीमें वर्णित हैं।

२. वसुदेव हिंडी प्र० खंड, गुज० अनु० भूमिका पृ० ९-११; प्रकाशक जैन आत्मानंद सभा भावनगर।

३. वही, भूमिका पृ० ११.

४. इस अंशको विद्वानोंने शुद्ध जैन-कथाभाग कहा है, वही पृ० १२।

जनका, वही हमारा। कन्याओंका ऐसा निश्चय जानकर जंबूस्वामीसे उन कन्याओंके साथ विवाह कर लेनेका अनुरोध किया गया, जिसे स्वामीने स्वीकार किया। उचित तिथि-मुहूर्तमें विधिपूर्वक विवाह संस्कार संपन्न हुआ और जंबू वधुओंके साथ घर आकर वासगृहमें प्रविष्ट हुआ।

उसी कालमें जयपुरवासी विंध्य राजाका कलानिपुण प्रभव नामक पुत्र था, जो पिताके द्वारा छोटे भाई प्रभुको राज्य दे देनेसे रुष्ट होकर राज्य छोड़कर चला आया था, और विंध्याचलकी विषम तलैटीमें चोर सरदारोंके साथ चोरी करके जीवन यापन करता हुआ रहता था। जंबूस्वामीका विवाह एवं अपरिमित दहेजकी बात सुनकर अपने साथी पाँच सौ चोरोंके साथ अटवीसे निकलकर, रातके समय नगरीमें प्रविष्ट हुआ। तालोद्‌घाटनी विद्यासे ताले खोलकर जंबूस्वामीके घरमें पहुँचा, तथा अवस्वापिनी विद्याके बलसे सबके सो जानेपर चोर सोते हुए लोगोंके आभूषण आदि खोलने लगे। यह देखकर चोरकी विद्यासे अप्रभावित, अतः जागते हुए जंबूने ये निर्भीक वचन कहे—'आमंत्रित लोगोंको स्पर्श मत करना'। ये वचन सुनकर चोर स्तंभित जैसे हो गये। प्रभवने जंबूको देखकर अपना परिचय देकर कहा मेरी दो विद्याएँ 'तालोद्‌घाटिनी व अवस्वापिनी' ले लीजिए, और मुझे अपनी 'स्तंभिनी तथा मोचनी' विद्याएँ दे दीजिए। इसपर जंबूने कहा—मुझे सांसारिक विद्याओंसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो गणधरके पास संसारमोचनी-विद्या ग्रहण की है। प्रभात होते ही घर-परिवार सब छोड़कर मैं दीक्षा लूँगा। जंबूके ऐसे वचन सुनकर प्रभव आश्चर्यचकित रह गया, व उसने भी यौवनमें मानुषिक विषयसुख भोगकर पक्व वयःमें दीक्षा लेना उचित बतलाया। विषयसुखोंके संबंधमें जंबूने प्रभवको 'मधुबिंदु आस्वाद'का दृष्टांत सुनाया (प्रस्तावना–५ 'जंबूस्वामी चरित्र-की अंतर्कथाएँ')।

पुनः प्रभवके यह पूछने पर कि किस दुःखके कारण तुम अकालमें स्वजनोंका त्याग करते हो, जंबूने गर्भवास दुःखके संबंधमें ललितांगकुमारका आख्यान सुनाया (वही : 'जंबूस्वामीचरितकी अन्तर्कथाएँ')।

इसीप्रकार जंबूने सांसारिक संबंधोंकी असारताके विषयमें कुबेरदत्त एवं कुबेरदत्ताका, पितरोंको पिंड-दानादि रूप लोकधर्मकी असंगतिके बारेमें महेश्वरदत्तका, तथा सांसारिक सुख व मोक्षसुखकी तुलनाके संबंधमें एक कौड़ीके लिए सर्वस्व हार जाने वाले बनियेका, तथा धनके सदुपयोगके बाबत गोपयुवकका, ये सब कथानक प्रभवको सुनाये। इस कथा-वार्ताके उपरांत प्रभवको भी बोध हो गया। प्रातःकाल होते ही जंबूस्वामीने दीक्षाके लिए अभिनिष्क्रमण किया। जंबूद्वीपके अधिपति अनादृत (अणाढिय) देवने स्वामीका अभिनिष्क्रमण महोत्सव मनाया। वैभारगिरि-पर सुधर्मा गणधरके पादमूलमें जंबूस्वामीने दीक्षा ली। आर्य सुधर्माने प्रभवको जंबूके शिष्यरूपमें विहित किया। जंबूस्वामीकी माँ एवं वधुएँ भी सुव्रता आर्यिकाकी शिष्याएँ हो गयीं। थोड़े ही समयमें जंबू श्रुतकेवली हो गये।

कालांतरमें आर्य सुधर्मा संघसहित विहार करते-करते चंपानगरीके पूर्णभद्र चैत्यमें पधारे। कूणिक राजा उनकी वंदना करने आया, व अति स्वरूपवान जंबूस्वामीको देखकर उनके पूर्वकृत तप, त्याग, दान, शील आदिके संबंधमें विशेष जानकारी चाही। इसपर आर्य सुधर्माने उत्तर दिया कि पूर्वकालमें तुम्हारे पिता श्रेणिकको भगवान् महावीरने जिस प्रकार यह कथा सुनायी थी, उसे कहता हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो। यह कहकर सुधर्माने केवली होने पर्यंत राजर्षि प्रसन्नचंद्रका कथानक विस्तारसे कहा (प्रस्तावना—५)। देवता राजर्षिका कैवल्योत्सव मनाने आये। भगवान्से यह जानकर श्रेणिकने पूछा इनके पीछे कौन केवली होगा। तभी महातेजस्वी विद्युन्माली देव अपनी चार देवियों सहित भगवान्की वंदना करने आया। उसकी ओर संकेत कर भगवान्ने कहा—यह देव, जो कि सात दिन बाद देवगति त्याग करके मनुष्य गतिमें अवतीर्ण होगा। उसकी असाधारण, असामान्य तेजस्विताके विषयमें पूछने पर भगवान्ने श्रेणिक से कहा—

इसी जनपदमें सुग्राम नामक गाँवमें आर्यव नामका एक राष्ट्रकूट रहता था। उसकी रेवती नामक पत्नी थी। उनके दो पुत्र भवदत्त व भवदेव हुए। बड़ा भवदत्त युवावस्थामें ही दीक्षित हो गया। कुछ काल

बाद साधुसंघ विहार करते-करते पुनः उसी गाँवमें आया। भवदत्त अनगार छोटे भाई भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे गुरुकी अनुज्ञा लेकर भवदेवके घर गया। उसी समय भवदेवका विवाह हुआ था, और वह कुलकी रीतिके अनुसार नवपरिणीता नागिलाका मंडनकर्म कर रहा था। भाईका आगमन सुनकर भवदेव नागिलाको अर्द्धमंडित ही छोड़कर बाहर आया। आहारादि करके भवदत्त अनगार घरसे निकले व घी का भरा पात्र भवदेवके हाथमें दे दिया। भवदेवके भाईके पात्रको लेकर शीघ्रसे शीघ्र घर लौटनेकी इच्छा करता हुआ बेमनसे भाईके साथ चला, व संघमें आकर भाईकी सम्मान रक्षाके लिए दीक्षा ले ली। बहुत काल बाद भवदत्त अनगार समाधिमरण करके स्वर्ग गया।

इधर भवदेव मनमें पत्नीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य पालने लगा। एक बार जब साधुसंघ पुनः उसी गाँवमें आया, तो गुरुको कहे बिना ही अपने घरकी ओर चल दिया, और गाँवके बाहर ही एक मंदिरमें विश्राम करने बैठा। तभी उसकी व्रतोपवाससे क्षीण देहवाली पत्नी नागिला एक ब्राह्मणीके साथ उसी मंदिरमें पूजा करने आयी। भवदेव उसे पहचान नहीं सका, तथा उससे अपने माता-पिता और पत्नीके विषयमें पूछा और नागिलासे मिलनेकी इच्छा व्यक्त की। नागिलाने उसे पहचानकर अपना परिचय दिया, व भवदेवको बोध देनेके लिए भोगपिपासाके कारण पाड़ा बनने वाले ब्राह्मणपुत्रकी कथा सुनायी (प्रस्तावना –५)। इतनेमें ब्राह्मणीका पुत्र कहींसे दूध-पाक जीमकर वहाँ आया व माँसे बोला—माँ एक थाली लाओ, उसमें अतिशय स्वादिष्ट दूधपाकका वमन करूँगा। अभी अन्यत्र जीमने जाता हूँ। पुनः भूख लगनेपर अपने वमित दूधपाकको खाऊँगा। माँने कहा बेटा वमन करके खाया नहीं जाता। भवदेवने भी उसे धिक्कारा। इसी पर नागिलाने भवदेवको बोध दिया—तुम भी वमित (त्यक्त) नागिला और भोगोंका भक्षण करना चाहते हो। इससे भवदेवको प्रतिबोध हो गया।

इसके पश्चात् भवदेवने कठोर तप किया, व सल्लेखनापूर्वक मरकर स्वर्ग गया। उधर भवदत्त देवायु पूरी करके पुष्कलावती देशमें पुंडरीकिणी नगरीमें वज्रदंत चक्रवर्ती व यशोधरा रानीका सागरदत्त नामक पुत्र हुआ एवं युवावस्थामें ही एक बार मेरुपर्वतके समान महामेघको क्षणभरमें विलीन होते देखकर विरक्त हो गया और मुनिसंघमें दीक्षा ले ली। इधर भवदेवका जीव देवायु पूरी करके उसी देशमें वीतशोका नगरीमें पद्मरथ राजाकी वनमाला देवीसे शिवकुमार नामक पुत्र हुआ। युवा होने पर अनेक राजकन्याओंके साथ उसका परिणय करा दिया गया और वह भोग-विलासपूर्वक रहने लगा।

कालांतरमें सागरदत्त मुनि संघसहित विचरते हुए वीतशोका नगरीमें पधारे। उन्हें देखकर शिवकुमारको बड़ा स्नेह उमड़ आया। कारण पूछनेपर मुनिने अपने व शिवकुमार दोनोंके अबतकके दो पूर्वजन्मों [भवदत्त—भवदेव (१), स्वर्गमें देवता (२)] की कथा सुनायी। यह सुनकर शिवकुमारको वैराग्य हो गया। माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति न मिलने पर घरमें ही रहते हुए मंत्रीपुत्र दृढ़धर्मके हाथों केवल कांजी व अंबिल आहार लेते हुए बारह वर्षों तक उसने कठोर तप किया, और पीछे समाधिपूर्वक देहत्याग करके स्वर्गमें विद्युन्माली नामक महातेजस्वी देव हुआ। आजसे सात दिनों बाद अपनी देवायु पूरी करके यह राजगृहमें ऋषभदत्त सेठकी धारिणी नामक पत्नीके गर्भमें पुत्र रूपमें अवतरित होगा। यह बात सुनकर जंबूद्वीपका अधिपति अनादृत देव अपने कुलकी प्रशंसा करता हुआ उठकर नाचने लगा। कारण पूछनेपर भगवान्ने श्रेणिकको कहा—

इसी नगरमें गुप्तिमति नामका श्रेष्ठिपुत्र था। ऋषभदत्त व जिनदास उसके दो पुत्र थे। ऋषभदत्त शील सदाचारवान् था, जबकि जिनदास मद्य-वेश्या एवं जूएका व्यसनी। ऋषभदत्तने जिनदाससे कोई संबंध न होनेकी घोषणा कर दी। एक बार एक सेनापतिके साथ जूआ खेलते समय जिनदासने कुछ खोटाला किया। इसपर सेनापतिने उसे शस्त्रसे मारा। यह दुःखद समाचार मिलते ही ऋषभदास तुरंत आया और औषधोपचार निमित्त जिनदासको घर ले गया। तब जिनदासको भारी पश्चात्ताप हुआ। भाईसे अपने कुकृत्योंकी क्षमा माँगकर, उससे सदुपदेश लेकर, भावतः समस्त आरंभ परिग्रहको त्याग कर अनशन धारण करके, सम्यक् आराधना करते हुए, समाधिमरण करके जिनदास स्वर्ग गया। वही यह जंबूद्वीपका अधिपति

अनादृत नामक देव है। मेरे कुलमें अंतिमकेवली होगा, ऐसा जानकर वह देव अपने कुलकी प्रशंसा करता हुआ प्रसन्नताके आवावेगसे नाच रहा है। भगवान्‌के मुखसे यह सारा वृत्तांत सुननेके अनंतर वह देव भगवान्‌की वंदना करके उनके समवशरणसे उठकर अपने देवलोकको चला गया।

विद्युन्माली देव भी वहाँसे चला गया। पीछे उसकी चारों देवियोंके पूछनेपर प्रसन्नचंद्र केवलीने बताया कि देवलोकमें विद्युन्माली देवसे वियोग प्राप्त कर, राजगृहीमें श्रेष्ठिपुत्रियोंके रूपमें जन्म लेकर तुम लोगोंका पुनः संगम होगा, और तुम लोग भी उसके साथ संयम धारण करके स्वर्गमें देव बनोगी। केवलीके ऐसे वचन सुनकर देवियाँ भी उनकी वंदना कर चली गयीं।

'वसुदेव-हिंडी'में उपलब्ध जंबूचरितका संक्षेपमें अध्ययन कर आगे दृष्टिपात करनेसे कथाकी एक और परंपरा हमारे सामने आ जाती है। वह है गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण, जिसकी रचना ८९७ ई० से पहले ही पूर्ण की जा चुकी थी। उत्तर पुराणमें आदि तीर्थंकर 'ऋषभ जिन'को छोड़कर शेष बासठ शलाका पुरुषों (पौराणिक जैन महापुरुष) का जीवन चरित विस्तारसे वर्णित है। उत्तर पुराणके छिहत्तरवें पर्वमें १ से लगाकर २१३वें श्लोक तक जंबूस्वामीकी कथा संक्षेपमें इस प्रकार वर्णित है :—

एक बार भ० महावीर विहार करते-करते राजगृह नगरमें आये, और संघसहित विपुलाचल पर्वतपर पधारे। राजा श्रेणिक भगवान्‌के दर्शनोंको आया व उनकी स्तुति की। फिर गणधर गौतमकी स्तुति करके, मार्गमें देखे हुए धर्मरुचि मुनिके[1] ध्यानमें लीन होनेपर भी मुखपर विकृत भाव होनेका कारण पूछा। गौतम स्वामीने संक्षेपमें धर्मरुचि मुनिका संपूर्ण वृत्तांत सुनाकर उनके मुखपर विकृत भाव आनेका कारण बतलाया और श्रेणिकसे कहा—जाओ, उनके कषाय-भाव शांत करो। श्रेणिक गया, और गणधरके कथनानुसार मुनिको बोध देकर उनके भाव शांत कर, उन्हें प्रसन्न कर आया। कुछ ही क्षणोंमें धर्मरुचि मुनिको केवलज्ञान हो गया। इंद्रादि देवोंने आकर उनकी पूजा की और श्रेणिकने भी; तथा भगवान् के पास आकर गणधरसे पूछा कि इनके बाद सबसे पीछे स्तुति करने योग्य कौन होगा ? इतनेमें विद्युन्माली देव अपनी चारों देवियों सहित वहीं आ पहुँचा और भगवान् की वंदना कर यथास्थान बैठा। उसकी ओर संकेत कर गणधरने कहा—यह अंतिम केवली होगा। आजसे सातवें दिन यह स्वर्गसे च्युत होकर इसी नगरके सेठ अर्हद्दासकी स्त्री जिनदासीके गर्भमें आयेगा। इसके पहले जिनदासी पाँच स्वप्न देखेगी—हाथी, सरोवर, धानका खेत, ऊर्ध्वशिखा निर्धूमाग्नि, व देवकुमारों-द्वारा लाये हुए जामुनके फल। उसका नाम जंबूकुमार होगा, जो बहुत रूपवान्, भाग्यवान्, कांतिमान्, सर्व कलाकुशल व यौवनके आरंभसे ही विकार रहित रहेगा। मैं पुनः इसी विपुलाचलपर सुधर्म गणधरके साथ आऊँगा। चेलिनीका पुत्र इस नगर (राजगृही) का राजा कूणिक मेरा धर्मोपदेश सुनने आयेगा व जंबूकुमार भी उपदेश सुनकर विरक्त होकर दीक्षा लेना चाहेगा, पर अपने भाई-बंधुओंके आग्रहके कारण ऐसा नहीं कर सकेगा। फिर नगरके सागरदत्तादि चार सेठोंकी कन्याओंके साथ उसका विधिपूर्वक विवाह होगा। और विवाहके उपरांत भी वह वधुओंके साथ आवास महलमें निर्विकार भावसे पृथिवीतलपर बैठेगा। मेरा पुत्र अपनी वधुओंका वशवर्ती हुआ या नहीं, यह देखनेकी आकुलतासे उसकी माँ स्नेहवश अपने आपको छिपाकर वहीं खड़ी होगी। उसी समय पोदनपुर नगरके राजा विद्युद्राजकी रानी विमलमतीसे उत्पन्न हुआ विद्युत्प्रभ नामका चोर, जो अदृश्य होने आदि रूप अनेक विद्याओंका जानकार होगा, चोरी करने अर्हद्दासके घर आवेगा। जंबूकुमारकी माँको जागी देखकर अपना परिचय देकर उससे इतनी रात तक जागनेका कारण पूछेगा। माँसे सब बातें जानकर उससे प्रभावित अपने कर्मोंकी निंदा व धिक्कार तथा जंबूकुमारकी महान् विरक्तिके संबंधमें सोचता हुआ वह जंबूकुमारको समझाने हेतु उसके वासगृहमें आवेगा, जहाँ जंबूकुमार सब वधुओंके बीच निर्विकार भावसे बैठा रहेगा। वहाँ आकर वह जंबू-

1. वसुदेव-हिंडीमें धर्मरुचि मुनिके स्थानपर प्रसन्नचंद्र राजर्षिका कथा पूरे विस्तारसे दिया गया है। (देखिए परिशिष्ट २)।

कुमारको मीठा तृण खानेवाले ऊँटकी कथा सुनाकर कहेगा कि इसी प्रकार उपस्थित भोगोंको छोड़कर स्वर्ग सुखोंकी इच्छा करके तू भी उस ऊँटके समान मृत्युको प्राप्त होगा। इसके उत्तरमें जंबू दाह-ज्वरसे पीड़ित वैद्यकी कथा कहेगा (प्रस्ता०—५)। अंतमें जंबूकुमारके तर्कोंसे विद्युच्चरको भी बोध प्राप्त होगा, तथा जंबूस्वामीकी माँ एवं वधुएँ भी संसारसे विरक्ति भावको प्राप्त होंगी। जंबूस्वामीके वैराग्य भावको जानकर उसके सब स्वजन, सेना सहित कूणिक राजा व अनावृत देव आकर उसका दीक्षा अभिषेकोत्सव मनायेंगे। तब जंबूकुमार दिव्य यानपर चढ़कर बड़े जनसमूहके साथ विपुलाचलके शिखरपर मेरे ही पास आवेगा, तथा विद्युच्चर और उसके ५०० भृत्योंके साथ सुधर्म गणधरके पास दीक्षा लेगा। केवलज्ञानके बारह वर्ष बाद मुझे निर्वाण होगा, तब सुधर्मको कैवल्य लाभ। इसके बारह वर्ष बाद जब सुधर्माको मोक्ष होगा, तब जंबूको कैवल्य लाभ, और ४० वर्ष तक वे केवली अवस्थामें धर्मोपदेश देते हुए विहार करते रहेंगे। इस कथाको सुनकर अनावृत नामक देव अपने वंशका माहात्म्यगान करता हुआ उठकर नाचने लगा। श्रेणिकके पूछनेपर गौतमने अनावृत देव (वसु० हिंडीमें अनादृत देव) का पूर्वभव अति संक्षेपमें कहा—अर्हद्दासका भाई जिनदास व्यसनोंमें पड़कर दुरवस्थाको प्राप्त होकर पश्चात्ताप करके मरकर देव हुआ।

इस कथाके कह चुकनेपर श्रेणिकने विद्युन्माली देवका पूर्वभव पूछा। आगेकी संपूर्णकथा, शिवकुमार और सागरदत्त तथा भवदेव और भवदत्तके जन्मों तथा चारों देवियोंके आगामी जन्ममें जंबूस्वामीकी पत्नियाँ बननेका वृत्तांत सब कुछ वसुदेव हिंडीके अनुसार है। अंतर केवल इतना है कि भवदेव-भवदत्तके जन्म स्थानका नाम वृद्ध नामक गांव, पिता राष्ट्रकूट नामक वैश्य, भवदेवकी वधूका नाम नागिलाके स्थानपर नागश्री, और भवदेवको बोध देनेका निमित्त नागश्री नहीं एक गणिनीको बतलाया गया है। गणिनीके कथनानुसार नागश्रीकी दारिद्र्य आदिसे पीड़ित दुरवस्थाको देखकर भवदेवको संसारकी असारता एवं देहकी क्षणभंगुरताका बोध प्राप्त होकर सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाता है।

संघदास गणि कृत वसुदेव-हिंडी तथा गुणभद्र कृत उत्तर-पुराणके अतिरिक्त (परंतु कालकी दृष्टिसे इन दोनोंके बीच) जंबूस्वामीके अंतिम भवकी कथाके लगभग पूर्णतया समकक्ष दूसरी कथा हरिभद्र कृत समराइच्च-कहा (८वीं शती ई०) के नौवें भवमें प्राप्त होती है। कथा संक्षेपमें निम्नप्रकार है : कुमार समरादित्य बड़े ही प्रतिभाशाली, विद्वान्, शौर्य-वीर्य-धैर्य आदि सर्वगुण एवं रूप-यौवन संपन्न राजकुमार थे। परंतु पूर्वभवों-के अज्ञात संस्कारोंके कारण बाल्यकालसे ही उन्हें भोगोंसे विरक्ति थी। फिर भी पिताके अति आग्रहके कारण उन्होंने दो कन्याओंके साथ विवाह किया, परंतु वे उनके रूप-यौवनसे किंचित् भी विचलित नहीं हुए, और वधुओंकी दो प्रमुख सखियोंके साथ बैठकर कथा-वार्ता करने लगे। इसी प्रसंगमें उन्होंने रति रानी तथा शुभंकरकुमार-के अनुचित अनुरागकी कथा (जंबूसामिचरिउमें विभ्रमा नामक रानी और ललितांगकुमारकी कथा किंचित् भेद लिये हुए शेष पूर्णतः समराइच्चकहाके अनुरूप) सुनाकर दोनों वधुओंको समझाया, और निम्न शब्दोंमें अनु-रागकी सच्ची परिभाषा भी बतलायी : 'परमहित-मोक्षकी प्राप्तिमें अनुराग और अपने आत्मीयजनको उसीकी प्रेरणा देना।' वधुओंके द्वारा विषय-भोग त्याग दिये जानेपर, उनकी इस शुभ भावनापर ध्यान करते-करते शुभंकर कुमारको घरमें रहते ही अवधिज्ञान हो गया, और नाना कथाओंके द्वारा अपने माता-पिताको भी समझाकर कुमार समरादित्यने जिन-दीक्षा ले ली। देवताओंने आकर उनकी पूजा की। तत्पश्चात् थोड़े ही कालमें तप करते हुए मुनि समरादित्यको क्रमशः कैवल्य तथा मोक्षकी प्राप्ति हुई।[1] जंबूस्वामीके आख्यानसे इसका सादृश्य अत्यंत स्पष्ट है, अतः अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

जयसिंह सूरि-द्वारा विरचित धर्मोपदेशमालाविवरण (वि० सं० ९१५) में 'दोषबाहुल्ये नूपुरपंडिता-कथा'; मधुबिंदु-कूप-नर-कथा, क्र० ७३; तथा द्रव्य-आबाटव्यां वनसार्थवाहकथा, क्र० ८५-८६; ये सब कथाएँ पूर्णरूपमें विद्यमान हैं, और निश्चयतः ये ही कथाएँ गुणपालकृत जंबूचरियं (विक्रमकी ११ वीं शतीके

---

१. 'जंबूस्वामीचरित' की कुछ अंतर्कथाओंके समकक्ष अन्य कथाएँ भी समराइच्चकहामें उपलब्ध हैं, उनका निर्देश आगे यथास्थान किया गया है।

पूर्व) की कथाओंका आधार बनी है। जंबूस्वामीकी कथा इसमें अति संक्षेपमें 'सत्पुरुषप्रभावे जम्बूकथा', (क्र० ५१), में निम्न गाथाके व्याख्यान रूपमें विद्यमान है :—

सुपुरिसचेट्ठं दट्ठुं बुज्झंते णूण कूरकम्मा वि।
मुणि-जंबु-दंसणाओ विलाय-पभवो जहा बुद्धो ॥३८॥

जम्बूदर्शनात् प्रभवः प्रतिबुद्धः। 'रायगिहे उसभदत्तस्स धारिणीए जह नेमित्तिय-सिद्धपुत्तादेसाओ जंबू नामो जाओ। जहा य संवड्ढिओ पडिबुद्धो, जणणि-जणय-वयणाओ जह अट्ठ कन्नयाओ परिणीयाओ। ताहिं सह जुत्त-पडिवत्तीहिं धम्मजाग(र)णेण जग्गंतस्स चोर-सहिओ पभवो बोहिओ। जहा हि दोन्नि वि पव्वइया, तहा सुप्पसिद्धं' ति काऊण न भणियं गंथ-गोरव-भीरुत्तणओ, नवर भुवणओ सबुद्धीए कायव्वो।

'जंबूसामिचरिउ' कथाकी पूर्व परंपराकी दृष्टिसे प्रथमतः वसुदेव हिंडो, द्वितीय गुणभद्र कृत उत्तरपुराण, तृतीय समराइच्च कहा, एवं चतुर्थ जयसिंह सूरि कृत 'धर्मोपदेशमालाविवरण' पर विचार करनेके उपरांत जिस ग्रंथपर हमारी दृष्टि अनायास आकृष्ट हो जाती है वह है प्राकृत 'जंबूचरियं।' मुनि गुणपालकी यह कृति सुंदर रत्नोंसे बीच-बीचमें जटित एक श्रेष्ठ मुक्तामालाके समान गद्य-पद्यमय मिश्रित शैलीमें रचित काव्य एवं साहित्य-रससे भरपूर एक उत्कृष्ट रचना है। इस ग्रंथका लेखनकाल अभीतक निःसंदिग्ध रूपसे निर्धारित नहीं किया जा सका है, परंतु इसके विद्वान् संपादक मुनि श्री जिनविजयजीने इसकी भाषा एवं शैलीपर गंभीरतापूर्वक विचारकर ग्रंथकी प्रस्तावनामें इसका रचनाकाल विक्रमकी ११वीं शती अथवा इससे पूर्व माना है। डॉ० नेमिचंद्रजी शास्त्रीने भी अपने ग्रंथ 'प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन'में इसका रचनाकाल मुनि जिनविजयजीकी अपेक्षा और भी दो शती पूर्व अर्थात् विक्रमकी नौवीं शतीके लगभग माना है। 'जंबूचरियं' तथा 'जंबूसामिचरिउ'के तुलनात्मक अध्ययनसे यह समस्या कुछ और सुलझ जाती है और निश्चित रूपसे यह कहा जा सकता है कि 'जंबूचरियं'की रचना वि० सं० १०७६ में 'जंबूसामिचरिउ'के प्रणयनसे अवश्य ही कुछ पूर्व समाप्त हो चुकी होगी, तथा इसकी महान् ख्यातिसे आकृष्ट होकर वीर कविने निश्चयसे गंभीरतापूर्वक इसका अध्ययन किया होगा, और संभवतः इसकी क्लिष्ट प्राकृत भाषा निबद्ध शैली एवं लंबे-लंबे धार्मिक उपदेशों व नीरस और बोझिल प्रतीकोंके कारण इसे सर्वजनप्रिय न समझकर, सरलतर प्राकृत अर्थात् अपभ्रंश भाषामें, अर्थ-सुगम शैलीमें, काव्यरससे सर्वसाधारणको विभोर कर देनेवाले अपूर्व ग्रंथरत्नकी रचना करनेकी बलवत्तर प्रेरणा उसके कविहृदयमें उत्पन्न हुई होगी, जिसकी महाकाव्यात्मक कथावस्तुका आयाम आदर्श रूपमें स्वभावतः उसके समक्ष उपस्थित हो गया था। निम्न पंक्तियोंके अध्ययनसे यह कथन स्वतः प्रमाणित हो सकेगा।

वसुदेव हिंडी तथा गुणभद्र कृत उत्तरपुराण के मूलकथा गठनके परिप्रेक्ष्यमें जब हम गुणपालकृत 'जंबूचरियं' के मूलकथा-गठन एवं अंतर्कथा-गुंफन-शिल्प-पर विचार करके देखते हैं तो एक सर्वथा परिवर्तित, नवीन एवं अपूर्व कथावस्तु हमारे सामने उपस्थित होती है, जिसमें प्रथम दो उद्देश्योंमें हरिभद्र कृत समराइच्च कहाके समान साहित्यिक रीतिसे कथाओंके अर्थकथा, कामकथा, धर्मकथा एवं संकीर्णकथा ये चार भेद बतलाकर, फिर मनुष्योंके कल्याण हेतु धर्मकथा कहना ही काव्य-रचनाका उद्देश्य एवं प्रयोजन बतलाकर विस्तारसे धर्मचर्चा करके तीसरे उद्देश्य (अध्याय) से वास्तविक कथा प्रारंभ की गयी है। संक्षेपमें कथा निम्न प्रकार है :—

जंबूद्वीपके राजगृह नामक नगरमें श्रेणिक नामका राजा था, उसकी चेलना नामक महादेवी थी। एक समय विपुलाचलपर भ० महावीरका समोशरण आया। राजा श्रेणिक भी भगवान्के दर्शनोंके लिए नगरसे निकला। रास्तेमें प्रसन्नचंद्र मुनिके दर्शन हुए; जिनके मुखपर ध्यानावस्थामें ही नाना प्रकारके उतार-चढ़ाव आ रहे थे। समोशरणमें आकर श्रेणिकने भगवान्से प्रसन्नचंद्र राजर्षिके संबंधमें जाननेकी जिज्ञासा व्यक्त की। भगवान्ने राजर्षिका पूर्ण कथानक विस्तारसे सुनाया। इतनेमें राजर्षिको केवलज्ञान हो गया और आकाशसे देवगण उनका कैवल्योत्सव मनाने आये। 'राजर्षिके बाद अंतिम केवली कौन होगा ?' यह प्रश्न करनेपर भगवान्ने अपनी चार देवियों सहित प्रसन्नचंद्र केवलीकी वंदना निमित्त वहाँ आये हुए अत्यंत तेजस्वी विद्यु-

न्माली देवकी ओर संकेत करके बतलाया कि यही देव अंतिम केवली होगा। विद्युन्माली देवकी अतिशय तेजस्विताका कारण एवं उसके पूर्व-भव पूछनेपर भगवान् महावीरने उसके प्रथम भवसे कथा प्रारंभ की। सुग्राम नामक ग्राममें भवदत्त-भवदेव दो भाई थे। सुस्थित नामक मुनिके संयोग एवं धर्मोपदेशसे भवदत्तको वैराग्य हो गया और वह साधुसंघमें दीक्षित हो गया। कुछ काल बाद अनुजको भी दीक्षित करनेके निश्चय-से मुनि भवदत्त, संघके पुनः अपने ग्राममें आनेपर, अपने घर गया। और नव-वधूके साथ सातफेरे (सप्तपदी) लेते हुए भवदेवको विवाहकार्यके बीचमें-से ही भोजनयुक्त भिक्षा-पात्र हाथमें देकर, इस बहाने उसे नगरके बाहर जहाँ संघ ठहरा था, उस ओर ले जाने लगा। भवदेव घर लौटनेकी इच्छासे पूर्व-क्रीड़ित स्थानोंको दिखलाता हुआ चला। मुनि 'हूँ, हाँ, स्मरण करता हूँ', ऐसा कहते हुए चुपचाप जैसे चलते रहे। भवदेव भी अग्रजके सम्मान, मर्यादा एवं लज्जाके वशीभूत हुआ, उनकी अनुमति बिना घर न लौट सका, और संघमें आकर चुपचाप दीक्षित हो गया, पर सांसारिक सुखोंका ही चिंतन करता रहा। कुछ काल बाद मुनि भव-दत्तके स्वर्गस्थ हो जानेपर अवसर पाकर भवदेव पुनः अपने घरकी ओर चला। नगरके बाहर ही जिन चैत्यालयमें नागिला (पत्नी) से भेंट हो गयी। उसने भोग-सुखकी वासनासे पाड़ा बननेवाले तथा अपने ही वमनको खानेकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मणपुत्रोंके दृष्टांतों द्वारा भवदेवको बोध दिया। इसके उपरांत भवदेव कठोर तपस्या कर स्वर्गमें देव हुआ। स्वर्गसे आकर बड़ा भाई भवदत्त सागरदत्तके रूपमें जन्मा, और भवदेव राजपुत्र शिवकुमारके रूपमें। सागरदत्तके दर्शन व संयोगसे शिवकुमारको पूर्व-जन्मस्मरण एवं वैराग्य हो गया। माता-पिताके आग्रहको न टाल सकनेके कारण शिवकुमार घरमें रहता हुआ ही कठोर तप करने लगा (इस जन्ममें शिवकुमार एवं कनकवतीकी परस्पर प्रणयकथा बहुत ही रोचक है)। सागरदत्त मुनि तप-साधना कर मोक्ष गये और शिवकुमार समाधिमरण कर स्वर्गमें विद्युन्माली नामक देव हुआ, जिसकी चार अत्यंत प्रिय देवियाँ हैं। यह सात दिनों बाद राजगृहके सेठ ऋषभदत्तकी धारिणी नामक धर्मपत्नीके गर्भमें आवेगा तथा अत्यंत यशस्वी पुत्र होगा, और १६ वर्षकी अवस्थामें दीक्षा लेकर अंतिम केवली होगा। ये चारों देवियाँ स्नेहवशात् इसकी पत्नियाँ बनेंगी। कुल आठ कन्याओं (४ पूर्व देवियाँ + ४ कन्याएँ) से इसका विवाह होगा। इसी प्रसंगमें अणाढिय देवका लघु आख्यान कहा गया है।

उचित समयपर जंबूका जन्म हुआ। युवा होनेपर सुधर्माका उपदेश सुनकर उसे वैराग्य हो गया, पर माता-पिताके अत्यधिक आग्रहके कारण पूर्व वाग्दत्त आठ कन्याओंसे विवाह किया और अपने वासगृहमें आकर निर्विकार भावसे बैठा। सब सो गये। प्रभव चोर अपने ५०० साथियोंके साथ चोरी करने आया। जंबूको जागते हुए देखकर उससे कथासंलाप करने लगा। जंबूकुमारने सांसारिक सुखोंके संबंधमें मधुबिंदु दृष्टांत एवं रिश्ते-नाते और पिंडदानके संबंधमें एक ही जन्ममें अठारह नाते तथा महेश्वरदत्तके आख्यान सुनाये। वहुएँ भी जाग गयीं और पहले एक पत्नी-द्वारा कथा, फिर जंबू-द्वारा उसका उत्तर; फिर दूसरी पत्नीकी कथा और उसका उत्तर, इस प्रकार कथा-प्रतिकथाके रूपमें (१) मूर्ख किसान, (२) कौवा, (३) वानर-युगल, (४) इंगालदाहक, (५) नूपुरपंडिता, (६) मेघरथ-विद्युन्माली, (७) शंखधमक, (८) यूथपति वानर, (९) बुद्धि-सिद्धि, (१०) जात्यश्व, (११) ग्रामकूट पुत्र, (१२) घोड़ीपालक, (१३) माँ-साहस पक्षी, (१४) तीन मित्र, (१५) चतुर ब्राह्मण कन्या, (१६) ललिता रानी, (१७) बनिये और सदानें तथा (१८) द्रव्या-टवी-भावाटवीका दृष्टांत ये सब आख्यान कहे गये। अंतके तीन आख्यान अकेले जंबूस्वामी-द्वारा सुनाये गये। सबको बोध हो गया। राजा कूणिकने जंबूका दीक्षोत्सव बड़े उल्लास-उत्साहसे मनाया। जंबू, उसके माता-पिता, वधुएँ व उनके माता-पिता एवं ५०० साथियों सहित प्रभव, सबने दीक्षा ली। सुधर्मा कैवल्य प्राप्त कर मोक्ष गये। जंबू संघके प्रधान हुए और यथासमय मोक्ष गये। अन्य सब तप करके स्वर्गको प्राप्त हुए। इस प्रकार मुनि गुणपाल कृत जंबूचरित्र पूर्ण हुआ।

उपर्युक्त रीतिसे गुणपाल कृत जंबूचरियंके मूलकथा-गठन एवं अंतर्कथाओंके संयोजनपर थोड़ा-सा ध्यान देनेसे ही यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि वीर कविने अपने महाकाव्यकी योजनामें, इस दृष्टि-से आवश्यक अन्य तत्त्वोंका समावेश तथा यथायोग्य संक्षेप-संवर्धन और परिवर्तन कर, अन्य सब रीतिओंसे

'जंबूचरियं' को ही प्रमुख रूपसे अपना आदर्श आधार-ग्रंथ माना है; हाँ, सामग्री उन्होंने गुणभद्रके उत्तर पुराणसे भी यथावश्यक यथेष्ट परिमाणमें संग्रहीत की है; और 'जंबूसामिचरिउ' में समाविष्ट पाँच अंतर्कथाएँ वो ऐसी हैं, जो प्रथम बार केवल 'जंबूचरियं' में ही उपलब्ध होती हैं, इसके पूर्व अन्य किसी ग्रंथमें नहीं। संभव है गुणपालको अर्द्धमागधी आगमग्रंथोंकी टीकाओं या चूर्णियों अथवा मौखिक परंपरासे ये लघुकथाएँ उपलब्ध हुई हों, परंतु इस संपादकको अबतक इनका कोई अन्य पूर्ववर्ती स्रोत ज्ञात नहीं हो सका। सभी प्रमुख जंबूस्वामिचरितोंकी आद्योपांत कथासारिणीसे भी यह बात स्पष्टतया सिद्ध होती है। उपर्युक्त समस्त चर्चापर विचार करते हुए गुणपालकृत 'जंबूचरियं' का रचनाकाल वि० सं० १०७६ में 'जंबूसामिचरिउ' की रचनासे पूर्वतर मानना युक्तियुक्त एवं औचित्यपूर्ण प्रतीत होता है।

वीर कविके पूर्ववर्ती साहित्यकारोंको उपर्युक्त रचनाओंके अतिरिक्त महाकवि पुष्पदंत कृत महापुराण (वि० सं० १०२९) के उत्तरखंडमें 'जंबूसामिदिक्खवण्णणं' नामक सौवीं संधिमें संक्षेपमें जंबूस्वामिचरित वर्णित है, जो पूर्णतः गुणभद्र कृत उत्तर पुराणके ७६वें पर्वके अनुकरणपर रचित है, अतः उसमें कोई नवीनता नहीं है।

कालक्रमसे जंबूस्वामीकी कथा-परंपरामें इन सबके उपरांत वीरकृत 'जंबूसामिचरिउ' का स्थान है। वीरके पश्चात् दिगम्बर आम्नायकी साहित्य-संपत्तिमें इस कथापर आधारित दो प्रमुख कृतियाँ हमारे समक्ष आती हैं : (१) ब्रह्म जिनदास (वि० सं० १५२०) तथा (२) पं० राजमल्ल (वि० सं० १६३२) कृत 'जंबूस्वामिचरित्र'। ये दोनों रचनाएँ संस्कृत भाषामें सुंदर काव्यशैलीमें रचित हैं, परंतु कुछ कम-अधिक दोनों ही वीर कविके प्रस्तुत अपभ्रंश चरितकाव्यके लगभग पूर्णतया संस्कृत-रूपांतर हैं, अतः इनमें कोई नवीन सामग्री नहीं है। पुरानी जयपुरी हिंदी, व आधुनिक हिंदीमें भी इन्हीं ग्रंथोंके छोटे-बड़े संक्षिप्त रूपांतरोंमें कुछ रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिनकी सूची आगे दी गयी है।

श्वे० आम्नायकी साहित्य-धारामें जंबूस्वामीचरित-कथाकी परंपरा आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूपसे चलती आयी है, और इसमें विविधशैलियों, भाषाओं व छोटे-बड़े आकारकी पचासों कृतियाँ उपलब्ध हैं (देखें आगे सूची)। उनमें-से कुछ प्रमुख ग्रंथ हैं (१) भद्रेश्वर कृत प्राकृत-कथावली (वि० १२ वीं शती पूर्वार्द्ध); (२) नेमिचंद्रसूरिकृत *प्राकृत–आख्यानकमणिकोष* (वि० सं० १२२९, केवल प्रसन्नचंद्र राजर्षि तथा नूपुरपंडिता, ये दो अंतर्कथाएँ) ; (३) हेमचंद्र कृत संस्कृत परिशिष्टपर्व (वि० सं० १२१७-१२२९); एवं (४) उदयप्रभसूरि कृत संस्कृत धर्माभ्युदय-महाकाव्यमें संपूर्ण अष्टम सर्ग (वि० सं० १२७९-१२९०) आदि।

जंबूसामिचरिउकी कथा-परंपराओंका तुलनात्मक अध्ययन

ऊपर वसु० हिंडीके अनुसार जंबूकथाके संक्षेपमें हमने देखा है कि कथावस्तु सीधे जंबूस्वामीके गर्भमें आनेसे लेकर, जन्म, युवावस्था, गुरूपदेश, वैराग्य, माता-पिताके आग्रहसे आठ कन्याओंसे विवाह, प्रभवका चोरी हेतु आगमन, जंबूसे कथोपकथन (अधिकांश अंतर्कथाओंका यहीं समावेश), सबको बोध और दीक्षा तक आकर कूणिक अजातशत्रुके द्वारा जंबूके पूर्व-भव जाननेकी जिज्ञासा करनेपर कथा पीछेकी ओर मुड़ती है, और उसमें विद्युन्मालीका आख्यान आता है। तथा वहाँसे फिर और पीछे चलकर भवदत्त-भवदेव सागरदत्त-शिवकुमार और पुनः विद्युन्मालीदेव तथा उसकी चार देवियों-पर ले आकर कथा बड़े विचित्र स्थलपर आकर समाप्त हो जाती है।

गुणभद्रके उत्तरपुराणमें भी कथाको जंबूस्वामीसे ही प्रारंभ कर पीछेकी ओर उलटे क्रमसे : विद्युन्माली, सागरदत्त-शिवकुमार एवं भवदत्त-भवदेव-पर ले आकर अपनी पत्नी नागश्रीको दारिद्र्यादि जनित दारुण दुरवस्था देखकर वास्तविक वैराग्य और तपःसाधना आरंभ करनेपर कथा समाप्त की गयी है। इन दोनों चरितकथाओंके संपूर्ण गठन एवं अंतर्कथाओंमें संक्षेप-विस्तारके अतिरिक्त वास्तविक अंतर नगण्यके समान है।

'जंबूसामिचरिउ' की कथावस्तुके साथ उपर्युक्त कथा-रूपरेखाओंपर तुलनात्मक दृष्टिपात करके देखें तो हमारे सामने निम्न तथ्य स्वतः उपस्थित होते हैं :—

(१) वसुदेव-हिंडी तथा उत्तरपुराण दोनोंमें जंबूस्वामीकी कथाका वह प्रारंभिक स्थूल प्रारूप दिखाई देता है जब कि वह आगम क्षेत्रसे निकलकर पुराण एवं कथा साहित्यमें अवतीर्ण हुई थी। इस समय तक इस कथाने काव्य रचनाके योग्य कथावस्तुका ही नहीं, वरन् व्यवस्थित चरित कथाका भी रूप धारण नहीं किया था। इन दोनों ग्रंथोंमें जिस स्थलपर एवं जिस रूपमें जंबूस्वामीके अंतिम भवकी कथा कही गयी है, उससे स्पष्ट है कि अन्य पूर्वभवोंकी कथासे इसका कोई वास्तविक संबंध नहीं है। केवल विद्यु-न्मालीके भवका कुछ संबंध मालूम पड़ता है, वह भी घनिष्ठतासे नहीं। जंबूस्वामीके भवका वृत्तांत जान लेनेके उपरांत पाठकको वास्तवमें उसके पूर्वभव जाननेकी कोई जिज्ञासा नहीं रह जाती। विद्युन्माली देवसे कथाका संबंध जोड़कर किसी तरह कुछ जिज्ञासा और उसके साथ अन्य भवोंके विषयमें भी कुछ उत्सुकता उत्पन्न की जाती है।

(२) राजर्षि प्रसन्नचंद्र अथवा धर्मरुचिका जो आख्यान इनमें मिलता है, उसका मूलकथासे बिलकुल कोई संबंध नहीं है।

(३) शिवकुमार-सागरदत्त, तथा भवदेव-भवदत्तके आख्यानोंको ऊपरसे किसी तरह आरोपित किया गया है, यह बिलकुल स्पष्ट प्रतीत होता है, क्योंकि नायकका वर्तमान भव पूर्ण जान लेनेके उपरांत, पिछले भवोंकी अधिकांश जिज्ञासा स्वयमेव शांत अथवा नष्टप्रायः हो जाती है। अर्थात् इन ग्रंथोंमें पाँचों भवों-की कथाओंमें कोई वास्तविक संबंध तो प्रतीत नहीं ही होता, इसके विपरीत ऐसा अनुभव होता है कि जंबूस्वामीके एक भवके संक्षिप्त वृत्तके साथ, अन्य भवोंकी कथाएँ अन्यान्य स्रोतोंसे लेकर सबको किसी प्रकार एक ही कथावस्तुके साँचेमें भर दिया गया है।

(४) कथाक्रम भी दोनोंमें व्यवस्थित नहीं है। वसुदेव-हिंडीमें पहले जंबूस्वामी, फिर विद्युन्माली, उसके पश्चात् भवदत्त-भवदेवका भव, तथा अंतमें सागरदत्त-शिवकुमारकी कथा कहकर उनका विद्युन्माली और फिर जंबूस्वामीसे संबंध स्थापित किया गया है। उत्तरपुराणमें क्रम और भी विचित्र है, पहले विद्यु-न्माली देवका आना, फिर जंबूस्वामीका चरित, फिर विद्युन्मालीके पूर्व-भवमें शिवकुमार-सागरदत्तका चरित, और इसी भवमें सागरदत्तसे भवदत्त और भवदेवके पूर्व-भवकी कथा कहलायी गयी है। इस प्रकारके क्रमसे कथामें एक विशृंखलता आ गयी है, जिससे पाठककी जिज्ञासाका ह्रास होता है और वह भ्रांत-चकित-सी हो जाती है।

(५) उत्तरपुराणमें भवदेवको उसकी त्यक्त पत्नीसे नहीं, वरन् एक गणिनी (साध्वी) से बोध दिलाकर कथाका एक और उत्कृष्ट मार्मिक स्थल नष्ट कर दिया गया है।

(६) जंबूस्वामीकी आठ या चार पत्नियोंके संबंधमें पूर्वभवका कोई वृत्तांत नहीं कहा गया।

(७) जंबूस्वामी तथा सुधर्माका पूर्वजन्मका कोई संबंध इन ग्रंथोंमें दिखलाया नहीं गया। बस, भवदत्त-भवदेवमें अग्रज-अनुज संबंध तथा सागरदत्त-शिवकुमारके भवमें पूर्व संबंध जनित आकस्मिक अनुराग एवं तज्जन्य पूर्व-जातिस्मरण मात्रका उल्लेख है।

(८) नायक जंबू स्वामीमें वीर भावको प्रकट करनेकी कोई आवश्यकता इन्हें प्रतीत नहीं हुई, अथवा ऐसा करनेका कोई सुयोग अपनी रचनाओंमें ये नहीं जुटा पाये।

उपर्युक्त मुद्दोंपर विचार करनेसे ऊपर लिखे अनुसार यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें वर्णित मूल-जंबूकथा तथा उसके भव-भवांतरोंकी अन्य कथाओं एवं अंतर्कथाओंमें कोई अविच्छेद्य-अखंड-नीय संबंध नहीं है। अतः ये सब मिलकर किसी सुव्यवस्थित-सुगठित चरित-कथाका निर्माण नहीं करतीं और स्पष्टतया कथाकथन मात्रके उद्देश्यसे ऊपरसे जैसे-तैसे आरोपित की गयी आभासित होती हैं, जिससे इनमें वर्णित चरित-कथा अनेक लघुकथाओंके संकलनके समान प्रतीत होती है।

वसुदेव-हिंडी तथा उत्तरपुराणकी जंबूचरित-कथाके अध्ययनसे एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी

प्रकट होता है कि शुद्ध साहित्यमें दिग०, श्वे० जैसा शुद्ध आम्नाय-भेद तबतक स्थापित नहीं हुआ था। विमलसूरिके प्राकृत पउमचरियं तथा दिग० परंपराके आ० जिनसेन रचित पद्मपुराणके अध्ययनसे भी यह तथ्य पुष्ट होता है।

अब इन्हीं मुद्दोंपर गुणपाल कृत जंबूचरियंका विश्लेषण करनेसे निम्न बातें प्रकट होती हैं :—

(१) गुणपालने कथाक्रमको पूर्णतः परिवर्तित कर, विद्युन्माली देवसे प्रारंभ कर, भवदत्त-भवदेव, देवगति, सागरदत्त-शिवकुमार, सागरदत्तको मोक्ष एवं शिवकुमारका विद्युन्माली देवके रूपमें जन्म लेना और वहाँसे जंबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्ष जाने तकके वृत्तको अत्यंत सुंदर, सुगठित, सुसंबद्ध तथा महाकाव्य रचनाके सर्वथा योग्य आयाममें सजाया-सँवारा है।

(२) राजर्षि प्रसन्नचंद्रके कथानकको गुणपाल भी संभवतः पूर्वपरंपराके आग्रहके कारण छोड़ नहीं सके।

(३) शिवकुमार-सागरदत्त एवं भवदेव-भवदत्तके आख्यानोंको सुसंबद्ध रीतिसे इस प्रकार लिया गया है कि वे मूलकथाके अनिवार्य-अविच्छेद्य अंग बन गये हैं। शिवकुमार एवं कनकवतीका परस्पर प्रेमाख्यान बहुत सुंदर व रोचक है, तथा अन्य सभी जंबूचरितोंसे अतिरिक्त है। इस कथाका आधार सम० कहाके द्वि० भवमें सिंहकुमार-कुसुमावलीकी प्रणयकथा है।

(४) कथाक्रम बिलकुल सुव्यवस्थित है, जिससे पाठककी जिज्ञासा और कुतूहल आद्योपांत निरंतर बने रहते हैं।

(५) वसु० हिंडीके समान भवदेवको उसकी पत्नी नागिलाके द्वारा ही बोध प्राप्ति करायी गयी है।

(६) जंबूस्वामीकी आठ पत्नियोंके संबंधमें पूर्वभवका कोई वृत्तांत इसमें भी नहीं है।

(७) जंबूस्वामी-सुधर्माका कोई पूर्व-संबंध यहाँ भी स्थापित नहीं किया गया है।

(८) नायकमें वीरताका गुण प्रकट करनेका इन्हें भी कोई विचार नहीं आया।

वीर रचित 'जंबूसामिचरिउ' की विशेषता

उपर्युक्त तीन कृतियोंके विश्लेषणसे यह सुझात हो जाता है कि गुणपाल कृत 'जंबूचरियं'का इतिवृत्त ही प्रस्तुत 'जंबूसामिचरिउ' महाकाव्यकी मूल कथावस्तुका प्रमुख आधार है। उसीमें परिवर्तन, परिवर्द्धन, संशोधन करके वीरने अपनी रचनाको चरितात्मक प्रेमाख्यान महाकाव्यका रूप दिया है। विद्युन्माली देवके प्रकट होनेसे, उसके पूर्वभवके संबंधमें प्रश्न करके पाठकमें जिज्ञासा और कुतूहल उत्पन्न कर गुणपाल और वीर दोनों ही भवदत्त-भवदेव; देव; सागरदत्त-शिवकुमार; विद्युन्माली देव एवं जंबू-सुधर्मा तथा प्रभव या विद्युच्चर-के कथानकोंकी ओर ले चलते हुए पाठककी अभिरुचि और जिज्ञासा निरंतर जाग्रत-बनाये रखनेमें सफल हुए हैं। गुणपालकी रचना लंबे-लंबे धार्मिक उपदेशों और कथाओंके साथ सर्वत्र गूढ़ धार्मिक-आध्यात्मिक प्रतीकोंको संबद्ध करनेसे सामान्य पाठकके लिए दुरूह और बोझिल हो गयी है। वीरने अपनी काव्य-चातुरीसे अपनी रचनामें ऐसी स्थिति कहीं भी उत्पन्न नहीं होने दी।

गुणपालने पूर्व-परंपरानुसार भवदत्त-भवदेवके संबंधको तीसरे भवमें सागरदत्तको मोक्षोपलब्धि कहकर वहीं काट दिया। परंतु वीर कवि ऐसा न करके उसे पाँचवें भव तक ले आया; तथा पाँचवें भवमें सुधर्माके द्वारा उससे पूर्वके चारों भवोंको संक्षेपमें कहलाकर कथासूत्रको आद्योपांत प्रगाढ़ एवं अविच्छेद्य-रीतिसे जोड़ दिया। इसी प्रकार जंबूस्वामीकी चार पत्नियों का विद्युन्माली देवकी चार देवियोंका एक श्रेष्ठिकी चार पत्नियोंके रूपमें पूर्वभवका वृत्तांत जोड़कर उनके उस जन्मके तपरूपी सुकृत-सामर्थ्यसे उनमें जंबूस्वामीकी पत्नियाँ बनने योग्य अर्हता उत्पन्न कर, इस जन्ममें उनके संबंधका सार्थक्य एवं अविच्छेद्य संगति भी अभूतपूर्व रीतिसे सिद्ध किये हैं। बाल्यकालसे ही विवेकवान् होनेपर भी नायकको सर्वथा नीरस-वैरागी नहीं दिखलाया जैसा कि अन्य पूर्व रचनाओंमें है। बल्कि युवावस्थामें अपनी सुहृन्मंडलीके साथ कामिनियोंसे कामविकार रहित स्वच्छंद जल-क्रीड़ा भी दिखलायी है, और जंबूस्वामीमें महाकाव्योचित नायकके

बुद्धिमत्ता, शौर्य, वीर्य, धैर्य, साहस, तेजस्विता आदि सभी गुणोंको प्रकट करनेकी दृष्टिसे जलक्रीड़ाके समय हस्त्युपद्रव और स्वामी-द्वारा सरलतासे उसका पराजय तथा केरल नगरीमें युद्धकी घटनाओंको अपनी कवि-कल्पना-द्वारा मूल कथाके साथ गुंफित कर दिया है। प्रसन्नचंद्र (या धर्मरुचि) के मूल-कथा-गठनमें सर्वथा अनावश्यक और ऐसे ही अन्य छोटे-बड़े कथानकोंको अपनी रचनामें-से निकाल दिया है और कुछ नवीन सुंदर लघुकथाओंको समाविष्ट कर लिया है। व्यभिचारिणी रानी एवं वणिक्पुत्रवधूके द्विकथात्मक बड़े आख्यानमें-से रानी संबंधी अंश बिलकुल छोड़ दिया है, तथा वणिक्पुत्रवधूके आख्यानको भी बहुत संक्षिप्त कर दिया है।

इस प्रकार वीर कवि अपनी मौलिक सूझ-बूझ और काव्य-कला कौशलसे प्राचीन सामग्रीमें-से एक उत्कृष्ट व अभिनव महाकाव्यकी रचनामें पूर्ण सफल हुआ। संघदास, गुणभद्र एवं गुणपाल भी, मूलतः कवि रूपमें नहीं, कथाकार व उपदेष्टाके रूपमें हमारे समक्ष आते हैं, जबकि वीर चरित-काव्यके निर्माता महाकविके रूपमें। अतः उसे महाकवि कहा जाना सर्वथा उचित है।

जंबूचरितकी कथाका मूलस्रोत

जंबूस्वामीकथाकी पूर्व-परंपराका गंभीरतासे अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट प्रकट होता है कि वसुदेव-हिंडीके पूर्व दिग०, श्वे० संपूर्ण आगम साहित्यमें 'जंबू काश्यप गोत्रीय थे, वे सुधर्माके शिष्य थे, सुधर्माने जंबूके प्रश्नोंके उत्तर-स्वरूप सारे अर्द्धमागधी आगमोंको उन्हें कहकर सुनाया, सुधर्माके मोक्ष जानेपर जंबूको केवलज्ञान हुआ और ४०,४४ वर्ष जैन साधु संघके प्रधान रहकर जंबूको मोक्ष प्राप्त हुआ, तथा जंबू इस कालमें अंतिम केवली हुए—इन सूचनाओंके अतिरिक्त जीवनचरित-विषयक अन्य कोई भी सामग्री उपलब्ध नहीं होती। तब यहाँ यह प्रश्न होता है कि संघदास गणिने जंबूचरित कथाका निर्माण किस प्रकार किया? क्या शुद्ध निजी कल्पनासे? अथवा उनके सामने कोई और अज्ञात आधार होना संभव है? जंबूके चार या आठ कन्याओंसे विवाह करके भी, भरपूर यौवनमें बिना इंद्रिय सुख भोग लिये, विरक्त होकर दीक्षा लेनेका वृत्त मौखिक-परंपराके माध्यमसे भी संघदासको प्राप्त होना संभव है। फिर भी यह प्रश्न तो रह ही जाता है कि भवदत्त-भवदेव जन्मकी अत्यंत रसात्मक व मार्मिक कथा किस तरह, कहाँसे, संघदासने जंबूके जीवन-चरितसे जोड़ दी?

इस कथाके मूलस्रोतकी खोजमें अन्य भारतीय साहित्यपर दृष्टिपात करनेसे प्राचीन संस्कृत साहित्यमें जो रचना बलात् हमारा ध्यान आकृष्ट करती है, वह है बौद्ध महाकवि अश्वघोष कृत सौंदरनंद काव्य। कीथ प्रभृति संस्कृत साहित्यके इतिहासकार विद्वानोंके मतानुसार अश्वघोषको भास व कालिदाससे पूर्ववर्ती होना चाहिए। इनका अनुमानित जीवनकाल ई० पूर्व प्रथम शती माना जाता है।

इस काव्यकी 'कथावस्तु' जंबूस्वामीके पाँच भवोंमें-से उनके प्रथम और अंतिम इन दो भवोंके वृत्तसे संक्षेपमें मेल रखती है। यहाँ जंबूस्वामीके पाँचवें पूर्वजन्ममें भवदेवने भाईकी मर्यादाकी रक्षाके विचारसे वैराग्य लिया, और १२ वर्षों तक मुनिवेशमें रहकर भी पत्नीका ही ध्यान करता रहा। फिर पत्नीसे मिलने आया, तब उसीने बोध देकर पतन होनेसे बचाया। फिर देव हुआ। फिर शिवकुमारके जन्ममें बड़े भाईके जीव सागरदत्त मुनिके दर्शनसे उसे प्रतिबोध हुआ। घरपर रहकर ही तपस्या की। फिर देव हुआ, और अंतमें जंबूस्वामी। इस जन्ममें चार नव-विवाहित वधूओंको छोड़कर दीक्षा ली, तप किया, कैवल्य प्राप्त किया और फिर मोक्ष। यह पाँच जन्मोंकी कथा पूर्ण हुई।

दूसरी ओर सौंदरनंद काव्यमें सर्ग ४ से १२ तक गौतम बुद्धके अपनी दूसरी माँसे उत्पन्न सगे भाई नंदका चरित्र वर्णित है। बुद्धत्व प्राप्तिके उपरांत जब गौतम कपिलवस्तुके आराम-प्रांगणोंमें जीवोंको चार आर्यसत्यों व अष्टांगिक-मार्गका उपदेश देते हुए विहार कर रहे थे, उसी कपिलवस्तुके राजमहलोंमें उन्हीं-का सगा भाई नंद, बुद्धके आगमनसे सर्वथा निरपेक्ष रहकर अपनी प्रियतमा सुंदरीके साथ भोग-विलासमें डूबा हुआ था। बुद्धने भिक्षाके लिए नंदके प्रासादमें प्रवेश किया, पर वहाँ किसीका ध्यान अपनी ओर

आकृष्ट न होनेसे भिक्षा लिये बिना ही वापस वनको लौट चले। प्रासादकी छतपर खड़ी एक दासीने बुद्धको लौटते देखकर नंदको इसकी सूचना दी। इससे नंद दुःखित हुआ। वह तुरंत लौट आनेका वचन देकर, क्षण-भरके लिए भी जिसे प्रियतमका वियोग असह्य था, ऐसी अपनी प्रियतमासे मुनिको प्रणाम करने आनेकी अनुमति मांगकर, एक ओर प्रियाके स्नेहके अदम्य आकर्षण तथा दूसरी ओर गुरु-भक्तिके द्वंद्वके झूलेमें झूलता हुआ और प्रियाके अनुपम रूपका ध्यान करता हुआ मुनिके दर्शनोंको चला (सर्ग-४)। गौतम मार्गमें ही मिल गये। नंदने मुनिसे घर चलकर भिक्षा लेनेका अनुरोध किया, परंतु गौतमने उसे स्वीकार नहीं किया, तथा उसके ऊपर (प्रव्रज्या-दान रूपी) अनुग्रहकी बुद्धिसे भिक्षापात्र उसीके हाथमें दे दिया। परंतु भिक्षा-पात्र हाथमें होनेपर भी जब नंद घर लौटनेकी इच्छासे मार्गसे हटने लगा, तब गौतम अपनी दिव्य शक्तिके-द्वारा उसका मार्गविरोध करके बलात् नंदको संघमें ले गये। वहाँ उपदेश देकर उसे दीक्षित होनेको कहा। लज्जावश एक बार हाँ कहकर फिर स्पष्टतः मना करनेपर भी किसी-किसी तरह समझा-बुझाकर गौतमने प्रियाकी यादमें रोते हुए उस नंदका भिक्षुओं-द्वारा मुंडन कराकर उसे आनंदके शिष्य रूपमें भिक्षु बना लिया (सर्ग-५)।

छठे सर्गमें नंदकी नव परिणीता पत्नी सुंदरीका नाना संकल्प-विकल्पोंसे युक्त अत्यंत कारुणिक विलाप है, जिसे पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक द्रवीभूत हुए बिना नहीं रहता।

सातवें सर्गमें नंदका विलाप है, और प्रियाके स्मरणसे उत्पन्न नंदकी दुःखद अवस्थाका अतिशय मार्मिक चित्रण है। नंद एक ओर भौतिक सुखके सर्वसाधन-संपन्न अपने महलमें लौटकर अपनी दिव्य रूपवती पत्नी सुंदरीके साथ समस्त इंद्रिय भोगोंको भोगना चाहता है, दूसरी ओर गुरु और उनके प्रति भक्ति व लज्जा उसे घर जानेसे रोकते हैं। इस अंतर्द्वंद्वमें नंदकी स्थिति प्रतिक्षण और भी अधिक दुःखद होती जाती है और इसी अंतर्द्वंद्वकी स्थितिमें कामसे अभिभूत होनेवाले पूर्व मुनियोंके चरित्रोंका स्मरण कर (७.२५-७.५०) एक दिन ऐसा आ ही जाता है जब वह 'कुलीन व्यक्तिके लिए भिक्षुवेष ग्रहण करके छोड़ना उचित नहीं, यह जो मेरा विचार है, वह भी नष्ट हो जाता है, यह सोचकर कि वे वीर नृपति तपोवनको छोड़कर अपने घरोंको लौट गये', इस विचारधाराके द्वारा अपने विवेकको तिलांजलि देकर घर लौट जानेका निश्चय कर लेता है। उसके अश्रुपूर्ण लोचन और इस प्रकारकी मानसिक स्थितिसे एक निकटवर्ती भिक्षु उसके उस निश्चयको भाँप लेता है, और नाना प्रकारसे स्त्री शरीरकी अशुचिता, रोगोंका घर आदि उपदेशोंके द्वारा उसे भिक्षु जीवनमें स्थिर करनेका प्रयास करता है (सर्ग ७)। विश्वास प्राप्त कर लेने-पर नंद अपने अंतर्मनकी बात स्पष्ट रूपसे भिक्षुसे कह देता है कि प्रियतमाके बिना एक क्षण भी उसका मन यहाँ नहीं लगता। भिक्षु उसे फिर समझाता है, कहता है—तू फंदेमें-से निकलकर फिर उसीमें फंसना चाहता है, तू अपने ही वमन (त्यक्त पत्नी और कामभोग) को फिरसे खाना चाहता है आदि, और नाना प्रकारसे स्त्रीकी निंदा करता है (सर्ग ८)। पर नंदके ऊपर इस सब उपदेशका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भिक्षु जब उसे समझाकर हार गया, तब नंदकी मनःस्थिति गौतमसे आकर कह दी। (सर्ग ९)। नंदने गौतमके सामने भी अपना घर लौट जानेका निश्चय दृढ़तासे साफ-साफ कह दिया। तब गौतम पुनः अपनी दिव्य शक्तिका प्रयोग कर नंदको स्वर्ग ले गये। वहाँकी अप्सराओंका रूपविलास एवं उन्मुक्त मादक क्रीड़ाएँ देखकर नंदका चित्त उनमें मोहित हो गया और वह अपनी प्रियाको भूलकर स्वर्गकी अप्सराओंकी प्राप्तिके लिए तप करने लगा। नंदको स्वर्ग-सुखोंके ध्यानमें लगे देखकर आनंदने उसे उन सुखोंकी विनश्वरताका ज्ञान कराया (सर्ग १०), और नाना प्रकारसे स्वर्गकी निंदा की (सर्ग ११)। अंतमें नंदका हृदय शुद्ध हो गया और वह सच्चा वीतराग बनकर सन्मार्गपर लौट आया। अब उसने गौतम बुद्धके समक्ष पूर्ण आत्मसमर्पण कर दिया और शुद्ध निर्वाण-मार्गपर चलने लगा (सर्ग १२)। आगेके चार सर्गोंमें चार आर्यसत्य आदि बौद्ध दार्शनिक तत्त्वोंकी व्याख्या की गयी है। तथा सत्रहवें सर्गमें नंदको अर्हत् पद प्राप्त होनेका वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह कथा जंबूस्वामीके केवली बनने तकके वृत्तांतसे समानता रखती है।

नंदके इस आख्यानसे जंबूस्वामीचरित कथाका संबंध स्थापित करते समय यह प्रश्न उठना

स्वाभाविक है कि क्या वसुदेव-हिंडीके रचयिता संघदासको अश्वघोषकी यह उत्कृष्ट काव्य कृति उपलब्ध हो सकी होगी या नहीं ? इस संबंधमें ऐतिहासिक स्थिति यह है कि १०वीं शती ई० तक नालंदा, (बिहार) वलभी (गुजरात) तथा १२वीं शती ई० तक विक्रमशिला (भागलपुर, बिहार) के बौद्ध विश्वविद्यालय अपने चरम उत्कर्षपर रहे, तथा वे संपूर्ण भारत देशके सबसे बड़े अध्ययन केंद्र थे। इन विश्वविद्यालयोंमें संस्कृतका अध्ययन अनिवार्य रूपसे किया जाता था, और इनकी साहित्य संपत्तिका कोई पारावार नहीं था।[1] इस परिस्थितिमें महाकवि अश्वघोषकी ऐसी सुंदर काव्य-कृतिका अत्यंत लोकप्रिय एवं सर्वप्रचलित होना एक बिलकुल सामान्य बात है, और जैन विद्वानोंके सदासे उदार व्यापक एवं जिज्ञासु दृष्टिकोण-को ध्यानमें रखकर यह बात और भी अधिक बलपूर्वक कही जा सकती है कि संघदास गणि जैसे महान् साहित्यकारने ऐसी सर्वप्रसिद्ध तथा महान् काव्य रचनाका अध्ययन अवश्यमेव किया होगा! स्वयं वसुदेव-हिंडीके अध्ययनसे यह प्रतीत होता है कि जंबूके जीवनचरितके साथ भवदत्त-भवदेवकी कथाका कोई घनिष्ठ वास्तविक संबंध नहीं है, तथा उसके साथ यह कथा बिलकुल अलगसे बादमें जोड़ी गयी है, यह बात वसु० हिंडीके कथा-विश्लेषणसे स्वतः झलकती है। जंबूस्वामीकी कथाको रसात्मक बनानेके हेतुसे नाम बदलकर बाहरकी किसी कथाको समाविष्ट कर लेना कोई असाधारण घटना नहीं है। नंद तथा भवदत्तके आख्यानोंके कथा-तत्त्वोंका तुलनात्मक विश्लेषण करनेसे भी उपर्युक्त कथनकी पुष्टि होती है।

नंद और उसकी पत्नी सुंदरीका परस्पर अत्यंत प्रगाढ़ अनुराग; एक ही पिताके सगे-मौसेरे भाई बुद्ध द्वारा उसे निर्वाण मार्गपर लगानेका प्रयत्न, नंदके घर जाना, किसीका ध्यान बुद्धकी ओर न जानेसे भिक्षा न मिलना, बुद्धका रिक्त भिक्षापात्र हाथमें लिये घरसे बाहर लौट पड़ना; एक सेविकाके द्वारा नंदको यह सूचना मिलनेपर, शीघ्र लौट आनेका वचन देकर, पत्नीकी अनुमति ले उसीका रूप चिंतन करते हुए बुद्धके दर्शनोंको जाना, और बुद्धके द्वारा अनुग्रह बुद्धिसे नंदके हाथमें रिक्त भिक्षा-पात्र दिया जाना, नंदकी घर लौटनेकी प्रबल इच्छा, बुद्ध-द्वारा उसे दिव्य शक्तिसे व्यामोहित कर संघमें ले जाना; नंदकी अनिच्छा और स्पष्ट अस्वीकार करनेपर भी उसका सिर मुंडाकर उसे प्रव्रजित कर लेना, नंदका विलाप और सुंदरीका ही निरंतर चिंतन, उसे समझानेके सब प्रयासोंकी विफलता होनेपर बुद्ध-द्वारा उसे स्वर्गदर्शन, और फिर स्वर्ग सुखोंकी भी क्षणिकता दिखलाकर सच्चे निर्वाण मार्गपर लगा देना, तथा अंततः नंदका अर्हत् होकर निर्वाण लाभ; इस कथाके ये मूलतत्त्व हैं। जंबूचरित-कथामें किंचित् परिवर्तन-परिवर्द्धनके साथ ये सभी तत्त्व सन्नि-हित हैं। बुद्ध-द्वारा नंदके घर जानेसे लेकर नंदकी दीक्षासे उसे सच्चा वैराग्य होने तकका वृत्त भवदत्त-भव-देवके वृत्तांतसे पूर्णतया समान है। नंद और बुद्धके सशरीर स्वर्गगमनसे भवदत्त-भवदेवके मृत्युके उपरांत स्वर्गगमनकी तुलना की जा सकती है। शिवकुमार सागरदत्त-भवकी कथा विशेष महत्त्वकी नहीं है। तथा जंबूकी मोक्ष-प्राप्ति नंदके निर्वाणके समान है। अतः जंबूस्वामीकी कथामें आद्योपांत सौंदरनंदकी कथाको पिरो लेना संघदास जैसे जैन साहित्यकारके लिए अत्यंत स्वाभाविक प्रतीत होता है।

वीर कविने पाँचों भवोंमें प्रथम बारके भ्रातृत्व संबंधको पूर्वजाति-स्मरण-द्वारा स्थायी बनाये रखा और इस प्रकार पहले जन्मके बड़े भाई भवदत्तके द्वारा बार-बार छोटे भाई भवदेवके जीवको बोध प्रदान किया, व अंतमें वही उसके पाँचवें जन्ममें मोक्षप्राप्तिमें उसका साक्षात् गुरु और मार्गदर्शक बना, एक यह तथ्य; और दूसरे भवदेवके अंतर्द्वंद्वका मार्मिक काव्यमय-चित्रण, दो बातोंसे ऐसा अनुमान होता है कि संभवतः स्वयं वीर कविने भी अश्वघोषके सौंदरनंदका गंभीरतासे अध्ययन किया, जिससे वह अपने काव्य वर्णनमें इतनी सजीवता और मार्मिकता ला सका। इस संबंधमें जैन कथाकारोंकी एक विशेषता यह है कि उन्होंने भवदेवकी पत्नीके द्वारा ही प्रथम भवमें उसे सच्चा बोध प्रदान कराकर भारतीय नारीके चरित्रको बहुत ऊँचा और सदाके लिए आदर्श तथा महनीय बना दिया है। नारी चरितका ऐसा परम उत्कर्ष प्रेम, विरह और अंतर्द्वंद्वके मार्मिक-रसात्मक स्थल एवं मानव-जीवनके सर्वोत्कृष्ट ध्येयकी उपलब्धि, इन सब तत्त्वोंने जैन-परं-

१. बौद्धधर्मके २५०० वर्ष।

परामें जंबूस्वामीके कथानकको इतना अधिक लोकप्रिय बना दिया कि वर्तमान काल तक वह कथा काल-समुद्रको उत्ताल तरंगोंके प्रचंड थपेटोंका अतिक्रमण करती हुई, अखंड-अविच्छिन्न रूपसे निरंतर गतिशील और प्रवहमान रही। तथा ५वीं शती ई० से लगाकर २०वीं शती ई० तक प्रत्येक शतीके उत्तर भारतके गुजरात, राजस्थान, मालवा, मध्यप्रदेश, एवं उत्तर प्रांत, इन सभी क्षेत्रोंमें विविध भाषा और शैलियोंमें छोटे-बड़े-मध्यम सभी आकारोंमें अनेक रचनाएं जंबूस्वामीके जीवनके विविध पक्षोंको लेकर प्रणीत की जाती रहीं, जिनकी संख्या लगभग एक सौ तक जा पहुँची है। इन रचनाओंका कालक्रमानुसार विवरण निम्न प्रकार है—

जंबूस्वामी विषयक रचना-सूची

*१. वसुदेव-हिंडीमें 'कथोत्पत्ति' नामक प्रकरण—संघदास गणि, ५वीं ६ठी शती विक्रम, आर्ष जैन महाराष्ट्री प्राकृत, सर्वप्राचीन कथानक, आगेकी जंबूस्वामी विषयक समस्त रचनाओंका आधार।

२. 'रिट्ठणेमिचरिउ' के अंतर्गत—स्वयंभू देव, ई० सन् ७०० के लगभग, अपभ्रंश।

*३. धर्मोपदेशमालाविवरण—जयसिंहसूरि, वि० सं० ९१५, महाराष्ट्री प्राकृत, संक्षेपमें कुछ पंक्तियाँमात्र, फुटकररूपमें जंबूस्वामि चरित्रकी चार कथाएँ उपलब्ध हैं (देखें : प्रस्ता०—५ 'कथासारिणी')।

*४. उत्तरपुराण, ७६वाँ पर्व—गुणभद्राचार्य, वि० सं० ९५५ के पूर्व, संस्कृत, २११ श्लोक।

*५. 'तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार' (महापुराण) १००वीं संधि—पुष्पदंत, वि० सं० १०१५-१०२१, अपभ्रंश।

*६. जंबूचरियं—मुनि गुणपाल, वि० सं० १०७६ के पूर्व, महाराष्ट्री-प्राकृत, १६ उद्देशक।

७. जंबूसामिचरिय—पं० सागरदत्त, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्रंथाग्र २६००, बृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५-३०७ के अनुसार।

जंबूसामिचरियटिप्पण—गुजराती, ग्रंथाग्र ११००, बृहट्टिप्पणिकाकी सूची, क्र० ३०५-३०७ के अनुसार।

*८. जंबूसामिचरिउ—कवि वीर, वि० सं० १०७६, अपभ्रंश, ग्यारह संधियाँ, प्रस्तुत रचना।

९. 'कहावली' के अंतर्गत—भद्रेश्वर, ई० सन् ११०० के लगभग, प्राकृत।

१०. (क) 'उपदेशमाला' पर 'विशेषवृत्ति' : या 'दोघट्टी वृत्ति' के अंतर्गत—वृत्तिकार रत्नप्रभसूरि, वि० सं० १२३८, संस्कृत।

*(ख) कर्पूर प्रकरणटीकाके अंतर्गत—(१) जिनसागरसूरिकृत, (२) प्रतिष्ठासोमकृत, संस्कृत, अति संक्षिप्त, एक पृष्ठ मात्र।

*११. परिशिष्टपर्व—हेमचंद्राचार्य, वि० सं० १२१७-१२२९ के बीच, संस्कृत, चार पर्व, गुणपाल कृत 'जंबूचरियं' के अनुसार।

*१२. धर्माभ्युदय महाकाव्य, अष्टमसर्ग मात्र—उदयप्रभसूरि, वि० सं० १२७१-९० के बीच, संस्कृत एक सर्ग।

*१३. जंबूस्वामिचरित्र—महेंद्रसूरिके शिष्य धर्ममुनि, वि० सं० १२६६, पुरानी गुजराती, ४१ कड़ियाँ, ५ पत्र, गुज० भाषामें अबतक प्राप्त सर्वप्रथम कृति (प्रा० गु० का० सं० में प्रकाशित)।

१४. जंबूचरित्र—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १२९९, अपभ्रंश, (ग्रन्थ सूची, जैन ग्रन्थावली भाग—२)।

१५. जंबूस्वामी फाग—कर्ता अज्ञात, वि० सं० १४३०, पुरानी गुजराती, प्रा० गु० का० सं०में प्रका०।

*१६. जंबूस्वामीचरित्र-काव्य—जयशेखरसूरि, वि० सं० १४३६, संस्कृत, ७२६ श्लोक प्रमाण, छह-प्रकरण। जय शेखर सूरि अंचल गच्छके भट्टारक थे। यह कथानक उनकी स्वोपज्ञ उपदेश-चिंतामणि-वृत्तिके अंतर्गत आया है। इसमें कथा प्रारंभ आर्यवसु-ब्राह्मण, सोमशर्मा ब्राह्मणी, भवदत्त-भवदेव पुत्र, सीधे यहींसे होता है। भवदेवकी दीक्षाके वृत्तमें भी कुछ भेद है। पहली बार जब भवदत्त, भवदेवको दीक्षित करनेकी इच्छासे घर गये तो वहाँका राग-रंग देखकर स्वयं उनका मन विचलित

हो उठा और वे शीघ्र वहाँसे संघमें लौट आये। संघमें मुनियों-द्वारा व्यंग्य किये जानेपर पुनः भवदेवके घर गये और उसे किसी तरह संघमें लाकर दीक्षित किया।

१७. जंबूस्वामीनो विवाहलो—पींपल गच्छीय हीरानंदसूरि, वि० सं० १४९५। सांचोरमें वैशाख शुक्ल अष्टमीके दिन रचना पूर्ण हुई। पुरानी गुजराती।

१८. जंबूस्वामीचरित—रत्नसिंह सूरिके शिष्य, वि० सं० १५१६, रचयिताने अपना नाम न देकर केवल अपने गुरुका नामोल्लेख किया है।

*१९. जंबूस्वामी चरित्र—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, संस्कृत ११ संधियाँ, पूर्णरूपसे वीर कृत अपभ्रंश 'जंबूसामिचरिउ' का संस्कृत रूपांतर, इसी संपादक-द्वारा संपादनाधीन इसकी अनेक प्रतियाँ आमेर, आरा, जयपुर, बंबई, ब्यावरके जैन भंडारोंमें विद्यमान हैं।

२०. जंबूकुँवर रास—ब्रह्म जिनदास, वि० सं० १५२०, पुरानी जयपुरी हिन्दी, ११ संधियाँ,

*२१. जंबूस्वामि चौपाई—जिनभद्र सूरि, वि० सं० १५२२ आश्विन पूर्णिमाके दिन नंदेसमें लिखित, पुरानी जयपुरी हिन्दी (पद्यात्मक), पत्र ११, अरहन्नगादि प्राचीन जैन मुनियोंके नामोल्लेखोंकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण।

२२. जंबूस्वामिपंचभव-वर्णन चौपाई—देपाल भोजक, वि० सं० १५२२, लगभग १७९ गाथा प्रमाण।

*२३. प्रभव-जंबूस्वामि वेलि—वि० सं० १५४८ आसोज बदी आठम, पुरानी राजस्थानी हिंदी, पत्र ५; कुल २३ सुंदर गेय पद्य, प्रभव-जंबू वार्तालापसे प्रारंभ।

२४. जंबूस्वामिचरित्र—सकलचंद्र (वि० सं० १५२०) के शिष्य भुवनकीर्त्ति, वि०१६वीं शती, प्राकृत। ये भुवनकीर्ति संभवतः दिग० परंपराके थे।

*२५. जंबू अंतरंग रास अथवा जंबूकुमार विवाहलो—सहजसुंदर, वि० १६वीं शती, राधनपुर नगरमें लिखित, पुरानी गुज० मिश्रित हिंदी, पत्र ४, ५ ढालें, ६४सुंदर गेय पद्य, अंतमें एक दोहा। यह लघुकृति सुंदर काव्यकी रीतिसे प्रतीकात्मक शैलीमें रची गयी है, और लौकिक वधुओंको त्यागकर इसमें जंबूस्वामीका सिद्धि (मोक्ष) रूपी वधूसे परिणय वर्णित है।

२६. जंबूस्वामी गीता—वि० सं० १५९३, गुज०, पत्र-५, (जैनग्रन्था० भाग० २)।

२७. जंबूस्वामी रास (पंचभव चरित्र)—विजयगच्छीय मल्लिदास, वि० सं० १६१९, गुज० मिश्रित हिंदी, ३० ढालें।

२८. जंबूकुमार रास—पीपलगच्छीय विमलप्रभ सूरिके शिष्य राजपाल, वि० सं० १६२२, गुज० मिश्रित हिंदी, २७ श्लोक प्रमाण, लगभग ९५५ कड़ियोंमें रचित।

२९. जंबूचरित—उपा० पद्मसुंदर नागौरी, वि० सं० १६२६-३९ के बीच, प्राकृत। इनके गुरु तपा-गच्छीय पद्ममेरु थे, और दादागुरु आनंदमेरु थे, जो अकबरके एक सभासद् थे। ये कवि चक्रवर्तीके नामसे भी प्रसिद्ध थे।

*३०. जंबूस्वामिचरित्रम्—पं० राजमल्ल, वि० सं १६३२ आगरेमें रचित, संस्कृत, १३ पर्व, वीरकृत अपभ्रंश जं० सा० च० के आधारसे, लगभग उसीका संस्कृत रूपांतर (प्रकाशित)।

३१. जंबूस्वामिचरित्र—पांडे जिनदास, वि० सं० १६४२, मूल संस्कृतका भाषा। (हिंदी) रूपांतर कर्त्ता पांडे जिनदास; छंदोबद्ध कर्त्ता लमेचू नाथूराम; शुद्ध हिंदी गद्यानुवाद सूरतसे प्रकाशित।

३२. जंबूरास—खरतरगच्छीय गुणविनय, वि० सं० १६७०, बाहडमेर ग्राममें रचित, पुरानी राजस्थानी।

*३३. जंबूस्वामि चरित्र—भावशेखर शाह, वि०सं० १६८४, पाटन नगर नामक ग्राममें रचित, राजस्थानी-गुज० मिश्रित, ग्रन्थाग्र २१००, गाथाएँ ११००, पत्र १ से ६ नहीं, ७ से ३६ हैं। इसके रचयिता भावशेखर अंचलगच्छ, श्रीमालिवंश, चंद्रकुल और प्रसिद्ध पालीताणीया शाखाके थे। इनकी गुरु परंपरा इस प्रकार थी : भवनतुंगसूरि—वाचक कमलशेखर—पुण्यशेखर—विवेकशेखर—गणिविजय-शेखर—भावशेखर शाह।

३४. जंबू चौपाई—तपागच्छीय कमलविजय, वि० सं० १६९२ सिवाणा ग्राममें रचित, राज० गुज० मिश्रित।

*३५. जंबूकुमार चौपाई अथवा जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय ज्ञाननंदि वाचकके शिष्य–पाठक भुवनकीर्ति गणि द्वितीय, वि० सं० १७०५, श्रावण सुदी १, बुहनिपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, पत्र ३६; ४ अधिकार; दोहा, ढाल सब मिलाकर १३५३ सुंदरगेय पद्योंमें रचित, परिशिष्ट पर्व (हेमचंद्र) के आधारसे।

३६. जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय पद्मचंद्र, वि० सं० १७१४, सरिसा पाटनमें रचित, राज०-गुज० मिश्रित, लगभग १५११ गाथा प्रमाण, परि० पर्वके आधारसे।

३७. जंबू चौपाई—खरतरगच्छीय जिनसागर सूरिके शिष्य: कवि उदयरत्न, वि० सं० १७२०, राज०-गुज० मिश्रित।

*३८. जंबूपृच्छा रास अथवा कर्मविपाक रास—वीरजी मुनि, वि० सं० १७२८, पाटन नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, १३ ढालें। इसमें जंबूस्वामीके प्रश्न हैं, जिनका उत्तर सुधर्मा द्वारा दिया गया है। भीमसी माणेक-द्वारा प्रकाशित।

३९. जंबूरास—धर्ममंदिर, वि० सं० १७२९, मुलतान नगरमें रचित, राज०-गुज० मिश्रित, धर्ममंदिर व सुमतिरंग दोनोंकी ये रचनाएँ एक ही वर्षमें एक ही स्थानमें रहकर लिखी गयीं। अतः तुलनात्मक दृष्टिसे ये अवश्य अध्ययनीय हैं। संपादकको ये रचनाएँ उपलब्ध नहीं हो सकीं।

४०. जंबूस्वामी चौपाई—खरतरगच्छीय सुमतिरंग, वि० सं० १७२९, मुलताननगरमें रचित राज०-गुज० मिश्रित।

४१. जंबूकुमार रास—तपागच्छीय चंद्रविजय, वि० सं० १७३४, ग्राम कोरडादेमें रचित, राज०-गुज० मिश्रित, ८५२ गाथा प्रमाण।

*४२. जंबूस्वामी रास—तपागच्छीय कविराज धीरविमलके शिष्य नयविमल, वि० सं० १७३८, मार्गशीर्ष शुक्ल १३ सोमवार, ग्राम थिरपुर नगरमें रचित, राज० गुज० मिश्रित, ३५ ढालें (पत्र ३५) प्रकाशित।

*४३. श्रीजंबूस्वामी ब्रह्मगीता—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३८ (खंभातमें रचित), गुजराती, पत्र २, लघु कृति मदनपराजय (अपभ्रंश) की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु० सा० सं० भाग १ में प्रकाशित।

४४. जंबूस्वामी रास—उपा० यशोविजयजी, वि० सं० १७३९, खंभातमें रचित गुजराती, ५ अधिकार, ३७ ढालें, मदनपराजय (अपभ्रंश)की प्रतीकात्मक शैलीमें रचित, गु०सा०सं० भाग २ में प्रकाशित।

४५. जंबूस्वामी रास—तपागच्छीय उदयरत्न, वि० सं० १७४९, ग्राम खेडा हरियाणामें रचित, गुजराती, ६६ ढालें, लगभग २५०० गाथाएँ।

४६. जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय यशोवर्धन, वि० सं० १७५१।

४७. जंबूस्वामी रास—खरतरगच्छीय जिनहर्ष, वि० सं० १७६०, ४ अधिकार, ८० ढालें, लगभग १६५७ गाथाप्रमाण।

४८. जंबूकुमार रास—कडवागच्छीय लाधाशाह, वि० सं० १७६४, ग्राम सोहीमें रचित, ३२ ढालें।

४९. जंबूस्वामी स्तवन—भाग्यविजय, वि० सं० १७६६, १४ श्लोकप्रमाण।

*५०. जंबूसामिचरित्तं—(पूर्व) मुनि जिनविजय, वि० सं० १७८५-१८०९ के बीच, प्राकृत, प्रकाशित।

५१. जंबूस्वामी चौढालिया—खरतरगच्छीय विनयनंदके शिष्य श्री दुर्गादास, वि० सं० १७९३।

*५२. जंबूकुमार रास—नयविजय विबुधके शिष्य, वाचक जसविजय, वि० सं० १७९९, खंभनगरमें रचित, राजस्थानी, पत्र ४४।

५३. जंबूचरित—श्री चेतनविजय, वि० सं० १८०५, अजीमगंजमें रचित, राजस्थानी।

५४. जंबूस्वामी चरित्र—विजयकीर्ति, वि० सं० १८२७, हिंदी पद्य, पत्र २०, जयपुर शास्त्र भंडारमें उपलब्ध।

५५. जंबू चोपाई—श्री चंद्रभाण, वि० सं० १८१८, ग्राम बोडावडमें रचित, राजस्थानी, ३५ ढालें।

५६. जंबूकुमार चरित—श्वे० तेरापंथके संस्थापक आचार्य भीखणजी; लगभग वि० सं० १८५०, राज०, ४६ ढालें, गाथाओंके ऊपर २१५ दोहे, ७८८ गाथाएँ, परि० पर्वके आधारसे, भि० ग्र० रत्ना० द्वि० खंड, प्रका० श्वे० तेरा० महा० कलकत्ता।

५७. जंबूस्वामि चरित्र—श्रीचेतनविजय, वि० सं० १८५२-५३, हिंदी, पत्र ३०।

५८. जंबूकुमार चोढालिया—श्री सौभाग्यसागर, वि० सं० १८७३, पाटनमें रचित, भीमसी-माणेक-द्वारा प्रकाशित।

५९. जंबूस्वामी श्लोक—श्री लब्धिविजय, वि० १९वीं शती।

*६०. जंबूस्वामी कथा—विजयशंकर-विद्याराम. वि० सं० १९१४, द्वि० ज्येष्ठमास कृष्णपक्ष सोमवार, भीनगरमें रचित, गुज० परक हिंदी, पत्र, २०; छंदरहित गद्यात्मक पद्यशैली, जंबूस्वामीचरितकी २३ अंतर्कथाओंसे युक्त।

*६१. जंबूस्वामी गुणरत्नमाला—ओसवाल श्रावक जेठमल चोरडिया, वि० सं० १९२०, आषाढ़ कृष्ण-५, (जयपुर) पुरानी राजस्थानी, पत्र-३०, प्रकाशित।

*६२. जंबूस्वामी चौपाई—कर्ता अज्ञात, रचनाकाल अज्ञात, राजस्थानी, पत्र-४ पहले पाँच पृष्ठोंमें राजुल कथा; अंतमें एक पृष्ठमें अतिसंक्षेपमें जंबूस्वामीके जन्मसे लेकर मोक्षगमन पर्यंतकी कथा।

*६३. जंबूस्वामी चरित—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, संस्कृत गद्य, पत्र-३, सरल शैली, छोटे-छोटे वाक्य, संक्षिप्त कथा।

*६४. जंबूस्वामी चौपाई—रचयिता व रचनाकाल अज्ञात, पुरानी राजस्थानी, पत्र-२, पृ० ३, अपूर्ण, भवदेवके जन्मसे कथा प्रारंभ, विविध जन्मोंकी रूपरेखा प्रस्तुत करके जंबूस्वामी जन्म, व प्रभवके साथ वार्तालापमें महेश्वरदत्तके आख्यान पर आकर कथा अपूर्ण समाप्त।

*६५. जंबूकुमार रास—श्रीबालचंदगणीके शिष्य लोंकागच्छके नायक मुनि भूधर, संवत् भारवनस्पति भाषुदाषु: मुनिवर वर्ष (?) आश्विन मास विजयादशमी, पुरानी राजस्थानी, पत्र-१४।

*६६. जंबूचरित अथवा जंबूस्वामी अज्झयण—(संभवतः) पद्मसुंदरगणि, रचनाकाल अज्ञात अर्द्ध-मागधी अपभ्रंश, १६ पत्रोंसे लगाकर ६० पत्रों तकमें लिखित अनेक प्रतियाँ उपलब्ध। १९ उद्देसक, यह बहुत महत्त्वपूर्ण रचना है। इसके जंबुअज्झयण, जंबूपयण्णा, जंबूस्वामि कथानक, जंबूचरित्र एवं जंबूस्वामि अज्झयण ये अनेक नाम प्रचलित हैं। इसपर अनेक बालावबोधों व टिप्पणोंकी रचना हुई है। यह कृति भी इसी संपादकके संपादनाधीन है।

(क) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १७९०, पुरानी गुजराती।
(ख) जंबूचरित्र बालावबोध—श्री सुंदरगणि, वि० सं० १७९५ से पूर्व, पुरानी गुजराती।
(ग) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १८०८, पुरानी गुजराती।
(घ) जंबूचरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१२, पुरानी गुजराती।
(ङ) जंबू अध्ययन चरित्र बालावबोध—वि० सं० १८१६ से पूर्व, पुरानी गुजराती।
(च) जंबूस्वामीकथानक—वि० सं० १८२९, पुरानी गुजराती।

६७. जंबूस्वामीकुलक—प्राकृत, प्रकीर्ण ग्रन्थसंग्रह। (जैन ग्रंथा० २)

६८. जंबूचरित्र—अज्ञात, (जैन ग्रंथा० २)

६९. जंबूचरित्र—(संभवतः) संघवद्र, अपभ्रंश, केवल २० गाथाएँ, (जैन ग्रन्था० २)

७०. जंबूचरित्र—प्रद्युम्नसूरि; दादागुरु प्रद्युम्न, गुरु वीरचंद्र, प्रारंभ : पढमभवे भवदेवो नहियवओ पढम-सुरपवरो। रायधुयसिवकुमारो कय-बारसवास-तव-सारो ॥१॥ अंत : बारस नवाणुए मइय सिय पक्खि गुरि समुद्धरियं। पज्जाती भावाए भवियव्वं संघबहुकए ॥२०॥

७१. जंबूचरित्र—गुजराती, पत्र ४४, ७२५ श्लोक प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २)।

७२. जंबूस्वामीश्लोको—लब्धिविजय, पत्र ३, ४५ श्लोक प्रमाण (जैन ग्रन्था० २)।

७३. जंबूचरी—गुजराती, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २)।

७४. जंबूस्वामी कथा—नयविमल, गुजराती, पत्र ९, (जैन ग्रंथा० २)।

७५. जंबूस्वामिचतुष्पदी—गुजराती, २७५ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

७६. जंबूस्वामीस्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, ११ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

७७. ,, ,,—गुजराती, पत्र १, १६ श्लो० प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

७८. जंबूकुमार स्वाध्याय—गुजराती, पत्र १, (जैन ग्रंथा० २)।

७९. जंबूनाटक—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८०. जंबूस्वामिचरित्र—रत्नशेखर, (मुद्रित जैन-ग्रंथावलि)।

८१. जंबूचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८२. ,, ,,—मूल संस्कृत (?) गुजराती भाषांतर, वि० सं० १९५०, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८३. जंबूस्वामिचरित्र—गुजराती, (मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८४. ,, ,,—(मुद्रित जैन ग्रंथावलि)।

८५. जंबूस्वामीचरित्र—१६४४ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रंथा० २)।

८६. ,, ,, पद्मसुंदर, प्राकृत, ७५० गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २)।

८७. ,, ,, संस्कृत, पत्र १४, (जैन ग्रंथा० २)।

८८. ,, ,, संस्कृत गद्य, ८९७ गाथा प्रमाण, (जैन ग्रन्था० २)।

८९. ,, ,, सकलहर्ष, पत्र ११, (जैन ग्रन्था० २)।

*९०. ,, ,, मानसिंह, संस्कृत पद्य, ग्रंथाग्र ११००, (जैन ग्रन्था० २)। (यह ग्रंथ भी इसी संपादकके संपादनाधीन है)।

९१. ,, ,, पत्र ५०, (जैन ग्रन्था० २)।

९२. जंबूस्वामीकथा—प्राकृत, (जैन ग्रन्था० २)।

९३. जंबूस्वामिचरित्र—जिनदत्त, (जि० र० कोश)।

९४. ,, ,, विद्याभूषण, (जि० र० कोश)।

९५. ,, ,, पं० दीपचंद्रवर्णी, सन् १९३९ (मथुरा), हिंदी, प्रकाशित।

नोंध :—उपर्युक्त सूची डा० र० शा० चि० का० शाह द्वारा संपादित उपा० यशो० कृत जंबूस्वामीरासकी प्रस्ता०; जैन ग्रन्थावली भाग–२; मुद्रित जैनग्रन्थावली; जिनरत्नकोश; तथा भ० ओ० रि० इं० पूना, ओरि० रि० इं० बड़ौदा एवं ला० द० भारती सो० सं० अहमदाबादकी हस्तलिखित प्रतियों-की सूचियों एवं अंतिम तीन संस्थाओंके निदेशकों व संग्रहाध्यक्षोंके सौजन्यसे प्राप्त जंबूस्वामी-चरितविषयक पोथियोंके आधारसे प्रस्तुत की गयी है। संपादकने इस सूचीमें तारा *चिह्नांकित ग्रन्थों व पोथियोंका स्वयं अध्ययन किया है।

७. जम्बूस्वामी-चरितकी अंतर्कथाएँ

मूल कथाओंसे संबंध, संस्कृत, अपभ्रंश जंबूस्वामी-चरितोंमें उपलब्ध कथाओंका तुलनात्मक विश्लेषण एवं अंतर्कथाओंका महाकाव्यकी दृष्टिसे औचित्य तथा मूल्यांकन एवं कथानक रूढ़ियोंका विश्लेषण :

'जंबूसामिचरिउ'में लघु अंतर्कथाओंकी श्रृंखला उस स्थानसे प्रारंभ होती है, जब जंबूस्वामी विवाहके उपरांत चारों वधुओंके साथ मातृगृहके भीतर एकांतमें आकर उन वधुओंके बीच निर्विकार भावसे बैठ जाते हैं। वधुएँ प्रथमतः अपनी शारीरिक चेष्टाओं, सुंदर अंग-प्रत्यंगोंके प्रदर्शन तथा नाना प्रकारके हाव-भाव विलास, तीखे कटाक्ष एवं मधुरता पूर्वक वात्स्यायनके कामसूत्रके पाठ आदिके द्वारा जंबूस्वामीको अपने रूप-यौवनके पाशमें फँसाना चाहती हैं, पर जंबूस्वामीके विवेकपूर्ण हृदयपर इन सबका किंचिन्मात्र कोई भी प्रभाव नहीं होता और वह हिमाचलके समान अडिग, अडोल बना रहता है। यह अवस्था देखकर वधुएँ निराश होने लगती हैं और अब अपने कथा कौशलसे उसे वशमें करनेका प्रयत्न आरंभ कर देती हैं। इन्हीं कथा-प्रतिकथाओंके रूपमें इन लघु आख्यानोंकी सृष्टि होती है।

यहाँ एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि 'वसुदेव-हिंडी' तथा गुणभद्रकृत 'उत्तरपुराण'में भवदेवके जन्ममें उसे बोध देनेके हेतु उसकी वधू नागिलासे अपने ही वमनको खानेवाले ब्राह्मण पुत्रकी अथवा जैन गणिनी (साध्वी) के मुखसे एक दासीके द्वारा अपने पुत्रको उसीका वमन खिलानेका प्रयत्न करनेकी जो कथा कहलायी गयी है, वह वीर कविकी इस रचनामें नहीं है, यद्यपि उसका यहाँ होना अनुचित नहीं होता। दूसरी मुख्य बात यह है कि उपर्युक्त दोनों ग्रंथोंमें कथाके मध्यमें राजर्षि प्रसन्नचंद्र अथवा धर्मरुचिका जो कथानक है, उसकी जंबूस्वामी चरितकी कथावस्तुसे कोई भी संगति न होनेसे, उसे यहाँ सर्वथा छोड़ दिया गया है।

अणाढिय अथवा अनादृत नामक देवका आख्यान और 'जंबूसामिचरिउ'में केरलके राजा मृगांककी, राजा श्रेणिकसे परिणेय कन्या विलासवतीके निमित्त हुए युद्धका वृत्तांत, ये सब प्रस्तावना—३ में 'मूलग्रंथकी संक्षिप्त कथावस्तुके' अंतर्गत आ गये हैं। अतः यहाँ 'जंबूसामिचरिउ'में वर्णित समस्त लघु आख्यानोंको संक्षेपमें लेकर, उनमें-से जो अन्य प्राकृत-संस्कृत चरितोंमें उपलब्ध हैं, उन्हींका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रसंगमें एक आवश्यक कथ्य यह है कि इस अध्ययनमें वीर कविके पूर्ववर्ती वसुदेवहिण्डी, उत्तर पुराण (गुणभद्र) एवं जंबूचरियं (गुणपाल), तथा पश्चाद्वर्ती चरितकारोंमें संस्कृतमें हेमचंद्र, ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्ल, इस प्रकार प्राकृत-संस्कृत जंबूस्वामी विषयक छह प्रतिनिधि ग्रंथोंको आधार बनाया गया है।

[१] पहली कथा जंबूस्वामीकी सद्यः परिणीता पंकजश्री उन्हींकी ओर संकेत कर अपनी सपत्नियोंको संबोधित करते हुए कहती है, 'सखियो! हमारा यह भर्तार धनहड (धनदत्त) नामक मूर्ख किसानका अनुसरण कर रहा है। धनदत्त नामका एक मूर्ख किसान था। उसकी पहली सुशील—सद्गृहिणी पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर स्वर्ग चली गयी। पुत्र बड़ा होकर घरका सब कार-भार भली भाँति देखने लगा। वृद्धत्वमें दैवसे प्रेरित होकर उसने एक चंचलचित्त और अति कामुक तरुणीसे विवाह किया तथा उसका वशवर्ती होकर रहने लगा। एक दिन अर्द्ध रात्रिको वह अकस्मात् उससे क्रुद्ध होकर शयनपर मुँह फेर कर पड़ रही। बहुत अनुनय-विनय करनेपर कारण बतलाया—घरमें तुम्हारा युवा पुत्र विद्यमान है, मेरे उदरसे जो पुत्र होंगे, वे सब इसके दास बनकर ही जी सकेंगे। अतः इसे मार डालो। मेरे उदरसे जो पुत्र होगें, बुढ़ापेमें उनसे सुख उठायेंगे। पिता-पुत्र संबंध, लोक-लाज, राज-भय और पुत्रकी बलिष्ठताका भी डर, कहीं उलटे-मुझे ही न मार डाले, आदि बतलानेपर भी वह नहीं मानी और पुत्रको सरलतासे मार डालनेका उपाय भी सुझा दिया, 'प्रातःकाल खेतमें जब पुत्र हल चला रहा होगा, तो तुम भी पीछे-पीछे उद्धत बैल और तीखे फल वाला हल लेकर जाना। उसके पीछे हल चलाते हुए उसे दुष्ट बैलसे सींग मरवा देना, फिर हलके तीक्ष्ण फालसे उसको विदीर्ण करके मार डालना! इसमें न राजभय है, न लोक लाजकी चिंता, न पुत्रके बलवान् होनेका डर।' 'साँप भी मरे और लाठी न टूटे' ऐसा उपाय बतलाया। पासके घरमें सोते हुए पुत्रने यह सब

पापयोजना सुन ली और सबेरे ही जाते आकर हरे भरे खेतमें हल चलाकर उसका विनाश करने लगा। पीछेसे किसान आया, तथा यह देखते ही अपना सब षड्यंत्र भूल गया और बोला, अरे! क्या पागल हो गया है, जो हरे-भरे खेतको उजाड़ रहा है? पुत्रने कहा, इसे उखाड़कर इसमें नया धान रोपूँगा। पिताने निंदा की, रे मूर्ख! चला जा! प्राप्यको छोड़कर अप्राप्यकी इच्छा करता है। पुत्रने उत्तर दिया आप भी तो रात्रिमें की हुई सलाहके अनुसार मुझ जैसे पुत्रको मारकर नयी महिलासे अन्य पुत्रोंकी इच्छा करते हैं। इसपर पिता पुत्रका आलिंगन करके रोने लगा। इसी प्रकार हम लोगोंका यह भर्तार (जंबूस्वामी) हम लोगोंको त्याग कर भविष्यमें सुरनारियोंके साथ किन्हीं अपूर्व सुख भोगोंकी उपलब्धिकी आशा करता है।'

यह आख्यान वसुदेव-हिंडी एवं उत्तर पुराण दोनोंमें नहीं है। गुणपाल कृत प्राकृत 'जंबूचरियं'में यह थोड़ेसे परिवर्तनके साथ वर्णित है, तथा ब्रह्म जिनदास (वि० सं० १५२०) और पं० राजमल्ल (वि० सं० १६३२) कृत जंबूस्वामी चरित्रोंमें यह तथा इसमें उपलब्ध अन्य आख्यान भी लगभग जैसे-के-वैसे संस्कृत रूपांतरमें वर्णित हैं। राजमल्लकी रचनामें जिन कथानकोंमें कुछ अंतर है, उन्हें यथास्थान निर्दिष्ट कर दिया गया है। गुणपालके अनुसार पत्नीकी मृत्युके उपरांत पिताका कष्ट देखकर पुत्रने ही पितासे दूसरा विवाह कर लेनेका आग्रह किया। परंतु विवाह योग्य जवान पुत्र घरमें रहनेसे कोई अपनी कन्या उसे देनेको तैयार नहीं हुआ। इसपर किसानने विवाहमें बाधक युवा पुत्रको मार डालनेका निश्चय किया और एक तीक्ष्ण धारवाला फरसा छुपा कर हल चलाने गया, तथा पुत्रको मारनेके अपध्यानमें खड़े खेतमें हल चलाकर उसे ही उजाड़ने लगा। पीछेसे पुत्रने आकर कहा, यह क्या खड़े खेतको उखाड़कर नया धान रोपोगे? किसानको लगा, पुत्रने मेरा आशय जान लिया और सब बात सच कहकर रोने लगा।

इन दो कथानकोंका अंतर गुणपाल-द्वारा वर्णित किसान पिताका चरित्र बहुत नीचे गिरा देता है, कि वह स्वयं पुत्रको मारनेका निश्चय करता है, जबकि 'जंबूसामिचरिउ'का किसान दूसरी तरुण पत्नीके बार-बार अति आग्रह करनेपर एवं अपनी कोई युक्ति न चलनेपर विवश होकर पुत्र घातके लिए प्रस्तुत होता है।

[२] उपर्युक्त आख्यानको सुनकर जंबूस्वामीने प्रत्युत्तर स्वरूप यह कथा सुनायी—'विंध्यपर्वतपर एक बड़ा हाथी वर्षाके पूरसे नर्मदा नदीमें बह कर मर गया। उसके मांसका लोलुपी एक कौवा भी उसके साथ-साथ बहता हुआ समुद्रमें जा पहुँचा और जब वहाँ पहुँचकर चारों ओर देखा तो आश्रयके लिए कोई गाँव, ठाँव, वृक्ष आदि कुछ भी नहीं दिखाई दिया। हाथीको मच्छोंने निगल लिया और कौआ निराश्रय होकर आकाशमें उड़ा तथा अंतमें कांव कांव करता हुआ समुद्रमें डूब कर मर गया। इसी प्रकार विषयासक्त हो तुम लोगोंका सुख भोगता हुआ मैं संसार महासमुद्रमें फँसकर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा।'

वसुदेव-हिंडीमें यह कथा चतुर्थ नीलयशा लंभकके अंतर्गत, ललितांगक देवके-द्वारा उसके पूर्व भवकी कथामें उसके मित्र स्वयंबुद्धके मुखसे कहलायी गयी है और कुछ परिवर्तित रूपमें है—'ग्रीष्म ऋतुमें एक बड़ा हाथी पहाड़ी-पर-से नदीमें उतरता हुआ एक विषम किनारेपर आकर गिर पड़ा। भारी शरीर व अशक्तताके कारण वह वहाँसे उठ नहीं सका, और वहीं मर गया। अनेक पशु-पक्षी आकर गुदा-द्वारसे उसका मांस खाने लगे। इस प्रकार द्वार बड़ा हो जानेपर अनेक कौए उसके पेटमें घुसकर मांस खाते हुए वहीं रहने लगे। आतपके प्रभावसे कदाचित् गुदा द्वार छोटा हो गया, कौवे और प्रसन्न हुए कि अब और भी निर्विघ्न रूपसे यहीं रहेंगे। वर्षाकालमें पूरमें पड़कर हाथी नदीमें बह गया। समुद्रमें जानेपर हाथीको मच्छोंने निगल लिया, कौवे उसके पेटमें-से निकलकर उड़े और कहीं आश्रय न पा समुद्रमें गिर कर मर गये।'

उत्तरपुराणमें यह कथा नहीं है, गुणपाल तथा हेमचंद्र कृत चरितोंमें वसुदेव-हिंडीके कथानकके अनुसार संक्षिप्त रूपमें है—विंध्य पर्वतपर एक बड़ा हाथी किसी प्रकार मर गया। इसके आगे उपर्युक्त कथानुसार और समाप्ति इस प्रकार कि गुदा-द्वार बंद होनेपर (एक) कौवा हाथीके पेटके भीतर ही मर गया[1]। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें वीरके अनुसार ही कथा आयी है।

---

१. तुलना : कथा सरित्सागर, १२वीं तरंग, पृ० ७७ टौनी कृत अनुवाद।

[३] अब कनकश्री बोली—'कैलास पर्वतपर एक बंदर रहता था। एक दिन वह उसके शिखरसे गिरकर चूर-चूर होकर मरा, और तुरंत मणिस्वर्ण-जटित मुकुटको धारण करनेवाला विद्याधर हो गया। किसी दूसरे विद्याधरने इसे देखा और प्रियासे बोला कि यहाँ वानर मरकर विद्याधर हो जाता है, तब यदि विद्याधर मरे तो अवश्य उत्तम देव होगा! ऐसा कहकर रोती हुई प्रियाके द्वारा बार-बार रोके जानेपर भी पर्वत शिखरसे कूद पड़ा और मरकर लाल मुँह वाला बंदर बनकर रह गया।'

वसु० हिंदी तथा उ० पु० में यह आख्यान भी नहीं है। गुणपाल तथा हेमचंद्रमें कुछ परिवर्तनके साथ परिवर्धित रूपमें है। उसका संक्षिप्त सार इस प्रकार है—'भागीरथीके तटपर बंदरोंका एक जोड़ा रहता था। एक दिन वानर तटवर्ती वृक्षपर चढ़ा और प्रमादसे भागीरथीमें गिर गया तथा सुंदर मनुष्य बनकर निकला। वानरी भी उसी वृक्षसे भागीरथीमें कूद पड़ी और सुंदर स्त्री बन गयी। तब मनुष्यने कहा आओ फिर कूद पड़ें, अबकी बार मनुष्यसे देव हो जायेंगे। स्त्रीने मना किया, नहीं माना और फिर कूद पड़ा तथा पुनः बंदर हो गया। स्त्री नहीं कूदी, और दैववशात् निकटवर्ती नगरके राजाकी अग्रमहिषी बनी। बंदरको एक मदारीने पकड़कर नाचना सिखाया और एक दिन उसे राजमहलमें ले गया। वहाँ नाचनेके बाद हाथ फैलाकर माँगते समय बंदरने रानीको देखा और पहचानकर अपनी दुर्गतिपर रोने लगा। रानीने भी उसे पहचान लिया और संबोधित किया, 'तब समझानेपर नहीं माना अब क्यों रोते हो?'

गुणपाल व हेमचंद्रके अनुसार 'रानीको पहचानकर बंदरने अपनी करनीपर पश्चात्ताप किया' यहींपर कथा समाप्त हो जाती है।[1] इस परिवर्धनसे कथाके इस आशयमें कोई अंतर नहीं आता कि उपलब्ध सुखको छोड़ कर जो कोई भविष्यमें अधिक सुखकी आशा करता है, वह दोनोंसे वंचित होता है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरितमें यही कथानक वीरकी अपेक्षा कुछ अंतरसे वर्णित है पर्वतसे गिरकर विद्याधर बननेके उपरांत उस पूर्व वानरको एक मुनिके दर्शन हुए। उनसे विद्याधरने अपना पूर्वभव पूछा। मुनिने कैलास पर्वतसे गिरनेका वृत्तांत उसे कह सुनाया। उसे सुनकर विद्याधरसे देव बननेकी इच्छासे वह पुनः पर्वतसे कूद पड़ा, और मरकर वापिस लाल मुँहवाला बंदर हो गया। कवि वीर-द्वारा वर्णित इस कथानकमें कुछ अस्पष्टता और संदिग्धता है, जब कि ब्रह्म जिनदास व राजमल्ल-द्वारा वर्णित कथा बिलकुल स्पष्ट है। इसमें किसी अन्य विद्याधर युगलका प्रवेश नहीं है। एक ही वानरके साथ सारी घटनाएँ हुई हैं। कथाके आशयकी दृष्टिसे भी यह कथानक किसी प्राचीनतर कथाका शुद्ध रूप है; क्योंकि वानरसे विद्याधर बनकर उपलब्ध सुखोंसे संतोष नहीं हुआ, और विद्याधरसे मरकर देव बननेकी लालसासे उसने ऐसा किया, तथा पुनः बंदरका बंदर होकर रह गया।

हरिभद्रकृत समराइच्च कहाके दूसरे भवमें इस कथाका प्राचीनतर रूप उपलब्ध होता है। वहाँ मुनि धर्मघोष, रुद्रदास एवं सोना नामक पति-पत्नीके रूपमें अपने दो पूर्वभवोंकी आत्मकथा सुनाते हुए कहते हैं—सोनाके अतिशय धार्मिक आचरणके कारण, कामभोगके सुखसे वंचित होनेसे रुद्रदास बहुत क्रुद्ध हुआ और उसे घड़ेमें-से फूलकी माला निकालनेके बहाने सर्पसे कटवाकर मार डाला। रुद्रसेनने मरकर तोतेका जन्म लिया और सोनाने पर्वतपर हाथीका, जो अनेक हथिनियोंके साथ क्रीड़ापूर्वक सुखसे रहता था। तोतेने हाथीको सुखी देखा तो पूर्वजन्मका बैर स्मरण हो आया और उसने किसी प्रकार हाथीको इस सुखसे वंचित करने-का निश्चय किया। दैवयोगसे लीलारति नामक विद्याधर, मृगांक नामक विद्याधरकी बहन चंद्रलेखा, जिसपर वह अनुरक्त था; उसे चुराकर वहाँ लेकर आया और तोतेको देखकर बोला—'मैं इस पर्वतकी गहन कंदरामें अपनी प्रियाके साथ छिप जाता हूँ। मृगांक विद्याधर मेरा पीछा कर रहा है। जब वह यहाँ आये तो तुम कुछ मत बोलना, जब चला जाये तो मुझे संकेत कर देना। मैं तुम्हारे लिए इसका कुछ प्रत्युपकार करूँगा।' तोतेने

---

१. कथाकोषमें एक स्नानस्थली तीर्थका उल्लेख है जिसमें पशुओंको मनुष्य बनानेकी शक्ति कही गयी है। दो बंदर जो जादूसे बना दिये गये थे; इस विषयमें बातचीत करते सुनाई पड़ते हैं।

अवसरका लाभ अपने कुनिश्चयको पूरा करनेके लिए उठाया। वह हाथी अपनी प्रियाओं सहित सुन ले, 'इस प्रकार जोरसे अपनी मैनासे बोला 'इस विकट प्रपातमें गिरनेसे सब इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। जो व्यक्ति जो इच्छा करके इसमें गिरता है; उसकी वे इच्छाएँ पूर्ण होती हैं। ऐसा मैंने महर्षि वशिष्ठसे सुना है। तो हम लोग विद्याधर बननेकी इच्छा करके इसमें कूद पड़ें।' ऐसा कहकर जब क्रीडारतिका शत्रु विद्याधर मृगांक वहाँसे चला गया तो वह अपनी प्रियाके साथ क्रीडारति विद्याधरको संकेत देनेके लिए प्रपातमें नीचेकी ओर गिरा। उसी समय विद्याधर अपनी प्रेमिकाके साथ वहाँसे उड़ा। हाथीने यह सब देखा और तोतेका कहना सच मानकर, विद्याधर बननेकी इच्छा करके अपनेको उस प्रपातमें गिराकर चूर-चूर कर लिया। इसी बीच तोता वहाँसे उड़ गया।

[४] इसके उत्तरमें जंबूस्वामी बोले—'विन्ध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर यूथपति वानर रहता था। जो दूसरे नर-वानरोंको वहाँ ठहरने नहीं देता था। वानरीसे जो भी संतान उत्पन्न होती, पुत्रीको छोड़कर, पुत्रको मार डालता था। कदाचित् एक वानरी सगर्भा हुई, और उस प्रदेशको छोड़कर, दूसरे वनमें जाकर संतान उत्पन्न की। बड़े होनेपर पुत्रने पिताके संबंधमें जिज्ञासा की और वानरीसे सब वृत्तांत जानकर बहुत क्रुद्ध हुआ तथा बदला लेने चला। विन्ध्यमें जाकर वानर पितासे युद्ध करके उसे घायल व परास्त कर दिया और पीछा करते हुए उसे निकाल भगाया। वृद्ध वानर भयसे त्रस्त भागता हुआ तृषासे व्याकुल हो उठा। एक स्थानपर सामने पानी जैसा पदार्थ (लेप—'शिलाजीत' ?) बहते देखा, और उसे पीनेको जैसे-ही हाथ बढ़ाये वे उसीमें चिपक गये। इसी तरह पैर भी और मुँह भी, तथा उसीमें चिपक कर मर गया। अतः उस वानरके समान विषय सुखोंका प्यासा होकर मैं भी विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा!'

यह आख्यान भी वसु० हिंडी तथा उ० पु० में नहीं मिलता। गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें कुछ परिवर्तित रूपमें है, परंतु मूल कहानी यही है और इसका सारांश भी उपर्युक्त ही है।

ब्रह्मजिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान कुछ भिन्न रूपमें इस प्रकार है—विन्ध्यपर्वतमें एक अतिशय कामातुर वानर वानरियोंके साथ रमण करता हुआ रहता था। दूसरे किसी वानरको वहाँ टिकने नहीं देता था। एक बार एक वानरीसे एक बलवान् बंदर उत्पन्न हुआ और तरुण होकर उसीके साथ काम-क्रीड़ाके लिए उद्यत हुआ। यह देखकर वृद्ध वानर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और दोनोंमें युद्ध होने लगा। तरुण वानरने वृद्धको अत्यधिक घायल कर दिया और उसे वनसे बाहर भगा दिया। वृद्ध वानर वहीं मर गया। तरुण वानरको लौटते समय प्यास लगी, युद्धके घाव और अकाल भी हो। उसने एक स्थानपर पानी देखा। वहाँ घनी कीचड़ थी, इसका उसे ज्ञान नहीं हुआ। पानी पीने जाकर उस सघन कीचड़में फँस गया। अशक्त होनेके कारण उसमें-से निकल नहीं सका और वहीं मर गया। वीर कृत इस कथामें कुछ अस्पष्टता है और कौन सा वानर मरा यह ठीक ज्ञात नहीं होता। यहाँ वह बिलकुल स्पष्ट है। आशय दोनोंका एक ही है—अतिशय कामवासनाओंके कारण मृत्यु।

[५] इसके उपरांत विनयश्रीने कहा—हमारा यह दूल्हा मूर्ख संखिणीके समान है। 'किसी नगरमें संखिणी नामका एक कबाड़ी रहता था। वह वनसे ईंधन ला, उसे बेचकर कष्टसे अपना पेट भरता था। कुछ दिनोंमें धीरे-धीरे भोजनसे बचकर उसके पास एक रुपया रोकड़ जमा हो गयी। बड़े उत्साहसे पत्नीके साथ मिलकर घड़ेमें रख कर, उसे एकांत स्थानमें गाड़ दिया। कुछ दिन-बाद सूर्यग्रहणके अवसर-पर कुछ यात्री बहुत-से मणि-रत्न लेकर तीर्थस्थानको चले और उन मणि-रत्नोंको सुरक्षित रखनेके लिए जब गढ़ा खोदा तो भाग्यसे संखिणीके रखे हुए उस एक रुपये सहित वह घड़ा उनके हाथ लग गया। उन्होंने उसीमें अपने मणि-रत्न रखकर घड़ेको पुनः भूमिस्थ कर दिया, तथा तीर्थस्नान कर अपने घरोंको लौट गये। एक पर्वका दिन आनेपर रुपयेको निकालनेके लिए जब संखिणीने वहाँ खोदा तो उसे मणि-रत्नोंसे भरा देखकर वह उछल पड़ा और पत्नीसे कहा—हम बहुत भाग्यशाली और पुण्यवंत हैं। देखो, एक रुपया रखकर गाड़नेसे ही घड़ा मणि-रत्नोंसे भर गया। अब उसका लोभ अत्यधिक बढ़ गया और यह सोचकर कि एक-एक सिक्का अलग-अलग घड़ोंमें रखकर गाड़ देनेसे सभी घड़े इसी प्रकार रत्नोंसे भर जायेंगे, उसने

वैसा ही किया, तथा कबाड़ीपनसे ही अपनी जीविका चलती रहेगी, ऐसा निर्णय कर उसमें-से एक भी सिक्का नहीं निकाला और घर चला गया, एवं उसी प्रकार लकड़ियाँ बेचकर कष्टपूर्वक जीवन यापन करता रहा। किसी दूसरे पर्वपर यात्री अपना धन खोजने आये तथा खोज-खोजकर सब घड़ोंमें-से अपने सब मणिरत्नोंके साथ कबाड़ीका एक रुपया भी निकालकर ले गये। दुबारा जब कबाड़ी उस गड़ी हुई संपत्तिको देखने गया तो सब घड़ोंको रीता देखकर अपना सिर पीट लिया कि हाय उन मणि-रत्नोंके साथ मेरा एक मात्र रुपया भी चला गया।[1] इसी प्रकार हमलोगोंका यह स्वामी स्वाधीन लक्ष्मीको तो भोगता नहीं और श्रेष्ठ स्वर्ग सुखको चाहता है। इसके हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह आख्यान शंख नामक कबाड़ीके नामसे वर्णित है। अन्य चरितोंमें यह उपलब्ध नहीं होता।

[६] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामी बोले—'हे सुंदरी! रति सुखके लिए मैं भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा। कमलगंधका लोभी मुग्ध भौंरा सूर्यास्तको भी नहीं जान पाता और रात्रिके आनेपर उसी कमलमें बंद होकर मर जाता है। इसी प्रकार विषय-सुखोंका त्याग न करके मैं अपना सर्वनाश नहीं करूँगा।' भ्रमरका यह संक्षिप्त दृष्टांत भी अन्य चरितोंमें उपलब्ध नहीं होता।

[७] यह दृष्टांत सुनकर रूपश्रीने कहा, तुम्हारे जैसे ही आत्मगर्वसे एक सर्प स्वयंकी ही करनीसे नेवलोंके द्वारा निगल लिया गया। 'किसी समय वर्षाकालमें सात दिनों तक लगातार घनघोर वृष्टि हुई। जल-थल सब एक हो गये। सूर्य भी दिखाई नहीं दिया। बहुत घर पानीसे गल गये, बह गये। मनुष्य और पशु सभी भूखसे तड़पने लगे। ऐसे समय एक अति प्राज्ञ करकेंटा पानीमें बहता हुआ किसी तरह किनारे आकर लगा और आहारकी खोजमें निकला तो भयानक काले व जीभ लपलपाते हुए सर्पके सामने आ पहुँचा। तत्क्षण उससे बचनेका उपाय सोचकर सर्पका जय-जयकार करके बोला, 'हे स्वामिश्रेष्ठ, मुझे मारकर इस क्षुद्र जंतुयोनिसे मेरा उद्धार कीजिए।' इतना कहकर दीन मुख बनाकर अश्रु बहाता हुआ रोने लगा। इस आश्चर्यजनक व्यवहारका कारण पूछनेपर उसने सर्पको बतलाया कि आप हमारे कुलप्रभु हैं। अतः आपसे खाया जाकर मैं सीधे मोक्ष प्राप्त करूँगा, यह तो मेरे द्वारा आपके जय-जयकार किये जानेका कारण है। परंतु मेरे कुटुंबमें संतानें बहुत हैं। एक मेरे न रहनेसे वे अनाथ हो जावेंगे। यह मेरे रोनेका कारण है। इसलिए हे देव! अच्छा हो कि आप चलें और मेरे सारे कुटुंबको खा डालें। 'बताओ तुम्हारा कुटुंब कहाँ है?'—सर्पके ऐसा पूछनेपर करकेंटा एक पहलेसे देखे हुए नेवलोंके बिलकी ओर आगे-आगे चला और सर्प पीछे-पीछे। बिलके सामने पहुँचकर करकेंटा बोला, स्वामी आइए। भीतर प्रवेश करके मेरे कुटुंबका भक्षण कर लीजिए। सर्प बिलमें घुसा और वहाँ नेवलोंके समूहने उसे फाड़कर खा डाला। अधिककी इच्छा रखनेवाला सर्प दूधको तो देखता है, परंतु घातमें लगे व्यक्तिके प्रहारको नहीं देख पाता। इसी प्रकार अधिक (अनुपलब्ध) सुखोंकी इच्छा करनेवाले हमारे इस प्रियतमके उपलब्ध सुख साधन भी शिव और माधव धूर्तों-द्वारा प्रलोभित राजपुरोहितके समान लुट जायेंगे।[2]

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान अति संक्षेपमें वर्णित है। *अपने आहारकी खोजमें निकला हुआ एक करकेंटा एक काले साँपके सामने आ पड़ा और उसे देखते ही अपने पहले देखे एक नकुल-विवरका स्मरण करके दौड़कर सैकड़ों छिद्रोंवाले उस विवरमें घुस गया।*[1] सर्प भी उसके पीछे-पीछे भागा और नकुलोंके महाबिलमें घुसते ही फाड़कर खा लिया गया।

---

1. यही आख्यान लोक कथा रूपमें इस प्रकार प्रचलित है—एक कबाड़ी बहुत कष्टसे रहकर प्रतिदिन कुछ बचाकर जंगलमें घड़ेमें गाड़कर रखने लगा। एक दिन उस घड़ेको खोदकर उसमें कुछ रखते हुए कबाड़ीको एक धूर्तने देख लिया और उसके जानेपर घड़ेमें-से उसकी सारी जमा-पूंजी आरामसे निकालकर ले गया। ब्रह्म जिनदासकी कृतिमें भी इस आख्यानका अंत भाग इसी प्रकार है।
2. शिव और माधव धूर्तों-द्वारा राजपुरोहितको प्रलोभित करके लूटनेका आख्यान संपादकको अभीतक कहीं नहीं मिल सका।

[८] जंबूस्वामीने कहा कि विष यदि स्वाधीन भी हो, तो भी क्या तुरंत ही उसका त्याग नहीं कर दिया जाता ? और यह कथा सुनायी—किसी रात्रिमें एक शृगाल एक नगरमें आहारार्थ प्रविष्ट हुआ। उसने मार्गमें पड़ा एक मृत बैल देखा और उसका मांस खाने लगा। इसमें वह इतना आसक्त हो गया कि खाते-खाते उसका मुँह छिल गया और सारी रात कब बीत गयी, इसका भी उसे कोई भान नहीं हुआ। प्रातःकाल होनेपर लोगोंके आवागमनके शोरसे उसे बोध हुआ। तब उसने सोचा कि अपनेको मृत दिखला देता हूँ, रात्रि आनेपर जंगलमें चला जाऊँगा। इतनेमें वहाँ लोग एकत्र हो गये और उनमें-से एकने औषधार्थ शृगालके कान व पूँछ काट लिये। फिर भी वह शांत पड़ा रहा, यह सोचकर कि पूँछ व कानके बिना भी जी लूँगा, यदि पुण्यसे आज बच जाऊँ तो। इतनेमें एक कामुकने उसके दाँतसे प्रियाका मन वशमें करनेके लिए पत्थर लेकर एक दाँत तोड़ डाला। अब शृगाल जान बचाकर भागा। परन्तु सिंहके समान बलवान् एक कुत्तेने दौड़कर उसका गला पकड़ लिया और शोर करते हुए अनेक कुत्तोंने मिलकर उस शृगालको खा लिया। इसी प्रकार जो व्यक्ति विषय-भोगोंमें अंधा बना रहता है। वह निश्चयसे विनाशको प्राप्त होता है। ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्लकी कृतियोंमें यह कथानक संक्षेपमें वर्णित है, अन्य चरितोंमें सर्वथा नहीं।

[९] इस प्रकार कथा-प्रतिकथा होते-होते आधी रात्रि व्यतीत हो जाती है। इसी बीच विपुल धन चुरानेकी इच्छासे विद्युच्चर (वसु० हिंदीके अनुसार प्रभव अपने ५०० साथियों सहित; उ० पु० के अनुसार विद्युत्प्रभ) नामक चोर वहाँ पहुँचता है। पहले दोनोंमें कुछ दार्शनिक वाद-विवाद होता है। विद्युच्चर नाना प्रकारसे जंबूस्वामीको सांसारिक भोग भोगनेको प्रेरित करता है। जंबूस्वामी अपने पिछले चार जन्मोंका वृत्तांत सुनाते हैं। यह सुनकर विद्युच्चर कहता है कि यदि पूर्व जन्मोंके शुभकर्मोंकी परिणतिसे तुम्हें किसी प्रकार स्वर्ग सुख मिल गया, तो बार बार ऐसा होना कैसे संभव है ? इस संबंधमें एक कथा कहता हूँ, उसे सुनो—'किसी घुमक्कड़ने अपने कार्यसे भ्रष्ट तथा खस (खुजली) व्याधिसे पीड़ित एक ऊंटको अटवीमें छोड़ दिया। स्वच्छंद विचरण करनेसे ऊंट स्वस्थ और बलशाली हो गया तथा बहुत दिनोंपर कहीं उसे मधु खानेको मिला। उस मधुका सदैव स्मरण करते रहकर वह करीलकी शाखाओंको कभी चरता था और कभी नहीं भी चरता था। यही बात भोगे हुए स्वर्ग सुखोंको स्मरण करनेकी है। भला स्वर्ग और मोक्ष किस मूढ़को प्राप्त होते हैं ?

ऊंटका यह कथानक उ० पु० में कुछ भिन्न रूपमें है। एक स्वच्छंद विचरण करनेवाला ऊंट चरता हुआ कहीं पर्वतके निकट पहुँचा। वहाँकी घास किसी ऊँचे स्थानसे टपकते हुए रससे मीठी हो रही थी। ऊंटने उसे एक बार खाया, तो बस सदैव वैसी ही मीठी घास खानेके संकल्पसे मधु टपकनेकी प्रतीक्षामें अन्यत्र घास चरना छोड़कर वहीं बैठा रहा और अंतमें भूखसे तड़पकर मर गया। वसु० हिंदी और गुणपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें यह कथा नहीं है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामीचरित्रमें इस कथानकमें उ० पु० की अपेक्षा कुछ अंतर है—इनमें स्वच्छंद घूमते हुए एक ऊंटने एक कुएँके तटपर खड़े हुए वृक्षके पत्ते खाते समय ऊपरसे टपकता हुआ एक मधुबिंदु चख लिया। और अधिक मधु प्राप्त करनेकी इच्छासे उसने ऊँची गरदन करके शाखासे टपकते मधुको चाटनेकी चेष्टा की, और सहसा शरीरका संतुलन खो बैठनेसे कुएँमें गिरकर मर गया।

[१०] इसे सुनकर जंबूस्वामी यह कथा कहने लगे—'एक वणिकपुत्र धन कमानेकी अति तृष्णासे अकेला ही व्यापारको चला और एक अरण्यमें शीतल जलवाला एक सरोवर देखा। वहाँ उसे चोरोंने लूट लिया, और वह भयसे काँपता हुआ, जलका स्मरण करते हुए सो गया। स्वप्नमें उसने उस सरोवरको देखा और स्वप्नमें ही मानो प्रचुर जल पी लिया ऐसे संस्कारवश जाग उठा तथा अत्यंत प्याससे पीड़ित हो जिह्वासे ओसबिंदु चाटने लगा। भला इनसे कहीं उसकी प्यास बुझ सकती है ? इसी प्रकार वह व्यक्ति है जो भोगे हुए स्वर्ग सुखोंका स्मरण करता है। उसकी अभिलाषाएँ कभी नहीं मिट सकतीं। और फिर मनुष्यका यह काम-भोगों संबंधी सुख तो बहुत ही घिनौना, विवेक रहित तथा दूसरोंके लिए केवल कौतूहल उत्पन्न करनेवाला है।

वसु० हिंडीमें यह कथानक नहीं है। उ० पु०में इसके स्थानपर यह कथानक उपलब्ध होता है—'एक मनुष्य महा दाहज्वरसे पीड़ित था। उसने नदी, सरोवर, ताल आदिका प्रचुर पानी बार-बार पिया तो भी उसकी प्यास शांत नहीं हुई। तो क्या कुशाग्रपर रखे हुए क्षुद्र जलबिंदुसे उसकी प्यास बुझ जावेगी? कदापि नहीं। इसी प्रकार इस जीवने चिर कालतक स्वर्ग सुख भोगे हैं, फिर भी यह तृप्त नहीं हुआ, तो क्या हाथीके कानके समान चंचल (क्षणिक) इन वर्तमान सुखोंसे यह तृप्त हो जावेगा?

गुणपाल कृत 'जंबूचरियं'में इसके स्थानमें यह कथा उपलब्ध होती है।—'कलिंग देशमें अंबाडग ग्राममें कोयलेसे आजीविका करनेवाला एक लकड़हारा था। करवेमें पानी भरकर लकड़ी काटने जंगलमें गया। लकड़ियाँ काटकर उन्हें जला दिया। आगकी गर्मी, सूर्यका ताप और परिश्रमसे उसे अत्यंत तीव्र प्यास लगी। इधर करवेमें रखा हुआ जल बंदर पी गये। प्यासा ही घरको चला। पर थककर वहीं गिर पड़ा। इतनेमें थोड़ी मेघ वृष्टि हुई और ठंडी हवा चली, जिससे उसे नींद आ गयी। स्वप्नमें उसने देखा कि उसने सब सरोवरों और कुओंका जल पी लिया पर प्यास नहीं मिटी। नींद खुलनेपर प्याससे पीड़ित हो, वह एक कुएँपर गया। घासकी रस्सी बनायी और कुएँमें उतरकर उसके कीचड़युक्त जलको जीभसे चाटने लगा। भला इससे क्या उसकी प्यास बुझ जायेगी? इस कथाके पश्चात् सांसारिक वस्तुओंको आध्यात्मिक दृष्टिसे तुलना की गयी है जैसे, पुरुष-जीव, तृष्णा-भोगेच्छा आदि। हेमचंद्रने भी अपने परिशिष्ट पर्वमें इस कथाको लिया है।

[११] पुनः विद्युच्चरने कहा सुनिए—'एक वृद्ध बनिया था उसकी तरुण स्त्री थी। वह व्यभिचारिणी थी। एक बार वह ब्रह्ममुष्टि नामके एक चेटके साथ बहुत-सा द्रव्य लेकर निकल गयी। रास्तेमें उन्हें एक धूर्त्त मिला। धनपर दृष्टि रखकर उनके साथ उसने कपट प्रेम संबंध बढ़ाया। उन दोनोंके अनुचित संबंधको जानकर कामोत्तेजक मधुर गायन-द्वारा उस स्त्रीको मोह लिया और एक ग्रामासन्न देवालयमें पहुँचकर ब्रह्ममुष्टिसे पीछा छुड़ानेका यह उपाय किया—उसने स्त्रीसे कहा तुम ग्रामरक्षकसे कह आओ कि दीर्घयात्रासे थकी हुई मैं अपने पतिके साथ अमुक देवालयमें सोऊँगी। स्त्रीने वैसा ही किया। रात्रिमें (नगरमें चोरीकी कोई दुर्घटना होनेसे) कोतवाल अपने सहायकोंके साथ देवालयमें आया। स्त्री झटपट ब्रह्ममुष्टिको शैयापर अकेले सोते हुए छोड़कर जागते हुए धूर्त्तकी शैय्यापर आ गयी, और धूर्त्त उस कोतवालसे बोला कि हमने दिनमें ही कह दिया था कि हम पति-पत्नी हैं, तीसरेको हम नहीं जानते, तुम लोग खोज लो! लोगोंने बेचारे ब्रह्ममुष्टिको पकड़ लिया, उसे बहुत मारा और बाँधकर ले गये। धूर्त्त उस कुलटाको साथ लेकर वहाँसे भाग निकला और एक नदीके किनारे पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह बोला कि नदी बड़ी अथाह और दुस्तर है, अतः पहले तुम अपने सब वस्त्राभूषण उतार कर दे दो। एक बार उन्हें उस पार रख आऊँ, वापस आकर तुम्हें साथ ले आऊँगा। स्त्रीने उसका विश्वास कर सारे वस्त्राभूषण उतारकर उसे दे दिये। धूर्त्त उन्हें लेकर पार उतर गया और परले पार जब शीघ्रतासे जाने लगा तो स्त्री चिल्लाकर बोली, अरे दुष्ट मुझे ठगकर और इस नग्न अवस्थामें छोड़कर कहाँ चला? धूर्त्तने शीघ्रतासे चलते हुए हाथ हिलाकर उत्तर दिया, अरे तूने पहले तो परिणय किये हुए श्रेष्ठ भर्त्तारको छोड़ा, फिर जारको भी मरवा डाला, तो अब क्या मुझे भी खाना चाहती है? मैं चला, तू यहीं रह। धूर्त्तके चले जानेपर जब वह असती इस दुरवस्थामें तीर पर खड़ी थी कि मांसका टुकड़ा लिये एक शृगाल वहाँ आया और उस मांसके टुकड़ेको छोड़कर जलसे बाहर स्थलपर पड़े हुए एक मच्छको पकड़नेको लपका। इतनेमें मच्छ जलमें कूद गया और उधर मांसके टुकड़ेको एक बाज झपटकर ले गया। दोनोंसे वंचित हो बड़े लज्जित और दुखी हुए इस शृगालको लक्ष्य करके उस कुलटाने व्यंग किया, रे मूर्ख शृगाल! स्वाधीन (मांसका टुकड़ा) वस्तुको छोड़कर तुझे क्या लाभ हुआ? इस व्यंग्यबाणसे बिंधकर शृगालने (मनुष्यकी वाणीमें) उत्तर दिया—'मैं तो अवश्य कुबुद्धि या मूर्ख हूँ, पर तेरी यह सद्बुद्धि जो मुझे सीख दे रही है, वह स्वयं तेरे लिए कहाँ दिखाई देती है? पहले तूने पतिको छोड़ा, फिर जारको मरवा डाला और अब धनसे भी गयी व धूर्त्तसे भी। नग्न खड़ी रहकर बोलनेमें कुछ तो लज्जा कर।' यह कथानक सुनाकर विद्युच्चर बोला—इस असती कथानकको समझो, और देवसुखोंके लिए स्वाधीन सुखोंको छोड़कर मनका दमन मत करो।

यह कथानक वसु० हिंडीमें नहीं है। उ० पु० में केवल शृगालसे संबद्ध अंश स्वतंत्र रूपसे इतना भर है कि एक शृगाल मांसका टुकड़ा मुँहमें लिये कहींसे आया, नदी तट-पर जलसे बाहर मच्छको देख, मांसका टुकड़ा छोड़, मच्छको पकड़ने झपटा, मच्छ पानीमें खिसक गया। इधर मांसके टुकड़ेको बाज उठाकर ले गया, और शृगाल दोनोंसे वंचित हुआ। यहाँ असती कथानकसे इसका कोई संबंध नहीं दिखलाया गया है, परंतु अन्य चरितोंमें भिन्न-भिन्न रूपोंमें कहीं अति विस्तारसे और कहीं संक्षेपमें वर्णित है। गुणपाल कृत जंबूचरियं तथा उसका अनुसरण करनेवाले हेमचंद्रने इसे बहुत विस्तारसे दिया है और इसके साथ एक दुराचारी सुनार पुत्र या वणिक् पुत्र-वधूका बृहद् आख्यान भी जुड़ा हुआ है (देखें आगे)।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामिचरित्रमें इस कथानकसे कुछ अंतर है। वह संक्षेपमें इस प्रकार है—'एक वृद्ध बनियेकी तरुण स्त्री विटोंसे स्वेच्छासे रमण करनेको धन लेकर एक जारके साथ भाग गयी। रास्तेमें किसी दूसरे धूर्तने उसे मोह लिया और उसके साथ किसी अन्य नगरमें जाकर ठहरी। वहाँ वह तीसरे जारसे लग गयी। तब धूर्तने नगर रक्षकसे जाकर शिकायत की कि कोई जार मेरी स्त्रीके पास आता है, उसे पकड़ो तो तुम्हें कुछ सुवर्ण लाभ कराऊँगा। रात्रिमें धूर्त्त जागते हुए उस पुंश्चलीके साथ पड़ रहा। कुछ देर बाद वह तीसरा जार आया। स्त्री उठकर चुपचाप उसके अंकमें चली गयी। फिर कोतवाल अपने सहायकोंके साथ आया और पूछा, यहाँ कौन जार या चोर है ? तीसरा जार झटसे बोला, मैं नहीं जानता आप लोग खोजें ! उन्होंने धूर्तको ही पकड़ लिया, उसका कुछ कहना नहीं सुना कि उसने ही कोतवालको शामको समाचार दिया था। उसके पकड़े जानेपर तीसरा जार स्त्रीको लेकर भाग निकला।' आगेका कथानक वोरके अनुसार है। इतना अंतर है कि शृगालके ऊपर व्यंग्य करनेपर दूसरे तीरपर-से वह जार चिल्लाकर बोला यह तो पशु है, इसे हिताहितका विवेक नहीं, पर पापिनी तूने स्वयं क्या किया ? अपना चरित्र तो देख···आदि, और उसे नदीके इसी तीरपर नग्न छोड़कर चलता बना।

[१२] इसका उत्तर जंबूस्वामीने यह कथानक सुनाकर दिया—'एक बनिया जहाज लेकर कहीं दूसरे तीरपर पहुँचा और एक श्रेष्ठ बहुमूल्य चिंतामणि रत्न खरीदकर जहाजसे वापिस लौट चला। आते समय उस चिंतामणि रत्नको हथेलीपर रखकर, अन्यत्र उसे बेचकर नाना प्रकारके हाथी-घोड़े आदि खरीदकर राजाके समान संपदा सहित घर लौटनेकी सुखद कल्पनाएँ करते-करते अर्द्धनिद्रित-सा हो गया. जिससे वह रत्न हथेलीसे निकलकर समुद्रके मध्यमें जा गिरा। बनिया तुरंत सचेत होकर तैरनेवालोंसे चिल्लाया, अरे ! अरे ! जहाज रोको ! चिंतामणि रत्न समुद्रमें गिर गया है, उसे ढूँढ़कर मुझे लाकर दो . भला वह रत्न क्या उस बनियेको पुनः मिल सकेगा ? उसी प्रकार यह मनुष्य जन्म चिंतामणि रत्नके समान है। रति सुखकी निद्रामें पड़कर संसार समुद्रमें खोकर, मैं इसे फिर कैसे पाऊँगा ?' वसुदेव हिंडी, गुणपाल कृत जंबूचरियं तथा हेमचंद्रके परिशिष्ट पर्वमें यह आख्यान नहीं है। उ० पु० में इसके स्थानपर यह कथानक है—'कोई मूर्ख पथिक कहीं जा रहा था। रास्तेमें किसी चौराहेपर उसे महा देदीप्यमान रत्नोंकी राशि मिली। वह चाहता तो सरलतासे उसे ले सकता था। परंतु तब उसे न लेकर पथिक आगे चला गया। फिर कुछ समय बाद मनमें विचार आनेपर उस रत्नराशिको लेनेकी इच्छासे वापिस लौटकर पुनः उस चौराहेपर आया, तो क्या वह उस रत्नराशिको पा सकेगा ? नहीं ! इसी प्रकार जो मनुष्य इस संसार रूपी समुद्रमें गुण रूपी मणियोंको पाकर भी उन्हें एक बार स्वीकार नहीं करता, वह पीछे उन्हें फिर कभी नहीं पा सकेगा।' यहाँ कथानकका आशय मनुष्य जन्ममें प्राप्य तप, संयम, साधनादि गुणोंसे है, जिन्हें मनुष्य जन्मके सिवाय अन्य किसी गतिमें, किसी शरीरमें पाया नहीं जा सकता।

[१३] जंबूस्वामीके यह कथानक कहनेके उपरांत विद्युच्चरने एक शृगाल संबंधी कथानक सुनाया—'विंध्य क्षेत्रमें एक धनुषधारी प्रचंड भील रहता था। एक दिन उसने बाणके आघातसे एक हाथीको मार डाला। इधर उसे सर्पने डस लिया। उस सर्पको उसने वहीं धनुषके प्रहारसे मार डाला और स्वयं भी विषके प्रभावसे गिरकर मर गया। दैवयोगसे ये सब, मृत हाथी, भील और सर्प तथा धनुष एक

घूमते हुए शृगालकी दृष्टिमें पड़ गये। उसने सोचा यह हाथी छः मास, मनुष्य एक मास और सर्प मेरा एक दिनका; भोजन होगा। अच्छा हो इन सबको अभी रहने दूँ। आज तो अपनी क्षुधा इस धनुषकी सूखी ताँतको खाकर मिटा लेता हूँ। ऐसा सोचकर उस ताँतको काटने लगा। उसे कुतरनेसे धनुषमें बँधी हुई गाँठ टूट गयी और उसके एक सिरेसे उसका तालू और कपाल फूट गया, तथा वह शृगाल वहीं ढेर हो गया। अत्यधिक लोभ करनेवाला शृगाल जिस प्रकार विनष्ट हुआ, उसी प्रकार वर्तमान उपलब्ध सुखोंको छोड़कर भविष्यत् शिव (मोक्ष) स्वर्ग सुखकी आशामें तुम भी यूँ ही विनष्ट होओगे।'

यह आख्यान गुणपाल और हेमचंद्रके चरितोंमें नहीं है। उ० पु० में इसी प्रकार तथा वसु०-हिंडीमें नीलयशा नामक चतुर्थ लंभकमें कुछ परिवर्तित रूपमें है—'भीलने एक ही बाणसे हाथीको मार गिराया और हाथी दाँत तथा गजमुक्ता निकालनेके लिए एक फरसा लेकर उसपर प्रहार करने लगा। हाथीके गिरते समय एक बड़ा सर्प उसके नीचे दब गया और उसने भीलको डस लिया, भील भी मर गया और सर्प भी।' शेष कथा पूर्ववत् है। ब्रह्म जिनदासकी रचनामें यह वीरके अनुसार ही वर्णित है।

[१४] इस कथाके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामीने लकड़हारेका कथानक सुनाया—'एक दिन एक लकड़हारा कुल्हाड़ी लेकर वनमें गया। लकड़ी काट, गट्ठा बाँध, उसे सिरपर रखकर चल दिया। मध्याह्न कालमें तीक्ष्ण रवि किरणोंसे तप्त होकर, भार डालकर एक वृक्षके नीचे पड़कर सो रहा। स्वप्नमें उसने राजलीला-विलास देखा। मानो वह राजा है। सुंदर कामिनियोंके साथ काम-क्रीड़ा कर रहा है। सिंहासनपर बैठा है और उसपर चमर डुलाये जा रहे हैं। हाथी, घोड़े, योद्धा आदि सभी सामग्री है और राजद्वारपर प्रतिहार पहरा दे रहा है, आदि। इतनेमें क्षुधासे पीड़ित उसकी क्रुद्ध पत्नीने आकर उसे जगा दिया। उसके कठोर वचनोंको सहन न कर, लकड़हारेने उसे पीटकर भगा दिया और पुनः सो गया; तो अबकी बार स्वप्नमें देखा कि उसके सिरपर भार लदा है, और सारे शरीरसे मलिन दुर्गंधयुक्त पसीना बह रहा है। यह स्वप्न देखकर दुःखसे तड़प कर वह जाग उठा। अब यदि लकड़हारेको स्वप्नमें एक बार राज्य मिल भी गया, तो वह भी बार-बार कैसे मिल सकता है? अतः यदि मैं एक बार मनुष्य जन्म खो बैठा, तो फिर नरकोंके दुःखोंसे ग्रस्त होकर पड़ा रहूँगा।'

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत चरित्रमें यह आख्यान लकड़हारेकी पत्नी-द्वारा जगा दिये जानेपर समाप्त हो जाता है। वसु० हिंडी, उ० पु० और गुणपाल तथा हेमचंद्र कृत चरितोंमें यह नहीं है। परंतु संपूर्ण जैन साहित्यमें 'स्वप्नमें लकड़हारेको राज्य प्राप्ति' कहावतके रूपमें प्रसिद्ध और प्रचलित है।

[१५] जंबूस्वामीके उपर्युक्त आख्यानके उत्तर स्वरूप विद्युच्चरने यह कथा सुनायी—'एक बार नटोंका एक बड़ा दल वर्षाकालमें आजीविका हेतु नगरमें आया। रात्रिमें बोड नामक एक जरा जीर्ण नटको वृक्षोंसे संकीर्ण उद्यानके समीप अपने निवास (तंबू) की रक्षा हेतु छोड़कर, नट समूह नृत्य दिखलानेके लिए राजाके पास गया। इधर अपनी साससे भर्त्सना पाकर आभरणोंसे लदी हुई एक बहू उसी उद्यानमें एक वृक्षके नीचे आकर ठहरी और मरनेके उद्देश्यसे अपने गलेमें फंदा लगाया। यह देखकर वृद्ध बोडने सोचा, अरे, इसके मरनेसे मुझे यहीं बैठे-बैठे स्वर्ण लाभ हो गया। परंतु यह मरना नहीं जानती। मैं इसे ठीकसे मरनेकी शिक्षा देता हूँ, और मरनेपर इसके आभूषणादि ले लूंगा। पूछनेपर स्त्री बोली, हे भाई! मुझे शिक्षा दो, और सुख-मृत्युसे यमपुरी भेज दो। तब नटने स्त्रीके हाथसे फंदा ले लिया और एक मुरज लाकर वृक्षके नीचे रखा। उसपर स्वयं चढ़कर उस फंदेको एक पटसे वृक्षकी शाखामें बाँधकर, अपने गलेमें डाल लिया। 'हे सुंदरी! मुरजको लुढ़काकर सुदृढ़ फंदेसे सुखपूर्वक मरना चाहिए' इस प्रकार उत्साहपूर्वक उस स्त्रीको यह दिखलाते समय वेगके कारण दैव संयोगसे मुरज लुढ़क गया, फंदेकी सुदृढ़ गाँठ वृद्ध बोडके गलेमें पड़ गयी और वह तड़फड़ाता हुआ मर गया। वह स्त्री बोडको इस तरह मरता हुआ देखकर, लज्जा और भयपूर्वक वहाँसे भाग गयी। इसी प्रकार जो व्यक्ति असिद्ध (अनुपलब्ध) कार्योंकी इच्छा करता है, और उसका परिणाम न जानते हुए इस बोडका अनुसरण करता है, वह स्वयंकी ही दुर्बुद्धिसे सुख त्याग कर मृत्युको प्राप्त होता है।'

वसु० हिंदी और पुण्यपाल तथा हेमचंद्रके चरितोंमें उपर्युक्त आख्यान नहीं है। उ० पु० में ईषत् परिवर्तित संक्षिप्त रूपमें है—'एक वधू सासकी भर्त्सना पाकर एक उद्यानमें वृक्षके निकट आयी और मरनेके लिए गलेमें फंदा लगाया। इतनेमें स्वर्णकारक नामका एक मृदंगवादक वहाँ आ पहुँचा और स्त्रीका अभिप्राय जानकर सुवर्णलाभके लोभसे उसे मरनेकी रीति दिखलाने लगा।' आगे कथा पूर्वोक्त प्रकार है।

ब्रह्म जिनदास एवं राजमल्ल कृत जंबूस्वामीचरित्रमें यह कथानक बिलकुल भिन्न रूपमें है—'एक कुशल नटने अनेक नर्तकियोंके साथ राजभवनमें नृत्यादिका सुंदर प्रदर्शन किया। उससे राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसके दलको प्रचुर सुवर्ण-वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य पुरस्कार प्रदान किये। थके हुए ये सब लोग रात्रिमें वहीं सो गये। नट जागता रह गया। सबको सोते देख नटको लोभ आ गया। सोचा, 'सब सोये हैं, मैं यह सब प्राप्त धन लेकर यहाँसे चंपत हो जाऊँ।' यह सोचकर सब धनकी गठरी बाँधकर वह जैसे ही चला, जागती हुई नर्तकियोंने उसे वहीं पकड़ लिया और प्रातःकाल राजाके सामने उपस्थित किया। राजाने उसे चोरीका उचित दंड दिया। इस प्रकार अतिशय लोभके कारण जो उचित पुरस्कारांश था वह भी खोया और उलटे दंडका भागी बना। वीर कृत कथानकका आशय भी ऐसा ही है। विद्युच्चरका तात्पर्य यह है कि, 'हे जंबूस्वामी, शिव सुखकी उपलब्धिके लिए इतने अधीर मत होओ। कुछ दिन उपलब्ध अनुपम सुंदरी स्त्रियों और अन्य भोगोंको स्वेच्छासे भोगो फिर मोक्ष प्राप्तिके लिए साधना करना। अत्यधिक उतावलापन करनेमें दोनों ही प्रकारके सुखोंसे वंचित होनेकी संभावना अधिक है। हो सकता है सहसा इन सुखोंको त्याग कर पीछे पश्चात्ताप हो। तब न इस लोकके रहोगे न परलोकके।'

[१६] इसके प्रत्युत्तरमें जंबूस्वामीने अपने निश्चयकी दृढ़ता और विवेकशीलता व्यक्त करनेके हेतुसे चंग नामक सुनार पुत्र (अन्यत्र ललितांग, कहीं सुनार पुत्र, कहीं श्रेष्ठि पुत्र)का आख्यान सुनाया, जो इस कथा-प्रतिकथाओंकी इस शृंखलामें सबसे अंतिम है। बनारसका लोकपाल नामक राजा शत्रुको जीतनेके लिए देशांतरको गया। युद्धमें पाँच वर्ष लग गये। पीछे उसकी विभ्रमा नामक महादेवी पुरुष संयोगके बिना कामपीड़ासे व्याकुल हो उठी। एक बार अपने राजप्रासादकी छतसे उसने चंग नामक अति सुंदर, युवा एवं हृष्ट-पुष्ट सुनार पुत्रको देखकर दासीसे कहा कि किसी प्रकार इस युवकसे मिला और मेरा काम-दाह शांत कर! दासी गयी और चतुराईसे उस सुनार पुत्रको बुला लायी। आनेपर दोनोंने दृष्टिसे एक दूसरेको पहचाना और कामराग-भरी महादेवीने उसे अपनी शय्यापर बैठाया। उसी समय विजयी होकर राजा समस्त सैन्य साधन, परिजन, परिवारके साथ लौट आया। रानीने चंगको पीछेके कोठेमें छिपा दिया। परंतु किसी कारण उसी कोठेमें राजाके आगमनका समाचार जानकर भयसे उतावली रानीने चंगको पुरीष कूपमें डाल दिया। उसीमें प्राण टिकने-भरको आहार पहुँचाती रही। चंग छह मास तक कूपमें पड़ा रहा। उसका सारा शरीर दुर्गंध पूर्ण और पांडुरवर्ण हो गया। पुरीष कूपके बहुत सड़ जानेपर कर्मकरोंने जलसे कूपका शोधन किया, भूमिस्थ द्वारसे मलयुक्त गंदे पानीके साथ चंग भी बहकर निकल गया, और गंगाके प्रवाहमें आकर गिरा। गंगाके तीरपर लोगोंने उसे पहचाना और पूछा कि तेरा शरीर दुर्गंधयुक्त और पांडुरवर्ण क्यों हो गया? चतुर चंगने उत्तर दिया कि मुझे रूपासक्त नाग सुंदरियाँ पाताल स्वर्गमें ले गयीं और वहाँ एक दिन मुझे घरका स्मरण करते हुए जानकर रोषसे कुरूप करके छोड़ दिया। घर आकर जलसेचन और दिव्य सुरभित द्रव्य तथा तैलोंके प्रयोगसे बहुत दिनोंमें चंग पुनः पूर्ववत् स्वस्थ, सुंदर हो गया। किसी समय राजा पुनः बाहर गया। रानीको पुनः पुरुष विरह उत्पन्न हुआ, उसने चंगको पुनः बुलवाया, पर वह नहीं गया, और दासीसे बोला—"सौंदर्यका जो फल मैंने भोगा उसके कारण शरीरकी दुर्गंध अब तक शांत नहीं हुई। पुण्यसे एक बार संकटसे छूट गया तो क्या कोई बार-बार उस संकटमें पड़ने जाता है?" इसी प्रकार हे मामा! तिर्यंच और नरक गतियोंका अनुभव करके यदि किसी प्रकार मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हो गया, तो अब मैं लेश मात्र रति सुखके वशीभूत होकर पुनः नरक गतिमें पड़ने नहीं जाऊँगा।'

यह आख्यान कुछ अंतरसे सभी चरितोंमें उपलब्ध है। वसु० हिंदीमें संक्षेपमें यह कथा इस प्रकार है—'वसंतपुरके शतायुध नामक राजाकी ललिता नामक रानी एक दिन छज्जेपर खड़ी थी। तब उसने राज-

मार्गसे आते हुए श्रेष्ठि पुत्र ललितांगको देखा और उसपर मुग्ध हो गयी तथा अपनी चतुर दासीके हाथ उसके पास प्रेमपत्र पहुँचाया। पूर्णिमाका दिन आनेपर रानीकी अस्वस्थताका बहाना करके चतुरदासी वैद्यके रूपमें ललितांगको रानीके भवनमें ले गयी। इस प्रकार दोनों निःशंक रति सुख भोगने लगे। अंतःपुरके वृद्ध रक्षकों-को इसका पता चल गया। उन्होंने राजाको सूचना दी और राजाने ललितांगको पकड़नेके आदेश दे दिये। तब रानीने भयभीत होकर ललितांगको पुरीष कूपमें डाल दिया। आगेकी कथा लगभग पूर्वोक्त प्रकार है।

गुणपाल कृत जंबूचरियंमें इतना अंतर है कि 'कौमुदी महोत्सव आनेपर राजाने रानीसे उद्यान-क्रीड़ा हेतु चलनेको कहा। रानी शिरोवेदनाका बहाना करके नहीं गयी। राजाके जानेपर एकांत पाकर चतुर धायने ललितांगको अंतःपुरमें प्रवेश करा दिया। इधर अकेले होने व रानीकी शिरोवेदनाकी चिंतासे राजाका मन उद्यान-क्रीड़ामें नहीं लगा और वह शीघ्र लौट आया। भयभीत रानीने ललितांगको पुरीष कूपमें डाल दिया।' आगे कथा पूर्वोक्त प्रकार है और अंतमें यह कि ललितांगके साथ बार-बार ऐसा हुआ, तथापि वह सचेत नहीं हुआ।

हेमचंद्रके चरितमें इतना अल्प अंतर है कि कौमुदी उत्सवके समय राजा शिकारपर गया, पीछे यक्ष मूर्तिके बहाने धायने ललितांगको अंतःपुरमें प्रवेश करा दिया तथा दोनोंने अपनी कामवासना पूर्ण की। रक्षकोंको संदेह हो गया कि यक्ष मूर्तिके रूपमें पर-पुरुषको प्रवेश कराया गया है। राजाको इसकी सूचना दी गयी। शेष वसु० हिंडीके समान।

उपर्युक्त चारों ग्रंथोंमें इसका धार्मिक प्रतीकार्थ यह निकाला गया है कि ललितांग जीव है, रानी विषय भोगोंका प्रतीक है और पुरीष कूप गर्भवासका; तथा अंधद्वारसे निष्क्रमण माताके गर्भद्वारसे निकलनेके समान है, आदि।

उ० पु० में कथा बहुत संक्षेपमें है—एक राजाकी रानी ललितांग नामक धूर्तपर मुग्ध हो गयी और चतुराईसे दासी-द्वारा उसे अंतःपुरमें बुलवा लिया, तथा यथेच्छ रमण किया। राजाको इसका पता लग गया। भयसे रानीने ललितांगको शौचालयमें छिपा दिया और वहीं दुर्गंधसे दम घुटकर उसकी मृत्यु हो गयी।

हरिभद्रकृत 'समराइच्चकहा'के नौवें भवमें प्रद्युम्न राजाकी रति नामक रानी तथा शुभंकर कुमारकी परस्पर आसक्तिकी कथा भी गुणपालके आख्यानके समान है और वही कथानक गुणपालकी रचनाका आधार है। राजमल्लने लगभग वीर कृत 'जंबूसामिचरिउ'का ही अनुकरण किया है, केवल इतने अंतरसे कि राजा शिकारको गया था, युद्धके लिए नहीं। यहाँ एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि वसु० हिंडी, उ० पु० तथा हेमचंद्र वर्णित कथानकमें रानी और ललितांगका मिलन होता है और वे अपनी वासना पूर्ति करते हैं। परंतु वीर कवि तथा हरिभद्र और गुणपालके अनुसार चंग या ललितांग अंतःपुरमें पहुँचा ही था, कि राजा आ गया अथवा रक्षकोंको खबर लग गयी और बस! ललितांग गूथ कूपमें फेंक दिया गया। उनकी काम-वासना अतृप्त ही रही। ऐसा कहनेमें तीनों ग्रंथकारोंका आशय यह रहा है कि संसारमें जीव चाहे कितने ही भोग भोगे तथापि उसकी भोगवासना सदैव अतृप्त ही रहती है।

अन्य अंतर्कथाएँ

जं० सा० च० की उपर्युक्त अंतर्कथाओंके अतिरिक्त वसु० हिंडी, जंबूचरियं (प्राकृत) परि० पर्व तथा ब्र० जिन० एवं पं० राज० कृत जंबूस्वामीचरित्रोंमें निम्नलिखित अंतर्कथाएँ और भी उपलब्ध होती हैं। लोककथा-तत्त्वों, एवं मूलकथाको रोचक बनाने, तथा उसे गति प्रदान करने आदिकी दृष्टिसे ये कथाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्हें गुणपाल कृत जंबूचरियंके कथा-क्रमानुसार यहाँ दिया जा रहा है।

[१] राजर्षि प्रसन्नचंद्र एवं वल्कलचीरी

भ० महावीर अपने संघसहित राजगृहके निकट पधारे। लोग उनके दर्शनोंको गये। राजा श्रेणिकके दो सिपाहियोंने भगवान्‌के दर्शनोंको जाते हुए रास्तेमें मुनि प्रसन्नचंद्रको खड़े होकर ध्यान करते देखा। उन्हें

देख उनमें-से एक बोला—इसकी तपस्याका कोई लाभ नहीं। यह राजा दीक्षा लेते समय अपनी रानियों और बालक राजकुमारको मंत्रियोंके भरोसे छोड़ आया है। वे राजकुमारका वध कर देना चाहते हैं। इस प्रकार इसकी प्रव्रज्या इसके कुल नाशका कारण होगी। इतना कहकर वे चले गये। इधर यह सब सुनकर मुनिको बड़ा विक्षोभ उत्पन्न हुआ। वे मनसे ही मंत्रियोंसे युद्ध करने लगे और उनके मुख-मंडलपर तीव्र गतिसे विविध-भावोंका उतार-चढ़ाव प्रकट होने लगा। पीछेसे भगवान्‌के दर्शनोंको आते राजा श्रेणिकने मुनिको इस अवस्थामें देखा और समवशरणमें पहुँचकर भगवान्‌से उनके संबंधमें प्रश्न किया। भगवान्‌ने मुनिका पूर्ण वृत्तांत इस प्रकार सुनाया—

'पोतनपुरका राजा सोमचंद्र शिरके श्वेत बालका निमित्त पाकर अपने पुत्र प्रसन्नचंद्रको राज्य दे दीक्षित हो गया। गर्भवती रानी धारिणीने भी पतिका अनुगमन किया। समयपर वनमें ही धारिणीने पुत्रको जन्म दिया, और स्वयं सूतिका रोगसे चल बसी। पिता सोमचंद्र साधु अब स्वयं पुत्रका पालन करने लगे और उसका नाम वल्कलचारी रखा। उधर नगरीमें राजा प्रसन्नचंद्रको किसी प्रकार अपने भाईके जन्म लेने आदिके समाचार मिले। उसने बड़ी युक्तिपूर्वक (देखें : परि० पर्व) पिता सोमचंद्रको पता लगे बिना ही वल्कलचारीको अपने पास बुलवाकर उसका विवाहादि करा दिया। इधर सोमचंद्र साधु होनेपर भी पुत्रके मोहवश पुत्र वियोगमें रोते-रोते अंधा हो गया। एक बार दोनों भाई पितासे मिलने वनमें आये। पुत्रमिलनके आनंदाश्रुओंसे सोमचंद्रको पुनः दृष्टि प्राप्त हो गयी। पिताकी कुटीमें अपने चीरसे उनके पात्रोंको साफ़ करते-करते वल्कलचारी ध्यानमें लीन हो गया कि कभी मैं भी इसी अवस्थामें (साधु) था, उसी अवस्थामें चिंतन करते-करते उसे वहीं पूर्व जन्मका स्मरण हो आया। एकाग्रतासे ध्यानमें ऊँचे और ऊँचे चढ़ते हुए वल्कलचारीको वहीं केवलज्ञान प्राप्त हो गया, तथा वे प्रत्येकबुद्ध हो गये। पिताको भ० महावीरको सौंप वे प्रत्येकबुद्ध अन्यत्र विहार कर गये। प्रसन्नचंद्रको भी इस घटनासे वैराग्य हो गया, और घर आकर बालक राजकुमार तथा रानियोंको मंत्रियोंकी देख-रेखमें छोड़ वह दीक्षित हो गया। भ० महावीरके यह कथा कहते-कहते मुनि प्रसन्नचंद्रको भी इसी बीच आत्मचेतना जाग्रत हुई। उनके विचार बदले। उन्होंने तीव्र पश्चात्ताप किया, और उसी समय ध्यान बलसे ऊपर चढ़ते-चढ़ते उन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हो गया।

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त वसु० हिंडी, उ० पु० (संक्षिप्त) तथा परि० पर्वमें भी प्राप्त होती है।

इसी प्रसंगमें अंतिम केवली कौन होगा, यह पूछनेपर भगवान् ने विद्युन्माली देवका नाम लिया और जंबूस्वामीके भवदेव नामक प्रथम भवसे कथा प्रारंभ की।

[२] भोग-वासनाग्रस्त ब्राह्मण-पुत्र

भवदेवके दीक्षोपरांत भोगकी इच्छासे पुनः नागिलासे मिलने आनेपर नागिला (जं० सा० च० नागवसू) ने उसे प्रतिबोध देनेके लिए कथा सुनायी।

नागिला : रे भवदेव, साधुत्वको छोड़कर तू वासना-ग्रस्त ब्राह्मण-पुत्रके समान पशु होकर दुःख पावेगा।

भवदेव : कौन-सा ब्राह्मण-पुत्र ?

नागिला : सुन ! मैं तुमसे कहती हूँ—'लाटदेशके भरुकच्छ नगरमें रेवादित्य नामक अति दरिद्र ब्राह्मण हुआ। उसकी अत्यंत विकृत व कुरूपाकृति तथा स्वभावसे महादुष्ट यथा नाम तथा गुण आपदा नामक पत्नी थी। उसे पाँच लड़कियाँ हुईं और एक सबसे छोटा लड़का। महान् कष्टमय जीवन व्यतीत करते-करते आपदा तो कुछ काल बाद मर गयी, और ब्राह्मण अत्यंत दुःखी व किंकर्तव्यविमूढ़ होकर लड़कियोंको ब्राह्मण लड़कोंके हाथोंमें सौंप पुत्र सहित घरसे निकल गया। तीर्थाटनमें साधुओंके सत्संगसे वे दोनों साधु बन गये। पुत्र साधु जीवनके कष्टोंको सह नहीं सका, अतः संघसे निकाल दिया गया और गृहकार्योंमें प्रवृत्त हो गया। ग्वालोंके साथ पशु चराते, लोगोंका लकड़ी, पानी, भूसा आदि ढोनेका श्रम करके भी कठिनाईसे वह उदरपूर्ति कर पाता, फिर भी घरमें स्त्री लानेकी तीव्र इच्छा रखता। इस प्रकार महान् कष्टमय जीवन व्यतीत करते हुए अतृप्त भोगवासनाओंसे पीड़ित वह ब्राह्मण पुत्र एक बार सर्प काट लेनेसे मरकर एक

महिषके रूपमें जन्मा और उस जातिमें भी वध-बंधन आदि सहता हुआ असह्य भार ढोने लगा (उसके पिताने, जो संन्यासपूर्वक मरकर देव हुआ था, स्वर्गसे आकर उसे बोध दिया)। इसी प्रकार तू भी भोग-वासनाके वशीभूत हो दुर्गतिको प्राप्त होगा।'

[३] वमन-भक्षणेच्छुक ब्राह्मण-पुत्र

इसी बीच नागिलाके साथकी ब्राह्मणीका पुत्र वहाँ आ गया और माँसे बोला—'माँ एक थाली लाओ, मैं बहुत स्वादिष्ट दूध-पाक जीमकर आया हूँ, उसका वमन करूँगा। उसे तू संभालकर रख लेना, जब मुझे पुनः भूख लगेगी तो मैं उसे खाऊँगा। अभी मुझे दूसरे घर जीमने जाना है।' उसका यह कथन सुनकर माँने उसे धिक्कारा—'छिः बेटा! वमन करके भी कहीं पुनः खाया जाता है?' भवदेवसे भी न रहा गया और उसने भी ब्राह्मण-पुत्रका बड़ा धिक्कार किया। यह सुनकर नागिलाने कहा—रे भवदेव! दूसरेको क्या धिक्कारता है, तू अपनी ओर तो देख! तू भी अपने वमन (त्यक्त) किये हुए (विषय भोगों) को फिरसे खाने (भोगने) की इच्छा कर रहा है! नागिलाके इस कथनसे भवदेवको सच्चा बोध हो गया।

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त वसु० हिंडी और परि० पर्वमें भी मिलती है।

इस स्थल-पर गुणभद्र कृत उ० पु० में निम्नरीतिसे तीन कथाएँ कही गयी हैं जो अन्यत्र नहीं मिलतीं।

[४] दासी-पुत्र

दीक्षाके बारह वर्ष पश्चात् गाँवमें आने-पर मुनि भवदेवकी भेंट सुव्रता नामक गणिनी (साध्वियोंके संघकी अध्यक्षा) से हुई। भवदेवने गणिनीसे अपनी स्त्री नागश्री (जं० सा० च० नागवसू) के संबंधमें पूछा! गणिनी उसका अभिप्राय समझ गयी, और उसे संयममें स्थिर करनेके आशयसे 'मैं नागश्रीके संबंधमें अच्छी तरह नहीं जानती', ऐसा उत्तर देकर, अपने साथकी दूसरी आर्यिकाको निम्नलिखित कथा सुनाने लगी—'एक सर्व समृद्ध नामक वैश्य था। उसका दारुक नामका सरल-हृदय दासी-पुत्र था। एक दिन दासीने सेठका जूठा स्वादिष्ट भोजन जबर्दस्ती अपने पुत्रको खिला दिया। वह खा तो गया, पर ग्लानिके कारण उसने वह सब भोजन वमन कर दिया। उसकी माँ ने वह वमन काँसेकी थालीमें ले लिया, और भूख लगनेपर पुनः उसके सामने रख दिया। भूखसे अत्यंत पीड़ित होनेपर भी दारुकने अपना वमन नहीं खाया। तब मुनि अपने छोड़े हुए पदार्थको किस तरह चाहते हैं।

[५] राज-श्वान

इसके उपरांत सुव्रता दूसरी कथा कहने लगी—नरपाल नामक राजाने कौतुकवश एक कुत्ता पाल रखा था। राजा उसे अच्छे-अच्छे भोजन देता, सुवर्णके आभूषण पहनाता और वनविहारादिके समय उसे सोनेकी पालकीमें साथ बैठाकर ले जाता। एक दिन पालकीमें जाते समय कुत्तेकी दृष्टि अकस्मात् एक बालककी विष्टापर पड़ गयी, और उसे प्राप्त करनेकी इच्छासे वह झट उसपर कूद पड़ा। यह देख राजाने उसे डंडेसे पीटकर भगा दिया। इसी प्रकार जो मुनि पहले सबके पूजनीय होते हैं, वे ही छोड़ी हुई वस्तुकी इच्छा कर फिर अनादरके पात्र बन जाते हैं।

[६] दुर्बुद्धि पथिक

इसके बाद सुव्रता यह कथा कहने लगी—'एक पथिक वनमें-से सुगंधित फल-पुष्प तोड़कर लानेकी इच्छासे चला, परंतु सुमार्ग छोड़कर महा संकीर्ण वनमें जा पहुँचा। वहाँ उसने उसे मारनेकी इच्छासे सामने आता-हुआ एक व्याघ्र देखा। उसके भयसे भागते-भागते वह दुर्बुद्धि पथिक एक भयंकर कुएँमें जा पड़ा। वहाँ उसे वात-पित्तादि सब दोष उत्पन्न हो गये, और सब इंद्रियाँ जड़ीभूत होने लगीं! सर्पादि का भय भी वहाँ, था, और कुएँमें-से निकलनेका कोई उपाय भी उसे ज्ञात नहीं था। पुण्यसे एक सद्वैद्य वहाँसे आ निकला, और दयार्द्र होकर उसे ठीक प्रकारसे कुएँसे बाहर निकलवाया। औषधोपचारके द्वारा उसके सब रोग नष्ट कर दिये। उसकी सब इंद्रियाँ पूर्ववत् क्रियाशील हो गयीं। तब वैद्यने उसे सर्वरमणीय नगर (मोक्ष) की

ओर रवाना कर दिया। कुछ काल बाद वह पथिक पुनः विषयोंमें आसक्त हो गया, और दिशा भ्रांत होकर पुनः उसी कुएँमें आ गिरा। इस कथामें पथिक मिथ्यादृष्टि जीव है, वैद्य सद्गुरु है, कुआँ संसार-कूप है, व्याधियाँ सांसारिक आधि-व्याधि दुःख, रोग, शोक हैं। सद्गुरु रूपी वैद्य जीवोंके सम्यग्दृष्टि रूपी नेत्रों एवं सम्यक् ज्ञान रूपी कानोंको खोल सम्यक्चारित्र प्रदान कर मोक्ष रूपी सर्वरमणीय नगरकी ओर जीवोंको रवाना करते हैं। सद्बुद्धि पुण्यवान् जीव एक बार उस मार्गको प्राप्त कर फिर मुक्ति प्राप्त किये बिना उसे नहीं छोड़ते। पर दुर्बुद्धि मंदपुण्य अभागे पुरुष बार-बार सत्संयोग पाकर भी विषयोंमें अंधे और मूढ़ बने रहकर उस मार्गसे फिर-फिरकर लौट आते हैं। गणिनीकी ये सब बातें सुनकर भवदेवको सच्चा वैराग्य हो गया।

तीसरे भवमें शिवकुमार कनकवतीका प्रेमाख्यान बहुत बड़ा है, और मूल कथासे उसका कोई वास्तविक संबंध नहीं। अतः उसे यहाँ नहीं दिया जाता। यहाँसे हम विद्युन्मालीके रूपमें देवायु पूर्ण करके जंबूस्वामीके जन्म और १६ वर्षकी आयुमें सुधर्मस्वामीके दर्शन-धर्मोपदेशके उपरांत जंबूस्वामीको वैराग्य होनेसे आगेकी कथाओंपर आते हैं। जंबूस्वामी आर्य सुधर्माका उपदेश सुनकर घर आये, और उनमें तथा उनके माता-पितामें इस प्रकार वार्तालाप होने लगा—

[७] इभ्यपुत्र

जंबू—माँ सुधर्मस्वामीके दर्शन और धर्मोपदेशसे मुझे अपने चार पूर्वजन्मों (भवदेव, देव, शिवकुमार, विद्युन्मालीदेव) का स्मरण हुआ है। इससे मैं संसारसे पूर्णतः विरक्त हो गया हूँ और मुनि दीक्षा-लेना चाहता हूँ। आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।

माँ—धर्मोपदेश तो हमने भी अनेक बार सुना है, पर तेरे जैसा निश्चय तो कभी नहीं हुआ!

जंबू—माँ किसीको अनेक बार सुनकर भी धर्मबोध और श्रद्धा नहीं होती, और किसीको एक बार सुनकर ही हो जाती है। इस संबंधमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ, उसे ध्यानसे सुनो—

'वसंतपुरमें लावण्यवती नामकी एक अति रूपवान और धनवान् गणिका रहती थी। अनेक समृद्धिशाली राजपुत्र उसके पास भोग करनेको आते थे। कुछ काल ठहरकर जब वे जाने लगते तो लावण्यवती अपनेको स्मरण रखनेके लिए उन राजपुत्रोंको उनके मना करनेपर भी अपने बहुमूल्य कड़े-कुंडलादि आभूषण भेंट किया करती थी। एक बार रत्नोंका पारखी एक चतुर वणिक् पुत्र उसके पास आया। लावण्यवतीके पाँच अमूल्यरत्नोंसे जटित पाद-पीठको, कोई पहचान न सके इस हेतुसे, अन्य गणिकाओं-द्वारा अनादरपूर्वक यहाँ-वहाँ फेंके जाते देख उस रत्न-पारखी वणिक् पुत्रने तुरंत पहचान लिया। कुछ दिन वहाँ रहकर जब उसने घर जानेकी इच्छा प्रकट की तो लावण्यवतीने उससे भी अपनी स्मृतिकी रक्षाके लिए कोई वस्तु ले लेनेका आग्रह किया। उसने उत्तर दिया, 'यदि कुछ लेना ही है तो तुम्हारे निरंतर चरणस्पर्शसे सौभाग्यशाली यह पादपीठ ही मुझे मिले।' लावण्यवतीने उसे बहकानेका बहुतेरा प्रयास किया, पर वह अपने आग्रहपर अटल रहा। तब लावण्यवतीने उसके रत्नपरीक्षाके कौशलपर मुग्ध होकर अपना वह महार्घ्य पादपीठ उस वणिक् पुत्रको अर्पित कर दिया। हे माँ! यही बात धर्म श्रवणके संबंधमें है। इस दृष्टांतमें गणिका धर्मश्रुतिका प्रतीक है, राजपुत्र श्रोता, कड़े-कुंडलादि आभूषण धार्मिक अणुव्रत, पादपीठ सम्यग्दर्शन, पंचरत्न पाँच महाव्रत, और वणिक्पुत्र सम्यग्ज्ञानका प्रतीक है। साधारण श्रोता छोटे-छोटे व्रतोंको लेकर संतुष्ट हो जाते हैं, और सम्यग्ज्ञानी पुरुष सम्यग्दृष्टि ग्रहण कर पंच-महाव्रतोंको धारण करके मोक्षको अपना लक्ष्य बनाता है। अतः आप मुझे दीक्षा लेनेकी अनुमति दें।'

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त केवल वसु० हिंडीमें मिलती है।

[८] पाँच मित्र

माता-पिता—जब पुनः सुधर्म गणधर आवें तब तुम चले जाना!

जंबू—इस संबंधमें आपलोग एक पुरानी कथा सुनें—'कंचनपुर नामके प्रसिद्ध नगरमें पाँच मित्र

रहते थे। एक बार कुंथुनाथ भगवान्‌का धर्मोपदेश सुनकर उनमें-से एकने कहा—भगवान्‌के मुखसे धर्मश्रवण करना अति दुर्लभ होता है। अतः हमलोग उनके चरणोंमें दीक्षा ले लें। दूसरेने कहा इन या किसी अन्य भगवान्‌के पुनः यहाँ आनेपर हम लोग दीक्षा लेंगे। ऐसी शंका आनेपर वे पाँचों स्वयं भगवान्‌के पास गये और उनसे भगवानोंके दर्शन तथा धर्म श्रवणको अति दुर्लभ जानकर वहीं दीक्षा ले ली। यही बात मेरे संबंधमें है।'

यह कथा भी जंबूचरियंके अतिरिक्त केवल वसु० हिंदीमें प्राप्त होती है।

[९] मधु-बिंदु दृष्टांत

जंबूका विवाह हो गया और वह घर आकर वधुओंके बीच निर्विकार भावसे बैठ गया। सब सो गये, जंबू जागता रहा। इतनेमें प्रभव चोर वहाँ चोरी करने आया। जंबूको जागते देख, और उसकी दीक्षा लेनेकी इच्छा जान उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ (कवि वीर, ब्र० जिन० एवं पं० राज०के अनुसार यह वार्त्तालाप वधुओं और जंबूके बीच हुआ)—

प्रभव : जंबू तुम्हारा यह देव दुर्लभ अद्वितीय रूप, यौवन, अपार संपत्ति तथा ये अपूर्व-अनिंद्य सुंदरी वधुएँ, इन सबका अलभ्य मानवीय सुख भोगकर परिपक्व वय आनेपर तब तुम दीक्षा लेना।

जंबू : हे प्रभव! यह समस्त सांसारिक सुख तुच्छ मधु-बिंदुके आस्वादके समान है! सो कैसे? इसका दृष्टांत मुझसे सुनो—

'एक बार एक धनवान् वणिक् वाणिज्यके लिए निकला और राहमें बड़े दुर्गम वनमें फँस गया। वहाँ यमके समान एक दुर्दांत हाथी उसके पीछे लग गया। प्राण रक्षाके लिए भागता-भागता वणिक् एक वट वृक्षके प्ररोहोंको पकड़कर उसके नीचे स्थित कुएँमें लटक गया, जिसके चार कोनोंमें चार विषैले सर्प और बीचमें एक भयानक अजगर मुँह खोले पड़े थे। इधर एक श्वेत और एक काला ऐसे दो चूहे अविराम गतिसे उसी प्ररोहको काट रहे थे, जिससे वह लटका था। इतनेमें हाथी भी आ गया और क्रुद्ध होकर उखाड़नेके लिए उस वटवृक्षको झकझोर डाला। वृक्षके हिलनेसे उसपर लगा मधुमक्खियोंका छत्ता उड़ गया और उसमें-से एक-एक बूँद टपककर भाग्यसे वणिक्‌के मुखमें आकर गिरने लगी। वणिक् उसका आस्वाद लेने लगा। वे सारी मधु-मक्खियाँ भी आकर वणिक्‌से चिपट गयीं और तीक्ष्णतासे काटने लगीं। आकाश-मार्गसे जाते एक विद्याधरने वणिक्‌को इस मारणांतिक भयावह स्थितिमें देखा और अनुकंपा पूर्वक वहाँसे उसका उद्धार करनेको तत्पर हुआ। पर उस महान् संकटमें भी वह वणिक् उन क्षुद्र मधु-बिंदुओंके स्वादको नहीं छोड़ सका। चूहोंने उसकी अवलंब—डाल काट दी। उसका प्राणांत हो गया और वह कूपमें उन भयानक सर्पोंके मुखमें जाकर गिरा। इस दृष्टांतमें वणिक् संसारी जीव है; वन संसार है, वाणिज्य सांसारिक तृष्णाएँ हैं, हाथी मृत्युका प्रतीक है! वटवृक्ष मोक्ष है, जिसपर वह चढ़ नहीं सकता। प्ररोह आयु है और श्वेत व काले चूहे दिन और रात हैं जो अविराम गतिसे मानवीय आयुष्यको काटते रहते हैं। मधु-मक्खियाँ आधिव्याधियाँ हैं, जिनसे मनुष्य पीड़ित रहता है। वह कूप मृत्युकूप है और चार सर्प नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव ये चार गतियाँ तथा अजगर क्षुद्र-सूक्ष्म जीव योनि (निगोद) का प्रतीक है। इन परिस्थितियोंमें सांसारिक इंद्रिय सुख उस क्षुद्र मधु-बिंदुके आस्वादके समान है। विद्याधर सद्‌गुरु है। पर मोहांध जीव सद्‌गुरुका उपदेश और अवलंब पाकर भी इंद्रिय सुखोंको त्याग नहीं सकता तथा मृत्यूपरांत भयानक दुर्गतिको प्राप्त होता है।'

यह कथा जं० सा० च० के अतिरिक्त उपर्युक्त सभी चरितोंमें पायी जाती है!

प्रभव : यदि ऐसा हो, तो भी हे जंबू! अपने माता-पिता, बंधु-बांधव, पत्नियोंके प्रति अपने कर्त्तव्योंको पूर्ण करके तब तुम दीक्षा लेना।

जंबू : प्रभव! सांसारिक संबंध कितने असत्य और असार होते हैं, इस संबंधमें यह आख्यान ध्यानसे सुनो—

[१०] कुबेरदत्त-कुबेरदत्ता (अठारह नाते)

मथुराकी एक वेश्या कुबेरसेना एक बार जुड़वाँ भाई-बहनोंकी माँ बनी। उसने उनके नाम कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता रखकर उनकी अँगुलियोंमें नामांकित मुद्रिकाएँ पहनाकर एक मंजूषामें रख उन दोनोंको जमुनामें प्रवाहित कर दिया। बहती हुई वह मंजूषा शौर्यनगरके किनारे दो वणिकोंके हाथ लगी। उनमें-से एकने पुत्रीको ले लिया, दूसरेने पुत्र। युवा होनेपर समान रूप गुणोंको देख उनका परस्पर विवाह कर दिया गया। विवाहोपरांत द्यूत-क्रीड़ामें कुबेरदत्ताने कुबेरदत्तको जीत लिया। सखियोंने कुबेरदत्तकी अँगूठी निकालकर कुबेरदत्ताकी गोदीमें डाल दी। अँगूठीको देखते ही कुबेरदत्ताको सहसा ऐसा हुआ कि हो न हो हम दोनों भाई-बहन हैं? माता-पितासे वृत्त पूछनेपर बात सत्य सिद्ध हुई। इससे कुबेरदत्ताको बड़ी विरक्ति हुई और वह जैन साध्वी बन गयी। कुबेरदत्त व्यापारादिमें लग गया। एक बार व्यापारके ही प्रसंगमें वह मथुरा पहुँचा और कुबेरसेनाके रूप गुणोंकी ख्याति सुन उससे आकृष्ट हुआ और अंततः उसीके यहाँ रहने लगा। कुबेरसेनासे उसे एक पुत्र हुआ। कुबेरदत्ता साध्वी भी घूमते-घामते मथुरा पहुँची और वहाँ भाईको माँके साथ भोग भोगते जान उसे अतिशय क्लेश हुआ। दोनोंको (माँ कुबेरसेना, भाई कुबेरदत्त) प्रतिबोध देनेकी इच्छासे वह कुबेरसेनाके ही घर जाकर ठहरी। भाई व माँ (अब पति-पत्नी) दोनोंने उसे नहीं पहचाना। उनके पास खेलते (कहीं पालनेमें झुलाते) बालकको देख वह बोली—तू मेरा भाई, पुत्र, देवर, भतीजा, चाचा और पौत्र है। तेरा पिता मेरा भाई, पिता, बाबा, पति, लड़का और श्वसुर है; और तेरी माँ, मेरी माँ, दादी, भाभी, पुत्रवधू, सास और सौत है। कुबेरदत्त-कुबेरसेना साध्वीके इस प्रलापसे बड़े क्षुब्ध हुए और उसका वास्तविक अर्थ पूछा। तब कुबेरदत्ताने जन्मसे लेकर अबतककी सारी कहानी उन्हें सुनायी और उन्हें अपने संबंध बतलाये कि जैसे उसने कहे थे, वे सभी सच हैं। कुबेरदत्ताके इस व्याख्यानसे कुबेरदत्तको भी तीव्र वैराग्य हो गया और वह भी दीक्षित हो गया तथा कुबेरसेना भी सच्ची श्रद्धालु धर्मनिष्ठ श्राविका बन गयी। तो हे प्रभव! ये सांसारिक संबंध तो ऐसे ही मिथ्या हैं, इनमें कोई सार नहीं है। जब एक ही जन्ममें इतने नाते (अठारह) संभव हैं, तो फिर जन्म-जन्मकी तो बात ही क्या? न जाने कौन किसका क्या-क्या बना है? और क्या-क्या बनता रहेगा? अतः इन झूठे संबंधोंके लिए मैं आत्मकल्याणकी हानि क्यों करूँ? ;

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त वसु० हिंडी और परि० पर्वमें उपलब्ध होती है।

[११] गोपयुवक दृष्टांत : अर्थ विनियोगकी विरूपता :

प्रभव : हे जंबू! तुम्हारे सातिशय वचनोंसे किसको बोध नहीं होगा? तथापि मैं कहता हूँ कि जिस अर्थ (धन) की उपलब्धि बड़े महान् प्रयत्नसे होती है, और वह धन तुम्हारे पास विपुल परिमाणमें है, उसके परिभोगके लिए वर्ष-भर घरमें रहो, फिर प्रव्रज्या ले लेना।

जंबू : सत्पुरुष उत्तम पात्रोंके लिए धनके परित्यागकी प्रशंसा करते हैं, न कि कामभोगमें। उसके विनियोगकी। कामभोगोंमें धनके विनियोगके संबंधमें मैं तुम्हें एक दृष्टांत सुनाता हूँ। उसे ध्यान देकर सुनो—

'अंग जनपदमें प्रभूत गो-महिष संपत्तिके स्वामी गोप रहते थे। एक बार चोरोंने उनके घोष (बस्ती) पर आक्रमण किया, और एक सद्यःप्रसूता रूपस्विनी तरुणीको, उसके लड़केको वहीं छोड़कर, अपहरण करके ले गये। उन्होंने चंपानगरमें उसे वेश्याओंके हाटमें ले जाकर बेच दिया। वहाँ वमन-विरेचनादि परिकर्म, परिचर्या और उपचार किये जानेसे उसका मूल्य लक्ष-मुद्राओंके बराबर हो गया। उधर उसका वह लड़का भी बड़ा होकर जवान हो गया और घीकी गाड़ियाँ भरकर चंपा नगरीको गया। वहाँ उसने घी बेचा, और तरुण पुरुषोंको गणिकाके घरमें स्वच्छंद क्रीड़ा करते हुए देखकर सोचा, 'मुझे इस धनसे क्या काम? यदि इस प्रकार इच्छित युवतीके साथ विहार न करूँ;" और देखते-देखते वही गणिका उसे अच्छी लगी जो उसकी माँ थी। उसने उसे यथेच्छ शुल्क दिया। संध्याके समय स्नानादि करके अपनी माँ-गणिकाके घरकी ओर चला। रास्तेमें एक अनुकंपावान् देवताने बछड़े-सहित गायका रूप बनाकर अपने को उस युवकके समक्ष प्रकट किया।

'पैर अशुचि (विष्ठा) में पड़ गया' करके वह गोप युवक अपना पैर बछड़ेके शरीरसे पोंछने लगा। तब बछड़ा मनुष्य वाणीमें बोला—'माँ यह कैसा व्यक्ति है, जो अमेध्यमें भरे हुए अपने पैरको मेरे शरीरसे पोंछता है।' माँ बोली—'पुत्र ! दुखी मत हो, यह अभागा अपनी माँके साथ अकार्य करने जा रहा है, इस गोपयुवकके लिए तेरे साथ ऐसा व्यवहार कोई बड़ी बात नहीं'; ऐसा कहकर देवताने अपनेको अदृश्य कर लिया। गोपयुवकने सोचा, 'सुना है मेरी माँ चोरोंके द्वारा अपहरण कर ली गयी थी ! क्या वह गणिका तो नहीं हो गयी ?', ऐसा विचारकर पहले तो वहींसे लौटने लगा। फिर सत्य शोधकी जिज्ञासासे वहाँ गया, और अज्ञानमें माँके गणिका सुलभ व्यापारोंकी उपेक्षा कर, आग्रहपूर्वक उससे उसका पूर्व वृत्त बिलकुल सच-सच पूछा। वास्तविकता जान उसे तीव्र क्लेश हुआ.....। तो प्रभव ! मैं तुमसे पूछता हूँ यदि देवताने अनुकंपा न की होती, तब उस गोपयुवकके धनका भोग और विनिमय कैसा होता ?'

यह कथा केवल वसु० हिंडीमें ही प्राप्त होती है।

[१२] महेश्वरदत्तका पिंडदान

प्रभव : जंबू ! तुम्हारा कथन सत्य है, फिर भी पुत्रके नाते, लोकधर्मकी रक्षा हेतु पितरोंको पिंडदान करके जाना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

जंबू : प्रभव ! पिंडदानकी बात बिलकुल व्यर्थ है। इस विषयमें मैं एक कथा कहता हूँ, उसे दत्तचित्त होकर सुनो—

ताम्रलिप्तिमें महेश्वरदत्त नामका वणिक् रहता था। उसके माँ-बाप (बहुला व समुद्र) बड़े धूर्त और लोभी थे। मरकर उसकी माँ कुतिया व पिता भैंसके रूपमें उत्पन्न हुए। महेश्वरदत्त वाणिज्य हेतु प्रायः दीर्घकालीन प्रवासमें रहता था। पीछे उसकी अकेली, सुंदर-युवा पत्नी व्यभिचारिणी हो गयी। एक बार महेश्वरदत्त अचानक प्रवाससे लौट आया और उसने पत्नीको अपनी आँखों व्यभिचार करते देख लिया। उस जारको क्रोधवश महेश्वरदत्तने तत्क्षण मौतके घाट उतार दिया ! मरकर वह जार अपने ही शुक्रसे महेश्वरदत्तकी पत्नीके गर्भमें प्रविष्ट हो गया। वणिक् फिर सुखसे पत्नीके साथ रहने लगा। उचित समयपर उसे पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसे उस मूढ़ने अपना ही समझा। माता-पिताके वार्षिक श्राद्धके दिन उसने भैंसा खरीदा और वध करके, उसका मांस पकाया। पिंडदान किया, स्वयं खाया, गोदीमें बिठा पुत्रको दिया, और एक कुतिया आ गयी उसे भी फेंका। इसी बीच एक साधु वहाँ आये और यह देख, आह दुष्पाप ! आह क्लेश ! ऐसा शोकपूर्वक उच्चारण कर लौट चले। महेश्वरदत्त उनके पीछे भागा और उनके शोकोद्गार का कारण पूछा। साधुने सब कुछ बतलाया—यह भैंसा जिसे तुमने काटा, तुम्हारा ही पिता है और यह कुतिया तुम्हारी माँ है; तथा प्रमाणके लिए कुतियोंको घरमें ले जा उससे गड़े धनका स्थान बतलाया। बात सत्य निकली। हे प्रभव, पिंडदानकी बात बड़ी व्यर्थ है। कहाँ पितर और कहाँ पिंडदान ?

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त वसु० हिंडी तथा परि० पर्वमें मिलती है।

[१३] कौड़ीके लिए करोड़ खोनेवाला बनिया :

जंबूके ये वचन सुनकर प्रभवको बोध हो गया और उसने पूछा—स्वामी ! सिद्धिसुख और विषय-सुखोंमें कितना अंतर है ?

जंबू : सिद्धि सुख अनंत-अव्याबाध और निरुपम है। ऐसे सुखको छोड़, क्षुद्र इंद्रियसुखोंके लालची जीव उस वणिक्के समान हैं जो एक कौड़ीके लिए करोड़की संपत्ति खो बैठा ! सुनो कैसे—

'एक बनिया करोड़ोंके भांड (पदार्थ) गाड़ियोंमें भरकर सार्थ (कारवाँ) के साथ एक अटवीमें प्रविष्ट हुआ। उसका एक पात्र फुटकर व्ययके लिए पणों (कौड़ीके मोल बराबर सिक्के) से भरा था। उन्मार्गमें पड़ जानेसे एक जगह उसका भार (पात्र) फूट गया और पण बिखर गये। उसने अपनी सब गाड़ियाँ रुकवा दीं, और सब आदमियोंको पण ढूंढनेमें लगा दिया। इतनेमें सार्थके दूसरे लोग भी आ गये और बोले, 'अरे गाड़ियोंको जाने दो ! क्या एक काकिणीके लिए करोड़ोंसे हाथ धोना चाहते हो ? क्या चोरोंसे

नहीं डरते ?' वह बोला—'भविष्यत्में लाभ होना तो संदिग्ध है; जो है उसे कैसे छोड़ दूँ ?' सार्थके शेष लोग चले गये, और उसका सारा माल चोरोंने लूट लिया।

यह कथा मात्र वसुदेव हिंडीमें उपलब्ध है।

इस प्रकार संवाद होते-होते बहुत रात बीत गयी और वधुओंकी नींद खुल गयी, तथा प्रभवके निरुत्तर हो जानेसे कथोपकथन अब वधुओं और जंबूस्वामीके बीच होने लगे।

समुद्रश्री : सखियो ! हमारे इस भर्त्तारको प्राप्त सुखोंको छोड़, अप्राप्त सुखोंकी धुनमें उस मूर्ख किसानके समान पछताना पड़ेगा, जिसकी कथा निम्न प्रकार है, सुनो :

[१४] बक नामक मूर्ख कृषक

'सुसीमन नामक गाँवमें बक नामक एक किसान रहता था। उसने खेतमें कांगू और कोदों नामक धान बोया। धानके पौधे समय पाकर खूब बड़े बड़े होगये। इसी बीचवह एक बार दूर गाँवमें अपने संबंधियों-के यहाँ गया। वहाँ उसे गुड़-मंडग खिलाये गये, जो उसे बहुत अच्छे लगे। गुड़-मंडग बनानेकी विधि पूछने-पर उसे बताया गया कि पहले गेहूँ बोना। गेहूँ पक जानेपर उन्हें पिसाकर उस आटेको भट्ठीमें लोहेकी कढ़ाईमें भूनना। इसी प्रकार ईख बोना और गन्नोंका रस पकाकर गुड़ बनाना। भुना हुआ आटा और गुड़ मिलानेसे गुड़-मंडग तैयार होगा। यह कहकर संबंधियोंने उसे गेहूँ और ईखके बीज भी दिये। उन बीजोंको लेकर वह खुशी-खुशी घर आया, और पुत्रोंके बहुत मना करनेपर भी हरी-भरी खेतीमें हल चलाकर उसे उजाड़कर उसमें गेहूँ और ईखके बीज बोये और पानी देनेके लिए वहीं कुआँ खोदा, जिसमें पानी नहीं निकला। इस प्रकार मूर्ख बक गेहूँ और ईख ही नहीं उगा सका, फिर गुड़-मंडग खानेका सुख तो उसे मिलता ही कैसे ? अपने जो कांगू और कोदों धान तैयार थे, उनसे भी हाथ धो बैठा। इसी प्रकार हमारा पति जंबू भी दिव्य सुखोंकी आशामें वर्तमान उपलब्ध सुखोंको छोड़ दोनोंसे ही वंचित होकर पछतायेगा।'

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें प्राप्त होती है।

कथा सूत्रको जोड़नेवाली बीचकी कथाएँ पहले दी जा चुकी हैं। आगेकी कथाएँ सभी चरितोंमें जंबूस्वामी तथा वधुओंके संवादके रूपमें आयी हैं। उसी क्रमसे वे यहाँ प्रस्तुत हैं।

दत्तश्री : हे नाथ, हम लोगोंको छोड़कर तुम उस वानरके समान पश्चात्ताप करोगे जिसकी कथा इस प्रकार है, सुनिये—

[१५] मूर्ख वानर

'भागीरथीके तटपर एक अति स्नेही वानर-युगल एक वृक्षपर रहता था। एक बार बंदर कुछ प्रमादसे कूदा, तो सीधा भागीरथीमें आ गिरा और पुण्यसंयोगसे उसमें-से मनुष्यका रूप प्राप्त करके निकला। वानरीने यह देखा और झट भागीरथीमें कूद गयी तथा एक सुंदर स्त्रीका रूप पाया व दोनों सुखसे रहने लगे। एक बार पुरुषके मनमें आया कि अब यदि फिर कूदूं तो मनुष्यसे देव हो जाऊँगा ! स्त्रीने बहुत मना किया, और रोयी, पर वह दुर्बुद्धि नहीं माना और फिरसे भागीरथीमें कूद पड़ा व पुनः लाल मुँह वाला बंदर बन गया। स्त्री वनमें अकेली रह गयी। सुंदर नारीके रूपमें वह एक दिन निकटस्थ नगरके राजपुरुषोंकी दृष्टिमें पड़ी। वे उसे राजाके पास ले गये। राजाने उसके अप्रतिम सौंदर्यसे आकृष्ट हो, उसे अपनी पटरानी बना लिया।[1] इधर उस वानरको एक मदारीने अपने जालमें फँसा लिया और उसे मार-मारकर नाचना व खेल दिखाना सिखलाया। एक दिन मदारी बंदरके करतब दिखलाने उसी राजाके राजमहलमें ले गया। बंदरके खेलोंसे सब बहुत प्रसन्न हुए। अंतमें बंदर हाथ फैलाकर सबसे पैसा माँगने चला और राजाकी पटरानीके सामने पहुँचा। उसे देखकर वह पहचान गया और विकल होकर रो पड़ा। तब पटरानी बोली—उस समय कितना समझाया पर माने नहीं, अब क्यों रोते-पछताते हो ! इसी प्रकार हे नाथ, तुम भी उपलब्ध मनुष्य सुखोंको छोड़ दिव्य सुखोंके लालचमें दोनोंको गँवाकर पछताओगे।'

१. 'जंबूचरियं'में यहीं कथा समाप्त।

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वमें तथा ज० सा० च० (संक्षिप्त), ब्रह्म जिनदास और राजमल्लके चरितोंमें भी प्राप्त होती है। संक्षिप्त रूपमें इसका उत्तर जंबूने इंगाल दाहकके आख्यानसे दिया।

[१६] नूपुर-पंडिता

इंगाल दाहकका आख्यान सुन पद्मश्री बोली (परि० पर्व : पद्मसेना)—स्वामिन्, शरीरधारियोंका परिणाम (फलं) कर्माधीन होता है। अतः तुम युक्तिपूर्वक भोगोंको भोगो। इसके दृष्टांत अनेक हैं, पर मैं नूपुरपंडिता विलासवतीका आख्यान कहती हूँ उसे सुनो—

'अंगदेशके वसंतपुर नगरमें जितशत्रु राजा था, सागरदत्त श्रेष्ठि, उसकी श्रीसेना नामक सेठानी, वसुपाल नामक पुत्र और विलासवती नामक पुत्रवधू।[1] एक बार विलासवती नदीमें स्नान करने गयी। वहाँ एक धूर्त युवक उसे देख उसपर आसक्त हो गया, और विलासवती उस युवकपर। एक परिव्राजिकाकी सहायतासे युवक उसके घरके पीछेके उद्यानमें रात्रिमें उससे अभिसार करनेमें सफल हुआ। इसी समय सागरदत्त लघुशंकादि निवारणार्थ उठकर वहाँ आया तो उसने पुत्रवधूको धूर्तके साथ सोते देखा, और प्रातःकाल पुत्रको प्रमाण सहित बतलानेके लिए वधूके पैरका नूपुर निकालकर अंदर चला गया। विलासवती जगी तो थी ही, तुरंत धूर्तको तो वहाँसे भगा दिया और पतिको बुलाकर उसी स्थानपर उसके साथ आकर सो रही, तथा कुछ ही देर बाद हड़बड़ाकर उठी और बोली, देखो! देखो! तुम्हारे पिता अभी-अभी मेरे पैरका नूपुर निकालकर ले गये हैं, सवेरे मुझपर कलंक लगायेंगे कि मैं किसी पर-पुरुषके साथ सोयी थी। अब तुम जानो! 'तुम निश्चिंत रहो' कहकर श्रेष्ठिपुत्र सो गया!

प्रातःकाल होनेपर पिताने पुत्रसे वह बात कही। पर पुत्र नहीं माना और बोला, 'वृद्धावस्थामें आपको भ्रम हुआ है। मेरी पत्नी बड़ी सती-साध्वी है। मैं ही उसके पास सोया था। आपको वहाँ जानेमें लज्जा आनी चाहिए थी', उलटे आप बहूपर कलंक लगा रहे हैं। सागरदत्त कुछ नहीं कह सका, पर जो कुछ उसने आँखों देखा वह झूठ नहीं था। विलासवतीने अपने श्वसुरके द्वारा लोगोंमें होनेवाली बदनामीसे बचने और अपने सतीत्वको सबके समक्ष प्रमाणित करनेका उपाय निकाला। उस नगरमें एक साक्षात् प्रभावशाली पवित्र यक्षका आयतन था। कोई अपराधी उस यक्षके पैरोंके बीचसे जीवित नहीं निकल सकता था। नगरमें घोषणा करा, नहा-धोकर सब नागरिकोंके जुलूसके साथ वह यक्षके मंदिरमें पहुँची, इधर उसने उस धूर्त युवकको कहलवा दिया कि तुम पागलका रूप बनाकर यक्ष मंदिरमें सबके सामने मेरा आलिंगन कर लेना! धूर्तने ठीक समय वहाँ पहुँचकर वैसा ही किया। विलासवतीने उसे दुत्कार दिया और यक्षसे निवेदन किया कि मेरे पति और सबके सामने इस पागलको छोड़कर यदि किसी पर-पुरुषने मेरा स्पर्श किया हो तो तुम मुझे दंड देना! इतना कह, जबतक यक्ष कुछ निर्णय ले, वह झटसे उसके पैरोंके बीचसे होकर साफ़-साफ़ निकल गयी। लोगोंने उसका बड़ा जय-जयकार किया और श्रेष्ठिकी भर्त्सना।[2]

यह सब स्त्री-चरित्र देख चिंता, शोक व ग्लानिके कारण श्रेष्ठिकी नींद उड़ गयी। राजा जितशत्रुके पास भी श्रेष्ठिके निरंतर जागते रहनेकी बात पहुँची। राजाने उसे बुलवाकर अपने अंतःपुरका रक्षक नियुक्त कर दिया।

श्रेष्ठि रात्रिमें जागता हुआ पहरा देने लगा। इसी बीच उसने एक रानीको बार-बार प्रासादके वातायनसे झाँकते देखा। उसे कुछ संदेह हुआ और वह सोनेका बहाना करके पड़ रहा। तब उसने देखा कि राजाका पट्ट हाथी महावतखानेसे निकला, उसी वातायनके नीचे पहुँचा। उसने अपनी सूँड़ ऊपर उठा दी और वह रानी उसकी सूँड़के सहारे नीचे उतर महावतखानेमें आयी। वहाँ आनेपर महावत उसपर बहुत रुष्ट हुआ और उसे हाथीकी सांकलोंसे पीटा व देरसे आनेका कारण पूछा। रानीने नये रक्षककी नियुक्तिकी बात कहकर उससे हाथ जोड़कर क्षमा माँगी और फिर उसके साथ भोग करके हाथीके सूँड़पर चढ़कर उसी

---

१. परि० पर्व, राजगृह नगर, देवदत्त सुनार, देवदिन्न पुत्र, दुर्गिला पुत्रवधू।

२. तुलना : जातकट्ठकथा अंडभूत जातक क्र० ६२।

वातायनके मार्गसे वापिस प्रासादमें आकर सो रही ![1] यह घटना देख श्रेष्ठिको हुआ—आह ! जब राजमहलों तकमें ऐसा होता है तो हम साधारण लोगोंकी स्त्रियोंकी क्या बात ? इस विचारसे उसे जो निर्वेद-भाव आया, उससे उसकी चिंता मिट गयी और वह प्रगाढ़ निद्रामें लीन हो गया, तथा सात रात-दिनों तक निरंतर सोता रहा। राजाने उसे बीचमें जगाया नहीं, जागनेपर निद्रा आनेका कारण पूछा। श्रेष्ठिने आद्योपांत अपनी पुत्रवधूसे लगाकर जो कुछ प्रासादमें देखा वह सब कह सुनाया। कुशलतासे उस रानीकी पहचान की गयी और राजाने अपनी उस पटरानीको महावतके साथ उसी पट्टहस्तिपर चढ़ाकर हस्ति सहित ऊँचे पर्वतकी चोटीसे गिराकर मार डालनेकी आज्ञा दे दी। हाथीकी अद्वितीय दक्षताके कारण लोगोंने राजासे उसके प्राण न लेनेका आग्रह किया और उसीके साथ रानी और महावतको भी प्राण-भिक्षाके बदले देश-निकालेका आदेश प्राप्त हुआ।

महावत रानी (अब उसकी स्त्री) के साथ वहाँसे निकल किसी दिन कहीं दूसरे राज्यमें किसी ग्रामके बाहर एक रात-भरके लिए एक शून्य देवालयमें आकर ठहरा। रात्रिमें जब ये दोनों सो रहे थे, नगरसे एक चोर चोरी करके वहाँ आया और अंधेरेमें स्त्रीसे टकरा गया। स्त्री चोरको देखते ही उसपर मुग्ध हो गयी और उससे कहा—यदि तू मेरा भर्तार बनना स्वीकार करे, तो मैं तेरी प्राण-रक्षा करूँगी। चोरने स्वीकार किया। इतनेमें रक्षक राजपुरुष चोरको खोजते हुए वहाँ पहुँचे। स्त्रीने चोरको अपना पति बतला दिया, वह बच गया, और उसके बदले सोता हुआ निरपराध महावत पकड़ लिया गया। उसे फाँसीका दंड मिला, और मरनेके पूर्व एक श्रावकसे णमोकार मंत्र प्राप्त कर, उसका जाप करते हुए, अपने दुष्कृत्योंका प्रायश्चित्त करके मरकर स्वर्गमें देव हुआ।

इधर चोर स्त्रीको लेकर वहाँसे भागा और एक विशाल नदीके तीरपर पहुँचा। आगे कथा जं० सा० च०के समान; अंतर केवल यह कि महावतके जीवने स्वर्गमें देव होकर अवधिज्ञानके बलसे स्त्रीकी दशाको देखा और उसे चोर-द्वारा ठगी जाकर नदीके इस तीरपर झाड़ोंके बीच नंगी रोती खड़ी देखकर, उसपर अनुकंपा करके अपनी देवमायासे मांसका टुकड़ा मुँहमें लिये हुए शृगाल, बाज पक्षी और मत्स्यके रूप बनाये, और शृगालके रूपमें मनुष्यवाणीमें उसपर व्यंग्य करके उसे अपना देव-रूप दिखला, महावतका स्मरण दिलाकर प्रतिबोध दिया और हीन दुश्चरित्रमय जीवनसे छुटकारा दिलाकर उसे धर्मकी साधनामें प्रवृत्त किया।

इस प्रकार हे जंबू ! विलासवती अपनी चतुराईसे मानवीय भोग भोगनेमें सफल रही, और दूसरी ओर रानी महावतके सुखको छोड़, चोरके सुखकी लालचमें दोनोंको खो बैठी।[2] अतः तुम भी युक्ति-पूर्वक मनुष्य सुखोंको भोगो, व दिव्य सुखोंकी लालसासे इन्हें छोड़ दोनोंसे वंचित मत होओ।

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त परिशिष्ट पर्वमें पूर्ण तथा जं० सा० च०, ब्रह्म जिनदास तथा पं० राजमल्लके चरितोंमें संक्षेपमें पायी जाती है।

[१७] मेघरथ-विद्युन्माली

जंबू : ओ पद्मश्री ! मैं विषयसुखोंके लोभमें अंधा होकर अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट होना नहीं चाहता।

पद्मश्री : स्वामिन् ! यह सब ठीक है, पर आप एक वर्ष हम लोगोंके साथ भोग करें, उसके उपरांत हम लोग भी आपके साथ गुरुके पादमूलमें दीक्षा ले लेंगी।

जंबू : हे पद्मश्री ! जो भोगेच्छा अनेक जन्मोंमें भोग-भोगकर तृप्त नहीं हुई, भला वह एक वर्षमें कैसे तृप्त हो सकेगी ? इस संबंधमें मैं एक दृष्टांत देता हूँ, उसे तुम ध्यानसे सुनो ! वैताढ्य पर्वतपर देवताओंके गगनवल्लभ नामक नगरमें दो विद्याधर भाई मेघरथ, विद्युन्माली रहते थे। एक बार कुछ विद्यासाधनके लिए, जिसमें उन्हें चांडाल कन्याओंसे विवाह कर एक वर्ष तक उनके साथ ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहकर विद्या सिद्ध

---

१. तुलना : कथासरित्सागर, टौने कृत अनुवाद, भाग १, पृ० ११९ की कथा।

२. तुलना—जातकट्ठकथा : चुल्लधनुग्गह जातक; तथा चीनी भाषासे अंगरेज़ीमें एस० जूलियन-द्वारा अनूदित अवदान, भाग २, पृ० ११ की कथा।

करती थी, वे दोनों चांडाल देशको गये। वहाँ पहुँचकर अपने बुद्धि-कौशलसे उन्होंने दो चांडाल कन्याओंसे विवाह कर लिया, और विद्यासाधन करने लगे। मेघरथ चांडाल कन्याके मोह-पाशमें नहीं पड़ा, और नियमानुसार वर्ष-भरमें विद्या सिद्ध कर ली। पर विद्युन्माली भयानक विरूप-कुरूप और विकृत आकृतिवाली चांडाल कन्याके बाहु-पाशमें फँस गया, और स्वयं चांडालोंके समान रहने लगा, तथा विद्यासाधनके बदले उसे प्राप्त हुआ चांडाल-कन्यासे एक पुत्र। वर्ष-भर बाद जब मेघरथने उसका यह हाल देखा, तो उसे बहुत समझाया, और एक वर्ष बाद आनेको कहकर अपने नगरको चला गया, तथा वहाँ प्रभुत्व, सत्ता, संपत्ति, अनेक अपूर्व सुंदरी विद्याधर कन्याएँ, यश, सम्मान आदि प्राप्त कर देवोपम सुखसे रहने लगा। वर्ष-भर बाद पुनः विद्युन्मालीको देखने गया, तो पाया अब वह दो पुत्रोंका पिता बन चुका था। फिर उसे समझाया! पर विद्युन्मालीको बोध नहीं हुआ। वह चांडालीके विषय-सुखको छोड़ नहीं सका और उसीमें अंधा होकर अपना सब कुछ विद्याधरपना खोकर वहीं अधम चांडाल होकर रह गया। तो हे पद्मश्री! मैं विद्युन्मालीके समान इंद्रिय भोगोंमें पड़कर अपने मोक्षरूपी लक्ष्यसे भ्रष्ट नहीं होऊँगा!'

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[१८] शंखधमक

पद्मसेना (परि० पर्व : कनकसेना) : देखो स्वामिन्! उपलब्ध सुखोंको छोड़ अनुपलब्ध मोक्ष सुखके लिए अतिशय उत्कंठित मत होओ! अन्यथा तुम्हारी दशा शंखधमक किसान जैसी होगी।

जंबू : कैसे पद्मसेना?

पद्मसेना : सुनिये नाथ! मैं उसकी कथा सुनाती हूँ—'शालिग्रामका एक कृषक ऊँचे मचानपर बैठ पशु-पक्षियोंसे खेतकी रक्षाके लिए रात्रिमें खूब जोरसे शंख बजाया करता था। एक रातको चोरोंका एक दल चोरीके पशुओंका एक झुंड हाँककर ले जाते हुए किसानके खेतके पाससे निकल रहा था। उसी समय किसानने खेतपर पशुओंका आक्रमण समझ उच्च-ध्वनिसे शंख फूँका। 'बहुत लोग हमारा पीछा कर रहे हैं', ऐसा समझ चोरोंका दल पशुओंको वहीं छोड़ भाग गया। प्रातःकाल किसानने बिना ग्वालेके पशुओंके उस झुंडको वहीं चरते देखा। वह उन पशुओंको हाँककर गाँवमें ले गया। 'एक देवताने मुझे ये पशु भेंट किये हैं,' ऐसा कहकर उन्हें सब गाँववालोंको बाँट दिया।[1] दूसरे-दूसरे चोर भी इसी तरह अपना चुराया हुआ सब धन आदि छोड़कर भाग जाते रहे। पर इस सस्ती प्रसिद्धि और चोरोंकी संपत्तिका कड़ुआ फल उसे शीघ्र ही मिल गया। एक रातमें चोरोंका वही दल पुनः उसी मार्गसे निकला, और फिर वैसी ही शंख-ध्वनि सुन, उसे पहचान, अपनी पुरानी भूलको समझ खेतमें घुस गये, तथा उस मचानको उखाड़कर किसान सहित नीचे पटक दिया। किसानको बहुत मारा-पीटा, यातना दी और नंगा करके अकेले रोते छोड़, उसके पशु व अन्य जमा पूँजी सब-कुछ लेकर चले गये। इसी प्रकार मोक्ष-सुखकी अति उत्कंठावश कहीं तुम अपने प्राप्त सुखोंको भी मत खो बैठना!'

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त परि० पर्वमें इसी रूपमें तथा इसके स्थानपर जं० सा० च०, ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्लके चरितोंमें शंख नामक कबाड़ीका आख्यान मिलता है। इसके उत्तरमें जंबूने कामातुर यूथपति वानरका आख्यान सुनाया।

[१९] बुद्धि-सिद्धि

तब हाथ जोड़कर कनकसेना (परि० पर्व : नभसेना) बोली—नाथ! कहीं दिव्य-सुखोंके अति लोभके कारण तुम्हारी अवस्था बुद्धि नामक वृद्धा जैसी न हो, जिसकी कहानी इस प्रकार सुनी जाती है—

'भारत क्षेत्रमें माकंदानगरीमें बुद्धि-सिद्धि नामकी दो वृद्धाएँ रहती थीं। वे परस्पर बहुत ही घनिष्ठ मित्र थीं; और दोनों ही दारिद्र्यसे अत्यंत दुःखी। बुद्धि दीर्घ कालसे सच्चे भक्ति भावसे भोलय

---

१. किसी ग्रंथके अनुसार अन्यत्र जाकर बेच दिया।

नामक यक्षकी पूजा कर नैवेद्य और पुष्प चढ़ाया करती थी। उसकी सच्ची भक्तिसे प्रसन्न हो यक्ष बुद्धिकी इच्छानुसार सुखपूर्वक जीवन-यापन हेतु प्रतिदिन उसे एक दीनार प्रदान करने लगा। इससे बुद्धि शीघ्र ही पड़ोसियोंमें सबसे धनवान् बन गयी। सिद्धिको वह रहस्य ज्ञात होनेपर वह भी यक्षको प्रसन्न कर बुद्धिसे दुगुना प्राप्त करनेमें सफल हुई। अब उन दोनोंमें कुस्पर्द्धा प्रारंभ हो गयी, और बार-बार यक्षको भेंट देकर एक-दूसरेसे दुगुना माँगती रहीं। यक्ष भी देता चला गया। एक बार सिद्धिने अत्यंत दूषित चित्त हो, यक्षसे अपनी एक आँख फोड़ देनेको कहा, यक्षने वैसा ही किया। बुद्धिने पुनः यक्षको प्रसन्न करके सदाकी तरह जो कुछ सिद्धिको दिया उससे दुगुना माँगा और दोनों आँखें गँवा बैठी। इसी प्रकार तुम भी दिव्यसुखोंके अतिलोभमें पड़कर कहीं दोनों लोकोंके सुखोंको न खो बैठो!'

यह कथा जंबूचरियंके अतिरिक्त केवल परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

[२०] जात्यश्व

जंबू : कनकसेना! मैं ऐसा मूर्ख नहीं हूँ। मैं तो श्रेष्ठ कुलीन अश्वके समान कभी भी सत्यका मार्ग नहीं छोड़ूँगा। सुनो कैसे?

'वसंतपुरके राजा जितशत्रुकी घुड़सालमें एक बड़ा भाग्यवान् और श्रेष्ठ लक्षणोंसे संपन्न घोड़ा था। उसके पुण्य प्रभावसे राजा दिनों-दिन बलवान् एवं दुर्जेय होता गया। राजाने वह घोड़ा सुरक्षा एवं लालन-पालन हेतु अपने नगरके पवित्र हृदय और विश्वसनीय जिनदास नामक श्रावकको सौंप दिया। जिनदास बहुत ध्यानसे घोड़ेकी देख-रेख करने लगा। वह उसपर बैठकर उसे एक पुष्करिणीमें ले जाता, स्नान कराता और रास्तेमें एक जिनमंदिरकी तीन प्रदक्षिणा देकर वापस ले आता। यही उसका दैनिक मार्ग और क्रम था। पड़ोसी राजा, जितशत्रुकी दुर्जेयतामें घोड़ेके प्रभावका रहस्य जान, घोड़ेको मारने या चुरानेका उपक्रम करने लगे, पर जिनदासकी सावधानीके कारण कोई कुछ कर नहीं पाया। एक प्रतिद्वंद्वी राजाके मंत्रीने घोड़ा चुरानेके लिए छह महीनेकी अवधि माँगी। वह जैन श्रावक बनकर वसंतपुर गया, और जिनदासका विश्वासपात्र बनकर उसके घर रहने लगा। किसी समय जिनदासको आवश्यक गृहकार्यसे दूर गाँवमें अपने संबंधियोंके घर जाना पड़ा। वह अपना घर-बार और घोड़ा, सब कुछ उस कपटी श्रावकके भरोसे छोड़ गया। रातमें उस कपटीने घोड़ेको खोल अपने राज्यमें भगा ले जानेका प्रयास किया, पर घोड़ा घरसे पुष्करिणी, वहाँसे मंदिर और मंदिरसे वापिस घर, इस मार्गके सिवाय कितनी भी मार-पीट और कुछ भी करने पर, अन्य मार्गपर एक पग भी नहीं गया। इस तरह जब सारी रात बीत गयी और सबेरा हो गया तो वह कपटी मंत्री घोड़ेको छोड़ भाग निकला! लौटनेपर जिनदासको सब पता चल गया, पर घोड़ा सुरक्षित था, इससे जिनदासको परम आनंद हुआ। इसी प्रकार हे कनकसेना! ये इंद्रियोंरूपी चोर मुझे कितना भी बहकायें, फुसलायें या यातना दें, पर मैं इनका वशवर्ती हो अपना मोक्षका मार्ग नहीं छोड़ूँगा!'

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[२१] ग्रामबोड-पुत्र

कनकश्री (परि० पर्व : कनकसेना) : स्वामिन्! ऐसा कदाग्रह करके ग्रामबोड (या गाँवकूट— गाँवका सबसे उदार व्यक्ति) पुत्रके समान मूर्ख मत बनिये! सुनिये—

'भारतके बंग प्रदेशमें भद्दालंद नामक गाँवमें ग्रामबोडकी विधवा पत्नी अपने अत्यधिक आलसी पुत्रके साथ रहती थी। एक बार उसने कुछ भी न करनेके लिए पुत्रकी बहुत भर्त्सना की। तब पुत्रने कहा— माँ, अबसे मैं जीनेके साधन जुटानेके लिए अपनी शक्ति-भर सब कुछ करूँगा। एक दिन जब गाँवके लोग एक गोष्ठीमें बैठकर गप्-शप् कर रहे थे, तभी गाँवके कुम्हारका एक दुष्ट गधा रस्सा तुड़ाकर भाग निकला। कुम्हार, पकड़ो! पकड़ो! चिल्लाता हुआ उसके पीछे दौड़ा। कोई उस दुष्ट गधेको पकड़ने आगे नहीं बढ़ा। तब उस ग्रामकूट पुत्रको लगा कि अपना पुरुषार्थ दिखाकर यह कुछ अर्थ-प्राप्तिका अवसर है, ऐसा सोच उसने दौड़कर उस गधेकी पूँछ पकड़ ली। गधा उसे दुलत्तियाँ मारने लगा, लोगोंने भी उसे बहुत कहा,

पर उसने पूंछ नहीं छोड़ी। अंततः गधेने जोरसे उसके मुँहपर लात मारी, उसके सारे दाँत टूट गये, और वह पछाड़ खाकर गिर पड़ा। इसी प्रकार स्वामिन्! मोक्षके लिए दुराग्रह करके मूर्ख मत बनिये!'

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

[२२] घोड़ीपालक

जंबू : कनकश्री! नारीमें प्रेम करनेका परिणाम बड़ा बुरा होता है। कैसे? इसे मुझसे सुनो—

'भारतके कलिंग प्रदेशमें सिंहनिवास नामक ग्राममें किसी एक भुक्तिपालके पास बहुत उत्तम घोड़ी थी। उसने उसे सोल्लक नामक एक व्यक्तिके पास देख-रेखके लिए रख दिया। पर सोल्लक घोड़ीको खानेके लिए दी जानेवाली अच्छी-अच्छी वस्तुओंमें-से थोड़ी-सी ही उसे देता, शेष कुछ स्वयं खा लेता और कुछ बेच देता। क्रमशः क्षीणकाय होते-होते घोड़ी अंततः चल बसी। अपने समयपर सोल्लक भी मर गया। पर अपने दुष्कृत्यके परिणाम स्वरूप वह बार-बार पशु जातिमें जन्मा। बहुत जन्मोंके बाद एक दरिद्र ब्राह्मणके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुआ। उसका नाम सोमदत्त रखा गया। लगभग उसी समय कई जन्मांतरोंके उपरांत घोड़ी भी उसी नगरकी एक वेश्याकी पुत्री होकर, नगरमें सर्वोच्च सुंदरी कन्या हुई। युवकोंमें उसकी कृपा प्राप्त करनेकी होड़ लग गयी। सोमदत्त भी उसपर अत्यंत आसक्त था, पर दरिद्र होनेके कारण वेश्यापुत्री उसकी ओर अच्छी प्रकार देखती तक नहीं थी। फिर भी कमसे कम उसके सान्निध्यमें रहने हेतु अत्यासक्तिवशात् सोमदत्त उसका सेवक बन गया। पर कोई उसे चाहता नहीं था। अतः जब उसे घरसे निकाला जाने लगा तो उसने कठोरसे कठोर दंड, यातना, भूख-प्यास सब कुछ सहना स्वीकार किया, परंतु अपनी प्यारी वेश्यापुत्रीका घर नहीं छोड़ा। तो हे कनकश्री! मैं तुम लोगोंके प्रेमाधीन होकर, उस ब्राह्मण पुत्रके समान यातनाओंमें नहीं पड़ूँगा।'

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें पायी जाती है।–

[२३] मा-साहस पक्षी

कमलवती : हे नाथ! मा-साहस पक्षीके समान दुःसाहसी मत होइये! सुनिये—

'किसी जंगलमें एक पक्षी सोते व्याघ्रके मुखमें घुसकर उसके जबड़ोंमें लगा मांस नोच-नोचकर खाता, बार-बार उड़कर पेड़की डालपर जा बैठता। मा साहस! (दुःसाहस मत करो) मा साहस! कहता और फिर व्याघ्रके मुखमें प्रवेश कर मांस नोचने लगता। सोचो! उस पक्षीकी कथनी क्या? और करनी क्या? तथा उसका परिणाम क्या हुआ होगा? स्वामिन्, तुम भी उस मा-साहस पक्षीके समान बन रहे हो![1] तुम चाहते सुख हो, पर सुखके साधनोंकी निंदा करते हो, और साक्षात्सुखको छोड़ अदृष्ट सुखकी चाहसे तप करनेको उद्यत हुए हो। हे भोले नाथ! तुम्हारे कथन और कर्ममें मा-साहस शकुनि जैसा साक्षात् विरोध दिखाई देता है।'

यह कथा भी जंबूचरियं और परिशिष्ट पर्वमें मिलती है।

[२४] तीन-मित्र

जंबू : हे कमलवती! मैं सच्चा मित्र, संबंधी, प्रेमी और हितैषी कौन होता है, उसे जानता हूँ। अतः तुम लोगोंकी बातोंमें पड़कर अपने स्वार्थ (परमार्थ) से वंचित नहीं होऊँगा। सुनो! मैं तुम लोगोंको तीन (प्रकारके) मित्रोंका एक आख्यान सुनाता हूँ—

'क्षितिप्रतिष्ठ नगरमें अपराजित नामक राजा था। उसका सुबुद्धि नामक मंत्री था,[2] जिसके तीन मित्र थे—सहमित्र, पर्वमित्र, जोहार (प्रणाम) मित्र। सहमित्र निरंतर सुबुद्धि मंत्रीके साथ रहता। खाना,

१. तुलना : महाभारत १, १५४८।

२. परि० पर्व : जितशत्रु राजा; सोमदत्त ब्राह्मण—कुल पुरोहित व प्रधान अमात्य।

पीना, सोना, उठना, बैठना सब कुछ साथ ही करता, और सुबुद्धि भी दिन-रात उसकी देख-भाल रखता। ये दोनों घनिष्ठतम मित्र थे। पर्व-मित्रसे जब कभी विशिष्ट प्रसंगों-पर भेंट हुआ करती, तब दोनों प्रेमसे एक साथ मिलकर उठते-बैठते, खाते-पीते। जोहार मित्रसे यदा-कदा भेंट हो जानेपर आपसमें केवल प्रणाम भर हुआ करता और बस। एक बार किसी कारण राजा अमात्य पर अत्यधिक क्रुद्ध हो गया। अमात्य अपने प्राण बचाने हेतु राजाके पाससे भाग निकला और सहमित्रके घर पहुँचा। ऐसी स्थितिमें भी सुबुद्धि मंत्रीने सहमित्रकी शरण नहीं मांगी, केवल दूसरे देशको चले जानेमें सहायताकी अपेक्षा की। सहमित्रने उत्तर दिया—'तुम कौन हो? कहाँसे आये हो? मैं तुम्हें नहीं जानता। तुम मेरे घरसे तत्क्षण निकल जाओ! मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता।'

अमात्य अत्यंत निराश हो पर्व-मित्रके घर पहुँचा। उसने अनादर तो नहीं किया, बल्कि सम्मान किया, परदेश जानेमें कोई सहायता नहीं दी। हाँ परंतु चौराहे तक जाकर छोड़ आया और कहा—'इस रास्तेसे चले जाओ।

अब बिलकुल निराश हो, सहायताकी कोई अपेक्षा न कर वह बड़े संकोच और संभ्रमके साथ जोहार मित्रके घर पहुँचा। उसने बिना कुछ कहे-सुने-सब जान लिया। सुबुद्धि मंत्रीका अपनी आत्माके समान सम्मान-सत्कार किया। आत्मीयतापूर्वक अपने घरमें रखा और परदेशमें भी उसके साथ गया। वहाँ दोनों सुखसे साथ-साथ रहने लगे।'

इस दृष्टांतमें सुबुद्धि-मंत्री आत्मा है, सहमित्र देह, पर्व-मित्र स्वजन-संबंधी, और जोहार मित्र है धर्म। राजाका क्रोध यमदंडका पतन (मृत्यु) है, चौराहा श्मशान है, जहाँ तक स्वजन संबंधी साथ देते हैं और परदेश है परलोक जहाँ केवल धर्म ही साथ जाता है, अन्य कोई नहीं।

यह कथा जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें पायी जाती है।

[२५] चतुर ब्राह्मण कन्या

यह सब सुनकर सबसे अंतमें आठवीं विजयश्री (परि० पर्व जयश्री) नामक वधू जंबूस्वामीसे इस प्रकार कहने लगी—हे स्वामिन्! माना कि तुम अतिशय बुद्धिमान्, चतुर और महान् प्रतिभावान् हो, पर चतुर भट्टपुत्रीके समान ये सब झूठे कथानक कहकर तुम दूसरोंको बहका सकते हो, हम लोगोंको नहीं! सुनिये। मैं सुनाती हूँ कि उस भट्टपुत्रीकी चतुराईकी कथा—

'बाणारसी (बाराणसी) नगरीमें अपराजित राजा था।[1] उसे प्रतिदिन कहानियाँ सुननेका व्यसन था। नगरके ब्राह्मणोंकी यही उपजीविका थी। इसी नगरमें नागशर्म ब्राह्मण, सोमश्री ब्राह्मणी व उनकी एक चतुर कन्या थी।[2] ब्राह्मण था अशिक्षित। सो एक दिन राजाको कहानी सुनानेकी उसकी पारी आ गयी। उस दिन ब्राह्मण घरमें बड़ा दुःखी, दुर्मना, चिंतित दिखाई-दिया। यह देख पुत्रीसे न रहा गया, बोली—-पिताजी! आज आप ऐसे व्याकुल क्यों लग रहे हैं? क्या कारण है? कहिये भी तो;' और पितासे इसका कारण जान, कन्याने कहा—पिताजी आप चिंतित न हों, आज आपके बदले मैं राजाको कहानी सुनाने जाऊँगी।' यह कहकर कन्या राजदरबारमें पहुँच निर्भीक भावसे राजासे बोली—'राजन्! मुझे बालक समझकर मेरा अपमान न किया जाय! आज अपने पिताके बदले, मैं आपको कहानी सुनाऊँगी।' राजाने कहा—सुनाओ! तब कन्या कहने लगी—

एक बार मेरे माता-पिता एक समागत ब्राह्मण पुत्रके साथ मेरा वाग्दान करके; उसे व मुझे घरमें छोड़; विवाहके लिए सामग्री माँगने चले गये। रात्रिमें मैं भी उसके साथ सो रही, और अपने हाव-भाव विकारोंसे उसे उत्तेजित कर दिया। इससे वह मेरे साथ बलात्कारको उद्यत हो गया। मैं चिल्ला पड़ी! आस-पासके लोग इकट्ठे हो गये। वह भयभीत हो मेरी खाटके नीचे छिप गया। मैंने आये हुए लोगोंसे कहा यह मेरा स्वामी है। मैंने आज ही इसका वरण किया है। अब यह अचानक अस्वस्थ हो

१-२. परि० पर्वः रमणीय नामक नगर, नागश्री नामक ब्राह्मण कन्या; शेष कोई नाम नहीं।

गया है।' तब, 'इसको-सेवा करो, मलो, मर्दन करो' ऐसा कहकर लोग चले गये। मैं फिर उसके साथ सो गयी। अब मेरे साथ सुरत क्रीड़ाकी तीव्र अभिलाषा आदि कामविकारोंको दबानेसे उसे अचानक असह्य शूल वेदना उत्पन्न हो गयी और उसीसे उसका प्राणांत हो गया। मैंने रो-धोकर, गड्ढा खोदकर उसे वहीं गाड़ दिया। ऊपरसे लीप दिया और धूप दे दी। इतनेमें सबेरा हो गया। माता-पिता लौटकर आ गये। मैंने उनसे सब वृत्तांत कह दिया। यही मेरी कहानी है।' इतना कह वह चतुर ब्राह्मण-कन्या चुप हो गयी। राजाने पूछा, 'यह सब सच है या झूठ?' कन्याने उत्तर दिया—आपने अब तक जो अन्य कहानियाँ सुनीं, यदि वे सब सच हैं, तो यह भी सच है; आदि।[1] इस प्रकार, हे स्वामिन्! ब्राह्मण कन्याके समान झूठी कथाएँ सुनाकर तुम हम लोगोंको बहकानेमें सफल नहीं होगे!

यह कथा भी जंबूचरियं तथा परिशिष्ट पर्वमें उपलब्ध होती है।

इसपर जंबूस्वामीने कहा—मैं ललितांग (जं० सा० च० : चंग, अंतर्कथा क्र० १६) के समान विषयांध नहीं हूँ! इन सब आख्यानोंके उपरांत सबको निश्चय हो गया कि जंबूस्वामी किसी भी प्रकार दीक्षा लेनेके निश्चयसे नहीं डिगेंगे, तो सभीने उनके साथ प्रव्रज्या लेनेका निर्णय किया। अंतमें जंबूने निम्नलिखित दो दृष्टांत और सुनाये। पहला दृष्टांत सम्यग्दृष्टि (सच्चा-श्रद्धावान्) सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रित श्रद्धावान्) और मिथ्यादृष्टि पुरुषोंके संबंधमें प्रतीक रूपसे है।

[२६] तीन वणिक् और खदानें

तीन पुरुष दारिद्र्य पीड़ित हो अर्थोपार्जनके निमित्त परदेशको चले। राहमें चलते जाते वे एक भयंकर अटवीमें फँस गये। पर उनके भाग्यसे अटवीमें आगे चलकर उन्हें लोहेकी एक खदान मिली। तीनोंने जितना हो सका, उतना लोहा ले लिया। और आगे चलनेपर उन्हें चाँदीकी खान मिली। एकने सब लोहा फेंककर चाँदी ले ली, दूसरेने 'इतनी दूरसे ढोकर ला रहा हूँ, इसलिए सब लोहा कैसे फेंकूँ', ऐसा कहकर आधा लोहा छोड़ा, उतनी चाँदी ले ली। तीसरा यही कहकर लोहा ही लिये रहा। पहलेने दोनोंको बहुत समझाया कि भाई लोहेकी अपेक्षा चाँदी अधिक बहुमूल्य है, अतः सब लोहा फेंककर चांदी ले लो? पर वे दोनों अपनी-अपनी बातपर अड़े रहे, उसका कहना नहीं माना। और आगे जानेपर सोनेकी खान मिली। पहलेने चाँदी भी सब फेंक दी और पूरा सोना ले लिया। दूसरेने अपने तर्कके अनुसार तीनों वस्तुएँ बराबर परिमाणमें ले लीं। तीसरा अपने कदाग्रहके कारण लोहा ही लिये रहा। पहले व्यक्तिके समझानेको फिर भी दोनों नहीं माने। इसके बाद वे घर लौट आये। पहला सर्वसुखी हो गया। दूसरा मध्यम, और तीसरा वैसा दरिद्रका दरिद्र रह गया।

ये तीन व्यक्ति क्रमशः (१) सम्यग्दृष्टि (२) सम्यग्मिथ्यादृष्टि और (३) मिथ्यादृष्टि व्यक्तियोंके प्रतीक हैं। प्रथम प्रकारके व्यक्ति सब मतोंको छोड़, सच्चा मार्ग ग्रहण कर मोक्ष पाते हैं। दूसरे नाना मतोंके बखेड़ेमें आगे नहीं बढ़ते। उनकी नीचे गिरनेकी संभावना बनी रहती है। और तीसरे अनंत दुखोंसे परिपूर्ण इस अतर-अथाह अपार संसार-सागरमें जन्म-जन्मांतरोंमें भटकते रहते हैं।

यह कथा केवल जंबूचरियंमें पायी जाती है।

---

१. परिशिष्ट पर्वमें कहानी कुछ प्रकारांतरसे है। नागश्रीने राजासे कहा—'एक बार मेरे माता-पिता यात्रापर गये थे। पीछेसे जिससे मेरा वाग्दान किया था, वह घर आ गया। मैंने यथासंभव उसका उचित सम्मान-सत्कार किया। रात्रिमें घरमें एक मात्र शैय्या होनेके कारण, गंदी भूमिपर न लेटकर मैं भी चुपचाप उसके पास लेट गयी। स्पर्शसे उसे मेरी उपस्थितिका पता लग गया, और एकाएक उठी हुई अपनी तीव्र कामवासनाको दबानेके प्रयास व आत्मलज्जा जनित क्षोभके कारण उसकी तत्क्षण मृत्यु हो गयी। 'इन परिस्थितियोंमें मैं ही इसकी मृत्युकी अपराधिनी मानी जाऊँगी....' इस भयसे मैंने उसके मृत देहके टुकड़े-टुकड़े काट, गुप्तस्थानमें गड्ढा खोदकर गाड़ दिया, और घटनाके सारे चिह्नोंको मिटा दिया। तब माता-पिता आये।

[२७] आख्यान—चिंतामणि (द्रव्याटवी-भवाटवी)

उपर्युक्त दृष्टांत सुनानेके पश्चात् जंबूस्वामीने सबको धार्मिक आशयों-प्रतीकोंसे परिपूर्ण निम्नलिखित धर्मकथा सुनायी। यह कथा बड़ी होनेसे लौकिक अर्थोंके साथ उनके आध्यात्मिक आशयोंको साथ-के-साथ कोष्ठकोंमें दिया जा रहा है। गुणपालने इस दृष्टांतको चिंतामणि रत्नके समान सर्वोत्कृष्ट फलदायी आख्यान कहा है—

अवंति देशकी उज्जयिनी नामक नगरीमें धन नामक सार्थवाह रहता था। कदाचित् वह नाना भांड भर कर रत्नद्वीपको प्रस्थान करनेके लिए उद्यत हुआ। नगरके दुःखी लोगोंपर अनुकंपा करके, यह सोचकर कि इन्हें रत्नद्वीपमें शिवपुरीमें स्थापित कर दूँगा, जहाँ ये सब सुखसे रह सकेंगे; उसने नगरमें अपने रत्नद्वीपको गमनको घोषणा करा दी, और कहला दिया कि जो भी लोग उसके साथ चलना चाहें प्रसन्नतासे चल सकते हैं। बहुत लोग (जीव) आये। सार्थवाह (सद्गुरु, केवलज्ञानी अर्हंत) ने कहा—शिवपुरी (मोक्ष) के मार्गमें एक भयानक अटवी (भव—जन्म-परंपरा) पड़ती है। उसमें-से दो रास्ते जाते हैं, एक सीधा (साधु-धर्म) दूसरा टेढ़ा (गृहस्थ-धर्म)। टेढ़ा रास्ता बहुत लंबा है। उससे बहुत देरसे, पर सुखसे शिवपुरी पहुँचते हैं। सीधा रास्ता छोटा है। उससे शीघ्र पहुँचते हैं, पर वह बहुत कष्टकर है। उस रास्तेमें बहुत काँटे (बाधाएँ) हैं और महा भयानक सिंह, व्याघ्र, (राग-द्वेष) आदि भी मिलते हैं। प्रायः दोनों मार्गोंमें चलनेवाले पुरुष (आत्माएँ) प्रमादवश भटक कर उन्मार्गमें लग जाते हैं, और जीवन पर्यंत चलनेपर भी फिर उन्हें सच्ची राह नहीं मिलती। शिवपुरीके मार्गमें आगे बढ़नेपर खूब घने हरे-भरे सुगंधित पत्र-पुष्प फलोंसे लदे हुए शीतल छाया-वाले बड़े आकर्षक मनोरम वृक्ष (देव-मनुष्य गतियोंमें सुंदर-सुंदर युवा सुखदायक रमणियोंसे पूर्ण बसतियाँ) हैं। पर उनकी छायाके नीचे कभी विश्राम नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनकी छाया बड़ी मारक होती है। बल्कि पीले, सूखे, सड़े हुए पत्तोंवाले छायाहीन वृक्षों (शून्य, त्यक्त, स्त्रियोंसे रहित, निर्जन गृह, देवकुल, श्मशान, एकांत वन आदि शुद्ध बसतियाँ)के नीचे केवल मुहूर्त्त भर ठहरकर आगे फिर अपने पथपर अविश्रांत भावसे चल देना चाहिए। मार्गमें किनारेपर बैठे हुए बहुत ही रूपवान् और मधुर वाचावाले पुरुष (नाना-धर्ममतोंवाले पाखंडी) बुलाते हैं, उनके वचन नहीं सुनने चाहियें। क्षणभरके लिए भी सहायकों (सहयोगी साधु-जन) को नहीं छोड़ना चाहिये, क्योंकि एकाकीको वहाँ अवश्य भय है। वहाँ मार्गमें भयानक दुरंत दावानल (क्रोध) जलता रहता है। यत्न और सावधानी (आत्मसंयम) पूर्वक उस दावाग्निको बुझाना चाहिये। नहीं बुझानेसे वह प्रज्वलित होकर पुरुषको जलाये बिना नहीं छोड़ता। उसके आगे बड़ा महान् ऊँचा शैल (मान, अहंकार) मिलता है, उसे भी जागरूकता पूर्वक पार करना चाहिये। उसे पार नहीं करनेवालोंका नियमसे मरण (पतन) होता है। उससे भी आगे बढ़नेपर बहुत कुटिल व घनी उलझी हुई बाँसोंकी झाड़ी (माया) मिलती है। उसमें-से प्रयत्न पूर्वक निकलना चाहिये, नहीं निकलनेसे अनेक दोष होते हैं, और आगे बढ़ना असंभव हो जाता है। उससे और आगे बढ़नेपर ऊपरसे दीखनेमें बहुत छोटा, परंतु वास्तवमें अपूर ऐसा एक गर्त (लोभ) मिलता है, जिसके पास मनोरथ (इच्छाएँ) नामक विप्र सदैव बैठा रहता है और कहता है कि इस गड्ढेको भरकर जाओ। पर कभी भी उसको भरनेके व्यर्थ प्रयासमें नहीं पड़ना। उसे जितना भरते हैं, उससे अधिक वह विस्तारको प्राप्त होता जाता है, और पथिक मार्गच्युत होकर वहीं ठहर कर रह जाता है, आगे बढ़ नहीं सकता। वहाँसे आगे बढ़नेपर बहुत दिव्य पके हुए और सुरभिपूर्ण किंपाक फल (विषयभोग) उपलब्ध होते हैं, परंतु वे महान् प्राणनाशक होते हैं, अतः उन्हें छूना भी नहीं चाहिये। और आगे चलनेपर मार्गमें महा भयंकर व क्रूर बाईस पिशाच (क्षुधा-तृषादि बाईस परीषह; देखें त० सू० ९.९) मिलते हैं, जो हर समय निगलनेको तैयार बैठे रहते हैं, उन्हें भी प्रयत्न-पूर्वक जीतना चाहिये। उस मार्गमें चलते हुए पथिकको सदैव स्वादहीन भोजन-पान करना चाहिये और नित्यप्रति रात्रिके प्रथम व अंतिम दो यामोंमें गमन (स्वाध्याय) करना चाहिये, कभी भी प्रयाण (ठहरना, संयममें अनुत्साह) नहीं करना चाहिये। इस विधिसे वह दीर्घ अटवी (जन्मोंकी अनादि परंपरा) शीघ्र पार कर ली जाती है और आगे जाकर व्यक्ति सकल दुःख-दुर्गति-जन्म-जरा-मृत्यु-व्याधिसे

रहित, सर्वोत्तम अनंत-अक्षय-अव्याबाध-अनुपम और स्वाधीन सुखोंकी श्रेष्ठ वसति शिवपुरी अवश्यमेव उपलब्ध होती है। धन-सार्थवाहके इस प्रकार कहनेपर अनेक व्यक्ति शिवपुरकी राहमें उसके साथ चले। जो सीधे मार्गसे गये, वे शीघ्र उसके साथ शिवपुर पहुँच गये। जो टेढ़े-लंबे मार्गसे चले थे वे भी पहुँच गये, पर देरसे। यह सब कहकर अंतमें जंबूने कहा कि 'उपर्युक्त कथनके विपरीत जो कोई मूढ़-पुरुष शब्द-रूप-रस-गंध-स्पर्शसे मोहित होकर इस पथको छोड़कर उन्मार्गमें लग जाते हैं, वे इन सकल दुःखोंके निधान, भयानक, अनोर-पार, सुदुस्तर, दुर्लंघ्य, घोर संसार-सागरमें अनंतकाल तक भ्रमण करते रहते हैं। यहाँ जिनवचन-रूपी पोतको छोड़कर दूसरी कोई नाव नहीं है।

यह आख्यान भी केवल जंबूचरियंमें पाया जाता है।

इस रीतिसे संक्षेपमें जंबूस्वामीने प्रभव आदिके समक्ष सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र रूपी मोक्ष-मार्गका निरूपण किया। जंबू, प्रभव, वधुएँ, जंबू और वधुओंके माता-पिता सभीने दीक्षा ली। जंबूके गुरु आर्य सुधर्मा, जंबू और प्रभव मोक्ष गये। शेष अपने-अपने तपके अनुसार विभिन्न स्वर्गोंमें इंद्र, अहमिंद्र और देव हुए।

वीर कृत जं० सा० च० तथा अन्य चरितोंमें आयी हुई उपर्युक्त अंतर्कथाओंको वसु० हिंडी, उ० पु०, जंबूचरियं, जं० सा० च०, परि० पर्व० तथा ब्रह्म जिनदास एवं पं० राजमल्लकृत चरितोंकी कुल कथानक संख्या, परस्पर समान कथानक, क्रम संख्यानुसार स्थिति, तथा इन ग्रंथोंमें जंबूस्वामी कथाके विकासक्रमको निम्नलिखित कथासारिणी-द्वारा समझनेमें सरलता होगी :—

जंबूस्वामिचरितोंकी कथासारिणी

(I) संघदास गणिकृत वसुदेव हिंडी (प्राकृत)
(II) गुणभद्र कृत उत्तर पुराण (संस्कृत)
(III) गुणपाल कृत जंबूचरियं (प्राकृत) और
(IV) वीर कृत जंबूसामिचरिउ (अपभ्रंश)
(V) हेम० कृत परि० पर्व
(VI) जम्बूस्वामी च० (सं०) जिनदास
(VII) ,, (सं०) राजमल्ल

	(I)	(III)	(V)	(IV)	(VI)	(VII)
१ जंबूने कहा :						
१ इभ्यपुत्र		७	×			
२ पाँचमित्र		८				
३ यूथपतिवानर प्रभवागमन		२१	१७	७	७	७
४ मधुबिंदु	१०	९	५	९	९	
५ ललितांग	९	२७	२३	१९ चंग	१९	१७
६ कुबेरदत्त-कुबेरदत्ता		१०	६			
७ गोप युवक						
८ महेश्वरदत्त		११	७			
९ एक कौड़ीके लिए करोड़ हारनेवाला मूर्ख वणिक्						

(I) संघदास गणिकृत, वसुदेवहिंडी (प्राकृत)	(II) गुणभद्रकृत उत्तरपुराण (संस्कृत)	(III) गुणपालकृत जंबूचरियं (प्राकृत) और	(V) हेम० कृत० परि० पर्व	(IV) वीरकृत जंबूसामिचरिउ (अपभ्रंश)	(VI) जम्बूस्वामि च० (सं०) जिनदास	(VII) ,, (सं०) राजमल्ल
		(III)	(V)	(IV)	(VI)	(VII)
१० प्रसन्नचंद्र-वल्कधारी विद्युन्माली देवागमन चार देवियाँ	१ धर्मरुचि	१	१			
११ अणाढिय देव वृत्तांत	११	३	२	३	३	३
१२ भवदत्त-भवदेव वृत्तांत	१२	२	३	१	१	१
नागिलाने कहा :	गणिनीने कहा :					
१३ वासनाग्रस्त ब्राह्मणपुत्र	१३ दासी-पुत्र	३	×			
१४ वमनभक्षी ब्राह्मणपुत्र	१४ राजश्वान	४	४			
	१५ दुर्बुद्धि-पथिक					
१५ सागरदत्त-शिव-कुमार भव		५ सागरदत्त-शिवकुमार भव और शिवकुमार-कनकवती प्रेमाख्यान		[सा० दत्त-शिवकुमार]		
				[वधूने कहा :]		
				१० सर्प व करकेंटा	१०	१०
जंबूने कहा :	जंबूने कहा :	जंबूने कहा :		जंबूने कहा :		
४	१०	९	५	९ भ्रमर	९ मधुबिंदुदृष्टांत	
				११ मृत बैलको खानेवाला मृगाल	११	११ वृद्ध बैलको खानेवाला मृगाल
				विद्युच्चरागमन		
				विद्यु०ने कहा :		
	२			१२ मधुलोमी ऊँट	१२	१२
	६ मृगाल संबंधी अंतिम अंश मात्र			१४ असती	१४	१३ :
वसुधर्मीलयशा लंभक-के अंतर्गत	४			१६ भील मृगाल	१६	×
	(८) मृदंग वादक			(१८) बोड नट	(१८) नट और नर्तकियाँ	
				[जंबूने कहा :]		
	११	१५	११	११ तृषित वणिक्पुत्र	११	×

	९ रत्न-राशि और मूर्खपथिक			१५ चिंतामणि-रत्न	१५	१४
	७ सोया हुआ वणिक् और चोरी					
				१७ लकड़हारे-का स्वप्न	१७	१५
५ ललित ५	९ ललितांग	२७	२३	१९ चंग	१९	१७
	गणधरने कहा :					
११	११ अनाढिय देव	१	२	३	३	३
१२	१२ भवदत्त-भवदेव दीक्षा	२	३	१	१	१
नागिलाने कहा :	गणिनीने कहा :	[नागिला कथित]				
१३	१३ दासीपुत्र					
१४	१४ राजश्वान	४	४			
	१५ दुर्बुद्धि पथिक					
		[वधूने कहा]				
		१२ मूर्ख हाली गुडमंडककथा	८	४	४	४
		१४ वानर-युगल	१०	६ वानर	६	६
		१६ नूपुर-पंडिता	१२	१४	१४	१३
		१८ शंख-धमक	१४	८ संखिणो	८ शंखक-वाद्गी	
		२० बुद्धि-सिद्धि	१६			
		२२ ग्रामकूट-पुत्र	१८			
		२४ मा-साहस पक्षी	२०			
		२६ चतुर ब्राह्मण कन्या	२२			
		[जंबूने कहा :]				
चतुर्थ नीलयशालंभकके अंतर्गत		१३ कौवा	९	५	५	५
	१ दाह ज्वर पीड़ित	१५ इंगाल दाहक	११	११ तृषित वणिक्पुत्र	१३	×
		१७ मेघरथ-विद्युन्माली	१३			
३		१९ यूथपति-वानर	१५	७	७	७
		२१ आत्यश्व	१७			
		२३ घोड़ी पालक	१९			
		२५ तीन मित्र	२१			
५	९ धूर्त	२७ ललितांग	२३	१९	१९	१७
		२८ तीन वणिक् और वादानें	×			
		२९ आख्यान-चिंतामणि	×			

उपर्युक्त सारिणीसे ज्ञात होता है कि वीर कविने अपनी प्रस्तुत काव्य कृतिमें कथानक क्र० ५, ७ और १६ वसु० हिंदीसे संग्रहीत किये हैं। कथा क्र० १, ३ व १९ वसु० हिंदी तथा उ० पु० दोनोंमें समान रूपसे उपलब्ध हैं। कथा क्र० ४ मूसंहाली, क्र० ६ वानर, क्रमांक ८ संखिणी, क्र० ९ भ्रमर एवं क्र० १४ असती, ये पांच कथाएं गुणपाल कृत जंबूचरियंमें कुछ परिवर्तनोंके साथ विस्तृत रूपमें विद्यमान हैं। कथा क्र० २ चार देवियोंका पूर्वभव, क्र० १० सर्प व, करयेंटा, क्र० ११ मृत बैल और शृंगाल, क्र० १५ चिंतामणिरत्न एवं क्र० १७ लकड़हारेका स्वप्न, ये पाँच आख्यान कविने स्वतंत्र रूपसे निबद्ध किये हैं, जिनके मूलस्रोत विविध प्रसिद्ध लोक-कथा साहित्य एवं लोकाख्यानोंमें सरलतासे खोजे जा सकते हैं।

'जंबूसामिचरिउ' की अंतर्कथाओंका तुलनात्मक अध्ययन करनेपर हम देखते हैं कि अपने कथा-गठनमें जहाँ कविने अनावश्यक कथाओंको सर्वथा छोड़ दिया है—जैसे कि प्रसन्नचंद्र-वल्कलचारी एवं महेश्वरदत्त आदिके कथानक; वहीं समस्त आख्यानोंको यथासंभव संक्षिप्त भी कर दिया है। ऐसा करनेमें कविने कथानकोंके आशयको तो पूर्णतया सुरक्षित रखा है, परंतु उनमें-से अधिकांशमें-से अतिमानवीय, दैवी तत्त्वोंका लोप कर दिया है, और अपने समस्त आख्यानोंको शुद्ध लोककथाओंके रूपमें वर्णित किया है। जहाँ दूसरे गद्य-पद्य चरितकारोंपर उनके अंतर्मनका उपदेशक रूप हावी रहा है, वहाँ वीर कवि धार्मिक सिद्धांतों, विश्वासों और श्रद्धासे अनुप्राणित रहनेपर भी अपने कवि-हृदयको धार्मिक उपदेशस्थापनसे अभिभूत नहीं होने देता। इसलिए जहाँ अन्य समस्त चरितकारोंने प्रत्येक कथाको आध्यात्मिक आशयों या प्रतीकोंसे लाद दिया है, वहाँ वीर कवि सब कथानकोंका आशय अधिकसे-अधिक दो अथवा एकाध पंक्तिमें ही कहकर समाप्त कर देता है; और इस प्रकार कहीं भी अपने आख्यानोंको धार्मिक प्रतीकोंसे बोझिल करके उनका काव्य-कथा-रस दबने नहीं देता। यही कारण है कि एक ऐसा सामान्य पाठक भी जिसका जैन धर्म व जैन संप्रदायसे कोई संबंध तथा परिचय न हो, वह भी बहुत थोड़ेसे धार्मिक चर्चावाले अंशको छोड़कर, शेष संपूर्ण रचनामें काव्य-रसका अनुभव ले सकता है, जबकि अन्य चरितोंके साथ साधारणतः ऐसा नहीं है। उनका बहुत सारा अंश सामान्य पाठक बिलकुल ही नहीं समझेगा। अतः इनमें प्रचुरतासे विद्यमान साहित्यिक रसका भी वह कोई आस्वाद नहीं ले सकेगा। उदाहरणके लिए गुणपाल कृत 'जंबूचरियं'का आख्यान-चिंतामणि नामक अंतिम कथानक देखें। आख्यानके उत्तरार्द्धमें पूर्वार्द्धके प्रत्येक पात्र, घटना, वस्तु सभीका आध्यात्मिक आशय बताया गया है, पूर्वार्द्ध केवल उसका प्रतीक मात्र है। अब काललब्धि, जीवात्माएँ, मोक्ष और रत्नत्रय आदि तत्त्वोंको सामान्य पाठक क्या समझे? अतः उसके सामने कमसे-कम अमुक-अमुक अंशको छोड़ देनेके सिवाय और क्या उपाय रह जाता है? वीर कवि ऐसी स्थिति कहीं भी उत्पन्न होने नहीं देता और धार्मिक-दार्शनिक तत्त्वोंकी चर्चा भी पाठकके मनमें जिज्ञासा और कौतूहलकी सुदृढ़ पृष्ठभूमि निर्माण कर चुकनेकी स्थितिमें करता है। अर्थात् किसी भी स्थितिमें रचनाकी साहित्यिकता या काव्यात्मकता अन्य तत्त्वोंसे दबने नहीं पाती।

प्रत्येक महाकाव्यमें अनेक अंतर्कथाओंकी योजना अनिवार्य रूपसे की जाती है। उसमें कविका महान् आशय निहित रहता है। ये अंतर्कथाएँ कहीं काव्यकी मूल कथावस्तुको क्षिप्र गतिशीलता प्रदान करती हैं, तो कहीं उसकी गति-तीव्रताको मंथर बनाती हैं; और कहीं कथावस्तुकी मूलधारामें आवश्यक मोड़ लाती हैं, तो कहीं भावी घटनाओंके संकेत भी प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त अंतर्कथाओंका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान नायकके चरित्रके अधिकसे-अधिक सुप्त और अंतर्निहित गुणों तथा उसके सर्वांगीण जीवन-के विविध पक्षोंको प्रकाशमें लानेमें होता है। इनका एक और विशिष्ट आशय आद्योपांत पाठककी जिज्ञासा और कौतूहल वृत्तिको जागृत करते हुए, क्रमशः थोड़ा-थोड़ा शांत करते-करते महाकाव्यकी 'इति' तक इस प्रकार ले जाना रहता है कि अंतमें भी पाठकका कौतूहल भले ही शांत हो जाये, पर उसकी यह जिज्ञासा बनी ही रह जाये कि अब इसके आगे और क्या हो सकता है? क्या हुआ होगा? या क्या होनेकी संभावना है? इन्हीं कल्पनाओंमें पाठक काव्यका अध्ययन समाप्त कर चुकनेपर भी मानो उसीका एक अंग, एक पात्र बनकर साधारणी-करणकी स्थितिमें आकर, रसात्मक अवस्थाको प्राप्त होकर उसीके चिंतनमें आनंद-विभोर होकर रह जाता है।

वीर कविने अपने महाकाव्यमें जिन अंतर्कथाओंका जिस प्रकार जिस-जिस स्थल-पर समावेश किया है, वे अपनी-अपनी स्थितिमें मुख्य कथावस्तुको गतिदान आदि करती हुई नायकके चरित्रके विविध गुणों एवं विविध पक्षोंका उद्घाटन कर कथावस्तुको एक निश्चित उद्देश्य अर्थात् नायककी फल-प्राप्तिकी ओर निरंतर लेती चलती हैं। इस प्रकार वीर कविने प्रस्तुत महाकाव्यके आयाममें इन अंतर्कथाओंके समावेशका पूर्ण औचित्य सिद्ध किया है।

कथा तत्त्व तथा कथानक रूढ़ियाँ

'जंबूसामीचरिउ'में समाविष्ट अंतर्कथाओंका कथा तत्त्वों तथा कथानक रूढ़ियोंकी दृष्टिसे भी विश्लेषण आवश्यक है

साहित्यकारोंने लोक कथाओंमें निम्न तत्त्वोंका होना आवश्यक माना है[1] :—

१. लोक-कथाओंका लोक-प्रचलित होना।

२. अप्राकृतिक, अतिप्राकृतिक तथा अमानवीय तत्त्वोंका समावेश होना।

३. इनका देश-काल आश्चर्यजनक और कल्पना मंडित होना।

४. लोकरुचिका मनोरंजक चित्रण होना।

५. लोकचित्तको आंदोलित करना, प्रेरित करना और निश्चित उद्देश्यकी ओर ले जाना।

६. लोकश्रुतिसे प्राप्त लोक कथाओंको लोकभाषामें निबद्ध करना।

७. ऐतिहासिक, रूढ़िग्रस्त और पौराणिक घटनाओंका कल्पनाके साथ सम्मिश्रण होना।

इन सातों ही तत्त्वोंका कुछ-न-कुछ समावेश 'जंबूसामिचरिउ' में अंतर्कथाओंके रूपमें समाविष्ट लोक कथाओं में हुआ है। इनमें निम्न कथा तत्त्व अधिक स्पष्टतासे समाविष्ट पाये जाते हैं :—

१. प्रेमका गंभीर पुट, जैसे भवदत्त-भवदेवके माता-पिता, भवदत्त-भवदेव दोनों भाई, भवदेवका अपनी पत्नी नागिलाके प्रति मुनि बन जानेपर भी अनन्य अनुराग, भवदत्त-भवदेवका निरंतर पाँच भवोंमें अभिन्न स्नेह, शिवकुमारके जन्ममें उसके मित्र दृढ़वर्म और माता-पिताका उसके प्रति गहरा अनुराग।

२. स्वस्थ शृंगारिकता : जंबूस्वामीकी वधुओंका उनके प्रति शृंगार-भाव प्रदर्शन और गृहस्थ मिथुनोंकी रति-क्रीड़ा।

३. कौतूहलका समावेश प्रायः सर्वत्र; विशेष रूपसे इन घटनाओंमें : भगवान् महावीरका समोशरण आनेपर सब ऋतुओंकी वनस्पतियोंका फूल उठना; विद्युन्माली देवका महावीरके समोशरणमें आना; श्रेणिककी सभामें गगनगति विद्याधरका आकाश मार्गसे आना।

४. अतिप्राकृतिकताके तत्त्वका प्रकटीकरण : भ० महावीरके समोशरण आनेके समयकी घटनाएँ।

५. उपदेशात्मकता : सभी अंतर्कथाओंमें स्पष्ट रूपसे उपलब्ध।

६. अप्राकृतिकता : असतीके आख्यानमें शृगालका मनुष्यवाणीमें बोलना।

७. अनुश्रुतिमूलकता : सभी अंतर्कथाएँ कथा-प्रतिकथाके रूपमें कही गयी हैं, घटनाओंके रूपमें नहीं।

८. पारिवारिक जीवनका चित्रण : भवदत्त-भवदेवके तीनों मनुष्य जन्मोंकी कथाओंमें, तथा मूर्ख हालीकी कथामें।

९. पूर्वजन्मोंके संस्कार और फलाभोग : शिवकुमार जंबूस्वामी तथा चार देवियोंकी कथाओंमें।

१०. साहसका निरूपण : अकेले जंबूस्वामी-द्वारा हस्तिनिग्रह और रत्नशेखर-पराजयके वृत्तांतमें।

११. जनभाषा : अपभ्रंशका प्रयोग।

१२. सरल अभिव्यंजना : कथानकोंके सरल स्पष्ट वर्णनमें। जंबूसामिचरिउके कुछ कथानकोंमें अस्पष्टता और दुरूहता भी दिखाई देती है उदाहरणार्थ संखिणीके आख्यानमें।

---

१. डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री : हरिभद्रके प्राकृत कथासाहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० २३५-२३०।

१३. लोक-जीवनका चित्रण : विविध रूपोंमें विस्तारसे उपलब्ध।[1]

१४. लोक-कल्याणकी भावना : जंबूस्वामी और रत्नशेखरके अकेले-अकेले द्वंद्व युद्धमें, जिससे अन्य सैनिकोंका व्यर्थ संहार न हो।

१५. परंपराकी रक्षा : श्रेणिककी वाग्दत्ता विलासवती, एवं जंबूस्वामीकी वाग्दत्ता कन्याओंके क्रमशः श्रेणिक व जंबूको ही विवाहे जानेमें।

१६. धर्म श्रद्धा : संपूर्ण कथावस्तुका केंद्र भूत तत्त्व।

उपर्युक्त तत्त्वोंके अतिरिक्त 'जंबूसामिचरिउ'में समाविष्ट अंतर्कथाएँ वास्तवमें जन-साधारणके सामान्य लौकिक सुख-भोग प्रधान जीवन और मनोदशाको तीव्रतासे आंदोलित कर, उसके अंतस्तलमें धार्मिक जीवन-की बलवती प्रेरणा उत्पन्न कर, उसे धार्मिक साधनाके पूर्व निश्चित उद्देश्यकी ओर स्वाभाविक रूपसे बहाकर ले जाती हुई दिखाई पड़ती हैं। कविको अपनी ओरसे कोई उपदेश देना-दिलाना नहीं पड़ता।

ऐतिहासिक और पौराणिक घटनाओंका भी वीर कविने स्थान-स्थानपर कल्पनाके साथ सुंदर सम्मिश्रण किया है, जैसे विंध्याटवीकी उपमा कुरुक्षेत्रकी युद्धभूमिसे देना, अथवा लंकानगरीसे देना, या कात्यायनी देवीसे करना, अथवा नववसंतागमनकी तुलना सीताका वृत्तांत लेकर आये हनुमान्‌से करना। और भी अनेक स्थलोंपर शंकर-गौरी आदि देव-देवियों और उनसे संबद्ध पौराणिक वर्णनोंका सम्मिश्रण सुंदरतासे कवि-कल्पनाके साथ यथास्थान किया गया है।

कथानक रूढ़ियाँ

कथानक रूढ़ियाँ लोक-कथाओंका अभिन्न अंग होती हैं। "विभिन्न कथाओंमें बार-बार व्यवहृत होने-वाली एक जैसी घटनाओं अथवा एक जैसे विचारोंको कथानक रूढ़ि कहा जाता है। उक्त प्रकारकी घटनाएँ या विचार संबद्ध कथानकके निर्माण अथवा उसके विकासमें योग देते हैं।"[2] इस संबंधमें आ० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदीने लिखा है, "हमारे देशके साहित्यमें कथानकको गति और घुमाव देनेके लिए कुछ ऐसे अभि-प्राय दीर्घकालसे व्यवहृत होते आये हैं जो बहुत दूर तक यथार्थ होते हैं और जो आगे चलकर कथानक रूढ़ियोंमें बदल गये हैं।"[3] आ० हरिभद्रने अपने कथा-साहित्यमें, उनके पूर्व वसुदेव हिंडीमें तथा आगे चलकर गुणपालने अनेक कथानक रूढ़ियोंका प्रयोग किया है।[4] वीर कवि क्योंकि मूलतः कवि हैं, कथाकार नहीं, अतः उसने अधिक कथानक रूढ़ियोंका प्रयोग नहीं किया। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ विशेष कथानक रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं :—

१. लोक प्रचलित विश्वासोंसे संबद्ध रूढ़ियाँ : जैसे जंबूस्वामीकी माताके पाँच स्वप्न और मुनि-द्वारा उनका फल-कथन तथा मृगांक पुत्री विलासवतीके श्रेणिकसे विवाहकी भविष्यवाणी।

२. नागदेवोंसे संबद्ध रूढ़ि : जैसे लोगों-द्वारा वृत्तांत पूछनेपर चंगका यह कहना कि रूपासक्त नागदेवियाँ मुझे पाताल स्वर्गमें उठा ले गयी थीं।

३. तंत्र-मंत्र-औषधिसे संबद्ध रूढ़ि : जैसे विद्युच्चरके द्वारा औषधिसे पहरेदारको स्तंभित करके अपने पिताके शयन कक्षमें चोरीके लिए प्रविष्ट होना।

४. आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक रूढ़ियाँ : इस वर्गकी रूढ़ियोंका वीर कविने सबसे अधिक प्रयोग किया है, जिनमें-से प्रमुख प्रयुक्त रूढ़ियाँ निम्न लिखित हैं :—

---

१. प्रस्ता०—१०।

२. डा० नेमिचंद्र शास्त्री : हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन०, पृ० २१०।

३. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्यका आदिकाल, पृ० ७४।

४. हरिभद्रके प्रा० कथा सा० का आलो० अध्ययन, पृ० २६–२२८।

(i) शिवकुमार-सागरदत्त भवमें सागरदत्त मुनिको देखकर शिवकुमारको संसारसे स्वतः वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वह मुनिसे इसका कारण पूछता है। इसी प्रकार सुधर्मा—जंबूस्वामी भवमें भी यही घटना घटित होती है।

(ii) तीसरे भवमें मुनि सागरदत्तके द्वारा, पाँचवें भवमें सुधर्मा-द्वारा तथा स्वयं जंबूके द्वारा अपनी पूर्व-भव-परंपरा कही जाती है।

(iii) विद्युन्माली देवकी चार देवियाँ पूर्व भवमें हृदयसे इच्छा करती हैं कि सूरसेन जैसा पति फिर न मिले; और तपश्चरणके फलसे स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी प्रिय देवियाँ होनेपर पुनः इच्छा करती हैं कि आगामी भवमें भी, जब यह देव जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लेगा, तब भी किसी भी प्रकार इससे हमारा संग न छूटे और हम लोग पुनः इसे अपने पतिके रूपमें प्राप्त करें।

(iv) कथाक्रममें स्थान-स्थानपर धर्मका स्वरूप तथा ज्ञानोपलब्धिकी जिज्ञासा व्यक्त हुई है।

(v) जंबूस्वामीने सुधर्मासे सम्यक्त्वोपलब्धिका कारण पूछा है।

(vi) वैराग्य प्राप्तिके निमित्त : सागरदत्तको मुनि सुधंधुतिलकके धर्मोपदेशसे, शिवकुमारको मुनि सागरदत्तके तथा जंबूस्वामीको मुनि सुधर्माके दर्शनोंके निमित्तसे वैराग्य होना।

(vii) जंबूस्वामीको केवल ज्ञानोपलब्धिके समय देवागमन और अन्य आश्चर्य।

(viii) मुनि सागरदत्त और सुधर्म गणधरके दर्शनसे क्रमशः शिवकुमार और जंबूको पूर्व भवोंका स्मरण।

(xi) जन्म-जन्मांतरोंकी शृंखला : भवदत्त-भवदेव, देवता, सागरदत्त-शिवकुमार, पुनः देवगति और अंतमें सुधर्म व जंबूस्वामीके जन्म-जन्मांतर।

(x) विद्युच्चरको तपस्याके समय चंडमारी व्यंतरी कृत भयानक उपसर्ग और विद्युच्चर-द्वारा उपसर्ग-विजय।

उपर्युक्त सभी कथानक रूढ़ियाँ अधिकांशतया 'जंबूसामिचरिउ'की मुख्य कथावस्तुमें प्रयुक्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त सभी अंतर्कथाओंमें दो आध्यात्मिक रूढ़ियाँ प्रमुख रूपसे उपलब्ध होती हैं। जंबूस्वामीकी वधुओं और विद्युच्चर-द्वारा जो आख्यान कहे गये हैं उन सबका अभिप्राय यह है कि जो कोई उपलब्ध सुखों-को छोड़कर भविष्यमें, लौकिक या पारलौकिक स्वर्गादि अनुपलब्ध सुखोंकी लालसा करता है उसे भविष्यके सुख तो उपलब्ध होते ही नहीं; वह उपलब्ध सुखोंको भी खो बैठता है। जंबू-द्वारा कहे गये आख्यानोंका अभिप्राय इसके सर्वथा विपरीत यह है कि उपलब्ध क्षुद्र-क्षणिक सांसारिक सुख-भोगोंमें डूबकर मानव स्वर्ग मोक्षके अनुपम शाश्वत सुखोंको भूल जाता है और सदाके लिए खो बैठता है।

प्रस्तुत काव्यमें प्रयुक्त कथानक रूढ़ियोंके विश्लेषणसे यह तथ्य भलीभाँति प्रकट होता है कि वीर कविने अपने काव्यके उद्देश्यानुकूल आध्यात्मिक-धार्मिक रूढ़ियोंका आद्योपांत सर्वाधिक प्रयोग उचित रीतिसे किया है। अन्य रूढ़ियोंका प्रयोग भी यथास्थान पाया जाता है।

६. जंबूसामिचरिउका काव्यात्मक मूल्यांकन

अन्य प्रसिद्ध महाकवियोंके समान कवि वीरने भी अपनी काव्य-संबंधी निम्नलिखित मान्यताएँ प्रकट की हैं :—

१. व्याकरण सम्मत भाषा (१.२.७)।
२. ललित पद सन्निवेश (१.२.७ एवं ७.१.४)।
३. श्रुति-मधुर वर्ण (सुइसुहयर १.२.११)।
४. अर्थ-गांभीर्य (कव्वरसु निवेसइ (१.२.११ अहियं अत्थं; ८.१.८)।
५. अर्थ स्पष्टता एवं अर्थसौंदर्य (७.१.४)।

६. काव्यके विविध अंग तथा रस-भाव युक्तता (रसभावहिं…१.२.१२; कण्णपुडएहिं पिज्जइ जणेहिं रसमउलियच्छेहिं ३.१.२; सरसकव्वसव्वस्सं ६.१.१; कव्वंगरससमिद्धं ८.१.३; कव्वस्स इमस्स मए विरइयवण्णस्स रससमुद्दस्स ८.१.७; रसवित्तं ९.१.४; गवयं रसंतरं १०.१.४)।

७. संधियुक्तता : (पयडबंधसंधाणहिं (१.२.१४)।

८. छंदोबद्धता : (सच्छंदु १.३.३; चारित्तुवित्तु १.३.७)।

९. गुणयुक्तता : (१.२.४)।

१०. दोष-मुक्तता : (१.२.४)।

११. अलंकार-नियोजन : (अलंकारसलक्खणाई १.१.२; सालंकारं कव्वं ८.१.६)।

'जंबूसामिचरिउ' ग्यारह संधियोंमें रचित है। अर्थ-गांभीर्य, अर्थस्पष्टता एवं अर्थ-सौंदर्य तथा ललित पदरचना एवं श्रुति-मधुरता आदि गुण काव्य रचनाके अध्ययनसे स्वतः प्रकट हो जाते हैं। काव्यगुणों, रीतियों तथा भाषात्मक एवं व्याकरणात्मक स्वरूपका विश्लेषण आगे (प्रस्तावना ७-८) किया गया है। शेष काव्यात्मक तत्त्वोंपर निम्नलिखित शीर्षकोंके अंतर्गत विचार किया जाता है :—

(क) चरित काव्यकी दृष्टिसे समीक्षा (ख) महाकाव्यात्मकता (ग) वस्तु-व्यापार वर्णन : देश, नगर, ग्राम, शैल, अटवी, उपवन-उद्यान, सरित्; ऋतुवर्णन वसंत ग्रीष्म, वर्षा; दिन-विभाग : उषः, सूर्योदय, मध्याह्न, संध्या, प्रदोष, रात्रि, अंधकार और चंद्रोदय; क्रीड़ाएँ : उपवन-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा मिथुनोंको सुरत क्रीड़ा, वेश्याओंके काम-व्यापार एवं हस्तिकृत उपद्रव; सैन्य प्रयाण और पड़ाव; एवं विविध रूपोंमें प्रकृति-चित्रण। (घ) शील-विश्लेषण (ङ) रस-भाव योजना (च) अलंकार योजना (छ) बिंब योजना (ज) छंद-योजना।

(क) चरितकाव्यकी दृष्टिसे समीक्षा

जंबूस्वामीके जीवन-चरित और कथावस्तुके स्रोतोंके अध्ययनमें हमने देखा है कि प्राचीन-साहित्यमें जंबूस्वामीचरितको ऐतिहासिक सामग्री अत्यंत संक्षिप्त है। उसीके आधारसे सर्वप्रथम संघदास गणिने वसुदेव हिंडीके 'कथा-उत्पत्ति' नामक प्रथम प्रकरणमें जंबूस्वामी चरितकी बृहद् कथा कल्पित की। उत्तर पुराण (गुणभद्र)की परंपरासे वह कथा वीर कविको प्राप्त हुई और उसी नींवपर उसने अपनी कल्पना और काव्य-प्रतिभाके सामर्थ्यसे 'जंबूसामिचरिउ' नामक प्रस्तुत महाकाव्यकी रचना की।

अपभ्रंश साहित्य अंतर्बाह्य सर्वतः प्राकृत-साहित्यकी परंपरासे अविच्छिन्न-अभिन्न रूपसे संबद्ध है।[1] अतः प्राकृत चरितकाव्योंकी जो विशेषताएँ विद्वानोंने निर्धारित की हैं वे पूर्णरूपसे अपभ्रंश चरित काव्योंमें भी उपलब्ध होती हैं। उनके परिप्रेक्ष्यमें जंबूसामिचरिउका परिशीलन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं :—

कथावस्तुकी व्यापक और गहन अन्विति : कथावस्तुके प्रवाह एवं उसकी हृदयस्पर्शताके निर्वाहके लिए संधियोंका प्रगाढ़ संश्लिष्ट संयोजन; कथानकमें चमत्कार उत्पन्न करनेके लिए परिस्थितियोंका नियोजन; तथा जीवन और जगत् संबंधी उपदेश; कथावस्तुमें रोचकता बनाये रखनेके लिए मूल कथानकसे संबद्ध और असंबद्ध देशकाल, समाज एवं व्यक्तियोंके रोचकवर्णन; पात्रोंके चरित्रोंका द्वंद्वात्मक विकास; सहृदय सामाजिक अथवा पाठकको रसानुभूतिकी दृष्टिसे साधारणीकरणकी[2] स्थितिमें लानेके लिए पात्रोंका शील वैचित्र्य; चरितवर्णनमें अस्वाभाविकता और पाठकमें तज्जन्य नीरसतासे काव्यको बचानेके हेतु सर्वसुलभ साधारण मानवोंकी भाँति पात्रोंके चरितोंमें उतार-चढ़ावरूप तरतमता; जीवनके विविध व्यापारों, परिस्थितियों, जैसे प्रेम, विवाह, वियोग, मिलन सैनिक-अभियान, नगरकी घेरेबंदी, युद्ध, जय-पराजय, का चित्रण; नाना विघ्नों एवं

१. डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री : प्रा० भा० और सा० का आलो० इतिहास, अध्याय ७।

२. हिन्दी साहित्य कोश

समस्यायोंका निरूपण; परिस्थितियोंके कौशलपूर्ण नियोजनसे नायकके चरितका क्रमशः उद्घाटन; कथात्मक घटना और काव्यात्मक वर्णनोंमें समन्वय; पात्रों और परिस्थितियोंके संपर्क-संघर्षसे सामाजिकोंके हृदयमें रस निष्पत्ति; धार्मिक वृत्तियों, पौराणिक विश्वासों और आश्चर्य तथा औत्सुक्यपूर्ण सहज प्रवृत्तियोंका सद्भाव; जीवनकी समग्रताका चित्रण तथा पात्रोंके चरित्र-विकासके हेतु जीवनके विविध रूपों और पक्षोंका उद्घाटन करते हुए मूलकथा और अवांतर कथाओंके अतिरिक्त विविध वस्तुओं, पात्रों और भाव-अनुभावोंका निरूपण; तथा शैलीमें रोचकता, गंभीरता और उदात्तता। प्रस्तावनामें आगे यथास्थान इन विशेषताओंपर यथोचित प्रकाश डाला गया है।

(ख) महाकाव्यात्मकता

प्रस्तुत कृतिमें शास्त्रीय महाकाव्यके सभी लक्षण पाये जाते हैं। महाकाव्यके इतिवृत्त, वस्तु व्यापार-वर्णन, संवाद एवं भावाभिव्यंजन, ये चारों अवयव संतुलित रूपमें यहाँ घटित हुए हैं। कविने जीवनकी समग्रताका चित्रण कई जन्मोंकी कथाका अवलंबन लेकर किया है।

नामकरण—महाकाव्योंके नामकरणके निम्नलिखित प्रमुख आधार हैं :—(१) काव्यमें वर्णित किसी प्रमुख घटनाके नामसे, जैसे 'सेतुबंध' (२) प्रमुख पात्रके नामसे, जैसे 'गउडवहो'; (३) नायक या नायिकाके नामसे, जैसे 'पउमचरिउ'; (४) वर्णित वंश विशेषके नामसे, जैसे महाकवि कालिदासकृत 'रघुवंशम्'; (५) प्राप्त संकेत या उपदेशके आधारसे, जैसे 'मयणपराजयचरिउ' एवं (६) कविके नामसे, जैसे 'माघकाव्य'। स्पष्ट है कि कविने नायकके नामपर काव्यका नामकरण किया है। अतः यह अपभ्रंश काव्यकी वह विधा है जिसे चरितनामांत महाकाव्य कहा जा सकता है।

यों तो पुराण और महाकाव्यका उद्भव और विकास समानांतर रूपमें होता है। आरंभमें इन दोनोंका रूप भी हमें एकमें घुलमिला दिखाई देता है, जिसके उदाहरणस्वरूप स्वयंभू कृत 'हरिवंशपुराण' या 'रिट्ठनेमिचरिउ'का नाम लिया जा सकता है। परंतु जब अलंकरणकी प्रवृत्ति और सौंदर्य बोधकी चेतना विस्तृत होती है, तो महाकाव्योंका संगठन पुराणोंसे पृथक् शैलीमें होने लगता है। यही कारण है कि अपभ्रंश काव्योंमें पौराणिक तत्त्वोंके साथ सौंदर्यचेतनाका विस्तार पाया जाता है। इस दृष्टिसे 'जंबूसामिचरिउ' एक चरितनामांत महाकाव्य है। इसमें निम्नलिखित तत्त्व समाहित हैं—(१) शास्त्रीय नियमोंके आधारपर ग्रथित जंबूस्वामीका इतिवृत्त; (२) वस्तु व्यापारोंका संयोजन; (३) अवांतरकथाओं और घटनाओंमें वैविध्यके साथ अलौकिक व अप्राकृतिक तत्त्वोंका सन्निवेश; (४) दर्शन और आचार संबंधी सिद्धांतोंका समावेश; (५) व्यापक और मर्मस्पर्शी कथानकका एक ही नायकके जीवनके साथ संबंध; (६) रस-भाव योजनाके हेतु रोमांटिक तत्त्वोंकी समाहिति; (७) कथा-वस्तुमें विस्तारकी अपेक्षा गहनता; (८) सर्ग विभाजनके स्थानपर संधि विभाजनके रूपमें सानुबंध-कथाकी योजना; (९) कर्म संस्कारोंके विश्लेषण, उद्घाटन हेतु कई जन्मोंकी कथाका ग्रंथन; (१०) प्रमुखपात्रोंके चरितका क्रमिक उद्घाटन एवं विभिन्न अवस्थाओंके माध्यमसे मोक्षप्राप्तिका उल्लेख; तथा (११) काव्यत्व उत्पन्न करने हेतु यथास्थान अलंकारों, गुणों एवं रीतियोंका संयोजन।

'जंबूसामिचरिउ' में इन महाकाव्य गुणोंके समावेश-संयोजनसे यह स्पष्ट प्रमाणित है कि यह एक उच्चकोटिका अपभ्रंश महाकाव्य है। कविने इसमें सज्जन प्रशंसा, दुर्जन निंदा, संध्या, प्रभात, मध्याह्न, रात्रि, चंद्र, सूर्य, वन, पर्वत, नदी, सरोवर एवं ऋतु आदि वस्तुओंका सांगोपांग चित्रण किया है। प्रबंध कल्पना भी महाकाव्यकी है। कथाकी अन्विति, संधि विभाजन, छंद परिवर्तन, प्रकृति चित्रण, भावाभिव्यंजन आदि महाकाव्यके सभी उपकरण प्रस्तुत काव्यकृतिमें समवेत हैं।

(ग) वस्तु-व्यापार-वर्णन

जं० सा० च०में तीन देशों, पाँच नगरों, एक ग्राम, एक वन, एक पर्वत तथा एक नदीका वर्णन उपलब्ध होता है। ग्राम आदिके वर्णनमें सरोवर आदिके भी उल्लेख हैं। कविने ऋतुओं, दिन-रात्रिके विभिन्न

प्रहरों, और अनेक विध क्रीड़ाओंके सुंदर, स्वाभाविक, सजीव एवं मार्मिक वर्णन किये हैं। यह सामग्री विविध दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है। संक्षेपमें जानकारी इस प्रकार है :—

देश वर्णन—वीर कविने अपनी रचनामें तीन देशोंका विस्तारसे[1] वर्णन किया है—मगध, पूर्व-विदेह तथा विंध्य। इनमें मगध देशका वर्णन सर्वप्रथम तथा सबसे विस्तारसे और सांगोपांग रीतिसे किया गया है (१.६. १६से १.८.१–८)। इस संदर्भमें मगधकी समृद्धि, वहाँके नर-नारी, गृह-प्रासाद, नदी-सरोवर और उद्यान तथा ग्राम, उपवन, और खेतोंका अत्यंत सजीव वर्णन उपलब्ध होता है।

नगर वर्णन—'जंबूसामिचरिउ'में क्रमशः राजगृह, पुंडरिकिणी, वीतशोका, नर्मपुरपत्तन और संवाहन नामक नगरोंका वर्णन किया गया है।[2] पुंडरीकिणी नगरीका वर्णन विस्तारसे उपलब्ध होता है (३.१.२०से ३.२.११ तक), जिसमें नगरकी बाह्याभ्यंतर रचना और नागरिकोंके सुखद जीवनका आकर्षक वर्णन है। अन्यत्र राजगृहको नारियोंकी सुंदरता और नागरिकोंकी समृद्धि, नर्मपुरके लोगोंका धार्मिक जीवन और संवाहन नगरके व्यापारिक कारोबारका मनोहारी वर्णन उपलब्ध होता है।

ग्राम वर्णन—ग्रामों और खेतोंका बहुत कुछ चित्र कविने बहुधा देश वर्णन करते समय खींच दिया है, जो मगधदेशके वर्णनमें भी देखा जा सकता है। काव्यमें ब्राह्मणोंके एक अग्रहार ग्रामका सुंदर वर्णन किया गया है (२.४.७–१२)।

शैल वर्णन—श्रेणिक राजाकी केरल देशकी ओर ससैन्य यात्राके प्रसंगमें वीर कविने कुलपर्वतका सजीव वर्णन किया है (५.१०.११–१५)। कविने पर्वतके उन्मुक्त एवं स्वच्छंद पशु-पक्षी और वनस्पति जगतका चित्रण करते हुए, राजा श्रेणिकके स्वागत भावका आरोपण कर प्रकृतिका मानवीकरण किया है। कालिदासके हिमालय वर्णनकी तरह वीर कविने विंध्य पर्वतको पूर्व और पश्चिम समुद्रोंका अवगाहन करके पृथ्वीके मापदंडके समान कहा है :—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः॥ कुमार० १-१

गिरिविंज्झु दुग्गमसिहरु सरलवंसपव्वहिं अहिट्ठिउ।
पुव्वावरोवहि धरवि धरपमाणदंडु व परिट्ठिउ॥ (५.८.२-३)

हिमालयकी अपेक्षा विंध्यके प्रति यह कथन अधिक उपयुक्त माना जा सकता है।

अटवी वर्णन—उपर्युक्त संदर्भमें ही विंध्य महाटवीका परिपूर्ण सांगोपांग वर्णन निम्नलिखित दो पंक्तियोंमें पाया जाता है :—

गिरिनिज्झरकंदरविसम-तरुवरनियरवरिट्ठु।
रवबहिरियवणयरभमिर विंज्झमहाडइ दिट्ठु॥ (५.८.४–५)

इसके उपरांत ५.८.६ से १४ तक नौ पंक्तियोंमें विंध्याटवीके वृक्ष वनस्पतियोंका विशद उल्लेख है। ५.८.१५से २३ तक व्याघ्र, कोल, वन महिष, वानर, घूयड, वायस, शृगाल और शृगालीके फेत्कारसे आह्वान कर उनका पकड़े जाना, वन्य झरने और पत्तोंसे ढके हुए सर्प और भयानक विषैले सर्पोंके फेत्कारसे प्रदीप्त होनेवाले दावानल, इस प्रकारके वन्य वातावरणका अति सटीक वर्णन है। इसके आगेकी पंक्तियोंमें कविका वर्णन इतना सजीव बन पड़ा है मानो अपने वर्णनके माध्यमसे उसने हमें सशरीर वहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया हो। अटवीके भीलोंका जीवन साकार रूपमें प्रदर्शित कर कविने श्लेष शैलीमें उसकी तुलना महाभारतकी युद्धभूमि, लंकानगरी, कात्यायनीदेवी और गौरी सहित महादेवके साथ सटीक रीतिसे की है (५–८.२५–३६)।

---

१. जं० सा० च० १.६.१६से १-८; ३.१.१२–१९ एवं ५.९,१–११।

२. जं० सा० च० १.८.९ से १.१० राजगृह वर्णन; ३.२ पुंडरिकिणी वर्णन; ३.३.१–१० वीतशोका वर्णन; ५.९.१२–१७ नर्मपुर वर्णन और ८.३.५–१४ संवाहन नगर वर्णन।

उपवन-उद्यान—वीर कवि-द्वारा किया हुआ मगधके उद्यानोंका वर्णन आज भी सारे उत्तर और दक्षिण विहार प्रांतकी शोभा और प्राकृतिक समृद्धिके सूचक विविध उच्चकोटिके आम्रोद्यानों, जंबू और मधूक वृक्ष पंक्तियों, द्राक्षा लतामंडपों और मिथिला प्रदेशके चारों ओर आम्रवाटिकाओंसे घिरे हुए कमल सरोवरोंकी स्मृतिको नवीन कर देता है। एक समय था जब इस प्रांतके पथिक वास्तवमें अपने घरोंसे पाथेय लेकर नहीं चलते थे। राजमार्गोंके दोनों पार्श्वोंमें स्थित विविध फलोपवन तथा जामुन और महुएके वृक्षोंकी फलोंसे लदी लंबी कतारें उनके लिए सदैव पर्याप्त पाथेय प्रदान किया करती थीं (१.७.३–८)।

वसंतागमन एवं नागरिकोंके उद्यान क्रीड़ार्थ गमनके संदर्भमें (४.१६.१–९) किया हुआ उद्यानवर्णन वहाँ अवतीर्ण माधव-श्री अर्थात् वसंतशोभा और उसके मदमाते वातावरणको पाठकके मनोमंडलमें अवतरित करता-सा प्रतीत होता है।

नदी-सरिता—श्रेणिकके सैन्य प्रयाणके संदर्भमें (५. १०. ४-९) रेवा नदीका वर्णन पठनीय है। इसमें कविने रेवा नदीका सजीव चित्र खींचा है—कहीं सूर्यकी किरणोंसे तप्त हस्तिसमूह उसमें स्नान कर रहा होता है, कहीं टूट-टूटकर गिरते हुए जामुनके गुच्छे उसमें क्षुद्र लहरें उत्पन्न करते रहते हैं, तो कहीं उसमें गिरे हुए अंकोल्ल पुष्पोंकी गंधसे आकृष्ट भौंरे गुंजार करते हुए दिखाई देते हैं। कहीं उसका प्रवाह तटवर्ती प्रदेशमें बड़ी-बड़ी खदानें (खड्डे) खोद डालता है, तो कहीं उसमें क्रीड़ा करती हुई भीलनियोंके उत्तुंग, कठोर, सुपुष्ट स्तनोंसे आहत होकर उसकी लहरें मानो टूक-टूक हो जाती हैं।

ऋतु वर्णन—छहों ऋतुओंके वर्णनका विशिष्ट अवसर वीर कविको अपनी रचनामें उपलब्ध नहीं हो सका। अतः वसंत, ग्रीष्म और वर्षाका वर्णन करके ही उसे संतोष करना पड़ा है।

जं० सा० च० में वसंत ऋतुका सांगोपांग वर्णन पाया जाता है। वसंत आनेपर रात्रिका क्षीण होना और दिनका बढ़ना, आमोंपर बौर आना और कोकिलका कूकना, क्षुद्र जलाशयोंमें जलका घटना और गुलाब पुष्पोंका खिलना, अतिमुक्तक, विचकिल्ल तथा पलाश और किंशुक वृक्षोंका फूल उठना तथा इनके साथ प्रोषित-पतिका, मानिनी नारी, कामुकजन, प्रवासी पथिक, मिथुनोंका भूषण परित्याग, प्रियसंगमकी लालसा तथा कामीजनोंकी मतवाली अवस्था आदि मानवीय भावनाओंके साथ वसंतागमनका एकीकरण एक अपूर्व, अलौकिक आनंदानुभूति प्रदान करता है (३. १२. १-१३)।

ग्रीष्म—वीर कविने ग्रीष्म ऋतुका सीधे-सीधे वर्णन न करके, जंबूके विवाहके संदर्भमें ग्रीष्मकालीन जन-जीवनका एक बिंब प्रस्तुत किया है (१८. १३. १-७)। तीव्र धूपमें पसीनेसे तर कामिनियोंके कपोलों, पर स्वेदकण झलकने लगते हैं। वे अपने सारे शरीरमें चंदनका गाढ़ा लेप करती हैं। वैवाहिक-भोज आदिके अवसरपर लोग तिनकोंके आसनोंपर बैठकर जलकण चुआते हुए चंवरों तथा सुगंधित जलसे भिगोये हुए बीजनोंसे शीतल सुगंधित पवनका सेवन करते हैं। सरोवरोंका जल ईषत् उष्ण हो जाता है और तटवर्ती शिलाएँ सूर्यके तीव्रतापसे अग्निके समान गरम हो जाती हैं। दर्दुर कर्दममें लोट-पोट होते हैं। भ्रमर, इंदीवरोंमें छिप जाते हैं। भैंसोंके यूथ कीचड़युक्त जलमें लेट जाते हैं तथा गोमंडल वृक्षोंकी छायामें जा बैठता है। यह वर्णन कितना सजीव और वास्तविक है।

वर्षा—करकंटे और सर्पकी अंतर्कथाके संदर्भमें (९. ९. ६ से ९. १०. ५) वर्षा ऋतुका यथार्थ चित्रण किया गया है। इस प्रसंगमें वर्षा ऋतुके आगमनपर आकाशमें घने बादलोंका लटक जाना, धूलिका शांत हो जाना और ऐसी घनघोर वर्षा जिसमें जल-थल सब एक हो जाते हैं, एक वृद्धासे वर्षाऋतुकी तुलना कर उसका मानवीकरण, तालाबोंकी मेंड़ फोड़कर पानीका बह निकलना तथा सात दिनों तक निरंतर वृष्टिसे दरिद्र ग्रामीणोंकी दशा आदिका अत्यंत मार्मिक व हृदयस्पर्शी वर्णन पाया जाता है।

जं० सा० च० में उषःकाल एवं सूर्योदय (१०. १८. ७-१२), मध्याह्न (८. १३. १-७), तथा संध्या, सूर्यास्त, प्रदोषकाल रात्र्यागमन, अंधकार एवं चंद्रोदय (८. १४. ४-२१, ८. १५. १-१५) आदिके भी रोचक वर्णन उपलब्ध होते हैं।

उषःकाल एवं सूर्योदय—कर्म-रज और मोहांधकारके नाशसे वैराग्य एवं आत्मबोधका जो अदृष्टपूर्व प्रकाशमय सूर्य विद्युच्चरके मनमें उदित हुआ है, उसीके प्रतीक और बिंब-प्रतिबिंबभावसे किया हुआ वर्णन विशेष पठनीय है। अपराह्न संध्या-सूर्यास्त और रात्र्यागमनके वर्णनकी विशेषता यह है कि संध्याकाल और रात्र्यागमनके अवसरपर कामियोंके मनमें कामराग बढ़ जाता है और प्रिया मिलनकी आकांक्षा तीव्र हो उठती है; पर इस संदर्भमें इससे सर्वथा विपरीत घटना घटती हुई दिखाई देती है। जंबूस्वामीने विवाह किया, पर अपनी अप्रतिम सुंदरी वधुओंमें आसक्त न होकर, उसने मुक्तिरूपी अलौकिक वधूमें अपना ध्यान लगाये रखा। अतः मानो संध्याका आना निष्फल हुआ और उसको वधुओंके हाथ लगी निराशा तथा चिर वियोग। इन कोमल भावनाओंके परिप्रेक्ष्यमें उपर्युक्त संदर्भ दृष्टव्य है।

रात्रि और चंद्रोदय—का वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण शैली तथा मानवीय भावनाओंके उद्दीपनकारक रूपसे पाया जाता है (८. १५.१-१५)। रात्रिके आगमनपर अभिसारिकाएँ काले वस्त्राभूषण पहनकर निकलती हैं। दूतिकाओंका गमनागमन प्रारंभ होता है। दीपक जलाये जाते हैं और चंद्रोदय होनेपर प्रोषित-पतिकाओंके हृदय विरहाग्निसे जल उठते हैं, अतः वे कंचुकियाँ धारण कर लेती हैं। सारा जगत् मानों चाँदनीसे नहा जाता है, अथवा मानों क्षीरसागरमें तैरने लगता है और कुमुद खिल जाते हैं। यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण होनेपर भी यथार्थ है। अतः सजीव और मधुर है।

अबतक जिन वस्तु व्यापार वर्णनोंका विवेचन किया गया है, उनमें प्रकृति प्रधान है और उसे विविध मानवीय भावनाओंके प्रतीक रूपमें चित्रित किया गया है तथा मनुष्यके वास्तविक क्रिया-कलापोंको केवल संकेत रूपमें ही ग्रहण किया गया दिखाई देता है। अब हम उन वस्तु व्यापारोंको देखें, जिनमें यथार्थ मानवीय क्रिया-कलापोंका वर्णन उपलब्ध होता है। इस वर्गमें नागरिकोंकी उद्यान-क्रीड़ा, जल-क्रीड़ा, रात्रिमें अपने-अपने शयनकक्षोंमें मिथुनोंकी सुरत-क्रीड़ा, वेश्याओंके काम-व्यापार, हस्त्युपद्रव और तज्जन्य संक्षोभ, साधुओंके दर्शनोंके लिए राजाका सपरिवार, ससैन्य गमन एवं युद्धार्थ सेना सहित प्रयाण, सैन्यपड़ाव या छावनी तथा सेनाके-द्वारा नगर विध्वंस आदिके वर्णन रखे जा सकते हैं।

उद्यान क्रीड़ा—वसंत आ गया, मंदार आदि पुष्पोंकी मादक मंद मकरंदने संपूर्ण वातावरणको व्याप्त कर लिया और नागरिकोंके जोड़े मस्तीके साथ उद्यान क्रीड़ाको निकले। इस संदर्भमें मिथुनोंकी पूर्ण स्वच्छंद क्रीड़ाका माधुर्य-गुण एवं वक्रोक्तिपूर्ण वर्णन ४.१७ एवं ४.१८ में पाया जाता है।

जल क्रीड़ा—इसी प्रसंगमें मिथुनोंकी जलक्रीड़ाका संभोग शृङ्गार एवं प्रसाद गुण पूर्ण वर्णन अत्यंत मनोहारी है (४.१९)।

वेश्याओंके काम-व्यापार—अर्द्धरात्रिका समय, सर्व प्रकारका कोलाहल शांत, प्रकृति स्तब्ध-नीरव पहरेदारोंकी 'जागते रहो' की पुकारें मौन, ऐसी घोर निःशब्दताकी घड़ीमें विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे वेश्या-वाटमें-से नगर भ्रमणको निकला। इस संदर्भमें वेश्याओंकी विविध चेष्टाओं, काम-व्यापारों एवं वेश्या जीवन-का अत्यंत यथार्थ चित्रण उपलब्ध होता है (९.१२.५-१९ एवं ९.१३.१-७)।

मिथुनोंकी सुरत-क्रीड़ा—वेश्यावाटसे निकलकर आगे चलनेपर विद्युच्चरने नागरिकोंके शयनकक्षों-में मिथुनों-द्वारा पूर्ण विश्रब्ध भावसे की जाती हुई विविध प्रकारकी रतिक्रीड़ाको देखा। इसका अतिशय संभोग शृंगारपूर्ण वर्णन यहाँ देखा जा सकता है (९-१३.८-११)।

हस्त्युपद्रव—नागरिकोंके जोड़े अत्यानंद पूर्वक उद्यानक्रीड़ा (४.१७-१८) और जलक्रीड़ा (४.१९) पूर्ण करके शीघ्रतासे नगरको लौटनेकी तैयारी कर ही रहे थे कि श्रेणिक राजाका हाथी महावतको मारकर भाग निकला और उसने चारों ओर महाविनाश, विध्वंस एवं यमलीलाका दृश्य उपस्थित कर दिया। इसका रोमांचकारी वर्णन जं० सा० च० में पढ़ा जा सकता है (४.२०-७ से ४.२१.९)।

हस्त्युपद्रव जनित जनसंक्षोभ—जं० सा० च०में हाथीकी विनाश-लीलासे भयत्रस्त नागरिक संक्षोभ-

का भयावह दृश्य वर्णित है। भयानक भाग-दौड़ और कोलाहलकी स्थितिमें भी साहसी धूर्त कामुक अपना काम बना लेते हैं। कविका यह कथन बड़ा ही मनोरंजक है (४.२१.७-१७)।

(भगवद्दर्शनार्थ) सैन्य प्रयाणकी तैयारी—एक वनपालके द्वारा विपुलाचलपर समोशरण सहित भ० महावीरके शुभागमनकी आनंददायक सूचना पाकर श्रेणिकने अत्यंत प्रसन्न होकर भगवान्‌के दर्शनोंके लिए चलनेकी तैयारी की और आनंदभेरी बजवायी। इस शुभ अवसरपर सैन्यप्रयाणकी तैयारीका सुंदर वर्णन है (१.१४.५-१०)।

प्रयाण—इसी प्रसंगमें पौरजनों सहित चतुरंगिणी सेनाके मस्तीसे भरे प्रस्थानका दृश्य प्रस्तुत किया गया है (१.१५.१-७)। युद्धार्थ सैन्यप्रयाणकी तैयारीके वर्णनमें अधिकांशतया विविध सैन्य वाद्य-वादनका वर्णन किया गया है (५.६)। उसमें बहुत कुछ वर्णन इसी विषयके पूर्वोक्त वर्णनके समान है। फिर भी एक अंतर देखा जा सकता है कि पूर्वोक्त (१.१४.५-१०) वर्णनको पढ़कर प्रसाद, प्रसन्नता एवं अव्यक्त माधुर्यकी भावभूमि और वातावरण निर्माण होते हैं। यहाँ उसी वर्णनमें ओजकी प्रबल ध्वनि सुनायी देती है।

(युद्धार्थ) सैन्य प्रयाण—भविष्यवक्ता मुनिके आदेशानुसार अपनी वाग्दत्ता विलासवतीके पिता केरलराज मृगांककी, विद्याधर रत्नशेखरके विरुद्ध, जो विलासवतीको बलात्कारपूर्वक अपनी बनाना चाहता था, सहायतार्थ श्रेणिकने ससैन्य केरलकी ओर प्रस्थान किया (५-७.१-२५)। ये पंक्तियाँ केवल सैन्य-प्रयाण नहीं बल्कि इस माध्यमसे ग्रामीण व नागरिक जीवन और साधारण लोगोंकी आजीविकाके साधनों पर भी बड़ा मर्मस्पर्शी प्रकाश डालती हैं।

सैन्य पड़ाव—विंध्य देशमें पहुँचकर रेवा नदीके वृक्षोंसे आच्छादित विस्तीर्ण तटवर्ती प्रदेशमें श्रेणिककी सेनाने पड़ाव डाला। जं० सा० च० में उसका संक्षिप्त वर्णन पाया जाता है (५.११.१-५)। दूसरी ओर केरलके बाहर शत्रु राजा विद्याधर रत्नशेखरकी सैन्य पड़ावका दृश्य वर्णित किया गया है (५.११.१०-१३)।

प्रकृति वर्णन—प्रकृतिके अधिकांश अंग जैसे—खेत, उद्यान, सरोवर, सरिताएँ, अटवी और पर्वत तथा वसंत ग्रीष्म आदि ऋतुएँ और उषः, सूर्योदय, सूर्यास्त, रात्रि एवं चंद्रोदय आदि सबके वर्णन ऊपर दिये हुए संदर्भोंमें आ चुके हैं। यहाँ केवल खेतोंके दृश्य और सैन्य-प्रयाण आदिके समय उड़नेवाली धूलिके संदर्भ दिये जा रहे हैं।

खेतोंका वर्णन—जं० सा० च० में मगध देशके वर्णनके प्रसंगमें वहाँकी अतिसमृद्धता-सूचक शस्य संपत्तिका बिलकुल यथार्थ हृदयाकर्षक एवं आनंददायक वर्णन प्रस्तुत किया गया है (१.८.१-७)।

धूलिका प्रसार—जं० सा० च०में श्रेणिककी सेनाके प्रयाणसे जो धूलि उड़ी उसका (५.७.१-५), तथा युद्धके समय उड़ती हुई धूलिका सुंदर चित्र खींचा गया है (६.४.१०-११, ६.५.१-४ एवं ६.६.१-२)। इन संदर्भोंमें आकाशमें उड़ती हुई धूलिका वर्णन उसके प्राकृतिक, मानवीकृत एवं अलंकार विधानके आलंबन रूपोंमें किया गया है।

धूलि शांत होनेका वर्णन—जं० सा० च० ६.५.१०-११ में मानवीकरण करके किया गया है।

प्रकृति चित्रणके विविध रूप—इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविने प्रकृतिके विभिन्नअंगोंका नाना रूपोंमें विस्तारसे चित्रण किया है, जिनमें प्रकृतिके उपदेशिका, आलंबन, उद्दीपन और अलंकारविधान, इन सभी रूपोंमें प्रकृतिका अत्यंत मनोहारी चित्रण उपलब्ध होता है। इन रूपोंमें प्रकृति चित्रणके कुछ संदर्भ यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) प्रकृतिका उपदेशिका रूपमें चित्रण—इसके प्रमुख संदर्भ ये हैं—जं० सा० च० १.६.१९, २४-२५, १.७.१-३ (मगधदेश वर्णन) एवं ६.५.१०-११ (धूलि शांत होना)।

आलंबन रूपमें—प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में पाये जाते हैं जिनमेंसे कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :—१.७.४-१४ (मगध), १.७. १-१० (राजगृह), ३.१.११-२१ (पुष्कलावती), ३.२ (पुंडरिकिणीनगरी), ३.३.६-१० (वीतशोकानगरी), ४.१६ (उद्यान), ५.८ (विंध्याटवी), ५.७ (विंध्यप्रदेश), ५.१०.४-७ (रेवानदी), ८.१३.१-७ (ग्रीष्म), ९.९.९-१४ तथा ९.१०.१-५ (वर्षा वर्णन) । इन सब संदर्भोंमें प्रकृतिके आलंबन रूपका चित्रण किया गया है ।

उद्दीपन रूपमें—प्रकृतिके उद्दीपन रूपमें चित्रणके उदाहरण अपेक्षाकृत अल्प हैं । इस विषयके दोनों प्रसंग (३.१२.४.१६.७-१६) वसंतागमनसे संबद्ध हैं । इनमें प्रवासी पथिकों और प्रोषित-पतिकाओं आदिके विरह, प्रिय मिलनकी तीव्रकामना, मानिनी प्रियाओंका मानभंग, कामक्रीड़ाभिलाष आदि भावनाओंके उद्दीपनका हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है ।

अलंकार विधान रूपमें—प्रकृतिका चित्रण द्विविध रीतिसे किया गया है—(१) मानवीकरण, जिसमें प्रकृतिके विविध अंगोंका सचेतन, संवेदनशील मानव रूपमें वर्णन पाया जाता है । उदाहरण हैं :—मगधदेश (१.८.१-७), तथा कुरल पर्वतका समान मानवीकृत चित्रण (५.१०.१०-१५), एवं अस्तंगमनशील सूर्यका नायक रूपमें तथा पश्चिम दिशा और दिवसलक्ष्मीका नायिका रूपमें (८.१४.८. व १३-१५), एवं समुद्रका मानव रूपमें चित्रण (८,१४.१०-११) ।

उपमा व उत्प्रेक्षालंकारोंके उपमान-उपमेय रूपोंमें प्रकृति चित्रणके अनेक उदाहरण जं० सा० च० में उपलब्ध होते हैं, जिनके संदर्भ ये हैं—तरुणीके स्तन मंडलके सुखद संस्पर्शके समान मगध देशकी सुखदता, (१.६.१८), संवाहन नगरका उपमाओंसे पूर्ण वर्णन, (८.३.५-१४), अंधकार (८.१४.१६-२१), तथा चंद्रोदय और ज्योत्स्नाके उपमा व उत्प्रेक्षालंकार युक्त वर्णन, (८.१५.५-१४), वर्षागमनकी वृद्धा स्त्री से उपमा (९.९.७-८) एवं उषा तथा सूर्योदयके रूपकालंकारसे अलंकारसे अलंकृत वर्णन (१०.१८.७-१२) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविने उपर्युक्त नाना रूपोंमें प्रकृति चित्रण करनेमें अपना भरपूर कला-कौशल प्रदर्शित किया है ।

(घ) शील-विश्लेषण

'जंबूसामिचरिउ' में अनेक पात्र आये हैं, पर चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे चरितनायक जंबूके भवदेव, शिवकुमार और जंबू तथा सुधर्माके भवदत्त, सागरदत्त और सुधर्मा ये तीन-तीन जन्म; भवदेवकी पत्नी नागवसू, जंबूके माता-पिता और उसकी चार वधुएँ तथा उसके साथ दीक्षा लेनेवाला विद्युच्चर एवं कल्पित प्रतिनायकके रूपमें हंसद्वीपका राजा रत्नशेखर, इन पात्रोंके चरित्र महत्त्वपूर्ण हैं ।

नायक जंबूस्वामी—इनका चरित्र-चित्रण पाँच जन्मोंकी कथा द्वारा किया गया है । इनमेंसे दो बार स्वर्गोंमें देवताके रूपमें जन्म इस दृष्टिसे निरर्थक हैं । अतः प्रस्तुत कृतिमें भवदेव, शिवकुमार और जंबूके रूपमें नायकके चरित्रका क्रमशः उद्घाटन और विकास किया गया है ।

भवदेव, भवदत्त और नागवसु—एक वेदपाठी ब्राह्मणपुत्रके रूपमें भवदेव एक साधारण व्यक्तिके वेशमें हमारे सामने आता है । अत्यंत सुंदरी-भरपूर नवयौवना नागवसूसे उसका विवाह हो ही रहा था कि बड़े भाई भवदत्त, जो बारह वर्षकी अवस्थामें ही भवदेवको गृहस्थीका भार सौंपकर दीक्षित हो गये थे वे उसे प्रव्रजित करनेकी सुनिश्चित मनोभावनासे उसके घर आये । भवदेवने मुनिका उचित स्वागत सत्कार किया और नगरके बाहर तक उन्हें छोड़नेके निमित्तसे उनके पीछे-पीछे चला । अन्य लोग लौट आये । भवदेव भी मनमें शेष वैवाहिक रीतियों और नागवसूकी अधूरी शृंगार-सज्जाको पूर्ण करनेकी कल्पना करता हुआ घर लौट चलनेकी सोचता रहा । पर अग्रजके स्वयं अनुमति न देनेसे लज्जा और सम्मान वश लौटा नहीं । मुनिसंघमें जाकर भाईकी सम्मान रक्षा हेतु उसने बेमनसे दीक्षा ले ली और बारह वर्षों तक एक ओर सुंदर पत्नीके साथ नाना प्रकारके कामभोगोंकी सुखद कल्पनाएँ और दूसरी ओर ऊपरी रीतिसे व्रतोंका

पूर्ण निर्वाह करते हुए जीवन व्यतीत करता रहा। मुनि संघके दुबारा ग्रामके निकट आने पर उसके द्विविध अंतर्द्वंद्वमें इंद्रिय सुखोंकी वासनाने उसे पराभूत कर दिया और वह पत्नीसे मिलने घरकी ओर चल दिया। राहमें चलते हुए बारह वर्षोंकी दीर्घ अवधिमें पतिके बिना पत्नीका क्या हुआ होगा ?, क्या वह कुल-धर्ममें स्थित रही होगी अथवा यौवनके वशीभूत होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा ?, आदि अनेक विकल्प उसके मनमें आते रहे। गाँवके बाहर एक मंदिरमें ही नागवसूसे भेंट हो गयी। परन्तु इधर भवदेवका बारह वर्षोंका मुनि जीवन, और उधर नागवसूकी घरमें रहते हुए व्रतोंकी साधना। इससे उनका दैहिक सौंदर्य और यौवन न जाने कहाँ विलीन हो गये थे। नागवसू एक जरा-जीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत होने लगी थी। अतः वे दोनों परस्परको पहचान नहीं पाये। भवदेव मुनिके द्वारा अपने माता-पिता व पत्नीके संबंधमें जिज्ञासा करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया। उसने मुनि चरित्रसे डिगते हुए भवदेवको धर्ममें स्थिर करने हेतु सदुपदेश दिया, जिससे भवदेवको आत्म-विवेक उत्पन्न हो गया। उसने मुनि संघमें आकर आचार्यसे सब कुछ निवेदन कर दिया और अपनी आलोचना की व प्रायश्चित किया। इसके पश्चात् उसने कठोर तप किया और मृत्युके उपरांत दोनों भाई स्वर्गमें देव हुए। इधर नागवसू भी आर्यिका (साध्वी) हो गयी और तपोमय जीवन व्यतीत करने लगी।

भवदेवके इस जीवन चरित्रमें-से हम देख सकते हैं कि यद्यपि मुनि होनेके पश्चात् भी दीर्घकाल तक वह इंद्रिय सुखोंका चिंतन करता रहा, तथापि उसने धर्मका परित्याग नहीं किया, और मुनि जीवनकी मर्यादाओंका ऊपरी तौरसे ही क्यों न हो, पूर्ण पालन करता रहा और जब वह धर्मसे डिगनेको हुआ तथा ऐसा आभास होने लगा कि अब उसकी जीवनधारा सदाके लिए बदलकर ही रहेगी, तब उसकी पत्नीने ही उसे हस्तावलंबन देकर डूबनेसे बचा लिया। जिन परिस्थितियोंमें भवदेवने मुनि दीक्षा ली, वे प्रत्येक सहृदय सामाजिककी संपूर्ण सहानुभूति भवदेवकी ओर अनायास खींच लेती हैं, और अग्रज भवदत्तके इस कार्यसे कुछ क्षणोंके लिए ही सही, उसके मनमें एक वितृष्णा-सी उत्पन्न हो जाती है। भवदत्तका यह कार्य अश्वघोषके सौंदरनंद काव्यमें बुद्धके द्वारा नंदकी दीक्षाके प्रसंगसे पूर्णतः मेल रखता है।

भवदत्त—ठीक विवाहके समय ही वैवाहिक जीवनका रंचमात्र भी सुख देखे बिना अनुजको उसकी इच्छाके सर्वथा विपरीत मुनि बना लेनेमें पाठकको पहले पहल भवदत्तकी परम कठोरताका आभास होता है। पर जब हम धार्मिक विश्वासोंकी पृष्ठभूमिमें भवदत्तके इस कार्यको तौलकर देखते हैं, तो अनुजको संसारके अनंत आवागमनके चक्रसे छुड़ाकर उसके शाश्वत-कल्याण (मोक्ष-प्राप्ति) की दृष्टिसे भवदत्तका यह कार्य उसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न किये बिना नहीं रहता।

भवदेवको बोध देनेका एकमात्र प्रसंग जो कि काव्यकी संपूर्ण कथावस्तु और नायकके चरित्रोत्कर्षकी सबसे महत्वपूर्ण घटना है, नागवसूके चरित्रका एकाएक उद्घाटन कर देता है। नागवसूका यह कार्य भारतीय नारीके चरित्रको युग-युगोंके लिए सर्वोच्च स्थानपर प्रतिष्ठित कर देता है। नागवसूके इस कार्यने अधःपतनके गर्तमें गिरते हुए एक सामान्य विषय लोलुप व्यक्तिको त्रिलोकपूज्य ऋषि बना दिया। इसी प्रकारकी एक घटना हमें उत्तराध्ययनमें पढ़नेको मिलती है, जिसके अनुसार साध्वी राजीमतीने अरिष्टनेमिके चचेरे भाई रथनेमिको पतनके महान गर्तमें गिरनेसे बचाया[1]। नागवसूका यह चरित्र भारतीय नारीके जीवनका सर्वोच्च आदर्श रहा है। भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें ऐसे असंख्य उदाहरण हैं जबकि नारीने न केवल गृहस्थ जीवन, जो मनुष्यके बृहत्तर जीवन एक अंग मात्र है, बल्कि युद्ध और मृत्यु एवं तप-साधना तक सभी क्षेत्रोंमें सदैव पुरुषकी अनुगामिनी-सहयोगिनी बनकर मोक्ष प्राप्ति पर्यंत स्वयंके और पतिके जीवनको उठाया है। तुलसीको संत कवि तुलसी बनानेमें नारीकी ही प्रेरणा निहित है, यह विदित तथ्य है। इसी लिए 'यशोधरा'[2] के कविकी पीड़ा यह नहीं कि बुद्धने स्त्री-पुत्रको छोड़कर संन्यास क्यों लिया ? बल्कि उसकी

१. उत्तरा० २२ रहनेमिज्जं।

२. स्व० मै० श० गुप्त द्वारा रचित हिंदी काव्य।

वास्तविक वेदना तो यह है कि बुद्धने यशोधराके अनजाने यह क्यों किया ? यदि वे यशोधरासे कहकर जाते तो क्या यशोधरा उनके पथकी बाधा बनकर खड़ी होती ? नहीं ! बल्कि निज मनके इस दौर्बल्यने कि कहीं मैं न फँस जाऊँ, उन्हें ऐसा करनेको प्रेरित किया होगा। इस प्रकार नागवसूका जीवन चरित नारी जीवनके उच्चतम आदर्शका प्रतीक है।

सागरदत्त-शिवकुमार—भवदत्त और भवदेवके स्वर्गिक जीवनके संबंधमें कुछ विशेष कथ्य नहीं है। जब वे दोनों स्वर्गसे आकर दो राजाओंके सागरदत्त और शिवकुमार नामक पुत्र हुए, तो सागरदत्त एक मुनिका उपदेश सुनकर दीक्षित हो गया और वीतशोक नगरीमें जहाँ शिवकुमार उत्पन्न हुआ था, उसे बोध देने गया। शिवकुमारको इस बार मुनिके दर्शन करते ही अपना पूर्वभव स्मरण हो आया और वैराग्य हो हो गया। फिर भी माता-पिताके आग्रहसे घरमें ही रहकर बारह वर्षों तक साधना करके वह पुनः स्वर्ग गया और विद्युन्माली नामक देव हुआ। मुनि सागरदत्त भी समाधिमरण करके स्वर्ग गये। यहाँ शिवकुमारके जीवनमें अंतर्द्वंद्वका अभाव पाया जाता है। युवावस्था तक निर्द्वंद्व भावसे सारे राजसुख और इंद्रिय भोग भोग कर मुनिदर्शन मात्रसे सहसा उसे बोध हो जाता है और वह धर्मसाधनामें लग जाता है।

सुधर्मा और जंबू—स्वर्गसे आकर सुधर्मा एक विद्वान् ब्राह्मणपुत्र हुए और महावीरके दर्शनसे बोध प्राप्त कर उनके शिष्य बन गये तथा उनके निर्वाणोपरांत बारह वर्ष तक संघके प्रधान रहे। उधर विद्युन्माली देवने राजगृहीमें अर्हद्दास सेठके घरमें जन्म लिया और उसका नाम जंबूस्वामी रखा गया। बाल्यकालसे लेकर मोक्षगमन पर्यंत जंबूस्वामीके जीवन-चरितमें वे सारे गुण उपलब्ध होते हैं जो महाकाव्यों और नाटकोंके धीरोदात्त नायकोंमें कहे गये हैं। सर्वसंपन्न घरानेमें उत्पन्न अप्रतिम और अपूर्व रूपलक्ष्मीके जन्मजात धनी, लोगोंके अनुराग और कामिनियोंकी अनायास आसक्तिके अद्वितीय आलंबन, गंभीर स्वभावी, महासत्त्व, स्थिर प्रकृति, दृढ़व्रती और अत्यंत विनयशील तथा कृतज्ञ होनेपर भी अदम्य स्वाभिमानी ! ऐसा वर्णित किया है वीर कविने जंबूके जीवनको। वसंत ऋतु आनेपर अनेक मित्रोंके साथ सरोवरमें कामिनियोंके मध्य जंबूकी जलक्रीड़ाके वर्णनसे उसके जीवनमें युवावस्था सुलभ रसिकताकी प्रतीति होती है और बचपनसे ही वृद्धके समान एकांतप्रिय वैरागी न दिखला कर, कवि सहृदय पाठकको नायकके जीवनके साथ समरस होनेका अवसर प्रदान कर उसे साधारणीकरणकी रसात्मक अनुभूति करानेमें सफल हुआ है। जलक्रीड़ाके अवसरपर राजहस्तिके उपद्रवका वर्णन कर कविने अत्यंत कुशलतासे जंबूके शौर्य गुणको प्रकट किया है। विलासवतीके राजा श्रेणिकसे परिणयकी भविष्यवाणी, हंसद्वीपके विद्याधर राजा रत्नशेखरका उसके लिए दुराग्रह और कन्याके पिता मृगांक-द्वारा उसके आग्रहको ठुकरानेके प्रसंगोंकी स्व-कल्पना प्रसूत सृष्टि करके कवि एक प्रतिनायककी योजना करनेमें सफल हुआ। इसी प्रसंगको लेकर कविने केरलमें राजा मृगांक तथा विद्याधर रत्नशेखरकी सेनाओंमें युद्ध होनेका विस्तारसे वर्णन करते हुए अंतमें जंबूस्वामी और रत्नशेखर, और राजा श्रेणिकका सेना सहित केरलकी ओर प्रयाण, रास्तेमें सैन्य पड़ाव तथा युद्धमें जंबूकी विजय दिखलाकर नायकके चरितमें लौकिक दृष्टिसे भी परमोत्कर्ष दिखलाया है, और उसके शूरवीरता और क्षमाशीलता इन दोनों गुणोंका पूर्ण उद्घाटन किया है। युद्ध-विजयके उपरांत केरलसे वापिस लौटते समय राजगृहीके बाहर ही उद्यानमें सुधर्म मुनिके दर्शन, धर्मोपदेश और पूर्वभवकथनसे जंबूको एकदम वैराग्य हो जाता है। माता-पितासे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं मिलती, प्रत्युत जंबूको चार कन्याओंसे विवाह करना पड़ता है। परंतु यहाँ कवि नायकके मनमें किसी प्रकारका अंतर्द्वंद्व नहीं दिखलाता क्योंकि पूर्व संस्कारोंके कारण प्रव्रज्या लेनेका उसका निश्चय अटल होता है। फिर भी विवाह होता है और कामदेवकी रतिके समान अपूर्व रूप-यौवन संपन्न वधुएँ अपने हाव-भाव विलास और अंग-प्रत्यंग प्रदर्शन, गीत, हास्य आदिके द्वारा जंबूको रतिसुखमें डुबोनेका भरपूर प्रयास करती हैं। कथनोपकथन होते हैं, पर जंबू अडिग रहता है। यहाँसे लेकर जंबूके मोक्षगमन पर्यंत कथावस्तु सीधे-सीधे तीव्रतासे फलागमकी ओर बढ़ती हुई नायकको फलप्राप्ति होनेपर पूर्ण होती है।

विद्युच्चर—यह एक प्रकारसे जंबूस्वामीका सहयोगी पात्र तथा रचनाका उपनायक है। जन्मतः

राजपुत्र, कर्मसे चोर और वेश्याव्यसनी, इस रूपमें विद्युच्चर पाठकके सामने आता है और चोर बनकर जंबूस्वामीके घरमें प्रवेश करता है। वहाँ वर और वधुओंके बीच होते हुए कथा वार्तालापको सुनकर ठहर जाता है और उसे सुनते-सुनते उसका चित्त बदल जाता है। जंबूकी जाग्रत तथा चिंताविह्वल माँ उसे देख लेती है। दोनोंकी वार्ता होती है। विद्युच्चरको जंबूका मामा बनाकर जंबूकी माँ उसे पुत्रके सामने उपस्थित करती है। एक चोर, दूसरा भविष्यत् केवली, ऐसे अद्भुत मामा-भानजोंके मध्य कथा संवाद प्रारंभ होता है। पहले दार्शनिक चर्चा और फिर वही लोक कथाओंका सिलसिला। विजय होती है जंबूकी। विद्युच्चर अपने असली रूपको प्रकट कर जंबूका चिर अनुगामी शिष्य बन जाता है। विद्युच्चरके हृदय परिवर्तनकी यह घटना अनायास एक ओर हमें महर्षि वाल्मीकिके जीवन चरितका स्मरण कराती है, दूसरी ओर अपने द्वारा हत्या किये हुए मनुष्योंकी गिनतीके लिए उनकी एक-एक अंगुली काटकर, उसकी माला पहिननेवाले भयानक दस्यु अंगुलिमाल एवं महात्मा बुद्धकी भेंटका, जिसकी परिणति उस नर-पिशाच अंगुलिमालके लोकपूज्य अर्हत् अंगुलिमाल बननेमें होती है।[1] जंबूके साथ दीक्षा लेनेके उपरांत विद्युच्चर जैन संघके एक प्रमुख अर्हत् बने और श्वे० परंपरानुसार जंबूके पश्चात् ग्यारह वर्षों तक संघके प्रधान भी रहे। साधु जीवनमें उन्होंने अनेक भयानक उपसर्गोंको अविचल भावसे सहन किया और दीर्घ तपस्या कर स्वर्गमें देव रूपसे उत्पन्न हुए। विद्युच्चरका यह जीवन इस बातकी उच्चतम स्वरसे घोषणा करता हुआ प्रतीत होता है कि महापुरुषोंकी संगति वह दिव्य पारस है जो निकृष्टतम लोहेके समान नराधमोंको भी अपने स्पर्श मात्रसे त्रिलोक पूज्य महात्मा बना देता है।

रत्नशेखर—प्रतिनायकके रूपमें वीर कविने रत्नशेखरको धीरोद्धत नायकके गुणोंसे संपन्न व्यक्ति वर्णित किया है। वह अन्यायसे बलपूर्वक श्रेणिकके निमित्त प्रदत्त कन्याको प्राप्त करना चाहता है और साम, दाम आदिसे उपलब्धि न होनेपर युद्ध ठान देता है। शस्त्र युद्धमें मृगांकको जीत न पानेपर माया युद्ध-द्वारा मृगांकको बाँधकर कैद कर लेता है। यह समाचार मिलनेपर जंबूस्वामी उसे ललकारते हैं और उसे सब प्रकारके युद्धमें पराजित कर अंतमें बाँध लेते हैं और नगरमें ले आकर क्षमा कर देते हैं। रत्नशेखर भी सारे वैर विरोधको भूलकर जंबूस्वामीका भक्त और मृगांकका मित्र बन जाता है। रत्नशेखरका यही संक्षिप्त चरित हमें प्रस्तुत काव्यमें उपलब्ध होता है।

जंबूस्वामीकी चार वधुएँ—विवाहके पूर्व ही यह जान लेनेपर भी कि जंबूस्वामीको वैराग्य हुआ है और वह दीक्षा लेनेवाला है, चारों वधुओंने भारतीय आदर्शके अनुकूल उसीसे विवाह किया। उन्हें विश्वास था कि हमारा यह अप्सराओं-जैसा दिव्य और अनुपम रूप-यौवन जंबूको आकृष्ट करके अपने पाशमें बाँधनेमें अवश्य सफल होगा और यदि हम लोग जंबूस्वामीको न जीत सकीं तो भी हम उन्हींकी अनुगामिनी बनकर उन्हींके साथ दीक्षा लेंगी। विवाह हुआ और चारों वधुओंने नारी सुलभ जो-जो हाव-भाव-विलास आदि काम चेष्टाएँ हो सकती हैं, सभी कुछ किया। इन सबका जंबूपर कोई प्रभाव न पड़ता देख अंतमें अपने कथा-कौशलके द्वारा उसे वैराग्यसे पराङ्मुख करनेका मनोवैज्ञानिक यत्न किये। पर जब इसमें भी जंबूने उन्हें प्रतिकथानकोंके द्वारा निरुत्तर और मूक कर दिया, तो वे शांत होकर बैठ रहीं और प्रातःकाल होनेपर जंबूके साथ ही दीक्षा ले लीं। इस प्रकार उन्होंने जीवनपर्यंत पतिके मार्गका अनुसरण-अनुगमन किया। भवदेवके जन्ममें उन परिस्थितियोंमें नागवसूने जिस आदर्शकी स्थापना की थी, उससे कुछ भिन्न परिस्थितियोंमें जबकि एक क्षीण संभावना यह अवश्य थी कि जंबूस्वामी गृहस्थीमें रह सकें, युवावस्थाकी स्वाभाविक प्रवृत्तियोंके अनुसार इंद्रियसुखकी भावनाओंसे प्रेरित जो चेष्टाएँ थीं, वे सब करके जब वे हार गयीं, तब अंतमें उन वधुओंने भी उसी आदर्शका पालन किया। फिर वे जंबूके मोक्षमार्गको यात्रामें बाधक बनकर खड़ी नहीं हुईं। भारतीय नारीके इसी सर्वोच्च आदर्शको वीर कविने पाठकोंके हृदयपर बार-बार अधिकाधिक दृढ़तासे छाप लगानी चाही है, अंकित करना चाहा है और हृदयकी अधिकतम गहराइयोंमें अमिट रेखाओं-द्वारा उत्कीर्ण कर देनेका सत्प्रयास किया है।

१. जातकट्ठकथा : अंगुलिमाल जातक।

शिवकुमारके माता-पिता—ने उसे दीक्षा लेनेकी अनुमति नहीं दी थी और मोहवश उसे घरमें ही रहकर तप-साधना करनेकी पूर्ण सुविधा प्रदान की। माँ-बापका अपने इकलौते पुत्रके प्रति न जाने कितना मोह, असीम वात्सल्य और अनंत मनोभावनाएँ आबद्ध रहती हैं। परंतु फिर भी जब पुत्रको अलौकिक मोक्ष-साधनाके मार्गपर चलना हो तो वे उसमें बाधा तो नहीं देते, लेकिन पुत्र आँखोंके सामने रहे यह भावना और तज्जन्य संतोष कितना महान् होता है इसे प्रत्येक माता-पिताका हृदय समझ सकता है। वही शिवकुमारके माँ-बापने किया। इससे वे हमारी सहज अनुभूति समवेदना आकृष्ट करते हैं।

जंबूके माता-पिता—शिवकुमारको वैराग्य हुआ था तब, जबकि वह एक प्रकारसे राज्यवैभव और यौवन, संपत्तिके सारे सुख भोग चुका था। जंबूने यौवन-सुख किसे कहते हैं, यह जाना तो अवश्य था, पर भोगा नहीं, तभी उसे संसारसे विरक्ति हो गयी। चार कन्याओंसे विवाह बचपनसे ही निश्चित किया जा चुका था। फिर भी जंबूके समझानेसे उसके माता-पिताने धैर्य धारण कर लिया और कन्याओंके घर जंबूको वैराग्य उत्पन्न होनेका समाचार भिजवा दिया, जिससे कन्याओंका संबंध अन्य योग्य वरसे किया जा सके। पर यह नहीं हो सका। कन्याओंके स्वयंके आग्रहके कारण जंबूके माता-पिताको उसे विवाह कर लेनेको कहना पड़ा। जंबूने प्रव्रज्या लेनेके अपने पूर्व निश्चयपर अटल रहते हुए भी विवाह करना स्वीकार किया। विवाह हुआ जंबू अडिग रहे।

जंबूकी वधुओंके बीच कथोपकथनके अंतरालमें उसकी माँकी मनोदशाका कविने अत्यंत मनोवैज्ञानिक और मार्मिक चित्रण किया है। प्रातःकाल जंबूने दीक्षा ली, साथमें वधुओं तथा माता-पिताने भी। यह पढ़कर अनुभव होता है, मानो जंबूके चरितके क्रमिक उत्थानके साथ-साथ उससे संबद्ध अन्य व्यक्तियों अर्थात् माता-पिता एवं वधुओंके चरितमें भी उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता गया है। शिवकुमारने घरमें रहकर ही तप-साधना की थी, पर उसकी पत्नियों, माता-पिता किसीकी धार्मिक साधनाओंका कोई उल्लेख हमें नहीं मिलता। परंतु जब शिवकुमारने अंतिमकेवली होनेवाले जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लिया, तब उसके माता-पिता और वधुएँ भी मानो उसीके साथ उन्नत हो गये और जंबूके साथ इन सबने भी जिनदीक्षा स्वीकार कर ली। सच है पुत्र और पतिकी भौतिक आध्यात्मिक उन्नतिके साथ-साथ माता-पिता-पत्नीका भी सर्वतोमुखी उत्थान, उन्नति, विकास स्वाभाविक और अनिवार्य है। यही वह संदेश है जिसे कवि अपनी संपूर्ण रचना और चरित-चित्रणके माध्यमसे देना चाहता है।

इन प्रमुख पात्रोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में कुछ और भी पात्र आये हैं—जैसे राजा श्रेणिक, विद्याधर गगनगति, राजा मृगांक व उसकी विलासवती कन्या तथा अणाढिय नामक यक्ष। इनके चरित-विश्लेषणके संबंधमें बहुत अल्प सामग्री जं० सा० च० में उपलब्ध होती है, अतः इनके विषयमें कोई विशेष कथ्य नहीं है।

अब यदि चरितचित्रणकी दृष्टिसे जं० सा० च० के विषय-वर्णनका विश्लेषण किया जाये तो हम देखेंगे कि जंबूस्वामीके विवाह और वधुओंके जंबूस्वामीको वशमें करनेके प्रयत्नोंपर आकर जं० सा० च० की आठवीं संधि समाप्त होती है और वास्तवमें इतना ही इस रचनाका श्रेष्ठ काव्य रसात्मक अंश है। संधि ९ और १० में अनेक अंतर्कथाओंके द्वारा जंबूके विवेक और वैराग्य-भावकी दृढ़ता प्रकट की गयी है और १०वीं संधिके १९ से २४ तक कुल पाँच कडवकोंमें जंबूकी दीक्षासे लेकर मोक्षगमन पर्यंतका सारा वृत्तांत कह दिया गया है। संधि १०, कडवक २५ से लगाकर, ११वीं संधिके अंत तक मुनि विद्युच्चरपर घोर उपसर्ग, बारह भावनाओं-द्वारा उपसर्ग-विजय और समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धि स्वर्गगमनका वृत्त कहा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वीर कविने अपने कथापात्रोंका चरित्र-चित्रण रचनाके उत्कृष्ट भागमें किया है, और धर्मसंबंधी चर्चाओं व तप-साधना आदि जो कि सर्वसाधारण पाठककी रुचिके विषय नहीं हैं, उन्हें बहुत अल्प स्थान दिया है। इस कारण इनकी रचनामें आद्योपांत कहीं भी शुष्कता व नीरसता नहीं आ पाती और संभवतः "पाययबंधुवल्लहु जणहो विरइज्जउ किं इयरें" (१.४.१०) तथा "सरिसर-सिवाणठिउ बहु वि जलु सरमु न तिहु मणिज्जइ। थोवउ करयलु विमलु जणिण अहिलासें जिह पिज्जइ।"

(१.५.१०-११) वीर कविकी इन पंक्तियों तथा 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे' मम्मटाचार्यकी इस कारिकाका यही हेतु था जिसे सफलीभूत करनेमें हमारा कवि बहुत दूर तक सफल हुआ है।

(क) रस-भाव योजना

जंबूसामिचरिउके परिशीलनसे ज्ञात होता है कि वह एक प्रेमाख्यानक महाकाव्य है। अश्वघोषकृत सौंदरनंद महाकाव्यके समान इस काव्यका प्रारंभ भी बड़े भाईके द्वारा छोटे भाई भवदेवके अनिच्छापूर्वक दीक्षित कर लिये जानेसे प्रिया-वियोगजन्य विप्रलंभ शृंगारसे होता है। काव्यमें विप्रलंभशृंगार रस-योजनाकी दृष्टिसे उच्चकोटिका माना जाता है। भवदेवके प्रेमकी प्रकर्षता और महत्ता इसमें है कि जैन संघके कठोर अनुशासनमें दिगंबर मुनिके वेषमें बड़े भाईकी देखरेखमें रहते हुए भी तथा जैन मुनिके अतिकठोर आचारका पालन करते हुए भी उसने बारह वर्षोंका दीर्घकाल अपनी पत्नी नागवसूके रूप चिंतन तथा उसीके ध्यानमें बिता दिये। उपाध्यायों-द्वारा पढ़ाये जानेपर उसे एक अक्षर नहीं आता था, और वह निरंतर अपनी सुंदर पत्नी नागवसूके अंग-प्रत्यंगोंका स्मरण-चिंतन करते हुए यही सोचता रहता कि अब वह कैसी होगी ? और वह धन्य-दिवस कौन-सा होगा जब मैं प्रियाका गाढ़ आलिंगन करके उसके साथ यथेच्छ सुरत-सुख भोगूंगा ? इस प्रकार बारह वर्ष बीत गये और मुनिसंघ पुनः उसके गाँवमें आया। उस समय एक ओर भवदेवका पत्नीसे मिलकर विषय-भोग करनेका अदम्य उत्साह व दूसरी ओर अपनी मुनि अवस्था, और तीसरे मुनि जीवनको कलंकित करनेवाले उसके कु-आचरणसे उसके अग्रज भवदत्तको कैसी महान् लज्जा उत्पन्न होगी, इसका विचार, इन प्रेय और श्रेय-वृत्तियोंका द्वंद्व काव्यमें अत्यंत मार्मिक बन पड़ा है। अंततः भवदेव गाँव की ओर चल दिया। गाँवके बाहर मंदिरमें ही पत्नीसे भेंट हो गयी, परंतु व्रतोपासनासे क्षीणकाय होनेसे वह उसे पहचान नहीं सका। नागवसूने अपने माता-पिता दोनों भाई, और अपनी पत्नीके विषयमें पूछताछ करनेपर नागवसूने उसे पहचान लिया कि यह मुनिधर्मसे विचलित भवदेव है। उसने तुरंत निश्चय किया कि मैं इसे बोध देकर धर्ममार्गमें स्थिर करूंगी। अपने इस निश्चयमें वह पूर्णतया सफल रही, और भवदेव बोध प्राप्त कर उसी क्षणसे सच्ची तप-साधनामें लग गया। इसी स्थलसे भवदेवके चरित्रका उत्थान प्रारंभ होता है, जो क्रमशः जंबूस्वामीके रूपमें जन्म लेकर अंतिम केवलज्ञानी हुआ, और मोक्ष लाभ कर परमात्म-पदको प्राप्त हुआ। नागवसूका यह कार्य इस चरितमें एवं भारतीय नारीके इतिहासमें उसे अत्यंत महान् पद प्रदान कराता है कि वह एक पतनोन्मुख सामान्य विषयलोलुपी मानवको त्रिलोकपूज्य परमात्म अवस्था तक उठानेमें हेतुभूत हुई। वासनामय होनेपर भी परमप्रेमकी परम वैराग्यमें यह परिणति, परिवर्तन व स्थानांतरण और उदात्तीकरण एक ऐसी मनोवैज्ञानिक घटना है जो अनेक भारतीय ऋषियों, मुनियों, संतों व तुलसी जैसे महाकवियोंके जीवनमें घटित हुई है, जिसके कारण ही उन्हें वह पद प्राप्त हुआ है, जिसपर वे आज विराजमान हैं। जब प्रेमपात्रसे निराशा होती है, तो वह व्यक्तिको वैराग्योन्मुख करती है, ऐसा आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंका भी अभिमत है। इस काव्यका प्रारंभ प्रेमसे होकर उसकी चरम परिणति परम वैराग्यमें हुई है। इस दृष्टिसे इसमें नागवसूका महत्त्व सर्वोपरि है, और उसका जीवनवृत्त अत्यल्प होते हुए भी उसके इस एक ही कार्यने उसे इस चरितकाव्यकी नायिकाका पद प्रदान कराया है।

इस प्रकार विप्रलंभ शृंगारसे काव्यका प्रारंभ होकर, शांतरसमें पाठकको शांति प्रदान करता हुआ यह चरित-काव्य अमृतपयस्विनी गंगाकी धाराके समान विभिन्न रसों रूपी घुमावों और मोड़ोंमें होता हुआ अंतमें शांतरसके सुधा-सागरमें परिणत हो जाता है।

वीर कविने अपनी इस रचनामें प्रमुख रूपसे वीर, बीभत्स, रौद्र, भयानक एवं शांत रसोंकी योजना की है। अद्भुत, करुण एवं हास्य रसात्मक अंश भी काव्यमें विद्यमान हैं, परंतु वे बहुत अल्प हैं, और उनमें रस अपने पूर्ण उत्कर्षको प्राप्त नहीं हो सके हैं। उन अंशोंमें रसकी अपेक्षा उनके स्थायी और संचारी भावोंका ही प्राधान्य दिखाई देता है। कविने स्वयं भी अपनी रचनाको 'शृंगारवीर-रसात्मक महाकाव्य'

कहा है। भयानक, रौद्र एवं बीभत्स रसोंकी योजनापर यदि गहराईसे विचार किया जाये तो प्रतीत होगा कि वे वीर-रसके पोषक-रस रूपसे यहाँ नियोजित हुए हैं। 'शांतरस' काव्यका केंद्रीभूत रस है। इस प्रकार शृंगार, वीर और शांत तीनों समान रूपसे काव्यके प्रधान रस माने जा सकते हैं। संदर्भोंके परिप्रेक्ष्यमें उन्हें संक्षेपमें इस प्रकार देखा जा सकता है :—

शृंगार रस—महाकवि वीरने प्रेमियोंके हृदयमें संस्कार रूपसे वर्तमान रति या प्रेमको रसावस्था तक पहुँचाकर उसमें आस्वाद योग्यता उत्पन्न की है। कविने शृंगार रसकी पूर्णता संयोग या संभोग शृंगारमें न मानकर विप्रलंभ शृंगारमें मानी है। वस्तुतः वियोगाग्निमें तपनेपर ही प्रेममें उत्कटता और उत्कर्ष आते हैं। अतएव वियोगावस्थामें पात्रके जैसे उद्‌गार अभिव्यक्त होते हैं, वैसे संयोगावस्थामें नहीं। प्रस्तुत काव्यमें कविने भवदेवकी दाम्पत्यविषयक रतिका सजीव चित्रण किया है। विरक्त होनेपर भी भवदेव अपनी पत्नीके आकर्षणको भूल नहीं सका। साधना करते समय भी उसका मन नागवसूके अंग-प्रत्यंगकी रूप-सुषमाके चिंतनमें लगा रहता है। वीर कविने इस प्रसंगमें विप्रलंभ शृंगारके अभिलाप, चिंता, स्मृति आदि अंगोंका सरस वर्णन किया है (२-१४-१५)।

जंबूस्वामी युवा होनेपर नगर भ्रमणके लिए निकलते हैं। इस प्रसंगमें वीरने जंबूस्वामीको देखकर काम विह्वल होती हुई नगरकी नारियोंका रोचक वर्णन किया है (४.११)। यहाँ दर्शन जन्य पूर्वराग नामक शृंगार रस है, तथा कुमारके अनुपलब्ध होनेसे इसमें विप्रलंभका भाव घनीभूत हो उठा है।

जंबूस्वामीकी भावी वधुओं—चार श्रेष्ठि-कन्याओंके सौंदर्यका शृंगार पूर्ण वर्णन भी रस परिपाककी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है (४.१३)।

वसंत ऋतुका आगमन हुआ। नागरिकोंके जोड़े उद्यान-क्रीडाके निमित्त बाहर निकले और रस विभोर हो क्रीड़ाओंमें डूब गये (४.१७-१८)। उद्यान क्रीड़ाके उपरांत जलक्रीड़ाका वर्णन है (४.१९)। इन दोनों प्रसंगोंमें संभोग शृंगारका परिपाक हुआ है।

इसी प्रकार सूर्यास्त एवं संध्याके आगमनपर (४.१४) विप्रलंभ शृंगार, एवं विवाहके उपरांत वधुओंकी काम चेष्टाओं (८.१६) और वेश्यावाटके वर्णनमें (९.१२) वीरने संभोग शृंगारका सविशेष वर्णन किया है।

वीर रस—वसंतोत्सव मनाकर जब लोग अपने-अपने घरोंको लौटनेकी तैयारी कर रहे थे, उसी समय राजाका पट्टहाथी मेंठको मारकर भाग निकला और उसने चारों ओर महाविनाश तथा मृत्युका दृश्य उपस्थित कर दिया। जंबूस्वामीने अपने पौरुषसे उस दुष्ट हाथीको अपने वशमें कर लिया। नायककी वीरताका वर्णन इस हस्तिविजयके प्रसंगमें वीर रसके अनुरूप हुआ है (४.२१)। इस संदर्भमें हस्ति आलंबन है उसके द्वारा कुमार-पर प्रहार उद्दीपन है, कुमारका युद्धार्थ उद्यम अनुभाव है और अमर्ष-आदि संचारी है। स्थायी भाव कुमारका हस्तिविजय विषयक उत्साह है।

इसी प्रकार रत्नशेखरकी राजसभामें उत्तेजक और अपमानकारक बातें कहनेके कारण राजाके आदेशसे जब विद्याधर भटोंने जंबूकुमारको चारों ओरसे घेर लिया उस प्रसंगमें (५.१४.१२.२४) भी वीर रसकी सुंदर योजना की गयी है। संधि ६ और ७ में प्रचुरतासे वीर, रौद्र एवं बीभत्स रसोंका समावेश हुआ है। जं० सा० च० ६.४.४—९; ६.५.५—१०; ६.६.३—८; ६. एवं ६.९, में केरलनृप मृगांक और रत्नशेखर विद्याधरकी सेनाओंके बीच युद्ध वर्णन; तथा ६.१०.५-१४ एवं ६.१३ में रत्नशेखर एवं गगनगति विद्याधरोंके बीच युद्ध; ७.७. में जंबूस्वामी और रत्नशेखरका परस्पर आह्वान; ७.९ व ७.१० में इन दोनोंका युद्ध इत्यादि सारे वर्णन वीर रस पूर्ण हैं। ७.६. में दंडक रूपमें वीर, बीभत्स एवं भयानक रसोंका एक साथ बहुत अच्छा संयोजन हुआ है।

रौद्र रस—केरलराज मृगांकने जब विद्याधर रत्नशेखरको अपनी विलासवती नामक कन्या देनेसे सर्वथा अस्वीकार कर दिया, तो रत्नशेखरने क्रुद्ध होकर केरल पुरीको घेर लिया और वहाँ सर्वनाश एवं

महाप्रलय जैसा दृश्य उपस्थित कर दिया (५.३)। वीरने यह वर्णन रौद्र रस युक्त किया है। यहाँ स्थायी-भाव रत्नशेखरका क्रोध है, आलंबन विभाव कन्याका प्राप्त न होना है, उद्दीपन विभाव मृगांक-द्वारा उसका अपमान आदि है; सेनाकी उग्रता, आवेग, मद एवं गर्व आदि अनुभाव हैं, तथा अमर्ष इत्यादि संचारी भाव हैं।

रौद्र रसका एक और उदाहरण वहाँ उपलब्ध होता है, जब जंबूस्वामी दूतके बहाने रत्नशेखरकी छावनीमें घुसकर उसके समक्ष पहुँचे और जाते ही नाना प्रकारसे उसे बुरा-भला कहा, निंदा व भर्त्सना की और अपमान करने लगे। यहाँ प्रतिनायक रत्नशेखरका रौद्ररस-मय वर्णन दर्शनीय है(५.१३.९-११)। यहाँ भी स्थायी भाव क्रोधके साथ आलंबन विभावके रूपमें जंबूस्वामी हैं। उद्दीपन विभाव जंबूकी दर्प एवं अपमान पूर्ण कटु उक्तियाँ हैं। आँखोंका लाल होना, ओंठ कांपना, मुख लाल हो जाना, कंठका स्तब्ध होना, स्वेद आना, ओंठ काटना, नासापुटोंका भयानक रूपसे फड़कना आदि अनेक अनुभाव हैं; और अमर्ष आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार ५.१४.९-११ में भी इसी संदर्भमें रौद्र रसकी सुंदर योजना बन पड़ी है।

भयानक रस—वीर और रौद्र रसोंका पोषक रस है भयानक। जं० सा० च० में युद्ध वर्णनके प्रसंगमें भयानक रसके संयोजनके कई उदाहरण हैं, जैसे ६.७.४-७;६.१०.१-४;७.१४.१०-१४;७.१.१०-२२;७.६.५-१४; एवं ७.८.७-१२। आगे चलकर असती विषयक अंतर्कथाके संदर्भमें (१०.९.१-३) भी भयानक रसकी औचित्य पूर्ण योजना हुई है। इन संदर्भोंमें स्थायी-भाव भय है। आश्रयपात्र कायर सैनिक एवं भीरु पुरुष आदि हैं। आलंबन-विभाव शत्रु सैनिक हैं, और उद्दीपन विभाव उनके द्वारा किया जाता हुआ भयानक शत्रु संहार है। शत्रुओं और कायरोंका इधर-उधर बिखर जाना, पलायन करना आदि अनुभाव हैं; एवं त्रास, शंका, संभ्रम तथा मृत्यु आदि संचारी भाव हैं।

बीभत्स रस—जं० सा० च० में बीभत्स रसके बहुत थोड़े-से उदाहरण पाये जाते हैं। विद्युच्चर महा मुनिके ऊपर दैवी उपसर्गका वर्णन (१०.२६.१-४) बीभत्स रस पूर्ण है। चंग नामक सुनार-पुत्र रानीके-द्वारा बुलाये जाने पर उसकी शैयापर आकर बैठा ही था कि राजा युद्ध विजय करके लौट आया और चंगको निकालनेके सब मार्ग अवरुद्ध जानकर रानीने भयके मारे चंगको गूथ कूपमें डाल दिया (१०.१७.४, ६-८)। यह वर्णन भी बीभत्स रसात्मक है। इन संदर्भोंमें स्थायी भाव जुगुप्सा; दुर्गंध युक्त विष्ठा, माँस, चर्बी आदि आलंबन तथा उद्दीपन विभाव हैं; आँखें बंद कर लेना आदि अव्यक्त अनुभाव हैं; एवं मोह, व्याधि, आवेग, मरण आदि संचारी भाव हैं।

करुण रस—जं० सा० च० में करुण रसकी योजना कई स्थलोंपर योग्य रीतिसे हुई है। भवदत्त-भवदेवके पिताकी मृत्यु और उनकी माँ के जीवित ही चितामें जलकर सती होनेका प्रसंग अत्यधिक कारुणिक है। उसमें करुण रसका पूर्ण परिपाक हुआ है (२.५.११-१७)। इस संदर्भमें स्थायी भाव शोक है; आलंबन विभाव माता-पिता; उद्दीपन उनका चिर वियोग, रोदन आदि संचारी भाव हैं। इसी प्रकार शिवकुमारको मुनिदर्शनके निमित्तसे पूर्व-भवका स्मरण होने पर, उसके सहसा मूर्च्छित हो जानेसे, उसके अंतःपुरकी अवस्था (३.७.४-७) एवं माता-पिताकी अवस्थाका वर्णन (३.८.१-४) भी करुण रसात्मक है। सुधर्माके दर्शन एवं धर्मोपदेशको सुनकर जंबूको संसारसे वैराग्य हो गया और उसने माँके समक्ष अपनी दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। इस प्रसंगमें माँकी अवस्थाका वर्णन अत्यंत करुण रस पूर्ण हुआ है (८.७.११-१४)। जंबूके दीक्षा लेनेके निश्चयको जानकर पद्मश्री आदि कन्याओंके पिताओं तथा स्वजनोंकी जैसी अवस्था हुई, उसका चित्रण (८.१०.१-५); तथा एक ओर, प्रातःकाल होनेपर जंबूके दीक्षा लेनेकी संभावना एवं दूसरी ओर, वधुओंके प्रति आकृष्ट होनेकी क्षीण आशा, इस अंतर्द्वंद्वमें पड़ी हुई जंबूस्वामीकी माँकी अवस्था (९.१४.६-१०;९.१५.९-१५) और जंबूके दीक्षा लेनेपर उसके माता-पिता दोनोंकी दुःखद अवस्थाका अत्यंत मर्मस्पर्शी करुण रस पूर्ण वर्णन पाया जाता है (९.१८.८-९)।

अद्भुत रस—जं० सा० च० के कुछ स्थल, जैसे भगवान्‌के समोशरणमें विद्युन्माली देवका आगमन

(२.१.२-४) एवं श्रेणिककी राज सभामें गगनगति विद्याधरका आकाश मार्गसे अकस्मात् प्रवेश (५.२.१-५), ये वर्णन अद्भुत रसके उदाहरण रूप रखे जा सकते हैं।

वात्सल्य रस—वात्सल्य या वत्सल रसके संबंधमें साहित्याचार्योंमें पर्याप्त मतभेद है। भोजराज (११ श० ई० पूर्वार्द्ध) ने स्पष्टतः वात्सल्यको एक स्वतंत्र रस माना है। उद्भट (८-९ श० ई०) तथा रुद्रट (९ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नामसे तो नहीं गिनाया, पर उनके 'प्रेयस' भावकी मान्यता वात्सल्य रसकी स्वीकृतिका आभास देती है।[1] मम्मट (१२ श० ई०) ने वात्सल्यको स्वतंत्र रस नहीं माना, पर साहित्यदर्पणकार विश्वनाथने उसे स्वतंत्र रसका स्थान दिया है। जं० सा० च० से ऐसा प्रतीत होता है कि वीर कवि भी संभवतः वात्सल्यको स्वतंत्र रस स्वीकार करते थे। जं० सा० च० २.९.१९–२०; ६.११.९-११ ६.१२.१–२,४; एवं ७.१३.६–७के वर्णन वात्सल्य रससे ओत-प्रोत हैं। इन प्रसंगोंमें स्थायी भाव है स्नेह; आलंबन हैं अग्रज भाई एवं अपने स्नेही संबंधीजन; उद्दीपन अपने इन स्नेहीजनोंके प्रति गुणानुराग; अनुभाव रोमांच आदि, एवं संचारी भाव है हर्षोद्‌गार। केरलमें रत्नशेखर विद्याधरको परास्त कर, उसके तथा मृगांक उसकी रानी व कन्या विलासवती एवं विद्याधर गगनगति आदिके साथ जंबूस्वामी कुरल-पर्वतके पास छावनीमें महाराज श्रेणिकसे आकर मिले। श्रेणिकने भरपूर वात्सल्य भावसे जंबूस्वामीका स्वागत किया (७.१३.६-७)। यह प्रसंग वात्सल्य-रसका सांगोपांग उदाहरण है। इसमें वात्सल्य-रसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभीकी अभिव्यक्ति अत्यंत स्पष्टतासे हुई है।

शांत रस—प्राचीनकालके सभी प्रमुख संस्कृत-प्राकृत महाकाव्यों, नाटकों, व चरितोंके समान जं० सा० च० की चरम-परिणति शृंगार, वीर आदि रसोंकी सरिताओंसे होती हुई शांत रसके महासागरमें हुई है। इस दृष्टिसे विचार करनेपर हम देखते हैं कि आद्योपांत संपूर्ण रचना शांतरससे ओत-प्रोत है, और समस्त रसोंके पीछे कहीं दूर, कहीं सन्निकट नैपथ्यमें-से शांतरसकी अव्यक्त मधुर ध्वनि मानो बार-बार पाठकके कर्णपटोंपर आकर झंकृत होती रहती है। अतः स्वाभाविक रीतिसे शांत रसात्मक वर्णन रचनाके आदिसे अंत तक व्याप्त हैं।

शांतरसका प्रथम सांगोपांग उदाहरण हमें इस संदर्भमें मिलता है कि सौधर्म नामक मुनि वर्द्धमान ग्राममें आये और उनका उपदेश सुनकर भवदत्तको वैराग्य हो गया और उसने गुरुके पास दीक्षा ले ली (२.७)। अग्रजके द्वारा दीक्षित होनेके बारह वर्ष उपरांत जब कामवासनासे पीड़ित भवदेव पुनः अपने गाँव आया, तब वहाँ स्वयं उसकी पत्नीने उसे बोध दिया। वह प्रसंग शांतरसका अत्यंत मार्मिक उदाहरण है (२.१७–१९)। इसमें भवदेवाश्रित शांत रसकी अत्यंत सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। भवदेव १२ वर्षसे दीक्षित होकर तनसे योगी, पर मनसे भोगी था। नागवसूसे मिलन और वार्ता होनेपर उसने भवदेवकी वृत्तियोंको पहचान कर, उसे प्रतिबोध दिया। नागवसू-द्वारा निज रूप-यौवनकी दुरवस्था एवं विनश्वरता भवदेवके वास्तविक शम (शांत-निष्काम भाव) का कारण बनी। नागवसूकी उद्‌बोधक उक्तियोंने उपशम भावके उद्दीपनका कार्य किया। किसी मुनि या साधुके दर्शन उपदेश आदिने नहीं। १२ वर्षों तक मुनिसंघमें मुनि जीवनकी कठोर चर्याका पालन करते रहकर, आचार्योंके दिन-रातके उपदेश-संगति एवं सहवास आदिका जिस भवदेवके ऊपर रंचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा था, और ये सब निमित्त जो कार्य करनेमें सर्वथा असमर्थ रहे थे, भवदेवके कामरागको शांत कर, उसके आत्मोन्मुख शम-भाव या शांत-भावको जाग्रत करनेका वह महान् कार्य धर्म-साधनामें रत, सच्ची धर्मपत्नीके तपःपूत, सत्यपूत वाणीने कुछ ही क्षणोंमें कर दिखाया। इस प्रसंगमें (२.९) स्थायी भाव वैराग्य; आलंबन नागवसूका तपःकृश शरीर, उद्दीपन उसका सदुपदेश, रोमांच आदि अनुभाव तथा निर्वेद, ग्लानि, लज्जा आदि संचारी भाव हैं।

आगे चलकर शिवकुमारको वैराग्य (३.८) जंबूको वैराग्य (८.७.५-१०); वधुओंकी कामचेष्टाओंसे जंबूके शम-भावका और अधिक उद्दीपन (९.१); विद्युच्चरको वैराग्य (१०.१८.१-२) एवं विद्युच्चरका

१. हिं० सा० कोश।

अनित्य, अशरण आदि १२ भावनाओंका चिंतन (संधि ११ पूर्ण), ये सब प्रसंग पाठकोंको शांत रसका हृदयावर्जक चर्वण कराते हैं।

रसोंके उपर्युक्त विवेचनसे हमारा ध्यान स्वयं इस तथ्यपर आकृष्ट होता है कि वीर कविने जं० सा० च०में सभी रसोंकी योजना सफलतापूर्वक की है, जिनमें शृंगार, वीर एवं शांत ये तीन रस प्रधान हैं। किसी रसका अतिरेक भी किसी काव्य-कृतिको रस हीन आस्वादहीन बना देता है। कवि वीरकी इस रचनामें कहीं भी यह रसातिरेक नहीं दिखाई देता। यही कारण है कि जं० सा० च०का पाठक विविध रसोंकी मंदाकिनीमें अभिषिक्त होता हुआ स्वयमेव अपने संपूर्ण अहंको खोकर अपनी संपूर्ण आत्म-सत्ताको शांत रसके महासागरमें समर्पित होते हुए देखता है।

रसाभास एवं भावाभास—रस-योजनाके साथ जं० सा० च०में रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावशांति, भाव-संधि एवं भावशबलताके भी कुछ प्रसंग-उपलब्ध होते हैं।

रसाभास—जल-क्रीड़ाके प्रसंगमें कामिनियोंके द्वारा निर्जीव जलमें सुभग नायकके समान रति भावका आरोप (४.१९.२०–२१) होनेसे अनौचित्य है। अतः शृंगाराभास है।

विवाहोपरांत चारों वधुओंके साथ जंबूस्वामी एकांत वासगृहमें पलंगपर बैठे। वधुओंने उन्हें वैराग्यसे विमुख कर, भोगोन्मुख करनेके उद्देश्यसे नाना कामचेष्टाएँ करनी प्रारंभ कीं (८.१६.६–१५)। इस प्रसंगमें स्थायी, आलंबन, उद्दीपन, विभाव, अनुभाव एवं संचारी भाव सभी कुछ हैं, परंतु नायकके वैराग्योन्मुख होनेसे यहाँ अनुभयनिष्ठ रति रूपी अनौचित्य है, अतः शृंगार रसाभास है। रसकी दृष्टिसे उपर्युक्त दोनों संदर्भ काव्य-दोषोंके समकक्ष हैं। परंतु एकमें प्रकृतिका मानवीकरण और दूसरेमें अत्यंत कामोत्तेजक वातावरणमें नायकके चरित्रकी दृढ़ताका द्योतन होनेसे ये प्रसंग दोषके बदले काव्यके अलंकार बनकर अभिव्यक्त हुए हैं।

भावाभास—जंबूस्वामीका दीक्षा लेनेका दृढ़ निश्चय जानकर भी पद्मश्री आदि चार कन्याओंने अपने अद्वितीय अनुपम रूप-सौंदर्य और काम-कला-विलासके द्वारा जंबूको अपने वशमें कर लेनेके विश्वाससे उसे एक दिन विवाह करके प्रातःकाल दीक्षा ले लेनेका प्रस्ताव किया। इस अवसरपर उन्होंने अपने पिताओंके समक्ष कामवासनापूर्ण उद्गार व्यक्त किये। (८.१२.१–१५)। इस संदर्भमें पितृजनोंके समक्ष रति भावका इस प्रकारका प्रदर्शन सर्वथा अनुचित है।

यहाँ उद्दीपन-विभाव, अनुभाव एवं संचारियोंके अभावके कारण शृंगाररसका भी परिपाक नहीं हो पाया है, और पितृजनोंके समक्ष यह सब कहलवाना निश्चित रूपसे रति-भावाभास है। आलंकारिक या चरित्र विकासकी दृष्टिसे भी इस प्रसंगका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता।

भावोदय—बनारसके राजाकी विरहिणी काम-पीड़ित रानीने चंग नामक सुंदर सुनार पुत्रको राजमार्गसे जाते देखा। उसे देख रानीका रतिभाव सहसा उद्दीपित हो उठा। उसी समय राजा युद्ध विजय कर लौट आया, अतः रानीका रति भाव रसावस्थाको प्राप्त नहीं कर सका। इसे भावोदयका दृष्टांत माना जा सकता है; और उपनायक निष्ठ होनेसे इसमें भावाभास भी है।

भावशांतिका—उत्कृष्ट उदाहरण है—नागवसूके बोधपरक मार्मिक कथनको सुनकर भवदेवके रति-का शांत होना (२१.१८–१९)।

अपनी सारी कामोत्तेजक चेष्टाओंके उपरांत जंबूकुमारको सर्वथा निर्विकार देखकर वधुओंके रति-भावकी शांति और दुःख एवं लज्जाका बोध (९.२.१–२) भी भाव-शांति एवं भावोदयका सुंदर दृष्टांत है।

भावसंधि—इसी संदर्भमें जंबूस्वामीकी माँकी अवस्थाका चित्रण भाव-संधिका दृष्टांत है। जंबूस्वामी वासगृहके भीतर वधुओंके साथ निर्विकार भावसे कथा संलाप करते हुए बैठे हैं। बाहर माँ व्यग्र है। पुत्रके प्रातःकाल दीक्षा लेनेकी प्रबल संभावनाके उद्वेगसे उसको आँखोंमें नींद कहाँ? वह बार-बार घरके भीतर जाती, बाहर आती और कपाटोंके छिद्रमें-से झाँककर देखती कि क्या कुमार अभी भी दृढ़-प्रतिज्ञ है, अथवा वधुओंकी कुछ विद्या उसपर चल पायी; क्या अभी भी वह मोक्ष-वास चाहता है कि उसके गलेमें प्रियाओं-बाहुपाश पड़ गया (९.१४.६-१२)।

इस प्रसंगमें माँके हृदयकी परम निराशा प्रकट होनेपर भी उसमें आशाकी जो अतिक्षीण, अव्यक्त झलक विद्यमान है, उससे इसे आशा-निराशा भावोंकी संधिका दृष्टांत कहा जा सकता है।

भावशबलता—इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण १२ वर्षोंके उपरांत अवसर पाकर काम भोगकी इच्छासे मुनि भवदेवके घरकी ओर चलनेके प्रसंग (२.१५.७—१७) में मिलता है। उस समयकी उसकी मानसिक अवस्था और अंतर्द्वंद्व भावशबलताका सुंदर उदाहरण है। इस प्रसंगमें एक ओर भवदेवकी प्रबल भोगाभिलाषा तथा दूसरी ओर लज्जा, आत्मग्लानि, अग्रजके गौरवके नष्ट होनेकी शंका, आत्मालोचन, पत्नीकी वर्तमान अवस्था, और १२ वर्षोंके पति-विहीन दीर्घकालके संबंधमें यह आशंका कि न जाने इस बीच उसका आचरण कैसा रहा होगा ?, और इस दिगंबर मुनिके वेषमें नागवसू मुझे पहचानेगी भी या नहीं, यह संदेह, आदि अनेक संचारी भावोंकी एकत्र शबलताका यह अत्यंत सुंदर सटीक उदाहरण है।

भावयोजना—जं० सा० च० में भक्ति, प्रीति, प्रशम, रति एवं निर्वेदादि अनेक भावोंकी अभिव्यक्ति स्थान-स्थान-पर हुई है। काव्यका प्रारंभ मंगलाचरणके रूपमें देवता विषयक रति या भक्ति-भावसे होता है (१. मं० १-१४)। बीच-बीचमें भी कई स्थलों (एवं ४.४.१०—१३ देव भक्ति; ८.६.४—१० गुरु भक्ति आदि) पर भक्ति-भावकी अभिव्यक्ति पायी जाती है। राजा श्रेणिक-द्वारा भ० महावीरकी स्तुति (१.१८) देवविषयक रतिका सुंदर उदाहरण है।

पतिविषयक शुद्ध रति—कुष्ठ रोगसे आक्रांत होकर भवदत्त-भवदेवके पिता आर्यवसूने जीवित ही अपनेको अग्निको समर्पित कर दिया। एकनिष्ठ परम-पतिव्रता और पति-सर्वस्व, पति-प्राणा उनकी माँ सोमशर्माने भी अपने पतिकी चितामें जीवित ही जलकर परलोकमें भी पतिका अनुगमन किया (२.५.४, ६,१५)। यह प्रसंग पतिविषयक शुद्ध रतिका एक श्रेष्ठ उदाहरण है। शिवकुमारके प्रति उसकी पत्नियोंके अनुरागका चित्रण भी इसीका एक और दृष्टांत है (३.७.५—६)।

भ्रातृविषयक रति—भवदत्त और भवदेव दोनोंके रग-रगमें परस्परके प्रति-अनुराग भरा था, तथा उनमें शब्द और अर्थके समान अविभक्त, अखंड एवं अविच्छेद्य संबंध था (२.५.९); यह तथा आगेके दो और प्रसंग (२.९.१९—२०;२.१०.९—१०) भ्रातृविषयक रतिके उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

अन्य भाव—अब तक चर्चित भावोंके अतिरिक्त जं० सा० च० में अन्य भी अनेक भावोंको अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरणार्थ—विस्मय (२.३.२—३ एवं ३.६.६—७), आशंका (२.१३.४) अत्यंत करुणापूर्ण दीनता-विवशता (२.१३.९); पतिविषयक निष्काम स्नेह (२.१९.३); खेद (३.३.१६); करुणाजनक जुगुप्सा (३.११.३-४); सुंदर, युवा पत्नियोंके प्रति रुग्ण पतिकी ईर्ष्या व शंका (३.११.५—११); पत्नियोंका क्षोभ व खेद (३.११.१२-१३); देवभक्ति, श्रद्धा और दैन्य (३.१३.३-४); पश्चात्ताप (४.३.४-५); उपहास (५.४.१२-१३); चित्तका उतावलापन (५.५.१६-१७;५.७.१६-२७); उत्साह (५.६.१६-१७) तथा वीरभाव पूर्ण गर्व (५.१२.२३-२५,-५.१३.१-८; ५.१४.१-५) आदि अनेक स्थायी एवं संचारी भावोंकी जं० सा० च० में आद्योपांत सुंदर रीतिसे योजना की गयी है।

(ख) अलंकार-योजना

जंबूसामिचरिउमें प्रमुख रूपसे निम्नलिखित अलंकारोंका प्रयोग पाया जाता है :—अनुप्रास (१), यमक (२), श्लेष (३), उपमा (४), उत्प्रेक्षा (५), रूपक (६), निदर्शना (७), दृष्टांत (८),वक्रोक्ति (९), विभावना (१०), विरोधाभास (११), व्यतिरेक (१२), संदेह (१३), भ्रांतिमान् (१४), सहोक्ति (१५) एवं अतिशयोक्ति (१६)।

शब्दालंकारोंमें अनुप्रास और यमक अलंकारोंका प्रयोग पूरी रचनामें प्रारंभसे अंत तक हुआ है। मगधदेश (१.६.१-७) तथा पुंडरिकिणी नगरी (३.२.४-९) के वर्णन इस दृष्टिसे विशेष उल्लेखनीय हैं। पादांत यमकोंमें शाब्दिक श्लेषके उदाहरण अत्यधिक संख्यामें उपलब्ध हैं।

अर्थालंकारोंमें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपकोंसे रचना आद्योपांत विभूषित है। कुछ विशेष संदर्भ इस प्रकार हैं—

उपमा—णाणम्मि फुरइ भुवणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे। (१. मं० १०); विजयंतु जए कइणो जाणं वाणी अइट्ठपुव्वत्थे। उज्जोइयधरणियला साहयवट्टि व्व निव्वडइ (१.६.७-८)।

मालोपमा—नीलकमलदल कोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीला ललिए पत्तलिए (२.१५.३)। अन्य संदर्भ : विंध्याटवी वर्णन (५.८.३०-३५); भोजन वर्णन (८.१३.९-१३, श्लेषगर्भित मालोपमा)। इन दोनों संदर्भोंमें एक ही उपमेयका विविध रीतिसे नाना उपमानों-द्वारा वर्णन किया गया है।

उत्प्रेक्षा—डोल्लहरि व लग्गी कंठहें लग्गी वल्लहमुहचुंबणु करइ।
वणरमणविडंबिणि का विनियंबिणि निहुवणकेलिहि अणुहरइ।
(वसंत ऋतुमें मिथुनोंकी उद्यान-क्रीड़ा ४.१६.११-१२)

अन्य प्रमुख संदर्भ हैं—कामिनियोंकी विह्वलता (४.११.४-५); नारी सौंदर्य वर्णन (४.१२.१५-१६; ४.१३.१-१६; तथा ४-१४.७-८ (रूपक गर्भित उत्प्रेक्षा); मलयपवनका (उत्प्रेक्षाओंकी निरंतर-शृंखलाओं द्वारा) वर्णन (४.१५.१-५,७-१६); फूला पलाश (४.१५.१५-१६) अलकावली (५.२.१७); धूलिका उड़ना (६.४.१०-११; ६.५.१०.१० एवं ६.६.१-२), संवाहन नगर (८.३.६-१३); वर्षा ऋतु एवं वर्षा (९.९.६-१२); संध्या सूर्यास्त एवं रात्रि-आगमन और अंधकार वर्णन; (८.१४.१०-२१); तथा चांदनी (८.१५.६-१४)। ये सब वर्णन उत्प्रेक्षालंकारके प्रयोगकी दृष्टिसे पठनीय हैं। इनके अतिरिक्त कामिनियोंकी जल-क्रीड़ाका उत्प्रेक्षामाला सदृश शृंखलामें पिरोया हुआ वर्णन (४.१९.८-१७,२१-२२) भी अवश्य पठनीय है।

मालोत्प्रेक्षा—मालोपमाके समान मालोत्प्रेक्षाके भी अनेक प्रयोग जं० सा० च० में प्राप्त होते हैं। जंबूस्वामीका दीक्षा लेनेका निश्चय जानकर पद्मश्री आदि चार वाग्दत्त कन्याओंके माता-पिता-स्वजनोंकी अवस्थाका मर्मस्पर्शी वर्णन (८.१०.१-५) मालोत्प्रेक्षाके प्रयोगका बहुत सुंदर उदाहरण है।

फलोत्प्रेक्षा—मालोत्प्रेक्षाकी तरह फलोत्प्रेक्षाका प्रयोग भी दर्शनीय है। (४.१४.३-६)

रूपक—काव्यमें रूपकालंकारका प्रयोग आद्योपांत संख्यातीत परिमाणमें हुआ है : इसके कुछ छोटे-छोटे उदाहरण हैं—नहमणि (१ मं० ५); झाणग्गि (१.१.८) संसारसमुद्दुत्तारसेउ(१.१.४); भव्वयणकमल-कंदोट्ट बंधु (१.१.८) एवं माणुसपसु, सम्मत्तनिधि, सिरकमलु, वयणसुहा, संसारतरंगिणी, चरणजुयल-पंकयभसलु, जिणवरगरुड, विरहाणल, आदि।

रूपकमाला—रूपककी तरह रूपकमालाके उदाहरण भी उपलब्ध हैं (३.७.१२-१४)।

निदर्शना—महाकवि कालिदासके अनुकरणपर कविका विनय प्रदर्शन (१.३.७-१०); नागवसूकी बोधप्रद वार्त्ता, (२-१८.५-७) बालककी वृद्धि (४.९.१-३); बालक (जंबूस्वामी) की कीर्त्ति (४.९.९-१०) एवं जंबूस्वामी द्वारा रत्नशेखरको आह्वान (५.१४. १-३) आदि स्थलोंमें निदर्शनाके उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

दृष्टांत—कविके आत्मनिवेदनकी निम्न पंक्तियोंमें इस अलंकारका सुंदर प्रयोग हुआ है :—
कव्वुजे कइ विरयइ एक्कगुणु अण्णेक्कु पउंजिव्वइ निउणु।
एक्कु जे पाहाणु हेमु जणइ अण्णेक्कु परिक्खा तासु कुणइ। (१.२.८-९)

वक्रोक्ति—वसंत महीनेमें मिथुनोंकी उद्यान-क्रीड़ाके अवसरपर जंबूस्वामी और किसी कामिनीके मध्य वक्रोक्ति पूर्ण संवाद बड़ा ही चित्ताकर्षक और मधुर है (४.१८.१-१३)।

विभावना—जंबूस्वामीका जन्म हुआ तो कार्त्तिक न होनेपर भी आकाश निरभ्र हो गया, वर्षा न होने पर भी धूलि शांत और वसंत न होनेपर भी संपूर्ण वनस्पति स्वयं फूल उठी (४.८.१२-१४)।

भ० महावीरका समोशरण राजगृहके विपुलाचल पर्वतपर आया और वनमालीने राजा श्रेणिकको आकर समाचार दिया—'महाराज, आज असमयमें ही वनस्पति सब फल-फूलोंसे समृद्ध हो उठी है, तालाबोंमें तटों तक भर आया जल हिलोरें मार रहा है, बिना बोये ही खेत नाना प्रकारके पके धान्यसे भरपूर हो गये हैं और बिना दुहे ही गायें प्रचुर दूध क्षरण कर रही हैं (१.१३.३-७)।' इन प्रसंगोंमें विभावना अलंकार का सुंदर प्रयोग हुआ है।

विरोधाभास—विद्युच्चर चोरीके उद्देश्यसे कामलतावेश्याके घरसे वेश्यावाट छोड़कर निकला। इस प्रसंगमें वेश्यावाटका वर्णन विरोधाभासका एक विशिष्ट उदाहरण है (९.१२.७-८,१२)।

व्यतिरेक—इस अलंकारके बहुत-से प्रयोग काव्यमें उपलब्ध हैं—जंबूस्वामीको यौवन प्राप्ति (४.९.७-८) नारी सौंदर्यका वर्णन (४.१७.१९-२२) पुनः नारी सौंदर्य (५.२.२०-२१;८.५.५-६); रत्नशेखरकी वीरता (५.११.१६-१७) तथा जंबूस्वामीके त्याग संबंधी वर्णन (१०.१.९)।

संदेह—जलक्रीड़ाके समय तैरती हुई किसी कामिनीके मुखको देखकर एक भ्रमर संदेहमें पड़ा रहा कि यह मुख है या कमल (४.१९.९) इसी प्रकारके मंगलाचरणकी निम्न पंक्तियाँ शुद्ध संदेहालंकारके उदाहरण हैं :—

सो जयउ जस्स जम्माहिसेयपयपूरपंडुरिज्जंतो।
जणियहिमसिहरिसंको कणयगिरी राइओ तइया॥
भमिरभुअवेयभामियजोइसगणजणियरयणि-दिणसंकं।
इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं वाइ सुरवइणा॥ (१ मं० ३-६)

भ्रांतिमान—मृगांकराजाकी पुत्री और अपनी भागिनेया विलासवतीके सौंदर्यका संक्षिप्त वर्णन करते हुए गगनगति विद्याधर कहता है—'वह कन्या अपने विबाधरोंके अपनी शुद्ध धवल दंतपंक्तिमें प्रतिबिंबित होती हुई कांतिको पहचान नहीं पाती। अतः उन्हें धवल बनानेके लिए बार-बार छीलती रहती है—न मुणइ रत्ताहर रंगगुणु जा छोल्लइ सुद्ध वि दंत पुणु (५.२.१८)।

उद्यानक्रीड़ा करते समय किसी धूर्त नायकने अपनी मुग्धा नायिकाका प्रणयकोप दूर करनेके लिए कहा, 'तउ मुहहो जणियसयवत्तभंति आवंति निहालहि भमरपंति।' (४.१७.६)

सहोक्ति—चंद्रोदयका सहोक्त्यलंकारमय वर्णन—'जालियाउ गयवइहिययहिं सहुँ उइउ नहंगणे मयलंछणु लहु।'

अतिशयोक्ति—काव्य रचनाओंमें अतिशयोक्ति एक सहज, सामान्य और सर्वाधिक प्रचलित अलंकार रहा है। वीर कविने भी जं० सा० च० में अनेक स्थलोंपर प्रचुरतासे इस अलंकारका प्रयोग किया है। काव्यका आदि मंगलाचरण आद्योपांत अतिशयोक्तिसे भरपूर है। इसके कुछ अन्य संक्षिप्त उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :—

समोशरणमें स्थित महावीरके विषयमें एक पंक्ति है :—

अलिउलकेसुब्भासियवरसिरु दंतदित्तिधवलियजयमंदिरु। (१.१७.७)

नारी सौंदर्य—विहिँ बाहहिँ अवरुंडणु चंगइ दुक्करु पुज्जइ वियडनियंबइ।
मसिणोरुयहिँ जगु जि वसि किज्जइ नहदित्तिए महियलु कवलिज्जइ।(२.१४.९-१०.)

इसी प्रकार वीताशोक नगरीका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन पठनीय है (३.४.७-१०)।

(छ) बिंब-योजना

काव्यालोचनमें बिंब-योजना शाब्दिक दृष्टिसे आधुनिक है। परंतु कल्पनाकी अपेक्षा किसी भी काव्य-सिद्धांतके समान प्राचीन है। बिंब-योजनाका अर्थ है कवि किसी वस्तुका नख-शिख, या द्रव्यगत भौतिक वर्णन न करके उसका एक भाव-चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित करता है, जिसे 'बिंब' नामसे अभिहित किया जाता है।

बिंब दो प्रकारके होते हैं, (१) एक तो स्मृति-जन्य जो पूर्वकालिक अनुभूतिका पुनरुत्पाद मात्र होते हैं; जैसे अपने किसी पूर्व-मित्रकी साक्षात् चित्रवत् स्मृति, जो उसकी शाब्दिक भावमय प्रतिमा हमारे मनमें निर्मित कर देती है, अथवा किसी नायक-द्वारा अपनी प्रियतमा नायिका और उसके विविध अङ्ग एवं भाव-भंगिमाओंकी तीव्र स्मृति। (२) दूसरे प्रकारके बिंब पूर्वानुभूत नहीं होते। वे कवि या साहित्यकार-की निज नवनिर्मित और मौलिक कृति होते हैं। महाकवि कालिदास कृत मेघदूत इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। यह नूतन प्रतिमा निर्माण या बिंब विधान-समस्त काव्य-कला संगीत और नवनिर्माणका मूलाधार है। भाषा और चिंतनके मूल उपादान बिंब ही हैं।[1] 'जंबूसामिचरिउ' में ऐसे अनेक वर्णन उपलब्ध हैं, जिन्हें बिंब-योजनाके अंतर्गत रखा जा सकता है।

(१) जं० सा० च० १.११ में कविने राजा श्रेणिकका नख-शिख वर्णन न करके उसकी शूरवीरता एवं प्रचंड प्रताप आदिके वर्णन द्वारा उसका एक भावात्मक बिंब खींचा है।

(२) इसी प्रकार आगे चलकर राजा श्रेणिकके सुंदर, सौम्य, रमणियोंके हृदयहारी एवं धर्म और न्याय-नीति परक रूपको शब्दोंमें प्रकट कर उसके कोमल एवं उदार व्यक्तित्वको प्रकट किया गया है।

(३) इसी प्रकार केरलराज मृगांकके शत्रु-राजा विद्याधर रत्नशेखरके प्रचंड तेजस्वी, कालके समान भयानक, महान् विकाशकारी एवं अपराजेय व्यक्तित्वका भी यथार्थ बिंब पाठकोंके समक्ष खींचा गया है (५.४.२०-२१, तथा ५-५.१-५)।

(४) भवदेवने अग्रजकी लाज रखनेके लिए दीक्षा ले तो ली, पर क्षण-भरके लिए भी प्रियतमा नागवसूका रूप उसके मानसपटसे ओझल नहीं हुआ, और वह निरंतर नागवसूका जो भावात्मक बिंब उसके हृदयमें बन गया था, उसीका स्मरण करता रहा (२.१४.६-११)।

(५) भवदेवके हृदयपर बने हुए नागवसूके एक और बिंबका वर्णन (२.१५.१-२)।

(६) 'बारह वर्षोंकी दीर्घ-अवधिमें मेरे वियोगमें नागवसूकी अवस्था कैसी हो गयी होगी' भवदेवकी इस चिंताका बिंबात्मक वर्णन (२.१५.३-४)।

(७) श्रेष्ठिकी चार-पत्नियोंका अत्यंत सुंदर बिंबमय वर्णन, कुल दो पंक्तियोंमें (३.१०.१४-१५)।

(८) गर्भवती माँकी अवस्था दिनोंदिन कैसी होती जाती है, इसका सातिशय यथार्थ बिंब (४.७.३-९)।

(९) द्वितीयाके चंद्रमा, चलते-चलते महानदीके विस्तार, और पिंगल शास्त्रके फैलाव और व्याकरण-की व्याख्याओंके समान दिन-प्रतिदिन बालक जंबूस्वामीके बढ़नेका बिंबात्मक वर्णन। (४.९.१-३)

(१०) 'जंबूस्वामीके युवावस्थाके प्राप्त होनेके साथ-साथ उनके रूपगुणोंका यशोगान हर गली-कूचे, घर और बाहर, एवं चौक-चौरस्तेपर सर्वत्र गाया जाने लगा। उनके धवल-यशसे सारा-भुवन ऐसा धवलित हो उठा मानो पूर्ण चंद्रमाके ज्योत्स्ना रससे लीप दिया गया हो। सारे हाथी ऐरावतके समान, सब नदियाँ गंगाके समान, सभी पर्वत हिमालयके समान, सबके सब पक्षी हंसोंके समान और सारी मणियाँ (श्वेत) मणियोंके समान दिखलायी पड़ने लगीं'; बालककी यशोवृद्धिका यह मनोहारी बिंबात्मक वर्णन (४.१०.३-७)।

(११) जंबूस्वामीको देखकर पुर-नारियोंकी काम-विह्वल अवस्थाका बिंब (४.११.१-१३)

(१२) इसी प्रकार जंबूस्वामीकी चार भावी वधुओं पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री एवं रूपश्रीका नख-शिख वर्णन विषयगत होते हुए भी उनके वर्ण्य अंगोंका कोई अपूर्व बिंब पाठकके हृदय-पटलपर चित्रित करता प्रतीत होता है (जं० सा० च० ४.१४.१-८)।

---

१. हिंदी साहित्यकोश 'बिंब'

(१३) केरल विजयसे लौटनेके उपरांत जंबूस्वामीके साथ अपनी कन्याओंका विवाह करनेकी उत्साह एवं आतुरता पूर्वक प्रतीक्षा करते हुए श्रेष्ठियोंने जब समाचारवाहकसे जंबूस्वामीके दीक्षा लेनेका निश्चय जाना, तो उनके हृदय करौतसे विदीर्ण किये-जैसे, अथवा विष-भक्षणसे मूर्च्छित-जैसे हो गये। सब लोग इस प्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे, जैसे इंद्रके वज्रायुधसे भग्न किये हुए पर्वत, गरुड़से झपेटा हुआ सर्पकुल, सिंहके द्वारा विदीर्ण कुंभस्थल हस्ति-समूह अथवा तीक्ष्ण परशुके द्वारा छिन्न की हुई शाखाओंवाला वृक्ष हो जाता है। यह वर्णन भी विषयगत है, तथापि इतना अधिक भावमय है कि वह पाठकके हृदयपर ऐसा गहरा बिंब निर्माण करता है, जिससे पाठक स्वतः उन श्रेष्ठियोंके साथ एकाकार हो जाता है, और वह सहानुभूतिकी रसात्मक अवस्थाको प्राप्त हो जाता है (८.१०.१-५)। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जं० सा० च० की रचनामें वीर कविने बिंब-योजनामें भी अद्भुत सफलता प्राप्त की है।

(ज) छंद-योजना

जंबूसामिचरिउकी रचना प्रमुख रूपसे १६ मात्रिक अलिल्लह एवं पज्झटिका छंदोंमें हुई है। इनके उपरांत १५ मात्रिक पारणक अथवा विसिलोय छंदका स्थान है। इनके साथ बीच-बीचमें अन्य छंदोंका भी प्रयोग हुआ है। अधिकांशतया वीर कविने समवृत्त मात्रिक छंदोंका उपयोग किया है। वार्णिक छंदोंमें कुल पाँच समवृत्त छंदोंका प्रयोग मिलता है। विषमवृत्त मात्रिक छंदोंमें गाथा छंदके विविध प्रकार, दोहा, रत्नमालिका, वस्तु एवं मणिशेखर केवल ये पाँच छंद पाये जाते हैं। पाँच स्थलोंपर दंडक छंद भी उपलब्ध होता है। काव्यमें प्रयुक्त छंदोंका मात्रा तथा वर्णोंकी संख्यानुसार पहले समवृत्त, फिर विषमवृत्त, इस क्रमसे यहाँ विश्लेषण किया जा रहा है :—

समवृत्त : मात्रिक

१. करिमकरभुजा ८ मात्रिक अंत ल ल ७-१०

(क) उदा०—विहडफ्फडु अरि करिखंधोवरि।
कड्ढिउ विसहइ थाहर न लहइ। (७-१०-२०-११)

अपवाद : (पंक्ति ५,१६,१७ में अंत ग ग)

(ख) ८ मात्रिक अंत ग ग २.९

उदा०—ता भवएओ कयसंखेओ।
विणयविमीसो पणमियसीसो।
मोलिरवत्थो जोडियहत्थो।
सुघणसहाओ बाहिरि आओ। (२.९ १५-१८)

अपवाद : पंक्ति १,४,६,१२ अंत ल ग।

२. दीपक १० मात्रिक अंत ग ल ४.२२

उदा०—संतेण ता मुक्कु बसि होवि पुणु थक्कु।
जो नट्ठु सनरिंदु पडिमिलिउ जणविंदु। (४.२२.२३-२४)

अपवाद : (पंक्ति १४,१८,१९,२१ व २२ अंत ल ल)

३. (?) १० मात्रिक त्रिपदी अंत रगण (–u–) १०.१९

उदा०—एम नंदणवणं फुल्लफलदलघणं वंदियुब्भंतओ।
रुक्खसंपण्णयं मुणिगणाइण्णयं आसमं पत्तओ। (१०.१९.१५-१६)

४. खंडयं १३ मात्रिक अंत रगण (–u–) ८.२.१-२.

(संधि ८, कडवक २ से प्रत्येक कडवकका आदि छंद)।

उदा०—पहु तउ दंसणकारणं लहिवि वियप्पइ मे मणं।
सहुँ तुम्हेहिँ समुच्चयं चिरमवि कहि मि परिच्चयं। (८.२.१-२)

५. पारणक या विसिलोय (पद्धडिया) १५ मात्रिक अंत नगण (uuu)
१,२,४,१२;२.६—८,१०,१६—१८,२०;३.१,३,७,९;५.२,४;८.३—४,९;९.३,६—७,१८;१०.१६.

उदा०—रसभावहिं रंजियविउसयणु सो मुयवि सयंभु अण्णु कवणु।
सो चेय गव्वु जइ नउ करइ तहो कज्जे पवणु तिहुयणु घरइ। (१.२.१२-१३)

अपवाद : ८.९.९—११ अंत जगण।

६. (?) १५ मात्रिक अंत रगण (—u—) ४.८.१२—१५
उदा०—बयालक्खसंतई तई पहुल्लिया वणासई सई।
सुवण्णविट्ठीभासुरासुरा मुअंति तत्थ सासुरासुरा। (४.८.१४-१५)

७. पद्धडिया (पज्झटिका) १६ मात्रिक अंत जगण (u—u)
१.८,१४;२.५,१३;२.११;४.११-१२,१५,१७-२०;५.३,७-८(२४—२९,३१—३६),११-१२;६.२, ४—५,८, ११—१३;७.७—९, १२;८.८,१०; ९.२,९,१४;१०.१,३,६-८,१०,१२-१३,१७,२१,२४-२५

उदा०—सरलंगुलि उब्भिवि जंपिएहिँ पयडेइ व रिद्धिकुडुंबिएहिँ।
देउलहिं विहूसिय सहहिँ गाम सग्ग व अवइण्ण विचित्तधाम। (१.८.७-८)

अपवाद : उपर्युक्त अधिकांश कडवकोंमें एक-एक पंक्ति व किन्हीं-किन्हींमें २,३ या ४ पंक्तियोंमें अंतमें सर्व लघु नगण (uuu) पाया जाता है।

८. अलिल्लह १६ मात्रिक अंत ल ल १.६ (१५-२३), ७, १०—११, १३, १७; २.२, ४, १३—१५; ३.२,६,८, १२—१४; ४.१-४, १०, १३—१४; ५.१३; ६.१, १, ३,९,१४; ७.१—३, ११, १३; ८.२, ७, ११—१६; ९.१, ४—५, ८, १०—१३, १५, १०.२, ४-५, ११, १४-१५, २०, २२-२३; ११.१-१५, (पूर्णसंधि)।

उदा०—जलणयकुंभथोरथणहारउ फेणावलिसोहियसियहारउ।
उहयकूलदुमनियसियवसणउ जलखलहलरवसज्जिय रसणउ। (१.६.२२-२३)

अपवाद : अलिल्लहके अधिकांश कडवकोंमें एक-एक व किसी किसीमें २, ३, पंक्तियोंमें अंतमें दो गुरु (ग ग) पाये जाते हैं।

९. सिंहावलोक १६ मात्रिक अंत सगण (u u-) ३.५; ६.६; ९.१६
उदा०—विंधंति जोह जलहरसरिसा वावल्लभल्लकण्णियवरिसा।
फारक्क परोप्परु ओवडिया कोंताउह कोंतकरहिँ भिडिया। (६.६.७-८)

१०. त्रोटनक १६ मात्रिक अंत ल ग १.५; ४.७; ८.६
उदा०—पंचमिहे वसंते पक्खे धवले रोहिणिठिए मयलंछणे विमले।
पच्चूसे पसूय सलक्खणउ कुलमंगलु जयवल्लहु तणउ। (४.७.१०-११)

११. पादाकुलक १६ मात्रिक (क) अंत ग ल १.१; १.३; २.१
उदा०—वरकमलालिंगियचारुमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति।
तइलोयसामि-सममित्तसत्तु वयणसुहासासियसयलसत्तु। (१.१.९-१०)

अपवाद : १.१.७; १.३.३; २.१.६, ७, १३ पंक्तियोंमें अंत ल ल।
(ख) अंत ग ग ४.६; ८.५

उदा०—दिट्ठें जलणें बालइ कम्मं   सालीछेत्तें लच्छीहम्मं ।
सरवरदंसणे रयणाहारो   उवहिप्पु अवसमुद्दगयपारो । (४.६.१२-१३)
अपवाद : ४.६.९ अंत ल ग
(ग) अंत × १.१६; २.११; ३.१०; ४.९; ५.१०
उदा०—बहुकालेण थिराप्पु सहत्तिप्पु   तिहुअणम्मि गमु सज्जिउ कित्तिप्पु ।
नरसंकमणपरंपरचवलप्पु   किउ वीसामथामु थिरु कमलप्पु ।

१२. उर्वशी २० मात्रिक अंत रगण (–u–) ३.४; ५.६, ९; ७.४
उदा०—जम्मदिवसम्मि पुत्तस्स बहुपरियणो   चक्कवट्टी-कयाणंदवद्धावणो ।
नियवि पुत्ताणणं गहिरसरवाइणा   सिवकुमाराहिहाणं कयं राइणा । (३.४.३-४)
अपवाद : पंक्ति ५.६.८ अंत सगण (u u –) ।

१३. सारीय २० मात्रिक अंत ग ल ५.१४; १०.१८
उदा०—तो महितलप्पंतविज्जाहरिंदेण   उक्खित्तहत्थेण नं वणकरिंदेण ।
नवनिसियपहरणफडाडोयनाएण   पंचमुहगुंजारसन्निहनिनाएण (५.१४.६-७)
अपवाद : ५.१४.१९ व १०.१८.९ पंक्तियोंमें अंत ल ल ।

१४. सग्गिणी (स्रग्विणी) २० मात्रिक अंत ल ग १.९, १५; ४.१६
उदा०—कसणमणिखंडचिंचइयधरणीयलं   सप्पसंकाइचलवलियकिरणुज्जलं ।
पयहिं चंपेवि आहणइ जा किर थिरं   धुणइ कुंचइय-चंचूमऊरो सिरं ।
सग्गिणीनामछंदो ।

१५. मदनावतार २० मात्रिक अंत यगण (–u–) १.१८; २.१९; ६.७; १०.९,२६
उदा०—तुमं देव सव्वण्णु लच्छीविसालो   अहं वण्णिऊणं न सक्केमि बालो ।
समुज्जोइयासोह बा तेयपूरो   न पुज्जिज्जए किं पईवेण सूरो । (१.१८.१-२)

१६. ? २० मात्रिक अंत × ६.१०
उदा०—एरिसम्मि दुद्धरम्मि भीसणे रणे   गयघनाय-छिण्णघाय-सुट्टपहरणे ।
सुहडसंड-बाहुदंडमुंडमंडिरे   लुणियटंक-अणियसंक-बाहुहिंडिरे (६.१०.१-२)

समवृत्त : वार्णिक

१७. त्रिपदी शंखनारी (या सोमराजी) ६ + ६ + ६ वर्ण गण: य य + य य + य य ४.५
उदा०—नमंसेवि वीरं महामेरुधीरं   तिलोयग्गचक्कं ।
विलीणासुहाणं जणंभोरुहाणं   पबोहिक्कअक्कं । (४.५.१-२)

१८. समानिका ८ + ८ वर्ण गण र ज ग ल + र ज ग ल ९.१७
उदा०—मे कणिट्ठु भाइ एक्कु   मंडलंतरम्मि थक्कु ।
वच्छरेसु आउ अज्जु   जाणिऊण तुज्झ कज्जु । (९.१७.८-९)

१९. भुजंगप्रयात १२ + १२ वर्ण गण य य य य + य य य य ४.२१.१३-१७, ५.५
उदा०—तओ पेल्लियं झत्ति जाणेण जाणं   गइंदेण अण्णं गइंदं संदाणं ।
तुरंगेण अग्गम्मि तुंगं तुरंगं   भुयंगं भुयंगेण वेसासु रंगं । (४.२१.१३-१४)

२०. ? १४ + १४ वर्ण गण ज र ज र ल ग + ज र ज र ल ग २.३
उदा०—इमं कहंतरं जिणेसरे कहंतए   नरामरे विसुद्धभावणं वहंतए ।
तओ नियच्छियं नहंगणाउ एंतयं   फुरंततेयवारिपूरियादियंतयं । (२.३.१-२)

२१. धवला अथवा दिनमणि १९ + १९ वर्ण गण ६ × न गण + ग ७.५

उदा०—उहयबलमिलणपडिलुहियजलयरबलं ।
समय-तडफिडवि झलझलइ जलनिहिजलं ।
तुरय-करि-सुहड-रह-फुरियरइपहरणं ।
गिलइ तिहुवणु व कलयलेण पुणरवि रणं (७.५.११-१४)

विषमवृत्त : मात्रिक

२२. गाथा (क) गाहू (उपगीति) : मात्राएँ १२, + १५; १२ + १५ प्रथम, तृतीय यतियाँ शब्दके बीच; ९.१.५-६ तथा संधिके प्रत्येक कडवकका घत्ता।

उदा०—मयरद्धयनच्चु नडंतिउ जंबुकुमारें भेल्लियउ ।
बहुवाउ ताउ णं विट्ठउ कट्ठमयउ बाउल्लियउ ॥ (९.१.५-६)

(ख) ? मात्राएं १२ + १६; १२ + १४ प्रश० १३-१४

उदा०—जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिण्णि ।
सीहल्ल-लक्खणंका जसइ नामेत्ति विक्खाया ॥

(ग) पथ्या : मात्राएँ १२ + १८; १२ + १५ १ मं० ९-१०; १.६.१—८; १.११.१५—१८; ४.१४.३-४,७-८; ५.१.१-४; ७.१.५-६; ८.१.९-१०; प्रश० १-४, ११-१२,१५-१८

उदा०—सो जयउ महावीरो झाणानलहुणियरइसुहो जस्स ।
नाणम्मि फुरइ भुअणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे ॥ (१. मं० ९-१०)

(घ) परपथ्या (१) : मात्राएँ १२ + १८; १२ + १५ प्रथम चरणकी यति शब्दके मध्य १. मं० ७-८; १.६.९-१०;१.११.१३-१४; ३.१.१-४; ७.४.४-७; ७.६.१६-१७,२२-२५; १०.१.१—२; प्रश० ५-१०

उदा०—जाणं समग्गसद्दोहज्झेंदुउ रमइ मइफडक्कम्मि ।
ताणं पि हु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिप्फुरइ ॥ (१.६.९-१०)

परपथ्या (२) : मात्राएँ १२ + १८; १२ + १५ तृतीय चरणकी यति शब्दके बीच

उदा०—मा वण्णउ असमत्थो धारेउं सव्वकव्वरसपूरं ।
नियसत्तिरूवसंगहियरसकणो ट्ठाउ तुण्हिक्को ॥ (८.१.५—६)

(ङ) विपुला : मात्राएँ १२ + १८; १२ + १५ प्रथम, तृतीय चरणोंकी यति पद या शब्दके मध्य १. मं० ११-१२; ४.१४.१-२; ७.६.२८-२९ ।

उदा०—रइविप्पओयसंतत्तमयणसयणं व कुसुमसंवलियं ।
धारंति ताउ विद्दुमहीरयरुइदंतुरं अहरं ॥ (४.१४.१-२)

(च) उग्गाहा (उद्गाथा या गीति) (१) : मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८; ७.१.३-४; ८.१.१-४

उदा०—अत्थाणुरूवभावो हियए पडिफुरइ जस्स वरकइणो ।
वत्थं फुडु गिरइ गिरा ललियक्खरनेम्मिएहिं तस्स नमो ॥ (७.१.३-४)

उग्गाहा (२) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम चरणकी यति पदके बीच १. मं. १-४

उदा०—विजयंतु वीरचरणग्गचंपिए मंदरम्मि थरहरिए ।
कलसुच्छलंततोए सुतरणिलग्गंतबिंदुछंकारा ॥ (१. मं०. १-२)

उग्गाहा (३) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ तृतीय चरणकी यति पदके बीच

उदा०—जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्संगनीलिमामिलो।
फणिणो तडिछड्यिनवघणो व्व मणिगमिणो फणकडप्पो ॥

उग्गाहा (४) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १८ प्रथम, तृतीय चरणोंको यतियाँ पदोंके बीच १. मं० ५-६; १.११.९-१२

उदा०—चंडभुअदंडखंडियपयंडमंडलियमंडलीविसडं।
धारासंडणमीय व्व जयसिरिवसइ जस्स खग्गंके ॥ (१.११.९-१०)

(छ) मात्राएँ १२ + १८; १२ + १६

(१) यति सामान्य ४.१.१-२; ७.६.२०-२१

उदा०—धवलेण तेण विसमे धुयकंधरडंतकसरमुक्कमरो।
लीलाए कड्ढिओ तह जह फुट्टइ कुसामिणो हिययं ॥ (७.६.२०-२१)

(२) प्रथम चरणकी यति पदके बीच ४.१४.५-६

उदा०—चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहिँ सूरकरसहणं।
चिज्जइ तवं व सलिले निययं घित्तूण गलपमाणम्मि ॥

(ज) मात्राएँ १४ + ११;१२ + १५ ७.१.१-२

उदा०—चिरकइकव्वामयमुहाण रुइभंगरसणाणं।
सुयणाण मए वि कयं अल्लयकसरक्कउक्कव्वं ॥

(झ) मात्राएँ १६ + १२;१६ + १२ ६.१.३-६

उदा०—हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण सीसे।
सच्चावाणी वयणकमलए वच्छे सच्छापवित्ती ॥ (६.१.३-४)

(ञ) मात्राएँ १८ + १२;१२ + १५ ६-१.१-२,

उदा०—देंत दरिद्दं परवसणदुम्मणं सरसकव्वसव्वस्सं।
कइवीरसरिसपुरिसं धरणि धरंती कयत्थासि ॥

२३. दोहउ : मात्राएँ १३ + ११;१३ + ११ ४.१४.९-१०;७.६.३०-३१

उदा०—जाणमि एक्कुजि विहि घडइ सयलु वि जगु सामण्णु।
जें पुणु आयउ निम्मविउ को वि पयावइ अण्णु ॥ (४.१४.९-१०)

२४. रत्नमालिका (चतुष्पदी) : मात्राएँ १४ + ६;१४ + ६ प्रत्येक पदके अंतमें सगण (u u–)

उदा०—नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोव्वणलीलालिए पत्तलिए।
रूवरिद्धिमणहारिणिए मारिणिए हा मईं विणु मयणें नडिए मुद्धडिए ॥
(२.१५.३-४)

२५. वस्तु : मात्राएँ १५ + २५ + २७ + दोहा ५.१.७-११ तथा संधिके प्रत्येक कडवकका आदि छंद

उदा०—ताम राएं दिण्णु अत्थाणु
सिंहासणु विहि मि ठिउ एक्कु पासि कामिणि जणावलि।
पज्जलियमणिमउडसिर पुणु निविट्ठ मंडलियमंडलि।
पुणु सामंत महंत थिय सेणिउ इयराउत्त।
मडयड चक्क विणोयकर नरनाणाविहधुत्त ॥ (५.१.७-११)

२६. मणिशेखर : मात्राएँ २२ + १० दोनों पदोंमें अंत रगण (–u–) ५.८.६-२३

उदा०—कहिं मि महिपडियतरुपण्णसंछन्नया संठिया पन्नया।
कहिं मि फणिमुक्कफुक्कारविससामला जलिय दावानला। (५-८.२२-२३)

२७. मालागाहो : मात्राएँ ४० + ३० + २६

उदा०—नहकुलिसवलियमायंगतुंगकुंभयलगलियकीलाललिसमुत्ताहलोह—
विप्फुरियकविलकेसरकलावघोलंतकंधरुद्देसा ।
रुंजंति ताम सीहा जाम न सरहं पलोयंति ॥ (७.४.१–३)

२८. दंडक : ४.८.१–११; ४.२१.१–१२; ५.१.१२—२९;७.६.१–१५; ९.१९

उदा०—अलंकियनिसंतेण तरुणारुणदित्ततेएण बालेण पसरेण वा तेण सूयाहरे दिण्णदीवोहदित्ती-निहित्ता सुदूरे किया निप्पहा । विद्धिवद्धावणावंतलोएहिं वज्जंतपडुपडहहल्लरतरडसर-मंदबहुमद्दलुद्दामकलवेणुवीणाझुणीसालकंसालतालानुसारेण आणंदवरमत्तघुम्मंततर-लच्छिनच्चंततरुणीमहायट्ट संघट्टतुट्टंतवाहरणमणिमंडिया चउप्पहा ।

(घ) ध्रुवक एवं घत्ता

संधि	कडवकोंके आदिमें ध्रुवक-प्रकार	कडवकोंके अंतमें घत्ता-प्रकार
१.	चतुष्पदी १५+१२ (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १५+१२
२.	चतुष्पदी १८+१३ (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १८+१३
३.	दुवई १६+१२ (१.७–८) (प्रत्येक कडवकके आदिमें)	षट्पदी ६+८+१३
४.	षट्पदी १०+८+१३ (१.३–४) (केवल कडवक १ के आदिमें)	षट्पदी १०+८+१३
५.	वस्तु (१.७–११) (प्रत्येक कडवकके आदिमें)	षट्पदी १२+८+१२
६.	षट्पदी ९+७+१४ (१.७–८) (केवल कडवक १ के आदिमें)	षट्पदी ९+७+१४ (कडवक १ की षट्पदीमें १०+८+१४ मात्राएँ हैं ।)
७.	षट्पदी ९+७+१४ (१.७–८) (केवल कडवक १ के आदिमें)	षट्पदी ९+७+१४
८.	खंडयं १३+११ (२ से १६ प्रत्येक कडवकके आदिमें)	षट्पदी १३+७+१४
९.	चतुष्पदी १४+१३ (१.५–६) (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १४+१३
१०.	सम-चतुष्पदी १५+१५ (१.५–६) (केवल कडवक १ के आदिमें)	सम-चतुष्पदी १५+१५
११.	चतुष्पदी १३+१६ (१.३–४) (केवल कडवक १ के आदिमें)	चतुष्पदी १३+१६

पाठक्रमानुसार छंद-योजना

संधि

१. १,३,१६ पादाकुलक (११); २,४,१२ पारणक (५); ५ त्रोटनक (१०); ६,७,१०–११,१३, १७ अलिल्लह (८); ८,१४ पद्धडिया (७); ९,१५ सग्गिणी (१४); १८ मदनावतार (१५) ।

२. १,११ पादाकुलक (११); २,४,१३–१५ अलिल्लह (८); ३ : १४ वर्णिक (ज र ज र क ग) छंद (२०); ५,१२ पद्धडिया (७); ६–८,१०,१६–१८,२० पारणक (५); ९ करिमकरभुजा (१); १९ मदनावतार (१५)।

३. १,३,७,९ पारणक (५); २,६,८,१२–१४ अलिल्लह (८); ४ उर्वशी (१२); ५ सिंहावलोक (९); १० पादाकुलक (११); ११ पद्धडिया (७)।

४. १–४,१०,१३–१४ अलिल्लह (८); ५ त्रिपदी शंखनारी (१७); ६,९ पादाकुलक (११); ७ त्रोटनक (१०); ८.१–११ दंडक (२८); ८.१२–१५ : १५ मात्रिक (अंत रगण) छंद (६); ११–१२,१५,१७–२० पद्धडिया (७); १६ स्रग्विणी (१४); २१.१–१२ दंडक (२८); २१.१३–१७ भुजंगप्रयात (१९); २२ दीपक (२)।

५. १.१२–२९ दंडक (२८); २,४ पारणक (५); ३,७,८(२४–२९,३१–३६),११,१२ पद्धडिया (७); ५ भुजंगप्रयात (१९); ६,९ उर्वशी (१२); ८-६–२३ मणिशेखर (२६); १० पादाकुलक (११); १३ अलिल्लह (८); १४ सारीय (१३)।

६. १,३,९,१४ अलिल्लह (८); २,४,५,८,११–१३ पद्धडिया (७); ६ सिंहावलोक (९); ७ मदनावतार (१५); १० : २० मात्रिक (अंत×) छंद (१६)।

७. १–३,११,१३ अलिल्लह (८); ४.१–३ मालागाहो (२७); ४ उर्वशी (१२); ५ ववला या दिनमणि (२१); ६.१–१५ दंडक (२८); ७–९,१२ पद्धडिया (७); १० करिमकरभुजा (१)।

८. २,७,११–१६ अलिल्लह (८); ३,४,९ पारणक (५); ५ पादाकुलक (११); ६ त्रोटनक (१०); ८,१० पद्धडिया (७)।

९. १,४–५,८,१०–१३,१५ अलिल्लह (८); २,९,१४ पद्धडिया (७); ३,६,७,१८ पारणक (५) १६ सिंहावलोक (९); १७ समानिका (१८); १९ दंडक (२८)।

१०. १,३,६–८,१०,१२–१३,१७,२१,२४–२५ पद्धडिया (७); २,४–५,११,१४–१५,२०,२२–२३ अलिल्लह (८); ९,२६ मदनावतार (१५); १६ पारणक (५); १८ सारीय (१३); १९ : १० मात्रिक (अंत रगण) त्रिपदी (३)।

११. १–१५ अलिल्लह (८)।

७. 'जंबूसामिचरिउ' की गुण और रीति युक्तता

(माधुर्य,ओज,प्रसाद); रचनाशैली (वैदर्भी, पांचाली, गौड़ी, लाटी) एवं सुभाषित और लोकोक्तियाँ

साहित्य शास्त्रमें गुणके प्रथम प्रस्तुत कर्ता आचार्य भरत मुनि (४ श० ई०) ने दोषोंके विपर्ययको ही गुण माना है (नाट्य १७:९५); जिनमें कुछ गुण तो दोषोंके अभाव रूप हैं, पर अधिकांश भावात्मक गुण हैं। दंडी (७ श० ई० काव्या० २.३) एवं गुणोंके प्रतिष्ठाता आचार्य वामन (९ वीं शतीका मध्य काव्या० ३,१,१) के अनुसार गुण काव्यको शोभा प्रदान करनेवाले तत्त्व हैं। तथा ध्वनिसिद्धांतके प्रवर्तक आचार्य आनंदवर्द्धन (९ श० ई०) एवं उनके अनुवर्त्ती आचार्य मम्मट (११ श० ई०) ने गुणोंका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार न कर उन्हें रसाश्रित माना है, और परवर्ती विश्वनाथ (१४ श० ई० पूर्वार्द्ध) आदि आचार्योंने इन्हींका अनुकरण किया है। इस प्रकार काव्यकी शोभाको संपादित करनेवाले या काव्यकी आत्माको प्रकाशित करनेवाले तत्त्व या विशेषताएँ गुण हैं। ये गुण शब्द और अर्थके धर्म हैं और वर्ण-संघटन, शब्दयोजना, शब्दचमत्कार, शब्दप्रभाव तथा अर्थकी दीप्तिपर आश्रित हैं।[1]

---

१. हि० सा० कोश 'गुण'।

गुणोंकी संख्याके संबंधमें भी विद्वानोंमें मतभेद है। आचार्य भरतने (१) श्लेष (२) प्रसाद (३) समता (४) समाधि (५) माधुर्य (६) ओज (७) पदसौकुमार्य (८) अर्थ व्यक्ति (९) उदारता और (१०) कांति, इन प्रसिद्ध दस गुणोंको स्वीकार किया; अग्निपुराणमें १८; एवं भोजने २४, तथा प्रत्येकके बाह्य आभ्यंतर और वैशेषिक तीन-तीन भेद; इस प्रकार यह संख्या बढ़कर ७२ तक आ पहुँची। अंततः आनंदवर्द्धन आचार्यने रसके धर्मरूपमें गुणको मानकर, चित्तकी तीन अवस्थाओं द्रुति, दीप्ति और व्यापकत्वके आधारपर केवल तीन गुणों माधुर्य, ओज और प्रसादको स्वीकार किया। मम्मटाचार्यने भी दसगुणवादका खंडन कर दसोंका इन्हीं तीन गुणों माधुर्य, ओज एवं प्रसादके अंतर्गत समावेश किया है[1] और गुणोंकी यह सामान्य परिभाषा दी है—"जिस प्रकार वीरता आदि आत्माके गुण हैं, देहके नहीं, उसी प्रकार माधुर्य, ओज आदिक भी रसके ही गुण हैं, पदसमुदायके नहीं।"[2] जंबूस्वामिचरिउ माधुर्य, ओज तथा प्रसाद गुणोंसे सर्वत्र ओत-प्रोत है।

माधुर्य—जिसमें अंतःकरण द्रुत[3] (गलित) हो जाये ऐसा आनंद-विशेष माधुर्य कहलाता है।[4] सा० को० के अनुसार 'माधुर्यका अर्थ है श्रुति सुखदता, समासरहितता, उक्ति वैचित्र्य, आर्द्रता, चित्तको द्रवित करनेकी विशेषता, भावमयता और आह्लादता। ट ठ ड ढ को छोड़कर क से म तकके स्पर्श वर्ण, मूर्धन्य वर्ण और अंत्य (पंचम) वर्णों तथा समासोंके अभाव एवं छोटे-छोटे समस्त पदोंके प्रयोगसे माधुर्य गुणका संपादन होता है। इस प्रकारका वर्ण प्रयोग संयोग, वियोग, करुण एवं शांत रसोंमें क्रमसे आधिक्यके साथ पोषक होता है; अर्थात् संभोग शृंगार और विप्रलंभ शृंगार तथा करुण एवं शांत रसोंकी स्थितिमें माधुर्य गुण क्रमसे बढ़े हुए उत्कर्षके साथ प्रकट होता है। इस प्रकारकी रचना समास रहित या अल्प समास होनी चाहिए, तभी माधुर्यगुण युक्तता कही जा सकती है[5]।

जंबूसामिचरिउमें माधुर्य गुणयुक्तताके निम्न उदाहरण प्रमुख हैं—भवदेवका पत्नी स्मरण (२.१४), रस-विप्रलंभ शृंगार; मिथुनोंकी उद्यान-क्रीड़ा (४.१७—१८), रस-संभोग शृंगार; जंबूके प्रव्रज्या लेनेकी इच्छा जानकर माँकी अवस्था (८.७.९–१४), रस-वात्सल्य; नागवसू-द्वारा भवदेवको बोध-प्रदान (२.१८), रस-शांत; भवदेवका अंतर्द्वंद्व (२.१६) भाव—रतिभावमें परिणत होती हुई भावशबलता। अन्य संदर्भ हैं :—म० महावीरका उपदेश (२.१); संधि ३ लगभग संपूर्ण; जंबूस्वामीको देखकर नारियोंकी काम-विह्वलता ४.११; संधि ८ और ११ लगभग संपूर्ण; एवं ९.१,३; १०.२,६,१८,२० एवं २५।

इन सब उदाहरणों एवं संदर्भोंके अतिरिक्त एक अनिर्वचनीय माधुर्यकी ध्वनि और आस्वादन संपूर्ण रचनामें विद्यमान है, और यही रचनाका सर्वप्रधान गुण है। माधुर्यके साथ प्रसादगुणका भी घनिष्ठ संबंध है। जहाँ-जहाँ श्लेषादि अलंकारोंका विशेष प्रयोग हुआ है, जैसे कि उपर्युक्त उदा० २ में, और अर्थ सुनते ही

---

१. हि० सा० कोश 'गुण'।

२. मम्मट काव्य प्र० 'गुण'।

३. द्रवीभाव : रसकी भावनाके समय चित्तकी चार अवस्थाएँ होती हैं—काठिन्य, दीप्तत्व, विक्षेप और द्रुति। किसी प्रकारका आवेश न होनेपर अनाविष्ट चित्तकी स्वभावसिद्ध कठिनता वीर आदि रसोंमें होती है। क्रोध और मन्यु (अनुताप) आदिके कारण चित्तका दीप्तत्व रौद्र आदि रसोंमें होता है। विस्मय और हास्य आदि उपाधियोंसे चित्तका विक्षेप अद्भुत और हास्यादि रसोंमें होता है। इन तीनों दशाओं काठिन्य, दीप्तत्व और विक्षेपके न होनेपर रति आदिके स्वरूपसे अनुगत आनंदके उद्बुद्ध होनेके कारण सहृदय पुरुषोंके चित्तका पिघल-सा जाना (आर्द्रप्रायत्व) द्रवीभाव या द्रुति कहलाता है। (सा० द० अष्टम-परि० 'गुण')।

४. मम्मट का० प्र० 'गुण'।

५. हि० सा० कोश; मम्मट का० प्र०।

तुरंत पूर्ण रूपसे स्फुट नहीं होता, कुछ चिंतनकी आवश्यकता जिसमें होती है, ऐसे स्थलोंको छोड़कर माधुर्यके साथ प्रसाद गुणका सहभाव स्वीकरणीय है।

ओज गुण—ओजका शाब्दिक अर्थ है तेज, प्रताप, दीप्ति। काव्यके अंतर्गत जो गुण सुननेवालोंके मनमें उत्साह, वीरता, आवेग आदि जाग्रत करनेकी क्षमता रखता है वह ओज कहलाता है।[1] ध्वनि अनुयायी आचार्योंके मतसे चित्तका विस्तारक या दीप्तिकारक गुण 'ओज' है; अथवा दूसरे शब्दोंमें चित्तको फड़क उठने रूप भड़कानेवाले गुणका नाम ओज है।[2] वीर, बीभत्स और रौद्ररसोंमें क्रमसे इसकी स्थितिमें उत्कर्ष और प्रखरता बढ़ते जाते हैं। इसके लिए वर्णोंके आद्य और तृतीय (प्राकृत, अपभ्रंशमें तृतीय-चतुर्थ) वर्णोंकी संयुक्ताक्षरता; ट,ठ,ड,श,ष (प्राकृत अपभ्रंशमें स) आदिका प्रयोग, लंबे-लंबे समास और विकट या उद्धत पदरचना आवश्यक मानी गयी है। इस प्रकार ओज गुणमें उदात्त भाव तथा कर्कश, क्लिष्ट वर्ण संघटन और संयुक्त अक्षरोंका प्रयोग होता है।[3] जंबूसामिचरिउमें इस गुणके प्रयोगके कुछ प्रमुख संदर्भ निम्न हैं :—

हस्तिका उपद्रव (४.२१), रस-भयानक; युद्ध वर्णन (५.१४,६.११), रस-वीर; युद्धवर्णन (६.७.५-७; ६.१०.१-४; ७.१.९-२२) रस-भयानक एवं बीभत्स; तथा अन्य रौद्र रसात्मक वर्णन ५.१३.९-११; (५.१४.१-१४); संधि ६ का शेषांश; संधि ७.१-११ एवं १०.२६।

प्रसाद गुण—प्रसादका शाब्दिक अर्थ है प्रसन्नता, खिल जाना या विकसित हो जाना। सभी रसोंमें और सभी रचनाओंमें ऐसा धर्म या प्रसिद्ध अर्थोंमें शब्दका ऐसा प्रयोग जिसे सुनते ही सामाजिकके हृदयमें भाव या अर्थ क्षण-भरमें व्याप्त हो जाय, वह प्रसाद गुण है। जैसे सूखे ईंधनमें अग्नि और जैसे स्वच्छवस्त्रमें जल तुरंत फैल जाता है, उसी प्रकार चित्तको रसोंमें और रचनामें जो तुरंत व्याप्त कर दे, वह गुण प्रसाद है। अर्थात् प्रसाद गुण वहाँ होता है जहाँ सरल, सहज, भावव्यंजक शब्दावलीका प्रयोग किया जाता है। अर्थकी स्वच्छता या निर्मलता इसकी विशेषता है और यह सभीमें व्याप्त रहता है।[1]

जं० सा० च० में इस गुणके प्रयोगके शताधिक उदाहरण हैं; जिनके कुछ प्रमुख संदर्भ ये हैं :— कविका विनयप्रदर्शन (१.२); मगध देश वर्णन (१.८); रानियोंका सौंदर्य (१.१२); सागरचंद्रका मुनिदर्शनों को जाना (३.५); कन्याओंका सौंदर्य (४.१३); वसंतागमन (४.१५.७-१६); जंबूका आत्मचिंतन (९.१); अंतर्कथाएँ (९.२-११ एवं १०.७-१७)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि वीरने अपनी रचनामें माधुर्य, ओज एवं प्रसाद तीनों गुणोंका प्रचुर समावेश किया है। इनमें माधुर्यका प्राधान्य है, इसके उपरांत ओज एवं प्रसाद गुणोंका।

रचना-शैली—'जंबूसामिचरिउ'की रचना-शैली या रीतिकी दृष्टिसे विश्लेषण करनेके प्रसंगमें 'शैली' शब्द और उसके स्वरूप, संख्या आदिपर प्रकाश डालना आवश्यक है। संस्कृत साहित्यमें शैलीके स्थानपर 'रीति' शब्दका प्रयोग हुआ है। हिंदी साहित्यकोशमें साहित्य शास्त्रके प्राचीन ग्रंथोंके आधारपर शैलीकी परिभाषा इन शब्दोंमें दी गयी है—"शैली अनुभूत विषयवस्तुको सजानेके उन तरीकोंका नाम है जो उस विषयवस्तुकी अभिव्यक्तिको सुंदर एवं प्रभावपूर्ण बनाते हैं।" अर्थात् शैली किसी भी काव्यादि साहित्यिक कृतिके रस-पोषण संवर्द्धन एवं प्रेषण अर्थात् सहृदय सामाजिकको पूर्ण रसानुभूति आदि विविध रूपोंमें रसोपकारक उपादान है। इसी हेतुसे संस्कृत साहित्यमें रीति (शैली) को काव्यकी आत्मा माना गया है। संस्कृतके साहित्यप्रणेता आचार्योंने रीतिके स्वरूपपर भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किये हैं।[1] उन सबका सारांश यह है कि रीतिका संबंध 'विशिष्ट पदरचना' अर्थात् गुणों एवं 'पदरचना' जो कि समासपर निर्भर

१. हिन्दी साहित्य कोश 'गुण'।
२. सा० द० अष्टम परिच्छेद।
३. हि० सा० कोश एवं सा० द० ८.४.६।
१. हि० सा० कोश; तथा सा० द० अष्टम परिच्छेद।

है, तथा वर्ण संघटनसे है। अतः कुछ आचार्योंने 'समासहीनता' 'स्वल्पसमासता' व दीर्घ समासताके रूपमें शैलीको देखा है, और भामह तथा दंडी (७-८ श० ई० काव्यालंकार, काव्यादर्श) ने भरतके प्रदेशानुसार आवंती, दाक्षिणात्यादि (ना० शा० १४.३६.४९) प्रवृत्ति विभाजनके अनुकरणपर, रीतिका भी देशोंसे संबंध स्थापित किया है। जैसे वैदर्भी अर्थात् विदर्भदेशमें[1] प्रचलित शैली, गौड़ी गौड़ देशमें, पांचाली पांचाल जनपदसे और लाटी अर्थात् (गुजरात) प्रदेशमें प्रचलित शैली। उपर्युक्त चारों रीतियोंके अलग-अलग स्वरूपके संबंधमें भी साहित्यशास्त्राचार्योंमें पर्याप्त मत विभिन्नता दिखलायी देती है।[2] पर वैदर्भी और गौड़ी रीतियोंके स्वरूपपर जो कुछ मतैक्य प्रकट होता है, उसपरसे यह कहा जा सकता है कि 'वैदर्भी वह रीति है जिसमें माधुर्य गुणका उसकी समस्त विशेषताओं श्रुति सुखदता, चित्तको द्रवित करनेकी क्षमता भावमयता एवं आह्लादता आदि सहित प्राधान्य हो; जो संयोग एवं विप्रलंभ-शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शांतरसोंकी उपकारक हो; जिसमें समास-राहित्य अथवा अल्पसमासता हो; जिसमें ट, ठ, ड, ढ वर्णोंको छोड़कर वर्गोंके पंचमाक्षरोंसे युक्त क से म तकके स्पर्श वर्णोंका प्रयोग हो तथा श, ष, एवं अन्य कठोर महाप्राण ध्वनियोंका अभाव पाया जाता हो; और इस प्रकार जिसकी संपूर्ण रचना सुकुमार एवं मधुर हो।' गुणोंकी अपेक्षासे माधुर्यके समान प्रसाद गुणका भी इसमें पूर्ण समावेश होता है। इस संबंधमें एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि दंडी और वामनके अनुसार वैदर्भी रीतिका काव्यके श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कांति, और समाधि इन दसों गुणोंसे युक्त होना कहा गया है, वह समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि श्लेष, समाधि, उदारता एवं ओज, जिन्हें मम्मटादि सब आचार्योंने ओजगुणके अंतर्गत माना है, तथा ओजगुणके जो लक्षण किये हैं, वे वास्तवमें वैदर्भीके स्वरूपमें घटित नहीं होते। रुद्रट इस संबंधमें मौन हैं। लगता है कि प्राचीन आचार्योंके इस मतको स्वीकार न करते हुए भी उन्होंने इसका स्पष्ट खंडन नहीं किया और यदि ओज गुणको भी वैदर्भीके अंतर्गत मानना हो, तब या तो ओजगुणकी परिभाषा ही बदलनी होगी, जिससे उसमें कठोरता एवं परुषवर्णताकी अपेक्षा माधुर्य और सुकुमारताका प्रवेश हो, अथवा फिर सभी रीतियोंको वैदर्भीमें ही समाहित करना होगा; या फिर अल्पसमासता एवं बहुलसमासता, यही रीतिविभाजनका एक मात्र निर्बल आधार शेष रहेगा। यदि वैदर्भीमें दसों या तीनों गुणोंका समावेश होता है, तो एक ओर रुद्रट एवं दूसरी ओर विश्वनाथ, इन दोनोंने ही वैदर्भी रीतिमें, विशेष रूपसे, शृंगार, करुण, वात्सल्य एवं शांतरसोंका ही अस्तित्व क्यों स्वीकार किया? वीर, रौद्र, बीभत्स एवं भयानक इन उग्ररसोंको भी उसमें समाहित क्यों नहीं माना? इस विषयपर अधिक चर्चा करना इस प्रबंधकी सीमाओंके बाहर है, फिर भी प्रसंगोपात्त होनेसे इतना लिखना आवश्यक हुआ। इस चर्चाका तात्पर्य यह है कि वीर कविने इस विषयमें वैसे ही अन्य रीतियोंके संबंधमें भी रुद्रटके मतको ही स्वीकार किया है तथा ऐसा लगता है कि वैदर्भी रीतिकी सुकुमारता एवं माधुर्य के वैशिष्ट्यके निमित्तसे काव्यरचनामें सर्वाधिक उपयुक्त होनेके कारण इसे जो महत्ता प्रदान हुई, उससे प्रभावित होकर आचार्योंने अतिशयोक्तिपूर्वक इसे सर्वगुण संपन्न लिख डाला है।

गौड़ी रीतिके स्वरूपके संबंधमें कुछ अधिक स्पष्टता और मतैक्य है: जिसके अनुसार ओजको प्रकाशित करनेवाले कठिन वर्णोंसे बनाये हुए, बड़े-बड़े महाप्राण प्रयत्नवाले अक्षरोंसे युक्त, शब्दाडंबरसे पूर्ण एवं दीर्घसमासोंसे रचित उद्भट बंध अर्थात् ओजपूर्ण शैली, मधुरता, सुकुमारताका अभाव और लंबे-लंबे समासोंसे पूर्ण रचनाको गौड़ी शैली कहना चाहिए। पर 'जंबूसामिचरिउ'के अध्ययनके परिप्रेक्ष्यमें यहाँ भी यह अवश्य कथनीय है कि यहाँ ओजगुणका प्रचुर सद्भाव होनेपर भी अधिक लंबे समासोंका प्रयोग गिने-चुने आठ-दस कडवकोंमें ही हुआ है तथापि अन्य लक्षणोंसे वहाँ गौड़ी रीति ही सिद्ध होती है। अतः वीरके मतसे गौड़ी रीतिमें लंबे समासोंके प्रयोगकी अनिवार्यता प्रतीत नहीं होती।

पांचाली और लाटी रीतियोंको लेकर आचार्योंमें अत्यधिक मत विभिन्नता है। इस कारण इनका

---

१. हिंदी-साहित्य कोश: 'रीति'।

२. वही; एवं साहित्यदर्पण: विमला (हिंदी) व्याख्या परि० ९।

अलग-अलग स्वरूप और उनकी विभाजक रेखा या तत्त्व भी स्पष्ट नहीं है। परंतु सब मतोंपर कुछ गहराईसे विचार करनेसे पांचालीका स्वरूप कुछ इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—'पांचाली वह रीति है जो माधुर्य एवं सुकुमारतासे संपन्न हो और जिसमें पाँच-छह पदों तकके लघुसमास हों। भोजने इसे ओज एवं कांति गुणोंसे संपन्न माना है,[1] और उसीसे किसी अन्य आचार्यने इस रीतिको वैदर्भी एवं गौड़ीके बीचकी रीति भी कहा है। परन्तु रुद्रटकी परिभाषा और वीरको प्रस्तुत कृतिको ध्यानमें रखकर व अन्य भी साहित्यिक उल्लेखोंसे यह मत समाचीन प्रतीत नहीं होता। अपने भाव और भाषा संघटन दोनों दृष्टियोंसे पांचाली रीति वैदर्भीके बहुत निकट प्रतीत होती है, और इसकी प्रवृत्ति वैदर्भीकी ओर ही झुकने की है। पांचाली श्रेष्ठ वैदर्भी रीतिकी अपेक्षा एक मध्यम रीति है।

अब हम लाटी रीतिको लें। रुद्रटके अनुसार यह मध्यम समासवाली उग्र रसोंके वर्णनके लिए उपयुक्त है और विश्वनाथ (१४ श० उत्त०, सा० द०) ने इसे वैदर्भी तथा पांचालीके बीच स्थापित किया है। इस कथनसे लाटीका स्वरूप और भी अधिक अबूझ व अस्पष्ट हो जाता है। इसी कारण साहित्य कोशमें भी इसके संबंधमें कहा गया है कि 'लाटीको कोई अलग विशेषता ज्ञात नहीं होती'। पर इससे तो हम और भी भटक जाते हैं तथा लाटीको समझनेका कोई मार्ग ही हमारे सामने नहीं रह जाता। यहाँ भी हमें वीरकी यह कृति कुछ आलोक प्रदान करती है और रुद्रटकी परिभाषाके प्रकाशमें इसका अध्ययन करनेपर हमें ज्ञात होता है कि 'मध्यम समासरचना, वर्ण-संघटन, ओजगुणात्मकता (प्रभाव) एवं भावोंकी अभिव्यक्ति इन सभी दृष्टियोंसे लाटीरीति गौड़ीके सबसे निकट है, तथा इसकी प्रवृत्ति निरंतर उसीकी ओर झुकने की है।'

उपर्युक्त चर्चासे पांचाली एवं लाटीका स्वरूप भी कुछ स्पष्टतर हो जाता है, और उनकी विभाजक रेखाका भी कुछ संकेत उपलब्ध होता है जिसके अनुसार इन चार रीतियोंके दो वर्ग बनाये जा सकते हैं—(१) वैदर्भी एवं पांचाली और (२) गौड़ी तथा लाटी। वीरकी प्रस्तुत अपभ्रंश रचनाकी आलोचनाकी दृष्टिसे यह कहना भी आवश्यक है कि संस्कृत भाषाकी अपेक्षा प्राकृत-अपभ्रंशके अनिवार्य वर्णपरिवर्तनोंको दृष्टिगत रखकर प्रस्तुत रचनामें वैदर्भी रीतिमें भी ट, ठ, ड, ढ मूर्धन्य एवं थ, झ, ध भ, ह महाप्राण वर्णोंका प्रयोग बहुशः उपलब्ध होता है।

ऊपरकी आलोचनासे यह भी प्रकट होता है कि 'जंबूसामिचरिउ' की संपूर्ण रचना किसी एक ही शैलीमें नहीं बल्कि चारों शैलियोंमें मिश्रितरूपा है। नीचेके विश्लेषणसे यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट होगा। निम्न पंक्तियोंमें जं० सा० च०में चारों रीतियोंके प्रयोगके कुछ संदर्भ प्रस्तुत हैं—

वैदर्भी रीतिके उदाहरण :

कविके प्रेरणा-दायकका वंश परिचय (१.५), संधि २ का अधिकांश भाग, विशेष रूपसे भ० महावीरका उपदेश (२.१); भवदेवको दीक्षा और पत्नी-स्मरण (२.१४); भवदेवका अंतर्द्वंद्व (२.१६); एवं नागवसू द्वारा भवदेवको बोध प्रदान (२.१८); मिथुनोंकी उद्यानक्रीड़ा (४.१७-१८); श्रेणिककी सभामें गगनगति-द्वारा विलासवतीका वंश आदि परिचय (५.२.१२-२०); रत्नशेखरकी सेना-द्वारा केरलपुरीकी घेराबंदी और लूटपाट (५.३.४-१३); रत्नशेखरको पराजित करके जंबूस्वामी आदिका राजगृहकी ओर वापिस प्रस्थानसे लगाकर सुधर्म स्वामीके दर्शनों तकका वृत्त (७.१३); संधियाँ ८ व ९ लगभग संपूर्ण; अंतर्कथाएँ (१०.१-१७); जंबूस्वामीकी दीक्षासे लेकर विद्युच्चर मुनिपर उपसर्ग तकका वृत्तांत (१०.२०-२६); एवं मुनि विद्युच्चर-द्वारा बारह भावनाओंका चिंतन तथा मरकर सर्वार्थसिद्धिको गमन (११.१-१५)। माधुर्य गुणके प्रसंगमें दिये हुए शेष संदर्भ भी इस रीतिके अंतर्गत आते हैं।

पांचाली रीतिके उदाहरण :

भ० महावीरके दर्शनोंके लिए आनंदभेरी आदिका बजवाया जाना (१.१४); भवदेवके घरमें मुनि भवदत्तका आगमन (२.१२); पूर्वविदेहमें पुष्कलावती प्रदेश, पुंडरिकिणी नगरी एवं वीतशोक नगरी तथा

---

१. द्रष्टव्य : सा० द० विमला व्याख्या परि० ९, एवं हि० सा० कोश।

सागरदत्त, शिवकुमारके जन्मके वृत्तांत (३.१–४); मुनि सागरदत्तका वीताशोक नगरीमें आगमन (३.६); अणाढियदेवका वृत्त (४.२); जंबूकी माँके स्वप्न (४.६); वसंतके आनेपर उद्यानका सौंदर्य (४.१६); सैन्य प्रयाण (५.७); विन्ध्यदेश वर्णन (५.९); रेवा नदी वर्णन (५.१०); जंबूस्वामीका दूत बनकर रत्नशेखरसे वाद-विवाद (५.१२) आदि। तीसरी संधि अधिकांशमें वैदर्भीकी ओर झुकती हुई पांचाली शैलीमें रचित है।

गौड़ी रीतिके उदाहरण :

जंबूस्वामीका जन्म (४.८); हस्तिका उपद्रव (४.२१); श्रेणिककी राजसभा (५.१); गगनगति-द्वारा रत्नशेखरकी वीरताका प्रतीकात्मक वर्णन (५.५.१–५); सैन्य प्रयाणकी तैयारी (५.६); युद्ध (५.१४; संधि ६; संधि ७.१ से १२); एवं विद्युच्चरका देश-दर्शन (९.१९)।

लाटी रीतिके उदाहरण:

जंबूस्वामीकी माँकी गर्भावस्था (४.७); बालक जंबूका दिनोंदिन बढ़ना (४.९.१-४); विन्ध्याटवीका वर्णन (५.८.६–३६) आदि।

उपर्युक्त विश्लेषणसे यह बिलकुल स्पष्ट है कि वीर कविने अपनी संपूर्ण रचनामें सबसे अधिक प्रयोग किया है वैदर्भीका, जो कि इसके प्रधान रसों शृंगार एवं शांतके सर्वथा अनुकूल तथा पोषक है। आरंभकी संधि २ व ३ का अधिकांश भाग, और संधि ८,९,१० व ११ लगभग संपूर्ण वैदर्भी शैलीमें रचित हैं। माधुर्य एवं प्रसाद गुणोंका प्राधान्य होनेसे ऐसा होना स्वाभाविक है। वैदर्भीके उपरांत पांचालीका प्रयोग है। परंतु वीर-रस रचनाका एक प्रमुखरस होनेसे परिमाणमें गौड़ीका प्रयोग अधिक हुआ है। संधि ६ और ७ लगभग संपूर्ण गौड़ी शैलीमें रचित हैं और लाटीका प्रयोग सबसे कम किया गया है, जो कि लाटीकी अपनी अनिश्चित-सी स्थितिके कारण स्वाभाविक है।

'जंबूस्वामिचरिउ' में प्रयुक्त सुभाषित और लोकोक्तियाँ

वीर कविने अन्य महाकवियोंके समान अपनी रचनामें सुभाषित और लोकोक्तियोंका भी प्रचुर प्रयोग किया है। उनका हिंदी रूपांतर यहाँ प्रस्तुत है :—

सज्जन-दुर्जन—

सज्जन व्यक्ति दूसरेके गुणग्रहणके लिए ही जीता है। वह स्वप्नमें भी किसीका लेशमात्र दोष नहीं देखता। इसे यूं भी रख सकते हैं—दूसरेके गुण ग्रहण मात्रकी ओर लगी हुई सज्जन पुरुषकी दृष्टि कभी किसीके लेशमात्र दोषको नहीं देखती (१.२२)।

(ऐसा) स्वभावसे पवित्र हृदय सज्जन किसीके गुण दोषोंकी परीक्षाके पचड़ेमें नहीं पड़ता (१.२.३)।

दुर्जन व्यक्ति अपने स्वभावसे ही जानते हुए भी दूसरोंके गुणोंको तो झांपता है और झूठे दोषोंको प्रकट करता है (असद्भूतदोषोद्भावन) (१.२.४)।

सच्चा मित्र—

जिसके पास अपने ही दूसरे हृदयके समान मित्र न हो, उसके लिए राज्य एक रज्जुबंधनका निमित्त-मात्र है, अर्थात् राजाके लिए सच्चे मित्रकी सर्वोच्च महत्ता है (६.१२-४)।

फलहीन होनेपर भी अपनी घनी छायासे युक्त महान् वृक्ष विटके कार्यके लिए तो सफल होता ही है (६.१२-३); अर्थात् जो हृदयसे महान् है,उसके पास कुछ भी न रहे तो भी वह अनेकोंका आश्रयभूत बनता है।

सुभटोंका रुधिर, हाथियोंका मद, और घोड़ोंके फेनके प्रवाहसे (युद्ध भूमिमें) धूल उसी प्रकार शांत हो जाती है जिस प्रकार सुहृदों (सज्जनमित्रों) का रक्त (धन एवं यश) पीकर दुर्जन शांत हो जाता है। (६.५-१०-११)।

सच्चा बंधु—

जो महान् विपत्तिमें सहारा देता है उसके समान और कोई बंधु नहीं होता; अथवा बंधु वही जो महान् विपत्तिमें सहारा दे (६.१२.२)।

दरिद्रोंको दान देने वाले, परदुःख कातर और सरस काव्य रचनाके धनी पुरुषोंको धारण करनेसे ही यह धरित्री कृतार्थ होती है (६.१. गाथा १)।

हाथमें धनुष, साधुशील पुरुषोंके चरणोंको शिरसा प्रणाम, मुखमें सच्चीवाणी, हृदयमें स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोंसे सुने हुए (सच्चे) श्रुतका ग्रहण तथा दो भुजलताओंमें विक्रम, यह वीरपुरुषका सहज (वास्तविक) परिकर होता है, शेष तो बाह्य-साधन मात्र होते हैं (६.१ गाथा २-३)।

विद्याधरकी छोड़ी हुई बाणावली जंबूस्वामीके पास इस प्रकार गयी, जैसे कोई असती किसी सत्पुरुषके पास जाये; अर्थात् निरर्थक लौट गयी। तात्पर्य यह कि किसी सत्पुरुषके प्रति शत्रु-द्वारा की गयी कोई बुराई उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती (९.२)। हिंदीमें—'चंदन विष व्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग'।

गुणहीन लोग गुणोंको समझते नहीं और गुणवान लोग दूसरोंके गुणोंको देखना तक नहीं सह सकते। स्वयंगुणी और परगुण-प्रिय ऐसे लोग तो कोई विरले ही होते हैं (४.१.१-२)।

कवि और काव्य—किसीमें केवल काव्य रचनेकी शक्ति होती है, और कोई उसका व्याख्यान, आलोचना या अभिनय करनेमें ही निपुण होता है। (१.२,८)

एक पाषाण (आकर) सोनेको जन्म देता है, दूसरा (कसौटी; पत्थर) उसकी परीक्षा करता है (१.२.२)। दोनों प्रकारकी प्रतिभासे संपन्न व्यक्ति विरले ही होते हैं; अर्थात् सबमें सब गुण नहीं होते। किसीमें कोई गुण होता है, और किसीमें कोई। जिसमें जो गुण हो, उसे उस गुणका पूरा लाभ उठाना चाहिए (१.२-१०)।

दूसरोंकी काव्यरचनाओंमें वर्ण या शब्दपरिवर्तन करके काव्यरचना करनेवाला कवि बिना कहे ही अपने काव्य संगटनमें, बुधजनोंके द्वारा पहचान लिया जाता है कि यह चोर कवि है (१.२.१४-१५)।

अपने भोलेपनसे ऐसा मान कर कि मैं काव्य रच सकूँगा कवि कर्ममें प्रवृत्त होना भुजाओंसे सागर तर जानेकी कल्पनाके समान है। ऐसे प्रयास लोगोंमें उसी प्रकार उपहासके पात्र बनते हैं, जिस प्रकार ऊँचे वृक्षके फलोंकी ओर हाथ बढ़ानेवाला कोई श्रद्धावान् पंगु (१.३.७.८)।

जिस प्रकार हीरेसे बींधे हुए मणिमें कच्चे सूतका धागा भी सरलतासे प्रवेश कर जाता है, उसी प्रकार किसी विषयपर महाकवियों-द्वारा रचित प्रबंधोंको देखकर अल्पमति कवि भी उस विषयपर काव्य रचना कर सकता है (१.३.९-१०)।

सरिता, सरोवर और बरहियों (बड़ों)में जो बहुत-सा (अस्वच्छ, अपथ्य) जल है, वह किस काम-का। उससे तो मिट्टीके करवेमें रखा हुआ थोड़ा-सा निर्मल, शीतल एवं सुस्वादु जल कहीं अच्छा, जो लोगोंके द्वारा अभिलाषा पूर्वक पिया जाता है; अर्थात् किसी विषय पर ऐसे बड़े-बड़े महाकाव्योंसे क्या?, जो साधा-रणजनकी समझके बाहर हों। उनसे तो वह लघुकाव्य अच्छा जिसका सर्व साधारण लोग भी पूर्ण स्वाद (आनंद) ले सकें (१.५.११;१.१८,२०-२१); अथवा किसी धनिकका वह अपार धन किस कामका जिसका उपयोग कोई भी न कर सके; इससे तो किसी साधारण व्यक्तिकी वह तुच्छ संपदा भली जो सबके काम आये।

जिनके मुख प्राचीन कवियोंके काव्यामृतपानसे भरे होनेसे उनकी (काव्य) रसनाका स्वाद बिगड़ गया है, वे अदरकके फूलकी कलीके समान भिन्न व चटपटे स्वादवाले (जंबुसामिचरिउ सदृश) काव्योंका रसपान करें (७.१ गाथा १)।

चिंतनशील कवियोंके-द्वारा काव्यके (अलंकारादि) अंगों व रसोंसे समृद्ध जो, कुछ युक्तियुक्त कहा जाता है, वह सब (चाहे वास्तवमें घटित हुआ हो या न हुआ हो) सच्चरित्रमें घटित (समाहित और उचित) होता है (८.१ गाथा २)।

जिनमें समस्त काव्यरसोंके पूरको धारण करने (और व्यक्त करने) की शक्ति नहीं है, उन्हें निज शक्तिके अनुसार (काव्य रचनाकी अपेक्षा) काव्योंके अध्ययनके द्वारा उनका यथासंभव रसास्वाद लेकर ही चुप बैठना चाहिए; अर्थात् निकृष्ट काव्य रचनाका व्यर्थ प्रयास नहीं करना चाहिए। (८.१ गाथा ३)

कसौटी, ताप और छैनीसे परीक्षित शुद्ध सुवर्णके समान सज्जनोंके द्वारा सुपरीक्षित प्राचीन काव्योंको तुलापर तौले हुए तथा बुद्धिरूपी कसौटीपर कसे हुए काव्य-रसोंसे देदीप्यमान एवं सुंदर शब्दसमूहसे युक्त काव्योंको ही ग्रहण करना चाहिये; (सुवर्ण मात्र या काव्य मात्रके) स्नेहसे नहीं (९.१. गाथा १)।

वैभवसे, राजाके नैकटय(सान्निध्य या आश्रय)से अथवा कलह(युद्धवर्णन)से ही, जिसमें काव्यगुण उत्पन्न होता है ऐसे काव्यको धिक्कार है (१०.१ गाथा १)।

ओजपूर्ण उक्तियाँ—

चंद्रमाकी किरणोंको कौन छू सकता है ? (५.४.१२)
सूर्य (के घोड़ों) को गति कौन रोक सकता है ? (५.५.१)
यमराजके भैंसेके सींग कौन उखाड़ सकता है ? (३.५.२)
गरुड़के मुखमें कौन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.२)
क्रूरग्रह (राहु, केतु, शनि आदि) का निग्रह कौन कर सकता है ? (५.५.३)
जलते हुए अग्निमें कौन प्रवेश कर सकता है ? (५.५.३)
शेषनागके फणमणिको बलात् कौन अपहरण कर सकता है ? (५.५.४)

प्रलयकालमें मर्यादोल्लंघित ऊपर उठती हुई भयंकर लहरोंसे युक्त समुद्रको भुजाओंसे कौन तैर सकता है ? (५.५.४); अर्थात् ऐसे असंभव कार्योंका संपादन कौन कर सकता है ?

दर्प-दुर्नीति—

शुक्र, सूर्य और चंद्रमाको कँपा देनेवाले रावणका सीताके कारण मरण हुआ (५.१३.६)।

झूठे दर्पसे दर्पित मत्यंध दुर्योधनका द्रौपदीके कारण सर्वनाश हुआ (५.१३७); अर्थात् दर्प और दुर्नीतिकारीका निश्चित नाश होता है।

कौवेके (शरीरके) आकाशमें उड़ सकने मात्रसे ही वह गुणी नहीं हो जाता (५.१३.३०); अर्थात् शारीरिक गुण या क्षमता मात्र किसीके गुणी या शक्तिशाली होनेके द्योतक नहीं है।

हस्ति समूहका संहार करके सिंह पर्वत कंदराओंमें जाकर सोता है, यह उसकी प्रवृत्ति या स्वभाव ही है, न कि गीदड़ोंके भयसे वह ऐसा करता है (५.१३.३२.३३) अर्थात् सोते हुए या शांत शत्रुको कायर अथवा दुर्बल नहीं मान लेना चाहिये।

हाथके पंजेसे कुंभीके कुंभस्थलको विदीर्ण करके जानेवाले सिंहके नखोंसे गिरे हुए गजमुक्ताओंको देखकर जो उस सिंहको मारकर उन्हें प्राप्त करना चाहे, वह अवश्य यमराजका बंधु (मौतका प्यारा) है (५.१४.२-३)।

जो सैनिक हृदय सहित अपना सिर तो स्वामीके लिए दे देता है, मांस सौ-सौ टुकड़े करके मांस भोजी पशु-पक्षियों एवं राक्षसोंको दे देता है, अपना जीवन स्वर्गलोककी सुररमणियोंके लिए त्याग देता है, और शेष जो यश रहता है, उसे भी पृथ्वीको अर्पित कर देता है, उस पदातिके समान और कौन धन्य हो सकता है ? (६.८९-११)।

वीर-प्रशंसा—

श्रेष्ठ नखोंसे युक्त एक केसरी अच्छा, महागर्जन करनेवाला हाथियोंका मेला नहीं (७.२.११)। आकाशमें धावमान एक अकेला दिनमणि (सूर्य) अच्छा; खद्योतक (जुगनूं) कीड़ोंका समूह नहीं (७.२.१२)। बढ़ा हुआ विकराल अकेला बड़वानल अच्छा, रत्नाकरका जलसमूह नहीं (७.२.१३)।

झपट मारनेवाला एक गरुड़ अच्छा; महान् फणधारी विषधर समूह नहीं (७.२.१४)। अर्थात् दुर्जय शत्रुओंको जीतनेवाला अकेला वीर पुरुष सहस्रावधि सैन्यसाधनसे कहीं अच्छा।

अपने नखरूपी वज्रसे हाथियोंके विदीर्ण किये हुए उत्तुंग कुंभस्थलोंसे गलित होनेवाले रक्तप्रवाहसे कपिलवर्ण हुए केशर कलाप जिनके स्कंध प्रदेशपर लहराते है, ऐसे सिंह तभीतक दहाड़ते हैं, जबतक वे

शरमको नहीं देख लेते (७.४.१-३); अर्थात् श्रेष्ठ नरसिंह भी नरशार्दूलोंसे निश्चित रूपसे भय खाते हैं, परास्त होते हैं।

अपनी पत्नीके वासगृहमें बैठकर बहुत लोग भटजनोचित समुल्लाप अर्थात् अपनी बहादुरीका विशद बखान करते रहते हैं; पर मित्रका कार्य संपन्न करनेवाले (सच्चे वीर) पुरुष बहुत विरले होते हैं (७.४.४-५)। हिंदी : अपने घर कुत्ता भी शेर होता है।

दूसरेके कार्यभारको धुराको धारण करनेसे उसके गुरुतर घर्षणसे जिनके कंधोंपर चिह्न बन गये हैं, ऐसे लोग जगत्में दो ही तीन होते हैं या कोई एक ही होता है (७.४. ६-७)।

अपने धवल (श्रेष्ठ) वृषभ (प्रतीक-श्रेष्ठपुरुष) का अपमान करके गर्रे (अधम) बैल (प्रतीकार्थ अधम पुरुष) पर अनुराग करनेवाले स्वामीका परिवारक वर्ग भी उसकी भार (कार्य) निर्वाह करनेकी क्षमताको न जानते हुए उस श्रेष्ठवृषभको हृदयसे सर्वथा भुलाकर गर्रे बैलके ही प्रतिपालनमें लग जाता है। परन्तु चिक-चिक-चिकने कीचड़ (प्रतीकार्थ महान् संकट) में चक्का फँस जानेसे गाड़ीके रुक जानेपर जब अधम बैल कंधेको गिराकर मुक्त हो जाता है (भाग जाता) है; तब वही श्रेष्ठ वृषभ गाड़ीको क्षणभरमें इस प्रकार निकाल देता है कि कुस्वामी (पृथ्वीपति, प्रतीकार्थ कुराजा) का हृदय प्रसन्नता (या पश्चात्तापकी अग्नि) से फूट पड़ता है (७.६ गाथा १-३)।

अत्यंत अधम बैलोंके प्रतिपालनमें लगे हुए स्वामीके द्वारा अपने अपमानको भी जो नहीं गिनता, और आपत्तिमें धुराको धारण करता है, उस श्रेष्ठ वृषभको बार-बार नमस्कार (प्रतीकार्थ वही, ७.६ गाथा ४)। गर्रे बैलके साथ जोते जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने पार्श्वमें देखता है कि गुरुभार खींचनेमें यह गर्रा बैल मेरा अतिरिक्त भार मात्र होगा (प्रतीकार्थ वही, ७.६ गाथा ५)। गर्रे बैलवाला एक चक्का रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभ अपने हृदयमें इस प्रकार झूरता है, हाय! मुझे ही काटकर दोनों दिशाओं (पार्श्वों) में क्यों नहीं जोत दिया गया; अर्थात् मैं अकेला ही भार भली भाँति खींच लेता (प्रतीकार्थ वही, ७.६ गाथा ६)

जिसके धुरा धारण करके खुरोंसे आहत मार्गमें प्रवेश करनेसे समुद्र भी शंका (भय) करता है (कि उसमें जानेसे मुझे भी पादाक्रांत होना होगा), वैसे श्रेष्ठ वृषभके साथ स्पर्द्धा करने या जुतनेसे गर्रा बैल निश्चित मरेगा (प्रतीकार्थ वही, ७.६, गाथा ७)।

शशधरने मृगशिशुके स्थानमें यदि सिंहशावकको अपने अंकमें धारण किया होता, तो उस सिंहशावक-के जीते जी राहुके लिए चंद्रमाका मर्दन करना दुष्कर होता; अर्थात् कायरोंकी अपेक्षा वीर पुरुषोंको आश्रय देना निश्चित अच्छा होता है (७-६ दोहा)।

क्षत्रियका एक यही परम धर्म है कि युद्धमें कभी क्षात्रधर्म भंग न हो, विजय और पराजय तो दैवा-धीन होती है; पर पीठ दिखानेसे तो लोगोंमें लज्जा व निंदाका पात्र बनना पड़ता है (७.१२ १३-१४)।

ऐसा कोई घर नहीं जिसमें पाप न हो (सुंदर एवं युवा पत्नियोंके प्रति शंकाग्रस्त ईर्ष्यालु तथा व्याधि-ग्रस्त सेठकी उक्ति ३.११.६)। हिंदी: कोई दूधका धोया नहीं।

पुत्र ही वंशकी संतानोंको धारण करनेवाला आशावृक्ष होता है। वही कुलके गुरुभारको अपने कंधों-पर उठाता है और पुत्र ही कुलका नाश करनेवाली आपदारूपी वल्लरीको विध्वंस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति होता है (८.७.१५–१६)।

सत्पुत्र लक्षण—

जो कुलको उज्ज्वल करे, गुणियोंकी गणनामें प्रथम हो, और आचारवान हो वही (सच्चा) पुत्र है (८.८.४)।

कुपुत्र लक्षण—

जिसके पैदा होनेसे शत्रु क्रंदन न करने लगें, सज्जन सदा सुखसे आनंद न करें (८.८.५) और जिसके दान देनेसे अथवा युद्ध जय करनेसे, सुकवित्वसे अथवा जिन (देव) कीर्तनसे (८.८.६); जिसका यशो-हंस इस संसारके पिंजड़ेमें न समाकर सारे ब्रह्मांडका अतिक्रमण न करे (८.८.७); उस संततिमात्रको वृद्धि

करनेवाले और निजमाताके यौवनको लूटनेवाले पुत्रसे क्या (लाभ) ? (८.८.८)

दुर्व्यसनोंसे भोगा हुआ पुत्र कुलरूपी अंकुरको समूल उखाड़नेवाला और धनके लिए निजके माँ-बाप को मार डालनेवाला होता है (८.८.४—९)।

माँके लिए पुत्रके दीक्षा लेने विषयक वचन पर्वत शिखरपर वज्रपतनके समान कठोर होते हैं (८.७.१३)।

श्वसुरके लिए जामाताका गृहत्याग विषयक समाचार हृदयको करौंतसे चीर देनेके समान अथवा विषभक्षण-द्वारा मूर्च्छित कर देनेके समान दुःखद होता है (८.१० १.२); और संबंधीजन—

वज्रपातसे विध्वस्त पर्वतराजके समान (८.१०-३) अथवा गरुड़से झपेटे हुए सर्पसमूहके समान (८.१०.४) अथवा सिंहके द्वारा विदीर्ण-कुंभस्थल-हस्तियूथके समान (८.१०-४) एवं तीक्ष्ण परशुसे काटी हुई शाखाओंवाले (ठूंठ) वृक्षके समान अधोमुख होकर बैठ रहते हैं (८.१०-५)।

पुत्र वियोगके कुठारसे माँका हृदय इस प्रकार विदीर्ण कर दिया जाता है, जिस प्रकार अग्निपुंजमें डाला हुआ लवण टूक-टूक हो जाता है (९.१५.१४.१५)।

उच्चकुलीन कन्या—

निर्मलगुण और उच्चगोत्रवाली कन्याओंका एक ही पति होता है, एक ही माँ, एक ही पिता, एक ही देव (वीतराग) जिन, एक श्रेष्ठ (वीतराग) साधु ही गुरु, और एक ही (सखा) जिससे धर्मका लाभ हो (८.१०.१३.१४)।

तपकी निरर्थकता—

यदि मनमें राग-द्वेष नहीं है तो फिर वनमें तप लेकर ही क्या करना है; अर्थात् उसकी कोई आवश्यकता नहीं (३.९-३)।

यदि मन कषायों (राग-द्वेषादि) से रंगा है तो फिर तपश्चरणसे ही क्या सिद्ध होनेवाला है; अर्थात् ऐसी स्थितिमें तपश्चरण निरर्थक है (३.९.४)।

अद्भुत घटना—

कार्तिक आये बिना अंबरका निरभ्र होना (४.८.९)।
बिना वर्षाके धूलि शांत होना (४.८.१०)।
बिना वसंतके वनस्पतिका फूल उठना (४.८-११)।
हिंदी—(बिन वसंत बहार), अकस्मात् अकारण शुभ कार्योंका संपन्न होना।

मनोहर देशोंको छोड़कर भी नदियाँ (खारे) जलपूर्ण सागरका अनुसरण करती हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि जलमयी (नदियों) एवं जड़मति स्त्रियोंमें विवेक नहीं होता, उनका आदर सगुण (गुण संपन्न) के प्रति नहीं, सलोने (सलवण अर्थात् सागर, पक्षमें—सुंदर पुरुष) के प्रति होता है (१.६.२४-२५)।

बुद्धिमान् लोग समान (कुल, वयस् आदि) विवाहकी प्रशंसा करते हैं (२.११-३)।

काँचसे कोई रत्न नहीं पलटता और पीतलके लिए कोई स्वर्ण नहीं बेचता (२.१८-५)।

चोरीका धन ला-लाकर घर भरना (३.१४.२.२)

धमकी : यदि यहाँसे एक पग भी आगे रख लो तो मैं अपना (सार्थक) नाम छोड़ दूँ (४.२.१४-१५)।

दूजके चाँदके समान बालकका बढ़ना (४.९.१)।

एक विधाता सारे लोक सामान्यको गढ़ता है, पर सुंदर कन्याओंको गढ़नेवाला तो कोई दूसरा ही प्रजापति होता है (४.१४.९-१०)।

कांताके वशवर्ती (रागी) जनोंकी जलस्नान मात्रसे क्या शुद्धि ? (४.१८.१०)।

सुभटत्व और अग्नि अपने आपमें थोड़े होते हुए भी बहुत हैं (५.४.४)।

सिरपर साँप, सौ योजनपर वैद्य (सीसे सप्पो, विज्झो वेज्जो) (५.४.१३)।

शत्रुको देखते ही बिना प्रतीक्षा किये तुरंत पहले स्वयं भिड़ जाना चाहिए, अर्थात् शत्रुको देखते ही, उसे अवसर दिये बिना, जो शत्रुपर प्रथम आक्रमण करता है, उसकी विजय निश्चित है (६.५.८)।

कहावतोंकी कहानियाँ—

वर्तमानमें उपलब्ध सुखोंको त्याग कर जो भविष्यत् सुखोंकी अभिलाषा करता है वह दोनोंसे हाथ धो बैठता है जैसे—(१) मूर्ख किसान (९.४); (२) विद्याधर (९.६) एवं (४) सर्प (९.१०)।

विषयलोलुप जीव सर्वनाशको प्राप्त होता है : जैसे (१) मांस लोभी कौवा (९.५); (२) कामातुर वानर (९.७); (३) कमलगंधलोभी भ्रमर (९.९); (४) मांस लोभी शृगाल (९.११); हिंदी: मौतका मारा शृगाल गाँवकी ओर दौड़ता है; (५) मधु लोभी ऊँट (१०.७) एवं (६) विषय लोलुप वंग।

अति लोभी शृगाल मृत्युको प्राप्त हुआ (१०.१२)। जो सोवे सो खोवे (१०.११)।

लकड़हारेको स्वप्नमें राज्यप्राप्ति (१०.१३)।

मुँहका मांसखण्ड छोड़कर मच्छको पकड़नेका असफल प्रयत्न करनेवाला शृगाल मांस (जिसे बाज उठा ले गया) और मच्छ (जो पानीमें कूद गया) दोनोंसे गया (१०.१६); हिंदी : आधी छोड़ सारीको धावे, आधी रहे न सारी पावे।

धूर्त स्त्रीका कपटभरा प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है (८.१३.१४.१५)।

पतिको त्याग, जारको भी मरवा डालनेवाली असती चोरसे भी गयी और धन तथा वस्त्रोंसे भी हाथ धो बैठी (१०.८-१०)।

वेश्याएँ धन, वैभव संपन्न पुरुषको चिरकाल तक आदरपूर्वक आलिंगनादिके द्वारा मधुके छत्तेके समान पूर्णतया चूस कर छोड़ देती हैं, और नये क्षुद्र पुरुषोंको चूमने (चूसने)में लग जाती हैं (९.१२.१८-१९)।

'जंबूसामिचरिउ'में प्रयुक्त सुभाषितों एवं लोकोक्तियोंका विषय क्रमसे अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि वीर कविने जिस प्रकार अपनी संपूर्ण रचनामें और उसकी अंतर्कथाओंमें समाज जीवनके विविध पक्षोंका सर्वांगीण उद्घाटन किया है, उसी प्रकार सुभाषितोंमें भी उन्होंने उसका कोई पक्ष छोड़ा नहीं। कविसमयके अनुसार सज्जन और दुर्जनोंकी प्रकृतिका प्रथम उल्लेख; गुण-दोषोंकी चर्चा; कवि और काव्य-विषयक स्थापनाएँ, ओजपूर्ण उक्तियाँ, जिनके आलंबन सुर, नर, पशु सभी हैं; पारिवारिक जीवन, सुखद-दुःखद दोनों प्रकारका; माता-पिता, संबंधियोंका वात्सल्य; कुलीन कन्या व कुलपुत्रोंके लक्षण; आध्यात्मिक-धार्मिक विश्वासोंसे संबद्ध उक्तियाँ, सामान्य लोक प्रचलित उक्तियाँ और कहावतोंकी कहानियाँ, यह सब कुछ कविने अपने काव्यमें प्रयुक्त सुभाषितोंके आयाममें पिरोया है। इन सबके कारण 'जंबूसामिचरिउ' के महा-काव्यत्वमें और भी अधिक निखार आ गया है।

८. जंबूसामिचरिउका भाषा एवं व्याकरणात्मक विश्लेषण

गत-पचास वर्षोंमें अपभ्रंश भाषा और साहित्यके क्षेत्रमें पर्याप्त कार्य हुआ है। इस बीच दलाल और गुणे-द्वारा 'भविसयत्तकहा'; लालदास भगवानदास गांधी-द्वारा अपभ्रंश काव्यत्रयी; डॉ० उपाध्ये-द्वारा परमात्मप्रकाश और योगसार; प० ल० वैद्य-द्वारा पुष्पदंत कृत अपभ्रंश महापुराणके तीन भाग और 'जसहर चरिउ'; डॉ० ही० ला० जैन-द्वारा सावयधम्म दोहा, पाहुडदोहा; णायकुमारचरिउ, करकंडचरिउ, मयणपराजयचरिउ, सुगंधदहमीकहा और सुदंसणचरिउ[1] तथा सिरिचंद कृत अपभ्रंश कहकोसु; डॉ० ह० ब० भायाणी-द्वारा स्वयंभू कृत पउमचरिउ (तीन भाग), स्वर्गीय राहुल-द्वारा अपभ्रंश दोहाकोसु तथा अब्दु-र्रहमान कृत संदेशरासक आदि अनेक अपभ्रंश रचनाएँ प्राकृत-अपभ्रंशके उपर्युक्त मूर्द्धन्य विद्वानों-द्वारा

१-२. शीघ्र प्रकाश्यमान।

सुसंपादित होकर प्रकाशित हुई हैं। इनके संपादकों-द्वारा इन ग्रंथोंकी भूमिकामें प्रत्येक ग्रंथकी भाषापर विशेष और अपभ्रंश सामान्यके स्वरूपपर बहुत विस्तार और सूक्ष्मतासे प्रकाश डाला गया है। इन रचनाओंके अतिरिक्त स्व० पिशल महोदयके व्याकरण, डॉ० तगारे कृत अपभ्रंशका ऐतिहासिक व्याकरण, डॉ० देवेन्द्र कृत अपभ्रंशप्रवेश, डॉ० नेमिचंद शास्त्री कृत अभिनव-प्राकृत व्याकरण, मधुसूदन चिमनलाल मोदी-द्वारा संपादित अपभ्रंशपाठावलीकी भूमिका; डॉ० नामवरसिंह कृत 'हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान'; डॉ० देवेन्द्र कुमार कृत 'अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य', डॉ० हरिवंश कोछड़ कृत 'अपभ्रंश साहित्य' डॉ० तोमर कृत 'प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य' प्रभृति ग्रंथोंमें भी अपभ्रंश भाषाके स्वरूपपर बहुत ही गहराई और सूक्ष्मतासे विवेचन किया गया है। सामान्यतः 'जंबूसामिचरिउ'की भाषा वही नागर अपभ्रंश है, जिसमें स्वयंभू और पुष्पदंत जैसे श्रेष्ठ अपभ्रंश महाकवियोंकी काव्य-कृतियाँ हैं। इसकी भाषामें इन कवियोंकी रचनाओंसे जो विशिष्ट भेद है, वह प्रारंभिक और मध्यवर्ती संयुक्त न, ण्ण के प्रयोग विषयक है। इस विषयमें 'पाठ संपादन पद्धतिके अंतर्गत विवेचन किया गया है। भाषा और व्याकरणका स्वरूप संक्षेपमें निम्नप्रकार है—

§ १. प्रयुक्त स्वर : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐं, ओ, ओं, ं (अनुस्वार) एवं ँ (अनुनासिक)।

§ २. व्यंजन : क् ख् ग् घ्, च् छ् ज् झ्, ट् ठ् ड् ढ् ण्, त् थ् द् ध् न्, प् फ् ब् भ् म्, य् र् ल् व् स् ह्,

स्वर विकार

§ ३. अ>इ अकहिज्जमाण (१.२) उब्भिड (५.१०)।
अ>उ मुणइ (५.१३) अरुहयास (४.३) अरुहणाह (३.१३)
अ>ए एत्थंतरे (१.५) एत्थु (२.११) वेल्लि (५.१३)

§ ४. आ>अ सीय ३.१२ मालिइल्लय ५.२
आ>उ उल्लिय ९.१५

§ ५. इ>अ सिरस ८.९
इ>उ उच्छु ५.९
इ>ए उत्तेडिय ५.७; जि>जे; विंध>वेंध

§ ६. ई>आ आरिस ९.१६
ई>ए एरिस ८.१०

§ ७. उ>अ कत्थ ७.१; कुरु>करि ८.१; गरुयारउ १.५; मउड; कुसम ८.९
उ>इ कुरु>करि ८.१०; किंपुरिस ९.१२
उ>ई सुणी १.१५; दुहिता>धीय ११.३
उ>ओ सुकुमारिका>सोमालिया ८.१०; पोग्गल १०.५; मोग्गर ६.१०; कोंत५.१४

§ ८. ऊ>उ अउव्व ९.२; फुक्कार ५.८
ऊ>ए नेउर ८.९
ऊ>ओ बहुमोल्ल १०.२१; थोर ८.११; तंबोल ८.९

§ ९. ऋ>अ कय ९.४; कयंत ३.७
ऋ>इ किण्ड ४.१३; अलंकिअ ३.८; अतित्त १.१२; अमिय ८.२; किउ ४.९ आदि
ऋ>उ पुहइ १०.११; अपाउस ४.८
ऋ>ए स्वगृहं>सगेहं ४.५
ऋ>रि रिद्धि ३.६
ऋ>अरि उद्भृत>उब्भरिय ३.७

§ १०. ए>इ अणिमिस ८-९; अमरिंद ४.१
ए>ई कोह ५.१४
ए>ए जंति; जगे १.१; कज्जे १.२; जणे १.३ आदि

§ ११. ओ>उ अवरुधरु ५.२; अण्णुण्ण २.५; उट्ठुम्म ९.१
ओ>ऊ ऊसारिय ७.७
ओ>आ तहा १.३; बोरहा १.२; विउसहा १.२
ओ>ए करोमि>करेमि १.३

§ १२. ऐ>ए अवरेक्क ९.१६
ऐ>इ अवरिक्क ९.६
ऐ>अइ कइलास ९.६; कइरव ८.१५; दइव ५.१३

§ १३. औ>ओ जोव्वणु ४.१३; अवमोयरु १०.२१; ओसही ३.१४
औ>अउ पउरजण १.१५

§ १४. ह्रस्वस्वरका दीर्घीकरण : जहाँ किसी मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनमें-से एकका अथवा प्रथम स्वरके अनुस्वारका अथवा अंत्य व्यंजनका लोप कर दिया जाता है, वहाँ पूर्वका ह्रस्व स्वर दीर्घ हो जाता है—
अड्ढाइय .११.११; वीसमण ४.९; बीया ४.९; सीस (शिष्य) ७.१३; बीसोवहि ११.१२; सिही २.५८

§ १५. दीर्घस्वरका ह्रस्वीकरण : संयुक्त व्यंजनके पूर्वका दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता है—
अप्फालिय १.१५; अच्छेरअ ९.१०; अज्ज (आर्य) १.५, चरणग्ग १.१.; तित्थु १.७; परिक्खा १.२; रज्ज ३.१४ आदि। अन्यत्र भी जैसे : वित्थर १.५; अडइ १०.१३; विभ ७.३; कुमर ५.७; गहिय १.१ मं०; गहिर ४.१९; थविय ११.६ आदि। छंदार्थ—महकइ १.३; संतुव १.४

§ १६. ह्रस्वस्वरका अनुस्वारत्व : अंसु ४.११; उंट १०.७; उंबर ५.८; कंचाइणी ७.६; करफंसण ५.४; दंसण ८.२

§ १७. स्वरलोप :
(क) आदि स्वरलोप: हउं ३.७; हेट्ठामुह २.१८; हेट्ठिल ११.१०
(ख) मध्य स्वरलोप : उदिट्ठु १०.२; देवदत्त १.५; पत्ति ४.२१; पोफल १.८
(ग) अंत्य स्वरलोप : अब्भासें १.२; इयरें १.४; चलणग्गें १.१; सहावें १.२ आदि।

§ १८. आदि स्वरागम : इत्थिरज्ज ९.१९

§ १९. स्वरभक्ति : आयरिय २.८; दोहर १.३; सलहिज्जइ ४.९; सिविण १.३; हरिसिय ३.१२; किलेस १०.१२

§ २०. स्वरव्यत्यय : आश्चर्य>अच्छरिय>अच्छेर ९.१०; ब्रह्मचर्य>बंमचरिय>बंमचेर ३.९;

§ २१. स्वरागम : जब किसी शब्दमें पहले आया हुआ कोई स्वर उसीके पीछे आनेवाले स्वरसे प्रभावित होता है, तो उसे स्वरागम कहा जाता है। जैसे :—इक्षु—उच्छु>उच्छु ५.९; कृत्वा—करवि, करेवि; करिवि इसी प्रकार अप्पिवि; आयण्णिवि ९.७; पइसिवि ९.१०; पेक्खिवि; मेल्लवि, मेल्लेवि, मिल्लिवि ६.१३,८.१०, आदि।

व्यंजन विकार

§ २२. (क) आदि असंयुक्त व्यंजन : साधारणतः यथास्थित सुरक्षित रहते हैं पर कुछ विशिष्ट शब्दोंमें उनमें परिवर्तन या व्यत्यय हो जाता है, जैसे :—धृति>दिही १.६; दुहिता> धीय ११.३; दम्भ-डम्भ २.१४; डहण ७.९; डाढ ३.८; निलाड ४.१३।

(ख) आदि 'य' को 'ज' : जमल १०.१६; जयुल १.१ मं०; जसुच्छव ३.१३; जहा १०.१, जप्पंति ५.६।

(ग) आदिमें संयुक्त व्यंजन रहनेपर एकका लोप हो जाता है : पडिवयण; पडिवया; बोयड; थंभ; खंभ; छुह; कणिर; फार ४.५ इत्यादि।

§ २३. मध्यवर्ती असंयुक्त व्यंजनोंमें क् ग् च् ज् त् द् प् ब् य् व् का प्रायः लोप होता है, उनके स्थानमें कहीं तो केवल उद्‌वृत्त स्वर ही शेष रहता है; और कहीं 'य' श्रुति या 'व' श्रुति होती है।

§ २४. 'य' और 'व' श्रुतिका नियम : हेमचंद्रके अनुसार उद्‌वृत्त 'अ' और 'आ' स्वरोंके बीच 'य' श्रुति होती है, कभी नहीं भी होती है। परंतु 'जंबूसामिचरिउ' में ऐसे उदाहरण नहीं मिलते जिनमें 'अ', 'आ' स्वरोंके बीच इन्हीं शुद्ध स्वरोंका प्रयोग ही अर्थात् अ-आ स्वरोंके बीच यहाँ सर्वत्र य श्रुति होती ही है। अन्य स्वरोंके बीचमें अधिकांशतया य श्रुतिका सद्‌भाव दिखाई देता है, जैसे :—इ-ई और अ-आके बीच, उ और, अ-आ के बीच, ए और अ-आ के बीच तथा ओ एवं अ-आ के बीच इन सबके उदाहरण नीचे दिये गये हैं।

'व' श्रुतिकी स्थिति बहुत अनिश्चित है। सामान्य रूपसे उ और ओ के बीच 'व' श्रुति होती है, ऐसा माना जाता है। परंतु प्रस्तुत रचनामें स्थिति इससे भिन्न है। विशेष बात यह है कि अनेक स्थलोंपर 'य' और 'व' श्रुतिके प्रयोगमें कोई भेद दिखलायी नहीं देता। बल्कि यह वास्तवमें लेखकके स्वछंद अर्थात् स्वेच्छापर निर्भर करता है कि अ-आ स्वरोंके बीचकी स्थितिको छोड़कर इनमें-से किसी भी श्रुतिका प्रयोग करे अथवा केवल उद्‌वृत्त स्वर ही रहने दे। मूल लेखकों-द्वारा श्रुतियोंके प्रयोगमें यह स्वच्छंदता देखकर ही प्रतिकारोंने कुछ स्वछंदताका वर्तन किया है, यह प्रतियोंके पाठभेदोंपर-से स्पष्ट प्रतीत होता है। कहीं एक प्रतिमें 'य' श्रुति है तो दूसरीमें 'व' श्रुति और तीसरीमें केवल उद्‌वृत्त स्वर। पाठभेदोंपर ध्यान देनेसे ऐसे अनेक उदाहरण दृष्टिगत होंगे। अब कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

'य' श्रुतिके उदाहरण

(क) अ-आ के बीच : अरुहयास ४.१; आय १०.२५; कयकिणिय ६.३; कयावि ३.६; कायरी ९.१७; नायणु १४.४; पायार ४.१४; मयवत्त ३.३; मायरी ९.१७; लयउ ९.१३; लायण्णु ४.१४; वयणुल्लउ ५.२; सयल ७.१३।

(ख) इ-ई एवं अ-आ के बीच : किणिय ६.३; तावीयड ९.९; परियाणवि ७.१३; पाहरिय; बीयउ २.५; मियंक ७.१३; लइयं ८.१५; वइरियाण ६.१२; वियार ९.१३; सीयल १.१३; सम्माणिय ७.१३; हुणिय १.१ मं०।

(ग) उ-ऊ एवं अ-आ के बीच : गरुयारउ १५; जुयलुल्लउ ८.१६; भुयण ६.२; भुयदंड ६.२; जूयं ४.३; जूयार ४.२; दूय ५.१३; दूयडिया ८.१५; धूयविलंबण ११.६; पूया १-१८; रूयकमु ९.१८; सूयाहर ४-८।

(घ) ए एवं अ-आ के बीच : केयार ५.९; तेयमाल १०.१; तेयवारि २.३; केयखंड ५.४४; भेय ५.३; सेय ३.८; हेमेयड ८.१५।

(च) ओ एवं अ-आ के बीच : कोयंड १०.१२; खोयणु ९.८; भोय १.१०; भोयण ८.१३; भोया-यर ५.२; मोयण ६.३; लोयाण ९-८; लोयायार ८.७; लोयग्ग ११.१२; लोय ३.१; लोयाहाण ५.४; सोयाउर ३.७।

'व' श्रुतिके उदाहरण

(अ) अ-आ के मध्य : भयवत्त २.५

(ब) आ-इ के मध्य : परिणाविय ३.४

(स) उ-ऊ एवं अ-आ के मध्य : उवय ११.९; उवयागउ ९.१; उवहि ४.१६; छुवहि ५.१३; जूवार ८.२; भुवडालिया ५.९; लहुवारउ ३.५; विरुवउ ५.१३; मसिणोरुव ८.१६

(द) ओं एवं अ-आ के बीच : ओवइ ९.१४

इन उदाहरणोंपर-से 'य' और 'व' श्रुतियोंका इस रचनामें प्रयोग बाहुल्य तो स्पष्ट होता ही है, उनकी अनियमबद्धता भी प्रकट होती है। और साथ ही 'व' श्रुतिका एक भी ऐसा दृष्टांत उपलब्ध नहीं होता जहाँ 'उ' और 'ओ' स्वरोंके बीच 'व' श्रुतिका प्रयोग हुआ हो।

§ २५. 'य' और 'व' से संबद्ध एक और नियमका यहाँ उल्लेख करना उचित है। वह है संप्रसारण-का नियम। इसका अर्थ है 'य' के स्थानपर 'इ', एवं 'व' के स्थानपर 'उ' होना। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:-

(क) कात्यायनी—कंचाइणी ७.६; उप्पाइवि ४.३; विउल् १.२

(ख) 'इ' के स्थानपर 'य' और 'उ' के स्थानपर 'व' का प्रयोग संप्रसारणके ही समीपवर्ती स्थिति है। जैसे—देवालय—देउल ४.१०; देवल १०.८; पइज्जु ४.२; पयज्जु ५.११।

§ २६. व्यंजन परिवर्तनोंके व्यवस्थित उदाहरण प्रस्तुत करनेके पूर्व एक और विशेष नियम उल्लेख-नीय है, जिसे वर्णप्रक्षेप कहा जाता है। जिसका अर्थ है किसी शब्दमें किसी वर्णके स्थानपर किसी अन्य अविद्यमान वर्णका आना जैसे—आम्र—अंब ४.२; ताम्राधर—तंबाहर ४.१८; तंबिर ५.१२; ललाट—निलाड ४-१३; चिकुर-चिहुर ४.१३।

व्यंजन परिवर्तन और विकारोंके उदाहरण

(क) क् और ग् आउंचिय ४.१३; आउल ५.६; आय (आगता) ८.४; आयम ३.९ आदि

(ख) च् और ज् आयरिय २.८; आयार ८.८; परिच्चय—परिचय ८.१; भुयंग ३.८

(ग) त् और द् आगया ९.१७; आहय ८.७; आसाइय १०.१, आइट्ठ ५.६, आएस १.१६, आसाइय १०.१; उवयाण ५.३

त्>ड् उप्पिड ५.१०; पडिय ५.१०; पडियार ७.८

त्>ह् भरह (भरत) १.५; भारह १.६

द्>ड डज्झ, डहण, डाढ

(घ) प>उ आउण्ण ४.६, आऊरिय १०.२४

प>व आवण्ण ५.१, आवाणअ, ४.२, उवभुंजइ २.१३, थवइ (स्थपति) ३.४; मवइ (मापयति) ४.१९

प>फ फुल्ल १०.१९; फोफल १.८

(च) ट>ड आरडिअ ७.८; उग्घाडइ ९.८; उप्पाडण १०.२०; कण्णाड ६.६

(छ) ड्,ट्>ल कामकोल १०.२३; चलण ६.१४

(ज) न्>न् झाणानल १.१ म०; महानल ३.८

न लोप स्थान>ठाय ५.४

म्>व् कट्टविय ४.२२; दवण ४.२०; रवण्ण ३.१३; सवण २.१९

(झ) व्>म् एवमेव>एमई २.१८

व लोप कइ, कइत्त आदि

(ट) म्>उ नम्र>नउर ४.६

(ठ) र्>ढ् आढविय (आरब्ध) ३.९

(ड) श्>ह दहलक्खण ११-१३; दहविह ११.२

(ढ) श्>स (सर्वत्र) वसमए ८.५; सरीर ८.७

§ २७. अघोष महाप्राण वर्णों ख् घ् थ् ध् फ् भ् के स्थानपर शुद्ध महाप्राण ह् का आदेश :—

(क) ख्>ह् : अहिमुह ७.१०; आहंडल; २.४; सिहंडि ५.८; सिहि (शिखिन्) ९.९

(ख) घ्>ह् विहडंत १०.१८

(ग) थ्>ह् अहव १०.२३; आरिसकहा ८.१; जहा, तहा आदि

(घ) ध्>ह् अहरत्त ११.६; अहरुल्ल २.१४; अहिउ ९.१०

(च) फ्>ह् अहल ८.१४

(छ) भ्>ह् अबिहत्त २.५; अहिणंदिउ ४.४; अहिमुह; अहिराम १०.१; अहिसारिआ ८.५

§ २८. मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनोंके विषयमें असवर्ण संयोगके स्थानपर सवर्णसंयोगके द्वारा समीकरण-की विधि सर्वप्रधान है। इस समीकरणमें सदैव प्रबलतर ध्वनि दुर्बल ध्वनिको अपनेमें समीकृत कर लेती है, चाहे वह संयुक्त व्यंजनमें पूर्व हो या पीछे। जब पीछे आनेवाला व्यंजन अपनेसे पूर्ववर्ती व्यंजनको समीकृत कर लेता तो उसे पुरोगामी समीकरण कहते हैं :—

(क) पुरोगामी समीकरण—आरुट्ठ ७.६; उक्कंठिय ७.१२; उक्कत्तिय ५.८; उक्खय ५.११ उग्गंठिय ९.१८; कम्म; जम्म; धम्म आदि।

(ख) पश्चगामी समीकरण जब पुरोगामी व्यंजन अपने पश्चवर्ती व्यंजनको अपने रूपमें समीकृत करता है, जैसे, अज्ज, अग्गि, आमुक्क, कत्थ, जोग्ग आदि।

(ग) जब ऊष्मोंका समीकरण होता है तो वे दूसरे व्यंजनको सप्राण कर देते हैं : जैसे—अत्थइरि ६.१०; अत्थाण ५.१; कुच्छिय २.२; खंध ६.११; थंभ ५.१२; पासत्थ २-५ आदि।

(घ) स्वरभक्तिसे विसंयोजन : आयरिय २.८; आरिसकहा (आर्षकथा) ८.२ उब्भरिय ३.७; किलेस १०.२२; दरिसिय ३.१२

(च) संयुक्त व्यंजनका सरलीकरण करके अनुनासिकीकरण : कंचाइणि ७.६; पडिजंपइ ८.१६; जिणदंसण २.१८; विंभिय ३.१ आदि।

§ २९. कुछ विशिष्ट संयुक्तव्यंजनोंके परिवर्तनके उदाहरण

क्य्>ह् लोयाहाणउ ५.४

क्व्>क् कणिर ४.१५

क्ष्>क्ख उक्खित्त ९.१२; दहलक्खण ८.३; क्खालिय १.१३

क्ष्>ख् खयकर ३.७; खज्जोयय ७.२; खंतब्भु ७.१२; खंति ११.८; खोणिमंडल ४.२१

क्ष्>छ् छुह १.८; छत्त ५.९

क्ष्>झ् झर ६.९

ग्ध्>ज्झ् डज्झमाण ४.१४

ज्ञ्>न् नाणावरण १०.२४

>ण् आणत्त ४.१६

>ण्ण् विण्णाण ८.४; अण्णाणुवएस ८.३

त्म्>प्प् अप्पणु १०.५; अप्पउ ९.११

त्य्>च् कंचाइणि ७.६; कंचायणि १०.२५

>च्च् सच्चावाणी ६.१

त्स्>च्छ् उच्छव ४.८; उच्छाह ७.१२; उच्छेह ३.१

द्य्>ज्ज् उज्जाण ३.१२; उज्जोइय १.१५; विज्जुमालि २.३

ध्य्,ध्व्>ज्झ् उज्झाउ १०.५; बुज्झइ ८.९; अज्झाण (अध्वान) २.८

श्च्>च् श्चिकुर>चिकुर>चिहुर ४.१३

ष्ट्>ट्ठ् अहरोट्ठ ९.१८; आरुट्ठ ७.६; दिट्ठ ६.१

ष्ट्>ढ् वेढिउ ६.१

ष्ट्र>ढ् असिदाढ ६.१

>ट् उंट

ष्ठ्>ट्ठ् अहिट्ठिउ ४.१३

ष्ण्>ट्ठ, °ह् विट्ठु २.६; उण्ह १०.१५
स्क्>ख् खंघ ६.११
स्ख्>ख खलइ
स्त्>ख् खंभ ४.१३
>थ् थंभ ५.१२
>त्थ् कत्थूरिय ८.१४; विशेष : स्रस्त>ल्हसिय ४.१९
स्थ्>थ् थाम ४.११; थवइ ४.२; थाण ७.१०; थिउ ५.१४; थोत्त १.२९, थोर ८.११
>ठ् ठविय ४.१४; ठाण ५.१०; ठाय (स्थान) ५.४
स्फ्>फ् फाडिय ७.१; फलिहवण्णु १.१७; फार ४.५
स्म्>म्, स्, म्ह् विंभिय २.१३; विंभउ ३.६; सरिवि ६.९; अम्हइं ५.१३
ह्>घ् संघरेवि ६.१
ह्व>ह विहलंघल ८.११; विहडप्फड ३.८

कारक रूप

संज्ञाएं : अकारांत पुल्लिंग व नपुं० लिंग :

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा :	अंतेउरु; आउसु, कुंजरो, चोरु, जणो, जिणो, तउ, तित्थंकर, तेयं, दिउ, देउ, देवदत्तु, नरु, निउणु, परम गुरु, बालो, मऊरो, मुहं, रज्जु राउ, रिसहो, वड्ढमाणु, वरइत्तु, वीरु, वेसरो, सुयणु, सेणिउ, सूरो	गामार, गोवाल, जणु, नायरा, बाला, °पहरणा, रिउणो, विरला, सवा (शवाः)
द्वितीया :	देवसहुँ, फलुरयणसिहुँ, (शेष प्रथमानुसार)	उज्जाणइँ, गयउलाइँ, जणाइँ, तलायइँ, तीरइँ, देसइँ, वणइँ (प्र० द्वि० दोनोंमें)
तृतीया :	कुमरेँ, जणेण, जिणेसरे, ताएँ, देवेँ, धम्मेँ, नाहेँ, पाविणं, पियरेँ, माविणं, राइणा, राएं, राएण, सुत्तेण, सेणिएण, हीरेण	

इकारांत-उकारांत पु० व नपुं० लिंग :

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा :	कइ, नरवइ, नराहिवइ, परिमिट्ठि	अयाणा, कइंदा, गुणिणा
द्वितीया :	मेरु, रवि, रिसि, सामी	वइरिणो, अहारहिँ, उरुयहिँ, कुडुंबिएहिँ, जूयारहिँ, तेहिँ, दिक्खिएहिँ, धण्णहिँ, नारइयहिँ, पहियहिँ, भावहिँ भिल्लेहिँ, मुहेहिँ, सत्थहिँ
तृतीया :	मुणिणा, सट्ठिणा, हत्थिणा	सेवयहिँ । कहहिँ, पाइहिँ
पंचमी :	कुगइपहे, घराउ, ठायहो तत्थहो, तहिँ, नियडउ, नयरहो, मुहहो, वामहा	
चतुर्थी एवं षष्ठी :	अज्जेणए, कज्जे, कज्जहो, केवलिहि, जणेरहु, तेल्लिमहो; दइयहो, देवत्तहो, देसहो, निवहो, पएसहो, रज्जहो, राउलउ, रायहो, वीरहो, सामिहि, हत्थिहे, नरस्स, पुरिसस्स, पुरुसोत्तमस्स, वीरस्स, समुद्दस्स	कामुयाण, खयराण, चंदसूराण, भव्वाण, मुणिदाण, रायाण, तियसहु, मिहुणहँ, कंठहँ (षष्ठ्यर्थे सप्तमी)

इका-उका	: नरवइणो, पहुणो, विहिणा	
सप्तमी	: अहरए, खग्गंके, गोट्ठंगणे, तरुवरे पच्चूसे, मग्गे, रयणि, रज्जे रमणीये, रवण्णइ, सलोणए, सिहरि सुयणे, सोत्ते, हत्थि (हस्ते), हियवइ घरम्मि, वारम्मि, नाणम्मि, फडक्कम्मि	घरहिं, दक्खहिं, नयणेहिं नारइयहिं, पाडलियहिं भूभंगहिं, °भोयणहिं लोयणहिं, विमाणहिं घरेसुं, वणेसुं
संबोधन	: केवलनाणधरु, ताय, तित्थंकरु, देउ, देव, परमेसर, पुत्त, पुरंदर, भवएव, राय	
निर्विभक्तिक	: सेणिउ (षष्ठ्यार्थे), पडिहारय (तृतीयार्थे)	

स्त्रीलिंग : आकारांत, ईकारांत

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	: अच्छर, कुमारी, खोणी,	अज्जियाउ, कवोला, कामिणिउ
द्वितीया	: तिय, पियारी, पुहवि, वसुमइ संतुव, सिवएवि	कुमारियाउ, गोरिउ, ताउ, देविउ, वाविउ, साहउ, सणाहउ, सुरमणिउ, बालियाहं, राणियणु
तृतीया	: अहिलासें, उत्तालियाए, ओसहीए कुट्टणियइ, °जोईए, ताए, दितिए दिट्ठिए, पढाए, भत्तिए, मित्तिए मुद्धियए, °रिद्धिए, लच्छीए, वाणिए संकए, सुहाए.	अंतेउरिहिं, अच्छिहिं गोविहिं, तरुणिहिं, दिट्ठिहिं नियंबणीहिं, पायारहिं बाहहिं, वेल्लिहिं
पंचमी	:	
चतुर्थी एवं षष्ठी	: अंबादेवयहिं, कंतहे, कोइलाए, घणियहे, पुट्ठिहे, महिलहे, मुद्धहे, वणमालहे, विहूइहे, सरिहे, सुद्धिहे	घरिणिहुं, पउसियवइयहं, रमणिहुं, वणोच्चत्य-णीणं, °लोयणीणं, दूरपियाण
सप्तमी	: आउसि, कण्णए, सेण्णि, निसहि	करिणिहे, जडमइयहिं, तियहिं, पालंबहिं, भुएहिं, मंदुरहिं, कोलासु.
संबोधन	: कंत, मुद्धडिए, मुद्धि, मुद्ध, सुंदरि.	

सर्वनाम : पुल्लिंग-नपुंसकलिंग :

	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा	: हउं, तुमं, तुहुं, सो, जं, तं, इहु एहु, काइं, किं	तृ० पु० जे
द्वितीया	: मइं, तउ, तुमं, तं	जाइं ताइं
तृतीया	: मइं, मइ, पइं, तेण, आएं, एण, जेण	अम्हारिसिहिं, इयरहिं
चतुर्थी एवं षष्ठी	: मज्झु, मम, महु, महु तणउ, मे, मोर तउ, तव, तुह, तुहार, तोर तस्स, तहो, तासु, आयहो, इमस्स, एयहो, कस्स, कहो, कहो, कासु, जस्स, जसु, जासु, तस्स, तहो, तासु	अम्हहं, तुम्ह तुम्हहं, तहु (तेषां) ताणं, जाण, जाणं
संबोधन	: तुमं	

स्त्रीलिंग :

प्र०	एह, क (का), जा (या)	
द्वि०	कं (काम्)	
तृ०		तेहिं (ता भिः)
च० ष० :	तहे, तहे, ताहे, तिहे, कहे, काहि, जाहे	तहुं (तासाम्), एयाण

सर्वनाम, विशेषण और अव्यय :

[१] (अ) परिमाण वाचक विशेषण : एत्तिउ, केत्तिउ, जेत्तउ, तेत्तउ एतडउ, तेत्तडउ, एवडा।
(ब) गुणवाचक विशेषण : एहउ, जेहउ, तेहउ, अम्हारिस, ऐरिस, केरिस, केरिसी (स्त्री०) जारिस, तुम्हारिस।

[२] अव्यय : (क) स्थल वाचक : एत्थु, केत्थ, जित्थु, जेत्थ, तत्थ, तित्थु, तेत्थु, केत्थुहा, जेत्तह, तेत्थहा; इह, कहिं, जहिं, तहिं, कउ (कुतः) तउ (ततः); अण्णेत्तहे, एत्तहिं, एत्तहे, जेत्तहे।
(ख) समय वाचक जा, ता, जाम, ताम, जाव, ताव, एमहि, एवहिं, जामहिं, तामहिं, तावहि, जइयहु, तइयहु, तइया।
(ग) रीतिवाचक अह, किह, जह, जिहा, जिह, तह, तहा, तिह, जिम, जेम, तेम
(घ) अस्मद् और युष्मद्के षष्ठी रूपोंमें 'आर' प्रत्यय युक्त अव्यय : अम्हारउ, तुम्हारउ, महारउ
(च) संज्ञा और सर्वनामोंके षष्ठी रूपोंके साथ 'केरउ' और 'तणउ' प्रत्यय लगाकर भी अव्यय बनते हैं : अम्हकेरउ, करवालकेरउ, महुतणउ।
(छ) संबंधवाचक अव्यय : सहुं (सार्द्धम्)।

संख्यावाचक शब्द :

एक्क, एक्कु, दो, बे, विण्णि, तिउ, तिण्णि, चयारि, पंच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, दह, एयारस, एयारह, बारह, तेरह, चउदह, चउदस, पण्णारह, सोलह, सत्तारह, अट्ठारह, बीस, बावीस, पंचवीस, तीस, तेतीस, चउसट्ठि, सय, सहस, लक्ख।

संख्यावाचक विशेषण : पढमु, पहिलउ, पहिलारउ, बीयउ, तइयउ, चउत्थु, चउत्थउ, पंचमु, छट्ठम, सत्तम, अट्ठम, नवम, दसम, एयारसम।

तृतीया बहुवचन—तिहिं।

सप्तमी एकवचन—एक्कहिं, तइयइ, चउथइ, पंचमे, छट्ठमि, सत्तमे, अट्ठमि, नवमइ, दसमइ, एयारसमइ, एयारहमे, बारहमए।

सप्तमी बहुवचन—तिहिं, पंचहिं। अन्य रूप-चउक्क, चउक्कउ (चतुष्क)।

तद्धित प्रत्यय :

अल्ल : एक्कल्ल, नवल्ल (स्वा० प्र०)। आर : गरुयार (स्वा० प्र०) लहुवार। आल : सोहालिया (नामसे विशेषण)। आवण : भयावण, सुहावण, सुहाविणि (विशेषण)। इक्क : तिडिक्किय, पाइक्क (स्वा० प्र०)। इण : बज्जेणअ। इर : उव्वेविर, कंबिर, कणिर, कोक्किर, नमिर, विच्छड्डिर, विवरेर (क्रियासे विशेषण)। इल्ल : जइल्ल, रसिल्ल, (नामसे विशे०)। उल्ल : बहुल्ल, फलिहुल्ल, भुवणुल्लउ, रमणुल्लउ। एर : अणेर। डिय : बारहडिय (स्वा० प्र०)। त्तण : नरत्तण, वुड्डत्तण (भाववाचक संज्ञा) ल : अंधलउ, अमल, विज्जुल (स्वा० प्र०)

क्रिया रूप

अपभ्रंशमें वर्तमान, भूत और भविष्य, कुल ये तीन 'लकार' हैं। इनमें भी वास्तवमें कुल दो, वर्तमान और भविष्यके ही रूप उपलब्ध होते हैं। भूतकाल वाचक बहुत थोड़े गिने-चुने शब्द उपलब्ध हैं। शेष भूतकालका सारा कार्य कृदंतोंसे लिया जाता है और केवल वर्तमान तथा भविष्यके ही अधिक रूप अपभ्रंश काव्योंमें उपलब्ध होते हैं। आत्मनेपद और परस्मैपदका भेद भी अपभ्रंशमें नहीं है और वृत्तियोंमें प्रमुख रूपसे विध्यर्थ और कुछ थोड़े-से आज्ञार्थकरूप प्राप्त होते हैं। इच्छार्थक और आज्ञार्थकके रूप समान ही हैं। इनके अतिरिक्त कर्मणि-प्रयोगके अनेक रूप उपलब्ध होते हैं। इन तत्त्वोंसे ही अपभ्रंशका क्रिया संबंधी संघटन-संविधान और प्रयोगोंका प्रामाणिक विवरण उपलब्ध हो जाता है।

वर्तमान काल

	एकवचन	बहुवचन
प्र० पु० :	अणुसरमि, उक्कीरमि, जामि, भणमि, भुंजमि, लेमि, होमि।	
द्वि० पु० :	जाणसि, मुणहि, होसि।	
तृ० पु० :	अणुणइ, अब्भिट्टइ, आउच्छइ, ईहइ, उप्पज्जइ, करइ, कुणइ, गच्छइ, जाइ, पढइ, सि (अस्ति), होइ	उप्पज्जंति, फंदहिँ, कीलहिँ, गुडंति जुप्पंति, दीसंति रणरणहिँ, रमंति

भूतकाल

आसि (आसीत्)

तृ० पु० : अच्छोडिउ, अब्भसियउ पइट्ठु आय—आगता (स्त्री०) गय—गता (स्त्री०)

भविष्यत् काल

प्र० पु० : जाएसमि, लेसमि

द्वि० पु० :

तृ० पु० : उप्पज्जेसइ, करेसइ, जाएसइ, पडिहहि, भमेसइ, लेसइ, विज्झाएसइ, होसइ।

बहुवचन : होएसहिँ, होसंति।

आज्ञार्थ

द्वि० पु० : करउ, करहु, करि, करु, कहु, जाणाहि, जाहि, भणु।

विध्यर्थ

उ० पु०

द्वि०पु० : करिज्जहि, दिक्खंकहि, दिज्जहि, देहि, देहु, पव्वज्जहि, पेक्खु, पेक्खहु, भणहि, भक्खिज्जउ।

बहुवचन : करहु

तृ० पु० : किज्जउ, जयउ, दिज्जउ विजयंतु, होउ।

कर्मणि प्रयोग

अक्खिज्जइ, आयण्णियइ, कवलिज्जइ, कहिज्जइ, किज्जइ, किज्जए, जणिज्जइ, जाणिज्जइ, जाणियइ, दलिज्जइ, दिज्जइ, धरिज्जइ, पाविज्जइ, भणिज्जइ, माविज्जइ, विण्णप्पइ, वुच्चइ, सुमरिज्जइ।

कृदंत

वर्तमानकृदंत—अत्थंत, अप्पंत, अहिलसंत, अमुणंती (स्त्री०), आसीण, आलोइयंत, उच्छलंत, जाणंत, जूरंत नासंत, पहसंत, पंडुरिज्जंत, लग्गंत, विहसंत, झायमाण, धावमाण, पढमाण, सोहमाण।

भूतकृदंत—आलिंगिउ, किउ, कियउ, गय, गयउ, जायउ, बक्कउ, थिउ, दिट्ठउ, दिण्णं, दिक्खंकिउ, मुयउ, वणियउ।

विध्यर्थ कृदंत—अच्छेवउ, अणुचेट्ठेवउ, करिव्वउ, जाएव्वउ, होएव्वउ, संचेवाइं, वंचेवाइं।
हेत्वर्थ कृदन्त—अणुसासिउं, अहिणेउं, गंतुं, गंतूण (गतमर्थे) जिणेवए, पवोत्तुं।
संबंधक या पूर्व कृदंत—अंचवि, अडोहिय, अणुमण्णिवि, संरेवि, अप्पिवि, आयणवि, आयण्णिवि; उप्पाइवि, करवि, करिवि, संचवि, गंपि, जणवि, तरवि, नमंसेवि, पइसरेवि पइसिवि, पेक्खवि, पेक्खिवि; वइसरेवि, वंचिवि भणवि, मेल्लवि, मेल्लिवि, मेल्लेवि
ऊण: तज्जिऊण, मुत्तूण; प्पिणु : आउच्छेप्पिणु करेप्पिणु, जाएप्पिणु, देप्पिणु, पणवेप्पिणु मरेप्पिणु, हरेप्पिणु, होएप्पिणु; विणु: उट्ठेविणु, देविणु, लएविणु।

धातुएं

प्रे० धातु—कारियं, नच्चावइ, नच्चाविय (विशे०) बुज्झाविउ (विशे०) पइसारइ, पाविज्जइ।
पौन:पुन्यदर्शक धा०:—पेक्खु-पेक्खु, बल-बल, बलु-बलु।
नामधातु : फुक्कारइ, सहावइ, हक्कारइ।
ध्वनिधातु[1]—करयरइ, कसमसइ, फुलफुलइ, गडयडइ, गुमगुमइ, थवथवइ, छमछमइ, रणरणहि, डमडमिय, तडतडिय, घुमघुमिय, ससलिय

उपर्युक्त प्रकारसे प्रस्तुत काव्यमें प्रयुक्त स्वरों, व्यजंनों, उनके परिवर्तनों, विकारों, 'य' 'व' श्रुति आदि नियमों, कारक व क्रिया रूपों, तथा तद्धित और कृदंत प्रत्ययों आदिका विश्लेषण 'जंबूसामिचरिउ' की भाषा और व्याकरणका स्वरूप स्पष्ट कर देता है।

९. वीर तथा अन्य कवि

(क) 'जंबूसामिचरिउ' पर पूर्वकालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवि तथा साहित्यकारोंका प्रभाव : अश्वघोष, कालिदास, प्रवरसेन, बाण, भवभूति, स्वयंभू(७००ई०), सोमदेव, पुष्पदंत, और गुणपाल।

(ख) 'जंबूसामिचरिउ' का पश्चात्कालीन संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश कवियोंपर प्रभाव : नयनंदि, रइधू, ब्रह्म जिनदास और राजमल्ल।

प्राय: उच्चकोटिका प्रत्येक कवि-साहित्यकार अपने पूर्ववर्त्ती महाकवि एवं साहित्यकारोंसे अपनी रचनामें अनेक प्रभावोंको ग्रहण करता है। ये प्रभाव काव्यके शरीर जैसे शब्द-संचय, पद-संघटन और अलंकार योजना आदिपर भी कार्य करते हैं; और काव्यकी आत्मा, जो उसकी शैली गुण, रस, भाव, कथावस्तु एवं काव्यात्मक कल्पनाएं हैं, उनपर भी। और इस प्रकारसे धीरे-धीरे काव्यके शरीर और उसकी आत्माका अलंकरण-उद्योतन करनेके हेतु जिन तत्त्वोंका बार-बार अनेक महाकवियों-द्वारा प्रयोग किया जाता है, वे ही तत्त्व काव्य-साहित्य-भवनके मूल आधार स्तंभ बन जाते हैं। उन्हींको हम 'साहित्य-शास्त्रके सिद्धांत' रूपसे स्वीकार करने लगते हैं। हिंदीके रीतिकालीन साहित्य तक प्राचीन एवं मध्यकालीन संपूर्ण भारतीय साहित्य इन्हीं सिद्धांतोंकी भित्तिपर खड़ा हुआ है। 'जंबूसामिचरिउ'का रचयिता कवि वीर सब अर्थोंमें रीतिबद्ध कवि है। अतः उसने अपनी रचनामें रीति अर्थात् साहित्यशास्त्रके सिद्धांतों विषयक उन सभी आदर्शोंका ग्रहण और पालन किया है जो उसके पूर्वकालीन महाकवियोंने स्थापित और पोषित किये थे। इसीलिए वीर कविकी रचनामें जहां सभी प्रमुख रसों, भावों, माधुर्यादि गुणों, वैदर्भी आदि रीतियों एवं उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति आदि अलंकारोंके सुंदरसे सुंदर प्रयोग व उदाहरण उपलब्ध होते हैं, वहीं ऐसी अनेक काव्य कल्पनाएं, भावनाएं एवं वर्णन भी मिलते हैं, जो प्रमुख प्राचीन साहित्यकारोंकी रचनाओंसे कहीं शब्दतः, कहीं अर्थतः और कहीं भावात्मक दृष्टिसे समानता रखते हैं।

---

1. ध्वन्यात्मक शब्दकोश।

'जंबूसामिचरिउ'पर प्राचीन साहित्यकारोंके इस प्रभावको तुलनात्मक संदर्भोंके साथ यहाँ प्रस्तुत किया गया है—

अश्वघोष (प्र० श० ई० पू०) और वीर

यह पहले कहा जा चुका है कि 'जंबूसामिचरिउ'की मुख्य कथावस्तुमें भवदत्त-भवदेवकी कथापर सौंदर नंदके भगवान् बुद्ध और नंदकी कथाका प्रभाव बहुत गहरा और स्पष्ट है। नंदको घर वापस न लौटने देनेके लिए बुद्धके द्वारा उसके हाथमें अपना रिक्त भिक्षा-पात्र देने और ठीक उसी प्रकार जंबूसामिचरिउमें 'भवदेवके विवाहके समय ही मुनि भवदत्तका उसके घर आना एवं भिक्षा ग्रहण करनेके उपरांत मुनिके आदर एवं लोकमर्यादाके रक्षार्थ भवदेवका अत्यंत अनिच्छापूर्वक, प्रतिक्षण घर लौट चलनेको सोचते-सोचते मुनि भवदत्तके पीछे चलना', इस प्रसंगसे लेकर एक ओर भवदेव तथा दूसरी ओर नंदको सच्चा बोध एवं वैराग्य प्राप्त होने तकके वृत्तांतोंका मिलान निम्न संदर्भोंके अनुसार किया जा सकता है :—

जंबूसामिचरिउ		सौंदरनंद
अग्रजके साथ आना	२.१२.४	५.२ पूर्वार्द्ध
	२.१२.५	५.११ पूर्वार्द्ध एवं ५.१९
	२.१२.१२	५.२०
भवदेवकी दीक्षा :	२.१४.१-३	५.१५,३४,५१ नंदकी दीक्षा
अंतर्द्वंद्व व पत्नीका ध्यान :	२.१३.५-६,९-११; २.१४.५-१२; २.१५.१-४ १०-१९;२.१६.१-९;२.१७.८-९	४.४२,४५,५.१९,५,५०; ७.१६,१७,४७, ५२; नंदका अंतर्द्वंद्व
भवदेवको नागवसूका उपदेश—	२.१८.४-१६	नंदको भिक्षुका उपदेश ८.२१,४७,४८,५२,५४; ९.६,२६,२९,४८

इन संदर्भों और संदर्भगत भावनाओं एवं वातावरणपर जितनी ही गहराईसे विचार किया जाय उतना ही यह विचार पुष्टतर होता चला जाता है कि भवदत्त-भवदेवका कथानक सारी जैन-परंपरामें और भवदेवका अंतर्द्वंद्व वीर कविने अवश्यमेव सौंदरनंद काव्यसे ही ग्रहण किया है।

कालिदास और वीर

वीरकी रचनामें आत्मनिवेदन, जंबूका जन्म, जंबूको देखकर पुरनारियोंकी काम-विह्वल अवस्था और विक्षोभ, सेनाके प्रयाणके समय धूलिका उड़ना और शांत होना तथा युद्ध-वर्णन इन-विषयोंपर कालिदासके रघुवंश एवं कुमारसंभव महाकाव्योंका प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उनके तुलनात्मक संदर्भ निम्न-प्रकार हैं :—

जंबूसामिचरिउ	कालिदास : रघुवंश तथा कु० स०
आत्मनिवेदन १.३.७-१०	वही : १.२-४ रघुवंश
भवदत्त-भवदेवका परस्पर स्नेह २.५.९	शिवपार्वती संयोग, रघुवंश १.१
जंबूका जन्म ४.८.१-२, १२ १४	रघुका जन्म, रघु० ३.१५; एवं कार्तिकेयका जन्म कु० स० ११.३७-३८
जंबूस्वामीके दर्शनसे पुरनारियोंकी विह्वलता ४.११.८-११	रघुदर्शन (रघु० ७.५-९; ७.१२) तथा कार्तिकेयके दर्शनसे नारियोंकी अवस्था, कु० स० ७.५७

सेना प्रयाण और धूलि उड़ना ५.७.१-५.६.५.४-८	रघुकी दिग्विजय यात्रामें युद्धके समय उड़ी धूलि। रघु० ७.३९.४१, ४२, ४३
वंसतवर्णन ४.१-५.१४	वही : कु० स० ३.३२
श्रेणिककी राजसभाका वर्णन ५.१.१६-१८	रघुके प्रभावका वर्णन रघु० ९.१३
श्रेणिक राजाका वर्णन १.११.१७-१८ गाथा ५	सुदर्शन राजाका वर्णन रघु० १८.४४
युद्धवर्णन ६.५ से ६.१०; ७.१; ७.६	वही : कु० स० १६.२; २९,३०,३२,३९,४९; १७.
माया युद्ध ६.१४.१-४, ७ ९.५-११। युद्धवर्णनमें कुमारसंभवके १६वें और १७वें सर्गों-की सर्वत्र छाया तथा उल्लिखित संदर्भोंमें बहुत अधिक साम्य है।	१६, १९, २२, १६.२६, ३५, ३७, ३९, ४१-४५

प्रवरसेन (लगभग ४५० ई०) और वीर

वीर कविने अपनी रचनामें जिन थोड़ी-सी कृतियोंके नामोल्लेख (जं० सा० च० १.३) किये हैं, उनमें प्रवरसेन कृत सेतुबंध भी एक है; और उसके रचियताको महाकवि कहकर वीरने प्रवरसेनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित किया है। प्रभावकी दृष्टिसे निम्न संदर्भ उल्लेख्य हैं :—

जंबूसामिचरिउ	सेतुबंध
३.१२.१-२ वसंत वर्णन	१.३५-३६ हनुमानागमन
५.७.१-५ सेनाके प्रयाणसे उड़ती हुई धूलिसे मध्याह्नमें ही सूर्यास्तका दृश्य	१३.३९, १३.६१ युद्धमें उड़ती हुई धूलिका दृश्य
७.१२ विद्याधर सैन्यके पराजयका दृश्य। इन उल्लिखित संदर्भोंके अतिरिक्त ६वीं और ७वीं संधियोंमें युद्ध-पुनर्युद्धके वर्णनपर सेतुबंधके १३वें आश्वासका प्रभाव परिलक्षित होता है।	१३.७५ राक्षस सैन्यके पराजयका दृश्य

बाण (७वीं शती ई०) और वीर

हर्षचरितकार महाकवि बाणका भी कुछ प्रभाव 'जंबूसामिचरिउ' की रचनामें दृष्टिगोचर होता है। निम्नलिखित प्रसंग विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं :—

जंबूसामिचरिउ	हर्षचरित
१.२.१४-१२ चोर कवि	१.६ चोर कवि
१.११.१५-१८ श्रेणिकका प्रताप वर्णन	उच्छ्वास ४, हिं० अनु० पृ० १५५, हर्षका प्रताप वर्णन
५.१३.१६-२१ क्रोध और क्रोधीकी निंदा	उच्छ्वास १, हिंदी अनु० पृ० ११-१२, दुर्वासाके क्रोध-की निंदा।

भवभूति (८वीं श० ई० पूर्वार्द्ध, लगभग ७००-७३३ ई०) और वीर

भवभूतिकृत उत्तररामचरितके पाँचवें अंकमें चंद्रकेतु और लवके युद्ध वर्णनका भी कुछ प्रभाव जंबूसामिचरिउपर दिखाई देता है। निम्न उद्धरण मिलाकर देखिए :—

जंबूसामिचरिउ	उत्तररामचरित
जंबू और रत्नशेखरकी वार्ता	चंद्रकेतु और लवकी वार्ता
जं अट्ठसहसपहरणकराहँ माराविय वरविज्जाहराहँ । हँबाइउ इय सुहडत्तणेण चारहडि न मण्णमि एत्तडेण । जइ अत्थि अंगि तउ जुज्झ गब्बु तो वच्छउ सेण्णु नियंतु सब्बु । तुज्झु वि मज्झु वि संगामु होउ अज्जु वि मा मरउ वराउ लोउ । ७.७.५-७	भो भो लव महाबाहो किमेभिस्तव सैनिकैः । एषोऽहमेहि मामेव तेजस्तेजसि शाम्यतु ॥ (५.७) तत्किं निजे परिजने कदनं करोषि नन्वेष दर्पनिकषस्तव चन्द्रकेतुः ॥ ५.९ अंतके दो चरण

इन उद्धरणोंमें परिस्थिति और वातावरण एवं पात्रोंके अनुसार जो परिवर्तन किये गये हैं वे सरलतासे समझे जा सकते हैं। जंबूसामिचरिउमें पक्षमें जंबू हैं, और विपक्षमें रत्नशेखर नामक दर्पिष्ठ व दुष्ट रत्नशेखर। उत्तररामचरितमें पक्षमें हैं चंद्रकेतु और विपक्षमें अबतक अज्ञात स्वयं रामपुत्र लव। अतः पात्रोंके स्वभाव, प्रकृति तथा परिस्थितिके अनुरूप वीर कविने अपनी रचनामें संबद्ध प्रसंगमें उचित परिवर्तन कर उसके भावको ग्रहण कर लिया है; और वह यह है कि 'सामान्य सैनिक हमारे-तुम्हारे बल परीक्षाकी वास्तविक कसोटी नहीं हैं। अतः वे बेचारे व्यर्थ क्यों मरें? केवल हमारा तुम्हारा युद्ध हो जाय। उसमें हम लोगोंकी वास्तविक शक्तिपरीक्षा हो सकेगी।' जंबूसामिचरिउ (७.९) में जंबू और विद्याधरके आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्र युद्धमें भी उ० रा० च० (६.६ के उपरांत गद्य) की कुछ छाया देखी जा सकती है।

स्वयंभू (लगभग ७०० ई०) और वीर

वीरने महाकवि स्वयंभूका उल्लेख (जं० सा० च० १.२; ५.१) अत्यंत आदरपूर्वक और अपभ्रंशके प्रथम श्रेष्ठ कविके रूपमें किया है। जंबूसामिचरिउपर उनके पउमचरिउका प्रभाव निम्न दो स्थलोंपर अत्यधिक स्पष्ट है। स्वयंभू कृत राजगृह वर्णनको वीर कविने पर्याप्त विस्तार करके मगध देशके वर्णनके रूपमें अपनी रचनामें समाविष्ट कर लिया है। मिलाने योग्य प्रसंग हैं :—

वीरका आत्मनिवेदन १.३.१-६	स्वयंभूका आत्मनिवेदन प० च० १.३, २३ १.२-५, ९-१०
वीरकृत मगधवर्णन १.६-७-८	स्वयंभू कृत राजगृह एवं मगध वर्णन (प०च०१:४-५)

इनके अतिरिक्त सैनिक वार्तो (ज० सा० च० ५.६; प० च० ६३·१) तथा अनेक देश नामोंमें भी साम्य है। प० च० (६५.१ और ६६.९) के युद्धवर्णनोंमें १, २ पंक्तियोंकी छाया भी वीरके युद्धवर्णनमें दिखलाई पड़ती है।

सोमदेवसूरि (वि० स० १०वीं शती) और वीर

सोमदेव कृत यशस्तिलकचम्पू (रचनाकाल वि० सं० १०१६) भारतीय साहित्यका एक अनमोल एवं अनुपम रत्न है। 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' यह उक्ति इस रचनामें उसी प्रकार चरितार्थ होती है, जिस प्रकार कि बाणकृत हर्षचरित और कादंबरीमें। अपभ्रंश महाकवि पुष्पदंत इनके लगभग समकालीन रहे हैं। पुष्पदंत कृत महापुराणकी रचना सोमदेव कृत यशस्तिलकचम्पूसे छह-सात वर्ष बादकी तथा जसहरचरिउ एवं णायकुमारचरिउ और भी पीछेकी रचनाएँ हैं। अतः प्रतीत होता है कि पुष्पदंतने अपने

'जसहरचरिउ' की संपूर्ण कथावस्तु यशस्तिलकसे ली है। हाँ, पुष्पदंतकी काव्यप्रतिभा अपनी अद्वितीय है, यह निर्विवाद तथ्य है। वीर कृत 'जंबूसामिचरिउ' की रचनामें यशस्तिलकका प्रभाव निम्न-संदर्भोंमें विशेष रूपसे दिखाई पड़ता है :—

जंबूसामिचरिउ	यशस्तिलकचंपू
चोरकवि १.२ १४.१५ कय अण्णवण्ण परियत्तणु वि····	वही : १.१३ कृत्वा कृतीः पूर्वकृताः पुरस्तात् प्रत्यक्षरं ताः पुनरीक्षमाणः। तथैव जल्पेदथ योऽन्यथा वा स काव्यचोरोऽस्ति स पातकी च।
कवि और काव्य : कव्वु जे कइविरयइ एक्कगुणु···· १.२.८	१.१६
वही : चिरकइकव्वामयमुहाण···· ७.१गाथा १	१.३३
वही : विजयंतु जए कइणो···· १.६.७-८	१.२५
१.५.१०-१५ एवं १.१८.२०-२१ संस्कृत पद्य	
आत्मनिवेदन : एक्कु जे पाहाणु हेमु जणइ···· १.२.९	१.२८
कवि और काव्य : तुम्हेहिँ वीर कव्वं····चिरकव्वतुलातुलियं ९.१ गाथा १-२	१.२९
वही : विहवेण रायनियडत्तणेण···· १०.१ गाथा १-२	१.३०
आत्मनिवेदन : करजोडिवि विउसहो अणुसरमि····। अवसद्दु नियवि मा मणि धरउ···। १.२.६-७	१.३१
वसंत वर्णन : मलयपवनके पक्षमें : कुंतलि कुंतकभरपत्तबलणु ४.१५.११	राजाके पक्षमें : कुन्तलकान्ताकचभङ्गनिरत १.२११

पुष्पदंत (११वीं शती विक्रम पूर्वार्द्ध) और वीर

अपभ्रंश महापुराण (रचनाकाल वि० सं० १०२२), जसहरचरिउ एवं णायकुमारचरिउके रचयिता महाकवि पुष्पदंत अपभ्रंशके मूर्द्धन्य कवि हैं। ये ही दूसरे व्यक्ति हैं, जिनका नाम स्वयंभूके पश्चात् द्वितीय-कवि (जं० सा० च० ५.१) के रूपमें वीर कविने अत्यंत आदरपूर्वक लिया है। और यह सच भी है कि अपभ्रंश साहित्यके इतिहासमें रचनाओंकी साहित्यिक उत्कृष्टताकी अपेक्षासे स्वयंभूके उपरांत स्वतः पुष्पदंतका नाम मुखपर आ जाता है। जंबूसामिचरिउकी रचनामें पुष्पदंतके महापुराण और णायकुमारचरिउका प्रभाव अत्यंत व्यापक और गहरा परिलक्षित होता है। देश-ग्राम अटवी एवं नारीका नख-शिख वर्णन, सुंदर नायकके दर्शनसे पुरनारियोंकी विह्वलता, युद्ध, नायकका गृहत्याग आदि सभी प्रकारके वर्णनोंपर पुष्पदंतके ऐसे वर्णनोंकी गंभीर छाप सर्वत्र झलकती है। उदाहरणार्थ निम्न संदर्भ प्रस्तुत हैं:—

जंबूसामिचरिउ	पुष्पदंत
१.६.१६–१.८.८ मगध देश वर्णन[1]	वही : णा० कु० च० १.६.४-११
५.९.१, ३-१० विंध्य देश वर्णन	जस० च० संधि १ यौधेयभूमि वर्णन

---

१. मगध देशका वर्णन स्वयंभू, पुष्पदंत और वीर तीनोंने लगभग एक समान, पर एकसे दूसरेने बढ़ते हुए क्रमसे किया है।

तथा ३.१.१८-१९ पुष्कलावती विषय वर्णन	'मंबररोमंबणचलिय'.......से लगाकर जहिं उच्छुवणाइँ रससंदिराइँ ... . जहिं अणघणकणपरिपुण्णगाम पुर-णयर-सुसीमाराम-साम'; तक तथा ज० च० मालव-ग्राम वर्णन : 'जहिं हालिणिरूवणिबद्धचक्खु'......से लगाकर चगउ दक्खालिवि वयणचंदु' तक
५.८.३१-३४ विंध्याटवी वर्णन	णा० कु० च० ८.३.८ विजय नगरके समीप नंदनवन
१.१२.१-५ श्रेणिककी रानियोंका सौंदर्य वर्णन तथा ४.१२.१५-१६ एवं ४.१३ कन्या सौंदर्य वर्णन	णा० कु० च० १.१७.८ से १२, १५-१६ कन्या-सौंदर्य वर्णन
४.१०.८ से ४.११.१३ जंबूके दर्शनसे पुरनारियोंकी विह्वलता	महापुराण ८.३.२-३ वसुदेवके दर्शनसे नारियोंका कामोन्माद एवं णा०कु०च० ५-८ नागकुमारके दर्शनसे काश्मीरकी नारियोंकी मदनोन्मत्तता
५-१.१९ राजदरबारका प्रतिहार	जस० च० वही तहिं अवसरि पडिहारें वरेण कणयमयदंडमंडियकरेण।
युद्धवर्णन :—	
५.१३.१-५ जंबूका दौत्य और रत्नशेखरको विलासवतीके लिए दुराग्रह एवं दुर्नीतिको छोड़नेके लिए प्रेरणा तथा उसकी भर्त्संना	णा० कु० च० ७-१३-५-६ नागकुमार-द्वारा अलंघ-नगरके राजाकी भर्त्सना भणियं कुमारेण कयतियसतोसेण पाविट्ठ खद्धो सि एएण दोसेण। परघरणि परतरुणि परदविण कंखाए मरिहिसि दुव्वार-खलचोरसिक्खाए।
६-९. ३-९; ७-५. १-१४, ७-६ युद्ध	णा० कु० च० ७.७ गिरिनगरमें युद्ध भडमुहमुक्क................................. मोडियछत्तदंडधयसंडइ .... मुंडखंडखाविय चामुंडइँ........................
६.८.५-७; ६.१०.१—४; ७.१. १०-२२ युद्ध भूमिका दृश्य	णा० कु० च० ४.१०; ४.१५.१-८ युद्ध एवं युद्ध-भूमिका दृश्य
७.१० जंबू-रत्नशेखर युद्ध	णा० कु० ५.४ नागकुमार-दुर्वचन युद्ध
८. ४. ५-८ सत्पुत्रलक्षण	,, ७.१५.७-१० नागकुमारके जन्मकी सार्थकता
९. १४.६-७ पुत्रके वैराग्य लेनेकी संभावनासे माँकी विकलता[1]	म० पु० ८३.७ वसुदेवके गृहत्यागसे भाभी शिवदेवी-की विकलता
तावेत्तहिं जंबूकुमारजणणि	सिवएवि जेम दुहवियलपाण...............

1. इस प्रसंगको वीरने परिवर्तित रूपमें लिया है। महापुराण (८१.१) में जहाँ नेमिके गृह-त्यागपर माता शिवदेवीके दुःखसे विकल होनेका प्रसंग आता था, उसे पुष्पदंतने पूर्णरूपसे टाल दिया है। बल्कि म० पु० ८३.७ में अपने देवर वसुदेवके गृहत्यागपर शिवदेवीकी शोकविह्वलताका मार्मिक वर्णन किया है। वहींसे संकेत ग्रहण कर वीर कविने उसे वहाँसे उठाकर नेमिनाथके गृहत्यागके साथ संबद्ध कर दिया है, जो इस प्रसंगमें अधिक उचित भी है।

गुणपाल (वि० की ११वीं शती या उससे पूर्व) और वीर

'जंबूसामिचरिउ' की कथाकी पूर्वकालीन दीर्घ-परंपरा और कथास्रोतोंके अध्ययन (प्रस्ता०—३ पृ० ३५–३७) में यह कहा जा चुका है कि मूल कथावस्तुके गठन एवं अंतर्कथाओंके चयन इन दोनों ही तत्त्वोंमें वीर कविकी प्रस्तुत रचनापर गुणपाल कृत प्राकृत 'जंबूचरियं'का अत्यधिक प्रभाव है, और यही 'जंबूसामिचरिउ'का आदर्श आधार ग्रंथ है। इसी प्रकार काव्य-रचनामें भी अनेक स्थलोंपर जं० सा० च० पर 'जंबूचरियं'का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। मूर्ख हाली (अंतर्कथा क्र० १); कामातुर वानर (कथा क्र० ४) तृषित वणिक् पुत्र (कथा क्र० १०; जंबूचरियं में इंगालदाहक) एवं व्यभिचारिणी वणिक् वधू (कथा क्र० ११; जंबूचरियंमें व्यभिचारिणी रानी, कथा क्र० १६) के आख्यानोंको काव्यात्मक रचनामें भी वीर कविने गुणपालसे बहुत अधिक प्रभाव ग्रहण किया है। इनके अतिरिक्त इन रचनाओंके निम्न संदर्भ तुलनीय हैं :—

जंबूसामिचरिउ	जंबूचरियं
सज्जन स्तुति १.२.३.	वही : १.१८
कविका आत्म-निवेदन, रचनाकी पूर्वपरंपरा : महाकवि-रचित ग्रंथ	वही : १.४१
संध्यावर्णन ८.१४.१३-१५; २१; एवं १०.२५.१०-११ आदि।	वही : ७.११-१२

वीर और नयनंदि

जं० सा० च० की प्रस्ता०—२, पृ० १३ पर यह लिखा गया है कि "वीर कविका समय वि० सं० ११०० से पूर्व होनेका एक अति प्रबल एवं अकाट्य प्रमाण यह है कि वि० सं० ११०० होनेवाले मुनि नयनंदिके 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ'का अत्यंत गंभीर और प्रचुर प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।" वहाँ इस कथनकी परीक्षाका स्थान न होनेसे इसकी पुष्टि नहीं की जा सकती थी। यहाँ नयनंदिकी रचना-पर 'जंबूसामिचरिउ' के प्रभावकी जाँच विस्तारसे की जा सकती है।

मुनि नयनंदिने अपने 'सुदंसणचरिउ' की रचना, भोजराजके समयमें, वि० सं० ११०० व्यतीत होनेपर धारा नगरीमें रहकर पूर्ण की थी। 'सुदंसणचरिउ' पर 'जंबूसामिचरिउ'के प्रभावकी जाँच करने हेतु सु० च० की कथावस्तुकी संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है। वह इस प्रकार है:—

भ० महावीरकी स्तुति और विनय प्रदर्शनके उपरांत मुनि नयनंदि कथा प्रारंभ करते हैं। मगध-देशके राजगृह नामक नगरमें राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी महादेवीका नाम चेलना था। एक दिन एक पुरुषने दरबारमें आकर विपुलाचल पर्वतपर भ० महावीरके समोशरण सहित शुभागमनकी सूचना दी। राजाने सेना व प्रजासहित भगवान्‌की वंदनाके निमित्त प्रस्थान किया। उन्हें विपुलाचलके दर्शन हुए और वे सब भ० महावीरके समोशरणमें पहुँचे। भगवान्‌की स्तुति-वंदनाके पश्चात् राजा श्रेणिकने गौतम गणधरसे पंचनमस्कार मंत्रके प्रभावके संबंधमें प्रश्न किया। इस प्रश्नके उत्तरमें गौतमने निम्न-लिखित कथा कहनी प्रारंभ की :—

अंगदेशकी चंपानगरीमें धाईवाहण नामका राजा था। उसकी महादेवीका नाम अभया था। इसी नगरमें ऋषभदास नामक सेठ अपनी अर्हद्दासी नामक सेठानीके साथ सुखपूर्वक रहता था। उनके घर सुभग नामक एक सरल हृदय ग्वाल युवक रहता था। एक दिन सुभग गोपने वनमें एक महान् मुनिराजसे पैंतीस अक्षरोंवाला पंच नमस्कार मंत्र सुन लिया और मुनिराजकी तेजस्वितासे प्रभावित होकर हर समय सोते, उठते, बैठते, चलते, जाते, रोते, हँसते दिन-रात उसीका पाठ करने लगा। ऋषभदास सेठने गोपके मुखसे मंत्र सुनकर उसका बड़ा माहात्म्य बतलाया, और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उस मंत्रका पाठ करनेको कहा। एक दिन गंगामें जलक्रीड़ा करते समय सुभग गोप एक हृदय विदारक खूँटमें फँसगया। वह भक्तिपूर्वक णमोकार मंत्रका पाठ करते हुए यह निदान (इच्छा) करके मृत्युको प्राप्त हुआ 'यदि इस मंत्रका कोई

प्रभाव हो तो मरकर मैं पुनः इसी वणिक् कुलमें जन्म लूं।' उसका यह निदान सफल हुआ। उसी रातको सेठानी अर्हद्दासी (जिनदासी) ने 'एक विशाल-पर्वत, नया-कल्पवृक्ष, इंद्रका घर, विशाल समुद्र और आज्वल्यमान अग्नि', ये पाँच स्वप्न देखे। प्रातःकाल मंदिर जाकर मुनिराजसे स्वप्न-फल पूछनेपर उन्होंने कामदेवके समान सुंदर, यशस्वी और मोक्षगामी (चरम शरीरी) पुत्र होना बतलाया। उचित समयपर शुभ मुहूर्तमें पुत्रजन्म हुआ और उसका बड़ा उत्सव मनाया गया। उसका नाम सुदर्शन रखा गया। बाल-क्रीड़ाएँ करता हुआ वह दिन-प्रतिदिन बड़ा होने लगा। समय आनेपर उसे विद्याध्ययनके लिए भेजा गया। उसने नाना विद्याओंमें दक्षता प्राप्त कर ली। उसका शरीर अनेक शुभलक्षणोंसे मंडित था। युवा होनेपर नगरकी कामिनियाँ उसके दर्शन मात्रसे कामरागसे उत्तेजित, विह्वल और विक्षुब्ध होने लगीं। सुदर्शनकी कपिल नामका ब्राह्मणसे मित्रता हो गयी। एक दिन सुदर्शनने सागरदत्त सेठ और सागरसेना सेठानीकी पुत्री मनोरमाको देखा। वह उसपर अत्यंत आसक्त हो गया। मनोरमा भी उसे देखते ही उसपर मुग्ध हो गयी। दोनों एक-दूसरेके विरहमें व्याकुल रहने लगे। सारिद्यूत खेलते समय की हुई प्रतिज्ञानुसार उनके पिताओंने दोनोंका विवाह-संबंध निश्चित कर दिया। दोनों घरोंमें विवाहकी तैयारियाँ होने लगीं। विवाह हुआ, और मध्याह्न कालमें वैवाहिक भोज। उसके उपरांत मुख-शुद्धि आदि। इतनेमें संध्या हो गयी। वर-वधू घर आये। रात्रि हो गयी। वर-वधू दोनोंने यथेच्छ रति-क्रीड़ा की। समय व्यतीत होनेपर उन्हें एक सुंदर पुत्र उत्पन्न हुआ। सुदर्शनके पिता ऋषभ-दासको समाधिगुप्त मुनिके दर्शन कर, उनके धर्मोपदेशसे वैराग्य हो गया। उन्होंने अपने पुत्र सुदर्शनको लोक-व्यवहारकी उचित शिक्षा दी और अपना दीक्षा लेनेका निश्चय प्रकट किया। सुदर्शनने भी दीक्षा लेनेकी इच्छा व्यक्त की। 'सत्पुत्र ही कुलका रक्षक होता है'''''आदि रूपसे सुदर्शनको समझाकर, उसे गृहस्थीका भार सौंपकर सेठ ऋषभदासने दीक्षा ले ली। सुदर्शन सुखपूर्वक रहने लगे।

सुदर्शनके मित्र कपिल ब्राह्मणकी स्त्री कपिला उसके रूप-गुणोंकी ख्याति सुनकर उसपर मुग्ध हो गयी। एक दिन कपिलकी अनुपस्थितिमें चतुराईसे उसने सेठ सुदर्शनको अपने घर बुलवाया और उससे अपनी कामेच्छा प्रकट की। 'मैं नपुंसक हूँ' ऐसा कहकर सेठ सुदर्शन वहाँसे बच निकला।

इधर वसंत ऋतुका आगमन हुआ। वनपालने राजाको इसकी सूचना दी। राजाने उद्यान-क्रीडार्थ नगर-निर्गमनकी तैयारी की। नाना वाद्योंका मधुर वादन किया गया। राजा-प्रजा सभी उद्यान-क्रीड़ाके लिए गये। सुदर्शनकी पत्नी मनोरमा भी उद्यान-क्रीड़ाके लिए आयी। अभया रानीने उसके सौंदर्य, सौभाग्य एवं पुत्रवती होनेकी अपनी सखी कपिलाके समक्ष बहुत सराहना की। कपिलाने कहा, 'इसका पति तो षंढ है, ऐसा मैंने किसीसे सुना है। फिर इसे पुत्र कहाँसे हुआ।' कपिलाके यह कहनेसे उसका रहस्य खुल गया। उसने रानीके समक्ष स्वीकारोक्ति की। इसपर रानीने उसकी बुद्धिका बड़ा उपहास किया, और कपिलाके व्यंग्य करनेपर यह दुष्प्रतिज्ञा की 'या तो मैं सेठ सुदर्शनसे रमण करूँगी, या फाँसीमें लटककर प्राण दे दूँगी'। प्रेमियोंने खूब उपवन क्रीड़ा की। परस्पर छलोक्तियाँ कही गयीं। तदुपरांत सरोवरमें जलक्रीड़ा की गयी। यथेच्छ क्रीड़ा करके सब लोग नगरको लौट आये।

अभया रानी सुदर्शनके विरहमें दिन-रात झूरने लगी। अंतःपुरकी पंडिता नामक धायने उसकी यह दशा देख, इसका कारण पूछा, और उसे जानकर अभया रानीको अपने कुनिश्चयसे टालनेका बहुत सत्प्रयास किया। अभयाने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। हारकर पंडिताने सुदर्शनको महलमें लानेकी योजना बनायी। एक अष्टमीके दिन जब सुदर्शन सेठ रात्रिमें श्मशानमें ध्यानस्थ बैठा था, पंडिता वहाँ गयी। सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये, पर सुदर्शनने अपना ध्यान नहीं तोड़ा। तब पंडिता उसे सशरीर कंधोंपर डालकर उठा ले गयी और पुतलेके बहाने रानीके अंतःपुरमें पलंगपर ले जाकर बैठा दिया। अभया रानीने सुदर्शनको बहुत प्रलोभन दिये। स्त्रीसुलभ सभी काम-चेष्टाएँ कीं। डराया धमकाया भी। पर सुदर्शन ध्यानसे नहीं डिगा। तब हारकर रानी उसे वापस श्मशानमें पटकनेको चली। इतनेमें सूर्योदय हो गया। अब रानीने अपनी प्राणरक्षाके निमित्त स्त्री-चरित्र किया। अपने सारे शरीरको नखोंसे नोच

डाला, केश विकीर्ण कर लिये, वस्त्र फाड़ लिये और शोर मचा दिया कि यह दुष्ट सुदर्शन न जाने कहाँसे आकर मुझसे बलात्कार करनेपर तुला हुआ है। राजाको यह समाचार मिलते ही उसने अपने भटोंको सुदर्शनको पकड़कर मार डालनेकी आज्ञा दे दी।

इधर सुदर्शनके धर्मध्यानके प्रभावसे एक व्यंतर उसकी रक्षाको आ गया। उसकी माया-निर्मित सेना और राजाकी सेनामें बड़ा भयानक युद्ध हुआ। भटोंकी पत्नियोंने वीरतापूर्ण कामनाएँ व्यक्त कीं। फिर राजा और व्यंतरमें युद्ध हुआ। दोनोंने एक दूसरेको खूब ललकारा। राजाने व्यंतरको एक दो बार घायल और मूर्च्छित भी कर दिया। पर अंतमें अपनी मायासे व्यंतरने राजाको परास्त कर दिया, और सेठ सुदर्शनसे अपनी प्राणरक्षाके निमित्त क्षमा माँगनेको कहा। राजाने सुदर्शनसे क्षमा माँगी। व्यंतरने राजाको अभयाकी सारी सत्य-कथा सुनायी। इसके बाद राजाने सुदर्शनको आधा राज्य आदि देनेके अनेक प्रलोभन दिये, पर सेठ सुदर्शनको वैराग्य हो गया और उसने जीवन तथा संसारकी क्षणभंगुरता जानकर दीक्षा ले ली। अभया रानीने फाँसी लगाकर आत्महत्या कर ली, और मरकर एक व्यंतरी हो गयी।

पंडिता धाय भागकर पाटलिपुत्र पहुँची और देवदत्ता गणिकाके यहाँ रहने लगी। उसने उसे मुनि सुदर्शनका वृत्तांत सुनाया। यह सुनकर देवदत्ताने भी सुदर्शन मुनिसे रमण करके दिखलानेकी प्रतिज्ञा की। मुनि सुदर्शन घूमते-घूमते पाटलिपुत्र आये और भिक्षार्थ नगरमें गये। देवदत्ता गणिकाने दासीसे कहकर उन्हें घरमें बुलवा लिया। पहले उन्हें स्त्रीसुखके सारे प्रलोभन दिये। फिर तीन दिनों तक उन्हें घरमें बंद करके वेश्यासुलभ सभी कामचेष्टाएँ कीं। अंतमें निष्फल, निराश होकर मुनि सुदर्शनको ध्यान-चिंतनकी अवस्थामें श्मशानमें पटकवा दिया।

इस प्रकार जब मुनि सुदर्शन ध्यानमें लीन थे, उसी समय अभया (रानी) व्यंतरीका विमान आकाशमार्गसे जाते हुए मुनि सुदर्शनके ऊपर आकर ठहर गया। उसने इसका कारण जाननेके लिए सब ओर देखकर नीचे सुदर्शनको ध्यानस्थ देखा। उन्हें देखकर उसे महान् रोष हुआ, और अपना पूर्वभव (रानीका जन्म) स्मरण हो आया। उसने अपने भूत-वैतालों सहित मुनिपर भयानक उपसर्ग करने प्रारंभ कर दिये। यहाँ भी उसी व्यंतरने आकर मुनिकी रक्षा की और उस व्यंतरीको पराजित कर भगा दिया। ध्यानावस्थित मुनिको कुछ ही समयमें केवलज्ञान हो गया। इंद्रादि देवोंने उनकी पूजा-वंदना की। मनोरमाने भी दीक्षा ले ली, और तप करके मरकर स्वर्ग गयी। सुदर्शन मुनि आठों कर्मोंका नाश कर मोक्षको प्राप्त हुए।

'सुदंसणचरिउ' की इस संक्षिप्त कथावस्तुके अध्ययनसे हमें ज्ञात होता है कि यद्यपि इस कथाका केंद्रीय तत्त्व 'स्त्रीका किसी पर-पुरुषपर अनुचित अनुराग' है, तथापि जिस रीतिसे 'सुदंसणचरिउ' की कथाका काव्यात्मक वर्णन और विकास किया गया है, 'जंबूसामिचरिउ' की कथावस्तुसे मिलान करनेपर उसमें आदिसे अंत तक 'जंबूसामिचरिउ' की काव्यात्मक शैली, वर्णनक्रम और वस्तु-व्यापार वर्णनोंका अत्यंत स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इन्हें समानांतर वर्णनोंके संदर्भोंमें निम्नप्रकारसे दिखाया जा सकता है:—

जंबूसामिचरिउ	सुदंसणचरिउ
भ० महावीरकी स्तुति १. मं० ५-६; १.१.५	वही १.१.५-६
कवित्व, त्याग और पौरुषसे यशकी उपलब्धि ८.८. ६-७	वही १.१. १४
कवि विनय १.३.१. ७	वही १.२.१-३
मगधवर्णन १.६. २४-२५	वही १.२. १३-१४
राजगृह वर्णन १.८.९	वही १. ३.९
हस्ति-उपद्रवका दृश्य ४.२१.१३-१७	मगधदर्शनार्थ सैन्यप्रयाण १.७.९-११

श्रेणिकका विपुलाचलवर्णन १.१५.१०-१२; १.१६.३	वही १.८.६-१०
श्रेणिक्का कुरुकपर्वतको देखना ५.१२-१५	श्रेणिकका विपुलाचल दर्शन १.८.१-५
संवाहन नगर वर्णन ८.३.६-९	चंपापुर वर्णन २.३.२,३,७
सुद्दयबीरकथाका उल्लेख १.४.४	सुद्दयकथाका उल्लेख ३.१.७
जंबूके दर्शनसे पुर-नारियोंकी कामोत्तेजना ४.११.१२-१३	वही (सुदर्शनके दर्शनसे) ३.११.२-५
पद्मश्री आदि चार कन्याओंका सौंदर्य ४.१४.५-६	मनोरमाका सौंदर्य ४.२.१
जंबूके माता-पिता : सेठ ऋषभदास-जिनमती	सुदर्शनके माता-पिता : सेठ ऋषभदास-अर्हद्दासी (जिनदासी)
जंबूकी पत्नी पद्मश्रीके पिताका नाम : सागरदत्त	सुदर्शनकी पत्नी मनोरमाके पिताका नाम : सागरदत्त
ऋषभदास और सागरदत्तादिश्रेष्ठियोंकी विवाह संबंधी-वार्ता ४.१४.११-२१	वही ५.२.५-६; ५.३.४-१०
विवाहकी तैयारी ४.१५.१-५	वही ५.४.७-९
विवाह-आगमन और विवाह ८.१२.३-४	वही ५.५.१-२
पद्मश्रीकी रागात्मक उक्ति ८.११.१०	वर-वधू-मिलन ५.५.६; एवं जलक्रीड़ा ७.१७.१०
मध्याह्नकालमें वैवाहिक भोज ८.१३.८-१५	वही ५.६
भोजनके उपरांत छोड़ा हुआ उच्छिष्ट ८.१३. १४-१५	वही ५.६.१५-१६
भोजनोपरांत मुखशुद्धि ८.१४.१-२	वही ५.७,१-२
संध्या-आगमन ८.१४.८,९,१२	वही ५.७.९-१६
सूर्यास्त ८.१४.५	वही ५.८. १-२
सत्पुत्र लक्षण ८.७.१४-१५; ८.८.९	वही ६.२०.३-१०
वसंत-आगमन ३.११.१४-१५; ३.१२.५, १०-११	वही ७.५.१-४, ११-१२
वनपालसे सूचना मिलनेपर भगवद्दर्शनार्थ प्रयाणकी तैयारी, नाना वाद्य-वादन २.१४	उसी प्रकार वसंतमें उद्यान क्रीड़ार्थ गमनकी तैयारी ७.६
उद्यान क्रीडार्थ गमन ४.१६.१	वही ७.७.३
उद्यान क्रीड़ामें प्रेमियोंकी वक्रोक्तियाँ ४.१७.४,१७	वही ७.१५ ४
मिथुनोंकी जलक्रीड़ा : जलका सुभग युवकके समान आचरण ४.१९.११,२१-२२ एवं ४.१९.१८	वही ७.१७.३-७,१०
कामिनीके नख-व्रण युक्त स्तनोंकी शोभा ४.१९.१५	वही ७.१७.११-१२
लोगोंका सरोवरसे निर्गमन ४.२०.१	वही ७.१७.१९
वेश्यावाटका चित्र ९.१३.१-२, ३-४, ५	वही ८.१९.२, ३, ५,
वधुओंकी कामचेष्टाएँ ८.१६.६-१०	अभयाकी कामचेष्टाएँ ८.२८.३-५, ८-१०
रत्नशेखरकी अप्रमाण सेना-द्वारा केरलकी घेरेबंदी ५.३.७	व्यंतरकी मायानिर्मित अप्रमाणसेना९.१.११
मिथुनोंकी युद्धके समान कामक्रीडा ९.१३.१०, ११, १४-१६	मिथुनोंकी कामक्रीड़ाके समान युद्ध ९.४.३, ६,७,८
युद्धमें धूलिका शांत होना ६.५.२,१०	वही ९.६.९-१०
हस्तियोंपर स्थित जंबू और रत्नशेखरकी शोभा ७.८.६	वही (व्यंतर और राजा धाईवाहन) ९.८. ९-१०
उन्हींका युद्ध : चाप आस्फालन आदि ७.८.८, १०, ११-१२	वही ९.१२.३,४, ६-७

विद्युच्चर मुनिपर व्यंतरीका उपसर्ग और मुनिकी दृढ़ता १०.२६	मुनि सुदर्शनपर व्यंतरीका उपसर्ग और सुदर्शनकी दृढ़ता ९.१७-१९
जंबूको कैवल्य और मोक्ष	सुदर्शनको कैवल्य और मोक्ष

उपर्युक्त संदर्भोंमें इन रचनाओंमें केवल भावात्मक ही नहीं, बल्कि वातावरण, प्रसंग तथा शब्द और अर्थ सभीमें स्पष्ट समानता है।

वीर और ब्रह्म जिनदास

ब्रह्म जिनदासका कुछ परिचय ऊपर आ चुका है।[1] इनका समय वि० सं० १४५० के लगभग है और इनकी अनेक रचनाओंमें जंबूस्वामीचरित (संस्कृत) तथा जबूस्वामीरास भी हैं। इनमें-से जंबूस्वामिचरित (सं०) लगभग शब्दशः 'जंबूसामिचरिउ' का संस्कृत रूपांतर है। 'जंबूस्वामीरास' के संबंधमें उसके उपलब्ध न हो सकनेसे कुछ कहना कठिन है।

वीर और राजमल्ल (वि० की १७वीं शती पूर्वार्द्ध)

पं० राजमल्लकी एक रचना 'जंम्बूस्वामीचरित्रम्' (संस्कृत) है, जिसका रचनाकाल वि० सं० १६३२ है। यह रचना भी कहीं विस्तारसे, कहीं संक्षेपमें 'जंबूसामिचरिउ' का संस्कृत रूपांतर है।

उपर्युक्त दो रचनाओंके अतिरिक्त हेमचंद्र (१२वीं शती ई०) के परिशिष्ट पर्वकी रचना पूर्णतः गुणपालके 'जंबूचरियं'के आदर्शपर की गयी है। संभव है हेमचंद्रको 'जंबूसामिचरिउ' भी उपलब्ध रहा हो। एक महत्त्वकी बात यह है कि हेमचंद्रके प्रसिद्ध प्राकृत व्याकरणमें जो अनेक दोहे उद्धृत किये गये हैं, उनमें-से कुछ 'जंबूसामिचरिउकी गाथाओंसे पूर्ण समानता रखते हैं। इससे हेमचंद्र-द्वारा वीरकी इस रचनाको देखने व उसका ऋणी होनेकी संभावनाको कुछ अधिक बल मिलता है। वे दोहे निम्नलिखित हैं:—

धवलु विसूरइ सामिअहो गरुवा भर पिक्खेवि।
हउँ कि न जुत्तउं दुहुँ दिसिहिं खंडइं दोण्णि करेवि ॥८५॥
मइँ वुत्तउँ तुहुँ धुरु धरहि कसरेहिँ विगुत्ताइँ।
पइँ विणु धवल न चडइ भरु एम्वइ वुन्नउ काइँ ॥१६१॥
पाइ विलग्गी अन्त्रडी सिरु ल्हसिउँ खन्धस्सु।
तो वि कटारइ हत्थडउ बलि किज्जउँ कंतस्सु ॥१९९॥

—डॉ० नामवर सिंह : (हिंदीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान, तृ० संस्करण)

इन दोहोंका मिलान क्रमशः जं० सा० च० के ७.६.२६-२७ (गाथा ६); ७.६.२०-२१ (गा०३) तथा ६.३.९-१० से करणीय है।

वीर और रइधूः—अनेक अपभ्रंश ग्रंथोंके कर्ता रइधू विक्रमकी १५वीं शतीके हैं। इन्होंने अपनी दो रचनाओंमें वीरकविका उल्लेख किया है। परन्तु उनकी रचनाओंपर वीरकी कृतिका कितना प्रभाव है, इस संबंधमें कुछ कहना शक्य नहीं है, क्योंकि संपादकको रइधूकी रचनाओंका अध्ययन करनेका सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका।

---

१. प्रस्ता०—१

१०. समसामयिक अवस्था

भौगोलिक स्थिति, भारतकी चतुर्दिक् सीमाएँ, पर्वत, वन, वन्य जीवन; ग्राम और ग्रामीण जीवन; नगर और नागरिक जीवन; आर्थिक अवस्था; सामाजिक स्थिति; शिक्षा और साहित्य; एवं धार्मिक स्थिति

प्रत्येक युगका सच्चा साहित्यकार, कवि या महाकवि स्वयं अपने समयकी सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक परिस्थितियोंके परिप्रेक्ष्य एवं पृष्ठभूमिके पटपर ही अपने वर्ण्यविषयके कालकी अमुक स्थितिके-चित्रकी रेखाएँ अंकित करता है। वह किसी भी कालकी स्थितियोंका वर्णन करे, परंतु उसके अनुमानका आधार तो उसका वर्तमान ही होता है। इसी वर्तमानके पटपर, उसकी कल्पना रूपी तूलिका मनमाने रंग भर-भरकर नये-नये चित्र बनाती है। उसका सजागरूक यत्न रहता है कि वह पाठकको वर्तमानसे उठाकर उसके मानसको अपने वर्ण्य कालके स्तरपर ले जाये और इस यत्नमें उसे जितनी सफलता मिलती है, वही उसके साहित्यिक साफल्यका मापदंड बनती है। पर सम-सामयिक युगकी स्थितियोंका सही-सही चित्रण भी उसके साफल्यकी उतनी ही महत्त्वपूर्ण कसौटी है जितनी कथा-वस्तुगत वर्ण्य कालके चित्रण की। इस दृष्टिसे वीर कविने तत्कालीन भारतकी भौगोलिक स्थिति, देश, प्रांत और मंडलोंमें विभाजन, प्रमुख पर्वत, नगर, नदियाँ, वृक्ष-वनस्पतियाँ, पशु-पक्षी, दक्षिणसे लगाकर उत्तरपूर्व और उत्तर-पश्चिमके दक्षिणापथके मार्ग और विंध्यके उत्तरमें उत्तरके प्रमुख महाजनपथोंके संबंधमें प्रभूत व प्रामाणिक जानकारी प्रदान की है। देशके तत्कालीन सामाजिक जीवन, व्यापार, कृषि, शिक्षा, साहित्य, सामाजिक रीति-रिवाज एवं धार्मिक विश्वासों तथा ग्रामीण व नागरिक जीवनका सटीक परिचय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे भी यहाँ प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। देशकी राजनीतिक अवस्थाके संबंधमें कविने प्रत्यक्ष तो नहीं परंतु अप्रत्यक्ष रूपसे जो संकेत दिये हैं, उनसे तत्कालीन मालवाकी राजनीतिक अवस्थाका अच्छा बोध हो जाता है। परंतु देशके शेष भागोंमें इस दृष्टिसे कैसी अवस्था थी, इस विषयमें जं० सा० च०से कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती।

भौगोलिक स्थिति

भारतवर्षके भौगोलिक विभाजनोंका कविका ज्ञान विशद और प्रामाणिक था। इसकी अनुभूति हमें 'जंबूसामिचरिउ'की नवम संधिके अंतमें विद्युच्चरके यात्रा-वर्णन अथवा देश-दर्शनके रूपमें उपलब्ध होती है। इस बहाने कविने अपने महाकाव्यमें मात्र 'देशदर्शन' विषयक रूढ़िका पालन ही नहीं किया, अपितु विक्रमकी ग्यारहवीं शतीके भारतका भौगोलिक मानचित्र हमारे सामने खींच दिया है। इस विषयमें उसने बृहत्संहिताकार वराहमिहिरका अनुकरण नहीं किया, क्योंकि संपूर्ण देशों, नगरों, पर्वतों, वनों, नदियों और जातियोंका वर्णन करना यहाँ कविका अभीष्ट नहीं था। उसे तो देशकी भौगोलिक स्थितिका सामान्य ज्ञान कराना इष्ट था, और उसमें वह सफल हुआ है।

कविने प्रमुख त्रेपन देशों व मंडलों, तैंतीस नगरों, दस बंदरगाहों व पत्तनों (तीर्थों), अठारह पर्वतों और पर्वत श्रेणियों, दस नदियों, आठ उत्तरीय एवं उत्तर-पर्वतीय जातियों, पाँच द्वीपों एवं चार सागरों (पूर्वोदधि, पश्चिमोदधि, क्षीरोदधि एवं लवणसमुद्र)का उल्लेख किया है। इन सबका संक्षिप्त परिचय और पहचान अंतमें भौगोलिक नामकोशके अंतर्गत दिये गये हैं।

भारतके दक्षिण समुद्रसे लेकर उत्तर-पश्चिमकी ओर चलते हुए गुजरात तक, फिर पश्चिममें राजस्थानसे लेकर दक्षिण-पूर्वमें ताम्रलिप्ति (तमलुक) तक, उत्तरमें शाकंभरी (अजमेर) से लगाकर सुदूर उत्तरमें काश्मीर और इससे भी ऊपर उत्तर-पश्चिममें फारस देश तक; एवं पूर्व (उ० प्र०) में गौंड-(गौंडा प्राचीन राजधानी श्रावस्ती) से प्रारंभ करके कामरूप तक जाकर, गंगासागर होते हुए

सप्त-गोदावरी भीमतीर्थ तकके जिन यात्रा-महापथोंका संकेत वीर कविने किया है, पाँचवीं शती ई० पूर्वसे ग्यारहवीं शती ई० तक भारतके ऐतिहासिक व्यापारिक, महाजनपथोंसे उनकी तुलना की जा सकती है।[1]

विद्युच्चरके यात्रा वर्णनसे विक्रमकी ग्यारहवीं शतीमें बृहत्तर भारतवर्षकी भौगोलिक सीमाएँ, उत्तरमें आधुनिक पर्शिया (फ़ारस) से लगाकर, हिमालयकी अनेक पहाड़ी जातियोंके प्रदेशोंको सम्मिलित करते हुए काश्मीरको लेकर, उसके उत्तरसे सिंधु नदीके किनारे-किनारे चलते हुए कैलाश पर्वत तक; उत्तर-पश्चिममें पूरा सिंध व पंजाब; पश्चिममें द्वारिका एवं प्रभास (सोमनाथ) तीर्थ; और सीधे दक्षिणमें समुद्र (हिंद महासागर); तथा दक्षिण-पूर्वमें बंगाल सागर (पूर्वोदधि) के तटपर ताम्रलिप्तिसे उत्तर-पूर्वमें कामरूप (आसाम) पर्यंत प्रतीत होती हैं। अर्थात् तीन ओर सागर एवं उत्तरमें हिमालयके सुदूर उत्तरीय प्रदेश।

पर्वत—ऊपर कहा गया है कि जं० सा० च० में देशके लगभग अठारह पर्वतों और पर्वत श्रेणियोंका उल्लेख है, जिनमें मुख्य हैं—हिमालय, कैलाश, मंदारगिरि, विपुलाचल, अर्बुद (आबू) विंध्य, वज्राकर (विंध्यपाद, सतपुड़ा), पारियात्र, सह्याद्रि, श्रीशैल और मलय। कविने अधिकांशतया इन पर्वतोंका उल्लेखमात्र करके छोड़ दिया है।

वन—जं० सा० च० में भारतके वन मार्गोंकी बहुत अल्प चर्चा मिलती है। राजगृहके समीप एक प्राचीन नंदनवन नामक उद्यान और विंध्य अटवी इन दोका उल्लेख कुछ विस्तृत वर्णनके साथ उपलब्ध होता है। नंदनवनके वर्णनमें केवल विभिन्न वृक्षों व लताओंके नाम मात्र हैं, जैसे ताल, कदली, पलाश, आम्र, जंबीर, जंबू, कदंब एवं न्यग्रोध आदि[2]; लताओंमें नागलता (पानकी बेल) तथा द्राक्षा अर्थात् अंगूरकी बेल। ये अधिकांश वृक्ष मगध और विदेहमें आज भी बहुतायतसे मिलते हैं। नागलताकी खेती बिहारके उत्तर और दक्षिण दोनों भागोंमें कई जगहोंपर व्यापारिक स्तरपर की जाती है। कुछ स्थानोंमें अब अंगूर भी उगाया जाता है। संभव है बिहारमें प्राचीन कालमें भी अंगूरका उत्पादन किया जाता रहा हो। और केले तथा आमके उद्यान तो आज भी बिहारके कृषकोंकी आयके प्रमुख स्रोत हैं।

विंध्याटवीका वर्णन कुछ अधिक विशद है। उसमें खदिर (खैर) और बाँसोंके बड़े-बड़े गुल्म, कंटीली झाड़ियाँ, शीसम और अंजन आदि अनेक वृक्षोंके नामोंके[3] अतिरिक्त विंध्याटवीके बहुतसे पशुओंका भी नामोल्लेख कर आदिवासी भीलोंके जीवनका अत्यंत सजीव और वास्तविक चित्र खींचा गया है। पशुओंमें हाथी, सिंह, गवय (नील गाय), कोल (सूअर), शृगाल, जंगली भैंसे और वानर प्रमुख हैं, पक्षियोंमें कौआ और घूक (उल्लू)। 'जहाँ-जहाँ पानी वहाँ-वहाँ कमल,' इसी प्रकार 'जहाँ-जहाँ वन वहाँ-वहाँ अष्टापद-शरभ या शार्दूल', इस कविसमयके अनुसार शरभका भी नाम कविने लिया है।

विंध्याटवी और वन्य जीवन—विंध्याटवीमें चोरोंके निवास योग्य घने काँटेदार वृक्ष और झाड़ियोंके जंगल थे, जैसा कि आज भी विंध्यकी चंबलघाटी बड़े भयानक डाकुओंका दुर्गम व दुर्भेद्य अड्डा बनी हुई है। अटवीमें भीलोंके एक-सरीखे घर-द्वार थे, जिनमें पशुओंको पकड़नेके जाल और फाँस तथा मछली पकड़नेके काँटे और जाल लटके रहते थे। मृगोंका मांस सूखता रहता था, और मारे हुए चीतोंके शव या खालें पड़ी रहती थीं। उनकी मूछोंमें बाल नहीं होते, पर दाढ़ी लंबी रहती और भीलोंकी मंडली आपसमें बैठकर परस्परके जंघाबलकी प्रशंसा किया करती। उस विंध्याटवीमें कहीं पर्वत तटोंपर हाथियोंकी चिंघाड़ सुनकर सिंह क्रुद्ध होते और कहीं शस्त्रसे आहत, दहाड़ते हुए व्याघ्र नील गायोंको विदीर्ण कर डालते। कहींपर घुर-घुराते हुए कोलोंके दाढ़ोंसे उखाड़े हुए कंद-मूल सूखते रहते, और कहीं

---

१. डॉ० मोतीचंद्र : सार्थवाह

२. जं० सा० च० वृक्ष-वनस्पति-कोश

३. वही

हुंकार करते हुए प्रचंड बली भैंसोंके सींगोंसे उखाड़े हुए वृक्ष भूमिपर गिर पड़ते। कहीं दीर्घ हुंकार छोड़ते हुए वानर भागते दिखाई देते और कहीं सैकड़ों घूकों (उल्लू) की घू-घू ध्वनिसे क्रुद्ध हुए कौवे कांव-कांव करते रहते। कहीं शृगालीकी फेत्कारसे आकृष्ट शृगाल पकड़े जाते। कहीं कल-कल कर झरते हुए झरने, तो कहीं काले शरीरवाले भील दिखाई पड़ते। कहीं वृक्षोंके पत्तोंसे ढके हुए सर्प पड़े रहते और कहीं फणधारी नागोंके तीक्ष्ण फूत्कारोंसे भयानक दावानल जल उठते। विंध्याटवी एवं वन्य जीवनका यह चित्रण अपनी सजीवतासे स्वयमेव फड़कता हुआ प्रतीत होता है।

देशके वृक्षों और वनस्पतियोंके संबंधमें अधिक कथ्य नहीं है; क्योंकि उनके नाममात्र उल्लिखित[1] हैं, परंतु यह सत्य है कि मगध और विंध्यमें आज भी उनमें-के लगभग शत-प्रतिशत वृक्ष-वनस्पतियोंको उपलब्ध किया जा सकता है।

ग्राम और ग्राम्य जीवन—जं० सा० च० में बहुत अधिक ग्रामोंका उल्लेख नहीं है। गिने चुने दो गाँवोंका नाम मिलता है। एक गुलखेड जो कविका जन्म स्थान था, इसका भी कोई वर्णन कविने नहीं किया। दूसरा है मगधमें वर्द्धमान नामक गाँव। यह ब्राह्मणोंका कुल-क्रमागत अग्रहार (दान-स्वरूप प्राप्त) ग्राम था। यहाँकी रमणियाँ बहुत सुंदर होतीं थीं, और ब्राह्मणोंके समूह मिलकर वेदपाठ किया करते थे। नव-दीक्षित पुरोहित पशुहोम किया करते तथा प्रतिदिन खूब सोमपान किया जाता (दिक्खिएहिं जहिं पसु होमिज्जइ दिवि-दिवि-सोमपाणु जहिं किज्जइ २.४.१०) और शिष्यवृंद अपनी लंबी-लंबी चोटियोंको पूंछके समान हिलाते हुए वानरोंके समान वृक्षोंपर क्रीड़ा किया करते। यह एक शुद्ध ब्राह्मण गाँवका पूर्णतः वास्तविक वर्णन है। विंध्य देशके ग्रामोंके संबंधमें कविने लिखा है कि वहाँके ग्राम नगरोंके समान, तथा ग्रामीण नागरिकोंके समान सर्वसुख साधन संपन्न और श्रद्धालु थे। इन गाँवोंके ग्वाले बड़े-बड़े व्रजों (गोमंडल) का पालन करते थे। व्रजोंके लिए गाँवोंमें बड़े-बड़े सरोवर थे। महुएके वृक्ष बहुतायतसे थे, और धानकी खेती होती थी। खेतीकी रक्षा कृषक वधुएँ किया करती थीं। स्थान-स्थानपर पथिकोंके लिए प्याऊ लगी रहतीं, जिनमें स्त्रियाँ पानी पिलाया करतीं। गावोंके लोग सुंदरवस्त्र धारण करते और स्थान-स्थानपर गोपियाँ गहरे रंगोंके वस्त्रोंको धारण कर रास रचाया करतीं।

साधारण दरिद्र ग्रामीणोंके जीवनका एक अति मार्मिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कविने लिखा है—सात दिनोंतक दिनरात घनघोर वर्षा होती रही। जल-थल सब एक हो गये और मार्ग दुर्लभ। तालाबोंकी पाल फोड़कर जलका प्रवाह बह निकला। सब व्यवसाय समाप्त हो गये और आहार अत्यंत दुर्लभ। भूखसे क्रंदन करते हुए बच्चे और बूढ़े सब तृणोंसे निर्मित गलती हुई कुटियोंकी दीवारोंसे चिपक-कर तड़पते हुए बैठे रहे। पक्षी अपने घोंसलोंमें ही रुके रह गये और बार-बार मूर्छित होने लगे····आदि। वर्षाकालमें भारतके किसी दरिद्र गाँवका यह वर्णन कितना सच्चा, सजीव और मर्मस्पर्शी है।

नगर और नागरिक जीवन—नगरोंका वर्णन बहुत कुछ कवि-स्वभाव और काव्य-रचनाजन्य अतिशयोक्तिसे अतिरंजित होनेपर भी उसमें वास्तविकताका अंश भी प्रचुर परिमाणमें है। कविने मगधमें राजगृह और संवाहन तथा (पौराणिक) पूर्व-विदेहमें पुंडरिकिणी और वीतशोका नगरियोंका सुंदर वर्णन किया है। इन वर्णनोंसे ज्ञात होता है कि बड़े नगर सुरक्षाकी दृष्टिसे परिखा और प्राकारसे युक्त होते थे, जिसमें विशाल गोपुर बने रहते। नगरोंमें गवाक्षोंसे युक्त कई-कई तलोंके प्रासाद, ऊंचे-ऊँचे देवालय, चैत्यगृह, दानशालाएं, (३.३.९), द्यूतगृह (टेंटा ८.३.१३) वेश्यागृह, (३.२.५-६) एवं बड़े-बड़े हाट होते थे। नगरोंके बाहर वृक्ष-गुल्मों व लता-गुल्मोंसे युक्त बड़े-बड़े उद्यान एवं सरोवरयुक्त वाटिकाएँ रहती थीं। नगरोंके बाहर घुड़दौड़के मैदान (वाहियालि ३.२.१०) भी रहते थे। नगरोंके बाहर हरे-भरे खेत रहते और

1. वृक्ष-वनस्पति कोश

कुबक-वधुएँ उनकी रक्षा किया करतीं। बाहर उद्यानों और खेतोंमें हरिण खूब छलांग लगाया करते और वाटिकाओंमें मयूर नाचा करते। नगरके लोगोंका जीवन निश्चित रूपसे ग्रामीणोंकी अपेक्षा अधिक धन-समृद्धि संपन्न, अतः भोग-विलास-पूर्ण हुआ करता। नगरकी कामिनियाँ और बालक सुंदर-सुंदर सुवर्ण एवं रत्न-आभूषण धारण करते थे। और घर-घर लोगोंको संगीत, वाद्य तथा नृत्यमें प्रगाढ़ रुचि रहती थी। पनिहारिनें कुओंसे पानी लाया करतीं, जैसा कि आज भी गाँवोंमें देखा जाता है। द्यूत लोगोंका एक समाज एवं राजमान्य मनोविनोदका साधन था (८.३.१३) तथा वेश्याएँ भोगकी सर्वसम्मत सामग्री (३.२.६; ९.१२-१३)। स्त्रियाँ प्रसाधनके लिए दर्पणोंका, सुगंधित चंदन द्रव्य आदि लेपोंका व कुंकुम इत्यादिका प्रयोग किया करती थीं, और मुख-शुद्धिके लिए लोग दातूनका प्रयोग करते थे। बड़े नगरोंमें कवि और जुआड़ी समान रूपसे नगरकी शोभा बढ़ाते थे (८.३.१३)। यही नगरोंका सामान्य जीवन था। सामाजिक जीवन रीति-रिवाज, रूढ़ि, धार्मिक श्रद्धा और अंधविश्वास आदिकी चर्चा आगे की गयी है।

देश—नौवीं संधिके अंतमें बहुतसे देशों, नगरों आदिके जो नाम उल्लिखित हैं, उनमें-से किसीका भी कुछ विस्तृत वर्णन कविने नहीं किया है। जिन देशोंका थोड़ा-सा वर्णन मिलता है, वे हैं—भारतमें मगध और विंध्य तथा पूर्व विदेहमें पुष्कलावती। राजगृह, संवाहन तथा पुंडरिकिणी और वीतशोका नगरों तथा विंध्य देशके गाँवोंके प्रसंगमें वर्णित ग्रामीण जीवनके वर्णनोंसे ही इन देशोंका भी चित्र उपस्थित हो जाता है। इनमें कुछ विशेषताएँ हैं, जैसे मगधके लोगोंमें धार्मिक श्रद्धाका प्राबल्य; अत्यंत उपजाऊ भूमि, सरोवर, नदियों और उद्यानोंकी प्रचुरता; नागलता, कदली, द्राक्षा, मिरिच, सन और धानकी खेती (१.६-८)। पुष्कलावती देशकी कोई अलग विशेषता नहीं है। इतना ही है कि वह बहुत समृद्ध देश था। विंध्य देशके वर्णनमें और कोई विशेषता नहीं है। उसमें भी प्रमुख रूपसे धानकी खेती, महुएके वृक्षोंकी अधिकता आदि कही गयी है। विशेषता है एक बातमें कि इस देशमें प्याऊओंका प्रचलन बहुत था। मगधराज्यके वर्णनमें एक और ध्यान देने योग्य सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वहाँ पथिक पाथेय लेकर नहीं चलते थे (१.७.७)। इसका तात्पर्य यह है कि ग्रीष्मकालमें तीन-चार महीने आम तथा वर्षके बारहों महीने इतना केला बिहारमें होता है कि वास्तवमें वहाँ कभी बरसे पाथेय लेकर चलनेकी आवश्यकता नहीं होती। इसका पोषक एक और तथ्य यह है कि बिहार प्रांतमें सदासे ही अतिथिको देवतुल्य मानकर उसका यथासंभव उच्च सम्मान-सत्कार किया जाता रहा है। भोजन, पान और निवासके संबंधमें यह बात विशेष रूपसे सत्य है। और इन सुविधाओंके बदलेमें उस प्रांतमें किसी घरमें कभी कुछ नहीं लिया जाता था। आज भी कुछ अंशोंमें यह स्थिति विद्यमान है।

आर्थिक अवस्था

'जंबूसामिचरिउ'में उपलब्ध सामग्रीपर-से भारतकी तत्कालीन आर्थिक अवस्थाका अध्ययन करनेपर ज्ञात होता है कि साधारणतः देशके अधिकांश भागोंमें कृषि ही आजीविकाका सर्व-प्रमुख साधन थी। बड़े-बड़े नगर, राजगृह,संवाहन, सिंधुवरिपी और केरल आदि, व्यापारके बड़े केंद्र थे, और उनके विशाल हाट-बाजारोंमें भिन्न-भिन्न स्थानों व देशोंसे व्यापारार्थ आये हुए लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी। कभी-कभी व्यापारमें किन्हीं कारणोंसे गिरावट या रुकावट आ जानेपर व्यापारियोंको एक स्थानपर ही रुकना पड़ जाता था। बनिये संभवतः नौकाओंसे भी व्यापार करते थे। मापकी वस्तुओंके लिए द्रोण एवं प्रस्थ नामक माप व्यवहारमें लाये जाते थे (८.३.९)। स्थल मार्गसे कांस्य व अन्य धातुओंके बरतनोंका व्यापार बहुत प्रचलित था। राज-सैन्यके मार्ग या पड़ावमें आ पड़नेपर व्यापारियोंकी बहुत हानि होती थी, क्योंकि शस्त्रोंकी चमक-दमक, रथोंकी घर्घराहट और हाथियोंकी चिंघाड़से उनके वाहन, जो अकसर बैल होते थे, वे भड़क उठते थे और उनका सामान पटक देते थे, जिससे कसेरोंके बरतन-बासन फूट जाते, सब सामान बिखर जाता और कभी-कभी तो बैल भाग भी जाते (५.७.१४-२३)। तेली और कलाल (मद्यका व्यापार करनेवाले)

का भी इसी प्रसंगमें उल्लेख आया है। कोई-कोई दीन-अनाथ स्त्री दूसरोंका खाना बनाकर भी आजीविका करती थी (५.७.१६)। द्यूत संभवतः व्यसनमात्र ही नहीं बल्कि कुछ लोगोंकी आजीविकाका नियमित साधन था (८.३.१३)। नट अपना पारिश्रमिक या पुरस्कार लेते और वेश्याएँ अपना भाड़ा (भाडि ९.१३.५)। वेतनभोगी भृत्योंका कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। संभवतः सैनिकों या परिजनोंका वेतन नगद धनके रूपमें नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी सामग्रीके रूपमें दिया जाता था। ब्राह्मणोंके लिए पौरोहित्य और अध्यापन ये दो ही आजीविकाके साधन थे, ऐसा प्रतीत होता है। नगरोंका जीवन अधिक साधन-समृद्ध होनेसे ग्रामोंकी अपेक्षा अधिक सुखकर और विलासमय रहा होगा। परंतु ग्रामोंमें भी लोग धर्मपूर्वक अपनी आजीविका करते हुए सुखपूर्वक रहते थे, प्रासाद निर्माण, मंदिर निर्माण, मूर्ति निर्माण और गृह निर्माण भी आजीविकाका एक प्रमुख साधन रहा होगा।

सामाजिक स्थिति

वर्ण, जाति, आजीविकाके साधन, विवाहकी पद्धति व स्थिति, वरका चुनाव, पारिवारिक व्यवस्था (संयुक्त), कुलपतिका स्थान, घर और समाजमें कन्या; बहन, पत्नी व माँके रूपमें नारीकी प्रतिष्ठा, दैनिक उपयोगकी वस्तुएँ, रीति-रिवाज और मनोरंजनके साधन

'जंबूसामिचरिउ'में उपर्युक्त विषयोंपर निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

वर्ण—चार : ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ब्राह्मण यज्ञ-यागादि करते और वैदिक साहित्यका अध्ययन-अध्यापन करते थे। राजा और श्रीमंतोंका पौरोहित्य भी उनकी आजीविकाका साधन था। सेनाके प्रयाणके साथ भी कुछ विद्वान् पंडित जाते थे, जो स्नानोपरांत टीका लगाकर गलेमें फूलोंकी माला डालकर शरीरपर चंदनका लेप करके दर्भसे संध्यावंदन किया करते थे (५.११)। तिल और जौ देकर पितरोंको पिंडदानकी क्रिया प्रचलित थी (२.६)। सामाजके अन्य वर्णोंमें ब्राह्मणोंकी क्या स्थिति थी, इस संबंधमें जं० सा० च० से कोई अनुमान नहीं लगता।

क्षत्रिय—क्षत्रियोंका प्रमुख कार्य युद्धोंमें लड़ना था। यही उनकी आजीविका थी। केरलके राजाको क्षत्रिय कहा गया है (५.३)। जं० सा० च० से क्षत्रियोंके संबंधमें इतनी ही जानकारी उपलब्ध होती है।

वैश्य—वैश्य जातिके उल्लेख वणिक् गोत्र, वणिक् या बनियेके नामसे जं० सा० च० में अनेक बार आये हैं। स्वयं वीर कवि वणिक् वंशके ही थे। व्यापार-वाणिज्य बनियोंका प्रमुख व्यवसाय था। विद्युच्चरके देश-दर्शनके बहानेसे कविने हमें यह बतलाया है कि व्यापारी जल और स्थल दोनों मार्गोंसे व्यापार करते थे। अन्य वर्णोंकी अपेक्षा वैश्योंकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी, यह अनुमान लगाना उचित है।

शूद्र—जं० सा० च० में शूद्र 'शब्द'का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। चंगकी अंतर्कथामें (१०. १५-१७) मेहतरोंके लिए 'कम्मकर या कर्मकार शब्दका प्रयोग आया है, प्राचीन कालमें उसका प्रयोग सामान्य रूपसे सभी नौकर-चाकरोंके लिए होता था। 'मेहतर' अर्थमें इस शब्दका प्रयोग बहुत पुराना नहीं मालूम पड़ता। आजकल उत्तर-प्रदेशके मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुरके जिलोंमें मेहतरोंको 'कमानेवाला' और उसके कामको 'कमाना' कहते हैं। इस 'कर्मकार' शब्दसे शूद्रोंकी स्थितिका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

अन्य जातियाँ, एवं आजीविकाके साधन—इन चार वर्णोंके अतिरिक्त कृषकों (हाली या कुटुंबी) और ग्वालों तथा कृषक वधुओं (हालीवधू, पामरी) और गोपियोंके उल्लेख कई बार (१.७;१.८;३.१; ५.२) हुए हैं, और इनके सुखी जीवनका सुंदर चित्र खींचा गया है। 'तेली' और 'कलाल' (मद्यका व्यापारी) का उल्लेख (५.७) इन जातियोंके होनेकी सूचना करता है। भट, नट, विट, डोम और कुट्टनियों (४.२१; ५.७; ५.११)के उल्लेख जातियोंके नहीं बल्कि अमुक-अमुक आजीविकाके साधनोंके सूचक हैं। भट्ट पहले

राजाओं आदिकी विरुदावली गायन करनेवाले ब्राह्मण होते थे। बादमें अन्य जातियोंने भी इसे अपना लिया।[1] डोम शूद्रोंकी कोटिमें रखे जा सकते हैं। लेकिन नट, विट और कुट्टनियोंकी जाति कौन जान सकता है?

विवाह संस्था—भारतवर्षमें बहुत प्राचीन समयसे ही विवाह संस्थाका सम्मान और महत्त्व बहुत अधिक रहा है तथा आज भी है। संस्कृत साहित्यमें आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख है[2]। इन सभीको सामाजिक मान्यता प्राप्त थी। पर सबसे अधिक प्रचलन और आदर विवाहके उस प्रकारका था जिसमें वर और कन्या दोनोंके माता-पिता एवं परिवारके लोग सब-कुछ सोच-विचारकर विवाह संबंधोंका निर्णय करते थे, और ग्राम या नगरके सब प्रमुख लोगों एवं स्वजातीय तथा जातीयेतर विशाल समाजकी साक्षीमें जिसे विवाह रूपमें परिणत किया जाता था। इसी प्रकारके विवाहोंका परिचय हमें 'जंबूसामिचरिउ'से प्राप्त होता है। भवदेवका नागवसूसे विवाह (२.९—१०) और जंबूस्वामीका चार श्रेष्ठि कन्याओंसे विवाह (४.१४, एवं ८.१२-१४) उसकी समकालीन सामाजिक विवाह पद्धतिके द्योतक हैं। इस प्रकारके विवाहमें वरकी खोजका कार्य कन्याके पिताका ही होता था। कभी ऐसा भी होता था, जैसा कि जंबूस्वामीके संबंधमें हुआ (४.१४), कि वर और कन्याके पिताओंमें मैत्री-संबंध रहनेसे उन संबंधोंको स्थायी करने हेतु वे आपसमें एक दूसरेके पुत्र-पुत्रियोंके विवाह संबंध निश्चित कर लेते थे। अभी भी घनिष्ठ मित्रोंमें ऐसे संबंध होते देखे जाते हैं। विवाह संबंधोंकी स्थापनामें दोनों ओरसे पिताका ही महत्त्व सर्वोपरि दिखाई देता है, तथापि माताओंसे भी सलाह अवश्य ली जाती रही होगी, जैसाकि एक अन्य जंबूस्वामीचरितमें उल्लेख है।[3] मित्र, बांधवों, परिजनोंकी सलाहको भी पूर्ण महत्त्व और आदर दिया जाता था।

वैवाहिक पद्धति—जं० सा० च० के रचनाकालमें भी विवाह लगभग इसी रीतिसे, कुलाचारोंके अनुसार संपन्न होते थे, जैसे कि आज वणिक् और ब्राह्मण समाजमें संपन्न होते हैं। घरकी चूनेसे पुताई, गोबरसे लिपाई और घर पर शिखर हो तो उसे गेरु(या चूने) से चमकाना, तोरण और बंदनवार बांधे जाना, मंडप बनवाना और सजवाना, स्थान-स्थानपर सुगंधित चूर्ण या द्रव्य छिड़के जाना, विविध रंगोंसे चौक पूरना, सुगंधित पुष्पोंकी मालाएं लटकाना और भेंट करना आदि सारी बातें आज भी उसी प्रकार होती हैं। नाना प्रकारके मंगलोपचार, मंगलगान, वाद्य एवं संगीत, तथा कामिनियोंके मनोभिराम नृत्य, ये सब आज भी प्रचलित हैं। वरके घरसे आये हुए समाचार-वाहकोंके स्वागतकी विधि—आगे जाकर साथ ले आना और आसन देना; फिर अक्षत, कुसुम, तांबूल आदि औपचारिक स्वागत करनेकी बातें ऐसी वर्णित हैं (८.९) मानो साक्षात् घटित हो रही हों। वरके हाथमें ऊर्णामय कंगन बांधना, नये कपड़ेका जोड़ा पहनाना, सुगंधित पुष्पोंका मुकुट पहनाना, और शरीरपर चंदनादि सुगंधित द्रव्योंका लेप करके अनेक आभूषणोंसे सजाना, कन्यादानके निमित्त कन्याके पिता-द्वारा जलांजलि दी जाना, और वरको यथासंभव अधिकसे अधिक दायज्ज (दहेज) देना। ये सब आज भी समाज-प्रचलित व्यवहार हैं। समृद्ध कन्याओंके पिता अब भी वधू-वरकी सेवाके लिए दास-दासी भेंट स्वरूप साथमें भेजते हैं। उस कालमें पाणिग्रहणकी विधि संभवतः प्रातःकालके समय संपन्न की जाती थी।

वैवाहिक भोज—कविने लिखा है कि लोग तृणमय आसनोंपर बैठे। ग्रीष्म ऋतु होनेसे तालपत्र निर्मित और सुगंधित जलसे भीगे हुए पंखोंसे हवा की जाने लगी तथा नाना प्रकारके मीठे, खट्टे, चरपरे व मिश्रित व्यंजन परोसे गये। कूर नामक (धानके) चावलसे बनाया हुआ तथा खूब घीसे सिक्त भात; खट्टे अचार, चटनी, तक्र (मट्ठा, पर यह यहाँ दहीके लिए प्रयुक्त मालूम पड़ता है, क्योंकि आजकल भी देशके कई प्रान्तोंमें जैसे बिहार, बंगाल एवं महाराष्ट्र आदिमें भोजनके साथ दही परोसा जाता है, मट्ठा अर्थात् छांछ नहीं।)

---

१. Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol. 2. bhãt and chãran

२. मनु० अ० ३ श्लो० २१

३. ब्रह्म जिनदास कृत संस्कृत : जम्बूस्वामिचरित्र

और मूंगसे बने हुए नाना व्यंजन बहुत-सी कटोरियोंमें रखकर परोसे गये। मगध, मालवा और उत्तर-प्रांतोंमें मूंगकी उपज अधिक होनेसे मूंगके मोठे व नमकीन दोनों प्रकारके व्यंजनोंका अब भी खूब प्रचलन है। भोजन-से तृप्त होकर जलसे मुख शुद्धि कर लेनेपर सुगंधित द्रव्य और तांबूल भेंट किये गये। विवाहके उपरांत वर-वधुओंके साथ अपने घर आया। मित्र एवं बांधवोंका उचित सम्मान करके, भेंट आदि देकर उन्हें आदर पूर्वक बिदा दी गयी और प्रदोषकाल आ जानेपर वर, वधुओंके साथ सुंदर रूपसे सजे हुए शयनकक्षमें प्रविष्ट हुआ। उपर्युक्त संपूर्ण वर्णन मानो आज ही किसी विवाहका साक्षात् चित्र हमारे सामने खींच देता है। वणिक् परिवारके विवाहमें वणिकोंका सामाजिक भोज और विप्र विवाहमें विप्रोंका भोज जानी-पहचानी बातें हैं।

इन्हीं वर्णनोंसे यह भी स्पष्ट होता है कि उस कालमें संयुक्त परिवार प्रणाली थी। घरमें पिता ही कुलपति होता था और परिवारमें उसका स्थान सर्वोच्च था। विवाह एक साथ एकाधिक कन्याओंसे किये जा सकते थे। पचीस-तीस वर्ष पूर्वतक भारतमें यह प्रथा सुप्रचलित थी; विशेषकर समृद्ध क्षत्रिय एवं राजघरानों-में। सूरसेन श्रेष्ठीकी चार युवा सुंदर पत्नियोंकी जो मार्मिक कथा वीर कविने लिखी है (३.१०.१३) वह एक सत्य घटनाके समान प्रतीत होती है। स्वयं वीर कविने चार विवाह किये थे। परंतु कन्याओंके लिए निरपवाद रूपसे एक बार माता-पिता-द्वारा निर्धारित व्यक्ति ही आजन्म एकमात्र पति, स्वामी सब कुछ होता था। जो कुछ पतिका भाग्य वही पत्नीका। हाँ, कोई कन्या या वधू पतिके साधु बन जानेपर संभवतः दूसरा पति कर सकती थी (२.१६); पर इसे अच्छा नहीं माना जाता था। कभी यदि पिता-द्वारा पूर्व निश्चित व्यक्तिसे संबंध होनेकी संभावना न दिखाई दे, तो सुशिक्षित कन्याओंसे दूसरा वर ढूंढ़नेके संबंधमें सलाह ली जाती रही होगी (८.१०)। घरमें पिताके पश्चात् मांकी स्थिति सर्वोच्च थी, और फिर बड़े पुत्रकी। छोटा भाई बड़े भाईको पिता तुल्य मानता था (२.१०.११) और बड़ा भाई छोटेको पुत्रवत् स्नेहसे रखता व उसके साथ गृहस्थीका संचालन करता था (२.६)। पुत्री और बहूका स्थान समान अधिकारकी दृष्टिसे बादमें आता था।

अन्य सामाजिक प्रथाएँ, दैनिक जीवन एवं मनोरंजनके साधन

मृत पतिके साथ पत्नीके द्वारा जीवित ही उसकी चितामें जल मरनेकी प्रथा इस देशमें सन् १८२९ में राजा राममोहनरायके जीवनकालमें अंगरेजी सरकारने कानून-द्वारा बंद करायी थी। यद्यपि अथर्व वेदमें पतिकी मृत्युके बाद उसकी विधवा पत्नीके लिए मर जाना ही धर्म कहा गया है; परंतु पतिकी चितामें एक बार उसके साथ लेटनेपर, उसे संतति और संपत्ति रूपी वरदानकी प्राप्ति बतलायी गयी है। ऋग्वेदके समान ही अथर्ववेदमें भी विधवाको चितासे उठकर नये पतिका अनुसरण करनेको कहा गया है। और इस प्रकार मृत पतिकी चितामें एकबार उसके साथ लेटनेपर विधवा पत्नीको उसमें-से उठाकर उसका दूसरा विवाह वहीं सबकी साक्षीमें कर दिया जाता था। परंतु कुछ अशुभ कारणोंसे इस प्रथामें परिवर्तन आया, तथा विधवा पत्नीको मरे हुए पतिके साथ उसकी चितामें ही जल-मरनेको बाध्य किया जाने लगा।[१] भवदत्त-भवदेवके पिताकी मृत्युके उपरांत उनकी माँ जीवित हो उनके पिताकी चितामें जल मरी (२.५)। यह उल्लेख कविके समयकी किसी घटनाकी ओर संकेत करता है। उनके पिता धार्मिक ब्राह्मण होनेसे कुष्ठरोगसे पीड़ित हो जानेपर विष्णुका स्मरण करते हुए जीवित ही स्वयं अपनी चिता रचकर अग्निमें प्रविष्ट हुए थे। कुष्ठ व्याधिका कोई उपचार न होनेसे एक धार्मिक व्यक्तिके लिए इस जीवनको समाप्त कर देनेके सिवाय और श्रेष्ठतर उपाय क्या हो सकता था ? और शायद यह समाजमान्य भी रहा होगा। सती प्रथाके प्रचलनका एक और संकेत युद्ध वर्णनमें (जं० सा० च० ६.८) में मिलता है कि प्रियतमके साथ मरनेकी इच्छासे आयी हुई एक सुभटप्रिया शस्त्रोंसे अत्यंत क्षत-विक्षत योद्धाओंके शवोंमें अपने प्रियतमको पहचान नहीं पायी, और झूरती हुई बैठ रही।

१. इस प्रथापर विशेष जानकारीके लिए देखें : Encyclopaedia of Religion & Ethics.

दैनिक उपयोगकी वस्तुओंमें जल रखनेके निमित्त (मृत्तिका निर्मित) करवेका प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है (१.५, १.१८)। विन्ध्य देशकी स्त्रियोंका कटिवस्त्र (धोती, साड़ी)में कछौटा लगाना, और लोगोंका मोटे वस्त्रसे शिरपर गोलाईदार दुपट्टा (पगड़ी) बाँधना (५.७) ये सच्ची बातें हैं। नगरमें हस्ती आदि कृत कोई आकस्मिक उपद्रव खड़ा होनेपर जान रक्षाकी दौड़-धूपमें विट और कुट्टनियों तथा स्वेच्छाचारिणी कामिनियों-द्वारा इस विकट परिस्थितिका लाभ उठा लेना (४.२१), जल-क्रीड़ाके समय किसी विटके द्वारा डुबकी लगाकर किसी दासीको पैर पकड़कर घसीट ले जाना और दासीके चिल्लानेपर पास ही खड़ी कुट्टनीका और जोरसे चिल्ला पड़ना (जिससे कोई दासीकी पुकार सुन न सके, ४.१९) ये सामाजिक जीवनके मनोरंजक चित्र हैं।

सेनाके प्रयाणके समय मार्गके नगरों व ग्रामोंमें संक्षोभकी स्थिति, सैनिकोंका लोगोंके घरोंमें घुस पड़ना, कहीं अति साहसी लोगोंके द्वारा क्रुद्ध होकर राजसेनाका कोई हाथी पकड़ लिया जाना अथवा खेतोंमें हानि पहुँचानेपर किसी घोड़ेको पीटना या मार डालना (५.७) तत्कालीन लोकजीवनकी वास्तविक झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

मनोरंजनके साधनोंमें जल-क्रीड़ा, उद्यान-क्रीड़ा, गोपियोंके रास व चर्चरी नृत्य, कामिनियों-द्वारा गायन, वादन व नृत्यादि सर्व-प्रचलित थे; तथा द्यूतक्रीड़ा और वेश्यागमनको भी शासन व समाज दोनोंसे मान्यता प्राप्त थी, और कुछ लोगोंके लिए ये आजीविकाके साधन भी थे (४.२;८.३;९.१२-१३)।

शिक्षा और साहित्य

जं० सा० च० के अध्ययनसे तत्कालीन भारतमें शिक्षा और साहित्यके संबंधमें निम्न जानकारी उपलब्ध होती है :—

(क) ब्राह्मणोंकी शिक्षा-दीक्षा : प्राचीन आश्रम पद्धतिपर आधारित थी। परंतु आश्रमोंका कोई उल्लेख नहीं है। विद्यार्थी गुरुके घरपर ही शिक्षा ग्रहण करते थे। श्रुति, स्मृति, वेद, कथा (पुराण), व्याकरण और ज्योतिष और निघंटु तथा छंदःशास्त्रकी पारंपरिक शिक्षा शिष्योंको प्रदान की जाती थी। यज्ञ, पशुबलि और सोमपानका प्रचलन था। चौर्यविद्याका भी संभवतः किसी रूपमें शिक्षण रहा होगा (३.१४), जैसा कि मृच्छकटिककार शूद्रकके समय तक होनेके निश्चित संकेत मिलते हैं।

(ख) जैन बालकोंकी शिक्षा गुरुओंके घरपर जैन साहित्यमें होती। परंतु व्याकरण, निघंटु, काव्य और छंद तथा दर्शन शास्त्र और तर्क शास्त्रकी शिक्षा सबके लिए समान रूपसे प्रचलित थी। बड़े घरानोंके युवकोंको हस्तिशिक्षा, अश्वशिक्षा, युद्धकला आदि क्षात्र विद्याओंका भी अभ्यास कराया जाता था। समृद्ध व सुसंस्कृत जैन परिवारोंमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तीनों भाषाओंकी शिक्षा देनेका प्रचलन था (४.१२.११)।

(ग) धनवान् कुलीन घरानोंमें कन्याओंको भी शिक्षा दी जाती थी और सामान्य शिक्षाके अतिरिक्त उन्हें वाद्य-वादन, गायन, नृत्य एवं कामशास्त्रकी भी शिक्षा प्रदान की जाती थी (४.१२)।

(घ) साधारण समाजमें रास क्रीड़ा (१.७.९-१०) और चर्चरी नृत्योंका प्रचलन था (१.४.५)। अर्थात् ११वीं शतीमें प्रचुर परिमाणमें रास एवं चर्चरी साहित्य उपलब्ध था।

(ङ) रामायण, महाभारत, वेद, श्रुति, स्मृति, पुराण, व्याकरण, निघंटु, छंद, अलंकार, दर्शन, न्याय और तर्क एवं रास और चर्चरीके एकाधिक बार उल्लेख होनेसे प्रतीत होता है कि उपर्युक्त विषयोंपर प्रभूत साहित्य देशमें उपलब्ध तथा पठन-पाठनमें प्रचलित था। व्याकरणोंमें कविके समय पाणिनीय व्याकरण-के पतंजलि कृत महाभाष्यपर कैयट (विक्रम ११वीं शतीके पूर्व) कृत 'महाभाष्य प्रदीप' (प्रचलित नाम प्रदीप) का विशेष प्रचलन रहा ज्ञात होता है, क्योंकि वीर कविने विशेष रूपसे प्रदीपका नामोल्लेख शब्द-शास्त्र कहकर किया है (जं० सा० च० १.३.२)। संस्कृत साहित्य एवं संस्कृत व्याकरण साहित्यके इतिहासोंसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है।[1]

---

1. वाचस्पति गैरोला—सं० सा० का संक्षिप्त इति०, पृ० ३७६ 'कैयट'; युधिष्ठिर मीमांसक—सं० व्याकरण सा० का इति० भा० १; शालग्राम शास्त्री—साहित्य दर्पण हिन्दी विमला व्याख्या। (प्रथमावृत्ति) भूमिका पृ० ५

धार्मिक स्थिति

अत्यंत प्राचीनकालसे ही यह देश धर्मप्राण रहा है, और इस भारतभूमिने न केवल मानवजगत्, अपितु सृष्टिके जीवमात्रके हित-सुख-कल्याणकी भावना रखनेवाले महान् धर्मोंको जन्म दिया है। पशुबलि प्रधान यज्ञ-यागादिका धर्म यहाँ अधिक युगों व शतियों तक ठहर नहीं सका। बुद्ध और महावीरने एक बार इसके विरुद्ध जो अहिंसाकी ध्वजा उठायी, तो फिर वह निरंतर उन्नत ही होती गयी। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० तक क्वचित् पशुबलि प्रधान यज्ञ होते रहे, पर उनकी संख्या और परिमाण बहुत कम हो गये। इस बाह्य कर्मकांडमय धर्मके विरुद्ध यहाँ आभ्यंतर आचारशुद्धि या भावशुद्धि प्रधान धर्मोंका प्रचार-प्रसार हुआ और वैदिक परंपराके धर्मोंने भी अहिंसा प्रधान आचारको अपनेमें पूर्णतः आत्मसात् कर अपनेको उसके अनुरूप बना लिया। वैदिक शैव और वैष्णव धर्म या पाशुपत और भागवत संप्रदाय पूर्ण-रूपसे अहिंसा प्रधान हैं। आधुनिक काल तक योगियों और साधु-संतोंकी परंपरा पूर्ण अहिंसा एवं सर्वजीव-कल्याणकी भावनासे ओतप्रोत है। आत्मा और पुनर्जन्म, अतः स्वर्ग-नरक एवं मोक्षमें विश्वास इन समस्त अहिंसा प्रधान भारतीय धर्मोंकी आधारभूमि है और इसी विश्वाससे प्रेरित हो यहाँ लौकिक जीवन और सांसारिक कर्मोंका नियमन, निर्धारण किया जाता रहा है। इसी विश्वासके अनुरूप दैनिकचर्या और नाना प्रकारके धार्मिक विश्वास यहाँके लोकजीवनमें प्राचीनकालसे अखंड परंपरासे चलते आ रहे हैं, और प्रत्येक संप्रदाय अपने-अपने इष्ट देवताओंकी अपनी-अपनी रीतिसे पूजा-भक्ति करता चला आया है। जं० सा० च०-में भी ऐसे अनेक धार्मिक विश्वासों व क्रिया-कलापोंका उल्लेख किया गया है। तीसरी संधिमें जिन-मूर्तियोंका न्हवन व श्रमणोंकी वंदना आदिके पुण्यप्रभावसे भवदेवका देवगतिमें जाना और वहाँसे आयु पूर्ण होनेपर वीतशोक नगरीके महापद्म नामक राजाकी महादेवी वनमालाके गर्भमें आना एक ऐसा ही विश्वास है। जंबूकुमारके गर्भमें आनेसे पूर्व उसकी माँ जिनमतीको जंबूफलोंका गुच्छा, निर्धूमाग्नि, धानसे लदा हरा-भरा खेत, खिले फूलोंसे परिपूर्ण कमल सरोवर और जलजीवोंसे संकीर्ण सागर, ये स्वप्न होना, ऐसे ही धार्मिक विश्वासोंके प्रतीक हैं। शुभ घटनाएँ, जैसे महापुरुषोंका जन्म आदि, अथवा कोई महान् दुर्घटनाएँ भी काल चक्रमें किसी-न-किसी रीतिसे अपने आगमनके पूर्वसंकेत दे देती हैं। शुभ नक्षत्र और तिथिमें शिशुका जन्म लेना और जन्मके साथ आकाशका स्वच्छ, धवल, निरभ्र हो जाना; दिशाओंका धूलिरहित निर्मल हो जाना और समस्त वृक्ष, वनस्पति एवं शस्यका हरा-भरा हो जाना, फूल उठना, इन मान्यताओंमें यही विश्वास है कि महापुरुषोंके पुण्य और धर्मकी शक्ति महान् होती है और वह सारी चराचर सृष्टिको प्रभावित करती है, क्योंकि धर्मका लोकजीवनसे और लोकका समयसे अभिन्न एवं अन्योन्याश्रयी संबंध है। अतः महापुरुषोंकी धार्मिक शक्तिका प्रभाव लौकिक घटनाओंपर पड़ना स्वाभाविक है। पुत्र-जन्म, विवाहादि अवसरोंपर बधाई देनेकी लोकरीतिके पीछे भी यही धार्मिक भावना है कि शुभ भावनाओंकी शक्ति अनंत होती है और उसका प्रभाव शिशु और नये वर-वधू आदिके भविष्य जीवनमें मंगलकारक होता है।

ये ही विश्वास जब आत्मासे बढ़कर परमात्मा और देवोंमें केंद्रित हो जाते हैं, तब ये इष्ट देवताओं-की भक्तिपूर्वक पूजा, उनसे कोई वरदान मिलना या माँगना अथवा पुण्यके प्रभावसे महान् संततिका जन्म होना आदि लौकिक मान्यताओंके रूपमें प्रस्फुटित होते हैं। जिनपूजा आदिके प्रभावसे शिवकुमार-का जन्म, और सेठकी चार पत्नियोंका नागयक्षसे यह वर माँगना कि शूरसेनके समान पति पुनः न मिले (३.१३), इसी प्रकारके विश्वास हैं। इससे यह भी पता चलता है कि नागपूजा इस देशमें कितनी प्राचीन है।

विद्याधरोंका आकाशगमन, आलोकिनी आदि दिव्यविद्याएँ, आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, केरलमें जंबूकी विजयपर आकाशमें देवताओंका नृत्य करना और जंबूको केवलज्ञान प्राप्त होनेपर देवोंका आना व हर्ष मनाना ये सब बातें पुण्यकी महत्ताकी द्योतक हैं। क्योंकि कहा गया है कि पुण्यवानोंको ही ये विशिष्ट शक्तियाँ, दिव्यास्त्र एवं केवलज्ञान आदि उपलब्ध होते हैं।

साधुओं या गृहस्थोंपर दैवीकृपा या दैवीप्रकोप भी पुण्य या पापके प्रभावसे ही माना जाता है। विद्युच्चरके ऊपर चंडमारीदेवीका अपने गणों सहित उपसर्ग (१०.२६), यद्यपि स्वयं चंडमारी देवीकी दूषित भावनासे उत्पन्न नहीं है, तथापि विद्युच्चरके चोरके रूपमें किये हुए महान् कुकृत्य व पाप उसके मूल कारण रूपमें विद्यमान हैं।

कुछ शुद्ध लौकिक विश्वासोंका भी जं० सा० च०में उल्लेख है, जिनमें तंत्र, मंत्र, अद्‌भुत औषधियों आदि विषयक मान्यताएँ हैं। शृगालकी कथामें आता है कि एक कामुकने शृगालका दाँत लेकर उससे अपनी प्रियाको वशमें करनेके लिए उसका दाँत तोड़ डाला (९.११)। विद्युच्चरने औषधिके प्रभावसे अपने पिताके पहरेदारको स्तंभित कर दिया (३.१४); जागते हुए राजाको भी सोते सरीखा बना दिया (३.१४); जंबूकी माँसे कहा कि मैं ऐसे श्रुति-शास्त्रोंको जानता हूँ जिनसे दूसरोंका चित्त जान लेता हूँ और जिनमें लोगोंका वशीकरण, स्तंभन और मोहन, प्रेमी व प्रेमिकाको मिलाने और विघटित करने; जागे हुओंको सुलाने व सोते हुओंको स्वप्नमें जागरणका सुख देनेकी शक्ति है (९.१६)। ये सब बातें शुद्ध लौकिक विश्वास हैं। तथापि इनके साथ भी धर्मका संबंध किसी-न-किसी रूपमें जुड़ा हुआ है।

व्रत, उपवास, तप आदिका धार्मिक साधनासे अभिन्न संबंध है। इस देशमें लोग नाना प्रकारके व्रतोपवास आदि धर्मभावनासे करते रहे हैं। जैनेतर संप्रदायोंमें चांद्रायण व्रत[1] करनेका प्रचलन रहा है। स्वयं चंद्रमाके द्वारा चांद्रायणव्रत किये जानेके व्याजसे वीर कविने इस व्रतके प्रचलनका उल्लेख किया है (४.१४)।



1. इस व्रतमें कृष्ण प्रतिपदाके दिनसे चंद्रमा घटनेके साथ-साथ प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन घटाते हुए अमावस्याके दिन पूर्ण निराहार रहा जाता है; और शुक्ल प्रतिपदाको एक ग्रास भोजन लेकर प्रतिदिन एक-एक ग्रास बढ़ाते हुए पूर्णिमाके दिन केवल १५ ग्रास आहार किया जाता है। इस प्रकार यह व्रत एक मासमें पूर्ण होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं संकेत सूची

१. अपभ्रंश काव्यत्रयी; जिनदत्तसूरि; संपा० लालचंद भगवानदास गांधी, गा० ओ० सि० क्र० ३७, १९२७ ई०

२. अपभ्रंश पाठावली; संपा० मधुसूदन चिमनलाल मोदी; गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी, अहमदाबाद सन् १९३५ ई०

३. अपभ्रंश भाषा और साहित्य; डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६५ ई०

४. अपभ्रंश साहित्य; डॉ० हरिवंश कोछड़; भा० सा० मंदिर, दिल्ली, वि० सं० २०१३

५. अनुत्तरोपपातिक दशासूत्र; सुत्तागमे भाग १, संपा० पुप्फभिक्खु

६. अन्तकृद्दशासूत्र; वही

७. अभिनव प्राकृत व्याकरण; डॉ० नेमिचंद्र शास्त्री; तारा प्रकाशन वाराणसी, सन् १९६३ ई०

८. आख्यानकमणिकोश; नेमिचंद्र सूरि, प्रा० टै० सो० ग्रंथांक ५, सन् १९६२ ई०

९. आचाराङ्गसूत्र; अनु० सौभाग्यमलजी महाराज; जैन साहित्य समिति उज्जैन, वि० सं० २००७

१०. उत्तररामचरित; भवभूति; हिंदी अनु० सहित; चौ० सं० सिरीज़, वाराणसी।

११. उत्तराध्ययन; संपा० जे० चार्पेन्टियर; उपसाल विश्वविद्यालय जर्मनी सन्, १९२२ ई०

१२. उत्तरपुराण (उ० पु०); गुणभद्र; संपा० अनु० पं० पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५४ ई०

१३. उपासकदशाङ्ग सूत्र; संपा० एन० जी० गोरे,

१४. उपासकाध्ययन (भूमिका); सोमदेव; संपा० अनु० पं० कैलाशचंद्र शास्त्री; भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९६४ ई०

१५. कथासरित्सागर; सोमदेव (हिंदी) अनु० बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

१६. कल्पसूत्र; स्थविरावलीचरित

१७. कहकोसु; (अपभ्रंश); श्रीचन्द्र; संपा० डॉ० ही० ला० जैन; प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, द्वारा शीघ्र प्रकाश्यमान

१८. कालिदासग्रन्थावली; संपा० अनु० पं० सीताराम चतुर्वेदी, अलीगढ़

१९. काव्यप्रकाश; मम्मट; हिंदी अनु० व टीका डा० सत्यव्रत सिंह, चौ० वि० भ० वाराणसी, प्र० १५, वि० सं० २०१२

२०. जंबू अंतरंगरास अथवा जंबूकुमार विवाहलो; सहजसुंदर; हस्तलिखित प्रति लाल० दल० शोध सं०, अहमदाबाद

२१. जंबूकुमार चौपाई; अथवा जंबूस्वामीरास, पाठक भुवनसुंदरगणि हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, वही

२२. जंबूकुमार रास; वाचक जसविजय हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, वही

२३. जंबूकुमार रास; मुनि भूधर, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही

२४. जंबूचरित; अथवा जंबूस्वामि अज्झयण (प्राकृत) हस्तलिखित प्रतियाँ, प्राप्तिस्थान, (१) वही; (२) प्राच्य संस्थान बड़ौदा; (३) भंडारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूना

२५. जंबूचरियं (प्राकृत); गुणपाल, संपा० मुनि जिनविजय, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, बंबई

२६. जंबूपृच्छा रास; अथवा कर्मविपाक रास, वीरजी मुनि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद

२७. जंबूसामिचरित्तं (प्राकृत); पूर्व मुनि जिनविजय; जैन साहित्यवर्द्धक सभा, भावनगर, वि० सं० २००४
२८. जंबूस्वामीकथा; विजयशंकर विद्याराम, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
२९. जंबूस्वामीगीता; उपा० यशोविजय, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३०. जंबूस्वामीगुणरत्नमाला; जेठमल चोरडिया, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३१. जंबूस्वामी चरित; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३२. जंबूस्वामी चरित्र; भावशेखर साह, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३३. जंबूस्वामी चरित्र; धर्ममुनि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३४. जंबूस्वामी चरित्र; काव्य, जयशेखर, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
३५. जंबूस्वामी चरित्र; भाषा, पांडे जिनदास, हस्तलिखित प्रति, पंचायती दि० जैन मंदिर, सरधना
३६. जम्बूस्वामी चरित्र; ब्रह्म जिनदास, हस्तलिखित प्रतियाँ (१) जयपुर शास्त्रभंडार, (२) ऐलक पन्नालाल जैन, सरस्वती भवन ब्यावर, (३) भ० ओ० रि० इन्स्टी०, पूना
३७. जम्बूस्वामी चरित; पं० राजमल्ल, संपा० डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला, क्र०, ३५, वि० सं० १९९३
३८. जम्बूस्वामी चरित; मानसिंह, हस्तलिखित प्रति, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना
३९. जम्बूस्वामी चौपाई; जिनप्रभसूरि, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान ला० द० शो० सं० अहमदाबाद
४०. जम्बूस्वामी चौपाई; अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४१. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान वही
४२. जम्बूस्वामी रास; उपा० यशोविजय, संपा० डॉ० र० ला० भी० ला० शाह, प्रकाशित
४३. जम्बूस्वामी रास; नयविमल, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान; ला० द० शो० सं०, अहमदाबाद
४४. जसहरचरिउ, पुष्पदंत, संपा० डॉ० प० ल० वैद्य, अम्बादास चवरे, दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० सं० १९८७
४५. जातक, हिंदी अनुवाद, भाग १-६, अनु० भ० आ० कौसल्यायन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सन् १९४१ से १९५६ तक
४६. जिनरत्नकोश, संपा० डॉ० एच० डी० वेलणकर, भ० ओरि० रि० इन्स्टी०, पूना १९४४
४७. जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार, फतेहचंद बेलाणी, जै० सं० संशो० मंडल, वाराणसी, सन् १९५०
४८. जैन ग्रन्थावली, जैन श्वे० कान्फरेन्स, मुंबई, वि० सं० १९६५
४९. जैन सत्यप्रकाश, वर्ष ४, अंक १-२, वि० सं० १९९४
५०. जैन साहित्य और इतिहास (द्वि० संस्करण), नाथूराम प्रेमी, संशोधित साहित्यमाला प्रथम पुष्प, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बंबई वि० सं० २०१२
५१. जैन साहित्यका इतिहास, पूर्व पीठिका, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, गणेश० वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला वाराणसी, वीर नि० सं० २४८९
५२. णायकुमार चरिउ, पुष्पदन्त, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, देवेन्द्रकीर्ति दि० जैन ग्रन्थमाला १, वि० स० १९८९
५३. तत्त्वार्थसूत्र, ज्ञानपीठ पूजाञ्जलि, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, सन् १९५७
५४. तिलोयपण्णत्ति, यतिवृषभ, जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर, ग्रन्थांक १-२, वि०सं० २०००,२००७
५५. तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु, (महापुराण)—पुष्पदंत, संपा० डॉ० प० ल० वैद्य, मा० दि० जैन ग्रन्थमाला ३७,४१,४४, सन् १९३७, १९४०, १९४१
५६. दशवैकालिक चूर्णि, जिनदासगणि, ऋषभदेव केशरियाजी, श्वे० संस्था० रतलाम, वि० सं० १८८९
५७. धर्माभ्युदयमहाकाव्य, उदयप्रभ, सिंघी जैन ग्रन्थमाला ४, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं० २००५
५८. धर्मोपदेशमाला विवरण, जयसिंहसूरि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन बंबई, वि० सं०····

५९. नायाधम्मकहाओ, संपा० एन० व्ही० वैद्य, पूना
६०. नंदीसूत्र, आगमोदय समिति प्रकाशन
६१. निरयावलियाओ, सुत्तागमे भाग २, संपा० पुप्फभिक्खु
६२. निशीथचूर्णि (सभाष्य) भाग १–४, उपा० अमरमुनि, सन्मति ज्ञानपीठ आगरा, १९५७–६०
६३. पउमचरिउ, स्वयम्भू, संपा० डॉ० ह० व० मायाणी (भाग १–३), सिंघी जैन ग्रन्थमाला ३४–३६, भारतीय विद्याभवन, बंबई १९५३, १९६०
६४. पउमचरियं, विमलसूरि, प्रा० टे० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थांक ६, सन् १९६२ ई०
६५. परिशिष्ट पर्व, हेमचन्द्राचार्य, संपा० डॉ० हर्मन जैकोबी, एशियाo सोसायटी कलकत्ता, ग्रन्थांक ५७, सन् १८८३ ई०
६६. प्रश्नव्याकरण, सुत्तागमे भाग–१, संपा० पुप्फभिक्खु
६७. प्रभवजंबूस्वामिवेलि, अज्ञात कर्तृक, हस्तलिखित प्रति, प्राप्तिस्थान, ला० द० शो० सं० अहमदाबाद
६८. प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य, डॉ० रामसिंह तोमर
६९. प्राकृत-पैङ्गलम्, भाग १, डॉ० भोलाशंकर व्यास, प्रा० टे० सोसा० वाराणसी, ग्रन्थांक २, सन् १९५९ ई०
७०. प्राकृत-प्रकाश, वररुचि, सी० कुन्हन राजा, अडयार लायब्रेरी सिरीज, क्र० ५४, सन् १९४६ ई०
७१. प्राकृत व्याकरण, हेमचन्द्र, संपा० डॉ० प० ल० वैद्य, विलिंगडन कोलेज सांगली, सन् १९२८ ई०
७२. प्राकृत भाषा और साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, तारा प्रकाशन, वाराणसी १९६५
७३. बृहत्कथाकोश, हरिषेण, संपा० डॉ० आ० ने० उपाध्ये, सिंघी जैन सिरीज, भारतीय विद्याभवन, बंबई
७४. भगवती सूत्र, (व्याख्या प्रज्ञप्ति), अभयदेव कृत टीका सहित, आगमोदय समिति प्रकाशन
७५. भट्टारक सम्प्रदाय, डा० विद्याधर जोहरापुरकर, जीवराज जैन ग्रन्थमाला ८, शोलापुर वि०सं०२०१४
७६. भविसयत्तकहा, धनपाल, संपा० सी० डी० दलाल, पी० डी० गुणे, गा० ओ० सिरीज × ×, सन् १९२३ ई०
७७. भारतीय संस्कृतिमें जैनधर्मका योगदान, डॉ० ही० ला० जैन, म० प्र० शा० सा० परिषद्, भोपाल, सन् १९६० ई०
७८. भोजप्रबन्ध, बल्लाल, हिन्दी अनुवाद (भूमिका), पं० जगदीश लाल शास्त्री
७९. मनुस्मृति, संपा० पं० चिन्तामणि शास्त्री, चौ० सं० सिरीज ११४, वाराणसी, वि० सं० १९९२
८०. मुद्रित जैन श्वेताम्बर ग्रन्थ नामावली
८१. यशस्तिलक चम्पू, सोमदेव, हिन्दी, अनु० पं० सुंदरलाल शास्त्री, महावीर जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी सन् १९६० ई०
८२. राजस्थानके जैन भण्डारोंकी ग्रन्थसूची, भाग १–४, संपा० डॉ० कस्तूरचन्द्र काशलीवाल, जैन शोध संस्थान, महावीर भवन, जयपुर
८३. वसुदेव हिण्डी, (मूल प्राकृत), संघदासगणि, संपा० मुनि चतुरविजय पुण्यविजय, जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर, सन् १९३० ई०
८४. वसुदेव हिण्डी, गुजराती अनुवाद, अनु० डॉ० भोगीलाल जे० सांडेसरा, बड़ौदा
८५. विपाकसूत्र, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुप्फभिक्खु
८६. व्यवहार भाष्य
८७. संस्कृत व्याकरण शास्त्रका इतिहास, युधिष्ठिर मीमांसक, प्रका० पं० भगदत्त वे० साधनाश्रम, देहरादून
८८. संस्कृत साहित्यका इतिहास, वाचस्पति गैरोला चौ० सं० सि० ग्र० २९; सन् १९६०

८९. समराइच्चकहा, हरिभद्रसूरि, संस्कृत छाया, पं० भगवानदास, अहमदाबाद, सन् १९३८
९०. साहित्य दर्पण, विश्वनाथ, हिन्दी विमला व्याख्या, पं० शालिग्राम शास्त्री
९१. सुदंसणचरिउ, मुनि नयनंदि, संपा० डॉ० ही० ला० जैन, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली-द्वारा शीघ्र प्रकाश्यमान
९२. सूत्रकृताङ्ग, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुप्फभिक्खु
९३. सेतुबंध, प्रवरसेन, काव्यमाला ग्र० ४७, निर्णय-सागर प्रेस, मुंबई सन् १९३५ ई०
९४. सेतुबंध; हिन्दी अनुवाद, डॉ० रघुवंश, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
९५. सौन्दरनन्द काव्य, अश्वघोष, हिन्दी अनु०, पं० सूर्यनारायण चौधरी, संस्कृत भवन, कठौतिया, (जिला पूर्णिया, बिहार)
९६. स्थानाङ्गसूत्र, सुत्तागमे भाग १, संपा० पुप्फभिक्खु
९७. हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योगदान. डॉ० नामवरसिंह (द्वि० संस्करण)
९८. हिन्दी साहित्यकोश, संपा० डॉ० धीरेन्द्रवर्मा, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
९९. हरिभद्रके प्राकृत कथा साहित्यका आलोचनात्मक अध्ययन, डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, प्राकृत शोध संस्थान वैशाली, १९६५
100. Encyclopaedia of Religion and Ethics.
101. Historical Geography of Ancient India, B. C. Law.
102. Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, N. L. Dey.
103. Twenty five hundred years of Buddhism, P. V. Bapat, Govt. of India 1956 A. D.

संकेत

अप०—अपभ्रंश
आज्ञा०—आज्ञार्थक
आत्मने०—आत्मनेपदी
उ० पु०—उत्तमपुरुष
एकव०—एकवचन
जं० च०—जंबूचरियं
जं० सा० च०—जंबूसामिचरिउ
त० सू०—तत्त्वार्थसूत्र
तृ० पु०—तृतीयपुरुष
द्वि० पु०—द्वितीयपुरुष
दे—देशी
पु०—पुल्लिङ्ग
बहुव०—बहुवचन
भवि०—भविष्यत्काल
वसु० हिंडी—वसुदेवहिण्डी
विधि०—विधिलिङ्ग
विशे०—विशेषण
स्त्री०—स्त्रीलिङ्ग
हि०—हिन्दी

वीर-विरइउ

जंबूसामिचरिउ

[संधि—१]

विजयंतु वीरचरणग्गचंपिए मंदरम्मि थरहरिए ।
कलसुच्छलंततोए सुरगिरिलग्गंतबिंदुछंकारा ॥ १ ॥
सो जयउ जस्स जम्माहिसेयपय[2]-पूरपंडुरिज्जंतो ।
जणियहिमसिहरिसंको कणयगिरी राइओ नइया ॥ २ ॥
जयउ[3] जिणो जस्सारुणनहमणिपडिलग्गचक्खुसहसक्खो ।
अणियच्छिय[4]-सव्वावयव दुत्थपरिकलियलोयणो जाओ ॥ ३ ॥
भमिरभुअवेयभामियजोइसगणजणिय रयणि-दिणसंकं ।
इय जयउ जस्स पुरओ पणच्चियं चारु सुरवइणा ॥ ४ ॥
सो जयउ महावीरो झाणाणलहुणियरइसुहो जस्स ।
नाणम्मि फुरइ भुअणं एक्कं नक्खत्तमिव गयणे ॥ ५ ॥

संधि—१

[मंगलाचरण]

महावीर भगवान्‌के चरणाग्र (अंगुष्ठ) से आक्रान्त होनेपर मंदराचलके कंपायमान होनेसे (अभिषेक) कलशोंसे छलकते हुए जलकी सूर्यसे टकराती हुई छिटकारें जयवंत हों ॥१॥ उन (महावीर भगवान्) की जय हो जिनके जन्माभिषेकनिमित्तक जलके पूरसे पांडुवर्ण होता हुआ कनकाचल (सुवर्णगिरि मेरु) हिमगिरिकी शंका उत्पन्न करता हुआ शोभायमान हुआ ॥२॥ वे जिन भगवान् जयवंत हों जिनके अरुण-नख रूपी मणियोंमें ही अपने समस्त चक्षुओंको लगा देनेवाला सहस्राक्ष (इन्द्र) भगवान्‌के शेष सब अवयवोंको न देख सकनेके कारण दुस्थ अर्थात् दरिद्र व परिसीमित अर्थात् अपर्याप्त नेत्रों वाला हुआ ॥३॥ घूमती हुई (स्वऋद्धिनिर्मित सहस्र) भुजाओंके वेगसे समस्त ज्योतिर्गणोंको घुमा देने अर्थात् स्वस्थान-भ्रष्ट कर देनेके कारण रात्रि है या दिन ऐसी; अथवा रातमें दिन और दिनमें रात ऐसी; अथवा क्षण-क्षणमें कभी दिन कभी रात, ऐसी शंका उत्पन्न करनेवाले सुरपतिने जिनके सामने अभिराम नृत्य किया, ऐसे जिन भगवान् जयवंत हों ॥४॥ उन महावीर भगवान् की जय हो जिनके द्वारा अपने (आत्म) ध्यानरूपी अनलमें रतिसुख अर्थात् विषयसेवन, अथवा रति अर्थात् निजभार्या, उसके साथ काम-भोगका भाव भस्मसात् कर दिया गया है और जिनके ज्ञानमें समस्त भुवन इस प्रकार स्पष्ट झलकता है जैसे आकाशमें एक नक्षत्र ॥५॥ अपने दोनों पार्श्वों में स्थित नमि तथा विनमिकी कृपाणोंमें

[१] १. क ड चल°; ख ग °ग्गि । २. क ड °पइ । ३. क ड °इ । ४. ख ग °इच्छिय । ५. ड, च क भुअ° । ६. ख ग घ झाणानल ।

जयउ जिणो पासट्ठियनमिविणमिकिवाणफुरियपडिबिंबो।
गहियण्णरूव[7]जुयलो व्व तिजयमणुसासिउं[8] रिसहो ॥ ६ ॥
जयउ सिरिपासणाहो रेहइ जस्संगनीलिमाभिन्नो।
फणिणो [9]तडिच्छुरियनवघणो व्व मणिगब्भिणो फणकडप्पो ॥ ७ ॥

[१]

पंच वि पणवेप्पिणु परमगुरु मोक्खमहागइगामिहि।
पारंभिय पच्छिमकेवलिहि[10] जिह[11] कह[12] जंबूसामिहि[13] ॥ ध्रुवकं ॥

पणमामि जिणेसरु वड्ढमाणु किउ जेण तित्थु जगे वड्ढमाणु।
ससुरासुरकयजम्माहिसेउ संसारसमुद्दुत्तारसेउ।
चलणग्गं[14] दोलियमेरुधीरु [15]निन्नासियसक्कासंकवीरु[16]।
नहकंतिजित्तससिसूरधामु परियाणियलोयालोयधामु।
जयसासणु विहरियसमवसरणु चउगइदुहपीडियजीवसरणु।
झाणग्गिभूइकयकम्मबंधु भव्वयणकमलकंदोट्टबंधु।
वरकमलालिंगियचारुमुत्ति रयणत्तयसाहियपरममुत्ति।

जिनका प्रतिबिम्ब पड़ रहा है, जिनसे ऐसा लगता है कि मानो तीनों लोकोंका धर्मानुशासन करनेके लिए उन्होंने अपने ही अन्य युगल रूप निर्माण किये हैं, उन ऋषभजिनकी जय हो ॥६॥ श्रीपार्श्वनाथकी जय हो जिनके शरीरकी नीलिमासे विलक्षण सर्प (धरणेन्द्र) का मणिगर्भित फणाटोप विद्युत्की छटासे युक्त (आषाढ़के) नये मेघके समान शोभायमान है ॥७॥

[१]

पाँचों परमगुरुओं (अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु)को प्रणाम करके मोक्षरूपी महागति अर्थात् श्रेष्ठगतिको जानेवाले अन्तिम केवली जंबूस्वामीकी कथा यथा परम्परा प्रारम्भ की जाती है। मैं उन वर्द्धमान् जिनेश्वरको प्रणाम करता हूँ जिन्होंने लोकमें वर्द्धमान् अर्थात् सर्वोत्कृष्ट धर्मरूपी तीर्थका प्रवर्तन किया व देवताओंसहित असुरों-द्वारा जिनका जन्माभिषेक किया गया और जो संसाररूपी समुद्रसे पार उतारनेके लिए सेतु रूप हैं; जिन्होंने अपने चरणोंके अग्रभाग (अंगुष्ठ) से स्थिर मेरुपर्वतको भी कम्पायमान कर दिया व इस प्रकार शक्रदेवेन्द्रकी शंका (कि यही जिन हैं या नहीं; अथवा कहीं भगवान्का शिशुशरीर इतने सुदीर्घ प्रमाणवाले एक हजार आठ कलशोंके जलाभिषेकके पूरमें बह तो नहीं जायेगा–टि०) को नष्ट कर दिया; तथा जिन्होंने अपने नखोंकी कान्तिसे चन्द्रमा व सूर्यकी प्रभाको जीत लिया है और समस्त लोकालोककी स्थितिको जान लिया है; जगत्को (धर्मका) शासन देनेके लिए जिन्होंने समवशरणके साथ विहार किया, एवं जो चतुर्गति (देव, मनुष्य, तिर्यंच व नरक) के दुःखोंसे पीड़ित जीवोंके लिए शरणभूत हैं; तथा जिन्होंने अपने ध्यानरूपी अग्निसे कर्मबंधको भस्मसात् कर दिया है और जो भव्यजनों रूपी कमलसमूहके लिए सूर्यके समान हैं; व जिन्होंने चारुमूर्त्ति अर्थात् अत्यन्त शोभावती, शुद्धवर्णा व श्रेष्ठ शुद्धात्मस्वरूप लक्ष्मीका आलिंगन किया एवं रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र) के द्वारा परममुक्ति अर्थात् सम्यक्त्वादि अष्टगुणोंसहित सिद्धावस्थाको प्राप्त

---

७. क ख °रूय। ८. क ख °सासिउ। ९. ख ग °छिरिय°। १०. ख क °लिहि। ११. ख ग घ जिहं। १२. क ख कइ। १३. क ख क °हि। १४. क ख °धग्गं। १५. क ख णिण्णा°। १६. ख ग °धीरु।

[17]तइलोयसामि-समभित्तसत्तु [18]वयणसुहासासियसयलसत्तु ।
घत्ता—तित्थंकरु केवलणाणधरु सासयपयपहु सम्मइ[19] ।
जरमरणजम्मविद्धंसयरु देउ देउ महु सम्मइ[19] ॥ १ ॥

[२]

वीरहो पय पणविवि मंदमइ सविणयगिरु जंपइ वीरु कइ ।
जो परगुणगहणकज्जे जियइ सिविणे वि न दोसु लेसु नियइ[1] ।
सो सुयणु सहावें सच्छमइ गुणदोसपरिक्खहिं[2] नारुहइ ।
गुण झंपइ पयडइ दोसु[3] छलु अब्भासें जाणंतो वि खलु ।
परगुणपरिहारपरंपरए ओसरउ हयासु सो वि परए ।
करजोडिवि विउसहो अणुसरमि अब्भत्थण मज्झत्थहो करमि ।
अवसद्दु[4] नियवि मा मणि धरउ परिउंछिवि[5] सुंदरु पउ करउ
कव्वु जे[6] कइ विरयइ एक्कुगुणु[7] अण्णेक्क[8] पउंजिञ्वइ[9] निउणु ।
एक्कु जे पाहाणु हेमु जणइ[10] अण्णेक्कु परिक्खा तासु कुणइ[10] ।
सो विरलु को वि जो उहयमइ एवं विहो वि पुणु हवइ जइ ।

किया; जो त्रैलोक्यके स्वामी हैं तथा शत्रु व मित्रमें समान भाव रखते हैं व जिन्होंने अपनी वचनसुधासे सभी जीवोंको (सद्गति रूप उपलब्धिका) आश्वासन दिया है। ऐसे धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्तक होनेसे तीर्थंकर, केवलज्ञानके धारक, शाश्वतपद (मोक्ष) के स्वामी, जरा, मरण व पुनर्जन्मका विध्वंस करनेवाले सन्मति (महावीर) देव मुझे सन्मति अर्थात् सद्बुद्धि प्रदान करें॥१॥

[२]

वीर भगवान्‌के चरणोंको प्रणाम करके मंदमति वीर कवि विनयपूर्वक कहते हैं–जो दूसरोंके गुणग्रहण करनेके लिए ही जीवित अर्थात् जागृत व उद्यत रहता है और स्वप्नमें भी लेशमात्र दोष नहीं देखता, ऐसा स्वभावसे स्वच्छमति सज्जन (किसीके) गुणदोषोंकी परीक्षामें अयोग्य होता है–अर्थात् उस ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं जाती। परन्तु दुर्जन अपने अभ्यास (आदत) दोषसे जानता हुआ भी दूसरोंके गुणोंको तो ढाँकता है और झूठे दोषको प्रकाशित करता है। दूसरेके गुणोंका निराकरण करनेका जिसका स्वभाव है, ऐसा दुर्जन मेरे इस निर्दोष काव्यमें दोष न ढूँढ़ सकनेके कारण निराश होगा। मैं हाथ जोड़कर विद्वानोंका अनुस्मरण तथा मध्यस्थ जनोंकी अभ्यर्थना करता हूँ। कोई अपशब्द देखकर उसे मनमें धारण न करें। उसे दूरसे ही छोड़कर सुंदर पदरचना कर लेवें। काव्यकर्तृत्व ही जिसका एकमात्र गुण है, वह काव्यरचना ही करता है; और कोई अन्य उसका व्याख्यान करनेमें निपुण होता है। एक पाषाण स्वर्णको उत्पन्न ही करता है, और एक अन्य पाषाण (कसौटी) उसकी परीक्षा ही करता है। ऐसा तो कोई विरला ही होता है जो उभयमति अर्थात् दोनों प्रकारकी (काव्य-रचना व काव्य-परीक्षा अथवा व्याख्यान करनेकी) प्रतिभासे सम्पन्न हो।

१७. ख ग °लोक° । १८. वयणामय° । १९. ख ग °इं ।

[२] १. ख ग °इं । २. घ °क्खहि । ३. क घ क दोसि; ख दोस । ४. क क °सद्द । ५. क क °उञ्छिवि; ख ग उंछवि । ६. क वि । ७. ख ग एक्कु° । ८. ख ग अण्णेक्कु । ९. ख ग °जेवइ । १०. प्रतियों में °इं ।

सुइसुहयरु पढइ फुरंतु मणे   कव्वत्थु निवेसइ नियवयणे।
रसभावहिँ रंजियविउसयणु   सो सुयवि सयंभु अण्णु[11] कवणु।
सो चेय[12] गव्वु जइ नउ करइ   तहो कज्जे पवणु तिहुयणु धरइ
घत्ता—[13]कयअण्णवण्णपरियत्तणु वि पयडबंधसंधाणहिँ।
अकहिज्जमाणु कइ चोरु जणे लक्खिज्जइ बहुजाणहिँ ॥ २ ॥

[३]

सुकवित्तकरणि[1] मणवावडेण   सामग्गिकवण किय मइं[2] जडेण।
परिकलिउ पईउ जि सद्दसत्थु   सुत्तु वि निप्पज्जइ जेत्थु वत्थु।
वणगउ सच्छंदु निघंदु सुणिउ   गोरसवियारु पर तक्कु मुणिउ[3]।
महकइविनिबद्धु[4] न कव्वभेउ   रामायणम्मि पर सुणिउ[5] सेउ।
गुणु सुयणे विद्धि सुयनामकरणं   चारित्तु[6] वित्तु पयबंधु वरणे।

ऐसा यदि कोई हो भी जो श्रुति-सुखकर (कर्णमधुर) स्वरसे उसे पढ़े और मनमें स्फुरायमान होनेवाले काव्यार्थको अपने वचनमें रखे तथा रस और भावोंसे विद्वज्जनोंका अनुरंजन करे तो वह (महाकवि) स्वयम्भूको छोड़कर अन्य कौन हो सकता है ? ऐसा विद्वान् भी यदि (अपने ज्ञानका) गर्व नहीं करता, तो उसके लिए ही ये वातवलय त्रिभुवनको धारण करते हैं (अर्थात् ऐसे विद्वान्से ही यह त्रैलोक्य अलंकृत व सार्थक होता है।)। जिस प्रकार कोई चोर अपना स्वरूप परिवर्तन (ब्राह्मणादिका वेष बनाकर) करनेपर भी प्रकट सेंध लगानेके कारण बिना कहे भी विशेषज्ञों-द्वारा पहचान लिया जाता है, उसी प्रकार दूसरोंकी काव्यरचनाओंमें वर्ण या शब्द-परिवर्तन करने मात्रसे काव्यरचना करनेवाला कवि अपने काव्यगठनमें बिना कहे ही काव्यालोचकों-द्वारा पहचान लिया जाता है (कि यह चोर कवि है) ॥ २ ॥

[३]

सुन्दर काव्यरचनामें लगे हुए मनवाले मुझ जड़बुद्धिने कौन-सी सामग्री एकत्र की है ? क्या मैंने प्रदीप नामक शब्दशास्त्रको प्राप्त कर लिया है जिससे कि वस्तुका शुद्धवचनों-द्वारा वर्णन किया जा सके ? अथवा क्या मैंने वनमें जाकर (ऋषि-मुनियोंसे) छंदसहित निघंटु नामकोशको सुना है ? बल्कि वनमें स्वच्छन्द तथा निघंट—घंटारहित गज होता है, ऐसा मैंने सुना है। अथवा क्या मैंने गो—अर्थात् वाणीमें रसके विचार तथा तर्क (शुद्धता) को जाना है ? बल्कि गोरस-अर्थात् दुग्धका विकार तक्र होता है, यही मैंने जाना है। महाकवि-द्वारा रचे गये काव्यभेद (काव्यविशेष) सेतुबंधको भी मैंने नहीं सुना; केवल रामायणमें सेतु (बंधन) की बात सुनी है। शास्त्ररचनामें गुण और वृद्धि (व्याकरणकी प्रक्रियाएँ) के नामपर, मैंने सज्जनमें गुण तथा सुतके द्वारा ख्याति-प्राप्त करनेमें वृद्धि (अर्थात् वंशवृद्धि–वंशोन्नति) की बात सुनी है; और वृत्तका अर्थ मैंने केवल चारित्र-अर्थात् आचरणसे समझा है, वृत्त अर्थात् एकाक्षरादि छंदसमूहको मैंने नहीं समझा; उसी प्रकार वरण अर्थात् पाणिग्रहणमें पयःबंध अर्थात्

११. क अण्ण; घ अग्नु। १२. क ङ वेय°। १३. घ °अमवम°।

[३] १. ख ग °करण। २. क ङ मइ। ३. क घ ङ °उं। ४. ख ग °बद्धउ। ५. क घ ङ मुणिउं। ६. क घ ङ °त्ति; ख °त्त।

दुव्वयणु[7] पिसुणु जाणिउ[8] हयासु उवलक्खिउ संवच्छरु समासु।
मुहियप्पण कव्वु सकमि करेमि इच्छमि भुएहिँ सायरु तरेमि[8]।
दीहरतरुफलि[9] ढोयंतु हत्थु सद्धालुउ पंगु व जणे निरत्थु।
घत्ता—अह महकइरइउ पवंधु मइं कवणु[10] चोज्जु[11] जं किज्जइ।
विद्धइ हीरेण महारयणे सुत्तेण वि पइसिज्जइ॥ ३॥

[४]

इह[1] अत्थि परमजिणपयसरणु गुलखेडविणिग्गउ सुहचरणु।
सिरिलाडवग्गु तहिँ विमलजसु कइदेवयत्तु निव्वूढकसु[2]।
बहुभावहिँ[4] जें वरंगचरिउ पद्धडियाबंधें उद्धरिउ।
कविगुणरसरंजियविउसह[5] वित्थारिय सुद्दयवीरकह[6]।
चच्चरियबंधि विरइउ सरसु गाइज्जइ संतिउ तारजसु[7]।
नच्चिज्जइ जिणपयसेवयहिँ किउ रासउ अंबादेवयहिँ।
सम्मत्तमहाभरधुरधरहो तहो सरसइदेविलद्धवरहो।

जलार्पणके द्वारा वर-वधूका संयोग कराया जाता है, यही मैंने जाना है; परन्तु गद्य-पद्यमय पदबंध अर्थात् पदरचना-द्वारा महाकाव्योंकी रचना करना मैं नहीं जानता। दुर्वचन अर्थात् (वैयाकरणोंके अनुसार) 'अपशब्द'के नामपर मैं दुर्वचन बोलनेवाले दुष्ट–चुगलखोरको ही समझता हूँ व समास (कर्मधारय, तत्पुरुष आदि) के नामपर मासयुक्त संवत्सरको। भोलेपनमें ऐसा समझकर कि मैं काव्य रच सकूँगा, मैं कविकर्ममें प्रवृत्त होता हूँ, और इस प्रकार मैं भुजाओं-द्वारा सागरको तर जानेकी इच्छा करता हूँ। दीर्घवृक्षके फलोंकी ओर हाथ बढ़ानेवाले श्रद्धालु पंगुके समान ही मैं लोकोंमें विकलप्रयास अर्थात् असफल प्रयत्न होऊँगा। अथवा महाकवियों द्वारा इस विषयके प्रबन्ध (महाकाव्य) की रचना की गयी है, तब क्या आश्चर्य जो मैं भी वैसी ही रचना करूँ, क्योंकि हीरेसे विंधे हुए महारत्नमें धागा भी प्रवेश कर जाता है॥ ३॥

[४]

इस देशमें अन्तिम तीर्थंकर-महावीरके चरणोंका भक्त, गुलखेडका निवासी, शुभ आचरणवाला, श्री लाडवर्गगोत्री, निर्मल यशवाला और (काव्यरचनारूपी) कसौटीपर कसा हुआ महाकवि देवदत्त था, जिसने पद्धडिया छंदमें नाना भावोंसे युक्त वरांगचरितका उद्धार किया तथा काव्यगुणों व रसोंसे विद्वत्सभाका मनोरंजन करनेवाली सुद्धयवीरकथा (?) का विस्तारसे वर्णन किया। उन्होंने सरस चच्चरिया बंधमें शान्तिनाथका महान् यशोगान किया; तथा जिन भगवान्के चरणोंकी सेविका अंबादेवीका रास रचा जिसका जिनभगवान्के चरणसेवकों-द्वारा नृत्याभिनय भी किया जाता है। ऐसे सम्यक्त्वरूपी महद्भारकी धुराको

७. क घ क °उं। ८. ख ग °वि। ९. ख ग °फल। १०. क °ण। ११. ख ग चोज्ज।

[४] १. घ अह। २. ख ग गुड°। ३. ख ग निवूढ। ४. क °भावहि। ५. क घ क °सहा। ६. क घ क °कहा। ७. ख ग तारु°।

नामेण वीरु हुउ विणयजुउ संतुव-गब्भुब्भउ[8] पढमसुउ ।

घत्ता—अक्खलियसर[9]-सक्कयकइ कलिवि[10] आएसिउ सुउ पियरें ।

पाययपबंधु[11] वल्लहु जणहो विरइज्जउ किं इयरें ॥ ४ ॥

[५]

अह मालवम्मि धणकणदरिसी नयरी नामेण सिंधुवरिसी[1] ।

तहिं धक्कडवग्गो वंसतिलउ महसूयणनंदणु[2] गुणनिलउ ।

नामेण सेट्ठि तक्खडु वसइ जसपडहु जासु तिहुयणे[3] रसइ[4] ।

महकइदेवत्तहो परमसुही तें भणिउ वीरु कयसुयणदिही ।

चिरु कइहिं[5] बहुलगंथुद्धरिउ संखित्तहिं[6] जंबुसामिचरिउ ।

पडिहाइ न वित्थरु अज्ज[7] जणे पडिभणइ[8] वीरु संकियउ मणे ।

भो भव्वबंधु किय तुच्छकहा रंजेसइ केम विसिट्ठसहा ।

एत्थंतरे पिसुणसीहसरहु तक्खडकणिट्ठु बोल्लइ भरहु ।

वित्थरसंखेवहु दिव्वझुणी गरुयारउ अंतरु वीर सुणी ।

घत्ता—सरि-सर-निवाण[9]-ठिउ बहु वि जलु सरसु न निह मण्णिज्जइ ।

थोवउ करयत्थु विमलु जणेण अहिलासें जिह पिज्जइ ॥ ५ ॥

धारण करनेवाले और सरस्वती देवीसे वर प्राप्त करनेवाले उस (देवदत्त) कविको संतुवा (भार्या) के गर्भसे विनयसम्पन्न वीर नामका प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रको अस्खलितस्वर अर्थात् अव्याबाध संस्कृत कवि जानकर पिताने आदेश दिया—लोकप्रिय प्राकृत प्रबन्ध (शैली) में काव्य-रचना करो अन्य रचनासे क्या ? ॥४॥

[५]

मालवदेशमें धनधान्यसे समृद्ध सिंधुवर्षी नामकी नगरी है। वहाँ धाकडवर्गवंशका तिलकभूत, मधुसूदनका गुणनिधान पुत्र तक्खड नामका श्रेष्ठि रहता है, जिसके यशका डंका तीनों लोकोंमें बजता है। महाकवि देवदत्तके सज्जनोंको सुख देनेवाले उस परम सुहृत्ने वीर कविको कहा—चिरकालसे कवियों-द्वारा अनेक ग्रन्थोंमें उद्धृत जंबूस्वामीचरित्रका संक्षेपमें कथन करो। तब 'आर्यजनोंको व्यर्थ विस्तार—अर्थात् पुनरुक्ति न मालूम हो' इस प्रकार मनमें शंकित होकर वीर कविने कहा—हे भव्यबंधु ! (मेरे-द्वारा) रचित संक्षिप्त कथा विशिष्टसभा अर्थात् विद्वज्जनोंका अनुरंजन कैसे कर सकेगी ? इसके अनन्तर पिशुनरूपी सिंहोंके लिए अष्टापदके समान, तक्खडके कनिष्ठभ्राता भरतने कहा—हे दिव्यध्वनि (देवोंके समान सुमधुर वाणी) वाले वीर कवि सुनो, विस्तार और संक्षेपमें बड़ा भारी अन्तर होता है; नदी, सरोवर और चरहियोंमें बहुत सा जल है, वह सभी सरस नहीं माना जाता; परन्तु करवेमें रखा हुआ थोड़ा-सा विमल जल लोगोंके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है ॥५॥

८. ख ग °गब्भ° । ९. क ग घ ङ °सक° । १०. क ङ कलवि । ११. क ङ पायय° ।

[५] १. क घ ङ °करिसो । २. क °णंदण । ३. क ङ °वणे । ४. ग °इं । ५. ख घ °हिं । ६. ख ग °हिं । ७. ख ग घ अज्जु° । ८ क घ ङ °इं । ९. ख ग निवाणु ।

[६]

अवि य-सेट्ठिसिरितक्खडेणं भणियं च तओ समत्थमाणेण ।
वड्ढइ[1] वीरस्स मणे कइत्तकरणुज्जमो जेण ॥ १ ॥
मा होंतु ते कइंदा गरुय[2]पबंधेहिं[3] जाण निव्वूढा ।
रसभावमुग्गिरंती विप्फुरइ[4] न भारई[5] भुवणे[6] ॥ २ ॥
संति कई वाई विहु वण्णुक्करिसे सुफुरियविण्णाणा[7] ।
रससिद्धिसंचियत्थो[8] विरलो वाई कई एक्को ॥ ३ ॥
विजयंतु जए कइणो जाणं वाणी अइट्ठ[9]पुव्वत्थे ।
उज्जोइयधरणियला[10] साहय[11]-वट्टि व्व निव्वडई ॥ ४ ॥
जाणं समग्गसद्दोहज्झेंदुउ[12] रमइ मइफडक्कम्मि ।
ताणं पि हु उवरिल्ला कस्स व बुद्धी परिप्फुरइ[13] ॥ ५ ॥
किं च स्वकृतमपि वृत्तं न स्मरसि—
स कोऽप्यंतर्वेद्यो वचनपरिपाटीं घटयतः[14]
कवेः कस्याप्यर्थः स्फुरति हृदि वाचामविषयः ।
सरस्वत्यप्यर्थान् निगदनविधौ यस्य विषमा-
मनात्मीयां चेष्टामनुभवति कष्टं च मनुते ॥ ६ ॥

---

[६]

और भी—भरतके इस वचनका समर्थन करते हुए श्रेष्ठि श्रीतक्खडने ऐसे वचन कहे जिनसे वीरके मनमें काव्यरचनाका उद्यम (उत्साह) बढ़े । उन्होंने कहा—वे श्रेष्ठ कवि नहीं हो सकते जिनकी परिपुष्ट भारती महान् प्रबन्धों (महाकाव्यों)-द्वारा रस व भावोंकी वृष्टि करती हुई लोकमें विस्फुरायमान नहीं होती । वर्णों (रंगों) के उत्कर्षमें (अर्थात् चटकदार रंग चढ़ानेमें) अत्यन्त चतुर धातुवादी तथा वर्णोंके उत्कर्ष अर्थात् बड़े-बड़े व सुंदर शब्दोंके प्रयोगमें चतुर कवि इस लोकमें बहुत हैं; परन्तु रस (धातुरस) की सिद्धिसे अर्थ अर्थात् सुवर्णका संचय करनेवाला धातुवादी तथा काव्यरसोंकी सिद्धिसहित सुंदर अर्थका संचय करनेवाला कवि कोई एक विरला ही होता है । जगत्में वे कवि विजयी हों जिनकी वाणी अदृष्टपूर्व (अभूतपूर्व) अर्थोंके विषयमें धरणीतलको प्रकाशित करती हुई तथा उपयोग-विशेषके द्वारा गूढ़धनको प्रकाशित करनेवाली साधकवर्त्तिकाके समान प्रवृत्त होती है । जिनके मतिरूपी फलकपर समग्र शब्दसमूह (संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश) रूपी कन्दुक नाना अर्थोंमें प्रवृत्त होती हुई क्रीड़ा करती है, उनके भी ऊपर और किसकी बुद्धि प्रतिस्फुरित हो सकती है । और क्या तुम अपने ही रचे हुए इस वृत्तको स्मरण नहीं करते—'ऐसा कोई विरला ही अन्तर्वेदी कवि होता है जिसके हृदयमें वचन-परिपाटीकी घटना करते हुए वाणीके अगोचर कोई अभूतपूर्व ही अर्थ स्फुरित होता है, जिसके अर्थोंको कहनेके प्रयासमें सरस्वती भी बड़ी विषम अनात्मनीय (असाधारण) चेष्टाका अनुभव करती है और कष्ट मानती है ।

---

[६] १. क ङ वट्टइ । २. क ख ङ °व । ३. ग °धंवि । ४. ख ग विथरइ । ५. क ख ङ °ही । ६. क ङ भुवणे । ७. ख ग °णो; घ °विन्नाणा । ८. क ङ सव्व°; घ संधि° । ९. क पुम°; घ °त्थो । १०. प्रतियोंमें °यलो । ११. ख ग °ह । १२. क ङ °हम्मेंदुउ । १३. क ख ङ पहि° । १४. ख ग गम° ।

इय निसुणेवि वयणु[15] उच्छाहॅं पारंभिय कह जिणवइ नाहॅं।
अत्थि एत्थु[16] धणकणयसमिद्धउ मगहदेसु महियलि सुपसिद्धउ।
धम्मायारजुत्तु निद्दूसणु पंडवनाहु व भारहभूसणु।
विसयमाक वण्णिज्जइ हंसु व किं न[17] तरुणिथणमंडलफंसु व।
कुकइकव्वकहबंधु व वीसरु[18] भावइ नीरसस्स सुमनोहरु।
जहिं[19] जलवाहिणीउ थिरगमणउ गुरुगंभीरवलाहियरमणउ[20]।
तरलमच्छदीहरचलनयणउ वियसियइंदीवरवरवयणउ।
जलगयकुंभथोरथणहारउ[21] फेणावलिसोहियसियहारउ।
उहयकूलदुमनियसियवसणउ[22] जलखलहलरवसज्जियरसणउ।

ये वचन सुनकर जिनमतिके पति (वीर कवि) ने उत्साहसे कथा प्रारम्भ की। यहाँ-पर धनकणसे समृद्ध, महीतलमें सुप्रसिद्ध मगध नामका देश है। वह धर्माचारसे युक्त है और दूषणरहित है, अतः पांडवनाथ युधिष्ठिरके समान भारत (महाभारत, पक्षमें भारतदेश) का भूषण है। वह सब देशोंमें श्रेष्ठ कहा जाता है, अतएव सैकड़ों पक्षियोंमें हंसके समान तथा विषयोंमें श्रेष्ठ तरुणिजनोंके स्तनमण्डलके संस्पर्शके समान क्यों न वर्णनीय हो? अपने उद्यानादिकोंमें वह पक्षियोंके स्वर (वी+स्वर) से संयुक्त तथा जल और शस्य (नीर+शस्य)-से अति मनोहर होता हुआ कुकविकृत काव्यकथाबंधके समान स्वरहीन (विस्वर) है जो काव्यरसके ज्ञानसे हीन ग्राम्यपुरुषको खूब मनोहर लगता है। जहाँकी जलवाहिनियाँ जलवाहिनी (पनिहारिन) कामिनियोंके समान हैं; वहाँकी पनिहारिनें मंद-मंद गमन करने-वाली तथा विशाल, गंभीर व सुपुष्ट नितम्बोंवाली हैं; उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ मंद-मंद प्रवाहवाली तथा अति विशाल व गम्भीर ह्रदों रूपी सुपुष्ट नितम्बोंको धारण करनेवाली हैं। वहाँकी पनिहारिनें चंचल मत्स्योंके समान दीर्घ व चंचल नेत्रोंवाली, तथा विकसित इंदीवरके समान प्रफुल्लित एवं सुंदर मुखवाली हैं, उसी प्रकार वहाँकी जलवाहिनियाँ चंचल-मत्स्योंरूपी दीर्घ व चंचल नेत्रोंवाली तथा विकसित इंदीवरोंरूपी प्रसन्न व सौम्य मुखवाली हैं; वहाँकी पनिहारिनें जलगजोंके कुंभस्थलोंके समान स्थूल स्तनोंको धारण करनेवाली तथा फेणावलिके समान शोभायमान श्वेत (मुक्ता) हारोंको धारण करनेवाली हैं; उसी प्रकार वहाँ-की जलवाहिनियाँ जलहस्तियोंके कुंभस्थलरूपी स्थूलस्तनोंको धारण करनेवाली तथा फेणावलि-रूपी धवलहारोंसे शोभायमान हैं; जिस प्रकार पनिहारिनें पहने हुए वस्त्रों तथा घड़ोंमें छलकते हुए जलके खल-खलरव एवं कटिमेखला (की किंकिणियोंके मधुर कलरव) से सुसज्जित रहती हैं, उसी प्रकार जलवाहिनियाँ उभयतटोंके द्रुमोंरूपी पहने हुए वस्त्र एवं जलके खल-खल रव रूपी कटिमेखला (की किंकिणियोंके मधुर रव) से सुसज्जित हैं। उस मनोहर देशको छोड़कर नदियाँ अपेय विष (जल व हालाहल) के आकर (सागर) का अनुसरण करती हैं; अथवा

---

१५. क ऊ °ण। १६. ग एत्थ। १७. ख ग किंतु। १८. क ऊ सॅ°। १९. क ऊ जहि। २०. क ऊ °गंभीरु°।
२१. क घ ऊ °गयकुंभिकुंभथण°, २२. ख.ग °णियसिय°।

घत्ता—तं देसु मणोहरु परिहरेवि सरिउ अपेउ विसायरु।
जडमइयहिँ अहव विवेउ कहिँ तियहिँ[23] सलोणए[24] आयरु ॥ ६ ॥

[७]

[1]जहिँ सरवरइँ हसियसयवत्तइँ कुकलत्ता इव अविणयवंतइँ[2]।
तडतरुछाइयसीयलनीरइँ[3] सज्जणहियया इव गंभीरइँ[3]।
उज्जाणइँ[4] परिवड्ढियमारइँ[5] जोव्वण इव पियालवणसारइँ।
दक्खारसु वियलंतु न खिज्जइ थलकमलिणिदलनिवडिउ पिज्जइ।
जहिँ खज्जंति कीरमुहचुंबिउ परिपक्कउ कयलीफललुंबिउ। ५
असुहावियमुहेहिँ[6] रुइरहियहिँ मिरियवेल्लि चक्खिज्जइ पहियहिँ।
इय आहारहिँ[7] जहिँ छुह[7] छिज्जइ संबलु नियघराउ न वहिज्जइ[8]।
ओणामिज्जइ[9] पावियफलभरु नायवेल्लिवेढिउ फोफलतरु।

जड़मति (पक्षमें जलमयी) स्त्रियोंमें कहीं विवेक देखा जाता है ? वे तो केवल सलोने (सुन्दर, पक्षमें सलवण-खारा) का आदर करती हैं ॥६॥

[७]

जहांके सरोवर कुकलत्रोंके समान हैं; कुकलत्र सैकड़ों उपहसनीय मुखों (या पात्रों अर्थात् उपपतियों ?) वाली तथा अविनयशील होती हैं; उसी प्रकार वहांके सरोवर हसित अर्थात् विकसित शतपत्रोंसे युक्त तथा अविनयशील अर्थात् जलके निरन्तर गमनागमनसे युक्त हैं। वे सरोवर तटवर्ती वृक्षोंसे छाये रहनेके कारण शीतल जलवाले तथा सज्जनोंके हृदयोंके समान गंभीर हैं। वहांके उद्यान यौवनके समान हैं; यौवनमें मार अर्थात् काम खूब बढ़ता है और प्रिय जनोंका कामोद्रेककारी आलाप ही उसमें सार होता है; उसी प्रकार वहांके उद्यानोंमें मार (रुड) वृक्ष खूब बढ़ रहे हैं और प्रियाल वृक्षोंकी पंक्तियों तथा पानीसे सार युक्त अर्थात् समृद्ध हैं। वहां (पके हुए फलोंके गुच्छोंसे) निरन्तर गिरता हुआ द्राक्षारस कभी क्षय नहीं होता और स्थल कमलिनियोंके पत्रों पर पड़ा हुआ पिया जाता है। जहां शुकोंके द्वारा मुख चूंबे हुए (चोंच मारे हुए) लटकते हुए परिपक्व कदली फलोंके गुच्छे (केले) खाये जाते हैं। और जहां (सुधातुल्य मीठा द्राक्षारस पीने व मीठे फल खानेसे जिनका) मुँह बेस्वाद हो जानेसे जिन्हें और कुछ खानेसे अरुचि उत्पन्न हो गयी है, ऐसे पथिकोंके द्वारा मिरिचकी बेल चखी जाती है। ऐसे (प्राकृतिक) आहारोंसे जहां क्षुधा क्षय हो जाती है, वहां अपने घरोंसे संबल (पाथेय) लेकर नहीं चला जाता। तथा जहां नागलता (पानकी बेल) से वेष्टित पूगवृक्ष फलोंके भार-रूप पूर्ण सफलताको प्राप्त कर झुक रहा है। उस देशमें गोकुलके आंगनोंमें नीले वस्त्रोंको

---

२३. क ड °हि। २४. क ख ड °णइ।

[७] १. क ड जहि सरवरइ हसियसयवत्तइ। २. क ख ग ड °वंतइ। ३. क ड °रइ। ४. क ख ग ड °णइ। ५. क °सारइं; ख ग °वड्ढिय°। ६. क ग ड °हि। ७. क जिह छुहा°। ८. क °उजइ। ९. क ड अंणाविज्जइ; ख ग उण्णा°।

घत्ता—गोट्ठंगणे नीलनियंसणिहिँ घणथणरमणुक्कंतिहिँ[10] ।
पहि[11] किज्जइ[12] गमणविलंबु जहिँ गोविहिँ रासु रमंतिहिँ ॥ ७ ॥

[८]

जहिँ कलमसालिफलक्कयसुयंधु[1] वावरइ समीरणु भरियरंधु ।
हल्लिरमहल्लमंजरिवसेण घुम्मइ[2] व धरणि रंजियरसेण ।
उद्धूस इव्व वरधूसरेहिँ उच्छलइ व चवलचलल्लरेहिँ[3] ।
हसइ व विसट्ट[4]मुहवणफलेहिँ[5] नच्चइ व [6]नमंतहिँ जो नलेहिँ[7] ।
मंडइ व वयणु कुसुमियसणेहिँ[8] सव्वंगुक्करसिय करिसणेहिँ[9] ।
पुंडच्छुजंतचिक्कारएहिँ[9] गायइ व मुक्कसिक्कारएहिँ ।
सरलंगुलिउब्भिवि[10] जंपिएहिँ[11] पयडेइ व रिद्धि कुडुंबिएहिँ[12] ।
देउलहिँ विहूसिय सहहिँ गाम सग्गा व अवइण्ण[13] विचित्तधाम ।

घत्ता—परिहापायारहिँ परियरिउ सुरपुरसिरिदलवट्टणु ।
[14]तहिं देसि मणोहरु रायगिहु नामें निवसइ पट्टणु ॥ ८ ॥

धारण करनेवाली तथा अत्यन्त घने स्तनों व रमणोंके भारसे आक्रान्त रास खेलती हुई गोपियों के द्वारा (पथिकोंके लिए) पथमें गमन करनेमें विलंब कर दिया जाता है ।

[८]

जहाँ कलम नामक धानकी बालोंकी सुगंधिसे युक्त, समस्त रंध्रोंको भरनेवाला (व रोम-रोम पुलकित करनेवाला) समीर बहता है । जिस देशकी भूमि बड़ी-बड़ी हिलती हुई मंजरियोंके बहाने मानो रसरंजित (मदमत्त) होकर घूम रही है; श्रेष्ठ मूंगकी कोमल सेमयुक्त फलियोंसे मानो रोमांचित हो रही है; चपल कोंपलोंके ऊपरके फलियोंके गुच्छोंके द्वारा मानो उछल रही है; विकसित मुख अर्थात् खिले हुए कर्पासफलोंसे मानो हँस रही है और झुकते हुए नलों (सरकंडे) के द्वारा मानो नाच रही है; फूले हुए सण से मानो मुखको सजा रही है और फूली हुई खेतीसे मानो सर्वांग उत्कर्षित अर्थात् उल्लसित हो रही है—ऐसा वह देश इक्षु रस निकालनेके यंत्रोंको चीत्कारों-द्वारा मानो सीत्कारें छोड़ते हुए नाच रहा है। अपनी सरल अंगुलियोंको उठा-उठाकर बोलनेवाले अपने कुटुम्बी अर्थात् किसान गृहस्थोंके द्वारा जो अपनी ऋद्धि-समृद्धिको प्रकट करता है । देवकुलोंसे विभूषित वहाँके ग्राम ऐसे शोभायमान हैं मानो विचित्र भवनोंवाले स्वर्ग अवतीर्ण हो गये हों। उस देशमें परिखा और प्राकारोंसे घिरा हुआ इंद्रपुरीकी शोभाको भी मात करनेवाला अत्यन्त मनोहर राजगृह नामका पत्तन है ॥८॥

---

१०. क ग क रमण° । ११. ख ग पहिं । १२. ख ग °इं ।

[८] १. ग °सालिकल° । २. ख ग °इं । ३. ख ग °लइ । ४. क क °ह । ५. ग °ण; क; °हि । ६. क क °तिहिं । ७. क °हि । ८. क ङ °करिसिय । ९. क क °विक्कार° । १०. ख °उसिवि । ११. क ग क उंबि° । १२. क क °रेहिं । १३. क °हिण्ण; ग °इन्न । १४. क तहि ।

[९]

गोउरं जत्थ भडरक्खियं[1] दुद्दमं　कुंभविलयाण जंतीण कयकद्दमं ।
हट्टमग्गं पि चल्लंतु नायरजणो　एक्कमेक्कसु संघट्टियंगो घणो ।
कामिणीसेयचुयकुंकुमे खुप्पए　ल्हसियसिरकुसुमदामेहिँ तह गुप्पए ।
उवरितणभूमिधवलहरअब्भंतरे　कामपंडुरकवोला गवक्खंतरे ।
सासमरुमिलियभमरं मुहं[3] दावए　[4]राहुससिजोयभंतिं समुप्पायएँ ।
फलिहसिलघडियवरपंगणुम्मीसिया　पोमराएहिँ रंगावली दीसिया[5]
दित्तरविकंतकिरणेहिँ तमु खिज्जए　जामिणी जत्थ निद्दाएँ जाणिज्जए
कसणमणिखंडँ[7]खचइयधरणीयलं　सप्पसंकाइ चलवलियकिरणुज्जलं ।
पयहिँ चंपेवि[8] आहणइ जा किर थिरं　धुणइ[9] कुंचइय[10]-चंचूमऊरो सिरं ।
[11]सग्गिणीनामछंदो ।

घत्ता—घरि घरि गोरिउ सीमंतिणिउ सक्कु धणउ[12] ईसरु जणु ।
नियरिद्धिए मण्णइ[13] तुच्छसिरि सग्गु वि दुत्थु दयावणु[14] ॥९॥

[९]

जहाँके गोपुर भटोंसे सुरक्षित होनेसे (शत्रुओंके लिए) दुर्दम्य अर्थात् दुर्जेय हैं और जहाँ गमन करती हुई पनिहारिनोंके द्वारा कर्दम कर दिया जाता है; वहाँ हाट-मार्गोंसे चलता हुआ नागर समुदाय परस्परके अंगोंसे खूब संघट्टित होता है; कामिनियोंके स्वेदसे चूये हुए कुंकुम (की कीचड़) में वह धंस जाता है और शिरसे खिसकी हुई पुष्पमालाओंमें स्खलित होता है। जहाँ ऊपरीतलके प्रासादके भीतरके गवाक्षोंमें कामोद्रेकसे पांडुरवर्ण कपोलवाली कामिनी अपने श्वासकी (सुगंधित) मरुत्से आकृष्ट हुई भ्रमरपंक्तिसहित मुखमंडल दिखला रही है और राहु-शशि संयोग अर्थात् चन्द्र-ग्रहणकी भ्रान्ति उत्पन्न करती है वहाँ स्फटिक शिलाओंसे घटित वर-प्रांगणमें पद्मरागसे मिश्रित मणियोंको रंगोली दिखाई देती है। देदीप्यमान रविकांतमणिकी किरणोंसे जहाँ अन्धकार नष्ट हो जाता है, अतः वहाँ यामिनी केवल निद्रासे ही जानी जाती है। उन घरोंके पृथ्वीतल इन्द्रनीलमणियोंसे खचित हैं, जिनकी लहराती हुई किरणें चंचल सर्पोंकी शंका उत्पन्न करती हैं; इसलिए वहाँ मयूर पुनः-पुनः अपने चरणोंसे भूमिको आक्रान्त (आहत) करके (वास्तविक सर्पको न पाकर) अपने चंचुको कुंचित करके सिर धुनता है। (सग्गिणी नामक छंद)। वहाँ घर-घरमें गोरी सीमन्तिनियाँ हैं (स्वर्गमें एक ही गोरी है) तथा घर-घरमें शक्र और धनद-कुबेर जैसे धनी लोग हैं (स्वर्गमें एक ही शक्र और एक ही धनद है)। इस प्रकार अपनी ऋद्धिकी तुलनामें वह नगर स्वर्गको तुच्छ धनवान्, दुःस्थित और दयनीय मानता है (विशेषके लिए देखो आगे टिप्पण)।

[९] १. क °सिय। २. क ङ °भम्मं। ३. क ङ मुहं। ४. क ङ °जोय तहिं भंतिमुप्पायए। ५. क घ ङ °दं। ६. ख ग °इ। ७. ख °संड। ८. क ङ चंपेहिं; घ चप्पेहिं। ९. ख ग °इं। १०. ख ग कुंचइं। ११. क घ ङ में छंद नाम नहीं। १२. ख ग घ °उं। १३. क घ ङ °इं; ख ग मन्नइ। १४. ख ग °वणउ।

[१०]

घरे घरे तूरु मणोहरु बज्जइ[1] पुरवरि नं अयालि घणु गज्जइ ।
घरे घरे सुम्मइ[2] सवणसुहावणि गंधव्वाणुलग्गआलावणि ।
घरे घरे जहिँ[3] नेउररवभामिणि दावइ हंसहो गइ गोसामिणि।
जहिँ दप्पणकराए[4] आसत्तिए अहरोवाहिरंगु असुणंतिए[5] ।
मुद्धियाए[6] ईहंतिए[7] सियगुणु[8] दंतपंति[9] छोलिज्जइ पुणु पुणु ।
कामिणीउ णं चंदणसाहउ विरइयभोयभुअंग[10]-सणाहउ ।
जाहँ रूउ[11] पेक्खेवि[12] कलइत्तउ हेलइ[13] जित्तु[14] महेसरचित्तउ[15] ।
जयकंखिरु तिनयणभयतट्ठउ[16] सरणउ अंगि अणंगु पइट्ठउ ।
घणथणकलसहिँ[17] मुद्दएप्पिणु[18] नियसव्वसु[19] सिंगारु[20] ठवेप्पिणु ।
अहरए महु[21] छुहेवि[22] मयसंगहिँ[23] धणु सज्जोउ मुक्कु[24] भूभंगहिँ ।
कामुअजणमणजगडणदक्खहिँ[25] बाणसमप्पिय[26] नयणकडक्खहिँ ।
ऊरुखंभमंडियभुवणुल्लए रइआवासु कियउ रमणुल्लए ।

[१०]

उस श्रेष्ठ नगरमें घर-घरमें ऐसा मनोहर तूर बजता है, मानो दुर्दिनमें मेघ गरजता हो। घर-घरमें गंधर्वों-जैसा श्रवण सुखद वीणाका संगीत सुनाई पड़ता है। जहाँ घर-घरमें नूपुरध्वनि करती हुई गोस्वामिनियाँ (गोपियाँ), (नूपुर ध्वनिकी हंसोंकी ध्वनिसे समानताके कारण) हंसोंको (भ्रान्ति उत्पन्न करके अपने पीछे-पीछे अनुगमन कराती हुई मानो उन्हें) चलना सिखलाती हैं। जहाँ हाथमें लिए हुए दर्पणमें अपनी ही सूरत देखकर आसक्त अर्थात् मत्त हुई मुग्धाके द्वारा अधरोंकी उपाधि अर्थात् सामीप्य जन्य ईषत् लालिमाको न समझकर धवल बनाने की इच्छासे अपनी दंतपंक्तिको पुनः-पुनः छीला जाता है। जहाँकी कामिनियाँ संभोग सुख देने वाले (अथवा विरचित भोग अर्थात् नाना प्रकारके वस्त्राभरणादिसे सजे हुए) अपने प्रेमियोंसे सनाथ हैं, अतः वे चंदनवृक्षोंकी उन शाखाओंके सदृश हैं जो विरचित भोग अर्थात् फैलाये हुए फणोंवाले भुजंगों (सर्पों) से युक्त होती हैं। जिनका सकलकला युक्त रूप देखकर हेलासे अर्थात् अनायास ही महेश्वरका चित्त विजित हो गया, अतः विजयको आकांक्षा करनेवाला अनंग उन त्रिनेत्र (महादेव) के भयसे त्रस्त हुआ उन कामिनियोंके अंगोंकी शरणमें प्रविष्ट हो गया। जहाँ कामदेवने घने स्तनोंरूपी कलशोंमें चूचकोंरूपी मुद्रा (मुहर) लगाकर उनमें अपना सर्वस्व शृंगार (सौंदर्य) स्थापित करके अधरोंमें काममदसे भरा मधु डालकर अपना धनुष चढ़ाकर उनके भ्रूभंगोंमें छोड़ दिया है, अर्थात् अपने धनुषको तो भौंहोंको समर्पित कर दिया और अपने बाण कामीजनोंके मनकी कदर्थना करनेवाले उनके नयन-कटाक्षोंमें समर्पित कर दिये हैं; उन रमणियोंका जंघाओंरूपी स्तम्भोंसे मंडित श्रोणितलरूपी भुवन मानो रतिका

[१०] १. क °इ। २. घ °इं। ३. क जहि। ४. क °करए। ५. क क ण मुणं° ६. क घ °याइं; क °याइ। ७. क क °तिय। ८. क °गुण। ९. क दंति°। १०. क क °भुवंग; घ °भुयंग। ११. ख ग रूव। १२. क घ क पिच्छिवि। १३. ग घ °इं। १४. ख ग जित्त। १५. ख ग सुराहिव°। १६. ख ग °यट्टउ। १७. क घ °सहं; क °सह। १८. क क °रएविणु। १९. क सव्वंसु; क सव्वंगु। २०. ख ग सें°। २१. क °रइं मुहुं; क क °रइं महु। २२. ख ग छुएवि। २३. क क मइ°। २४. क क मुक्क। २५. क घ क कामुय°। २६. क क °प्पइ।

घत्ता—तहिँ[27] सेणिउ[28] णयरे णराहिवइ रूवविणिज्जियरइवरु।
लवणण्णवकूलावहि—सधरधरमंडले[29]—पालियकरु ॥१०॥

[११]

जेण वलिय मंडलियअसेस वि वणगिरिगहणनिरंतरदेस वि।
वसिकियलइयकप्पु बलिमंडए[1] जयसिरि वसइ जासु भुअदंडए[2]।
मरगय[3]वण्ण[4]किवाणुप्पण्णउ जसु जसु तो वि अमरगयवण्णउ।
जासु पयावहुवासु[5] अतित्तउ खीणारिंधणखोज्जु[6] नियंतउ।
विहवीहुयहिँ[7] जं जि सुमरिज्जइ अवसु विवक्खु एत्थु पाविज्जइ।
इयकज्जेण डहणमणु चलियउ रिउ-घरणिहुं[8] हियवइ पज्जलियउ।
जो निव नीइतरंगिणिसायरु सुयणसरोरुहसंडदिवायरु।
अरुहभत्तु सम्मत्तधुरंधरु धम्ममहारह[9]ओडियकंधरु।
अविय—चंडभुअदंडें[10]-खंडियपयंडमंडलियमंडलीविसडें[11]।
धाराखंडणभीयव्व जयसिरि वसइ जस्स खग्गंके ॥१॥

आवास-भवन ही है। ऐसे नगरमें श्रेणिक नामका राजा रहता है, जो रूपमें रतिपतिको भी जीतनेवाला है, तथा लवणोदधिके कूल तक पर्वतोंसहित समस्त धरामंडलका धारक अर्थात् स्वामी व करपालक अर्थात् कर ग्रहण करनेवाला है ॥१०॥

[११]

जिसने गहन वनों व पर्वतों तथा व्यवधानरहित देशों वाले समस्त मांडलीकोंको साध लिया है एवं देवलोकको भी बलपूर्वक वशमें कर लिया है, तथा जिसके भुजदंडमें जयश्रीका वास है। जिसका यश मरकत (नील, कृष्ण) वर्ण कृपाणसे उत्पन्न होनेपर भी अमरगज अर्थात् ऐरावत हाथीके (धवल) वर्णका है, अथवा अमरगतवर्ण अर्थात् देवताओं तक भी उसकी स्तुति गायी जाती है। जिसका अतृप्त प्रतापाग्नि शत्रुरूपी ईंधनके क्षीण हो जानेपर (अतिरिक्त ईंधनकी) खोज करता हुआ—शत्रुओंकी विधवा हुई पत्नियोंके द्वारा अपने हृदय-में निरन्तर उनका स्मरण किया जाता है, अतः शत्रुपक्ष वहाँ अवश्य प्राप्त होगा, इस हेतुसे उसे दहन करनेकी इच्छासे चला व रिपु-गृहिणियोंके हृदयोंमें (अपने मृतपतियोंके शोकाग्निके रूपमें) प्रज्वलित हो उठा। जो नृप नीतिरूपी तरंगिणिके लिए सागर है, वही सज्जनोंरूपी कमलसमूहके लिए दिवाकर है। वह अरहंतोंका भक्त है तथा धर्मरूपी महारथ (की धुरा) को कंधोंपर उठानेवाला है।

और भी—जिसके प्रचंड मांडलीकोंकी मंडलीके अति बलशाली भुजदंडोंको काटने-वाले वीभत्स खड्गकी गोदमें जयश्री मानो उसकी धारासे खंड-खंड हो जानेके भयसे निवास करती है ॥१॥

२७. क क तहि। २८. क क °उं। २९. क क °मंडलु।

[११] १. क क °मंडइं; ध °वंडए। २. क भुयदंडइं; ध क भुय °दंडइ। ३. क क °गइ। ४. ख ग °वण्णु, ध °वन्न। ५. ख ग ध °हुयासु। ६. क क खोजु। ७. क क °हुयहि। ८. क क °णिहि; ध °णिहि। ९. क क °महाभर। १०. क ध क °भुय०। ११. क क °विसटे।

रे रे[12] पलाह काथर मुहाइँ[13] पेक्खइ न संगरे सामो ।
इय जस्स पयावघोसणाए विहडंति[14] वइरिणो दूरे ॥२॥
जस्स य रक्खियगोमंडलस्स पुरुसोत्तमस्स पद्धाए[15] ।
के के सवा न जाया समरे गयपहरणा रिउणो ॥३॥

अण्णं च गाहा जुअलं[16]—

भग्गभूवल्लिसोहो हरियाहरपल्लवारुणच्छाओ ।
[17]समियालयालिमालो अहलीकयपुप्फपरिणामो ॥४॥
हयचंदणतिलयरुई–रिउरमणीरम्मजोव्वणवणेसु ।
कोहदुव्वायवेउ नरवइणो जस्स निव्वडिओ ॥५॥

घत्ता—जसु तणए रज्जे नहमग्गे ठिउ वाउ वहइ रवि तप्पइ[18] ।
संपुण्णमणोरहु[19] चउदिसिहिँ[20] सइँ वसुमइ[21] फलु अप्पइ[22] ॥११॥

रे ! रे ! भाग (भागकर अपने प्राण बचा), क्योंकि स्वामी संग्राममें कायरोंके मुख नहीं देखते (पलकें उठनेसे पूर्व ही तत्क्षण मार डालते हैं), इस प्रकारकी जिसकी प्रताप-घोषणासे ही वैरी दूरसे ही विघटित अर्थात् छिन्न-भिन्न हो जाते हैं ॥२॥

उस संरक्षित गोमंडल (गायोंका संघात अर्थात् व्रजमंडल, राजाके पक्षमें पृथ्वीमंडल) वाले पुरुषोत्तम (विष्णु व पुरुषोंमें उत्तम श्रेणिक राजा) की स्पर्द्धासे (कि हमारा भी पृथ्वीमंडल अच्छी तरह संरक्षित है) युद्धमें कौन शत्रु गतप्रहरण अर्थात् शस्त्रहीन होकर, गदाप्रहरण अर्थात् गदाशस्त्रको धारण करनेवाले केशव (केसवा) अर्थात् शवमात्र नहीं हो गये (के सवा = के शवाः न जाताः टि०) ॥३॥

अन्य और गाथायुगल—जिस नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वातका वेग रिपुरमणियोंके रम्य-यौवनरूपी वनोंमें पड़कर इस प्रकार विनाशकारी हुआ—दुर्वात अर्थात् आंधीका वेग रमणीक वनोंमें पड़कर भूमिलताओंकी शोभाको भग्न कर देता है, कोमल पल्लवोंकी अरुण-आभाको हर लेता है, नवांकुरोंपर-से अलिमाला (भ्रमरपंक्ति) को उपशान्त अर्थात् दूर कर देता है, पुष्पों-को गिराकर निष्फल-परिणाम कर देता है; तथा चंदन व तिलकवृक्षोंकी रुचि (शोभा) को विनष्ट कर देता है; उसी प्रकार नरपतिके क्रोधरूपी दुर्वातके वेगने रिपुरमणियोंके रमणीय यौवन कालमें ही उनपर पड़कर (उन्हें विधवा बनाकर) शृंगारके अभावमें उनके अधर पल्लवोंकी अरुण कांतिको हर लिया है, पुष्पसज्जाके अभावमें उनकी अलकोंपर आकृष्ट होनेवाली भ्रमरपंक्तिको दूर कर दिया है; उनके 'पुष्पपरिणाम' अर्थात् ऋतुमती होनेको निष्फल कर दिया है, एवं अंग-प्रत्यंगमें चंदन लेप व माथेपर तिलकको शोभाका हरण कर लिया है ॥४–५॥ जिस नरपतिके राज्यके नभोमार्ग व नीतिमार्गमें वायु व सूर्य मर्यादाका अनतिक्रमण करते हुए बहते व तपते हैं, एवं जहाँ स्वयं वसुमति चारों दिशाओंमें 'सम्पूर्णमनोरथफल' अर्थात् सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेरूपी फल प्रदान करती है ॥११॥

---

१२. क रं ले। १३. क क °इं। १४. क क वि हुंति। १५. क सद्धाए; क सद्ध। ए १६. क क जुवलं; घ जुयलं। १७. क घ क समयालि°। १८. ख ग °इं। १९. प्रतियों में °मणोरह। २०. क क °दिसहिं। २१ ख ग °मइं। २२. ख ग °इं। विशेष—घ प्रति में छठी पंक्ति के पश्चात् 'ताहं तहं सुअसेहिं उल्हवियउ सयणु विवरये हवइ संकुइयउ' यह पंक्ति अतिरिक्त है।

[१२]

तहो अट्ठसहसइप्पियमयणु　　सोहग्गरूवनिहिराणियणु ।
छणयंदचंदमंडलवयणु　　उत्तालबालहरिणीनयणु ।
कलयंठिकंठकलमहुरसरु　　बंधूयकुसुमतंबिरअहरु ।
कलहोयकलसनिब्भिंदथणु　　अइखीणमज्झु चक्कलरमणु ।
वरकामिणिकरचालियचमरु　　मुहमरुमिलंतगुंजियभमरु ।
सहुं तेहिं विलासें संचरई　　नरवइ सत्तंगु रज्जु करइ ।
एक्कहे दिणि सक्कील वहइ　　चामीयरसिंहासणि सहइ ।
सामंतमंतिपरिवारसहुं　　अत्थाणि परिट्ठिउ जाम पहु ।
घत्ता—अह कणयदंडविणिबद्धपडु　　दउवारियेंजणपेसिउ ।
आयउ जुवाणु निरु एक्कु जणु नरवइ तेण नमंसिउ ॥१२॥

[१३]

अहो रायाहिराय जयसिरिरस　　चउरयणायरंतपसरियजस ।
पेक्खु पेक्खु अचंभउ वट्टइ　　नहयलु दुंदुहिसद्दें फुट्टइ ।

[१२]

उस राजाकी मदनको दर्प पैदा करनेवाली, सौभाग्य व रूपकी निधि अष्टसहस्र रानियाँ थीं। वे विशाल पूर्णचन्द्रमाके समान मुख तथा भयत्रस्त बालहरिणीके समान नेत्रोंवाली थीं। उनका स्वर कलकंठी (कोकिला) के समान मधुर था, व अधरोष्ठ बंधूक पुष्पके समान ताम्रवर्ण थे। उनके स्तन कलधौत कलशके समान निर्भेद्य अर्थात् कठोर व सुपुष्ट थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण व नितम्ब बड़े-बड़े चक्कोंके आकारके थे। सुंदर कामिनियोंके हाथोंसे उनके ऊपर चमर डुलाये जाते थे, एवं मुखकी सुगन्धित आश्वाससे आकृष्ट होकर एकत्र होते हुए भौंरे गुंजार करते थे। उन रानियोंके साथ विलासपूर्वक विहार करता हुआ राजा सप्त-अंगों (स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोश, बल एवं सुहृद) से पूर्ण राज्य करता था। इस प्रकार जब एक दिन शक्रके समान क्रीड़ा (विलास) धारण करता हुआ राजा स्वर्णसिंहासनपर विराजमान होता हुआ, सामंत व मंत्रियोंके परिवारसहित सभामंडपमें बैठा था, तब शलाकादंडसे कपड़ेको (मूठ बनाकर) बाँधे हुए दौवारिक द्वारा भेजा हुआ एक अत्यन्त जवान व्यक्ति वहाँ आया और उसने नरपतिको प्रणाम किया ॥१२॥

[१३]

हे जयश्रीमें रस लेने वाले व चारों रत्नाकरोंके अन्त तक प्रसृत यशवाले राजाधिराज देखिए! देखिए! एक बड़ा अचंभा हो रहा है कि नभस्तल दुंदुभिके शब्दसे फूटा जा रहा है। आज

[१२] १. ख ग °निभिंद । २. ग °खीण । ३. ख ग °रई । ४. ख °वणु । ५. क ख दुउ° । ६. ख ग आइय । ७. ख ग नह; क ख निरु ।

अज्जु अयाले[1] वणासइ[2] रिद्धी अहिणवदलफलकुसुमसमिद्धी ।
अज्जु सुयंधु एहु सीयलु[3] घणु वाउ वाइ जं पूरियकाणणु ।
जं जि तलायइँ[4] वड्ढिय[5] नीरइँ विमलतरंगक्खालियतीरइँ[6] ।
अज्जु अकिट्ठपक्ककणधण्णहिँ[7] छेत्तभूमिपसवियबहुवण्णहिँ ।
दीसइ अज्जु सरसु जं एहउ गाविउ खीरु खिरंति अमोहउ ।
वड्डुउ कोऊहलु उप्पायमि[8] कारणु एउ देव वद्धावमि[9] ।
घत्ता—इय समवसरणसंपयसहिउ चउगइकम्मखयंकरु ।
संपाइउ[10] विउलमहासिहरे वड्ढमाण[11] तित्थंकरु ॥१३॥

[१४]

आयण्णिवि तं मगहेसरेण सिरिकमलविरइयंजलि[1] करेण ।
जय-जय-गहिरक्खरभासणेण सहसत्तिमुक्कसिंहासणेण ।
केऊरकडयमणिकुंडलेहिँ वद्धावउ पुज्जिउ उज्जलेहिँ ।
सम्मत्तभत्तिकंटइयगत्तु कइवय[2]पयाइँ[3] जाएवि[4] नियत्तु ।
बहिरियकण्णंत-दियंतपूरु अप्फालिउ लहु आणंदतूरु ।
थगथुगि-थुगिथगदुगि-पडहसद्दु[5] घुमुघुमुघुम्मावियमुरयनद्दु ।

अकाल अर्थात् बिना ऋतुके ही समस्त वनस्पति हरी-भरी हो उठी है और वह अभिनव पत्रों-पुष्पों व फलोंसे समृद्ध हो गयी है। आज ऐसा सुगंधित शीतल व सघन वायु बह रहा है जिसने सारे काननको पूर दिया है। और जो तालाब हैं, सबमें पानी बढ़ गया है, तथा विमल तरंगोंसे उनके तीर प्रक्षालित हो रहे हैं। आज बिना कृषि किये हुए ही पके हुए कणवाले अनेक प्रकारके धान्यसे समस्त क्षेत्र भूमि (कृषि भूमि) प्रसवित (निष्पन्न) हो रही है। आज यह दिखाई देता है कि गायें (बिना दुहे ही) प्रचुर मात्रामें अत्यन्त सरस दूध क्षरण कर रही हैं। हे देव ! मैं आपको बड़ा भारी कौतूहल उत्पन्न कर रहा हूँ व इस हेतुसे आपको बधाई देता हूँ कि इस प्रकारसे समस्त समवशरण संपदाके साथ चारों गतियोंके कर्मोंका क्षय करनेवाले वर्द्धमान तीर्थंकर विपुलमहाशिखरपर पधारे हैं ॥१३॥

[१४]

उस शुभ समाचारको सुनकर मगधेश्वरने अपने शिरोकमलपर प्रणामांजलि करके जय ! जय ! का गंभीर घोष करते हुए सहसा सिंहासन छोड़कर अपने उज्ज्वल केयूर, कड़े और मणिकुंडलोंसे वर्द्धापकका पूजा-सत्कार किया। फिर सम्यक्श्रद्धायुक्त भक्तिसे रोमांचित गात्र होकर कुछ पद आगे (भ० के समवशरणकी दिशामें) जाकर वापिस लौटा। शीघ्र ही कानोंको बधिर करनेवाला तथा समस्त दिगन्तोंको पूरनेवाला आनंदतूर्य बजाया गया। थग-थुगि, थुगि-थग-दुगि करते हुए पटहका शब्द होने लगा, व घुम-घुम करते हुए मुरजका नाद [सब

[१३] १. ख ग °लें। २. ख ग वण°। ३. क घ क °ल। ४ ख घ क °यहं। ५. ख ग वड्डिय°। ६. क °इ। ७. क °हं। ८. क क पओवमि। ९. क क °यमि। १०. क क °यइ। ११. क क वद्ध°।
[१४] १. ख ग °अंजलि। २. ख ग कय°। ३. क क °इ। ४. क आयवि। ५. ख ग घ थगदुगे

[6]खडतड-तडिखरतडि-तरडखोहु रणझणंझणंतकंसालसोहु[7]।
त्रं त्रं त्रं ताडिय ढक्कसारु रं रं रं रंजिय [8]रुंजफारु।
तडतडणतडिय[9] काहलविलासु हुहुयइँ[10] संख पूरंतसासु।
जणु चलिउ सयलु परिघुट्ठु नाउ वारुअकरिणिहे[11] संचडिउ राउ
घत्ता—मंडलवइतारापरियरिउ[12] पुण्णिमचंदु व उग्गउ।
जिणवंदणहत्तिए तुट्ठमणु नरवइ नयरहो निग्गउ ॥१४॥

[१५]

ताम चलियं चलंतेण कियकलयलं पउरजणसंकुलं चाउरंगं बलं।
कहिँ मि पज्झरियमयकुंजरो[1] धाविउ दंसियारेहिँ[2] वीरेहिँ रोसाविउ।
कहिँ मि निवकुमरकसघायताडियहओ[3] खुरपहारेण[4] खोणी खणंतं गओ[5]।
कहिँ[6] मि घरहरियरहत्तासमि[7]क्खियसरो वियलियासणनरं नासए वेसरो।
कहिँ मि कुंतासि-कडिसल्ल[8]-करतक्कड[9] धंतखेल्लंतपाइक्कघडसंकडं।[10]
कहिँ मि भूमीकमं छड्डिरी वारिया दंडधारेहिँ[11] निरवीरमोसारिया[12]।

दिशाओंमें) घूमने लगा। खर-तड, तडि-खर-तडि करते हुए तरड वाद्य (लोकोंमें) क्षोभ अर्थात् आश्चर्यपूर्ण हलचल उत्पन्न करने लगा; व रण-झण रण-झण झंकार उत्पन्न करते हुए कांस्य वाद्य सुंदर लगने लगा, त्रं त्रं त्रं करते हुए श्रेष्ठ ढक्का (डमरु) बजाया जाने लगा, व रं रं रं करते हुए रुंजा वाद्य उच्चस्वरसे रुंजायमान हुआ। तड-तड-तड करते हुए काहल वाद्यका विलास हुआ व दीर्घ आश्वाससे आपूर्यमाण शंख हू हू करके बज उठे। सब लोग चल पड़े, बड़े उच्चस्वरका परिघोष हुआ व राजा भी शीघ्रगामी-हथिनी पर सवार हो गया। जिस प्रकार नक्षत्रमंडलका पति पूर्णिमा का चंद्रमा तारोंसे परिवारित अर्थात् चारों ओरसे घिरा हुआ उदित होता है, उसी प्रकार पृथ्वीमंडलका स्वामी वह राजा भी परिजन, पौरजन व मंत्रि-सामंत इत्यादिसे परिवरित होकर जिनवंदनाकी भक्तिसे प्रसन्न मन होकर नगरसे निकला ॥१४॥

[१५]

तब पौरजनोंसे युक्त चतुरंग सैन्य चल पड़ा, व उसके चलनेसे बड़ा कलकल हुआ। कहींपर मद झराता हुआ हाथी आर दिखानेवाले अर्थात् महावत वीरोंसे क्रुद्ध होकर दौड़ पड़ा। कहींपर नृपकुमारों द्वारा कशघातसे आहत हुआ अश्व खुरप्रहारसे क्षोणी (पृथ्वी) को खोदता हुआ गया। कहींपर रथकी घर-घराहटसे त्रस्त हुआ खच्चर हिनहिनाकर सवारको आसनसे गिराता हुआ भाग खड़ा हुआ। कहीं कुंत, असि व कटिशूल आदि शस्त्रोंको धारण करनेवाले समर्थ भुजाओंवाले पदातियोंका समूह खेलता हुआ दौड़ पड़ा। कहीं भूमिक्रम अर्थात् पंक्ति

पगढुगे पडपडहसद्दु। ६. ख ग खरतड तडखर तड टरड वाहु; घ खरतड तडिखर तडि टरडखोहु। ७. क क रणरण°। ८. क क हंज°। ९. क घ क पडिय°। १०. ख ग हुहुहुय। ११. क क °करणि, ख ग घ °णिहि°। १२. क क °पडिउरिउ।

[१५] १. क °कुंभिरो। २. क क °यारेहि। ३. क °कुस। ४. क खर°। ५. क खणंतग्गउ। ख ग खणंतउ गओ। ६. क ख ग क कहिमि। ७. ख ग घ °तास। ८. ख ग °तल्ल। ९. क घ क करि°। १०. घ °पाइल्लघड°। ११. क °करेहि। १२. क क निरवीसमो°।

कहिँ मि मणिखइयचंदोवयाडंबरं सिहिरीधवलधयछत्तच्छइयंबरं ।
ताव[13] थोवंतरे विउलगिरि लक्खिओ हत्थपसरेण अवरोप्परं अक्खिओ ।
जो समोसरण[14]लच्छीए उज्जोइओ उद्धदिट्ठीहिँ नियडेहिँ[15] पुणु जोइओ ।
[16]नियय‍चंगत्तणासिट्ठओ गज्जए कणयसेलो इमो केम मह पुज्जए ।
घत्ता—हणु कंचणु[17] तुंगिम परए करु [18]णिवसियदेवणिकायहो ।
देवाहिदेउ[19] महु सिहरि ठिउ किम समसीसी[20] आयहो ॥१५॥

[१६]

दूरुज्झियहयगयरहपत्तें[1] परियणपउरजुएण सकलत्तें ।
दीसइ समवसरणु[2] महिनाहें मोक्खदुवारु व केवलनाहें ।
इंदाएसें धणयविणिम्मिउ जोयणेक्कु चउगोउरपरिमिउ ।
मणिकुड्डंतरु दिण्णपयाहिणु[3] बारहकोट्ठा दिट्ठसुहावण ।
गणहरपमुहसवण ठिय एक्कहिँ कप्पवासिदेविउ अण्णेक्कहिँ ।
तइयइ अज्जियाउ चउथइ पुणु फुरियकंतिजोइसजुवईयणु[4] ।
पंचमे विंतरविलयउ सारिउ छट्ठए[5] दिट्ठउ भावणनारिउ[6] ।

संगठनाका परित्याग करनेवाली अपनी वीर मंडलीको रोककर दंडधारी नायकोंने उन्हें पंक्तिमें स्थित रखा; आकाश कहींपर तने हुए मणिखचित चंदोवों व कहीं पताकाओं तथा धवल ध्वजा और छत्रोंसे छा गया। तब थोड़ी दूरपर विपुलगिरि देखा गया और लोगोंने हाथ पसार पसारकर एक दूसरेको बतलाया। जो (विपुलगिरि) समोशरणकी विभूतिसे शोभायमान था, उसे निकट गये हुए लोगोंने आँखें उठाकर देखा। वह अपनी श्रेष्ठतासे हर्षित होकर (मानो) गरज रहा था कि यह कनकशैल (सुवर्णाचल-मेरु) मेरी तुलना कैसे कर सकता है? इसका यह सुवर्ण और यह तुंगिमा दूर हटाओ! नाना देवनिकायोंसे बसे हुए इसकी मेरे साथ तुलना ही क्या? मेरे शिखरपर तो देवाधिदेव (तीर्थंकर) विराजमान हैं ॥ १५ ॥

[१६]

हाथी, घोड़े व रथ आदि वाहनोंको दूर ही छोड़कर परिजन, पौरजन एवं रानियोंके साथ भूपतिने समोशरणको देखा, जो केवलज्ञानको वहन करनेवाले तीर्थंकरसे मानो मोक्षका द्वार ही था। वह समोशरण इंद्रके आदेशसे धनदके द्वारा निर्मित किया गया था, तथा एक योजन विस्तार और चार गोपुरोंसे परिमित था, व मणिनिर्मित भित्तियोंके बीचमें प्रदक्षिणा बनी थी, उसमें राजाने बहुत सुहावने बारह कोठे देखे। एक कोठेमें गणधरको प्रमुख करके सब श्रमण बैठे थे, और दूसरेमें कल्पवासी देवियाँ; तीसरे कोठेमें आर्यिकाएँ और चौथेमें स्फुरायमान् कांतिवाली ज्योतिष्क-युवतियाँ, पाँचवेंमें सुंदर व्यन्तर नारियाँ थीं, तो छठेमें भवनवासी

---

१३. क ख क ताम। १४. क °लच्छीपउज्जोइयो। १५. क क °डेहि। १६. क क नियगरुयत्तणा। १७. क क °ण। १८. क क णियविय°। १९. क क °देव। २०. क क °रीसो।

[१६] १. क ख क °छत्तें। २. क क °सरण। ३. क क °हुण। ४. क क °जुयई°। ५. ख ग °थे°। ६. क क भाविणु°।

सत्तमे जोइस अट्ठमि विंतर[7]   नवमइ भावण थक्कनिरंतर ।
दसमइँ कप्पवासि थिय सुरवर   एयारहमइ[8] मणुयमणोहर ।
मुक्कविरोहतिरियसुहभावण   बारहमए[8] संठिय सुत्थियमण ।

घत्ता—मरगयमउ पोमरायकुसुमु[9] इंदनीलदलसुंदरु[10] ।
अइ कोमलचलपल्लवबहलु दिट्ठु असोयमहातरु ॥१६॥

[१७]

तहो तले कणय रयणहरि[1] विट्ठरे   किरणाहयसुरिंदसेहरकरे ।
पत्तपहुत्तति छत्तालंकिए[2]   देवकुमारमुक्ककुसुमंकिए ।
चामरकरजक्खेसरभद्दए   दुंदुहिसद्दनिहयपडिसद्दए[3] ।
दिव्वए[4] सव्वबाणिपरियाणिए   सयलभाससंवलिए[5] वाणिए ।
भामंडलमज्झट्ठिउ छज्जिउ[6]   फलिहवण्णु पडिबिंबविवज्जिउ[7] ।
अलिउलकेसुब्भासिउ वरसिरु   दंतदित्तिधवलियजयमंदिरु ।
उग्गयधम्मचक्कमंडियसहु   वीयराउ तइलोक्कपियामहु ।
दिट्ठु जिणंदु[8] पयाहिणदेंतें[9]   पुणु पणविउ उच्चारियथोत्तें ।

*देवोंकी स्त्रियाँ, तथा सातवेंमें ज्योतिषो देव; आठवेंमें व्यन्तर देव और नौवेंमें भवनवासी देव स्थित थे। दसवें कोठेमें कल्पवासी देव तथा ग्यारहवेंमें मनुष्य विराजमान थे। बारहवें कोठेमें परस्पर वैर—विरोधको भूलकर शुभभावनासे स्वस्थमन होकर सब तिर्यंच जीव बैठे थे। तब राजाने मरकतमणियोंसे जड़े हुए पद्मरागमणिके समान पुष्पों व मरकतमणिदलोंके समान अत्यन्त सुंदर, कोमल व चंचल पत्रोंसे प्रचुर अशोक महावृक्षको देखा ॥१६॥

[१७]

उस अशोक वृक्षके नीचे अपनी किरणोंसे सुरेंद्रके शेखरकी किरणोंको तिरोहित करनेवाले स्वर्णरत्नमय सिंहासनपर, (तीनों लोकोंके) प्रभुत्वको प्राप्त व तीन छत्रों (अथवा तीर्थंकरत्व) से अलंकृत, देवकुमारों द्वारा वर्षाये गये पुष्पोंसे सुशोभित, कल्याणप्रद यक्षेश्वरके द्वारा हाथोंमें चंवर धारण किये जाते हुए, (दिव्य) दुंदुभिके शब्दसे समस्त प्रतिशब्दोंके निहत होते हुए, एवं समस्त बोलियोंका परिज्ञान करानेवाली तथा (अठारह देशोत्पन्न) सर्वभाषा समन्वित दिव्यवाणीसे युक्त वे भगवान् भामंडलके मध्यमें बैठे हुए सुशोभित हो रहे थे। उनका वर्ण स्फटिकके समान था, जिसका कोई प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता। उनका उत्तम शिरोभाग भ्रमरकुलके समान काले केशोंसे उद्भासित था, और उनकी दंतपंक्तिकी दीप्तिसे संपूर्ण लोकरूपी मंदिर उज्ज्वल हो रहा था। उत्पन्न हुए धर्मचक्रसे मंडित सर्वशक्तिमान वीतराग और त्रैलोक्यके पितामह उन जिनेंद्रको राजाने प्रदक्षिणा देते हुए देखा, और फिर स्तोत्रका उच्चारण करके

७. क ड वह° । ख °मइं । ८. ख °मइं । ९. ख ग पोमारयकुसमु । १०. क ख ड° दलु° ।

[१७] १. क ड °रहणहरि°; ख ग °हरे° । २. ख ग ड तित्तता° । ३. क ख ड °ई । ४. क ख ड °इं ।° ५. क ड संप°; ख ग °संवलिए । ६. क छज्जइ; ड छज्जउ । ७. क °ज्जइ; ड °ज्जउ । ८. क ख ड जिणिंदु । ९. क ड दिंति; ख दींत ।

घत्ता—संसारनिसिहिँ रइतमगहिउ मायानिद्दए[10] सुत्तउ ।
पई[11] केवलनाणदिवायरेण[12] जगु संबोहिउ सुत्तउ ॥१७॥

[१८]

तुमं[1] देव सव्वण्हु[2] लच्छीविसालो   अहं वण्णिउं न सक्केमि बालो ।
समुज्जोइयासोह[3] वा तेयपूरो   न पुज्जिज्जए किं पईवेण सूरो ।
न ते वीयरायस्स पूयाए[4] तोसो   न वा संत वइरस्स[5] निंदाए रोसो ।
परं ते समुग्गीरियं देव नामं   पवित्तेउ चित्तं महं सुक्खधामं[6] ।
तुमं पुज्जमाणस्स लोयस्स एसो   महापुण्णपुंजम्मि सावज्जलेसो ।
कणो जेम हालाहलस्सप्पसत्थो   सुहासायरं दूसिउं[7] नो समत्थो ।
अविग्घो तए देव सिट्ठो समग्गो   तिलोयग्गगामीण भव्वाण मग्गो ।
पडंतो जणो मोहकालाहिखद्धो   किओ देव वायासुहाए विसुद्धो ।
तुमं पत्तसंसारकूवारतीरो   तुमं सामि संपुण्णविज्जासरीरो ।
सए[8] नाणजोईए उद्दित्तमेयं[9]   समुब्भासए चंदसूराण तेयं[10] ।

प्रणाम किया—इस संसाररूपी निशामें रति (काम व मोह)रूपी अंधकारसे ग्रहीत और मायारूपी निद्राके वशीभूत होकर सोते हुए (अर्थात् आत्महितसे विमुख) जगतको आपने अपने केवलज्ञानरूपी दिवाकरसे प्रतिबुद्ध किया ॥ १७ ॥

[१८]

हे देव ! आप सर्वज्ञ हैं और (केवलज्ञानादिरूप) लक्ष्मीसे विशाल हैं । मैं अबोध-अज्ञानी आपका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ । आपकी शोभा स्वयं प्रकाशित है, तथापि क्या तेजपूर्ण सूर्य दीपकसे पूजा नहीं जाता (अर्थात् मेरे द्वारा आपके गुणोंका वर्णन सूर्यको दीपक दिखाने जैसा है) । वीतराग होनेसे, तुझे न तो पूजासे तोष (आनंद) होता है और न शांतवैर अर्थात् वीतद्वेष होनेसे निंदासे रोष । तथापि आपका नाम, जो कि सुखका धाम है, वह उच्चारण करने मात्रसे मेरे चित्तको पवित्र करे (अर्थात् पवित्र करता है) । तुम्हारी पूजा करनेवाले लोकके महापुण्य-संचयमें लेशमात्र पाप दूषण उत्पन्न करनेमें उसीप्रकार समर्थ नहीं होता, जिसप्रकार हालाहल विषका एक अमंगलकारी कण अमृतसागरको दूषित करनेमें । देव ! आपने त्रिलोकके अग्रभाग अर्थात् मोक्षको जानेवाले भव्य जीवोंके लिये निर्विघ्न एवं समग्र मार्गका उपदेश किया तथा मोहरूपी कालसर्पसे खाये जाते हुए जीवोंको अपनी दिव्यवाणी रूपी सुधासे (उसीप्रकार) शुद्ध किया (जिसप्रकार सर्पका विष सुधा अर्थात् अमृत अथवा चूनेसे उतारा जाता है) । हे स्वामिन् ! आप इस संसार सागरके तीरपर पहुँच गये हैं एवं संपूर्ण विद्यारूपी शरीर अर्थात् केवलज्ञानके धारक हैं । आपकी ही

---

१०. क ङ °णिद्दा । ११. क पइ । १२. क ङ °यरिणा ।

[१८] १. ख ग तुम्हं । २. क घ ङ °ण्हू । ३. ख °उज्जोइयं । ४. ख ग पुज्जाए । ५. क ङ °वीरस्स । ६. क घ ङ °धामं । ७. क °उ; ख ग °यं । ८. क ङ तए । ९. क ङ उद्दिट्ठ° ख ग °मेएं । १०. ख ग तेएं ।

मुहाभासयं दप्पणे पेक्खमाणा मुहं चेव[11] मण्णंति बाला अयाणा।
तहा वत्थुरूवं[12] अहंबुद्धिलुद्धा[13] सरूवं निरूवंति ते नाह मुद्धा।
तुमं झायमाणस्स[14] नाणम्मि लीणं मणं होउ मे नाह[15] संकप्पखीणं।

घत्ता—अंतेउरपरियणपउरसहुं[16] थोत्तसएहिँ नरेसरु।
कोट्ठए निविट्ठु एयारहमे वंदेवि वीरु जिणेसरु ॥१८॥

जयति मुनिवृंदवंदितपदयुगलविराजमानसत्पद्मः।
विबुधसंघानुशासनविद्यानामाश्रयो वीरः ॥१॥
कथेयं पूर्वसिद्धेव भूयो यत्क्रियते मया।
तत्तस्या ग्रंथबाहुल्यात् सांप्रतं भीरवो जनाः ॥२॥
न बह्वपि[17] तथा नीरं सरो नद्यादि संस्थितं।
करकस्थं यथा स्तोकमिष्टं स्वादुश्च पीयते ॥३॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए सेणियसमवसरणागमो नाम [18]पढमो संधी समत्तो[18] ॥संधि– ॥

ज्ञानज्योतिसे उद्दीप्त होकर यह चंद्र और सूर्यका तेज उद्भासित होता है। मूर्ख लोग दर्पणमें मुखाभास अर्थात् मुखके प्रतिबिम्बको देखकर यह मुख है, ऐसा मान बैठते हैं। उसीप्रकार अहं बुद्धि (मैं और मेरा] से ग्रसित वे भोले लोग अपनी मतिके अनुसार वस्तुस्वरूपका [एकांगी] निरूपण करते हैं। हे देव ! आपका ध्यान करते हुए सच्चे ज्ञानमें लीन होकर मेरा मन समस्त संकल्प-विकल्प रहित हो जाये। इस प्रकार सैकड़ों स्तोत्रों द्वारा वीर जिनेश्वरकी वंदना करके अन्तःपुर, परिजन, व पौरजनोंके साथ राजा ग्यारहवें कोठेमें बैठ गया।

मुनिवृंद जिनके चरणयुगलकी वंदना करते हैं, जो कमलासनपर विराजमान हैं और जो ज्ञानियोंके संघका अनुशासन करनेवाले हैं, ऐसे समस्त विद्याओंके आश्रय वीर भगवान्‌की जय हो ! (यहाँपर श्लेषमें वीर कवि यह भी प्रगट करना चाहता है कि वह ज्ञानीजनोंके संप्रदायका अनुशासन करनेवाली विद्याओंका आश्रयभूत था)। यहाँ यह कथा पूर्वकालसे प्रसिद्ध होनेपर भी, जो मेरे द्वारा पुनः रची जा रही है, इसका कारण है—ग्रंथ बाहुल्य होनेके कारण लोग अब उसके पढ़नेसे घबराते हैं। सरोवर और नदी आदिमें स्थित प्रभूत जल भी उस प्रकार नहीं पिया जाता, जिसप्रकार करवेमें रखा हुआ थोड़ा सा, इष्ट अर्थात् स्वास्थ्यकर और स्वादु जल लोगोंके द्वारा अभिलाषापूर्वक पिया जाता है (उसी प्रकार जंबूस्वामीकथाका पहलेसे बड़ा विस्तार होनेपर भी मेरी यह कथा संक्षेपमें होनेसे अभिलाषापूर्वक पढ़ी जायेगी) ॥ १८ ॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीर रसात्मक महाकाव्यमें राजा श्रेणिकका समोसरण-आगमन नामक प्रथम संधि समाप्त ॥ संधि—१ ॥

---

११. क ङ देव; ख ग चेय। १२. क वत्थरूपं। १३. क ङ °लद्धा। १४. ख ग झाण°। १५. क ङ संकाय°। १६. क व ङ °सिहुं। १७. क व ङ नवह्वमपि। १८. क व ङ पढमा इमा संधी; ख ग पढमो संधी।

सन्धि—२

[१]

सुरनरसमवाएं सेणियराएं सविणयललियक्खरगिरेणं[1]।
पुच्छिउ केवलधरु सम्मइजिणवरु जीयतत्तु पणवियसिरेणं[2]॥

गुरुगज्जिरघणगंभीरवाणि | परमिट्ठि पयंपइ राय जाणि।
अत्थित्ति निरंजणु जीउ संतु | सब्भावें दंसणनाणवंतु।
संवेइयप्प[3]परपरमतत्तु | निरवहिसण्णाणपमाणमेत्तु[4]।
जाणंतु वि परु न परेण मिलिउ | आयासपमुहदव्वहिँ[5] न खलिउ।
नीसेसनिरत्थोवाहि[6] सहइ | जंगमेण अजंगमु जेम वहइ।
संतें[7] गयणे नवभवसमत्थु[8] | पावइ अवयासु धराइअत्थु।
दिवसयरकिरणकारणु[9] लहंतु[10] | रविकंतु व दीसइ अग्गिवंतु[11]।
तिहे[12] जोग्गकम्मपरमाणुखंधु[13] | परिवड्ढियअहमिये[14]-बुद्धिबंधु।

[१]

देव और मनुष्य सबके अभिप्रायसे श्रेणिक राजाने विनयसहित ललितवाणी-द्वारा केवलज्ञानके धारक सन्मति जिन भ० महावीरसे शिर नवाकर जीवतत्त्वके विषयमें पूछा। तब महान् गर्जनशील मेघके समान गंभीर वाणीसे परमेष्ठी कहने लगे—हे राजन्! ऐसा जानो कि स्वभावसे यह जीव निरंजन (पूर्णतः कर्ममुक्त), शांत एवं दर्शन-ज्ञानसे युक्त है। यह आत्मा स्वयं और पर दोनोंके परमतत्त्व (परमार्थ-सत्य) को संवेदन करनेवाला है तथा (सत्ताकी अपेक्षा अनादि-अनंत एवं (विस्तारकी अपेक्षा) स्वज्ञान-प्रमाण मात्र है। पर-पदार्थको जानते हुए भी यह 'पर' से मिलता नहीं और आकाश प्रमुख द्रव्यों (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल) से इसका स्खलन अर्थात् इसकी किसी क्रियाका विरोध नहीं होता। (तथापि) प्रत्येक शरीरीजीव सर्वथा अनात्मस्वरूप कर्मजनित शरीरसे सुख-दुःखात्मक उपाधिको उसीप्रकार सहन करता है, जिसप्रकार जंगम (सजीव) बलीवर्दादिक प्राणी अजंगम (निर्जीव) शकटादि वस्तुको ढोता है। आत्म-परिणामोंसे प्रादुर्भूत कर्मपरमाणु नया भव ग्रहण करने तथा आत्मप्रदेशोंमें अवकाश पानेमें उसी प्रकार समर्थ होते हैं, जिसप्रकार पृथिव्यादि पदार्थ आकाशमें स्थान पाने व स्वकार्य करनेमें समर्थ होते हैं। और जिसप्रकार सूर्यकांतमणि रविकिरणोंके संपर्कसे अग्नियुक्त दिखाई देने लगता है, उसीप्रकार अचेतन पुद्गलात्मक कर्म-परमाणुओं-से प्रादुर्भूत शरीर भी सचेतन आत्माके संपर्कसे चेतन व क्रियावान् दिखाई देने लगता है। आत्माके (भाव) कर्मसे तदनुरूप कर्मरूप परिणत हुए पुद्गल-परमाणुस्कंध (से जो इंद्रियाँ

[१] १. क ख ग °गिरिणा। २. क ख ग °सिरिणा। ३. क ग °यप्पु। ४. क ख ग °मित्तु। ५. ख ग °दव्वहि। ६. ख° निरत्था°। ७. क ग संतें। ८. क ख °समत्थ। ९. क दिवसयर°। १० क ग लहंति। ११. ख ग घ अग्गिवंतु; क अग्गिवंति;। १२. क ग तिह; ख तिहं। १३. क जोगकम्म°; ग जोगकम्म°। १४. क ग परिवड्ढियअहिमिय।

जीवेण णिमित्तें[15] मोहवासु वियप्पु वियंभइ करणवासु ।
इय जाम[16] जीव जइणिमित्तिओ वि ववहारें भण्णइ जीउ सो वि ।
संसारणिबंधणु तेण जणिउ तं णासु णिरामउ मोक्खु भणिउ ।
घत्ता—उप्पज्जइ खिज्जइ[17] गुरु-लहु किज्जइ णरयगइमुहमाइँ[18] अणुहवइ ।
कम्मासवधारणु भावियकारणु[19] सो च्चिय मोहजालु खवइ ॥१॥

[२]

णरयगइहि[1] उप्पज्जइ जइयहु करवत्तहिँ फाडिज्जइ तइयहु ।
जलणकढंतए तिल्ले तलिज्जइ णारइयहिँ अवरुप्परु खज्जइ ।
पाविवि तिरियजोणि णिक्कारणु लहइ णिबंधणु ताडणु मारणु ।
मणुयत्तणे वि धम्मु णावज्जइ[2] माणुसु[3] पावपिंडु णिप्पज्जइ ।
सुरलोए वि बालत्तवसाहणु[4] कुच्छियदेउ होइ सुरवाहणु ।
अण्णे[5] वि जे हवंति सुरसुंदर[6] कंदहिँ चवणसमए[7] दुक्खाउर ।
छम्मासावहि आउसि हुअइ हा विमाणे[8]-इट्ठच्छर मुअइ ।

निर्मित होती हैं उनकी वृद्धिसे ही (आत्म-संबंधके कारण) 'मैं बढ़ रहा हूँ' ऐसा बुद्धिबंध अर्थात् बुद्धिविकल्प उत्पन्न होता है। जीवके निमित्तसे एवं मोहनीय कर्मके सामर्थ्यसे यह नाना-विकल्पात्मक इंद्रियसमूह उत्पन्न होता है। इस प्रकार जो भी जीवनिमित्तक (पर्याय) है, व्यवहारमें उस वस्तुको जीव ही कहा जाता है। उस जीवके द्वारा ही संसार-निबंधन और पुनर्भवको बाँधनेमें कारणभूत जो कर्म उत्पन्न किया जाता है, उस कर्मका निरामय-निर्व्याधि अर्थात् निःशेष नाश ही मोक्ष कहा जाता है। यह (व्यावहारिक) जीव उत्पन्न होता है, क्षीण होता है अर्थात् मरता है; छोटा-बड़ा होता है—अर्थात् छोटी-बड़ी शरीरपर्याय धारण करता है; एवं नरक-प्रधान गतियोंका अनुभव करता है। और वही जीव कर्मास्रवको निवारण करनेवाले कारण (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र) की भावना करके मोहजालको खपाता है, अर्थात् नष्ट कर डालता है ॥ १ ॥

[२]

जब जीव नरकगतिमें उत्पन्न होता है, तो उसे करौंतसे चीरा जाता है, अग्निसे खौलते हुए तेलमें तला जाता है और नारकियोंके द्वारा परस्परको खाया जाता है। तिर्यंच-योनिको प्राप्त होकर निष्कारण ही बाँधा, पीटा व मारा जाता है। मनुष्यत्वको पाकर भी मनुष्य धर्म नहीं करता, बल्कि पापके ढेरको ही इकट्ठा किया करता है। बाल-तपकी साधनासे देवलोकमें उत्पन्न होकर भी देवोंका वाहनरूप कुत्सित देव होता है। दूसरे भी जो सुंदर देव होते हैं, वे भी देवलोकसे च्युत होते समय दुःखातुर होकर क्रंदन करते हैं। छह मास पर्यंत आयु शेष रहनेपर देवोंको ऐसा होता है—हाय! हमारा यह देवविमान और ये सुंदर अप्सराएँ छूट

१५. क ङ णिमित्तिं; ख घ निर्मित्ति। १६. ख ग घ जाउ। १७. घ निज्जइ। १८. ख ग णरइ°। १९. क ङ भवियणकारणु।

[२] १. क ङ °गईहिं; घ °गइहि। २. क घ ङ विणिवज्जइ। ३. ख ग माणुस। ४. ग बालतव°। ५. क ङ अण्णु। ६. क सुरसुंदरु; ङ सुरसुंदरु। ७. ख ग चयण°। ८. ख ग विमाणे।

केम सरीरकंतिपरिभट्ठें विसहेव्वउं[9] अणिट्ठु मइ कट्ठें ।
हा हा रक्खहि[10] देव पुरंदर हा पुणु कहिँ[11] दीसेसहि मंदर ।
घत्ता—इय जाणिवि नरवइ[12] चउगइपरिणइ[13] विविहाणंतदुक्खदरिसि[14] ।
चारित्तु चरिज्जइ ताम हि छिज्जइ संसारिणि वड्ढंति[15] तिस[16] ॥२॥

[३]

इमं कहंतरं जिणेसरे[1] कहंतए नरामरे विसुद्धभावणं वहंतए ।
तओ नियच्छियं नहंगणाउ एंतयं[2] फुरंततेयवारिपूरियादियंतयं[3] ।
अतिव्वतावयं[4] न सूरगोनिउंजयं अगज्जिरं निरंतरं न विज्जुपुंजयं[5] ।
किमेयमेरिसं वियप्पिऊण राइणा[6] पपुच्छिओ जिणो कहेइ साहुवाइणा ।
इमो नरिंद नामविज्जुमालिभासुरो भमेइ वंदणा[7]समीहमाणओ सुरो ।
सुरालयाउ सत्तमे[8] दिणे चविस्सए भवेण केवलीह पच्छिमो भविस्सए[9] ।
तओ[10] रणंतकिंकिणीविरायमाणयं पराइओ सुरो मुयंतु खे विमाणयं ।
पियाचउक्कपंचमो[11] सहाए दिट्ठओ नमंसिओ जिणेसरो[12] सकोट्ठे विट्ठओ[13] ।

रही हैं; हाय ! हाय ! शरीर (की दिव्य) कांतिसे परिभ्रष्ट होकर, यह सब अनिष्ट मुझसे अत्यन्त कष्टसे किसप्रकार सहन किया जायेगा ? हाय ! हाय ! हे देव पुरंदर ! रक्षा करो ! हाय ! यह मंदराचल फिर कहाँ दिखाई देगा ? इसप्रकार हे नरपति ! यह चारों गतियोंके विविध-अनंत दुःखोंको दिखानेवाली (कर्म) परिणति जानकर जब (सम्यक्) चारित्रका पालन किया जाता है, तभी यह बढ़ती हुई सांसारिक तृष्णा (भोगाकांक्षा) नष्ट होती है ॥ २ ॥

[३]

जिनेश्वरके इस कथानकको कहते समय जब मनुष्य और देव शुद्ध भावनाको धारण कर रहे थे, अपने तेजरूपी जलके पूरसे दिशाओंको पूरता हुआ, अतीव तेजस्वी होते हुए भी जो सूर्यरश्मियों का अत्यन्त तापयुक्त निकुंज नहीं था, तथा निरन्तर (मेघ) गर्जना न होनेसे पुंजीभूत विद्युत्पुंज भी नहीं था, ऐसा (एक देव) नभांगनसे आता हुआ देखा गया । यह कौन है ? इस प्रकारका विकल्प करके राजाके पूछनेपर साधुवचनोंसे जिन भगवान् बोले—हे नरेंद्र । यह अत्यन्त भास्वर विद्युन्माली नामका देव है जो (जिन) वंदनाकी इच्छासे भ्रमण कर रहा है । यह स्वर्गसे सातवें दिन च्युत होगा और यहीं मनुष्यभवसे अन्तिम केवली होगा । इसके अनन्तर रण रण करती हुई किंकिणियोंसे शोभायमान विमानको आकाशमें ही छोड़कर वह देव वहाँ आया । अपनी चार प्रियाओंके साथ पाँचवा वह सभामंडपमें बैठे हुए लोगोंके द्वारा देखा

---

९. ख ग विसहेवउ । १०. ख ग रक्खहिं । ११. क क कहि । १२. क क खणरइ । १३. क घ °परिणई । १४. ख °दरिसे; घ °दरिसा । १५. क ग क वट्टंति । १६. घ तिसा ।

[३] १. क क जिणेसरो । २. क क यंतये; ख ग एंतए; घ इंतयं । ३. क क °दियंतये; ख ग °दियंतए । ४. क क °तावये । ५ क क °पुंजअपुंजयं; ख °पुंजअपुंजयं । ६. क क रायणा । ७. घ वंदणं° । ८. क सत्तम । ९. क घ क हविस्सए । १०. क रओ । ११. क सहापहिट्ठउ । १२. ख ग जिणं । १३. प्रतियोंमें 'सकोट्ठए वइट्ठओ' ।

घत्ता—णिव्वाणु कम्मकिसु विमलियदसदिसु [14]रूवोहामियदेवसहु ।
पेक्खिवि सुहतित्तउ विंभियचित्तउ पुणु आहासइ मगहपहु ॥३॥

[४]

परमेसर पइँ[1] साहिउ तियसहुँ[2] थक्कइ आउसंति छम्मासहु ।
कंतिविणासु सरीरहो ढुक्कइ मत्थइँ[3] कुसुममाल परिसुक्कइ ।
आउसु सत्तदिवसें पुणु आयहो तणु [5]लावण्णवण्णसच्छायहो ।
तिलु[6] वि न तेयसहावें मेल्लिउ दीसइ फुरियदेहु पव्वेल्लिउ[7] ।
कहहि भवंतरे केण पयारें चिण्णु चरित्तु एण वयधारें ।
आयण्णइ[8] सेणिउ ससुरासुरु अक्खइ चरिउ तासु तिहुवणगुरु[9] ।
[10]रमणिरूवरंजियआहंडलि अत्थि गामु इह मगहामंडलि ।
नामें वड्ढमाणु विक्खायउ अग्गहारु[11] दियवरहँ कमायउ ।
वेयघोसु[12] जहिँ बंभणसत्थहिँ उच्चारियइ[13] भट्टपरमत्थहिँ ।
दिक्खिएहिँ[14] जहिँ पसु होमिज्जइ दिविदिवि सोमपाणु[15] जहिँ किज्जइ[16] ।

घत्ता—जहिँ तरुवरे[17] तरुवरे सघणलयाहरे अवरोप्परु [18]कोक्किर-कडुय[19]
पालंबहिँ[20] झंपिर चलसिहकंपिर वाणर व्व कीलहिँ[21] बडुय[22] ॥४॥

गया और जिनेश्वरको नमस्कार कर अपने कोठेमें बैठ गया । उस क्षीणकर्मोंवाले, दशों दिशाओं को विमल करनेवाले और अपने रूपसे देवोंकी सभाको भी तिरस्कृत करनेवाले देवको देखकर सुखसे तृप्त होकर, विस्मित मनसे मगधराज पुनः कहने लगे—॥ ३ ॥

[४]

हे भगवन् ! आपने (अभी) कहा है कि अन्तिम छः मास आयु शेष रहने पर देवोंके शरीरकी कांति विनाशको प्राप्त होती है, और मस्तककी कुसुममाला भी सूख जाती है । परंतु इसकी केवल सात दिन आयु शेष है, फिर भी शरीर अत्यन्त कांतिमान् और सुंदरवर्ण है । यह तिलभर भी अपने तेजस्वभावसे रहित नहीं हुआ, प्रत्युत इसकी देह प्रचुर तेजसे स्फुरायमान दिखाई देती है । तो कहिये कि पूर्वभवमें इस व्रतधारीके द्वारा किसप्रकारके चारित्रका पालन किया गया ? तब श्रेणिक देवों व असुरोंके साथ सुनने लगा और त्रिभुवनगुरु (जिन भगवान्) उसका चारित्र कहने लगे—रमणियोंके रूपसे इंद्रको प्रसन्न करनेवाला, वर्द्धमान नामसे विख्यात ब्राह्मणोंका क्रमागत अग्राहार ग्राम है, जहाँ बड़े-बड़े भट्ट समुदायके विशेषज्ञ ब्राह्मण-समूहों द्वारा वेद घोष किया जाता है, जहाँ दीक्षितोंके द्वारा पशु होम किया जाता है, और जहाँ प्रतिदिन सोमपान किया जाता है । जहाँ वृक्ष-वृक्षमें एवं सघन-लतागृहोंमें एक दूसरेको कर्कश वचनोंसे पुकारकर शाखाओंसे कूदते हुए, व अपनी (पूँछके समान) चंचल शिखाओंको नचाते हुए वटुक वानरोंके समान क्रीड़ा करते हैं ॥ ४ ॥

---

१४. क ख क रूवो° ।

[४] १. ख ग घ पइ । २. क ब क तियसहुं । ३. क मत्थइं । ४. क ब क° दिणइं । ५. क लावण्णु°; क लायण्णु° । ६. क तिल । ७. क पव्वेल्लउ । ८. ब आयणइं; क आयण्णइं । ९. क ब क तिहुयण° । १०. घ रमणे° । ११. क क अग्गहारु । १२. ख ग क वेयघोस । १३. ख ग उच्चारियउ । १४. क ब क दिक्खिएहि । १५. ख ग सोमवाणु । १६. ख ग पिज्जइ । १७. क क तरुवर । १८. क ब क कोक्किय । १९. घ कडुया । २०. ख ग पालंबिहि । २१. क ख ग क कोलहि । २२. क बडया; घ क बडुया ।

[५]

तहिँ[1] गामि वसइ[2] जणलद्धसंसु गुणवंतु धणु व्व विसुद्धवंसु ।
सुइवेयकँहा[3]लंकरियकंठु नामेण अज्जवसु सुत्तकंठु ।
कमलायरो व्व गोबिसनिहाणु मंडलवइ व्व महिसीपहाणु ।
तहो पँइवय[4]धारिणि-कयसुकम्म पियगेहिणि नामें सोमसम्म ।
समयणतणुरत्ती[5]-ललियकण्ण अइखीणमज्झ-वेणीरवण्ण[6] ।
बहुनेहबद्ध-पयलग्ग वहइ पाणहियकंतँ[7] को अण्णु लहइ ।
भयवत्तु जाउ तहे[8] पढमु पुत्तु बीयउ भवएउ दिएहिँ[10] वुत्तु ।
वायरण-वेय-[11]जोइसपसत्थ[12] परियाणिय दोहिँ मि[13] सयलसत्थ[14] ।
अण्णुण्णनेहपरिपूरियंग सद्दत्थजेम अविहत्तसंग ।
अट्ठारहवरिसपमाणजिट्ठे[15] बारहसंवच्छरथिए कणिट्ठे[16] ।
एत्थंतरि सो तहो तणउ ताउ परिपीडिउ वाहिए भग्गछाउ ।
चिरजम्मावज्जिउ[17] पावकम्मु कोढेण घत्थु हुउ झसियचम्मु[18] ।

[५]

उस गाँवमें लोगोंमें प्रशंसा-प्राप्त, विशुद्ध-वंश (बांस) तथा गुण (प्रत्यंचा) युक्त धनुषके समान विशुद्ध-वंश (कुल) में उत्पन्न और (शीलादि) गुणोंसे युक्त, एवं श्रुति, वेद और कथाओंसे अलंकृत-कंठ अर्थात् समस्त शास्त्रोंको कंठमें धारण करनेवाला, आर्यवसु नामका सूत्रकंठ (ब्राह्मण) रहता था । वह जल (गो), और पद्मिनी (बिस) के अंकुरोंके निधान कमलाकरके समान अनेक गायों (गो) और वृषभों (' विस) का निधान था । (सब रानियों में) प्रधान अग्रमहिषीसे युक्त मंडलपति राजाके समान वह ब्राह्मण प्रचुर दूध-घी देनेवाली प्रधान महिषियों (भैंसों) से युक्त था । उसकी पतिव्रतको धारण करनेवाली कृतपुण्य–अर्थात् पुण्यवान् सोमशर्मा नामकी गृहिणी थी । उसका शरीर समदन अर्थात् कामोत्तेजक था, और वह अपने पतिमें अत्यन्त अनुरक्त थी : उसके कान बहुत सुंदर थे, कटिभाग अत्यन्त क्षीण तथा वेणी बहुत रमणीक थी और गहरे स्नेहसे बंधी हुई वह पतिके चरणोंका अनुगमन करती थी । ऐसी प्राणोंसे भी अधिक प्यारी कांता अन्य कौन पा सकता है ? उसे भवदत्त नामका प्रथम पुत्र हुआ, दूसरा द्विजोंके द्वारा भवदेव कहलाया । उनका अंग-प्रत्यंग परस्परके स्नेहसे परिपूरित (ओत-प्रोत) था और वे शब्द व अर्थके समान सदा एक साथ रहते थे । जब जेठा (भाई) अठारह वर्षका हुआ और कनिष्ठ बारह वर्षका उसी समय उनका पिता व्याधिसे पीड़ित हुआ और उसकी कांति नष्ट हो गई । पूर्वजन्ममें अर्जित पापकर्मसे वह कुष्ठग्रस्त हुआ, उसका

[५] १. क तहि । २. ख ग वसइं । ३. क सुइवय° । ४. क क पयवय° । ५. क समयमणु°; क समयणमणु° । ६. क वीणो° । ७. ध पाणहिय° । ८. क तहि; ख ग घ तहु; क तह । ९. क ध क पढम । १०. घ क दिएहि । ११. ख ग ओयस° । १२. क क °पसत्थु । १३. क ख ग क दोहिमि । १४. क क °सत्थु । १५. क क °जिट्ठु । १६. क क कणिट्ठु; ख ग कणेट्ठि । १७. ख ग °वज्जिय । १८. ख ग छसिय° ।

करचरणंगुलि[19] नासाहरेहिं चिलिसावणु परथिउ[20] थाणु तेहिं ।
जीवासाछिण्णु[21] सरंतु[22] विट्ठु चिय विरइवि[23] पुणु हुयवहे पइट्ठु ।
पियमरणविरहु[24] असहंति इट्ठ[25] मुय[26] सोमसम्म सा तहिं[27] पइट्ठ ।

घत्ता—तं मरणु नियंतहिं[28] धाहमुअंतहिं[29] हुक्खु-दुक्खु[30] दुक्खाण्णविय ।
वच्छयलु हणंता पुत्त रुअंता वेण्णि वि सयणहिं संठविय ॥५॥

[६]

सोयाणलजालादड्ढहियए[1] तिलजव देविणु बंभणकियए ।
पाडेवि पिंडु पियरहँ तुरिउ बहुदिणहिं दुक्खभरु ओसरिउ ।
सकणिट्ठुं[2] गिहासमनयपवरु भयवत्तु[3] तत्थ पालेइ घरु ।
अह तहिं[4] विसयाहिलासरहिउ सोहम्ममहामुणि[5] मुणिमहिउ[6] ।
विहरंतु पत्तु गणपरियरिउ[7] बारहपयारतवगुणभरिउ[8][9] ।
सो मुणिवरिंदु सुहदंसणहिं[10] पणविज्जइ संतचित्तजणहिं[11] ।
जो जं पुच्छइ तहो दिव्वझुणि जीवाइतत्तु[12] तं कहइ मुणि ।

चर्म गल गया, तथा हाथ व पैरोंकी अंगुलियाँ व नाक और अधर केवल जुगुप्सनीय चिह्न मात्र शेष रह गये। जीनेकी आशा छूट जाने पर वह विष्णुका स्मरण करता हुआ चिता रचकर अग्निमें प्रविष्ट हो गया। प्रियके मरणवियोगको न सह पाती हुई उसकी प्रिया सोमशर्मा भी उसी चिताग्निमें प्रविष्ट होकर मर गयी। उन दोनोंका मरण देखकर और धाड़ देखकर हा कष्ट! हा कष्ट! कहते हुए, छाती पीट-पीटकर रोते हुए उन दोनों पुत्रोंको स्वजनोंने धैर्य बंधाया ॥ ५ ॥

[६]

शोकानलकी ज्वालासे दग्धहृदय उन दोनोंने ब्राह्मण-क्रिया अर्थात् वेदविहित अनुष्ठानके अनुसार तिल और जौ देकर शीघ्र ही पितरोंको पिंड पाड़ा। बहुत दिनोंमें उनका दुःखभार कुछ कम हुआ, और गृहाश्रमकी नीतिमें कुशल भवदत्त, कनिष्ठ (भ्राता) के साथ घरका पालन करने लगा। अथानन्तर विषयोंकी अभिलाषासे रहित, मुनियों-द्वारा पूजित एवं बारह प्रकारके तपोगुणसे भरे हुए सौधर्म नामके महामुनि अपने गण (संघ) के साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे। शांतचित्त और शुभदर्शन अर्थात् सम्यग्दृष्टि लोगोंने उन मुनिवरको प्रणाम किया। वे मुनि जो कोई जो कुछ पूछता था, उसे अपनी दिव्य वाणीसे जीवादि तत्त्वोंको

१९. क ङ चरकरणंगुलि। २०. क ङ परि°। २१. क ङ जीवासाविणु। २२. क ङ सुमरंतु। २३. ख ग विरयवि। २४. क घ ङ °मरणु°। २५. ख ग इट्ठु। २६. ग मुइ। २७. क ङ तहि। २८. ङ जियंतहि। २९. क ङ °मुयंतहि; ङ °मुयंतहि। ३०. क ङ अइघाविय।

[६] १. क घ ङ °दड्ढहियए। २. ङ °ट्ठु। ३. क घ ङ भवयत्तु। ४. ख ग ङ तहि। ५. क घ ङ सोहम्मु°। ६. ख ग °सहिउ। ७. ख ग °यरियउ। ८. क ङ °पयार°। ९. ख ग °भरियउ। १०. ख °दंसणेहिं। ११. ख °जणेहिं। १२. क ङ °तच्चु।

जगु सयलु वि इंदियचंचलउ मिच्छत्तमोहतिमिरंधलउ[13] ।
जीवणनिओयसण्णालुयउ[14] कामाउरु[15] सुहतण्हालुयउ[16] ।
रीणउ[17] दिणकम्महिं[18] खारियउ निसि सोवइ निद्दयं[19] धारियउ[20] ।

घत्ता—मरणभएणं लुक्कइ[21] अहव न चुक्कइ वंछइ सिवसुहु[22] नउ लहइ ।
तहवि[23] हु माणुसपसु[24] भयकामहु वसु सहियए[25] तप्पिवि तणु डहइ ॥६॥

[७]

अप्पाणु किलेसें[1] जेत्थु थवइ दुक्खेण परिग्गहु मेल्लवइ ।
दुक्करु वि वियाणइ तं सुकरु नीसंगवित्ति[2] पुणु गरुयभरु ।
संतोसु[3] न को वि अहव मणहो[4] सुकरु वि दुक्करु भावइ जणहो[5] ।
विवरीयविवेउ लोउ जियइ अब्भंतरु देहहो[6] जइ नियइ[7] ।
बाहिरउ[8] तो वि अहिलासपरु[9] उड्डावइ वायस दंडकरु ।
निसुणंतहो इय मुणिजंपियउ [10]भवयत्तहो[11] हियवउ कंपियउ ।
विण्णत्तु परमगुरु सुहकरणु[12] तउ चरणजुयलु सामिय सरणु[13] ।

बतलाते थे (और कहते थे)—यह सारा जगत् इंद्रियचंचल है, और मिथ्यात्व-मोहरूपी तिमिरसे अंधा है। जीवनके असि-मसि-कृषि आदि व्यापार व आहारादि संज्ञाओंसे युक्त, कामातुर तथा सुखकी तृष्णावाला है। दिनभरके कामोंसे थककर, श्रान्त होकर, रात्रिमें निद्रासे मूर्च्छित होकर सोता है। मरणभयसे यह लुकता है, परंतु किसी प्रकार उससे चूक नहीं पाता (बचता नहीं); शिवसुखको चाहता है, पर पाता नहीं। इसप्रकारका यह मनुष्यरूपी पशु भय और कामके वश होकर अपने हृदयमें ताप अनुभव करता हुआ तनको जलाता है ॥६॥

[७]

जिस परिग्रहमें मनुष्य अपने आपको बड़े क्लेशसे स्थापित करता है, अर्थात् बड़े कष्टसे जिसका संग्रह करता है, वह परिग्रह बड़े दुःखसे छोड़ा जाता है। यह लोक विपरीतविवेक (उल्टी मति) से जीता है, यद्यपि यह देहके भीतर देखता भी है तो भी बाह्याचरणमें शरीरादि परिग्रहके प्रति अभिलाषायुक्त होनेसे हाथमें दंड लेकर कौओंको उड़ाता रहता है। मुनिके इस कथनको सुनकर भवदत्तका हृदय कांप उठा और उसने उन परमगुरुसे विज्ञापना की, 'हे स्वामी ! आपके शुभ अर्थात् हितकारक चरणयुगल ही मेरी शरण हैं, मुझ संसाररूपी

१३. ख ग मिच्छित्त° । १४. ग °लयउ; क लुइउ । १५. क ख कामाउलु । १६. क क सुहु तण्हासुवउ; ख सुह तन्हालुवउ । १७. क रोणइ; ख रीणउं । १८. क ग °कम्महि । १९. क णिदइ; ख निद्दइं; क णिदइं । २०. क धारिवउ । २१. क ख क कहु व । २२. ख ग °सुह । २३. ख ग तहु वि । २४. ख ग माणुसु° । २५. क क सुहियइ; ख सुहियए; घ मुहियइं ।

[७] १. क ख क किलेसि; ख ग किलेसि । २. ख ग नीसंगु° । ३. क ख क संकेसु । ४. ख मणहे । ५. ख जणहे । ६. क क देहहि; ख देहहिं । ७. ख नियइं । ८. ख बहिराउ । ९. ख °यरु । १०. क में भवयत्तहो''''कंपियउ—यह अर्द्धपंक्ति नहीं । ११. ख भयदत्तहो । १२. क ख क °चरणु । १३. ख ग में इस पंक्तिके पश्चात् निम्नपंक्ति अधिक है :—'णिसुणिवि चित्तवइविसुद्धमई भयवत्तु चत्तु घरवासरई' ।

भवकद्दमे खुत्तु[१४] समुद्धरहि[१५] पव्वज्जहि[१६] महु पसाउ करहि ।
संताणे सहोयरु परिठववि[१७] दिक्खंकिउ मणकसाय[१८] खववि[१९] ।

घत्ता—दंसणु सलहंतउ विसयचयंतउ[२०] सुद्धचरित्तु[२१] दियंबरु ।
गुरुवयण-सवणरइ दिढमइ[२२] विहरइ कम्मासयकयसंवरु ॥७॥

[८]

हउँ[१] परकयत्थु संजणियदिहि जं लद्धु दुलहु[२] सम्मत्तनिहि ।
जम्मंतरकोडिहिँ[३] पत्तु न वि तं दंसणु पाविउ भवे भमिवि ।
अणुदिणु सज्झाय-झाणु करइ तवचरणु[४] सुघोरु वीरु चरइ ।
आगमदिट्ठिए[५] विहरंतु सया संवच्छर बारह जाम गया ।
सो सवणसंघु वयखामियउ तहो गामहो नियडदेसे थियउ ।
उवयारबुद्धि सम-निय-परहो तो हुय भयवत्तदियंबरहो ।
भवएउ अणुउ भवगुरुसरिहिँ[७] मा पडउ वराउ दुक्खदरिहिँ[८] ।
मइँ संतें[९] सावयवउ धरइ[१०] मिच्छत्तभाउ[११] जइ परिहरइ[१२] ।
चिंतवि[१३] आयरियहो विण्णवइ जोयणअज्झाणु[१४] गामुहवइ ।

कर्दममें पड़े हुए व्यक्तिका समुद्धार कीजिए, और प्रव्रज्या देकर मेरे ऊपर कृपा कीजिए।' संतानोंपर (संरक्षक रूपसे) सहोदरको स्थापित करके, मनमें-से कषायोंका क्षय कर भवदत्त दीक्षित हो गया। सम्यग्दर्शनकी सराहना करते हुए, विषयोंका त्याग करते हुए, वह दृढ़मति व शुद्धचरित्र-दिगंबर, गुरुवचनोंको सुननेमें मन लगाता हुआ, कर्मास्रवोंका संवर करके विहार करने लगा ॥७॥

[८]

मैं परम कृतार्थ हूँ जो कि धैर्य (साहस) धारण करके सम्यक्त्व जैसी दुर्लभनिधि को पा गया। कोटि-कोटि जन्मान्तरोंमें भी जो नहीं मिला, वह सम्यक्त्व अब भव-भ्रमण करते-करते पा लिया। वह वीर (भवदत्त) प्रतिदिन स्वाध्याय और ध्यान करता था, तथा अत्यन्त घोर तपश्चरण करता था। सदैव आगम-दृष्टिसे अर्थात् शास्त्रानुसार विहार करते हुए जब बारह वर्ष व्यतीत हो गये तो व्रतोंसे क्षीण-शरीर वह श्रमणसंघ उस गाँवके निकट प्रदेशमें ठहरा। स्वयं और परके प्रति समान उपकारबुद्धिवाले उस भवदत्त दिगंबरको ऐसा हुआ—'मेरा अनुज बेचारा भवदेव दुःखकी गर्त्तस्वरूप संसाररूपी महानदीमें न पड़े, यदि मेरे रहते हुए वह श्रावक व्रतोंको धारण कर ले और मिथ्यात्व-भावको छोड़ दे'। यह सोचकर भवदत्तने आचार्यसे

१४. ख ग खुत्त। १५. क सुसुद्धरही; क समुद्धरही। १६. ब पव्वज्जहि। १७. क ख क °ठविवि। १८. क मणिकसाउ; क मणकसाउ। १९. क क खविवि। २०. क ख क °चयंतउ। २१. क ख क सुद्ध°। २२. क दिट्ठ°; ब दिढु°।

[८] १. ख ग क हउ। २. ख लद्धुवदुल्लहु; ग लद्धदुल्लहु। ३. ब °कोडिहि। ४. क क °चरण। ५. क क आगमि°। ६. ख ग भवयत्त°; ब भयदत्त°। ७. क °सरिहि। ८. ब °दरिहि। ९. क क ब संतिं; ग संते। १०. ख ग धरइं। ११. खग °भाव। १२. खग °हरइं। १३. क ख क चिंतिवि। १४. ब जोयणं°।

न पमाउ गमणे[15] जइ संभवइ उवसावमि[16] जइ कणिट्ठु सवइ[17] ।
संघाडइ दिज्जउ[18] एक्कु[19] रिसि अणुमण्णिउ नत्थि पमाय दिसि ।
घत्ता—गच्छहु आएसिय गुरुसंपेसिय बिण्णि व मुणिवर नीसरिया[20] ।
दियवरसंपुण्णउ[21] गामु रवण्णउ वड्ढमाणु खणे पइसरिया[22] ॥८॥

[९]

दीसइ पवरं भवएवघरं ।
गोमयलित्तं चुण्णयसित्तं[1] ।
गेरुयपिंगं दिप्पिरसिंगं[2] ।
तोरणकलियं मंडवललियं ।
वज्जियतूरं मंगलपूरं ।
धुयधयचवलं गाइयधवलं ।
मणअहिरामं नच्चियरामं ।
पयडियसिप्पं भुंजियविप्पं ।
चंदणसालं घुसिणवमालं ।
सत्थियबंधं कुसुमसुयंधं ।
दावियभोयं माणियलोयं ।
तो[3] तवपवलं मुणिवरजुयलं ।

विज्ञापना की—'यहाँसे एक योजनके अन्तरपर (मेरा) गाँव है, यदि वहाँ जानेमें कोई प्रमाद (दोष) न हो, और यदि कनिष्ठ भ्राता मेरी बात सुने, तो मैं उसे उपशांत करना चाहता हूँ, 'तो फिर मेरे साथ एक ऋषि दीजिए ।' गुरुने अनुमोदन किया और कहा—(वहाँ जानेमें) लेशमात्र भी दोष नहीं है, अतः तुमलोग वहाँ जाओ; ऐसे गुरुके आदेश व संप्रेषणसे वे दोनों मुनिवर निकलकर चले और क्षणभरमें उत्तम ब्राह्मणोंसे भरे हुए उस रमणीक वर्द्धमान गाँवमें प्रविष्ट हुए ॥८॥

[९]

भवदेवका सुंदर घर दिखाई देने लगा, जो कि गोबरसे लिपा और चूनेसे पुता था, (और कहींपर) गेरुसे पिंगलवर्ण दिखाई देता था, व जिसका शिखर खूब चमक रहा था, तथा जो तोरणोंसे युक्त और मंडपसे शोभित था; व जहाँ मंगल तूर बज रहा था, चपल ध्वजाएँ फहरा रही थीं, मंगलगान गाया जा रहा था और स्त्रियाँ मनोभिराम नृत्य कर रही थीं; स्थान-स्थानपर काष्ठचित्र आदि निर्मित थे; विप्रोंको खिलाया जा रहा था; और चंदनकी शालाएँ कुंकुमसे सुगंधित हो रही थीं; स्वस्तिक बंधमें बँधे हुए कुसुमोंकी सुगंध फैल रही थी; और दान देकर लोगोंका सम्मान किया जा रहा था। उन तपः-प्रबल मुनि-युगलको

१५. क ङ समणि । १६. क ङ उवसामवि । १७. क ख ग ङ समई । १८. ख ग दिज्जइ । १९. क ङ एक्क । २०. क घ ङ णीसरिय । २१. क दियवर°; ख ग °संपण्णउ । २२. क घ ङ °सरिय ।

[९] १. ख ग °सेत्तं । २. क ख °भिंगं; घ °सेंगं । ३. क ङ ते ।

जणवयविट्ठं भाइहिं[4] सिट्ठं ।
मुणि भयवत्तो[5] तव घरु[6] पत्तो ।
ता भवएओ कयसंखेओ ।
विणयविमीसो पणवियसीसो ।
घोलिरवत्थो जोडियहत्थो ।
सुयणसहाओ[7] बाहिरि आओ[8] ।

घत्ता—भवदेवहो नियमणि बंधवदंसणि[9] रहसमहाभरु नउ धरिउ ।
फुट्टिवि पसरंतउ अंगि न मंतउ पुलयछलेण व[10] नीसरिउ[11] ॥९॥

[१०]

महिवीढे निवेसिवि सिरकमलु[1] पणविज्जइ भाइहिं[2] कमजुयलु[3] ।
मुणिणावि अणुउ संभावियउ सुय धम्मविद्धि संभवउ तउ ।
करफंसणु पुट्ठिहे[4] [5]तहो करेवि[5] मंडवि दिण्णासणि वइसरेवि[6] ।
बुल्लणहँ[7] लग्गु भयवत्तु[8] मुणि इउ पयरणु[9] किं [10]भवएव सुणि[10] ।
जं दीसइ[11] नवसियवत्थधरु[12] [13]उण्णामयकंकणबद्धकरु ।
परिणयणलच्छिललणिज्जमुहुँ[14] वरइत्तु जाउ कहिँ[15] वच्छ तुहुँ ।
नववरु पभणेइ[16] सबाहनयणु[17] उद्धंतमण्णु[18] गग्गिरवयणु ।

पौरजनोंने देखा और भाईको कहा—मुनि भवदत्त तुम्हारे घर आये हैं। तब भवदेव शीघ्रता करके, विनययुक्त होकर, शिर झुकाये हुए, वस्त्रोंको फहराता हुआ, हाथ जोड़े हुए, स्वजनोंके साथ बाहर आया। भवदेवके मनमें बांधवदर्शनसे होनेवाला उद्वेग रुक नहीं सका, और अंगोंमें न माता हुआ, फूट-फूटकर प्रसृत होता हुआ, मानो पुलक (रोमांच) के बहानेसे निकल पड़ा ॥९॥

[१०]

अपने शिरकमलको पृथ्वीपर रखकर भवदेवने भाईके पदयुगलको प्रणाम किया। मुनि-ने भी—'हे वत्स ! तुम्हें धर्मकी वृद्धि हो', कहकर भाईको आशीर्वाद दिया। उसकी पीठपर हाथ फेरकर, मंडपमें दिये हुए आसनपर बैठकर भवदत्त मुनि बोलने लगे—हे भवदेव ! सुन। यह क्या बात है, जो तू उपयाचितक वस्त्र धारण किये हुए दिखाई देता है, हाथमें ऊनसे बना हुआ कंकण बँधा है, परिणयकी शोभासे तुम्हारा मुख ललनीय (सलौना) हो गया है; वत्स ! तू कहीं वर (दूल्हा) तो नहीं हो गया ? तब नेत्रोंमें आँसू भरकर, स्नेहाभिमानपूर्वक गद्गद

४. ख ग माएहि; क घ भाइहिं। ५. ख ग भवयत्तो। ६. क घ क तउ। ७. क घ क सयण°। ८. घ जाओ। ९. ख ग °दंसणे। १०. क घ क य। ११. ख ग नीसरियउ।

[१०] १. क क °कमल्लु। २. ख ग घ भाइहिं। ३. क क पय°। ४. क पिट्ठिहें; ख पिट्ठिहि; क पिट्ठिहे। ५. क करेवी; ख ग तउ करवी; तहो करवो। ६. क °सरेवो; ख ग वइसरवी; घ वइसरवी। ७. क ख ग क बुल्लणह। ८. क घ क भवयत्तु। ९. ख ग पइरणु। १०. क तव एमु सुणी; क तव एव सुणी। ११. क घ क दीसहि। १२. ग °धरु। १३. क क उण्णामउ°। १४. क क °ललिणिज्जमुहु। १५. क क कहि। १६. क क पभणइं; ग घ पभणइ। १७. क संबाहणइणु; क सबाहणइणु। १८. क क उद्धंतणमणु।

जं जणणि जणेरहु[१९] पिसुण पिया[२०] पच्चक्ख तुम्ह सा वरण[२१] किया[२२] ।
घत्ता—मइँ[२३] सिसु अगणंतहिँ[२४] नाह चयंतहिँ जो चिरु तुम्हहिँ[२५] भंसियउ[२६] ।
सो अज्जपमाणहिँ[२७] कयआगमणहिँ नेहु पुणुण्णउ दंसियउ ।

[११]

एत्थु जि वड्ढमाणे कुलभूसणु जाणहुँ[१] तुम्हइँ[२] दिउ दुम्मरिसणु ।
नायएवि तहो भज्जपियारी नायवसू सुय ताहँ कुमारी
सा परिणिय मइँ[३] एह सुलक्खण[४] समु विवाहु[५] सलहंति वियक्खण ।
तो भवयत्तमुणिंदें[६] वुच्चइ किउ सुंदरु जं सयणहँ[७] रुच्चइ ।
सयलु[८] पहाउ एहु[९] सुहकम्महो दीसइ फलु[१०] पच्चक्खु जि[११] धम्महो ।
धम्में[१२] चक्कवट्टि-हरि-हलहर[१३] धम्में[१४] लोयवाल-ससि-दिणयर ।
धम्में[१४] मणुय महागुणसीला भुंजियभोय-पुरंदरलीला ।
धम्मु अहिंसालक्खणलक्खिउ[१५] किज्जइ आगमेण सुपरिक्खिउ ।
आगमु[१६] सो जि जित्थु[१७] दय[१८] किज्जइ पुव्वावरविरोहु न कहिज्जइ ।

वाणीसे वह नव-वर यूं बोला—तुम्हारे समक्ष ही माताने पितासे जैसा कहा था, उसी प्रियाका आज मैंने वरण किया है। हे नाथ ! मुझ शिशुकी परवाह न करके, घर छोड़कर, पूर्वमें जिस स्नेहको तुमने तोड़ दिया था, आज अपने आगमनसे, उसे पुनः नवीन अर्थात् जागृत करके दिखलाया है ॥१०॥

[११]

इसी वर्द्धमान नगरमें तुम्हारा जाना हुआ दुर्मर्षण नामका स्वकुलभूषण द्विज है। उसकी नागदेवी नामकी प्यारी भार्या है, उन दोनोंकी नागवसू नामकी पुत्री है, उसी सुलक्षणाका मैंने परिणय किया है। विचक्षण लोग समविवाहकी ही सराहना करते हैं। तब भवदत्त मुनींद्रने कहा—तुमने स्वजनोंको रुचनेवाला अच्छा काम किया। यह सब शुभकर्मका प्रभाव है। धर्मका प्रभाव प्रत्यक्ष दिखाई देता है। धर्मसे ही चक्रवर्ती, हरि (वासुदेव) और बलराम होते हैं, तथा धर्मसे ही लोकपाल, व चंद्रमा और सूर्य। धर्मसे ही मनुष्य महान् गुणोंवाली व भोगोंको प्रदान करनेवाली पुरंदरकी लीला धारण करते हैं। धर्म अहिंसा लक्षणवाला है, और आगमसे अच्छी तरह परीक्षा करके उसे किया जाता है। और आगम वही है जो जीव दया बताये, तथा जिसमें पूर्वापर विरोध कथन न किया जाये। इसप्रकार अपना हित जानकर

१९. क घ अणेरहं; ङ जणेरह। २०. ङ पिय। २१. क ख ग ङ मरण। २२. ङ किय। २३. क ङ मइ। २४. ङ अगणंतहि। २५. क ङ तुम्हहि। २६. क ङ भासियउ। २७. ख ग घ अज्जु°।

[११] १. क ङ जाणहु; ख ग जाणउ। २. क घ ङ तुम्हइं। ३. ख ग ङ मइ। ४. क घ ङ सलक्खण। ५. क ङ विवाह। ६. ख ग °मुणेंदें; घ °मुणिंदि। ७. ख सयणहो; ङ सयणह। ८. क ङ सयल। ९. घ ङ एउ। १०. क फल। ११. क घ ङ वि; ख ग जे। १२. प्रतियोंमें धम्मि। १३. क हलधर। १४. क घ ङ धम्मि। १५. ख ग °लक्खणु°। १६. क ख ङ आगम। १७. क ङ जीउ; ख जेत्थ; ग जेत्थु। १८. ख ग दइ।

घत्ता—इय जाणिवि नियहिउ जेण न भवि किउ धम्मु जिणागमभासियउ[19]।
धी तं[20] अवगण्णहि[21] माणुसु मण्णहि[22] अज्ज वि गब्भवासे ठियउ ॥११॥

[१२]

मुणिवयणसुहाभावियमणेण[1] सावयवयाइँ[2] गेण्हेवि तेण।
विणएण भणिउ विण्णवमि कज्ज भोयणु घरि किज्जउ[3] मज्झु अज्जु।
अणुमण्णिउ तं मुणिपुंगवेहिँ[4] आहारु विहाणें लयउ तेहिँ[5]।
तउ अक्खयदाणु भणेवि चलिय अणुवच्चवि[6] पणविवि लोय वलिय।
भवएउ[7] वि निब्भरनेहबद्धु गच्छइ[8] नियत्तणाए ससद्धु।
मंडवि महिलायणु नियइ कोडु[9] छोडेवउ[10] कंकणु करिं सखेडु।
चिंतंतु एम वाहुडणसीलु उद्देसइ अण्णालावलीलु।
पहु पेक्खु पेक्खु पसरंतपाउ[11] नग्गोहमहादुमु बहलछाउ।
हल्लिरतरंगु सरवरु रवण्णु[12] रुणुरुणियभमरसयवत्तछण्णु[13]।
आगमविरोहु[14] रक्खंतु संतु वाहुडहि वच्छ न भणइ[15] महंतु।

जो इस भवमें जिनागममें कहे हुए धर्मका पालन नहीं करता उसे धिक्कार है, उसकी अवहेलना करो और उसे अभी भी गर्भवासमें ही स्थित मानो ॥११॥

[१२]

मुनिकी वचनसुधासे भावित-मन होकर, श्रावकके व्रत धारण करके, उसने विनयपूर्वक कहा—एक कार्य निवेदन करता हूँ, आज मेरे घर भोजन कीजिये। मुनिपुंगवोंने उसको स्वीकार किया, और उन्होंने विधानपूर्वक आहार लिया। 'तुझे अक्षयदान (का लाभ) हो' ऐसा कहकर मुनि चल पड़े और लोग उनके पीछे (कुछ दूर तक) जाकर प्रणाम करके लौट पड़े। भवदेव भी गाढ़-स्नेहसे बंधा हुआ श्रद्धायुक्त भाव से (तथापि) लौटाये जानेकी इच्छासे उनके पीछे पीछे चलता रहा। मंडपमें महिलाजन इस कौतुकको देखें, जब मैं क्रीड़ापूर्वक कंकण छुड़ाऊँ। इसप्रकार चिन्तन करते हुए चलते चलते अन्योक्ति आलापकी रीतिसे वह बोला—हे प्रभु ! फैलती हुई शाखाओं तथा बहुत घनी छायावाले इस विशाल न्यग्रोध वृक्षको देखिये ! और इस चंचल तरंगोंवाले रमणीक सरोवरको देखिये, जो गुंजार करते हुए भ्रमरोंसे युक्त शतपत्रोंसे आच्छादित है। आगम-विरुद्ध (वचनसे अपने) को बचाते हुए बड़े भाईने यह नहीं कहा कि वत्स, (वापिस) चले जाओ। वे मुनि बोले यह कोई अपूर्व (अदृष्ट) प्रदेश नहीं है,

१९. क ङ जिणागमि°। २०. क घ ङ ही तं; ख ग धीति। २१. क घ ङ °गण्णमि; ख ग °गण्णहि। २२. क ङ मण्णमि; घ मन्नमि; ख ग मन्नहि।

[१२] १. क घ ङ °सुहासासिय°। २. क ङ °वयाइ। ३. क घ ङ किज्जइ। ४. क घ ङ पुंगमेहिं। ५. क घ ङ ते। ६. ख ग °वच्चवि। ७. क ङ भयएउ; घ भएएउ। ८. ख ग गच्छए। ९. ख कोड्डु। १०. क ख ग ङ छोडेवउ; घ छोडेव्वउ। ११. क °पाउ। १२. क ङ रवुण्णु; घ रवुन्नु। १३. क ङ रुणिरुणियभमरु। १४. क ङ °विरोहु। १५. घ भणई।

मुणि भणइ[16] अउब्ब न इयं[17] पएस बालत्तणे परिसीलिय असेस ।
सहुँ[19] तेहिं[18] एम सो बिमणगत्तु[19] रिसिसंघु जेत्थुँ[20] तं[21] थाणु पत्तु ।

घत्ता—गुरु पणविउ सीसहिँ भत्तिविमीसहिँ भवएवेणे[22] वि वंदियउ ।
अग्गए आयरियहो बहुगुणभरियहो नववरइत्तु नवरि ठियउ ॥१२॥

[१३]

पेक्खवि वेसु तासु सपसत्थें अहिणंदिउ दिउ मुणिवरसत्थें ।
एक्कें सरलसहावें सीसइ[1] आउ एहु तवचरणु लएसइ[2] ।
साहु साहु उवयारपयत्तें संबोहिवि[3] आणिउ[4] भयवत्तें[5]
तिक्खक्खरु सुणंतु मणि डोल्लइ[6] निट्ठुरु केम दियंबरु बोल्लइ ।
५ तुरिउ तुरिउ घरि जामि पवत्तमि सेसु विवाहकज्जु निव्वत्तमि ।
दुल्लहु सुरयविलासु वि भुंजमि[7] नववहुवाए[8] समउ सुहु भुंजमि ।
एउ नाउ जं[9] मुणिणा लइयउ[10] पग्गि व जेट्ठें[11] चिरु निच्छइयउ[12] ।
निलयहो जं न नियत्तिउ सवउ[13] भाइ[14] पइज्जहे[15] एहु जि[16] पवउ[17] ।
कहमि[18] कासु कह[19] करमि महारडि एत्तहे[20] वग्घु[21] पासे इह वोत्तडि[22] ।

बालपनेमें हम लोग इस सम्पूर्ण क्षेत्रके खूब अभ्यस्त थे । इस प्रकार वह भवदेव उन मुनियोंके साथ विमनगात्र अर्थात् अनिच्छापूर्वक चलता हुआ जहाँ ऋषिसंघ था, उस स्थानको प्राप्त हुआ । दोनों शिष्योंने भक्तिपूर्वक गुरुको प्रमाण किया, भवदेवने भी गुरुकी वंदना की और वह नव-वर उन अनेक गुणोंके भंडार आचार्यके आगे बैठ गया ॥ १२ ॥

[१३]

प्रशस्त वेश देखकर मुनिसंघके द्वारा उस द्विजका अभिनंदन किया गया । एकने सरल स्वभावसे कहा—यह आया है, तपश्चरण लेगा । उपकारमें प्रयत्नवान् वे भवदत्त धन्य हैं, जो इसको संबोधन करके यहाँ लाये । इन तीखे अक्षरोंको सुनकर वह मनमें काँप गया, यह दिगंबर कैसी निष्ठुर वाणी बोल रहा है । मैं बहुत त्वरापूर्वक घर जाऊँगा और शेष विवाहकार्य निबटाऊँगा । दुर्लभ सुरत-क्रीड़ा करूँगा और नववधूके साथ सुख भोगूँगा । मुनिने जो यह (दीक्षा लेनेका) नाम लिया, वह ज्येष्ठ (भाई) ने बहुत पहलेसे ही निश्चय कर रखा था, और मुझे जो घर नहीं लौटा दिया, यही भाईकी पैज (प्रतिज्ञा) का प्रत्यय है । मैं किससे कहूँ ? कैसे फूट-फूटकर रोऊँ ? इधर पासमें व्याघ्र है, और इधर (दूसरी ओर) दुष्ट नदी !

१६. क क अणुब्व° । १७. क क सहु । १८. क तेहिं । १९. क वि पणय गत्तु; घ क विणयगत्तु । २०. क क जित्थ; ब जित्यु । २१. क त । २२. क क भवदेवेण ।

[१३] क क सीसइं । २. क लएसइं । ३. ख ग °हवि । ४. क क आणिउं । ५. क घ भवयत्तें । ६. क डोलइं; क डोलइ । ७. क घ क पउंजमि । ८. क क °बहुयाइ; घ वहुयाइं । ९. क क जि; ख ग जे । १०. ख लइयउं । ११. क घ क जिट्ठि; ख ग जेट्ठि । १२. क क °यउं । १३. क क सव्वउ । १४. ख ग भाए° । १५. क क °पइज्जहि; घ °पइज्जहि । १६. क घ क एउ । १७. ख ग जे । १८. क कहिमि । १९. क ख ग घ कहो । २०. क घ एत्तहिं; क एत्तहि । २१. ग वग्गु । २२. क होत्तडे; ख ग वोत्तडे ।

तो वरि ण[23] करमि एहु अमाणउ[24] जेट्ठसहोयरु जणणसमाणउ[25]
पव्वज्जेमि अज्जु[26] णीसल्लउँ[27] को वारइ[28] जाएसमि[29] कल्लउँ[30]।

घत्ता—इय हियए समासइ पुणु आहासइ पहु दिक्खहे[31] पसाउ करहि[32]।
भवयत्तु वसंतउ मइँ[33] वि पडंतउ भववइतरिणिहे[34] उद्धरहि[35] ॥१३॥

[१४]

इय बोल्लंतु कलत्तुम्माहिउ अवहि पउंजिवि गुरुणा चाहिउ।
मग्गइ दिक्ख हियइ घरु चाहइ लज्जपरव्वसु पर णिव्वाहइ।
फुडु आसण्णु[1] भव्वु अकलंकिउ इय मण्णंते[2] पुणु दिक्खंकिउ।
मुणिसंघाडएहिँ[3] लक्खिज्जइ न लहइ विच्चंतरु[4] रक्खिज्जइ।
पाढंतहँ[5] अक्खरु णउ आवइँ[6] लडहंगउ कलत्तु पर झायइँ[7]।
दिवि दिवि चिंतइ कंत हे[8] सुंदरि वट्टइ[9] [10]का वि अवर जोव्वणसिरि[11]।
फारत्तणु[12] णयणेहिँ[13] मुहुल्लए[14] विद्दुमरायफुरणु[15] अहरुल्लए[16]।
वट्टइ वट्टुल-घणथणमंडलि[17] लंघइ तिवलि कसणरोमावलि।

तो ठीक है, मैं इनकी बात अमान्य नहीं करता, (क्योंकि) ज्येष्ठ सहोदर पिताके समान होता है। आज निःशल्य (निःशंक) होकर प्रव्रज्या ले लेता हूँ, कल चला जाऊँगा, मुझे कौन रोक सकेगा? इस प्रकार हृदयमें पर्यालोचन करके फिर बोला—हे प्रभु! दीक्षा देकर प्रसाद कीजिये। भवदत्तके रहते हुए मुझ गिरते हुए का भी भव-वैतरणीसे उद्धार कीजिये ॥१३॥

[१४]

इस प्रकार बोलते हुए, (परंतु हृदयमें) स्त्रीके प्रति उमाह रखते हुए (भवदेव) को गुरुने अवधिज्ञानका प्रयोग करके जाना कि यद्यपि यह दीक्षा मांगता है, पर हृदयमें घरको चाहता है, तथापि लज्जावश यह उसका निर्वाह करेगा। 'यह निश्चयसे निष्कलंक आसन्न-भव्य (शीघ्र मोक्ष जानेवाला) जीव है, ऐसा मानते हुए गुरुने उसे दीक्षा दे दी। मुनि-युगल उसकी देख-रेख करने लगे, और इस प्रकार उसे रखने लगे कि वह मार्गान्तरको प्राप्त न कर सके अर्थात् भाग न पावे। पढ़ाते हुए उसे अक्षर नहीं आता था, वह तो सुंदर अंगों वाली पत्नीका ही ध्यान करता था। दिन दिन यही सोचता हे कांता! हे सुंदरी, तुम्हारी यौवन-श्री कोई अपूर्व ही है। मुख पर नेत्रोंकी विशालता है व अधरोंमें विद्रुमरागका स्फुरण (अर्थात् कांति) है, वर्तुलाकार घनी स्तनमंडली है, और कृष्ण रोमावलि त्रिवलिका लंघन करती है।

२३. क में 'ण' नहीं। २४. ख ग अप्पमाणउ; घ अपमाणउं। २५. घ समाणउं। २६. घ क ग क अज्जु। २७. घ °ल्लइं। २८. ख ग वारए। २९. ख ग °समे। ३०. घ ल्लइं। ३१. क दिक्ख; घ दिक्खहिं; क दिक्खइ। ३२. क क करहि। ३३. क क मय; ख ग घ मइ। ३४. क °वयतरिणिहि; घ क वयतरणिहि। ३५. क घ क उद्धरहिं।

[१४] १. क क आसन्नु°। २. क क °पुणु वि; ग मन्नंति व्व पुणु। ३. °डिएहिं; क °डिएहि। ४. क क विग्घंतरु। ५. क क पाढंतहं। ६. क आवइं। ७. क क मायइ। ८. क कंतहिं; घ क कंतहि। ९. क क वड्ढइ। १०. घ अवर का वि। ११. क क जोवण। १२. क क फारइत्तणु। १३. क °णेहि। १४. क क वहुल्लइ; घ मुहुंल्लइ। १५. क क °अरुण। १६. क क °ल्लइ; घ °ल्लइं। १७. ख ग °ले।

थिहिं[18] बाहहिं अवरुंडणु चंगइ[19] दुक्करु पुज्जइ[20] थियडनियंबइ[21] ।
मसिणोरुयहिं जगु जि[22] वसि[23] किज्जइ नहदित्तिए महियलु कव्वलिज्जइ[24] ।

घत्ता—मुद्धहे[25] संपुण्णउ तं तारुण्णउ[26] किं दीसिहइ[27] पुणुण्णवउ[28] ।
सा कइयहुँ होसइ[29] जो मणु तोसइ कवणु दिवसु सो धण्णवउ[30] ॥१४॥

[१५]

लीणिय पडिबिंबिय लिहिय उक्कीरिय पडिहाइ[1] ।
हियए[2] छुहेविणु धण निविड दइएं[3] खीलिय नाईं ॥१॥

रत्नमालिका:

नीलकमलदलकोमलिए सामलिए नवजोव्वणे[5]लीलाललिए पत्तलिए ।
रूवरिद्धिमणहारिणिए मारिणिए[6] हा मइं विणु मयणें नडिए मुद्धडिए ।
इय सोच्चइँ[7] बोलिय देसंतर विहरंतहो बारह[8] संवच्छर ।
ताम परायउ मुणिगणु धण्णउ[9] वड्ढमाणगामहो आसण्णउ[10] ।
उववासिउ भवएउ निएसिउ[11] पारणत्थे[12] संघाडए[13] पेसिउ ।
चरियामग्गे[14] पइट्ठें वुत्तउ[15] अंतराउ महु[16] जाउ निरुत्तउ[17] ।

है । दोनों बाहुओंसे आलिंगन करने पर वह अपने सुपुष्ट और विस्तीर्ण नितम्ब-भागमें बहुत दुष्करतासे सेवित होती है । उसके मसृण ऊरुओंसे सारा लोक वशमें किया जाता है, और उसके नखोंकी दीप्तिमें संपूर्ण महीतल चित्रित होता है । उस मुग्धाका वह भरपूर यौवन क्या (कभी) फिर वैसा ही नूतन दिखाई देगा ? ऐसा कब होगा, और वह धन्यदिवस कौन-सा होगा, जो मेरे मनको संतुष्ट कर सके ॥ १४ ॥

[१५]

वह धन्या (भार्या) मेरे मनमें लीन है, प्रतिबिम्बित है, लिखित है, और उत्कीर्ण है । अतएव ऐसा प्रतीत होता है जैसे मानो दैवने हृदयमें रखकर खूब गहरी कील ठोंक दी हो ।

नीलकमलदल जैसी कोमल, श्यामलांगी, नवयौवनकी लीलासे ललित और पतली देह वाली ऐसी अपनी रूपऋद्धिसे मनको हरण करनेवाली, और मार डालने वाली, हे मुग्धे ! शोक है कि तू मेरे बिना कामसे पीड़ित हुई होगी ॥ १ ॥

इसी सोच-विचारमें देशान्तारोंमें विहार करते करते बारह संवत्सर व्यतीत हो गये । तब वे धन्य मुनिवृंद वर्द्धमान ग्रामके निकट आये । उपवास किये हुए भवदेवको देखकर, उसे पारणाके किये मुनियुगलके साथ भेजा गया । गोचरीके मार्गमें प्रविष्ट होने पर उसने कहा मुझे

१८. क ख ग विहि । १९. क क °चंगइ । २०. क ट्ठियइ°; ख ठियउ°; ग तियअं°; क ठियइ° । २१. क क णियंबइं । २२. ख ग जे । २३. ख ग क वलि । २४. ख ग °ज्जए । २५. क क मुद्धहिं; ग मुद्धहें; घ मुद्धहि । २६. क क ण्णउं; घ °न्नउं । २७. क दीस° । २८. क पुण्णु णवउ । २९. क °इं । ३०. क क धण्णउ; ख ग उं°; घ धन्नमउ ।

[१५] १. क क °हाइं । २. क क हियइं; घ हियइ । ३. क घ क दइंवि । ४. क क णाइं । ५. क क जोवण° । ६. क घ क मारणिए । ७. क सो उजइ; ख सायंत; ग सेच्छय; घ सेज्जइं; क सेउजइ । ८. ख ग बारहं । ९. घ क धण्णउं । १०. घ क °ण्णउं । ११. क क णिवे°; घ निवे° । १२. क घ क °णत्थु । १३. ख ग सिंघाडइ । १४ क घ क °मग्गु । १५. क वुत्तउं । १६. ख ग महुं । १७. क क णिरुत्तउ ।

मुणिणा भणिउ[18] जाहि[19] गुरुनियडए तो गईए[20] पल्लट्टिउ[21] पियडए।
चिक्कमंतु चित्तु वि[22] परिओसइ एरिसु दिवसु न हुयउ न होसइ।
तो वरि घरहो जामि पियपेक्खमि विसयसुक्खु मणवल्लहु चक्खमि।
वंचिवि दिट्ठि कियंतरु जाएवि[23] चल्लिउ सिग्घु दिसउ निज्झाएवि[24]।
पुणु दूरंतराले सुपसत्थें चिंतिज्जइ[25] संपुण्णहियत्थें।
एक्कसि अज्जु[26] धणहे[27] रंजमि मणु सरहसुगाढु करमि आलिंगणु।
कररुहेहिँ थणमंडलु मंडमि अहरबिंबु दंतग्गहिं[28] खंडमि।
वड्ढिउ[29][30] पेम्मपुंजु[31] लज्जंकिउ दुल्लहु माणुसु विरहें[32]-झुलुकिउ[33]
जिह जिहँ[34] नियडगामु[35] परिसक्कइ[36] तिह तिहँ[34] चित्तु मणाउ चमक्कइ।

घत्ता—जिणसासणु बहुगुणु इउ कारणु पुणु धिद्धिकारिउ आरिसहिँ[37]।
पयपूरणमत्तहिँ[38] काइँ जियंतहिँ[39] काउरिसहिँ[37] अम्हारिसहिँ[37] ॥१५॥

[१६]

लज्जेसइ हा भवयत्तमुणि[1] वीणोवम धणियहे[2] महुरझुणि।

निश्चित अन्तराय हो गया है। तब एक मुनिने कहा—गुरुके पास चले जाओ। वह शीघ्रगतिसे लौट पड़ा। चलते हुए उसके चित्तमें बड़ा आनंद हुआ कि ऐसा दिन न कभी हुआ और न होगा। तो ठीक! घर जाकर प्रियाको देखूँगा और मनचाहा विषयसुख भोगूँगा। फिर थोड़ी दूर जाकर (मुनियुगलकी) दृष्टि बचाकर (घरकी) दिशाका विशेष ध्यान करके शीघ्रतासे चला। और फिर दूरसे ही भलीभाँति अपने हृदयमें भरे हुए भावोंके विषयमें सोचने लगा—आज एक बार मैं अपने मनको अपनी धन्यासे प्रसन्न करूँगा, व उत्कंठापूर्वक अतिगाढ़-आलिंगन करूँगा, नख चिह्नोंसे उसके स्तनमंडलको मंडित करूँगा और अधरबिंबको दांतोंसे काटूँगा। उसका दुर्लभ मनुष्य (प्रिया) के विरहसे झुलसा हुआ, व (अबतक) लज्जासे दबा हुआ प्रेमपुंज बढ़ गया। जैसे जैसे गाँव निकट आता गया, वैसे वैसे उसका चित्त कुछ इसप्रकार चमत्कृत हुआ (अर्थात् इसप्रकार चिन्तन करने लगा)—यह जिनशासन बहुत गुणवाला है, और आर्ष-ऋषियों द्वारा विषयभोगके लिये इसप्रकारके (व्रतभंगादि) कारणको अत्यन्त धिक्कार किया गया है। हम जैसे केवल पदोंको पूर्ण करनेवाले, अर्थात् मुनि-पदका केवल बाह्यतः निर्वाह करने वाले, कापुरुषोंके जीनेसे ही क्या? ॥ १५ ॥

[१६]

हा शोक! (इधर तो) भवदत्त मुनि (मेरे इस आचरणसे) लज्जित होंगे, (और उधर) उस धन्याकी वीणाके समान मधुर ध्वनि (सुननेको मिलेगी); (एक ओर तो)

१८. क घ ङ भणिउं। १९. क घ जाहि। २०. क गइए; ङ गईइ। २१. क ङ पलट्टिउ; ख ग घ पल्लट्टिउ। २२. ख ग में वि नहीं। २३. ख ग जायवि। २४. क ङ °यवि; घ °इवि। २५. ग चिंत्तिज्जइ। २६. क ग घ ङ अज्ज। २७. क ग घ ङ धणहि; घ धर्णहि। २८. ख ग °ग्गहि। २९. क ङ वट्टिउ। ३०. क ग घ ङ पेम°। ३१. ख ग °पुंज। ३२. ख ग विरहु। ३३. ख ग °झुल्किकिउ। ३४. ग घ °हं। ३५. ख ग नियडु°। ३६. क °सक्कइं। ३७. ख ग °रिसिहि। ३८. ख ग मित्तहि। ३९. क °तहि।

[१६] १. ख ग घ भवयत्तु°। २. क घ ङ धणियहिं; ख ग धुणियहे।

रिसिसंघु निवारइ कुगइपहे[3] ऊरुयफंसणु[4] को लहइ तहे[5] ।
संसारुच्छेयहो वय भणिया रेहाविय[7] वरकंतहे[8] तणिया ।
परिहरहि[9] चित्त मिच्छत्तभरु[10] सकियत्थु करेसइ तहे[11] अहरु ।
इय हरिस-विसायहिँ[12] पहि[13] वहइ आसंक अण्ण हियवउ डहइ ।
वरिसहिँ बारहहिँ विलासपिया तहे[14] जाणहुँ[15] वट्टइ कवण-किया ।
जोव्वणवसि[16] करइ किमण्णु पइ अह कुलकमु पालइ कह व जइ ।
तो महु लुंचियसिर-मलधरहो दुग्गंधसरीरदियंबरहो ।
संकेसइ[17] झत्ति न पइसरमि बाहिरि उवलंभु ताम करमि ।
ता[18] गामलग्गु[19] सियछुहधवलु देवउलु दिट्ठु धुयधयचवलु[20] ।
चिंतवइ न होंतउ एउ चिरु जा पइसइ ता तं चेइहरु[21] ।
जिणपडिम नियवि वंदण करिवि जा नियइ विसत्थउ वइसरिवि[22] ।

घत्ता—ता एक्कखणंतरि[23] तिय कोणंतरि दिट्ठ नियमवयखिण्णतणु ।
अणुहरइ विरूवहो मूलिणिरूवहो सुक्ककवोलहिँ[24] तसइ जणु ॥१६॥

ऋषि संघ कुगतिके पथसे निवारण करता है, (परंतु दूसरी ओर) उस जैसी सुंदरीका जंघा-स्पर्श किसे मिलता है; (इधर तो) संसारके उच्छेदनके लिए व्रत कहे गये हैं, (और उधर) उस श्रेष्ठ कांताकी सौंदर्यसे दीप्तिमान देहयष्टि है; अरे चित्त ! यह मिथ्यात्व वर्तन अर्थात् मिथ्याचरण छोड़ दे ! (पर) उसके अधरोंका चुंबन करके कृतार्थ होगा । इसप्रकार हर्ष-विषादपूर्वक वह मार्गमें चल रहा था कि एक अन्य आशंका उसके हृदयको जलाने लगी— बारह वर्षोंमें रतिक्रीड़ा-प्रिय उस भामिनीकी आजकल कैसी क्रिया है, क्या जानूँ ? क्या यौवनके वश होकर उसने अन्य पति कर लिया होगा ? अथवा यदि किसी तरह कुलक्रम (कुलाचार) का पालन किया भी हो तो लुंचितशिर, मलधारी, तथा दुर्गंधयुक्त शरीरवाले मुझ दिगंबरको देखकर वह हैरान होगी । इसलिए मैं शीघ्रतासे प्रवेश नहीं करूँगा, बल्कि पहले उसे बाहर ही बुलवा लूँगा । इतनेमें उसने गाँवसे लगा हुआ, श्वेत चूनेसे धवल, और फहराती हुई चपल ध्वजासे युक्त एक देवकुल देखा । (और) सोचने लगा—पहले तो यह नहीं था । जब उसने उस चैत्यघरमें प्रवेश किया, तथा जिनप्रतिमाको देखकर वंदना करके जब विश्वस्त होकर बैठा, तो क्षणभरके उपरांत नियमव्रतोंसे क्षीणशरीर एक स्त्रीको एक कोनेमें बैठे देखा जो विरूपाकृतिके कारण चंडीके रूपका अनुसरण कर रही थी, और सूखे कपोलोंसे लोगोंको त्रास उत्पन्न करती थी ॥१६॥

३. क ड कुमइपहिं; ख ग °पहो; घ कुमइ° । ४. ख ग करयलफं° । ५. क ड तहिं; ख ग तहो । ६. ख ग संसार° । ७. ख °विसु (?) ८. क ड °हिं; ख ग घ °हि । ९. ख ग घ °हरिहि । १०. क ख घ ड °भरु । ११. क घ ड तहिं । १२. ख ग °यहे । १३. क पहिं । १४. प्रतियोंमें 'तहिं' । १५. ख ग जाणहो । १६. ख ग °वस । १७. क संको° । १८. ख ग घ ड तो । १९. क गयण° । २०. घ °धवलु । २१. क ड चेय° । २२. घ °सरवो । २३. ख ग °तरे । २४. ख ग °लहे; घ लहि ।

[१७]

तो पणविउ ताए भत्तिजणवि मुणि पुच्छइ धम्मवुद्धि[1] भणवि ।
तुम्हइँ किर अंबे चिराउसइं[3] इह वसहु सयलु जाणेहु सइं ।
भवयत्तु अवरु भवएउ[4] तहिं दियतणय सहोयर बे वि कहिं[5] ।
जाणमि सा भणइ[6] आसिठियहो बे नंदण अज्जवसूदियहो ।
संसारतरंगिणि तेहिं तरिया आयरियँ[7] वित्ति-दइयंबरिया ।
पडिभणइ[8] सवणु मणि जणियरसु भवएवें परिणिय नायवसु ।
विणु नाहें किह कुलमग्गे ठिया किं वट्टइ तहे[9] विवरीयकिया ।
लायण्णतरंगुब्भासियउ तारुण्णु ताहि[10] केरिसु थियउ ।
बोल्लंतु ताए[11] सो परिकलिउ भवएउ एउ[12] फुडु[13] वयचलिउ ।
घत्ता—गय परमविसायहो परिणइ[14] रायहो पेक्खहु[15] केण[16] निवारियइ[17] ।
जहिं अङ्कवियइँ[18] धम्महो[19] खंडें माणुसु[20] केम वियारियइ[21] ॥१७॥

[१८]

निन्नासमि आयहो पावमइ सम्मत्तदिट्ठि पुणु सा चवइ ।
धण्णो सि सवण तिहुवण[1]तिलउ जिणदंसणु पाविउ सुहनिलउ[2] ।

[१७]

तो फिर उस स्त्रीने भक्तिपूर्वक मुनिको प्रणाम किया । 'तुम्हें धर्मवृद्धि हो' कहकर मुनि पूछने लगे—हे अंबे तुम्हारी दीर्घ आयु है, यहाँ बसनेवाले सभीको तुम स्वयं जानती होगी । यहाँ एक भवदत्त और दूसरा भवदेव ये दो सहोदर ब्राह्मणपुत्र थे, वे कहाँ हैं ? उसने कहा—जानती हूँ, यहाँ आर्यवसू द्विजके दो पुत्र रहते थे, उन्होंने दिगंबर-वृत्ति (दीक्षा) का आचरण करके इस संसार नदीको तर लिया । तब मनमें और दिलचस्पी उत्पन्न होनेसे श्रमणने फिर कहा—भवदेवने नागवसूका परिणय किया था, पतिके बिना क्या वह कुलमार्ग (पतिव्रत-धर्म) में स्थित रही, अथवा कुछ विपरीत-क्रिया करके रहती है ? लावण्य-तरंगोंसे उद्भासित उसका तारुण्य कैसा रहा ? बोलता हुआ वह मुनि उसके द्वारा पहचान लिया गया कि यह निश्चय ही व्रतोंसे डिगा हुआ भवदेव है । वह परमविषादको प्राप्त हुई, कि देखो इस रागकी परिणतिका कौन निवारण कर सकता है, जहाँ कि मनुष्य आड़े-टेढ़े वा गले-सड़े धर्मखंडसे कैसे-कैसे विकारको प्राप्त होता है ॥१७॥

[१८]

'इसकी पापमतिको नष्ट करूँगी', (मनमें ऐसा निश्चय करके) वह सम्यग्दृष्टि (नाग-वसू) बोली—हे त्रिभुवनतिलक श्रमण तुम धन्य हो, जिसने सुखका धाम, ऐसा जिनदर्शन पा

[१७] १. क ख ग क °विद्धि । २. क अंचि; ख ग; अत्थि; क अंबि । ३. क विराउ° । ४. क क भय° । ५. क क कही । ६. प्रतियोंमें 'भणइं' । ७. क घ क आसरिय । ८. क घ क °भणइं । ९. क घ क तहिं; ख ग तहि । १०. क व ताहिं । ११. क ताइ । १२. ब एहु । १३. ख ग फुड । १४. ख ग °णय । १५. ग पेक्खहे । १६. क केसा । १७. ख ग ण वारि; घ क °यइं । १८. ख ग वियंडें । १९. ख ग धम्महुं । २०. ख ग माणुस । २१. घ क °यइं ।

[१८] १. क घ क तिहुयण° । २. क सह° ।

तरुणत्तणे[3] वि इंदियदवणु दीसइ[4] पइँ मुयवि[5] अण्णु कवणु।
परिगलिए[6] वयसि सव्वहो वि जइ विसयाहिलाससिहि[7] उवसमइ।
कच्चें पल्लट्टइ को रयणु पित्तलए हेमु विक्कइ कवणु।
सग्गापवग्गसुहु परिहरइ को रउरवि नरइ पईसरइ।
को महिलहे[8] कारणे लेइ दिसि सज्झायहाणि[9] को कुणइ[10] रिसि।
जिह जिह[11] आहासइ सुद्धमइ हेट्ठामुहु[12] लज्जए[13] मुणि हवइ।
जा पुच्छिय तुम्हहिँ नायवसु सुणु पयडमि तहे[14] लायण्णरसु[15]।
नालियरसरिसु[16] मुंडियउ सिरु लालाविलु मुहु[17] घग्घरियगिरु।
नयणइँ[18] जलबुब्बुयसरिसयइं[19] नियथाणु मुअवि[20] तालु वि गयइं[21]।
चिब्बुयनिडालकवोलतयइं[22] रणरणहिँ[23] नवरि वायाहयइं।
निम्मंसु निलोहिउ देहघरु चम्मेण नद्धु[24] हड्डहं[25] नियरु।
नीसल्लु अवरु[26] हियवउ जणउ पडिछंदु निहालहि[27] महु तणउ[28]।
घत्ता—इय रूव-सरिच्छउ हियउ तिरिच्छउ सल्लु काइँ तुम्हहं[29] थियउ।
परलोउ न साहिउ एमइँ[30] वाहिउ[31] कालु निरत्थउ पर नियउ[32] ॥१८॥

लिया। तरुणाईमें भी इंद्रियोंको दमन करनेवाला तुम्हारे अतिरिक्त और कौन दिखाई देता है? यदि परिगलित वयस्में सभीका विषयाभिलाषरूपी अग्नि शांत हो जाता है (तो उससे क्या लाभ?)। कांचसे रत्न कौन बदलवाता है? पीतल के लिए स्वर्ण कौन बेचता है? स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) सुखको छोड़कर रौरव नरकमें कौन प्रवेश करता है? महिलाके कारण व्रतानुष्ठानादि क्रियाओंसे कौन भ्रष्ट होता है व कौन ऋषि अपने स्वाध्याय (आत्मचिंतन) की हानि करता है? जैसे-जैसे वह शुद्धमति बोलती गई, वैसे-वैसे मुनि लज्जासे अधोमुख होते गये। (उसने फिर कहा)—तुमने जिस नागवसूको पूछा, सुनिये! उसके लावण्यरस (सौंदर्य स्वरूप) को प्रकट करती हूँ—उसका शिर नारियलके समान मुंडित है, मुख लारयुक्त हो गया है, और उसमें-से वाणी घरघराती हुई निकलती है। नेत्र जलके बुलबुलेके समान, अपने स्थानको छोड़कर तालु तक चले गये हैं; चिबुक, ललाट, कपोल और त्वचा मानो वाताहत होकर रण-रण शब्द करते हैं (अर्थात् सारा शरीर शिथिल हो गया है, उसमें झुर्रियां पड़ गयी हैं, अतः सदैव किटकिट आदि शब्द करता हुआ कांपता रहता है)। यह देहरूपी घर निर्मांस और निर्लोहित होकर चमंसे नधा हुआ अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रह गया है। हृदयको और भी निःशल्य करनेवाले मेरे इस प्रतिरूपको देखिए। इस सदृश रूप तुम्हारे हृदयमें कुटिल-शल्यकी भाँति कैसे स्थित रहा? तुमने परलोक नहीं साधा ऐसे ही समय बिताया। तुम्हारा सारा समय निरर्थक ही गया॥ १८॥

३. ख ग तरण°। ४. ख ग °इं। ५. क घ क मुइवि। ६. क घ क °मलिय। ७. ख ग° हवि। ८. ख ग कुम्महेलहे; घ कुमहिलहि। ९. क क अज्झाय°। १०. क घ क °इं। ११. क घ क जिहं जिहं। १२. क क मुहुं। १३. क ख ग क लज्जइ। १४. क क तहि; घ तहि। १५. क क लावण्ण°। १६. घ °सरिस। १७. क ण्णाण्णाविट्टलु; घ क लालाविट्टलु°। १८. ख ग घ °बब्बुय°। १९. क घ क °सयइ। २०. क घ क मुएवि। २१. क क गयइ। २२. क घ क कवोलयइं। २३. ख ग °रणहि। २४. ख ग चम्मे निबद्ध। २५. ख ग हड्डं। २६. ख अहव। २७. क °लहि। २८. ख ग तणउं। २९. घ तुम्हहं। ३०. ख ग एम वि; घ एमइ। ३१. क °उं। ३२. क क णियउं।

[१९]

तओ तम्मि संबोहणालावकाले तडत्ती तुट्टे महामोहजाले ।
मणं तस्स नीसल्लभावे पउत्तं फुडं जाणिऊणं पुणो तीए वुत्तं ।
अहं चेय ते गेहिणी नाह मुक्का कुलायार-भत्तारधम्मे न चुक्का ।
घरे आसि जं संठियं तुम्ह दव्वं मए दिण्णयं धम्मकज्जम्मि सव्वं ।
इमं सुंदरं कारियं चेइगेहं वयोवासियं सोसियं पेक्खु देहं ।
सुणेऊण चित्तंतरं लज्जमाणो पयंपेइ संलद्धसिक्खापमाणो ।
गिरा तुम्ह जाया महं सुद्धभावा पडंतस्स संसारनीरम्मि नावा ।
तओ निग्गओ पुव्वसंकेयचत्तो[2] खणद्धे[3] मुणिंदाण पासम्मि पत्तो ।

घत्ता—गुरुचलणइँ[4] वंदेवि अप्पउ निंदेवि सयलु वि कज्जु[5] निवेइयउ ।
पहु अज्जु म वंकहि[6] पुणु दिक्खंकहि[7] संसारहो उव्वेइयउ ॥१०॥

[२०]

संकिट्ठभाव सव्व वि चइया सविसेसदिक्ख पुणरवि लइया ।
अब्भसइ निरंजणु परमपरु वे मेल्लइ[1] रायदोस अवरु ।
रुंभइ मणवयणकायपसरु नासइ इंदियविसया[2] अवरु

[१९]

तब (नागवसूके) उस संबोधनात्मक वार्तालाप करते-करते ही उसका मोहजाल तड़से टूट गया; और उसका मन निःशल्य भाव (शुद्धात्मपरिणाम) में लग गया, ऐसा स्पष्टरूपसे जानकर उस नागवसूने पुनः कहा—हे नाथ ! मैं ही तुम्हारी परित्यक्ता गृहिणी हूँ। मैं पतिधर्म-रूपी अपने कुलाचारसे च्युत नहीं हुई। घरमें तुम्हारा जो द्रव्य रखा था, वह सब मैंने धर्मकार्यमें दे दिया, और यह सुंदर चैत्यघर बनवा दिया। मेरा यह व्रतोपवाससे शोषित शरीर देखिए ! यह सुनकर चित्तमें लज्जित होता हुआ प्रामाणिक धर्मशिक्षा पाकर वह बोला—हे जाया ! मैं जो संसार सागरमें डूबा जा रहा था, तुम्हारी वाणीसे मेरी नावकी चेष्टा (गति) अब निर्दोष हो गयी है। और फिर पूर्व-संकेत अर्थात् विषय-सेवाके संकल्पको छोड़कर वह वहाँसे निकला व अतिशीघ्र मुनींद्रोंके पास जा पहुँचा। गुरुचरणोंकी वंदना करके व आत्मनिंदा करके संपूर्ण घटनाका निवेदन किया, (और प्रार्थना की) हे प्रभु ! आज मेरी प्रार्थनाको मत ठुकराइए, मुझे पुनः दीक्षा दीजिए, मैं संसारसे उद्विग्न हो गया हूँ ॥ १९ ॥

[२०]

उसने सभी संक्लिष्टभावोंको त्याग दिया और पुनः विशेष-दीक्षा ग्रहण की। वह निरंजन परमात्माका अभ्यास (ध्यान) करने लगा, और राग व द्वेष इन दोनोंका त्याग कर दिया। मन, वचन, कायके प्रसारको अवरुद्ध कर लिया, और इंद्रियविषयों (अर्थात् भोगवासना)का नाश कर

[१९] १. क घ ङ णिस्सल्ल°। २. क °चत्तो। ३. क खणद्धं; घ °द्धिं। ४. क घ ङ °चरणइं। ५. ख कज्ज। ६. ख ग वंकहिं। ७. क ख ग °कहिं।

[२०] १. क ङ मेलइ; घ मिल्लइ। २. क ङ विसउ; घ वसउ।

अरि-मित्तु[3] सरिसु समकणयतिणु[4] सुहदुहसमु समजीवियमरणु।
निंदापसंससमु वयविमलु भुंजेइ अजिब्भु व करि कवलु।
अंधो व्व रूवदंसणु[5] कुणइ[6] बहिरो व्व निरीहु सद्दु सुणइ[7]।
पाहणु[8] व परसु वेयइ[9] विसमु [10]बावीसपरीसहसहणखमु।
भवयत्तसहिउ इउ[11] तउ करइ[12] पुव्वासियकम्मइँ निज्जरइ[13]।
अवसाणे विमलगिरि आसरिवि[14] अणसणे पंडियमरणें मरिवि[15]।
विण्णि वि उप्पण्ण सग्गे तइए सायरइँ[16] सत्त आउसमइए।

घत्ता—दिव्वच्छरलक्खिय नयणकडक्खिय कडयमउडकेऊरधर।
हियइच्छियमाणहिँ[17] रमहिँ[18] विमाणहिँ अतुलवीर[19] विण्णि वि अमर ॥२०॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए भवएवस्स सणकुमारसग्ग-गमणं नाम [20]दुइओ संधी समत्तो[20] ॥संधि-२॥

दिया। उसके लिए व शत्रु व मित्र एक समान हो गये और स्वर्ण व तृण बराबर; सुख-दुःख, जीवन-मरण सब एक-सा; तथा निंदा व प्रशंसा सबमें समान बुद्धि। वह शुद्ध व्रतोंवाला हुआ। वह हाथमें ग्रास लेकर जिह्वारहितके समान भोजन करता, अंधेके समान रूप-दर्शन करता, तथा बहिरेके समान निरीहभावसे शब्द सुनता। कठोर स्पर्शोंको वह पत्थरके समान वेदन करने और क्षुधा-तृषादि बाईस परीषहोंको सहन करनेमें समर्थ हुआ। इसप्रकार भवदत्तके साथ तप करते हुए उसने पूर्वोपार्जित कर्मोंकी निर्जरा की। जीवनके अन्तिम समयमें विमलगिरिका आश्रय लेकर अनशनपूर्वक पंडितमरण करके दोनों ही भाई सात सागर आयुवाले तृतीय स्वर्गमें उत्पन्न हुए। वहाँ दिव्य अप्सराओंके नयनकटाक्षों-द्वारा लक्षित, कंकण, मुकुट, व केयूरोंके धारक, हृदयेच्छित आकार धारण करते हुए, वे दोनों अतुल वीर्यवान देव स्वर्गविमानोंमें रमण करने लगे ॥ २० ॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर कवि द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित नामक इस शृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें भवदेवका सनत्कुमार स्वर्गगमन नामक द्वितीय संधि समाप्त ॥ २ ॥

३. क °मित्त। ४. घ °तणु। ५. क एव°। ६. क कुणइं। ७. क क सुणइं। ८. क क पाहाणु; ख ग पाहुणु। ९. क ख ग क चेयइ। १०. क बीबीस°। ११. ख ग इय। १२. ख ग °इं। १३. क ख ग °इं। १४. क घ क °रवी। १५. क क °रवी। १६. ख ग °रइ। १७. क क °इंच्छिय°। १८. क रमहि। १९. क °वीर। २०. क दुइज्जो इमा संधी; ख ग दुइज्जो परिच्छेअ सम्मत्तो; घ क दुइज्जा इमा संधी।

[१]

बालकीलासु वि वीरवयणपसरंतकव्वपीऊसं[1] ।
कण्णपुडएहिं[2] पिज्जइ जणेहिं रसमउलियच्छेहिं ॥१॥
भरहालंकारसलक्खणाइँ लक्खेपयाइँ विरयंती ।
वीरस्स वयणरंगे सरस्सइ जयउ नच्चंती ॥२॥
सुविसालए तहिँ अमरालए[3] विविहपयारु विलासु किउ ।
अच्छंतहिँ[4] सुहुँ[5] भुंजंतहिँ आउसु सायरसत्त निउ[6] ॥३॥

दुवई—बहु मण्णंति सग्गे देवाउसु जे नर-किविणमाणसा ।
सव्वु वि कालदव्वु तहुँ[7] तिणसमु[8] जे संपन्ननाणसा[9] ।

अह मंदराउ जणनयणपिउ पुव्वासए पुव्वविदेहु थिउ ।
ओछप्पिणी[10] अवसप्पिणि न तहिँ लोयाहिव[11] उपज्जंति जहिँ ।
नाहेय[12]-बाहुबलि-भरह-जया अरहंत-सिद्ध-चक्कवइ सया ।
धणुसयइँ[13] पंच-उच्छेहतणु पुव्वाण कोडि जीवेइ जणु ।
तत्थत्थि अमुणियविवक्खभउ नामेण पुक्खलावइ विसउ ।

[१]

बालक्रीड़ाओंमें भी वीर (कवि) के मुखसे प्रसृत होते हुए काव्य-पीयूषको लोगोंके द्वारा आनंदसे निमीलित नेत्र होकर कर्णपुटोंसे पिया जाता है ॥ १ ॥ भरतके अलंकार और काव्यलक्षणोंसे युक्त लक्ष्य पदों अर्थात् काव्यपदोंकी रचना करती हुई, वीर कविके मुखरूपी रंगमंचपर नृत्य करती हुई सरस्वती जयवंत होवे ॥ २ ॥

उस विशाल स्वर्गमें दोनों देवोंने विविधप्रकारका विलास किया। इसप्रकार वहाँ रहकर सुख भोगते हुए सात सागरकी आयु बीत गयी ॥ ३ ॥ जो स्वर्गमें देवायुको बहुत मानते हैं, वे लोग कृपण-मानस अर्थात् अल्पबुद्धि हैं। परन्तु जो ज्ञानलक्ष्मीसम्पन्न हैं, उनके लिए तो समस्त कालद्रव्य (काल परिमाण) भी एक दिनके समान है ॥ ५ ॥

मंदराचलसे पूर्व दिशामें लोगोंके नेत्रोंको प्यारा पूर्वविदेह स्थित है। वहाँ उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूपसे कालचक्रके आरे नहीं बदलते, तथा वहाँ लोकके नाथ तीर्थंकर (सदैव) उत्पन्न होते रहते हैं। वहाँ नाभेय जिन (ऋषभनाथ), बाहुबलि, तथा भरत और मेघेश्वर ये अरहंत सिद्ध एवं चक्रवर्ती सदैव विद्यमान रहते हैं। वहाँ शरीरकी ऊँचाई पाँच सो धनुष प्रमाण होती है और जीव पूर्व-कोटि वर्षों तक जीता है। वहाँ शत्रुके भयको न जाननेवाला पुष्कलावती

[१] १. क घ ङ पेओसं। २. ख °एहि; घ कण्ण°। ३. घ °लइं। ४. °तिहि। ५. ख ग घ सुहुँ। ६. क घ ङ गउ। ७. क ख घ ङ तहु। ८. क घ ङ दिण°। ९. क ख ग ङ संपण्ण°। १०. ख ग ओस°। ११. क ख ग ङ °हिय। १२. क णाणेय°। १३. ख ग °सयइ।

जो जलनिहि व्व रयणुद्धरणु घरसिंगलग्ग[14]-पज्झरियघणु।
घणनंदणवणसंछइयदिसु दिसमाणरिद्धि-हल्लिरकणिसु।
कणकणिरदसणसीयलसलिलु सुललियकोइलसरभरियबिलु।
विलसंतपवणकंपियसरलु सरलुप्फिडंत[15]-हरिणी[16]-तरलु।
तरलच्छि-छेत्तठियहलियवहु वहुविंभियपंथियरुद्धपहु[17]।
पहसंतरमियगामीणजणु जणयाहिलासनायरमिहुणु[18]।
छत्ता—मणिसारहिँ तिहिँ[19] पायारहिँ परिहामंडलि[20] जलपयरि।
वहुभोयहिँ मंडियलोयहिँ अत्थि पुंडरिंकिणि[21] नयरि ॥१॥

[२]

दुवई—वारहजोयणाइँ दीहत्ते नवजोयण सुवित्थरा।
सग्गु वि वीसरंति सा पेक्खिवि मोहियमाणसामरा ॥१॥
नयरिमणोरमभुअणपइवहो[1] तिलयभूय जा जंबूदीवहो।
मंडालंकियाइँ[2] उज्जाणइँ बाहिरि अब्भंतरि निवथाणइँ।
जहिँ बाहिरे वाडीउ सतालउ अब्भंतरि पुणु नच्चणसालउ।
सरपालिउ विडंगनहवणियउ[3] बाहिरि अब्भंतरि पुणु गणियउ।

नामका देश है, जो जलनिधिके समान रत्नोंको धारण करनेवाला है, व जहाँ घरोंके शिखरोंसे टकराकर बादल झरने लगते हैं। घने नंदनवनसे वहाँकी दिशाएँ आच्छादित हैं तथा शस्यके कंपनशील तीक्ष्ण-अग्रभागोंसे उसकी समृद्धि दृश्यमान है। जहाँ दांतोंको कंपायमान करनेवाला शीतल पवन बहता है और कोकिलाके सुमधुर स्वरसे सब कंदर-विवर भर जाते हैं; क्रीड़ापूर्वक बहता हुआ वायु सरल नामक वृक्षोंको कंपित कर देता है, चंचल हरिणियां सीधी छलांग लगाती हैं, और जहाँ खेतोंमें खड़ी हुई चंचल आंखोंवाली हालि (कृषक) वधुओंको देखकर अत्यन्त विस्मित हुए पथिकोंसे मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तथा जहाँ ग्रामीणजन अत्यन्त प्रमोदपूर्वक रमण करते हैं, और जो नागरिकोंके जोड़ोंको (वहाँ रहनेकी) अभिलाषा उत्पन्न करता है, उस देशमें मणिजटित-प्राकार व जलप्रचारसे युक्त परिखामंडल सहित तथा अनेकप्रकारके भोग भोगनेवाले लोगोंसे मंडित पुंडरिकिणी नामकी नगरी है ॥ १ ॥

[२]

बारह योजन लंबी और नव योजन विस्तृत उस नगरीको देखकर मोहित हुए मनुष्य व देव स्वर्गको भी भूल जाते हैं। वह मनोरम नगरी भुवनके प्रदीप रूप जंबूद्वीपकी तिलकभूत है। उस नगरीके बाहर अनेक वृक्षगुल्मों व लतामंडपोंसे अलंकृत उद्यान हैं, व भीतर सर्वत्र नाना प्रासादों (मंड) से अलंकृत राजकुल हैं। वहाँ बाहर तालाबोंसहित वाटिकाएँ हैं, व भीतर ताल-मंजीर इत्यादि वाद्यवादनसे युक्त नृत्यशालाएँ। बाहर विडंग वृक्षोंसे ललित सरपाली अर्थात् सरोवर-पंक्तियाँ हैं, व भीतर विदग्ध-जनोंके नखोंसे व्रणित स्मरपालित (कामयक्त)

१४. घ घर°। १५. क ङ °प्पियंत; घ °प्फलंत। १६. घ करिणी। १७. क घ ङ ब हुविंभय°। १८. ख ग °नायरि°। १९. क ङ तहि। २०. क क घ ङ °मंडल। २१. ख ग °गिणि।

[२] १. घ °भुवण°। २. घ मड्डा°। ३. ख ग °यउ।

मुणिवरमंडियकीलामहिहर　　　बाहिरि अब्भंतरि चेईहर ।
बाविउ सुपओहरउ सुरमणिउँ[4]　　　बाहिरि अब्भंतरि वररमणिउ[4] ।
सहलसुपत्तइँ मंडवथाणइँ　　　बाहिरि अब्भंतरि जणदाणइँ[6] ।
बाहिरि बाहियालि हरिसंगय[5]　　　अब्भंतरि वसंति नायरपय ।
बाहिरि गयउलाइँ रयणरुयइँ[7]　　　अब्भंतरि सहंति डिंभरुयइँ[8] ।

घत्ता—गुणमंदिरु नयणाणंदिरु वज्जयंतु तहिँ रज्जधरु[9] ।
रणसूरहो[10] परबलु[11] दूरहो जसु नामेण वि वहइ डरु ॥२॥

[३]

दुवई—तहो महएवि विमलकमलाणण कमलदलच्छिनेत्तिया ।
कमलुज्जलसरीर कमला इव नाम जसोहणा पिया ॥१॥

भवयत्तु[1] जेट्ठु जो अमरु हुओ　　　तहे[2] जाउ पुत्तु सो सग्गचुओ ।
सायरगंभीरु[3] चंदवयणु　　　सायरचंदु जि[4] बाहरइ जणु ।
परिकलियसयलविज्जाकुसलु　　　जिणवरपयजुयलपंकयभसलु[5] ।
अह तहिं जि जणमणाणंदयरि　　　नामेण वीयसोयानयरि ।

गणिकाएँ हैं। बाहर मुनिवरोंसे शोभायमान क्रीडापर्वत हैं और भीतर चैत्यगृह। बाहर स्वच्छ जलवाली अत्यन्त रमणीय वापियां हैं, व भीतर मनोहर पयोधरों (स्तनों) वाली अति-रमणशील सुंदर रमणियां। बाहर (उद्यानोंमें) सुंदर फलों व पत्रोंसे युक्त मंडपस्थान हैं, तथा भीतर मनोवांछित फल देनेवाला सुपात्र दान किया जाता है। बाहर अश्वों सहित अश्व-क्रीड़ास्थल हैं, और भीतर नागरिक प्रजा रहती है। बाहर गजकुल अपने दांतोंकी दीप्तिसे, व भीतर बालक अपने रत्नाभरणोंकी कांतिसे शोभायमान हैं। वहाँ गुणोंका निवास तथा नयनोंको आनंद देनेवाला वज्रदंत नामका राजा था, जिस रणशूरके नामसे ही शत्रुबल दूरसे ही भयभीत हो जाता था ॥ २ ॥

[३]

उसकी यशोधना नामकी महादेवी स्वच्छकमल जैसे मुखवाली, कमलदलके समान नेत्रोंवाली, कमलसदृश उज्ज्वल शरीरवाली और स्वयं कमला (लक्ष्मी) के समान थी, जो उसे बहुत प्रिय थी। ज्येष्ठ भाई भवदत्त जो देव हुआ था, वह स्वर्गसे च्युत होकर उसका पुत्र हुआ। वह सागर जैसा गंभीर और चंद्रमाके समान मुखवाला था, इसलिए लोग उसे सागरचंद्र कहने लगे। सब विद्याओंको सीखकर वह उनमें कुशल हो गया था और जिन भगवान्के पदयुगलरूपी कमलोंका भ्रमर (भक्त) था; और वहींपर लोगोंके मनको आनंद देनेवाली वीताशोक नामकी

४. क °णिओ। ५. क °संगण। ६. क क °जण। ७. क ख ग क रयणु°; घ °रयइं। ८. घ °रयइं। ९. ग रज्जु°। १०. ख ग रणु°। ११. क ख ग क °बल।

[३] १. क भय°। २. क ख ग क तहिं; घ तहें। ३. क सायर°। ४. ख ग जे। ५. ख ग °जुयले°।

जहिँ[६] सूरकंनि संभूयँ-हवि वावरइ महाणसि पयणछवि ।
पिज्जइ सुसाउ सीयलु विमलु मणिचंदकंतिपज्झरियजलु ।
जहिँ [७]मरगयभित्तिए सामलिय गोरंगी नाहेँ नउ कलिय ।
जहिं इंदनीलमहि[८] मणि[९] धरइ चिरु छलिउ न दूव वि मिगु चरइ ।
तहिँ अत्थि अत्थिजणकप्पदुमु पउमालंकरिउ महापउमु ।
नवनिहिरयणाहिउ चक्कधरु छक्खंडवसुंधरि धरियकरु ।
बत्तीससहसमणिमउडधरा सेवंति नराहिवआणकरा[११] ।
छण्णवइसहसअंतेउरहो[१२] कडिहारदोरकुंडलधरहो ।
वणमाल तित्थु[१३] महएवि ठिय मुहकंतिजित्तहरिणंकसिय ।
चक्कवइविहूइहेँ[१४] सव्वगुणु जं नत्थि पुत्तु तं डहइ मणु ।

घत्ता—जिणण्हवणहिँ[१५] वंदियसवणहिँ पुण्णपहावेँ[१६] सग्गचुओ ।
वणमालहे[१७] नयणविसालहे[१८] भवएवामरु जाउ सुओ ॥३॥

नगरी थी, जहाँपर कि महानस (रसोई) में हविष (खाद्यसामग्री) को एकत्र करके सूर्यकांत मणियोंको पाकाग्निके काममें लाया जाता था, अथवा जहां सूर्यकांतमणिसे उत्पन्न अग्निसे महानसमें भोजन पकाया जाता था। जहाँ चंद्रकांतमणियोंसे झरा हुआ सुस्वादु, शीतल और विमल-जल पिया जाता था, जहाँ मरकतमय भित्तियोंकी कृष्णछाया पड़नेसे, अपनी गौरांगी प्रियाओंको भी श्यामवर्ण हो जानेसे उनके स्वामी पहचान नहीं पाते थे, जहाँ इंद्रनीलमणियोंसे निर्मित व (हरित) मणियोंसे जड़ी हुई भूमिसे कभी पहले ठगा हुआ मृग अब दूबको भी (हरित मणि समझकर) नहीं चरता; वहाँ याचकजनोंके लिए कल्पद्रुमके समान, व (राज्य) लक्ष्मीसे अलंकृत महापद्म नामका राजा था। वह मंत्री आदि नौ निधियोंका रत्नाकर तथा षट्खंड वसुंधरासे कर लेनेवाला चक्रवर्ती था। मणिमय मुकुटोंके धारक बत्तीस सहस्र आज्ञापालक राजा उसकी सेवा करते थे। कटिहार, कटिसूत्र एवं (कर्ण) कुंडलोंको धारण करनेवाली उसकी छ्यानवे हज़ार रानियां थीं, जिनमें वनमाला महादेवी थी, जो अपनी मुखकांतिसे हरिणांक (चंद्रमा) की शोभाको जीतनेवाली थी। इस प्रकार चक्रवर्तीकी विभूतिके सभी गुण (सर्व साधन) उसके पास थे, एक पुत्र ही नहीं था, यह बात सदैव हृदयको दुःखसे जलाती रहती थी। जिन भगवान्का न्हवन और श्रमणोंकी वंदनाके पुण्यप्रभावसे भवदेव देवताका जीव विशालनेत्रोंवाली वनमालाका पुत्र हुआ ॥ ३ ॥

६. ख ग जहि । ७. ख ग °उ । ८. ख ग मरगइ° । ९. क घ ङ °मणि । १०. क ख ङ महि । ११. क ङ षरा; घ °यरा । १२. घ छन्नवइ° । १३. तें° । १४. क ङ °यहि । १५. घ °न्हवणहि । १६. घ पुन्न° । १७. क घ °लहि; ख ग ङ °लाहि । १८. ङ °लहि ।

[४]

दुवई—सुहनक्खत्तजोए तिहिवारए[1] पुण्णिमइंदवयणउ[2]।
वरबत्तीसदेहलक्खधरु कुवलयदीहनयणउ[3]।

जम्मदिवसम्मि पुत्तस्स बहुपरियणो[4] चक्कवट्टी-कयाणंदवद्धावणो।
नियवि पुत्ताणणं गहिरसरवाइणा सिवकुमाराहिहाणं कयं राइणा।
बालु[5] वड्ढंतु[6] सो कहि मि नउ मुच्चए हत्थहत्थाउ[7] रायाण[8] न पहुच्चए।
अट्ठवरिसो वि सिसुभावपरिचत्तओ सयलविज्जाकलाथाणु संपत्तओ।
चक्किणा कोउहल्लेण संथाविओ रायकण्णाण[9] सयपंचपरिणाविओ।
मंति[10]-सामंतकुमरेहिं[11] परिवारिओ देहि आएसु जीव[12] त्ति जयकारिओ।
रायघरबाहिरं जेम नउ निज्जए अंगरक्खाण कोडीहिं[13] रक्खिज्जए।
हरिणनयणीहिं[14] सरिसं सुहं माणए जामिणी नेव[15] दिवसं गयं जाणए।

घत्ता—ता एत्तहे[16] अच्छइ जित्तहे[17] सायरचंदु विसुद्धगुणि।
विहरंतउ दमदयवंतउ पत्तु पुंडरिंगिणिहिं मुणि ॥४॥

[४]

शुभ नक्षत्र, योग, तिथि और वारको पूर्णचंद्रमाके समान मुखवाले, बत्तीस उत्तम अंगलक्षणोंके धारक तथा कुवलयके समान दीर्घ नेत्रोंवाले उस पुत्रके जन्मदिन पर बहुत-से परिजनोंने चक्रवर्तीको आनंद-बधाई दी। पुत्रके मुखको देखकर गंभीर स्वरसे बोलनेवाले उस राजाने उसका नाम शिवकुमार रख दिया। बड़ा होता हुआ वह बालक कहीं भी (पृथ्वीपर) छोड़ा नहीं जाता था, तथा सब राजाओंके हाथोंसे हाथों तक भी नहीं पहुँच पाता था। आठ वर्षका होते ही वह शिशुभावको छोड़कर सकल विद्याओं व कलाओंका धाम बन गया। चक्रवर्तीने कौतूहल पूर्वक उसे युवराज पदपर संस्थापित (अभिषिक्त) कर दिया और पांच सौ राजकन्याओं-के साथ परिणय करा दिया। वह, आदेश दीजिए, जीवंत होइए आदि वचनपूर्वक जयजयकार करनेवाले मंत्री व सामंतकुमारोंसे घिरा रहता था। जिसप्रकार उसे राजप्रासादसे बाहर न ले जाया जा सके, इसप्रकार अंगरक्षकोंकी बहुत बड़ी सेना द्वारा उसकी रक्षा की जाती थी। वह मृगनयनी रानियोंके साथ सुख भोगता था, और रात्रि व दिन कब गये यह नहीं जान पाता था। तबतक इधर जहाँ वह विशुद्धगुणोंका धारक सागरचंद्र रहता था, वहाँ, उस पुंडरि-किणी नगरीमें इंद्रियोंका दमन करनेवाले दयावान मुनि विहार करते हुए पधारे ॥ ४ ॥

[४] १. ख ग तिहिं°। २. क पुण्णम°। ३. प्रतियोंमें °णयणउ। ४. क °यणे। ५. क बाल। ६. क क वट्टंतु। ७. क घ क °हत्थाण। ८. क घ क रायाउ। ९. ख ग घ क °कण्णाण। १०. ख मंत। ११. °रेहि। १२. क जीवि। १३. ख ग °उ; घ °ए। १४. ख ग °णीहि। १५. क क णेव; ख ग णेय। १६. क °ताविसहिं; घ °ताविसहि। १७. क घ क °हिं।

[५]

दुवई—मई[1]-सुइ-अवहि-विमलमणपज्जयनाणे[2]चउक्कसामिउ[3] ।
नाम सुवंधुतिलउ[4] उववणे ठिउ चारणरिद्धिगामिउ ॥ १ ॥

रिसिचलणवंदणुच्छाहमणु[5] चल्लंतु नियच्छवि[6] पउरयणु ।
गउ सायरचंदु कुमारु तहिं उज्जाणे परममुणि थक्कु जहिं ।
भत्तिए पणवेवि परंपरए आउच्छइ नियजम्मंतरए ।
मुणि भणइ[7] भरहे सुविसुद्धमणा[8] दियनंदण तुम्हइँ[9] बे वि[10] जणा ।
भवयत्तु जेट्ठु तुहुँ[11] पवरभुओ लहुवारउ तहिं भवएउ हुओ ।
तवचरणु[12] करिवि आउसि खइए[13] उप्पण्ण मरेवि सग्गे तइए ।
तहिं चयवि जाउ सम्मत्तधरु तुहुँ वज्जयंतसुउ निवकुमरु ।
तुहु[14] अणुउ आसि जो सो वि बुहु[15] चक्कवइमहापउमंगरुहु ।
अहिहाणं सिवकुमारु अभउ इय कहिउ भवंतरु[16] सिग्घु तउ ।

घत्ता—आयण्णिवि[17] भवगइ मण्णिवि[18] विज्जुलचल आसंकियउ ।
नयजुत्तहिं सहुँ[18] राउत्तहिं उयहिचंदु[19] दिक्खंकियउ ॥५॥

---

[५]

मति, श्रुत, अवधि और विमल-मनःपर्यय इन चार ज्ञानोंके स्वामी सुवंधुतिलक नामके चारणऋद्धिधारी मुनि उपवनमें ठहरे। ऋषिचरणोंकी वंदनाका उत्साह मनमें लिये हुए पौरजनोंको चलते हुए देखकर कुमार सागरचंद्र भी वहाँ गया जहाँ उद्यानमें वे परममुनि ठहरे थे। परंपरानुसार भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने जन्मान्तरोंको पूछा। मुनिने कहा—तुम दोनों भारतखंडमें पवित्र मनवाले ब्राह्मणपुत्र थे। तू जेठा भाई भवदत्त था और तेरा छोटा भाई उत्तम भुजाओंवाला भवदेव था। तपश्चरण करके आयुष्य क्षय होनेपर मरकर तीसरे स्वर्गमें उत्पन्न हुए। वहाँसे च्युत होकर तुम वज्रदंतके पुत्र, सम्यक्त्वधारी राजकुमार हुए हो, और वह जो तुम्हारा अनुज था, वह महान् महापद्म-चक्रवर्तीका शिवकुमार नामका ज्ञानवान् पुत्र हुआ है। इस प्रकार संक्षेपमें तुम्हारा भवांतर कह दिया गया। यह सुनकर व भवगति अर्थात् भवस्थितिको विद्युत्के समान चंचल मानकर जन्म-मरणसे भयभीत वह सागरचंद्र नीति-सदाचार युक्त राजपुत्रोंके साथ दीक्षित हो गया ॥ ५ ॥

---

[५] १. क ङ मइं। २. प्रतिगोंमें णाण°। ३. क ङ °सामिउं। ४. क ङ सुबंध°; घ सुवंसतिलय। ५. क घ ङ रिसिचरण°। ६. क घ ङ °च्छिवि। ७. क ङ पभणइ; घ भणइं। ८. क ङ विसुद्धि°। ९. क ख ग ङ °इ। १०. ख ग वेण्णे। ११. घ तुहु। १२. क °ण। १३. ख ग आउसे खयइ। १४. ग तुहुं। १५. क ख ग तहु; ङ बुहो। १६. क घ ङ कहंतरु। १७. घ °ण्णिवि। १८. ख ग सहु। १९. क घ ङ उवहि°।

[६]

दुवई—तवसिरिभूसियंगु गुणपरिमिउँ रायपमायताडणो।
खमदमसीलनियमवयविग्गहु इंदियदप्पसाडणो ॥१॥

बारहविहु तवचरणु[1] चरंतहो उवरि उवरि गुणथाणु सरंतहो।
सायरचंदु मुणिहिं संपुण्णउं[2] चारणाइरिद्धिउ[3] उप्पण्णउ[4]।
अह कयावि सासयसुहरत्तउ वीयसोयनयरिहिं[5] संपत्तउ।
मज्झण्णहो[6] चरियाए पईसइ विंभियचित्तहिं[7] लोयहिं दीसइ।
पग्गि व मुणिवरवेसकयायरु अवस तवइ तउ बालदिवायरु।
अण्णहो[8] कहो[9] पयाउ इह निम्मलु देहदित्तीपिंगीकयनहयलु।
राउलनियडघरेण वणीसें ठाहु भणंतें पणवियसीसें।
विहिणा पारावियउ दियंबरु पूरइ[10] रयणविट्ठि सिट्ठिहि[11] घरु।
तं अच्छरिउ नियवि सुविहोयहिं उट्ठिउ कोलाहलु किउ लोयहिं
तं कलयलु सुणंतु[12] मणि भिण्णउ[13] सिवकुमारु धवलहरि चडिण्णउं[13]।
तो अण्णेक्कें[14] वइयरु सीसइ[15] सेट्ठिघराउ जंतु[16] मुणि दीसइ[15]।

घत्ता—इहु[17] मुणिवरु[18] मइं[19] दिट्ठउ चिरु इउं[20] कुमरें[21] विंभउ धरिउ।
मुणिदंसणि दुक्कियभंसणि[22] नियजम्मंतरु संभरिउ[23] ॥६॥

[६]

तपःश्रीसे भूषित अंग, गुणोंसे वेष्टित, राग व (पंद्रह प्रकारके) प्रमादका नाश करनेवाले, क्षम-दमशील, नियम और व्रतोंरूपी शरीरवाले, तथा इंद्रियोंके दर्पको गलित करनेवाले उन सागरचंद्र मुनिको बारह प्रकारका तपश्चरण करते हुए, तथा ऊपर-ऊपरके गुणस्थानोंका अनुसरण (आरोहण) करते हुए चारण (ऋद्धि) आदि सभी ऋद्धियाँ उत्पन्न हो गयीं। पश्चात् किसी समय स्वाश्रय सुख (अर्थात् आत्म-सुख) में लीन रहते हुए वीतशोक नगरीमें पधारे। मध्याह्नमें उन्होंने चर्याके लिए नगरमें प्रवेश किया, और विस्मितचित्त लोगोंने उन्हें ऐसे देखा मानो पहलेसे ही मुनिके उत्तम वेशके प्रति आदरयुक्त होकर बालदिवाकर ही तप करता हो ; (अन्यथा) अन्य किसका ऐसा निर्मल प्रताप हो सकता है, जिसने अपनी दीप्तिसे नभस्तलको पिंगलवर्ण कर दिया हो ? राजकुलके निकट ही एक घरसे एक वणिक्पतिने शिरसा प्रणाम करके, ठहरिए ! ऐसा निवेदन करते हुए, विधिपूर्वक उन दिगंबरको पारणा करायी। इस आहारदान (के प्रभाव) से रत्नोंकी वर्षाने श्रेष्ठीके घरको पूर दिया। उस आश्चर्यको देखकर वैभवसंपन्न लोगोंके द्वारा किया हुआ बड़ा भारी कोलाहल उठा। उस कलकलको सुनकर, मनमें आश्चर्यचकित होकर शिवकुमार अपने प्रासादपर चढ़ गया। तब किसी एकने (राजकुमार से) वृत्तांत कहा, और श्रेष्ठीके घरसे मुनि जाते हुए दिखाई दिये। 'इन मुनिवरको मैंने चिरकाल पूर्व देखा है', इसप्रकार कुमार मनमें

[६] १. क ख °चरण। २. क ख ङ °ण्णउं। ३. क ङ चारणाइं°। ४. क ङ °ण्णउं। ५. घ °रिहि। ६. ख ग ण्णहो; घ °ण्हो। ७. ग °चित्तहि। ८. क ङ अण्णहि; घ अण्णहि। ९. प्रतियोंमें 'कहि'। १०. ख °इं। ११. क घ °हि; ख ग सेट्ठिहि। १२. ख ग सु°। १३. घ °ण्णउं। १४. घ अण्णिक्कें। १५. क °इं १६. घ इंतु। १७. क घ ङ इह। १८. ख °विरु; घ °पिरु। १९. ख ग मइ। २०. क ङ एम; घ इमु। २१. क ङ °रि। २२. प्रतियोंमें '°भंसणि'। २३. घ °रिउं।

[७]

दुवई—आयहो लहुउ आसि हउँ[1] बंधउ एहु महंतु थाविउ।
एण वि हुंतएण सुपसाएं[2] मइँ सम्मत्तु पाविउ॥१॥
तउ करिवि सुरालई[3] बे वि हुया पुणु एत्थ[4] जाय फुडु तत्थ चुया।
सुमरंतु[5] भवंतरु[6] मुच्छगओ हा हा रउ उट्ठिउ गरुउ तओ।
धाहाविउ बालंतेउरिहिं[7] भत्तारदुक्खसोयाउरिहिं[8]।
रोवंति मंति-सामंतसुया हियउल्लउ फुट्टिवि[8] किं नं मुया[9]।
चमराणिल-चंदणसिंचियउ[10] कह-कह व दुक्खउम्मुच्छियउ[11]।
जम्मंतरसुमरणु कहिउ तहो दिढधम्महो मंतितणुब्भवहो।
निव्विण्णु[12] मित्तु हउँ इह भवहो संदरसिय[14]-जरमरणुब्भवहो।
चक्केसरु महु वयणें[15] भणहि[16] तउ लेंतहो महु म विग्घु करहि[17]।
गउ रायत्थाणे[18] पइसरेवि[19] पहु पणविवि जंपइ वइसरेवि[20]।
तउ तणउँ[21] देव पइँ[22] विण्णवइ[23] भवकालसप्पु जगु परिहवइ।
इंदियफडालु चउगइवयणु मिच्छत्तमोहविसरिसनयणु।
रइदाढु[24] विसयजीहातरलु उब्भरियसुहासुहफलगरलु।

विस्मित हुआ, तथा मुनिदर्शनके कारण (पूर्वकृत) अशुभकर्मके क्षय होनेसे उसने अपने जन्मान्तर (अर्थात् पूर्वजन्म) को स्मरण किया ॥६॥

[७]

मैं इसका छोटा भाई था, यह मेरा बड़ा। इसीके होनेवाले सुप्रसादसे मैंने सम्यक्त्व पाया था। तप करके हम दोनों स्वर्गमें देव हुए, फिर वहाँसे च्युत होकर यहाँ उत्पन्न हुए, इसप्रकार भवांतरको स्मरण करते ही वह मूर्च्छित हो गया। तब बड़ा भारी हाहाकार मचा। पतिके दुःखसे शोकातुर होकर कुमारका अन्तःपुर धाड़ देने लगा। मंत्रियों व सामंतोंकी पुत्रियाँ इस प्रकार रोने लगीं—हाय! हम लोग हृदय फटकर मर क्यों नहीं गयीं, चंवरकी वायु और चंदनसे सींचनेपर वह किसी किसी तरह कष्टपूर्वक उन्मूर्छित हुआ। उसने मंत्रीपुत्र दृढ़धर्मको अपना जन्मान्तर स्मरण होना बतलाया (और कहा)—'हे मित्र! मैं जरा-मरण युक्त इस संसारसे उदासीन हो गया हूँ, चक्रेश्वरको मेरे वचनसे कहना कि तप लेनेमें मुझे विघ्न न करें।' वह गया, राजसभामें प्रविष्ट होकर प्रभुको प्रणाम करके बैठा, और कहने लगा—हे देव! आपका पुत्र आपसे विज्ञापना करता है कि यह भव (अर्थात् पुनः पुनः जन्ममरण) रूपी काला सांप सारे लोकको पराभूत करता है; जो कि इंद्रियोंरूपी फणा, चतुर्गतिरूपी मुख, मिथ्यात्व-मोहरूपी विसदृशनेत्र, रतिरूपी दाढ़, तथा विषयभोगरूपी चंचल जिह्वासे युक्त है, और शुभाशुभ कर्मफलरूपी गरलसे भरा हुआ है। उसका क्षय करनेवाला तपरूपी मंत्राक्षर (मंत्र) जिन भगवान्‌रूपी गरुड़-

[७] १. ख ग क हउ। २. क घ क सप°। ३. ख ग °लय। ४. क एत्थु। ५. क सम°। ६. क घ क °तर। ७. उरेण; ख ग °उरेहिं। ८. घ फुल्लिवि। ९. क क किण्ण; ख ग घ किन्न। १०. क °यउं ११. ख °ओमु°। १२. प्रतियोंमें णिव्वि°। १३. क क हउ। १४. क घ क संदरि°। १५. क ग °णे। १६. क क °हीं। १७. क घ क जणहो। १८. घ क °त्थाणु। १९. क घ क पई°। २०. क घ क °सरवी। २१. क घ क °उं। २२. क ख ग पइ। २३. घ विण्ण°। २४. ख ग विसइ°।

घत्ता—तहो खयकरु तवमंतक्खरु जिणवरगरुडसमुद्धरिउ।
मइँ लेवउ अणुचेट्ठेवउ बारहविहु बहुगुणभरिउ ॥७॥

[८]

दुवई—तं [1]तवगहणसद्दु[2] आयण्णवि[3] पुत्तहो पुत्तवच्छलो।
विहडप्फडु नरिंदु गउ तित्तहिँ[4] [5]वड्ढियदुहमहानलो[6] ॥१॥

रसणखलंतु कणिरपयनेउरु वणमालालंकिउ अंतेउरु।
सेयजलोल्लिय नयणाणंदिरु पत्तु तुरंतु कुमारहो मंदिरु।
आहासइ चक्केसरु तणुरुहँ[7] कवणु कालु पावज्जहे[8] किर तुह[9]।
अखयनिहाणं[10]-रयणरिद्धिल्लि रायलच्छि[11] तुहुँ[12] भुंजहि[13] भल्लि।
भणइ कुमारु ताय जइ[14] सुंदर ता कहिँ[15] चक्कवट्टि-हरि-हलहर।
सयलकाल-नव-नव-वरइत्ति वसुमइ[16] वेस व केण न भुत्ति।
तो भुंजमि जइ आउ न तुट्टइ[17] दुत्तरवाहितरंगिणि खुट्टइ[17]।
तो भुंजमि जइ [18]जर नउ[18] वंकइ कालभुयंगदाढ[19] नउ डंकइ।
अह कल्लइं[20] विणासु जइ रज्जहो तो वरि अज्ज जामि[21] नियकज्जहो।

ने उद्धृत किया है। वह मेरे द्वारा लेने और पालन करने योग्य है। वह (तप) बारह प्रकारका है और बहुत गुणोंसे भरा है ॥७॥

[८]

पुत्रके तपग्रहणकी बात सुनकर वह पुत्रवत्सल राजा वहीं विह्वल हो गया और उसे दुःखकी महाज्वाला बढ़ गयी। करधनीको स्खलित करती हुईं, पगनूपुरोंसे रणरण करती हुईं, और स्वेदजलसे आर्द्र रानियां (कुमारकी माताएँ) वनमालासे अलंकृत होकर अर्थात् वनमाला देवीको आगे करके तुरंत कुमारके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले आवासमें पहुँची। चक्रेश्वरने कहा—बेटा! तेरा यह प्रव्रज्या लेनेका अभी कौन-सा काल है? तू अक्षय धन तथा रत्नऋद्धिसे युक्त इस भली (अर्थात् सुंदर व सुखदायक) राज्यलक्ष्मीको भोग। तब कुमार कहने लगा—हे तात! यदि यह सुंदर है तो फिर (इसे भोगनेवाले) चक्रवर्ती, वासुदेव और बलराम आज कहाँ हैं? सदा नये नये वरोंको वरण करनेवाली यह वसुमती वेश्याके समान किस-किसके द्वारा नहीं भोगी गयी। मैं तब इसे भोगूगां यदि (कभी) आयु न टूटे, और यह दुस्तर व्याधि-तरंगिणी खंडित हो जाये, (अथवा) मैं तब इसका भोग करूँगा यदि जरा शरीर को क्षीण न करे और काल-भुजंगकी दाढ़ इसे कभी डंसे नहीं। परंतु यदि कल राज्यका विनाश होना हो, तो मैं आज ही अपने (मोक्ष साधनके) कार्यके लिए

[८] १. घ मव°। २. ख ग °गहणु°। ३. क ङ °ण्णिवि; घ °ण्णेवि। ४. ख ग °हो। ५. क ख ङ वट्टिय। ६. क ङ °णलो। ७. क ङ तणरुह; ख ग तणुरुहु। ८. क पवज्जहि; ग पव्वज्जहे; घ पावज्जहि; ङ पवज्जहिं। ९. ख ग तुहु। १०. ख ग °णु। ११. क घ ङ °रिद्धि। १२. ख ग तुहु। १३. क °हिं १४. ख ग जय। १५. ख ग कहि। १६. °मई। १७. क °इं। १८. क ङ जरउ ण। १९. क ङ °डाढ। २०. घ °इं। २१. क घ ङ ठामि।

घत्ता—अजरामरे सासयपुरवरे ताय करेव्वउ[22] मइँ[23] निलउ[24] ।
चयणिज्जहे[25] करमि अविज्जहे[26] अविलंबेण[27] वि तहे[28] विलउ ।।८।।

[९]

दुवई—निच्छउ मुणेवि भणइ चक्केसरु हियवउ मज्झु डज्झए ।
निग्गहु[1] इंदियाण तउ तं[2] किर[3] सुय निलए वि सिज्झए ।।१।।

जइ[4] रायदोस न[5] वसंति मणे तउ[6] लेवि करेव्वउ काइँ[7] वणे ।
अह रइउ कसायहिँ[8] हियउ[9] जहिं तवचरणु[10] सज्झु किर काइँ तहिं ।
तो वरि अब्भत्थण महु करहि घरि[11] संठिउ नियमवयइँ[12] धरहि ।
पडिवज्जिउ कुमरें पिउ[13] वयणु गउ नियनिय-निलयहो सव्वु[14] जणु ।
तद्दिवसहो लग्गेवि रायसुओ घरसंठिओ वि घरकज्जचुओ ।
मणवयणकायकयसंवरणु[15] नवविहवरबंभचेरधरणु ।
पासट्ठिओ[16] वि तरुणीनियरु मण्णइ[17] वहिपुंजिउ व्व कयरु ।
दिढधम्मु[18] मंतिसुउ आढविउ आहारु आरणालग्घविउ[19] ।
नउ कारिउ न किउ न इच्छियउ सावयघरभिक्ख[20]-पडिच्छियउ ।

जाता हूं । हे तात ! मुझे अजर अमर व शाश्वत और श्रेष्ठ, ऐसे मोक्षनगर में निवास बनाना है, और मैं त्यजनीय अविद्यारूपी (भ्रान्त, असत्य एवं अशाश्वत) राजलक्ष्मीका शीघ्र ही त्याग करूंगा ।। ८ ।।

[९]

(पुत्रके) निश्चयको जानकर चक्रेश्वरने कहा—पुत्र (दुःखसे) मेरा हृदय जल रहा है, तथापि मुझे यह कहना है कि इंद्रियोंका निग्रह ही तप है और वह घरमें भी सिद्ध हो सकता है । यदि मनमें राग-द्वेष निवास नहीं करते तो तप लेकर वनमें ही क्या करोगे ? और यदि हृदय काम-क्रोधादि कषायोंसे रचित है, तो फिर वहाँ तपश्चरण कैसे साधा जा सकेगा ? तो इसलिए मेरी यह अभ्यर्थना मानो कि घरमें रहते हुए ही नियम और व्रतोंको धारण करो । कुमारने पिताके वचन स्वीकार किये और सब लोग अपने-अपने निवासको चले गये । उस दिनसे लगाकर वह राजपुत्र घरमें रहता हुआ भी घरके कार्योंसे अलग रहने लगा । उसने मन-वचन-कायका संवरण कर लिया और नवविध ब्रह्मचर्य धारण कर लिया । पासमें स्थित तरुणी-समूहको वह रूप बनाये हुए व्याधिपुंजके समान मानने लगा । उसने मंत्रीपुत्र दृढ़धर्मसे सम्मान-पूर्वक कहा कि मुझे कांजीका ही आहार दिया जाये । न (तैयार) कराया हुआ, न स्वयं किया हुआ, न अपनी इच्छा (अनुमोदन) से बनवाया हुआ, ऐसा श्रावकोंके घरसे भिक्षामें

२२. ख ग करेवउ । २३. क ख ग घ मइ । २४. क ङ °उं । २५. क वयणिज्जहिं; घ वयणिज्जहि; ङ चयणिज्जहि । २६. क घ ङ °ज्जहि । २७. प्रतियोंमें अव° । २८. क ङ तहिं; घ तहि ।

[९] १. क घ ङ °इं । २. क °हुं । ३. क ङ कि किर । ४. ख ग जय । ५. क ङ णिवसंति । ६. क वउ । ७. क ङ काइ । ८. ख ग °यहि । ९. क °उं । १०. क घ ङ °यरणु° । ११. क घ ङ घर । १२. ख ग °इ । १३. क घ ङ पिय । १४. क सव्व । १५. ख ग °काइकयसंव° । १६. क ङ °ट्ठिउं । १७. क ङ °इं; घ मण्णइं । १८. क ङ °धम्म । १९. ख ग आरनाल° । २०. क ङ °धरि°; घ °घरु° ।

एक्कंतरि[21] छट्ठट्ठमए दिणे आणहि[22] महु पारणकज्जु[23] मुणि।
जं एम कुमारें तहो कहिउ सुविसुद्धभत्तु[24] कंजियसहिउ।
आणइ[25] परघरहो भिक्खभमइ[26] निवनंदणु पाणिपत्ते जिमइ[27]।
तहो तिव्वमहाव्वयपहरणहो नासंति विसय उवसममणहो।
पहरणे[28] ठिउ लोहु गइंदु[29] मउ[30] राउ वि दिण संज्झहे[31] सरणु[32] गउ।
भोउ वि विलग्गु मरुभोयणहिं[33] अंजणु सीमंतिणि लोयणहिं[34]।

घत्ता—वयनिम्मलु अज्जियतवफलु वरिससहसचउसट्ठि थिउ।
जिणे[35] दिट्ठउ आगमे[36] सिट्ठउ[37] आउसंते सण्णासु[38] किउ ॥९॥

[१०]

दुवई—एरिसतवफलेण बंभोत्तरे[1] तणुकियसुरहिवाउ सो।
एहु[2] सो विज्जुमालि[3] हुउ सुवरु दससायरथिराउसो ॥१॥
आएं विणयगुणेहिं अमुक्कें सुहु[4] भुंजइ[5] सहुं[6] देविचउक्कें।
एत्तहे सायरचंदु समाहिए हुउ मरेवि सुरु तहिं जि[7] अबाहिए।

स्वीकृत आहार मेरी पारणाके लिए छट्ठे-आठवें दिन एकान्तरसे ला देना, ऐसा जान लो। जब कुमारने उसको ऐसा कहा तो वह दूसरे-दूसरे घरोंसे भिक्षा-भ्रमण करके कांजी सहित विशुद्ध भात उसे लाकर देने लगा और राजकुमार उसे अपने करपात्रमें ही जीमने लगा। महाव्रतों-रूपी तीव्र शस्त्रको धारण करनेवाले उस उपशांत-मन राजकुमारके विषय (विषय वासना) नष्ट हो गये, प्रहार पड़नेसे लोभरूपी गजेंद्र मारा गया, और राग भी दिनके समान (सान्ध्य अरुणिमाके रूपमें) सन्ध्याकी शरणमें चला गया अर्थात् अस्तंगत हो गया। उसका भोग (भोगाभिलाष) मरुत् भोजी सर्पोंमें भोग अर्थात् फणाटोपके रूपमें जा लगा, और अंजन अर्थात् पापरूपी कल्मष सीमन्तिनियोंके नेत्रोंमें (काजलके रूपमें) लग गया। तपका फल अर्जन करके वह चौंसठ हज़ार वर्षों तक जीवित रहा और आयुष्यके अन्तमें जिन भगवान्के द्वारा उपदिष्ट एवं आगममें निर्दिष्ट संन्यासमरण किया ॥ ९ ॥

[१०]

ऐसा वह (शिवकुमार) तपके फलसे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अपने शरीरकी गंधसे वायुको सुगंधित करनेवाला, दश सागरकी स्थिर आयुवाला विद्युन्माली नामका श्रेष्ठ देव हुआ है। यह कभी भी विनयगुणको न छोड़नेवाली चार देवियोंके साथ सुख भोगता है। इधर सागरचंद्र मुनि भी निर्बाध (अखंड) समाधिपूर्वक मरकर उसी स्वर्गमें देव हुआ है। वह इंद्रके समान

२१. ग एकं°। २२. क घ क °हिं। २३. ख ग कज्ज। २१. क क सुविसुद्धु°। २५. क घ क °इं। २६. क °समइं; ख ग °भमइ। २७. ख ग °इं। २८. क क °रण। २९. प्रतियोंमें गइंदि। ३०. क मउं। ३१. ख ग सज्झहे; क घ क संज्झहि। ३२. ख ग °ण। ३३. क घ क °णिहिं; ख ग °णहि। ३४. ख ग सीमंतणि°; क क °लोयणिहि। ३५. क घ क जिण। ३६. क क आयमि। ३७. °उं। ३८. घ सन्नासु।

[१०] १. क घ क तणुकय°। २. क घ क इहु। ३. ख ग विज्ज°। ४. घ सुहुं। ५. ख ग °इं। ६. ख ग सहु। ७. ख ग जे।

इंदसमाणु पडिंदु पसंसिउ करइ विलासु सुरेहिँ नमंसिउ।
इय तवफलु महंतु इय तणुपह अक्खिय विज्जुमालि[8] देवहो कह।
एवहिँ[9] सत्तमदियहे[10] चएप्पिणु चरमसरीरु मणुउ होएप्पिणु[11]।
तउ लेसइ विज्जा-बलथामें[12] सहुँ चोरेण[13] विज्जुचरनामें[14]।
तहिँ अवसरि पणविवि निम्माएं वड्ढमाणु जिणु पुच्छिउ राएं।
देविचउक्कहो[15] विहियतवंतरु कहहि भडारा पुव्वभवंतरु।
भणइ[16] जिणंदु[17] भरहे जणकिण्णी[18] चंपानयरि अत्थि वित्थिण्णी[19]।
इब्भसेट्ठि तहिँ वसइ सुचित्तउ[20] नामें सूरसेणु धणइत्तउ।
तहो जयभद्द-सुभद्दविसत्थी धारिणि-जसमइ कंत-चउत्थी।

घत्ता—सुहनक्खउ तिक्खकडक्खउ सज्जियउच्छु धणुद्धरहो।
विंधेवए भुअणु जिणेवए[21] भल्लिचउक्कउ रइवरहो ॥१०॥

[११]

दुवई—तेहिँ समाणु सुक्खु[1] भुंजंतउ सेट्ठि सकम्मभाविणं।
वाहिसएहिँ[2] घत्थु हुउ निप्पहु अज्जियपुव्वपाविणं ॥१॥
तहो जाउ जलोयरु कासु सासु खयरोउ भयंदरु जणियतासु।

प्रशंसित प्रतींद्र हुआ है और देवताओंसे नमस्कृत होता हुआ वहाँ विलास करता है। यह तपका महत् फल और इसप्रकार शरीर-कांति संबंधी विद्युन्माली देवकी कथा कह दी गयी। अब यहाँसे सातवें दिन च्युत होकर, अन्तिमशरीरी मनुष्य होकर यह विद्या एवं बलके धाम विद्युत्चर नामक चोरके साथ तप लेगा। उस अवसरपर प्रणाम करके (व्यवहार) निपुण श्रेणिक राजाने वर्द्धमान जिनसे पूछा—'हे भट्टारक! इन चारों देवियोंका विशेष तपानुष्ठानयुक्त पूर्व-भव कहिए।' (तब) जिनेंद्र कहने लगे—भारतदेशमें जनसंकुल और विस्तीर्ण चंपा नामकी नगरी थी। वहाँ एक बहुत धनवान समृद्ध व स्वच्छ चित्तवाला सूर्यसेन नामका श्रेष्ठी रहता था। उसकी जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी व चौथी यशोमती नामकी विश्वस्त पत्नियाँ थीं। वे बहुत सुंदर नखोंवाली तथा कामदेवरूपी धनुर्द्धरके पैने किये हुए बाणके समान तीक्ष्ण कटाक्षोंवाली थीं, जो मानो उस रतिपतिकी सारे भुवनको बींधकर जीतनेवाली चार बरछियाँ ही थीं ॥ १० ॥

[११]

उनके साथ सुख भोगता हुआ श्रेष्ठी अपने कर्मोंके वैसे भाव अर्थात् वैसी कुछ परिणतिसे पूर्वोपार्जित पापके कारण सैकड़ों व्याधियोंसे ग्रस्त होकर कांतिहीन और अदर्शनीय हो गया। उसके जलोदर, काश, श्वास और त्रासोत्पादक क्षयरोग व भंगदर हो गया। अस्थिवात उसके

८. ख ग विज्ज°। ९. क घ क °हिं। १०. क घ °हि। ११. ख ग °विणु। १२. ख ग बलु°। १३. क क चोरें। १४. क क विज्जुच्चर° १५. क देव°। १६. क घ क °इं। १७. क घ क जिणिंदु। १८. क जिण°; घ °किन्नी। १९. घ °न्नी। २०. क क सवि; घ सचि°। २१. क °वइं; घ क °वइ।

[११] १. क क सुक्ख। २. क वाहिं°।

तणु मोडइ फोडइ अट्ठिवाउ　　विसरिसमणु हुउ विवरीयधाउ ।
नियकंतहँ[3] कंति नियंतु रुट्ठु　　अणुदिणु ईसालुउ जाउ सुट्ठु ।
निवसु वि तं नत्थि न[4] जित्थु पाउ　　अच्छइ अ दिंतु गुरुलट्ठिघाउ ।
खरफरुसवयणु[5] बोल्लइ सकूरु　　परपुरिसचंदु[6] जइ अह व[7] सूरु ।
घरु पंगणु[8] कोट्टु[9] निएहु पासु　　तो तुम्ह सहुट्ठउ[10] लुणमि नासु ।
जइ जाइ कह व बाहिरे स खुद्दु　　उवरए[11] छुहेवि[12] तालउ समुद्दु ।
दिढु देविणु रक्खणु[13] विद्धपुरिसु　　आइउ[14] पेक्खंतु विमुद्दसरिसु ।
निययाहिण्हाणु[15] पुच्छइ सकोहु　　किं कोवि न आयउ[16] जारु गेहु ।
बोल्लंति परोप्परु दुक्खियाउ　　न मरइ हयासु इहु[17] दुट्ठभाउ ।
जें[18] नियहु जंत-आवंतयाइँ　　पिय[19]-मायबंधुसयणिज्जयाइँ ।

घत्ता—इय संतए काले वहंतए पउसियदइयहँ[20] देंतु भउ ।
रइथावणु मिहुणसुहावणु मासु वसंतु[21] पहुत्तु तउ[21] ॥११॥

शरीरको मोड़ने व फोड़ने लगा। उसका मन विसदृश अर्थात् प्रतिकूल हो गया और समस्त वात-पित्तादि धातुएँ विकृत हो गयीं। अपनी पत्नियोंकी कांति देखकर वह रुष्ट होने लगा और प्रतिदिन अधिकाधिक ईर्ष्यालु होता गया। 'ऐसा कोई निवास नहीं है जहाँ पाप न हो, (ऐसा सोचते हुए) वह उनपर लाठीसे भारी आघात करता हुआ रहने लगा। वह बड़ी क्रूरतासे तीखे और कठोर बचन बोलने लगा (कि), परपुरुष चाहे वह चंद्र हो अथवा सूर्य, यदि वह घरके प्रांगणमें, या दीवारके पास (कहीं भी) तुम लोगोंके साथ देख लिया तो तुम लोगोंका ओष्ठसहित नाक काट लूँगा। वह क्षुद्र यदि किसी कारणसे बाहर जाता था, तो उन लोगोंको मुद्रांकित तालेमें बंद करके निवृत्त होता। उसने एक वृद्ध पुरुषको उनका कड़ा रक्षक नियुक्त कर दिया। (इस पर भी) जब भी वह लौटकर आता तो इस प्रकार देखता हुआ कि मानो तालोंकी मुद्रा तोड़ दी गयी हो, तथा अपनी शपथ देकर क्रोधपूर्वक पूछता—क्या कोई जार तो घरमें नहीं आया ? वे दुःखित होकर परस्परमें कहतीं—यह दुष्टभावोंवाला हताश (दुर्जन) मरता भी क्यों नहीं, जो आने जानेवाले पितृ व मातृबन्धुओं (चाचा व मामा) को भी शयनीयोंके रूपमें देखता है अर्थात् इन पितृजनोंके साथ भी हम लोगोंके द्वारा संभोग किये जानेकी नीच शंका करता है। इस प्रकार रहते हुए, व काल व्यतीत होते हुए प्रोषित-पतिकाओंको भय देता हुआ, रतिको स्थापित करनेवाला (अर्थात् रतिभावको बढ़ानेवाला) व मिथुनोंके लिए सुखकर वसंत मास आ गया ॥ ११ ॥

---

३. क तिय°। ४. प्रतियोंमें 'ण'। ५. क खरु°। ६. क घ क °पुरिसु°। ७. प्रतियोंमें 'कहव'। ८. क घ क घरपंगणि। ९. ख ग कोट्टु। १०. क घ क सउ°। ११. क घ क उब्वरइ। १२. क छुहुवि। १३. क क °ण। १४. क क आयउ। १५. क घ क °हिहाणु। १६. क घ क जार गोहु। १७. क घ क इहु। १८. क जे। १९. क घ क पिउ°। २०. ख ग घ पवसिय°। २१. क घ क पहुत्तउ।

[१२]

दुवई—दहमुहहरियसीयविरहाउररामालोइयंतओ ।
मारुयचुंबियासु हणुवंतु[1] व विलसइ नवबसंतओ ॥१॥

दिणि दिणि रयणिमाणु जिह[2] खिज्जइ दूरपियाण निद्द तिह[3] खिज्जइ[4] ।
दिवि दिवि दिवसपहरु जिह वड्ढइ[5] कामुयाण तिह[6] रइरसु वड्ढइ[7] ।
दिवि दिवि जिह[8] चूयउ मउरिज्जइ माणिणिमाणहो तिह[9] मउ रिज्जइ[10] ।
कलकोइलकलयलु जिह[11] झुम्मइ[12] तिह[13] पंथिय करंति घरे झुम्मइ[14] ।
सलिलु निवाणहिँ जिह[13] परिहिज्जइ[15] तिह[11] भूसणु मिहुणहिँ परिहिज्जइ[11] ।
पाडलियहिं[16] जिह[17] भमरु[18] पहावइ पियसंगरि[19] तिह[13] होइ पहावइ[12] ।
जिह[19] पियसंगु विरहु निद्धाडइ कुसुमसमिद्ध[20] तेम निद्धाडइ[12] ।
मालइकुसुमु[21] भमरु[22] जिह[1] वज्जइ[23] घरे घरे गहिरु[24] तूरु तिह[25] वज्जइ ।
वियसियकुसुमु[21] जाउ अइमुत्तउ[26] घुम्मइ[27] कामिणियणु अइ-मुत्तउ[21] ।

[१२]

रावणके द्वारा हरी गयी सीता तथा विरहातुर कामिनियोंके द्वारा निंदा किया जाता हुआ, तथा मारुत अर्थात् दक्षिण पवनके द्वारा दिशाओं (रूपी वधुओं) के मुखको चूमनेवाला बसंत, रावणके द्वारा हरी गयी सीताके विरहमें आतुर रामके द्वारा (सीताका कुशल समाचार लानेके उपरांत आशंसापूर्वक) देखे जाते हुए एवं मारुत अर्थात् अपने पिता पवनंजय के द्वारा (स्नेहपूर्वक) चुंबित मुख हनुमानके समान विलास करने लगा ॥

प्रति दिन जैसे-जैसे रात्रिका मान घटने लगा, वैसे-वैसे जिनके प्रिय दूर हैं, ऐसी कामिनियोंकी निद्रा भी क्षीण होने लगी। प्रतिदिन जैसे-जैसे दिवस-प्रहर बढ़ने लगा वैसे-वैसे कामियोंका रतिरस भी बढ़ने लगा। प्रतिदिन जैसे-जैसे आम्रपर बौर आने लगा, वैसे-वैसे मानिनियोंका मान-मद मुकुलित अर्थात् क्षीण होने लगा। जैसे-जैसे कलकंठी कोकिलाका कलरव सुनाई देने लगा, वैसे-वैसे पथिक घरोंकी ओर मति (मन) करने लगे। जैसे-जैसे गढ़ोंमें जल क्षीण होने लगा, वैसे-वैसे मिथुन आभूषण कम करने लगे। जिसप्रकार भ्रमर पाटल पुष्पोंकी ओर दौड़ने लगता है, उसीप्रकार प्रभावती अर्थात् सुंदरी नायिकाएँ अपने प्रियपतियोंके संग होने लगीं। जिसप्रकार प्रियका संगम विरहको बाहर निकाल देता अर्थात् नष्ट कर देता है, उसीप्रकार कुसुमोंकी समृद्धि बाहर निकलने अर्थात् प्रकट होने लगी। जिसप्रकार भ्रमर मालती पुष्पसे भयभीत (त्रस्त, निराश) हो, गुंजार करने लगता है, उसीप्रकार घर-घरमें गंभीर तूर बजने लगा। अतिमुक्तकका फूल जैसे खिलता है, वैसे ही कामिनीजन अत्यन्त

[१२] १. ख ग घ हणवंतु। २. ख जहं; ग घ जिहं। ३. क ङ तह; घ तहं। ४. क घ ङ °इं। ५. क घ ङ वट्टइ। ६. क घ तह; ङ तहं। ७. क ङ वट्टइ। ८. क घ ङ जह। ९. घ तिहं। १०. ख ग °खिज्जइ।११. ख ग घ °हं। १२. क घ ङ °इं। १३. क घ ङ °हं। १४. क ङ °इं। १५. क घ °इं। १६. क °हि। १७. घ जिहं। १८. क घ ङ महुरु। १९. घ °संगिरि। २०. ख ग कुसम°। २१. ख ग °कुसमु। २२. क भरु। २३. क वज्जइं; ङ वज्जइ। २४. क घ ङ गहिर; ख ग गहेरु। २५. ख ग तहिं; घ तिहं। २६. क ख ग ङ °मत्तउ। २७. क घ ङ °इं।

दरिसिउ कुसुमनियरु[27] वेयल्लें[28] पहिएं[29] घरु गम्मइ वेयल्लें[30]।
नील पलास रत्त हुय किंसुय भंतचित्तु जणु[31] जाणइ[32] किं सुय।
देवउलहिं जणु पुज्ज समारइ वट्टइ मिहुणहँ[33] हियइ समा रइ[34]।
तुरयहिँ[35] अल्लहज्जि नच्चिज्जइ नववसंतु तरुणिहिं नच्चिज्जइ।
दावानलु[36] पुलिंदजणु लायइ[37] सरधोरणि अणंगु गुणे लायइ।
मंदु मंदु[38] मलयानिलु[39] वायइ[40] महुरसद्दु जणु वल्लइ[41] वायइ[42]।
अहे[43] तहिं[44] सियपंचमिहिं[45] वसंतहो नंदणवणे देवउले वसंतहो।
फणमणितेओहामियजलणहो[46] करइ जत्त नायहो जणु जलणहो।

घत्ता—नायरजणु[47] निवइ सपरियणु पयडीकयनियनियविहउ।
फणिजक्खहो नयरीरक्खहो जत्तकज्जे उज्जाणे गउ ॥१२॥

[१३]

दुवई—ताम पियाचउक्कु रविसेणें विविहाहरणभूसिओ।
जंपाणाहिरूढु जत्तुच्छवि रक्खणसहिउ पेसिओ ॥१॥

गयउ ताउ अहिभवणु तुरंतिउ तणुकंतिए वणु उज्जोयंतिउ।
पुज्जवि[1] पणविवि फणसच्छायहो हियवदुक्खु विण्णप्पइ[2] नायहो।

स्वच्छन्द होकर घूमने लगीं (देखिए परिशिष्ट)। विचकिल्लके वृक्षने जैसे कुसुमसमूहको दर्शाया, वैसे ही पथिक वेगपूर्वक घर जाने लगे। पलाश नीले (हरित) हो गये, और किंशुक-लाल, परंतु भ्रान्तचित्त (कामी) को (हरित दलोंके ऊपर लाल-लाल पुष्पोंको देखकर) लगा कि कहीं ये शुक पक्षी तो नहीं हैं। लोग देवकुलोंमें पूजा समारने लगे, और मिथुनोंके हृदयमें समान भावसे रति उत्पन्न हो गयी। जिसप्रकार गीले चनोंको (देखकर) घोड़े नाचने लगते हैं, उसीप्रकार नववसंतको (देखकर) तरुणियाँ नाचने लगीं। पुलिंद (भील) दावानल लगाने लगे और कामदेव धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ाने लगा। मंद-मंद मलयपवन बहने लगा और लोग मधुर स्वरसे वीणा (वल्लकी) बजाने लगे। अथानन्तर वहीं वसंतकी शुक्लपंचमीके दिन, नंदनवनके देवालयमें रहनेवाले, अपने फणमणिके तेजसे अग्निके तेजको तिरस्कृत करनेवाले, ज्वलन नामक नागदेवको यात्राके लिए लोग चले। नागरिकजन, तथा अपने परिजनों-सहित राजा, अपने-अपने वैभवको प्रगट करते हुए नगरीके रक्षक नाग-यक्षकी यात्राके लिए उद्यानमें गये ॥१२॥

[१३]

तब रविसेनने अपनी चारों प्रियाओंको विविधाभरणोंसे भूषित करके पालकीमें बैठाकर रक्षकके साथ यात्रोत्सवमें भेजा। वे अपने शरीरकी कांतिसे वनको प्रकाशित करती हुईं, तुरंत नागभवनको गयीं। फणशोभासे युक्त नागकी पूजा, प्रणाम करके, उसको अपने हृदयका दुःख

२८. क घ क वेइल्लें। २९. क घ क °यं। ३०. ख ग वेइल्लें। ३१. क क जाणइ, घ जाणइं। ३२. क घ क अणु। ३३. क ख ग णहु; घ क णहुं। ३४. क क रइं। ३५. ख ग °यहि। ३६. क ख ग क °णलु। ३७. क क लावइ; ख ग घ लायइं। ३८. ख ग मंद मंद। ३९. क क °णिलु; ख ग °नलु;। ४०. ग घ °इं। ४१. क क वु°। ४२. घ °इं। ४३. क क अहु। ४४. क ख ग तहि। ४५. क घ क °मिहि। ४६. क फणिमणि°। ४७. क णारय°।

[१४] १. क घ क पुज्जिवि। २. घ विण्ण°।

परमेसरि[3] एत्तडउ करिज्जहि[4] सूरसेणसमु कंतु म दिज्जहि[5] ।
पुणु नीसरिवि तित्थु[6] आसण्णइँ वासुपुज्जजिणभवणें[8] रवण्णइ[9] ।
अरुहनाहु पणविवि अहिणंदिउ दिट्ठु सुमइ[10] मुणिपुंगमु वंदिउ ।
पुच्छिउ[11] ताहिँ[12] विणासियभवनिसि पुण्णपावफलु[13] कहइ महारिसि ।
माणुसु जं सुहभायणु दीसइ पुण्णपहाउ[14] सव्वु तं सीसइ ।
पावें सल्लतुल्लदुहदुक्खिउ भारक्कंतु पियासिउ भुक्खिउ ।
पुण्णफलाहिलाससमचित्तउ[13] सावयवयइँ लेवि घरु पत्तउ ।
कइवयदिणहिँ[15] वाहिसंतत्तउ[16] सूरसेणु मुउ ववगयसत्तउ[17] ।
पच्छइ कारिवि केवलवाहहो नियदव्वेण भवणु जिणनाहहो ।
सुव्वयपासि चयारि वि कंतउ जायउ अज्जियाउ निक्खंतउ ।

घत्ता—तवसाहिए मरेवि समाहिए विज्जुमालिदेवहो ठियउ ।
बंभोत्तरे सोक्खनिरंतरे एउ चयारि वि हुयउ[18] पियउ ॥१३॥

[१४]

दुवई—इह विज्जवइ नाम विज्जुप्पह इह आइच्चदंसणा[1] ।
तिहिँ मि चउत्थ अवर दीसइ पिय इह भण्णइ[2] सुदंसणा ॥१॥
एत्थंतरे मगहाहिउ जंपइ देव तुम्ह चलणहिँ विण्णप्पइ[3] ।
जेण समाणु एहु लेसइ तउ विज्जुचरहिहाणु[4] जायउ कउ ।

कहने लगीं—हे परमेश्वर ! बस इतना करना कि सूरसेनके समान कांत मत देना । फिर वहाँसे निकलकर वासुपूज्यके आसन्नवर्ती रमणीक जिनमंदिरमें अर्हंत भगवान्‌को प्रणाम करके प्रसन्न हुईं, और वहाँ सुमति नामक मुनिपुंगवको देखकर वंदना की। उन्होंने मुनिसे पूछा और वे भवनिशा अर्थात् मोहान्धकारको नष्ट करनेवाले महर्षि पुण्य-पापका फल कहने लगे—'मनुष्य जो सुखका भाजन दिखाई देता है, वह सब पुण्यका ही प्रभाव कहा जाता है। पापसे जीव शूल लगनेके समान दुःखसे दुःखी, भारसे आक्रांत, एवं प्यासा और भूखा रहता है।' चित्तमें पुण्यफलकी अभिलाषाके साथ वे श्रावकव्रतोंको लेकर घर आ गयीं। कुछ दिनोंमें व्याधि-संतप्त और सत्त्वहीन होकर सूरसेन मर गया। पीछे अपने द्रव्यसे केवलज्ञानके धारक जिनभगवान्‌का मंदिर बनवाकर वे चारों स्त्रियाँ घरसे निकलकर सुव्रता (आर्यिका) के पास आर्यिकाएँ हो गयीं। तप साधकर और समाधिपूर्वक मरकर ये चारों निरन्तर सुखवाले ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें विद्युन्माली देवकी प्रियाएँ बनीं ॥ १३ ॥

[१४]

यह विद्युत्वती है, यह विद्युत्प्रभा, यह आदित्यदर्शना, तथा इनमें यह जो अन्य चौथी प्रिया दिखाई देती है, वह सुदर्शना कहलाती है। इसके अनन्तर मगधपति कहने लगे—देव ! तुम्हारे चरणोंमें यह विज्ञप्ति है कि जिसके साथ यह (विद्युन्माली देव) तप लेगा, वह विद्युच्चर नामका

३. क °सरु । ४. ख ग करेज्जहि । ५. ख ग °हिं । ६. ख तेत्थु; ग तत्थु । ७. क क °ण्णइं; घ °न्नइं । ८. क क वासपुज्ज° । ९. क °ण्णउं; घ °न्नइं; क °ण्णइं । १०. ख ग °इं । ११. क °उं । १२. क ख ग क तेहिं । १३. घ पुन्न° । १४. क क पुण्णु° । १५. क ख ग क कयवय° । १६. क °त्तउं । १७. क क ववगय° । १८. ख ग हुउ ।

[१४] १. क क °संदणा । २. क क °ई; घ °न्नइं । ३. घ विन्न° । ४. ख ग °हिहाणु ।

संपइ[5] कहिँ वट्टइ मूसियजणु | किं कज्जेण पत्तु चोरत्तणु।
भणइ[6] जिणिंदु[7] अत्थि पुहईवरु[8] | मगहदेसि पट्टणु हत्थिणाउरु।
तहिँ परबलघणपलयमहामरु | वसइ नराहिउ नामविसंभरु।
पिय सिरिसेण तासु[9] विक्खाइय | सुउ विज्जुचरु नाम वि याइय।
परिवड्ढंतें[10] तेण कुमारें | पत्तसयलवरविज्जापारें।
इह विण्णाणु[11] महीयले जं जं | परियाणिउ नीसेसु वि तं तं।
अणुदिणु विज्जउ परिसीलंतहो | चोरिय तहो पडिहासिय चित्तहो।
ओसहीए थंभेवि थाणंयरु[12] | निसिहिं पइट्ठु निययतायहो घरु।
जग्गंतो वि राउ किउ सुत्तउ | हरिउ कडउ कंठउ कडिसुत्तउ।
तो पहाए नरवइ चिंताविउ | किं मइँ[13] सिविणउ एहु विभाविउ।
अह व सिविणु जइ ता कहिँ रयणइँ | कंठयकडयपमुहआहरणइँ[14]।
नियनंदणु हक्कारिवि वारिउ | तक्करकम्मु सुयणधिक्कारिउ।
काइँ[15] न पुज्जइ तुह किर रज्जें | चोरिय करहि[16] पुत्त किं कज्जें।
तं निसुणेवि कुमारें वुच्चइ[17] | सावहिरज्जु ताय किम रुच्चइ।
परधणु पुणु अणंतु जं दीसइ | अक्खयनिहि[18] तं महु करें निवसइ।
निच्च निवारिओ वि मण्णइ[19] नउ | पच्चेल्लिउ तायहो रूसवि[20] गउ।

चोर कहाँ उत्पन्न हुआ है ? सम्प्रति वह लोगोंको लूटता हुआ कहाँ विद्यमान है ? और किस कारणसे चोरपनेको प्राप्त हुआ ? तब जिनेंद्र कहने लगे—मगधदेशमें पृथ्वीमें श्रेष्ठ हस्तिनापुर नामका नगर है। वहाँ शत्रुबल रूपी बादलोंके लिए प्रलयकी आँधीके समान विश्वंभर नामका राजा रहता है। उसकी श्रीसेना नामसे विख्यात प्रिया है, उसको विद्युत्चर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़े होते हुए उस कुमारने सकल श्रेष्ठ विद्याओंका पार पा लिया, और इस पृथ्वीतलपर जो-जो कुछ भी विज्ञान है, उस सबको उसने निःशेषरूपसे जान लिया। इसप्रकार प्रतिदिन विद्याओंका अनुशीलन करते हुए, उसके चित्तको चोरी भा गयी। औषधिसे पहरेदारको स्तम्भित करके रात्रिमें अपने ही तातके घरमें प्रविष्ट हो गया। जागते हुए राजाको भी सुप्त (जैसा) करके उसने कंठा, कड़ा और कटिसूत्र हर लिये। तो प्रभात होनेपर राजा चिंतामें पड़ा कि क्या मैंने यह (चोरी) स्वप्नमें देखा ? अथवा यदि स्वप्न है, तो फिर रत्न और कंठा व कटक (कड़ा) प्रमुख आभरण कहाँ गये ? अपने पुत्रको बुलवाकर इस कार्यसे रोका कि यह तस्कर-कर्म सज्जनोंसे निंदित है; तुझे राज्यसे क्या नहीं पूरता ? (तो फिर) हे पुत्र ! तू किस कारणसे चोरी करता है ? यह सुनकर कुमारने कहा—तात ! यह सावधि (सीमित) राज्य मुझे कैसे रुचे ? यह जो अनन्त पर-धन दिखाई देता है, वह समस्त अक्षय-निधि मेरे हाथोंमें बसती है। इसप्रकार नित्य रोकनेपर भी वह नहीं माना, बल्कि तातसे

---

५. ख ग °इं। ६. °इं। ७. ख ग जिणेंदु। ८. क °धरु। ९. क क णाम; घ नाम। १०. क क °वट्टंतें। ११. घ विन्नाणु। १२. प्रतियोंमें 'थाणंतरु'। १३. क ख ग मइ। १४. क घ क °कडय-मउड°। १५. ख ग काइ। १६. ख ग °हि। १७. क क °इं। १८. क क °णिहि। १९. क क °इं; घ मन्नइं। २०. क घ क रूसिवि।

पुरे रायगिहे तरुणजणभामिणि[21] कामलय व्व कामलयकामिणि।
ताए[22] समाणु विलासुबहुंजइ[23] मूसिवि नयरु अत्थु घरे पुंजइ।

घत्ता—विणु निन्तिए तक्करविन्तिए नयरे तुहारए विज्जुचरु।
विलसंतउ विज्जावंतउ वीरपुरिसु अच्छइ पवरु ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए सिवकुमारस्स विज्जुमालीदेवयसंभवो नाम [24]तइओ संधी समत्तो[24] ॥संधि–३॥

रूसकर चला गया। राजगृह नगरमें तरुणोंकी प्यारी, व कामकी लताके समान कामलता नामकी कामिनी है, उसके साथ विलास भोगता है और नगरको लूट-लूटकर धन उसके घरमें लाकर भर देता है। न्याय-नीतिसे रहित तस्करवृत्तिसे, वह विद्यावान्, उत्तम वीरपुरुष विद्युत्चर विलास करता हुआ तुम्हारी नगरीमें रहता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें 'शिवकुमारका विद्युन्माली देव बनना' नामक यह तृतीय संधि समाप्त ॥ संधि—३ ॥

---

२१. ख ग °भाविणि। २२. क क ताइं; घ ताइ। २३. क °भुंजए। २४. क घ क तइया इमा संधी; ख ग तईउ संधी।

संधि—४

[१]

अगुणा न मुणंति गुणं गुणिणो न सहंति परगुणे[1] दट्ठुं ।
वल्लहगुणा वि गुणिणो विरला कई वीरसारिच्छा ।।१।।
का मायरि को पिउ अक्खहि[2] कहिं[3] थिउ गोत्तु कयत्थउ तं कवणु ।
मगहाहिउ घोसइ[4] एमहिं[5] होसइ[6] विज्जुमालि जहिं[7] नररयणु ।
नायनरामरेंदवंदियकमु अक्खइ वड्ढमाणु जिणपुंगमु ।
एत्थु जि रायगेहि तउ पुरवरे देउलसिगलग्गधाराहरे ।
इह जो दीसइ नयणाणंदणु नामें अरुहयासु वणिनंदणु ।
एयहो पियहो[8] विणयगुणधामहो[9] गब्भे हवेसइ जिणमइनामहो[10] ।
तं तित्थयरवयणु निसुणंतउ उट्ठिउ जक्खु एक्कु नच्चंतउ ।
रहसिउ जंपइ किह निव्वण्णमि[11] अप्पउ परकयत्थु हउं मण्णमि[11] ।
जासु गोत्ति विद्धंसियभवकलि उप्पज्जेसइ पच्छिमकेवलि ।
संभवंति तं धण्णउ[12] कुलु पर[13] जहिं अरहंत-सिद्ध-केवलधर ।
घत्ता—पुच्छिज्जइ राएं सविणयवाएं जिणवरिंदु विंभियमणेण[14] ।
आणंदु पवुच्चइ[15] जक्खु पणच्चइ कहहे[16] देव किं कारणेण ।।१।।

---

[१]

गुणहीन लोग गुणको समझते नहीं हैं; और जो गुणी हैं, वे दूसरोंके गुणको देखना भी नहीं सहते । जिन्हें दूसरोंके गुण प्रिय हैं, ऐसे कवि वीरके समान गुणी लोग विरले ही होते हैं ।

तब मगधराजने पूछा—भगवान् बतलाइए उसकी कौन माता है, और कौन पिता ? वे कहाँ हैं ? तथा कौन-सा वह कृतार्थ गोत्र है जहाँ विद्युन्माली नररत्न इस कालमें जन्म लेगा ? तब नागेंद्र, नरेंद्र व अमरेंद्रों-द्वारा वंदित-चरण जिनश्रेष्ठ वर्द्धमान कहने लगे—यहीं तुम्हारे इसी राजगृह नामक उत्तम नगरमें, जहाँ देवकुलोंके शृंगोंसे मेघ टकराते हैं, यहाँ जो नेत्रोंको आनंद देनेवाला अरहदास नामका वणिक्पुत्र दिखाई देता है, इसीकी अत्यन्त विनयशील जिनमती नामकी प्रियाके गर्भमें उत्पन्न होगा । तीर्थंकरके इस वचन (कथन)को सुनकर एक यक्ष नाचता हुआ उठा, और हर्षोत्कंठित होकर कहने लगा—(अपने वंशकी) 'कैसे प्रशंसा करूँ ? मैं स्वयंको परमकृतार्थ मानता हूँ जिसके गोत्रमें भवकलि अर्थात् सांसारिक कालुष्य या कर्ममलसे रहित (अथवा कर्ममलका नाश करनेवाला) अन्तिम केवली उत्पन्न होगा । वह कुल परम धन्य है, जहाँ अरहंत, सिद्ध, व अन्य केवलज्ञानी जन्म लेते हैं ।' तब विस्मित मनसे राजाने जिनवरसे पूछा—हे देव ! कहिए, आनंदपूर्वक बोलता हुआ यह यक्ष किस कारणसे नाच रहा है ? ।। १ ।।

---

[१] १. क परमगुणो; ङ परगुणां । २. ख ग °इ; घ °हिं । ३. क ङ कहि । ४. क °हं । ५. ख ग एतहिं । ६. ख ग °इं । ७. ख ग जहि । ८. क °हिं; घ ङ °हि । ९. क ङ °थामहिं; ख ग °थामहो; घ °धामहिं । १०. क घ °हिं; ङ °हि । ११. घ °न्नमि । १२. घ °न्नउं; ङ °उं । १३. क ङ परु । १४. ख ग विंभय° । १५. क ख ग ङ पव° । १६. क ङ °हिं; घ °हि ।

[२]

आयहो जक्खामरहो विरुज्झइ माणुसु गोत्तु केम संबज्झइ[१]।
भणइ[२] नाहु तउ नयरि सइत्तउ संतप्पिउ वणीसु धणइत्तउ[३]।
पिय गोत्तवइ तासु गुणथामहो चंदहो रोहिणि व्व रइ रामहो।
नंदणु अरुहयासु संजायउ पुण्णपुंजु[४] नरवेसें आयउ।
बीयउ सुउ जिणयासु पवुत्तउ[५] तारुण्णइ[६] दुव्वसणहिं[७] भुत्तउ।
अणुदिणु दविणु घराउ हरेप्पिणु वेसायणु भुंजइ तं देप्पिणु।
वज्जियडक्क[८]-हुडुक्क[९]-समाणए[१०] पियइ मज्जु विरइय[११]-आवाणए[१२]।
कंकरसर[१३]-जुवारविरसक्खरु[१४] रमइ[१५] जूउ मंडियवड्डप्फरु[१६]।
एक्कदिवसि[१७] हारिय वरवण्णहो[१८] जूए सहसबत्तीस सुवण्णहो[१८]।
टेंटमज्झि[१९] दक्खवियनियारें[२०] धरियउ छलयनामजूयारें[७]।
पभणइ[२१] कवणु[२२] गहणु मण्णमि[२३] तणु जायवि[२४] निलए देमि तउ कंचणु।
बोल्लइ छलउ तिक्खनिट्ठुरगिरु मंदिरु वच्चंतहो तोडमि सिरु।
रे जिणदास बोल्लविप्फारहिं[२५] हेवाइउ[२६] इयरहिं[२७] जूयारहिं।
एह पइज्ज मज्झु जाणिज्जइ[२८] घरु दूरयरु[२९] पउ वि जइ[३०] दिज्जइ[२८]।

[२]

इस यक्ष देवका मनुष्य गोत्रमें संबंध कैसे हो सकता है ? यह बात तो (सिद्धान्त) विरुद्ध पड़ती है। तब भगवान् कहने लगे—तुम्हारी इसी नगरीमें धनदत्त नामका एक धनी व संतोषी वणिक् रहता था। उस गुणवान्‌की चंद्रकी रोहिणी व रामकी रति अर्थात् सीता जैसी गोत्रवती नामकी पत्नी थी। उसे अरहदास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, मानो मनुष्य वेशमें पुण्यका पुंज ही आ गया हो। दूसरा पुत्र जिनदास कहलाया, जो अपनी यौवनावस्थामें दुर्व्यसनोंसे भोगा गया (वशीभूत हुआ)। वह प्रतिदिन घरसे द्रव्य अपहरण करके, उसे देकर वेश्या-जनका भोग करता, और डिंडिम व डक्का बजते हुए सजी हुई दुकानोंमें मद्य पीता, तथा जूएका एक बड़ा फलक सजाकर कंकरोंके स्वर और जुआड़ियोंकी विरस ध्वनियोंके साथ जूआ खेलता। एक दिन वह जूएमें सुवर्णकी बत्तीस सहस्र मुद्राएँ हार गया। द्यूतगृहमें छलक नामक जुआड़ीने अत्यंत अपमानित करके उसको पकड़ लिया। इसने कहा—यह क्या भारी बात है ? मैं इसे तृण बराबर समझता हूँ, घर जाकर तुझे सुवर्ण (मोहरें) दे दूँगा। तब छलकने ये निष्ठुर वचन कहे—यदि घरको चले तो सिर तोड़ दूँगा। रे जिनदास ! बड़े बोलोंसे दूसरे जुआड़ियोंने तुझे बड़ा गर्वित कर दिया है (बहुत चढ़ा दिया है); 'परंतु तुम मेरी यह पैज (प्रतिज्ञा) जान लेना कि घर तो दूर ही रहे, तू एक पैर भी आगे रख ले तो मैं अपना

[२] १. क °इं। २. प्रतियोंमें °इं। ३. क घ ङ °यत्तउ। ४. घ पुन्न°। ५. क घ ङ पउत्तउ। ६. क ङ °ण्णहिं; घ °न्नहिं। ७. ख ग °णइ। ८. घ विज्जिय°। ९. क हुडक्कु; ख ग हुडक्क। १०. क घ ङ °णइं; ख ग °णइ। ११. क °यइं; ङ °यइ। १२. क घ ङ °णइं। १३. क ङ वक्कर°; घ कक्कर°। १४. क ङ °विरसव्वरु। १५. प्रतियोंमें °इं। १६. क °वट्टइ परु; ङ °वट्टयप्परु। १७. घ एक्कु°। १८. घ °न्नहो। १९. क °मज्झि। २०. क घ ङ °सयारिं। २१. क घ ङ °णइं। २२. क घ ङ °ण। २३. ख ग घ मन्नवि। २४. क घ ङ जाएवि। २५. घ ङ °रहि। २६. ख हिवा°; ग हिवा°; घ देवा°। २७. ख ग °रेहिं। २८. क °ज्जइं। २९. क ङ °यरि। ३०. ख ग मइ।

सो न वहमि[31] नियनामु सछायउ   पगि व पइजिवि[32] ईसवि[33] जायउ।

घत्ता—इय विहिं मि[34] निरग्गलु वड्ढिउ[35] कंदलु असिदुहियइ[36] जिणदासु हउ।
पेक्खिवि महिपत्तउ घोलिरअंतउ पाण लएप्पिणु छलउ गउ ॥२॥

[३]

एत्तहिं[1] आयण्णिवि[2] तं वइयरु   निउ जिणदासु अरुहयासें[3] घरु।
अंतइँ[4] धोविवि वणु सीवाविउ   जेट्ठें भणिउ[5] जूयफलु पाविउ।
निम्मलसावयकुलि[6] उप्पज्जिउ   एक्कु वि वसणु बंधु नउ वज्जिउ।
वुच्चइ जिणदासें जाणंतें   कुलमइलणु हउँ खद्धु कयंतें।
एवहिं[7] मरणकालि जं किज्जइ   तं उवएसु किं पि महु दिज्जइ।
सावयवयइँ[8] लेवि जिणदासें   पाण विसज्जिय पुणु सण्णासें[9]।
इह सो मरिवि जक्खु हुउ सुहमणु[10]   कुंडल-कडय-मउडमंडियतणु[11]।
महु भाइहिं[12] कियसुरनरवंदणु[13]   चरमसरीरु हवेसइ नंदणु।
इय कज्जें नच्चइ हरिसियमइ[14]   वार-वार नियगोत्तु[15] पसंसइ[16]।
विज्जुमालि सुरु[17] लच्छिपउत्तहो   नंदणु अरुहयासु वणिउत्तहो।
जंबूसामि नाम उप्पज्जिवि   तउ लेसइ घरवासु विसज्जिवि[18]।

सुख्यात (सार्थक) नाम छोड़ दूँ'। इसप्रकार पहलेसे ही पैज करके वह उसके प्रति ईर्ष्या (द्वेष) युक्त हो गया। इसप्रकार दोनोंमें निरर्गल (निर्बाध) झगड़ा बढ़ा, और जुआड़ीने जिनदासको कटारीसे आहत किया। तब जिनदासको भूमिपर पड़े हुए और आँतें निकली हुई देखकर 'छलक' अपने प्राण लेकर भाग गया ॥ २ ॥

[३]

और इधर उस दुःखद वृत्तांतको सुनकर अरहदास जिनदासको घर ले गया। आँतोंको धोकर (अन्दर करके—टि०) व्रणको सिलवा दिया। तब जेठे भाईने कहा—द्यूतका फल पा लिया। तू निर्मल श्रावककुलमें उत्पन्न हुआ, परंतु हे बंधु ! तूने एक भी व्यसन नहीं छोड़ा। बड़े भाईकी इस बातको जानकर जिनदासने कहा—कुलको मलिन करनेवाला मैं कृतान्तसे खा लिया गया। अब इस मरण-समयमें जो करना चाहिए, ऐसा ही कुछ उपदेश मुझे दीजिए। फिर जिनदासने श्रावकव्रत लेकर संन्यासपूर्वक प्राणोंका त्याग किया। वही (जिनदासका जीव) मरकर यहाँ शुभमनवाला, कुंडल, कड़े और मौड़ (मुकुट) से आभूषित शरीरवाला यक्ष हुआ है। 'मेरे भाईको सुर-नरवंद्य चरमशरीरी पुत्र होगा', इस कारणसे हर्षितमन होकर वह बार-बार अपने गोत्रकी प्रशंसा करता हुआ नाच रहा है। यह विद्युन्माली देव लक्ष्मीवान् (पउत्त ?) वणिक्पुत्र अरहदासका प्रिय पुत्र होकर, जंबूस्वामी नाम उपार्जन करके, गृहवासको छोड़कर

३१. क क हुवमि; घ ल्लहमि। ३२. क पइं°; ख ग °जिय; घ पइंजिय। ३३. क घ क ईसिवि। ३४. ख ग विहि मि। ३५. ख ग वट्टिय। ३६. घ °यइं।

[३] १. ख ग °हि। २. घ °लेवि। ३. घ °दासें। ४. क ख ग °इ। ५. क घ क °उं। ६. क क णिम्मलि°। ७. क ख ग °हि। ८. ख ग °वयइ। ९. घ सण्णासि। १०. क °मइं; घ °गइ; क °मइ। ११. क क °मंडियकय; घ °मंडियच्छइ। १२. क °हिं। १३. ख ग किर°। १४. क घ क °मणु। १५. क घ क °गोत्त। १६. क घ क °सणु। १७. ख ग सुर। १८. क घ क विव°।

मोक्खथाणु णिण्णासियभवजलु[19] जाएसइ उप्पायवि[20] केवलु ।
आयहो पच्छइ पुणु जिणवयधर सुअकेवलि[21] होएसहिँ मुणिवर ।
घत्ता—तेलोक्कपईवउ केवलदीवउ कम्मासयमरुदप्पिणिहि[22] ।
तमनियरु भमेसइ[23] विज्झाएसइ[24] भरहखित्ति अवसप्पिणिहि[25] ॥३॥

[४]

अग्गइ जेण कमेण निरंतरु होसइ जंबूसामिकहंतरु ।
वीरजिणंदेँ[1] केवलिँ लक्खिउ[3] तं सविसेसु नरिंदहो अक्खिउ ।
रिसहपमुहचउवीसजिणेसर[4] भरहाइय-बारहचक्केसर ।
नव बलएव तह य[5] नव केसव भुत्ततिखंड नव जि पडिकेसव ।
इय तिसट्ठिमहपुरिसपुराणइँ[6] पुच्छियाइँ कहियइँ गुणथाणइँ ।
चरियसयइँ[7] अवराइँ मि जाइँ मि साहियाइँ[7] नरनाहहो ताइँ मिं ।
नरयतिरियमणुयामरसंतइ[8] कारणसहिय कहिय भवचउगइ ।
अक्खिउ जीउ सुहासुहकम्महो जिह भुंजइ फलु धम्माहम्महो ।
पुणु वि कहाविरामे अहिणंदिउ[9] वीरजिणंदु[10] नरिंदेँ वंदिउ ।
जय देवाहिदेव निज्जियमय परमपुराणपुरिस-परमप्पय ।
जय अरहंत महंत निरंजण जय-जय सिद्धिवधूमणरंजण ।[11]

तप लेगा और भवजल अर्थात् सांसारिक जड़ता (मोह एवं अविद्या) का नाश कर, केवलज्ञान प्राप्त करके, मोक्षधामको जायेगा। इसके पश्चात् जिनवचनको धारण करनेवाले श्रुतकेवली होंगे। कर्माश्रवरूपी प्रबल पवनके दर्प अर्थात् उत्कटतासे युक्त अवसर्पिणी कालमें (अज्ञान) अंधकारपुंज भ्रमण करेगा और वह त्रैलोक्यके प्रदीपरूप केवलज्ञानियोंरूपी दीपकोंको बुझा देगा ॥ ३ ॥

[४]

आगे निरंतर जिस क्रमसे जंबूस्वामी कथानक होगा, उस सबको वीर जिनेंद्रने केवलज्ञानमें देखेनुसार विस्तारपूर्वक नरेंद्रको कहा। ऋषभ-प्रमुख चौबीस जिनेश्वर, भरतादिक बारह चक्रेश्वर, नौ बलदेव, नौ केशव, और तीन खंडोंको भोगनेवाले नौ प्रतिकेशव, इसप्रकार तुमने जो प्रश्न पूछे उनके उत्तररूप गुणोंके निधान त्रेसठ महापुरुषोंके पुराण कहे गये और भी जो सैकड़ों चरित्र हैं, वे सब भगवान्‌ने राजाको कहे। नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देवोंकी संतति-अर्थात् क्रमपरम्परासे युक्त चार गतियाँ कारणोंसहित कहीं। जीव शुभाशुभ कर्म व धर्माधर्मका फल जिसप्रकार भोगता है, वह कहा। पुनः कथाविराम होनेपर राजाने भगवान्‌का अभिनंदन किया, और वंदनाकी—हे मद (मान कषाय) को जीतनेवाले परमात्मा! परमपुराण-पुरुष, देवाधिदेव आपकी जय हो! हे महात्मन्, निरंजन अरहंत, आपकी जय हो। हे सिद्धिवधू-

१९. क क णिण्णासिय°; क °भवजल। २०. क घ क °इवि। २१. क घ क सुय°। २२. क घ क °णिहिं। २३. क °सइं। २४. ग विज्झा°। २५. क घ क °णिहिं।

[४] क घ क °जिणिंदें। २. क क क केवल। ३. क °उं। ४. क क °जिणेसुर। ५. क ग व। ६. क °पुरिसु°। ७. क घ क °याइ। ८. क क ग घ °संतइं। ९. क क आणंदिउ। १०. क क °जिणिंदु; घ °जिणेंदु। ११. क घ क सिद्धिवहू°।

घत्ता—जय णिम्मलसासण जय जयसासण जयहि जिणेसर परमपर ।
दुत्तरभवतारउ देव तुहारउ चलणजुवलु[12] महु होउ धर ।।४।।

[५]

नमंसेवि[1] वीरं महामेरुधीरं[2] तिलोयग्गथक्कं ।
विलीणासुहाणं जणंभोरुहाणं पबोहिक्कअक्कं ।
सहाभासिरीए[3] थिराए सिरीए समुद्दित्तदेहं ।
पइट्ठो[4] नरिंदो समामंतविंदो पुरं रायगेहं ।
जिणुद्दिट्ठधम्मं[5] सरंतो सुकम्मं सकंतो ससेणो[6] ।
मयालोयणीणं घणोन्नत्थणीणं[7] मणत्थोहथेणो ।
हयाणेट्ठसंघो पराणं दुलंघो फुरंतप्पयावो ।
पवज्जंतढक्को भडामुक्कहक्को समुट्ठंतरावो ।
रमालीढवच्छो निवायारदच्छो पयापालणिट्ठो ।
सुमाणिक्कफारं महासीहदारं[8] सगेहं पइट्ठो ।
समग्गो[9] सइत्तो जिणंदस्स[10] भत्तो सदाणो सभोओ ।

के मनको रंजित करनेवाले, आपकी जय हो ! जय हो ! हे निर्मल-शासन (पवित्र धर्मोपदेश देनेवाले) तथा प्राणियोंको (सद्गतिरूपी) आश्वासन देनेवाले देव ! आपकी जय हो ! हे जिनेश्वर ! हे परम+पर—परमात्मा आपकी जय हो ! और हे देव ! दुस्तर भवसागरसे पार उतारनेवाले आपके चरणयुगल मेरे धारक अर्थात् अभ्युद्धारक हों ॥ ४ ॥

[५]

त्रिलोकके अग्रभागपर विराजमान, महामेरुके समान धीर, जिनके अशुभकर्म क्षीण हो गये हैं, ऐसे भव्यजनोंरूपी कमलोंको प्रबुद्ध करनेके लिए एकमात्र सूर्य, ऐसे वीर भगवान्‌को नमस्कार करके सभाको भास्वर करनेवाली स्थिर शोभासे देदीप्यमान देहवाला नरेंद्र जिनोपदिष्ट धर्म व सुकर्मका अनुस्मरण करता हुआ, सामंतवृंद तथा अपनी रानी एवं सेना सहित राजगृह नगरमें प्रविष्ट हुआ । वह मृगलोचना तथा घने व ऊँचे स्तनोंवाली प्रमदाओंके मनसमूहरूपी धनको चुरानेवाला था । दूसरोंके लिए दुलंघ्य ऐसे अनिष्टसंघ अर्थात् शत्रुसंघको उसने नष्ट कर दिया था, एवं उसका प्रताप निरन्तर स्फुरायमान अर्थात् वृद्धिगत हो रहा था । ढक्काके बजने व भटोंकी छोड़ी हुई हांकोंसे बड़ा कोलाहल हो रहा था । उसका वक्षस्थल राज्यलक्ष्मीसे आलिंगित था, और नृपाचार अर्थात् राजनीतिमें वह पूर्ण दक्ष था । इसप्रकार प्रजापालनप्रिय वह राजा सुंदर माणिक्योंसे जगमगाते हुए महा सिंहद्वारसे अपने घरमें प्रविष्ट हुआ । स्वमार्ग अर्थात् स्वधर्ममें सावधान, जिनेंद्रके भक्त दानशील व भोग (-साधनों) से युक्त पुरवासी लोग

१२. क ख ङ °जुयलु ।

[५] १. क णमंसेमि । २. घ °वीरं । ३. क मुहा° । ४. ख ग घ पयट्टो । ५. क जणु° । ६. क ङ ससिण्णो । ७. क ङ घणुव्वच्छणीणं । ८. घ ङ °वारं° । ९. क ख घ ङ समग्गो । १०. क घ ङ जिणिंद° ।

निएसु घरेसुं ठिओ[11] सुंदरेसु पुरावासिलोओ[12] ।
तओ सत्तरत्ते[13] कमेणं पवत्ते[14] सुहापंडुधामे[15] ।
विरायंतचित्ते[16] सदित्ते पवित्ते वरे वासधामे[17] ।
चउत्थम्मिजामे तमीसेमरामे सिए णं मयंके ।
पडावेढछण्णे[18] सुअंधे[19] सुवण्णे सुहे तूलियंके[20] ।
घत्ता—सिविणउ[21] निज्झाइउ[22] मंगलराइउ[23] पल्लंकोवरि सुत्तियए[24] ।
लायण्णुद्दामए[25] जिणमइनामए[26] अरुहयासकुलउत्तियए[27] ॥५॥

[६]

दीसइ जंबूफलनिउरुंबं गंधायड्ढियभमरकुडंबं[1] ।
धगधगंतजोइयसव्वासं[2] निद्धूमं जलंतसव्वासं ।
सहलसालिछेत्तं सुहगंधं महमहंतमरु-पूरियरंधं[3] ।
कूइयचक्कमरालवलायं पप्फुल्लियसयवत्ततलायं[4] ।
मयरमच्छकच्छवपायारं रयणाउण्णं[5] पारावारं ।
नियभत्तारहो जं जिह दिट्ठं पडिबुद्धए पहाए तं सिट्ठं ।
तं सोऊणाणंदियभाओ[6] सेट्ठि सभज्जो सयणसहाओ[7] ।
गयउ तुरंतउ[8] दुक्खियनासं[9] जिणवरमंदिरि महरिसिपासं[10] ।

अपने-अपने सुंदर घरोंमें स्थित हो गये । तदनन्तर क्रमशः सातवीं रात्रि आनेपर चूनेसे पुते हुए, चित्रोंसे सजे हुए व दीप्तिमान और पवित्र श्रेष्ठ निवासगृहमें रात्रिके अवसानमात्र शेष चौथे प्रहरके रमणीय समयमें, मृगांकके समान धवल, सुंदर चादरसे ढके हुए, सुगंधित व उत्तम रुई-के गद्देपर पलंगके ऊपर सोती हुई, उद्दाम लावण्यवती जिनमती नामकी अरहदासकी कुलपुत्री (कुलवधू) ने ये मांगलीक स्वप्न देखे ॥५॥

[६]

उसने अपनी गंधसे भ्रमरकुलको आकर्षित करनेवाले जंबूफलोंका गुच्छा देखा । धग-धग करके जलते हुए समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले निर्धूम-अग्निको देखा । फूले हुए शालिक्षेत्रको देखा, जिसकी शुभगंधसेयुक्त पवन समस्त रंध्रोंको पूरता हुआ सर्वत्र प्रसृत हो रहा था । चक्रवाक, हंस, और बलाकाओंके कूजनसे युक्त फूले हुए कमलसरोवरको देखा, तथा मगरमच्छ और कच्छपोंके संचारसे युक्त एवं रत्नोंसे पूर्ण उदधिको देखा । उसने जो जैसा देखा था, वैसा प्रभातमें जागने पर अपने भर्त्तारको कहा । उसको सुनकर प्रसन्नचित्त होकर श्रेष्ठी तुरन्त अपनी पत्नी तथा स्वजनोंके साथ जिनमंदिरमें पापोंका नाश करनेवाले महर्षिके

११. घ ठिउं । १२. क ङ पुर° । १३. क घ ङ °रत्तो । १४. क घ ङ °त्तो । १५. क घ ङ °धामो । १६. क ङ विरागंत°; क °चित्तो । १७. क ङ °यामे । १८. क घ ङ पडावेढि°; घ °छन्ने । १९ क घ ङ सुगंधे । २०. क ङ तलि°; ख ग सुहि तूलि° । २१. घ °णउं° । २२. क ख ग ङ °यउ । २३. क ङ °रायउ । २४. ख ग °यइ । २५. क घ ङ °द्दामइ । २६. क घ ङ °वइणामइं । २७. क घ °यइं; ङ °यइ ।

[६] १. घ °कुडुंबं । २. क ङ °जोइल° । ३. घ °गंधं । ४. ख ग °लाएं । ५. घ °उन्नं । ६. क घ ङ °भावो । ७. क घ ङ सहावो । ८. क घ ङ तुरंतो । ९. क ङ °णासें; ख ग °नासें । १०. क ख ग ङ °पासें ।

पणवेप्पिणु भत्तिए नउर-हियं सुइणालोयं[11] सव्वं कहियं ।
भयवंतो[12] साहइ परमत्थं अरुहयास निसुणहि[13] सिविणत्थ ।
जंबुफलालोए गुणजुत्तो रइवइरूवो[15] होसइ पुत्तो ।
दिट्ठें[16] जलणें[17] जालइ कम्मं सालीछेत्तें[18] लच्छीहम्मं ।
सरवरदंसणे रयणाहारो उवहिए भवसमुद्दगयपारो ।
घत्ता—तव[19] होसइ नंदणु नयणाणंदणु सोलहवरिसपमाणु पुणु ।
घरवासु चएसइ दिक्ख लएसइ चरमसरीरु महंतगुणु[20] ॥६॥

[७]

तं निसुणेवि हरिसिउ वणियवरु मुणि नविवि सपरियणु गयउ घरु ।
तहिं काले देउ[1] तडिमालि चुओ गब्भब्भंतरे जिणमइहे[2] हुओ ।
गुरुहारइँ[3] अंगइँ[4] लालसइं बहुदिवसहिं[5] जायइँ सालसइं ।
आपंडुरु[6] मुहुँ निज्जिणइ[7] ससि सियथण हुय णं मुहे दिण्णमसि ।
णं[8] मरगयकलसहिं[9] सेहरिया रुप्पमयकुंभ[10] लच्छिए धरिया[11] ।
णं विण्णि चडिण्ण मऊरवरा मयरद्धयधवलगेहसिहरा ।
अहवइ हंसु[12] व सोहंति सुहा चंचुक्खयपंकिलकंदमुहा[13] ।

पास गया । भक्तिपूर्ण नम्रहृदयसे प्रणाम करके सारे स्वप्नदर्शनको बतलाया । वे भगवन् स्वप्नोंका परमार्थ इसप्रकार कहने लगे—अरहदास ! स्वप्नोंका अर्थ सुनो । जंबूफलोंके देखनेसे तुम्हें गुणवान् व कामदेवके समान रूपवाला पुत्र होगा । अग्नि देखनेसे वह कर्मोंको जलायेगा और शालिक्षेत्र देखनेसे (केवलज्ञानरूपी) श्रेष्ठ लक्ष्मीका धाम होगा । सरोवर देखनेसे वह (सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप) रत्नोंका धारक होगा, और उदधि देखनेसे भवसमुद्रसे पार होगा । तुझे नेत्रोंको आनंद देनेवाला पुत्र होगा, जो गृहवास छोड़कर दीक्षा लेगा, व महान् गुणोंका धारक चरमशरीरी होगा ॥६॥

[७]

उस स्वप्नफलको सुनकर वणिक्वर हर्षित हुआ और मुनिको नमस्कार करके परिजनोंके साथ घर गया । उसी समय विद्युन्माली देव स्वर्गसे च्युत होकर जिनमतीके गर्भमें आया । उसके गुरुभारसे जिनमतीके कोमल अंग कुछ ही दिनोंमें आलस्ययुक्त हो गये । उसका पांडुरवर्ण मुख चंद्रको जीतने लगा, और श्वेत स्तनमुख ऐसे काले हो गये मानो उनके मुँहपर स्याही लगा दी गयी हो अथवा मानो लक्ष्मीने मरकतमणि कलशोंको सबसे ऊपर शिखररूपसे रखकर रजतमय कुंभ धारण किये हों, अथवा मानो मकरध्वजके प्रासादशिखरपर दो मयूर चढ़े हों, अथवा वे ऐसे स्वच्छ हंसोंके समान शोभित हो रहे थे, जिनके मुखमें चंचुसे खंडित

११. ख ग सुयणा° । १२. क °वंता । १३. घ °णहि । १४. क ङ सुय°; घ सुइ° । १५. क ङ रइवर° । १६. घ दिट्ठं । १७. घ °णं । १८. क घ ङ सालिछित्ति वर । १९. क घ ङ तउ । २०. क ङ महंतु° ।

[७] १. क ङ देव । २. ख ग °वइहे; घ °वईहि । ३. ख ग घ ङ °रइ । ४. ख ग °इ । ५. क °सहि । ६. क घ ङ आवं° । ७. क घ ङ °णइ । ८. ग तं । ९. °कलियहि । १०. ख ग रुप्पयमय° । ११. क ङ धरिया । १२. क घ ङ हंस । १३. ख ग °कंटमुहा ।

गब्भेण विराइय[१४] गब्भवइ दाणेण व रिद्धि विसुद्धमइ ।
णं नवपयपुण्णपओहरिया आसन्नजेट्ठ[१५]-पाउससिरिया ।
पंचमिहे[१६] वसंते[१७] पक्खे धवले रोहिणिठिए मयलंछणे विमले ।
पच्चूसे पसूय सलक्खणउ[१८] कुलमंगलु जयवल्लहु तणउ[१९] ।
घत्ता—वद्धावणतूरहिँ दसदिसपूरहिँ[२०] काइँ नयरि तहिँ[२१] वण्णियइ[२२] ।
गायंत-पढंतहिँ जणहिँ नडंतहिँ कण्णपडिउ[२३] नायण्णियइ[२४] ॥७॥

[८]

अलंकियनिसंतेण तरुणारुणदित्ततेएण बालेण पसरेण वा तेण
सूयाहरे दिण्णदीवोहदित्तीनिहित्ता सुदूरे किया निप्पहा ।
विद्धिवद्धावणावंतलोएहिं वज्जंतपडुपडहखरतरडसरमंदबहुमद्दलुद्दाम[२] कलवेणुवीणाझुणी
सालकंसालतालानुसारेण आणंदईसरमत्तघुम्मंततरलच्छितरुणीमहाथट्टसंघट्टतुट्टंतआहरणमणिमंडिया चउप्पहा ।

कीचड़युक्त कमल-कंद—कमलांकुर हों । वह विशुद्धमति गर्भवती उस गर्भसे इसप्रकार शोभित हुई जैसे दानसे समृद्धि । पासमें स्थित ज्येष्ठाओं अर्थात् (प्रसवकर्ममें कुशल) वृद्ध परिचारिकाओं, व नये दुग्धसे युक्त पयोधरोंसे वह ऐसी लगती थी, मानो ज्येष्ठा (नक्षत्र) के पासवाली, नये जलसे परिपूर्ण पयोधरोंसे युक्त पावस-श्री ही हो । वसंतमासमें शुक्लपक्षकी पंचमीको निर्मल-चंद्रमाके रोहिणी नक्षत्रमें स्थित होने पर उसने प्रत्यूषकालमें रोहिणी नक्षत्रमें शुभलक्षणोंसे युक्त, व कुलके लिए कल्याणकारी और जगवल्लभ अर्थात् सर्वलोकप्रिय पुत्रको जन्म दिया । उस नगरीका क्या वर्णन किया जाये जहाँ कि दशों दिशाओंको पूरनेवाले बधाईके तूरों और मंगलगान गाते व पढ़ते तथा नृत्य करते हुए लोगोंके कारण कान पड़ा कुछ सुनाई नहीं देता था ॥७॥

[८]

तरुण, अरुण व दीप्त तेजवाले बालरविने अपने तेजके प्रसारसे निशांत अर्थात् उषःकालको अलंकृत किया; अथवा मानो उस शिशुने ही अपने अति आरक्तवर्ण व दीप्तिमान तेजके प्रसारसे निशांत अर्थात् राजगृह (टि०) को अलंकृत किया, तथा प्रसूति-गृहमें जलाये हुए दीपकसमूहसे उत्पन्न दीप्तिको अपनी देहकांतिसे निष्प्रभ करके दूर कर दिया । सुख, समृद्धि एवं अभ्युदयकी बधाई देनेवाले लोगोंके द्वारा बजाये जानेवाले पटुपटह, तीखे तरड, मंदस्वरवाले बहुतसे मर्दल, और उद्दाम व मधुर वेणु तथा वीणाकी ध्वनि एवं साल व कंसालकी तालके अनुसार आनंदसे ईषन्मत्त हुई, घूमती हुई व नाचती हुई चंचलाक्षी तरुणियोंके महासमूहोंके

१४. क °यइ । १५. क ख ग ङ आसण्ण° । १६. क ङ पंचमि; घ पंचमिहि । १७. क ङ दिवसंत; ख ग घ वसंत । १८. क घ ङ °णउं । १९. घ ङ °उं । २०. क घ ङ दससिदि° । २१. ख ग तहि । २२. घ वन्नियइं । २३. क ङ °वडिउ; घ कन्न° । २४. घ नायन्नियइं° ।

[८] १. घ दिन्न । २. ख ग °सरमंदलुद्दाम° । ३. ख ग °नच्चन्ति° ।

छड्डियपडिपट्ट-पट्टोल-पंडीपहावंतनेत्तेहिँ संछइयं[4]मंडवविथाणेसु
लंबंतमुत्ताहलादाम-झुल्लंतमाणिक्कझुंबुक्कसंजायसक्काउहायार-
पसरंतकिरणावलीजालचित्तलियघरपंगणं।
सेट्ठिणा कणय-धणरयणवरवत्थविट्ठीए[5] सम्माणिए सयललोयम्मि
छट्ठे दिणे [6]राइजायरणपमुहुच्छवे सुरवराणं पि चित्ते चमक्कारिणी
का वि अवइण्ण[7] अण्णासिरी एव[8] नयरंतरं तत्थ जायं जणाणंदवद्धावणं।

अवि य—अकत्तिए निरंतरंतरं हुयं निरब्भमंबरंबरं।
अपाउसे असारयं रयं धरायले[9] व्व निक्खयं[10] खयं।
अयालरुक्खसंतई तई पहुल्लिया वणासई सई।
सुवण्णविट्ठीभासुरासुरा मुअंति[11] तत्थ सासुरा सुरा।
घत्ता—कल्लाणपरंपरे इसमए[12] वासरे सवणसुहावणु हिययपिउ।
जंबुहलनिवेसें सिविणुद्देसें[13] नामें जंबूसामि किउ[14] ॥८॥

[९]

दिणे दिणे देहरिद्धि परिवड्ढइ[1] बीयाइंदु व बालु विवड्ढइ[2]।

परस्पर संघट्टनसे टूटते हुए आभरणोंके मणियोंसे चतुष्पथ मंडित हो गये। लटकाये हुए प्रतिपट्ट व पटोल, पांड्य देश निर्मित नेत्र नामक वस्त्रोंसे छाये हुए मंडपवितानोंमें लटकती हुई मुक्ताफलोंकी मालाएँ व झूलते हुए माणिक्यके झूमकोंसे फैलते हुए इंद्रायुधके समान पंचवर्ण किरण जालसे घर-प्रांगण चित्रित जैसे हो गये। श्रेष्ठीके द्वारा धान्य, धन, रत्न व उत्तम वस्त्रोंकी वर्षा अर्थात् अपरिमाण भेंट द्वारा सब लोगोंका सन्मान किये जानेपर छठे दिन रात्रि-जागरण प्रमुख उत्सवके समय देवताओंके चित्तको भी चमत्कृत करनेवाली कोई अपूर्व ही शोभा उस नगरमें अवतीर्ण हुई, और इस प्रकार लोगोंका आनंद बढ़ा।

और भी- कार्तिक नहीं होनेपर भी आकाश निरतिशयरूपसे अभ्रमुक्त हो गया; तथा वर्षाकाल नहीं होनेपर भी असार (क्षुद्र) रज मानो धरातलमें पूर्ण उपशमको प्राप्त हो गया। उससमय काल (ऋतु) नहीं होनेपर भी न केवल वृक्षसंतति, बल्कि समस्त वनस्पति स्वयं प्रकर्षतासे प्रफुल्लित हो उठी, और असुरकुमारों सहित देवोंने वहाँ मुराके समान भास्वर सुवर्णकी वृष्टि की। इसप्रकार निरंतर मंगल मनाते हुए दसवें दिन स्वप्नमें जंबूफलोंके दर्शन और उसके फलके कथनानुसार श्रवणसुखद व हृदयको प्यारा जंबूस्वामी नाम रखा गया ॥८॥

[९]

प्रतिदिन बढ़ती हुई देह-ऋद्धि अर्थात् दैहिकसौंदर्यके साथ बालक द्वितीयाके चंद्रमाके

---

४. क ङ संछविय° । ५. क घ ङ °विट्ठीए । ६. ख ग राय° । ७. घ °इन्न । ८. घ ङ एभ । ९. घ धरणेक्क ।
१०. क ङ ति° । ११. ख ग मुयंति । १२. क घ ङ °मइं । १३. ख ग घ °द्देमि । १४. ख ग किगउ ।
[९] १. क घ ङ °यड्ढइ । २. ख ग पव° ।

जंतु जंतु महणइवित्थारु[3] व सूयमाणपिंगलपत्थारु व ।
विवरियंतु[4] विउसहिँ वायरणु व बारहविहतवेण मुणिचरणु व ।
अट्ठवरिसकप्पेण कुमारें पुण्णावज्जियविज्जापारें ।
गुरुपाढणनिमित्तमंतत्थइँ[5] जाणियाइँ[6] पढियाइँ व[7] सत्थइँ[8] ।
संपाइयतिवग्गफल रसियउ[9] नीसेसाउ कलउ अब्भसियउ ।
जिह जिह तरुणभावे संलग्गइ[10] रूवभिक्ख[11] तिह रइवइ मग्गइ[12] ।
हउँ[13] भूसिउ किर एण कुमारें अप्पउ सलहिज्जइ सिंगारें ।
बहुकालेण थिराए सइत्तिए[14] तिहुअणभमि[15] गमु सज्जिउ कित्तिए ।
नरसंकमणपरंपरचवलए[16] किउ वीसामथामु[17] थिरु कमलए[18] ।

घत्ता—सहुँ रायकुमारहिँ[19] पेसणयारहिँ[20] परिमिउ[21] रायलीलधरइ[22] ।
उवहुंजियभोयहिँ परमविणोयहिँ नाणाविह-कीलउ करइ ।

[१०]

चच्चरु तं न तं न[1] घरु[2] राउलु तं न हट्टु उज्जाणु न देउलु ।
जेत्थु न जंबुसामि वण्णिज्जइ गिज्जइ नच्चिज्जइ न पढिज्जइ[4] ।

समान इसतरह बढ़ने लगा, जैसे जाते-जाते महानदीका विस्तार, दिन-दिन फूलता हुआ चक्रवर्तीका कोश, अथवा सुनते-सुनते पिंगल-ग्रंथका विस्तार, विद्वानोंके द्वारा व्याख्या किया जाता हुआ व्याकरण, और बारहविध तपसे मुनिका चारित्र बढ़ता है आठ वर्ष आयु होनेपर कुमारने सकल विद्याओंका पार पा लिया। गुरुके पढ़ानेके निमित्तसे उसने मंत्रार्थों अर्थात् सूत्रोंके मंतव्योंको और शास्त्रोंको पहलेसे ही पढ़े हुएके समान जान लिया। त्रिवर्गफल अर्थात् धर्म, अर्थ व कामका संपादन करनेवाली और (चित्तमें) रस अर्थात् आनंद उत्पन्न करनेवाली निःशेष कलाओंका अभ्यास कर लिया। जैसे-जैसे वह तरुणावस्थामें प्रवेश करने लगा, वैसे-वैसे रतिपति (कामदेव) उससे रूपभिक्षा मांगने लगा— इस कुमारसे सचमुच मैं भूषित हो गया, क्योंकि शृंगारसे ही अपनी सराहना होती है। बहुत कालसे स्थिर सोयी हुई उस कामदेवकी कीर्तिने त्रिभुवनमें भ्रमणके लिए गमनकी तैयारी की। परंपरासे ही एकसे दूसरे मनुष्यमें संक्रमण करनेके चंचल स्वभाववाली कमला (लक्ष्मी) ने जंबूस्वामीरूपी कमलमें स्थायी विश्राम-स्थान बना लिया। आज्ञाकारी राजकुमारोंसे घिरा हुआ वह जंबूकुमार राजलीलाको धारण करता हुआ व भोगोंको भोगता हुआ, परम विनोदपूर्वक नाना प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगा ॥ ९ ॥

[१०]

ऐसा कोई चौक नहीं था, न घर और न राजकुल, न हाट, उद्यान और न देवकुल जहाँ जंबूस्वामीका वर्णन नहीं किया जाता, तथा उसका नाम ले-लेकर गाया, नाचा व

३. क महणइं°। ४. क ङ विउरि°। ५. ङ °सुसमत्थइं। ६. क °याइ; ङ जाणिआ य। ७. क ङ पठिया इव; घ पढिया इव। ८. क ङ °इ। ९. क ङ रमि°। १०. क °ग्गइं। ११. क रूप°। १२. घ °इं। १३. ख ग हउ। १४. ख ग सए°। १५. क घ ङ तिहुयणु°। १६. क ङ °चवलइं; ख ग °चवलइ। १७. क ङ वीसमग°; ख ग वीसामु थाम। १८. क ङ °लइं। १९. घ °रिहिं। २०. ख ग °यारिहिं। २१. ख ग परमिउ। २२. क °इं।

[१०] १. क ख ग ङ त ण्ण। २. ख ग घर। ३. घ वन्नि°। ४. क ङ पठि°।

धवलजसेण भुअणु[5] धवलीकिउ णं छणससिजोण्हारसलिंपिउ[6] ।
कवणु हत्थि जो अत्थि न सुरकरि[7] सा सरि कवण[8] न हुय जा सुरसरि[9] ।
सो मणि कवणु जो न मुत्ताहलु सो न गिरिंदु जो न तुहिणायलु ।
सो कहिं[10] पक्खि हंसु हुउ जो नहि[11] कवणु समुद्दु जो न[12] खीरोवहि ।
जो न वि सेसु कवणु सो विसहरु पायउ कवणु[13] न लुद्द-महातरु ।
दंसणे खुहिउ[14] नयरनारीयणु मयरद्धयसरपहर-[15] सवेयणु ।
घत्ता—क वि विरहें कंपइ सुण्णउ[16] जंपइ[17] नियउ कुमारें हिययधणु[18]
मइँ दुक्खसहावइ[19] विंभउ भावइ[20] बीयउ अत्थि किं कहि मि मणु ॥१०॥

[११]

काहि वि विरहाणलु[1] संपलित्तु अंसुजलोहलिउ[2] कवोले[3] खित्तु ।
पल्लट्टइ हत्थु करंतु सुण्णु[4] दंतिमु चूडुल्लउ चुण्णु[4] चुण्णु[4] ।
काहि[5] वि हरियंदणरसु रमेइ लग्गंतु अंगे छमछमछमेइ[6] ।

(स्तुतिपाठ) पढ़ा नहीं जाता । उसके धवल यशने भुवनको इसप्रकार धवलीकृत कर दिया, मानो पूर्णचंद्रमाके ज्योत्स्नारूपी रससे लीप दिया गया हो । ऐसा कौनसा हाथी था जो (उसके धवलयशसे अभिभूत होकर) ऐरावत न हो गया हो, ऐसी कौन-सी नदी थी जो सुरसरि गंगा न हो गयी हो; ऐसा कौनसा मणि था जो मुक्ताफल न हो गया हो और ऐसा कोई पर्वत न था जो तुहिनाचल अर्थात् हिमालय न हो गया हो; ऐसा कोई पक्षी कहाँ था जो हंस न हो गया हो, और ऐसा कौनसा समुद्र था जो क्षीरोदधि न बन गया हो; जो शेष (नाग) न बन गया हो, ऐसा विषधर कौन रह गया था; और ऐसा पादप कौनसा था जो लोध्रका महावृक्ष नहीं बन गया था । उसके दर्शनसे नगरकी नारियाँ मकरध्वजके शरप्रहारकी वेदनासे क्षुब्ध हो उठीं । कोई विरहसे कांपने लगी, व शून्य भावसे आलाप करने लगी कि मेरा हृदयरूपी धन तो इस कुमारके-द्वारा ले लिया गया, फिर भी जो मुझे दुःखका सहन (वेदन) कराता है, उससे मुझे विस्मय होता है, कि कहीं कोई दूसरा भी मन (हृदय) है क्या (जो इस कुमारके साथ नहीं गया) ? ॥१०॥

[११]

किसी कामिनीका विरहानल प्रदीप्त हो उठा, और वह अश्रुजलके पूरके द्वारा कपोलों पर बिखर गया । कोई शून्य बनाती हुई हाथको घुमाने लगी जिससे उसका दांतका बना चूड़ा चूर-चूर हो गया अथवा कोई इस तरहसे हाथ घुमाने लगी जिससे उसका हाथीदांतका बना चूड़ा हाथको शून्य करके (अर्थात् हाथसे गिरकर) चूर-चूर हो गया । किसीने लालचंदनका

५. क घ ङ भुवणु । ६. घ °जोन्हारस°; ख ग °जोण्हारसि° । ७. क घ ङ कवणु ण (घ न) अत्थि हत्थि°; ख ग कवणु ण हत्थि अत्थि° । ८. ख ग °णु । ९. ख ग °सरं । १०. ख ग कहि । ११. क ङ णहि; ख ग नहिं । १२. घ ज ग्ग । १३. क जोद्दु; घ न गोह°; ङ न जोद्दु° । १४. क घ ङ दंसण° । १५. क घ ङ °पहरु । १६. घ सुण्णउ; ङ °उं । १७. ख ग °इं । १८. ख ग हियउ° १९. क ङ °वइं । २०. ख ग °इं ।

[११] १. घ °नलु । २. ख ग में 'लिउ' नहीं । ३. क घ ङ °ल । ४. घ °णु । ५. घ काहिं । ६. क °छमेइं ।

रत्तंदणेण क वि सुसइ सित्त नं कामभल्लि-लोहियविलित्त ।
क वि कंजपुंजु पयरइ[7] सलील दरिसावइ कामकरेणु[8] कील ।
हियउल्लउ विरहें[9] खयहो[10] जंतु नीसासुल्लिखणु[11] जइ न हुंतु ।
थुइमुहरवंदिसंदोहसारु[12] रच्छाए[13] जंतु जाणेवि कुमारु ।
बाहुलयनिवेसियकंचुयाए[13] कंठालु न[14] पारिय देवि ताए ।
उत्तालियाए[13] गलि न किउ हारु अद्धंजिउ एक्कु जि नयणु फारु ।
एक्कु जि वलउल्लउ करि करंति विलुलियकवरीभरथरहरंति[15] ।
असमत्तमंडणुम्मायभग्ग फलिहुल्लयतोरणखंभे लग्ग ।
पयडियथण अहरु डसंतिबाल मयजलभरंत जंघंतराल ।
बोल्लइ कुमारु थिरु थाहि ताम तव[16] रूवें लिहमि अणंगु जाम ।

घत्ता—कुलसीलसउण्णउ[17] सियलावण्णउ[17] कुंदधवलु जसु नहे चडइ[18] ।
केवलि-तित्थयरहो नरहो न अवरहो सावण्णहो[19] जणे संवडइ[20] ॥११॥

[१२]

अह तेत्थु जि जिणपयकमलभत्तु पुरि निवसइ सेट्ठि समुद्ददत्तु ।

लेप लगाया जो उसके शरीरमें लगते ही (विरहतापके कारण) छमछम करके चटक गया । कोई रक्तचंदनसे सींची जानेपर भी सूखने लगी, और ऐसी लगी मानों कामदेवकी लोहूसे लिप्त बरछी ही हो । कोई लीलापूर्वक कमलपुंजको बिखेरने लगी, और इसप्रकार कामोन्मत्त हस्तिनीके समान क्रीड़ा दिखलाने लगी । बेचारा क्षुद्र हृदय तो विरहसे क्षय ही हो जाता यदि विरहानलके तापको बाहर निकालनेके लिए निःश्वास रूपी रहट-यंत्र न होता । स्तुतिमुखर बंदीसमूहसे उस श्रेष्ठकुमारको रास्तेमें जाते हुए जानकर कोई जो कंचुकको बाहुओंमें पहन चुकी थी, वह उसे कंठमें नहीं पहन पायी । कोई उतावलेपनके कारण गलेमें हार नहीं डाल सकी और अपने एक विशाल नेत्रको भी अधूरा ही अंजन लगा पायी । एक वलयको हाथोंमें पहनती हुई, केशपाशको लहराती हुई, तथा (कमोत्तेजनासे) कांपती हुई, मंडनकर्मको पूर्ण किये बिना ही कामोन्मादसे पीड़ित होकर स्फटिकमय तोरणस्तम्भसे जा लगी । कोई बाला जिसके स्तन प्रकट हो रहे थे और जिसकी जंघाओंका अन्तराल मदजल (रजस्राव) से भर रहा था, वह कुमारको कहने लगी—जरा तबतक ठहर जा, जबतक मैं तेरे रूपकी अनुकृतिसे अनंगको लिख लूं (चित्रित कर लूं) । उस कुलशीलसे संपूर्ण कुमारकी सौंदर्यलक्ष्मीका कुंदपुष्पके समान धवलयश आकाशमें चढ़ गया । केवली या तीर्थंकरके अतिरिक्त लोगोंमें अन्य किसी सामान्य व्यक्तिको ऐसा सौंदर्य प्राप्त नहीं होता ॥११॥

[१२]

उसी नगरीमें जिनभगवान्के चरणकमलोंका भक्त समुद्रदत्त नामका श्रेष्ठी रहता था ।

---

७. क घ ङ त्रिय° । ८. ख ग °करेण । ९. प्रतियों में 'विरहिं' । १०. क ङ विउउ । ११. क ङ °ल्लिख्वणु । १२. ख ग थुइमहुर° । १३. क घ ङ °इं । १४. प्रतियों में 'ण' । १५. क ङ विउलियकवरीभय° । १६. ख ग घ तउ । १७. क घ ङ °ण्णउं । १८. क °इं । १९. घ °भहो । २०. क ङ संचडइ; ख ग सावडइ ।

पिययम पउमावइ पउमवण्ण[1] पउमसिरिनाम[2] तहो पवरकण्ण।
बीयउ कुवेरदत्ताहिहाणु मालंतकणय-कंतासमाणु।
उप्पण्ण[1] तासु कणयसिरि दुहिय वियसियसयवत्त-ससंकमुहिय।
वइसवणु[3] तइउ वइसवणजुत्ति[4] पिय विणयमाल विणयसिरिपुत्ति।
धणयत्तु[5] चउत्थउ कुवलअच्छि[6] विणयमइ-भज्ज सुय-रूवलच्छि।
एयाउ चयारि कुमारियाउ भल्लिउ मयणेण व फेरियाउ।
गब्भे वि ठियउ पडिवण्णियाउ[7] पियरेहिँ कुमारहो दिण्णियाउ[8]।
पइ होसइ जाणिवि भुअणसारु नीसेससत्थसंपत्तपारु।
इय कज्जें[9] कोउहल्लेण[10] ताउ नाणाविह-विज्जउ सिक्खियाउ।
भासातय-लक्खणु-लक्खु मुणिउ[11] दंसण-नएहिँ सहुँ तक्कु सुणिउ[12]।
छंदालंकार-निघंटसत्थु धम्मत्थ-कामकारणु पसत्थु।
गाएव्वउ नच्चेव्वउ सचित्तु वीणाइवज्जु[13] जाणिउ[14] विचित्तु।
अवराइँ[15] मि मुणियइँ जाइँ जाइँ को लक्खेवि सक्कइ ताइँ[16] ताइँ।
घत्ता—तियरयणचउक्कउ घडिवि विमुक्कउ अंगरक्खु धणु-वाणकरु[17]
रइवइ तहो जडियउ दइवें घडियउ[18] विद्धइ[19] अवलोयंतु निरु[20] ॥१२॥

उसकी पद्मके समान गौरवर्ण पद्मावती नामकी प्रियतमा थी, उसे पद्मश्री नामकी श्रेष्ठ कन्या हुई। दूसरा कुवेरदत्त नामका था, उसको कनक(सुवर्ण)मालाके समान सुंदर कनकमाला नामकी कांता थी, उसे कनकश्री नामक दुहिता हुई, जो विकसित शतपत्र व शशांकके समान मुखवाली थी। तीसरा वैश्रवण (कुवेरके) समान युक्तिवाला (अर्थात् धनके संवर्द्धन, संरक्षण एवं संविभाजनमें कुशल) वैश्रवण नामका श्रेष्ठी था, जिसको विनयमाला नामक भार्या, व विनयश्री नामकी पुत्री हुई। चौथा धनदत्त था, उसकी कुवलय अर्थात् नीलकमलके समान नेत्रोंवाली विनयमती नामकी भार्या, व रूपश्री नामकी कन्या हुई। ये चारों कुमारियाँ मानो मदनके-द्वारा (लोगोंपर) घुमायी हुई बरछियाँ ही थीं। जब ये गर्भमें ही थीं, तभी इनके पिताओंके-द्वारा ये कुमारके लिए दे दी गयीं और इन्हें स्वीकार कर लिया गया। यह जानकर कि अशेष शास्त्रसंपत्का पारगामी व लोकमें श्रेष्ठ कुमार इन लोगोंका पति होगा, इस हेतुसे इन सबको नाना विद्याएँ सिखायी गयीं। इन कन्याओंने तीनों भाषाओं (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश—टि०) को जाना, लक्षणशास्त्र (व्याकरण) को जाना और उसके लक्ष्य अर्थात् साहित्यको भी जान लिया। दर्शनशास्त्र व न्यायशास्त्रके साथ तर्कशास्त्रको भी सुना। छंद, अलंकार व निघंटुशास्त्रको भी जाना, और धर्म, अर्थ व कामके प्रशस्त साधनोंको भी जान लिया। विविधप्रकारका गाना व नाचना सीखा, और अनेकप्रकारका वीणादि वाद्य भी। और भी उन्होंने जो-जो कुछ सीखा, उस सबको कौन लक्ष्य कर सकता है (कौन कह सकता है)।

विधाताने एक स्त्रीरत्नचतुष्क गढ़कर छोड़ दिया, और धनुप व बाणको अपने हाथमें

[१२] १. घ °न्न। २. ख ग नामें। ३. ख ग वय°। ४. ख ग वयसवण°। ५. ख ग °मेत्तु ६. क घ ङ °यच्छि। ७. घ पडिवन्नि°। ८. घ दिन्नि°। ९. क घ ङ कज्ज। १०. क कोहुल्लेण; घ ङ °हल्लेण। ११. घ °उं। १२. क ग मु°। १३. क घ ङ वोणावज्जु व। १४. प्रतियां मे 'जाणिउं'। १५. क ख ग ङ °राइ। १६. क ताइ ताइ। १७. क बाणु°। १८. क °यउं। १९. क घ ङ विंधइ। २०. क ङ णरु; ख ग नरु।

[१३]

तहुँ[1] नवल्लु जोव्वणु उम्मीलइ मयणबाहु पारद्धि व कीलइ[2] ।
घोलइ चिहुरभारु पब्भारें वग्गुरपासु व मंडिउ मारें ।
आउंचिय बिलुलइ अलयावलि नं अणंग[3]अंगुलिताणावलि ।
अद्धेंदु व निलाडु[4] संकिण्णउ[5] मुट्ठिगाहु धणुमज्झि व दिण्णउ[6] ।
वंकुज्जलु[7] भूजुयलउ भाविउ णं रइणाहें चाउ चडाविउ ।
तिक्खकडक्खनयणसरलाइय जण वणयर विद्धंतुद्धाइय[8] ।
नासावंसु सरलु जगु मोहइ अहरमुद करमुद व सोहइ[9] ।
कोमलझुणि[10] वीण व झंकारइ[10] धणुगुणु[11] मयरचिंधु टंकारइ[12] ।
अच्छकवोलजुयलु मुहे तडियउ विहिँ[13] भायहिँ[14] ससिखंडु व[15] घडियउ ।
रेहाइद्धु कंठु कलु छज्जइ[16] विजयसंखु कंदप्पहो[17] नज्जइ ।
बाहुजुयलु मुणि मणु वि विडंबइ[16] मालइदामु[18] व कामहो[19] लंबइ[20] ।
उक्कुरिय[21]-सिहिणपीवरतड रइवइरायहो[22] नं मज्जणघड ।

धारण किये हुए मदनको भी निर्मित करके उसके अंगरक्षकरूपसे उसीमें जड़ दिया, जो उसकी ओर देखनेवालेको निश्चित बाँध डालता था ॥ १२ ॥

[१३]

उनका नवीन यौवन उन्मीलित होने लगा, मानो मदनके बाहु मृगयाके लिए क्रीड़ा करने लगे। उनका घना चिकुरभार ऐसा लहराता था, मानो मारने (कामीजनरूपी) पशुओं-को फँसानेवाला फंदा ही सजाया हो। उनकी घुँघराली अलकें इसप्रकार लोट-पोट होती थीं, मानो अनंगकी अंगुलियोंसे उत्पन्न होनेवाली स्वर-लहरी हो। उनका ललाट अर्द्धचंद्रके समान संकीर्ण था, और मध्यभाग (कटि) ऐसा था, जो मुट्ठीमें आ सके, जैसी कि धनुषके मध्यमें मूठ होती है। उनका भ्रूयुगल ऐसा बाँका व उज्ज्वल था, मानो रतिनाथने चाप खींचा हो। उनके सरल तथा तीक्ष्ण कटाक्ष युक्त नेत्र जनसमूहरूपी वन्य-पशुओंको बींधते हुए विस्तीर्ण होते थे। उनकी सुंदर नासिका सारे लोकको लुभाती थी, और अधरोंकी मुद्रा (रचना) करमुद्रिकाके समान (वर्तुलाकार व अत्यन्त छोटी और पतली) शोभायमान थी। उनकी कोमलध्वनि वीणाके समान ऐसी झंकृत होती थी, मानो मकरध्वज धनुषकी डोरीकी टंकार कर रहा हो। मुख तक फैला हुआ उनका स्वच्छ-सुंदर कपोल-युगल ऐसा था, मानो दोनों ओर एक-एक चंद्रखंड ही निर्मित कर दिया गया हो। रेखाओंसे युक्त उनका कोमल कंठ ऐसा शोभायमान था, जो कंदर्पके (त्रिभुवन-) विजयसूचक शंख जैसा जान पड़ता था। उनका बाहुयुगल मुनियोंके मनको भी पीड़ा देता था, और ऐसा लगता था मानो मदनकी मालतीमाला ही लटकी हो। उनके खूब ऊपर उठे हुए स्थूल स्तन ऐसे थे, मानो मदनराजाके

[१३] १ क घ ङ तहो। २. क °इं। ३. घ अणंत°। ४. क घ ङ निडालु। ५. क ङ °ण्णउं; घ °न्नउं। ६. क ङ °ण्णउं; °न्नउ। ७. घ °ज्जल। ८. क घ ङ विंधंतु°। ९. क °इं। १०. क वीणज्झंकारइं। ११. क ङ °गुण; ख ग धण°। १२. क घ °रइं। १३. ख ग विहि। १४. °हि। १५. क घ ङ ससि खंडिवि। १६. क °इं। १७. ख ग; °प्पुहो। १८. घ मालइं°। १९. ख ग घ कामु व। २०. क °इं। २१. क ग °क्किरिय। २२. ख ग रइवय°।

गुलियाधणु विणोए[23] कामें किउ[24] गुलियाठाणु नाहिमंडलु किउ।
अइकिण्हें[25] दीहें उवरि गए[26] बद्धु वलित्तउ वररोमंचए[27]।
जणमणतुरयथट्टभामंतहो[28] कडियलु वाहियालि रइकंतहो।
रंभागब्भोरुयरइरामहो[29] तोरणखंभु व वम्महधामहो।
कुम्मायारु चलणजुयलुल्लउ दरवियसियपंकयपडितुल्लउ[30]।

घत्ता—अह ताहँ सउण्णउ[31] तं लायण्णउ[32] जो वण्णइ[33] सो कवणु कइ।
जहिं देसि न दिट्ठउ ताउ अहिट्ठिउ[34] तहिं[35] उज्जलउ सुवण्णु जइ[36] ॥१३॥

[१४]

गाहाचउक्कं—रइविप्पओयसंतत्तमयणसयणं व कुसुमसंवलियं।
धारंति ताउ विद्दुमहीरयरुइदंतुरं अहरं ॥ १ ॥
एयाण वयणतुल्लो होमि न होमि त्ति पुण्णिमाद्दियहे[3]।
[4]थिरमंडलाहिलासी[5] चरइ व चंदायणं चंदो ॥२॥
चलणच्छविसामफलाहिलासिकमलेहिं सूरकरसहणं।
चिज्जइ[6] तवं व[7] सलिलं नियय घित्तूण गलपमाणम्मि ॥३॥

स्नानघट ही हों। उनका नाभिमंडल ऐसा प्रतीत होता था, मानो कामदेवने विनोदपूर्वक गुलिया-धनुष (गुलेल) बनाया हो, जिसमें उनका नाभिमंडल तो गुलिया (गुटिका रखने-का स्थान) था और वलित्रयरूपी धनुष, जो उसके ऊपर चढ़ी हुई बिलकुल काली, दीर्घ एवं सुंदर रोमराजिरूपी प्रत्यंचासे बँधा था। उनका कटितल (नितम्ब प्रदेश) लोगोंके मनरूपी अश्वसमूहको भ्रमण करानेवाले रतिकांत (कामदेव) के अश्व क्रीड़ास्थलके समान (अतिविस्तीर्ण) था। मानो वे रम्भाके गर्भसे उत्पन्न रतिके राम- (अर्थात् मन्मथ) के भवनके तोरणस्तम्भ ही थीं। उनके कूर्माकार चरणयुगल ईषत् विकसित कमलपत्रके समान थे। उनके उस संपूर्ण लावण्यका जो वर्णन कर सके वह कौन कवि है ? यदि सारे देशमें कहीं उज्ज्वल व सुंदर वर्ण दिखाई नहीं देता, तो (निश्चयसे) उसने वहाँ उन कन्याओंको अधिष्ठित कर लिया है ॥१३॥

[१४]

रतिके वियोगसे संतप्त (अतएव अति श्वेतवर्ण) मदनकी कुसुमोंसे व्याप्त शैय्याके समान उन कन्याओंके अधर विद्रुम और हीरककी शोभासे विलक्षण थे, अर्थात् विद्रुमवर्णके उनके अधरोष्ठ हीरकके समान धवल दंतपंक्तिसे दंतुरित (स्फुरायमान) थे। 'पूर्णिमाके दिन भी मैं इनके मुखके समान होऊंगा या नहीं होऊंगा, इस शंकासे ही मानो स्थिर(पूर्ण)मंडल-की अभिलाषा करनेवाला चंद्रमा मास भर चांद्रायणव्रत करता है। उनकी चरणच्छविकी तुल्यता चाहनेवाले कमलोंके-द्वारा अपनेको गले तक जलमें डुबोकर सूर्यकी किरणोंको सहते

२३. क घ ङ विलोए। २४. क कामुंकिउं। २५. ख घ °किन्हें। २६. ख ग गए; घ गएं। २७. क घर; ङ धर°, ख ग °रोमंचिए। २८. क ङ °तुरिय°; ख ग °तुरियथट्टु°। २९. ख ग °गब्भोरु व रय°। ३०. क ङ °पंकयदल°। ३१. क ख ग ङ °ण्णउं; घ °न्नउं। ३२. क घ ङ °ण्णउं। ३३. क घ ङ °इं। ३४. ख ग घ °ट्ठउ। ३५. ङ तहि। ३६. क जइं।

[१४] १. क ङ रइविप्पिओय°। २. ख ग °होरइ°। ३. घ पुन्निमा°। ४. ख थिय°; ग पिय°। ५. क ङ °हिलास। ६. क ङ वि°। ७. क च

सलवट्टिखाइयालं[8] नाहीदुग्गम्मि तिवलिपायारे[9] ।
हरडज्झमाणकामो रोमावलिधूमिरे[10] लीणो ॥४॥
दोहउ—जाणमि एक्कु जि विहि घडइ सयलु वि जगु सामण्णु ।
जें[11] पुणु आयउ निम्मविउ[12] को वि पयावइ[13] अण्णु ॥१॥
तं लायण्णु नियवि[14] तं जोव्वणु घरि हासियकुवेरसंपयघणु ।
सायरदत्तपमुहवणिउत्तहिं वुत्तइ अरुहयासु नयजुत्तहिं ।
मित्त कुमारभावे रइवंतहिं किय पइज्ज पंचहिं[15] मि रमंतहिं ।
एक्कहो पुत्तु होइ जइ धण्णउ[16] इयरहँ चउहुँ[18] मि जायहिं[19] कण्णउ[17] ।
तो तहो पियरहिं[20] दुहियउ देवउ[21] तेण वि वरेण ताउ परिणेवउ ।
पुण्णवसेण पुत्तु तुह[22] जायउ तिहुयणभमियकित्तिविक्खायउ ।
अम्हहँ पुणु मुणालकोमलकरु कण्णचउक्कु जाउ लक्खणधरु ।
संपइ पुव्वभणिउ[17] पालिज्जउ[23] पाणिग्गहणु कुमारहो किज्जउ[24] ।
पभणइ[25] अरुहयासु नासंघमि अज्जु कल्लि किर तुम्हहँ[26] संघमि[27] ।
एवहिं तुम्हे मइँ जि फुडु वुत्तउ[28] लइ किज्जउ[29] परिणयणु निरुत्तउ ।
ठविउ विवाहलग्गु[30] धणरासिए[31] अक्खयतइयदिवसे[32] जोइसिए[33]

हुए मानो तप संचय किया जाता है । उनके रूपको देखकर कामबाणोंसे विद्ध होनेसे (उसपर क्रुद्ध हुए) महादेवके द्वारा भस्म किया जाता हुआ कामदेव मानो उनके, नाभिके नीचेकी गहरी रेखारूपी खाईसे युक्त त्रिवलीरूपी प्राकारसे घिरे हुए तथा रोमराजिके कारण धूम्रवर्णके, नाभि-दुर्गमें विलीन हो गया है । मैं तो ऐसा समझता हूँ कि एक विधि (ब्रह्मा) सारे लोक सामान्यको गढ़ता है, पर जिसने इनको गढ़ा है, वह तो कोई दूसरा ही प्रजापति है ।

(उन कन्याओंके) उस लावण्य और उस यौवनको देखकर घरमें कुवेरकी धनसंपत्तिका भी उपहास करनेवाले सागरदत्त प्रमुख न्याय-नीतिवान् वणिक्पुत्रोंने अरहदासको कहा—मित्र ! कुमारावस्थामें परस्पर प्रीतिवंत हम पाँचोंने क्रीड़ा करते हुए यह पैज (प्रतिज्ञा) की थी, 'यदि एकको भाग्यवान् पुत्र हो, व इतर चारोंको कन्याएँ हो जायें तो कन्याओंके पिताओंके द्वारा वे कन्याएँ उस-(पुत्रके पिता) को दे दी जानी चाहिएँ, व उसके द्वारा उन कन्याओंका अपने पुत्रसे परिणय करा दिया जाना चाहिए । पुण्यवश तुझे पुत्र हुआ है, जिसकी विख्यात-कीर्ति तीनों भुवनोंमें भ्रमण करती है, और इधर हम लोगोंको मृणालके समान कोमल करोंवाली, लक्षणसंपन्न चार कन्याएँ हुई हैं । तो अब पहले कहे हुए का पालन किया जाये, और कुमारका पाणिग्रहण कर लिया जाये । अरहदासने कहा—'मैं स्वयं तो कुछ निश्चय करता नहीं, आज या कल आप लोगोंकी ही खोज करता । तो लीजिये, अभी स्वयं आप लोगोंने प्रकटरूपसे जैसा कहा, तदनुसार परिणय निश्चित कर दीजिये । धनराशिमें शुक्लपक्ष-

८. ख ग °यालो । ९. क °रो । १०. क घ क °धूमिरो । ११. प्रतियोंमें 'जि' । १२. क णिम्मियउ; घ क निम्मियउं । १३. क °वइं । १४. क घ क अनु । १५. क घ क निएवि । १६. घ °हि । १७. घ क °उं । १८. ख ग °हु । १९. क °हि । २०. ख ग °रहं । २१. ख ग देविउ । २२. ख ग तुहुं । २३. प्रतियोंमें °ज्जइ । २४. क घ क °इ । २५. क घ क °णइं । २६. घ °इं । २७. क घ क संघमि । २८. क क पु° । २९. ख ग °इ । ३० ख ग विवाहु० । ३१. ख ग °रासें; घ °रासिएं । ३२. ख ग अक्खइ° । ३३. क क °सिए; ग जोईसें; घ जोइसियं ।

घत्ता—गय नियय-निवासहिं[34] पुण्णजयासहिं पंच वि वड्ढियमाणगिरि[35]
तक्खणे अवइण्णी[36] जणसंकिण्णी[36] सेट्ठिघरेहिं विवाहसिरि ॥१४॥

[१५]

पंचहिं मि घरहिं[1] पंचप्पयारु गाइज्जइ मंगलु धवलसारु।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] पंचंगु सज्जु सुम्मइ[4] वद्धावउ[5] तूरवज्जु।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] पंचमु झुणंति सरभेयहिं वज्जइ[6] महुरतंति।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] रइरसनिहाणु[7] सज्जियधणु वियरइ पंचवाणु।
पंचहिं[3] मि घरहिं[1] वण्णुज्जलीउ दिज्जंति रयणरंगावलीउ।
पंचहिं[9] मि घरहिं हियजणमणाइँ बज्झंति सुपल्लवतोरणाइँ।
इय तहिं विवाहसामग्गि जाम विलसंतु वसंतु पहुत्तु ताम।
संचरइ सुहावणु मलयपवणु विज्जाहरमाणिणिमाणदवणु[10]।
सरलावियकेरलिकुरुलभंगु[11] विरहिणितिलंगिनीसाससंगु।
सज्झइरिरणावियसुक्कवंसु[12] [13]कण्णाडिकणिरकण्णावतंसु[14]
कुंतलिकुंतलभरपत्तखलणु मरहट्ठिथोरथणवट्टवलणु[15]।

को अक्षय तृतीयाके दिन विवाह लग्न स्थापित किया गया। (तदनंतर) वे लोग जग (समस्त पौरजन) की आशाओंको पूर्ण करनेवाले अपने-अपने घरोंको गये। उन पांचोंका ही मानपर्वत बढ़ गया, और तत्क्षण उन सबके घरोंमें लोगोंके आवागमन इत्यादिसे संयुक्त विवाहश्री अवतीर्ण हो गयी ॥१४॥

[१५]

पाँचों ही घरोंमें पाँच-परमेष्ठियोंके (टि०) पाँचप्रकारके धवल व श्रेष्ठ मंगल गाये जाने लगे। पाँचों ही घरोंमें पाँच अंगोंसे युक्त बधाईके तूरोंका वाद्य सुनाई देने लगा। पाँचों ही घरोंमें पंचमरागकी धुन आलाप करता हुआ, स्वरभेदोंसे युक्त मधुर वीणावादन होने लगा। पाँचों ही घरोंमें धनुषको लिए हुए रतिरसका निधान पंचवाण अर्थात् कामदेव विचरण करने लगा। पांचों ही घरोंमें उज्ज्वल वर्णके रत्नोंकी रंगावली (रंगोली) दी जाने लगी, तथा पाँचों ही घरोंमें लोगोंके मनको आकृष्ट करनेवाले सुंदर पल्लवोंके तोरण बांधे जाने लगे। इसप्रकार जब वहाँ विवाह सामग्री हो रही थी, इतनेमें विलास करता हुआ वसंत आ पहुँचा। विद्याधर मानिनियोंका मानमर्दन करनेवाला सुहावना मलयपवन चलने लगा। केरलियोंकी कुटिल केशरचनाको सरल बनाता हुआ, विरहिणी तैलंगियोंके निःश्वास उत्पन्न करता हुआ, सह्याद्रिके सूखे बांसोंको रुणरुणाता हुआ, कर्णाटियोंके तालपत्र निर्मित कर्णावतंसको कणकणाता हुआ, कुंतलियोंके कुंतलभारको स्खलित करता (बिखराता) हुआ, मराठिनियोंके स्थूल स्तनवृत्तका

३४. ङ णिय आवासहिं। ३५. क ङ वट्टिय°। ३६. घ °ण्णी।

[१५] १. क घ ङ घरिहिं। २. क ङ °लु। ३. ख ग °हि। ४. क घ ङ °इं। ५. क घ ङ °वणु। ६. ख °हिं। ७. ग रइरसु°। ८. क घ ङ विरयइ; ख विरइय। ९. क ख ग ङ °हि। १०. क घ ङ °दमणु। ११. ख ग °कुरलभंगु। १२. क ङ विज्झइरि°; ख ग संज्झइरि°। १३. घ कन्नाडि°। १४. घ °कन्नावतंसु। १५. क ङ °थणभार°; घ °थणचार°

तावियडिवियडचुंबियनियंबु[16] उद्दीवियरइरंधीविडंबु[17] ।
झंकोलिरपरिहणपडिविहाउ पयडियमालविणिदरोरुभाउ ।
मउरियसहयारकसाइयंतु वेइल्लफुल्ल[18] पाडले मिलंतु ।
घत्ता—णं कामहो दीसइ रत्तउ वियसइ[19] फुल्ल[20] पलासहो वंकुडउ ।
कड्ढंतहो[21] कीवइं[22] विरहिणि जीवइँ[23] रुहिरलित्तु हत्थंकुडउ ॥१५॥

[१६]

ताम तहिं[1] काले उज्जाणकीलणमणो चलिउ रायाणुमग्गेण[2] नायरजणो ।
मंदमंदारमयरंदनंदणवणं[3] कुंद-करवंद-मचकुंद[4] चंदणघणं ।
तरलदलताल-चललवलि[5]-कयलीसुहं दक्ख-पउमक्ख-रुद्दक्खखोणीरुहं ।
बिल्ल-वेइल्ल-चिरिहिल्ल-सल्लइवरं अंबजंबीर-जंबू-कयंबूवरं[7] ।
करुणकणवीर-करमर-करीरायणं नाग-नारंग-नग्गोहनीलंबरं ।
कुसुमरयपयरपिंजरियधरणीयलं तिक्खनहचंचुकणइल्ल[8]-खंडियफलं ।
भमियभमरउलसंछइयपंकयसरं मत्तकलयंठिकलयंठमेल्लियसरं[10] ।
रुक्खरुक्खम्मि कप्पयरुसियभासिरो रइवराणत्त[11]अवइण्णमाहवसिरी ।

मर्दन करनेवाला, ताप्तीनटकी तरुणियोंके विकट अर्थात् विस्तीर्ण नितम्बोंको चूमनेवाला, और रतिशील आन्ध्र युवतियोंकी कामपीड़ाको उद्दीप्त करनेवाला, हवाके झोंकोंसे परिधानके उड़नेसे मालविनियोंके अतिसुंदर ऊरुभागको ईषत् प्रकट करनेवाला, बौर लगे हुए सहकारवृक्षोंको कषायला (रस- युक्त) बनाता हुआ, तथा विचकिल्लके फूलोंको पाटल पुष्पोंसे मिलाता हुआ वसंत आ गया। फूले हुए पलाशकी लाल-लाल बोंडियाँ ऐसी खिलने लगीं मानो कातर विरहिणियोंके प्राणोंको निकालता हुआ कामके हाथका रुधिरलिप्त, बांका अंकुश ही हो ॥१५॥

[१६]

उस समय उद्यान क्रीड़ाकी इच्छासे नागरजन राजमार्गसे चल पड़े। उस नंदनवनमें मंदारकी मंद मकरंद फैल रही थी; और वह कुंद, करवंद, (करौंदा ?) मुचकुंद तथा चंदन वृक्षोंसे सघन था। वहाँ तरल पत्तोंवाले ताल, चंचल लवली और सुंदर कदली तथा द्राक्षा, पद्माक्ष एवं रुद्राक्षके वृक्ष थे। बेल, विचिकिल्ल, चिरिहिल्ल, तथा सुंदर सल्लकी और आम, जंबीर (नींबू), जंबू, तथा उत्तम कदंब थे। कोमल कनैर, करमर, करीर (करील ?), राजन (सं० राजादनी), नाग, नारंगी, व न्यग्रोधके वृक्षोंसे अंबर नीला (हरित) हो रहा था। कुसुमरजके प्रकर (समूह) से वहाँका भूमिभाग पिंगलवर्ण हो गया था। शुकोंके तीखे नख व चंचुओंसे वहाँके फल खंडित थे। घूमते हुए भ्रमरकुलोंसे पंकज-सरोवर आच्छादित था, और मत्त कलकंठियोंके मधुर कंठसे स्वर छूट रहा था। रतिपतिकी आज्ञासे वृक्ष-वृक्षमें कल्प-वृक्षकी शोभासे भास्वर माधवश्री (वसंत-शोभा) अवतीर्ण हुई। प्रत्येक वृक्ष रति और काम-

१६. क ङ °कुंचियनि°। १७. ख ग °रयरंधी°। १८. ख ग वेयल्ल°। १९. क °सइं। २०. ग फुल्ल°। २१. क ङ कट्टं°। २२. क ख ङ °इं। २३. क ग घ ङ °इं।

[१६] १. ख ग तहिं। २. ख ग रायाण°। ३. क °पयरंद°। ४. ख ग वय°। ५. ख ग °चवलि। ६. ख ग बिरि°। ७. क कयंवुं°। ८. ख ग °नहु। ९. ख ग °यल्ल। १०. ख ग °कलयट्ठमें°। ११. ख ग अवयण्ण°; घ अवइन्न°।

रुक्खरुक्खम्मि सविलाससुब्भासियं[१२] हसिय-रइकाम-मिहुणं समावासियं।
जंबुसामी वि कुमरेहिं सहुँ लीलए कामिणीमज्झे कामु व्व तहिं[१३] कीलए।
घत्ता—डोल्लहरि[१४] व लग्गी कंठहँ[१५] लग्गी वल्लहमुहचुंबणु[१६] करइ[१७]।
थणरमणविडंबिणि का वि नियंबिणि निहुअणकेलिहिं[१८] अणुहरइ ॥१६॥

[१७]

क वि कामिणि अणुणइ[१] कंतु केम परिहासापेसल भणइ एम।
कुरओ[२] सि न वल्लह जाणिओ सि साणंदु जं न[३] आलिंगिओ सि।
निरवेक्खु[४] वयणमइराहे[५] जं जि केसररुक्खो सि न होसि तं जि।
सच्चउ कलिओ सि असोयरुक्ख लइ पायपहारें समइ[६] मुक्ख।
विवरीयवयण क वि पणयकुद्ध [७]नियकज्जलुद्धधुत्तेण मुद्ध।
तउ मुहहो जणियसयवत्तभंति आवंति निहालहि[८] भमरपंति।
इय भणिय जं जि सदवक्कभग्ग[९] परियत्तवि दइयहो कंठि लग्ग।
क वि भणिय मुद्धे अच्छिहिं[१०] विराइ नीलुप्पलसंकइ भमरु धाइ[११]।
इय मिसिण नयण झंपणु करंतु चुंबइ नववहुवहे[१२] वयणु कंतु।
तिलएण करमि तउ तिलउ वाले[१३] नियभालु[१४] निवेसिवि पिगहे[१५] भाले।

का उपहास करनेवाले (सुंदर) मिथुनोंके सम+आवास अर्थात् सहवाससे समुद्भासित हो गया। जंबूस्वामी भी अन्य कुमारोंके साथ लीलापूर्वक कामिनियोंके बीच कामदेवके समान क्रीड़ा करने लगे। डोलेके समान लटककर कंठसे लगी हुई स्तनों व रमणों-(के भार) से कदर्थित कोई सुंदरी वल्लभका मुखचुम्बन करते हुए सुरत क्रीड़ाका अनुहरण करने लगी ॥१६॥

कोई कामिनी अपने कांतको इसप्रकार मनाने लगी, और परिहासपूर्वक ऐसे मधुर वचन बोली—हे वल्लभ मैंने जाना नहीं था कि तुम कुरत (श्लेष-कुरुवक वृक्ष) हो जो कि मुझसे आलिंगित होनेपर भी प्रसन्न नहीं हुए (विरोधाभास); (विरोध परिहार) अथवा तुम-वह (कुरुवक वृक्ष) भी नहीं हो, क्योंकि तुम तो वदन-मदिराके प्रति भी निरपेक्ष हो (उसे केवल देखते ही हो, आलिंगन-चुंबन द्वारा पीते नहीं;) अतः तुम केशर-(तिलक)वृक्ष (के समान) हो (जो सुंदरी नवयुवतीके कटाक्ष मात्रसे ही प्रफुल्लित हो उठता है, उसके आलिंगन-चुंबनकी अपेक्षा नहीं रखता)। अब मैंने सत्यतः तुम्हें जान लिया कि तुम तो ऐसे अशोकवृक्ष (के समान) हो जो मूर्ख पादप्रहारको प्राप्त करके शांत (प्रसन्न-प्रफुल्लित) होता है। कोई मुग्धा अपने (प्रणय) कार्यके लोभी धूर्त्तसे प्रणयक्रुद्ध होकर मुँह फेर लेती है; (तब धूर्त्त कहता है) तुम्हारे मुखसे शतपत्र (कमल) की भ्रांति करके झपटती हुई भ्रमर पंक्तिको तो देखो। ऐसा कहनेसे भग्न-मान होकर वह तुरंत दयिता (प्रेमी) के कंठसे लग जाती है। कोई

१२. ख ग सविलासु०। १३. ख ग तह। १४. क ख ग क डोल°। १५. ख ग °ह। १६. क ख क °मुहि° चुं°; ख ग °चुवण। १७. क °इं। १८. क मिहुअण°।

[१७] १. क °णइं। २. ख ग कुर°। ३. क ख ग क ज ण्ण। ४. ख ग निरुविक्ख। ५. ख ग °हि। ६. ग पणइ°। ७. प्रतियों में 'णिय°'। ८. ख ग °लहि। ९. क सदवक्क°। १०. ख ग अच्छहि। ११. क धाइं। १२. क ख क °वहुयहि। १३. प्रतियोंमें 'बालि'। १४. ख °तालु। १५. क क °हिं; ख ग ख °हि।

परिछलवि[16] कवोलहिँ दिंतु नहरु आपीलइ[17] दंतहिँ[18] महुरु अहरु।
आवाणाए क वि पिक्खेवि स-रूउ महुघडे पडिबिंबिउ निययरूउ।
पिय पेक्खु पेक्खु किं भणहि[19] मज्झे तप्पणदेवय अवइण्ण[20] मज्झे।
क वि पियगहियाहरु[21] वहइ वयणु छिज्जंतरोसु[22] पसरंतमयणु।
पाणोसरंत मइरं[23] विहाइँ फलिहमउ अवाणयचसउ[24] नाइँ[25]।
मयनाहितिलउ[26] विरएवि वयणे किउ चंदसरिसु मुहुँ[27] दीहनयणे[28]।
क वि पिप्पण[29] भणिय लइ एउ[30] संतु[31] महिलाकिउ सयलु वि कूडमंतु।
उज्जाणे तम्मि जंबूकुमारु आलावइ क वि वड्ढंतु[32] मारु।
अब्भासियउ हंसहिँ[33] गमणु तुज्झु कलयंठिहिँ कोमललविउ[34] बुज्झु।
पडिगाहिउ कमलहिँ चलणल्हासु[35] तरुपल्लवेहिँ करयलविलासु।
सिक्खिउ वेल्लिहिँ भूवंकुडत्तु सीसत्तभाउ सव्वु[36] वि पवत्तु[37]।

घत्ता—दावंतहो तं वणु रंजियपियमणु बोल्लु[38] कुमारहो कलु कलइ।
पयडियबहुभावहिँ वंकालावहिँ कामिणि का वि परिच्छलइ[39] ॥१७॥

कहता है—मुग्धे ! तेरी आंखें ऐसी सुंदर हैं कि नीलोत्पलकी शंका करके भ्रमर झपट रहे हैं, इस बहानेसे नेत्रोंको झांपकर वह नववधूका मुख चूम लेता है। कोई यह कहता हुआ कि हे बाला, अपने तिलकसे तुझे तिलक लगाऊँगा, अपना मस्तक प्रियाके मस्तकपर रखकर, उसे छलकर कपोलोंपर नखचिह्न बनाता हुआ कांताके अधरोंको दांतोंसे काट लेता है। कोई कामिनी आपानक (मधुशाला) में रखे हुए मधुघटमें प्रतिबिम्बित अपने रूपको देखकर कहती है, प्रिय देखो ! देखो ! भार्या क्या कहती हो ? (ऐसा पूछनेपर) वह बतलाती है—मद्यमें तर्पण देवता (?) उतर आयी हैं। कोई प्रियसे काटे हुए अधरयुक्त मुखको धारण कर रही है, जिसका रोष क्षय हो रहा है, और मदन बढ़ रहा है। (हाथोंमें-से) चूतो हुई अथवा पी जाती हुई मदिरासे युक्त हाथ ऐसे शोभायमान हो रहे हैं मानो (मदिरा) पान करनेके स्फटिकमय चशक (प्याले) ही हों। किसीने कहा—हे दीर्घनयना तूने (निष्कलंक) मुखपर कस्तूरीका तिलक लगाकर उसे चंद्रमाके समान (सकलंक क्यों) कर दिया ? किसी स्त्रीके प्रिय ने कहा—लो यह सारा (प्रपंच) महिलाकृत कूट मंत्र है। उस उद्यानमें (कामिनियोंके) कामको बढ़ाते हुए जंबूकुमार किसी कामिनीको कहने लगे—हंसोंने तुझसे गमनका अभ्यास किया, कलकंठोने कोमल आलाप करना जाना, कमलोंने चरणोंसे नाचना सीखा, तरुपल्लवोंने तुम्हारी हथेलियोंका विलास सीखा, तथा बेलोंने तुम्हारी भौंहोंसे बांकापन सीखा। इसप्रकार ये सब तुम्हारे शिष्य भावको प्राप्त हुए हैं।

उस वनको दिखलाते हुए अपने प्रियका मनोरंजन करती हुई कोई कामिनी कुमारके

१६. क घ ङ °छलिवि। १७. क घ ङ आवी°। १८. ख ग °हि। १९. क घ ङ °हिं। २०. क ङ °यण्ण; घ °इन्न। २१. ख ग °साहरु। २२. क ङ ज्झिज्जंत°; ख ग भिज्जंत°। २३. क घ ङ °मइरा। २४. क ख ग °वसउ। २५. क ङ णाइं; ख ग नाइ। २६. प्रतियोंमें मयणाहि°। २७. ख ग महु। २८. क ङ °णयणि; घ °नयणि; ख ग °नयणु। २९. क ङ पियेण। ३०. क ङ एहु। ३१. क ङ सरु; सरंतु। ३२. क ङ वट्टंतु। ३३. क °हि; ख ग हंसुहि। ३४. ख ग °लविय। ३५. क ङ चरण°; घ वलण°। ३६. सच्चु; ङ सव्व ३७. ख ग पवुत्तु; घ पउत्तु। ३८. क ङ बोलु; घ बुल्ल। ३९. क ङ परिक्खलइ; ख ग घ पडिक्खलइ।

[१८]

नच्चंता मोरा मुद्धि जोइ तोरा नच्चंतु न दोसु कोइ[1] ।
दीसइ सरि कारंडाण पंति जा तउ[2] रिउ घरिणिहु[3] कवणु भंति ।
सरु कोइलाए[4] कोमलु जि वहइ[5] जं मयणु चडाविए[6] चावे[7] वहइ[8] ।
एयं च पियालवणं वियाण दुल्लहउ नवर दूहवजणाण ।
सारंगं गय सारंगि दच्छि[9] ता नचउ वायहु[10] पडहु गच्छि[9] ।
पिय पेक्खु[11] इंदगोवयविरेणु लइ मग्गि दुद्धु तो कामधेणु ।
जले कंकु व हंसो[12] चेय मंदु तुहुँ[13] सो च्चिय कंकु जलम्मि मंदु ।
सुउ विलवइ सुंदरि कवण वाह संठवि न परायउ कज्जु[14] नाह ।
माहे सरु सिसिरें दड्ढु[15] जाणु मरइ जि तिदंडे जसु निच्चण्हाणु[16] ।

मधुर बोलको सुन लेती है, और अनेक प्रकारकी वक्रोक्तियों द्वारा विविध (शृंगारादि) भावों-को प्रगट करती हुई इसप्रकार छलना करती है ॥ १७ ॥

[१८]

स्वामीने कहा—मुग्धे, नाचते हुए मयूरोंको देखो ! सुंदरीने (श्लेषार्थ मोरा-मेरा ग्रहण करके वक्रोक्ति की—तोरा अर्थात् तेरे नाचनेमें कोई दोष नहीं है । स्वामीने कहा—सरोवरमें कारंड पक्षियोंकी पंक्ति दिखाई दे रही है; सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे क्या (रंडा–विधवा) विधवाओंकी पंक्ति है, तो वह निश्चयसे तुम्हारी शत्रु-गृहिणियोंकी है । स्वामीने कहा—कोकिलाका कोमलस्वर प्रवृत्त हो रहा है, सुंदरीने छलोक्तिकी—अरे यह पूछते हो कि वह कोकिलाके स्वर-के समान कोमल कौन-सा शर है, जो मार डालता है ? वही जिसको मदन धनुषकी टंकारपूर्वक चलाकर मारता है । स्वामीने कहा—अरे इस प्रियालवृक्षोंके वन (उद्यान) को जानो (देखो) ! सुंदरीने वक्रोक्ति की—अरे प्रियाओंका आलाप दुर्भगजनोंके लिए दुर्लभ है । स्वामीने कहा—चतुर हरिणी हरिणके पास चली गयी; सुंदरीने छलोक्ति की—दक्ष सारंगी (वाद्य) सारंग (वाद्य) के स्वरमें मिल गयो तो फिर नाचो और पटह बजाओ तो जानें । स्वामीने कहा—प्रिये इस विरेणु अर्थात् रजरहित निर्मल इंद्रगोप (खद्योत) को देखो, तो सुंदरीने व्यंग्योक्तिकी—यदि इंद्रगोपदविरेणु, अर्थात् यदि स्पष्टतः इंद्रकी गायके चरणोंकी धूल देख रहे हो तो फिर वह कामधेनु है, (इससे) दूध मांगो । स्वामीने कहा—जलमें कंक (बक) पक्षी हंसके समान मंदगतिसे चल रहा है, सुंदरीने व्यंग्य किया—तू ही बड़ा जल(क्रीड़ा) में मंद कंक है । स्वामीने कहा—सुंदरी यह शुक ऐसा विलाप कर रहा है, इसे क्या पीड़ा है ? सुंदरीने वक्रोक्ति की—हे नाथ यदि सुत (पुत्र) रो रहा है, तो क्या बात है, उसे धैर्य दीजिये, यह कोई पराया कार्य नहीं है । स्वामीने कहा—माघ मासमें (कमल) सरोवर शिशिरसे दग्ध हो गया, ऐसा जानो; तो सुंदरीने व्यंग्य किया—यदि कोई माहेश्वर अर्थात् महेश्वरका भक्त तुषारपात-से दग्ध हो गया (अर्थात् मर गया), तो वह त्रिदंडी तो निश्चय मरेगा, जिसका नित्य (त्रिसन्ध्या)

[१८] १ क °इं । २. क घ ताउ । ३. क क °णिहुं; ख घरणेहु; ग °णेहि; घ घग्णिहि । ४. क क °लाइं । ५. क हवइं; क हवइ । ६. क क °विय, घ °एवि । ७. ख ग चाए । ८. क क गहइ । ९. क क °च्छ । १०. क क °हि; घ °हिं । ११. क क पिक्खि । १२. क अ हंमो । १३. क क तुह । १४. क ख ग क कज्ज । १५. क क दट्ठु । १६. ख ग निच्चहाणु; घ °न्हाणु ।

सुद्धिहि[17] कारणु कं तावसाण[18] का सुद्धि कंत कंता-वसाण[18] ।
केरिस तुहुँ वंकी तणुयदेह[19] हउँ[20] नाह न सा हरिणंकदेह[21] ।
दोहउ—गोरी मुद्धि[22] न सामली[23] तंबाहरेण सुकंति ।
तंबा वसहें[24] हरेण पुणु गोरी रमिय न भंति ॥१॥
घत्ता—जइ साहवि[25] सक्कइ अहव न सक्कइ[26] मयणु वि तं सिंगाररसु ।
दूरंतरे आरिसु कइ[27] अम्हारिसु[28] कह[29] परियाणइ[30] विसयकसु[31] ॥१८॥

[१९]

इय तहिं वणे माणिय कामवेए[1] उप्पण्णइ[2] मिहुणहँ[3] सुरयखेए[1] ।
पासेयसित्त मंडणे फुसंति वोलीणए[4] छणवासरे वसंति ।
खरकिरणतरणितावियधरम्मि जलकीलहिं[5] सव्व वि गय सरम्मि ।
सनियंसणु भूसणु तडि तिएहिं[6] मुच्चंतु[7] नियवि चिंतिउ पिएहिं[8] ।
खणु अच्छहु तडे वियडाइँ ताम रमणाइँ सुदिट्ठइँ[9] करहुँ[10] जाम ।

स्नान होता है । स्वामी ने कहा—तापसोंके लिए जल ही शुद्धिका कारण होता है; तो सुंदरीने फिर व्यंग्य किया—कांताके वशवर्ती वेचारे रागीजनोंकी जलस्नान मात्रसे क्या शुद्धि ? स्वामीने कहा—तुम्हारी पतली देह कैसी बांकी है ? तो सुंदरीने छलोक्तिसे कहा—अरे नाथ वह मैं नहीं हूँ, बांकी तो वह चंद्रकला है । स्वामी ने कहा—हे मुग्धे आताम्र अधरोंको धारण करनेसे केवल गौरवर्ण नायिका ही सुकांता, अर्थात् सुष्ठुरमणीय नहीं होती, बल्कि उससे सांवली सुंदरी अधिक सुरमणीय होती है; तो सुंदरीने व्यंग्य किया—अरे ! तंबा अर्थात् गो, के साथ हर (महादेव) ने रमण नहीं किया, तंबाका रमण किया वृषभ अर्थात् महादेवके नांदीने, और महादेवने रमण किया गौरी (पार्वती) से, इसमें कोई भ्रांति नहीं । उस श्रृंगाररसका यदि (स्वयं) मदन ही वर्णन कर सके तो कर सके; अथवा वह भी उसका वर्णन नहीं कर सकता; फिर हम जैसा मंदबुद्धि कवि तो दूर ही रहे; क्योंकि वह श्रृंगार (काम-भोगादि) की विधियोंको क्या जाने ? ॥ १८ ॥

[१९]

इस तरह वहाँ उस वनमें कामदेवको माननेवाले अर्थात् कामशास्त्रके अनुसार संभोग क्रीड़ा करनेवाले मिथुनोंको सुरतखेद (थकान) उत्पन्न हुआ और प्रस्वेदसे सिक्त होनेपर उसे वस्त्रसे पोंछा । वसंतोत्सवका दिन व्यतीत होनेपर जबकि पर्वत प्रखर किरणोंवाले सूर्यसे तप्त हो गया था, सभी जलक्रीड़ाके लिए सरोवरपर गये । वस्त्रोंसहित भूषणोंको प्रियाओंके-द्वारा तटपर छोड़े जाते हुए देखकर उनके प्रियजनोंने सोचा—अरे ! क्षणभर तब तक (प्रिया) तटपर खड़ी रहे, जब तक कि उसके विस्तीर्ण रमणोंको अच्छी तरह देखा हुआ कर लूं ।

१७. क ख ग ङ °हिं । १८. क ङ °णु । १९. क ङ तणुअ° । २०. क हउ । २१. क घ ङ °रेह । २२. ख ग घ मुद्ध । २३. क ङ सामलिय । २४. क ङ °हिं; । २५. क घ ङ साहिवि । २६. ख ग य° । २७. क ङ कय । २८. क °सिसु; । २९. क किहं; ङ किह । ३०. क घ ङ °णइं । ३१. क ङ सयलु° ।

[१९] १. क ङ °इ । २. क घ ङ °ण्णइं । ३. क ङ °र्णाहि । ४. क ङ °णइं । ५. क ङ °हिं । ६. घ ठिएहिं । ७. ङ मुंचंत । ८. ङ °हि । ९. ख ग °इ । १०. प्रतियोंमें 'करहु' ।

तरुणियणु विसइँ[11] वोलियवरंगु [12]थणसिहरखलियलहरीतरंगु ।
क वि सलिलझलक्कहि[13] नियय कंतु अहिसिंचइ[14] नयणहिं[15] हत्थु दिंतु ।
चलरमण[16] तरइ क वि पियहो[17] पुरउ सुमरावइ णं[18] विवरीयसुरउ ।
काहि[19] वि भमरेण[20] तरंतियाहि[21] न उ जाणिउ[22] कमलु[23] न वयणु ताहि[24] ।
क वि ढिल्लनियंसण[25] गहिरनीरे[26] तलवायहे[27] हलुयत्तणु[28] सरीरे ।
थावंति[29] संति हल्लिरवरंग[30] उरसोल्लिण[31] घणपेल्लियतरंग[32] ।
एक्केण नवर हत्थेण तरइ बीएण पडंतु कडिल्लु धरइ ।
उब्भूसिउ[33] काहे वि तणु विहाइ[34] तारुण्णकंदु[35] अंकुरिउ नाइ[36] ।
उज्जाणे का वि रइखेयभग्ग जलमज्झे रमइ[37] पियखंधे लग्ग ।
नहराउणु[38] तहे[39] थणवट्टु भाइ अंकुसिउ कामकरिकुंभु नाइ ।
दरल्हसिउ[40] चीरु क वि गुज्झु वहइ णं मयणावासतवंगु सहइ[41] ।
रोमावलि तिवलिहि[42] कहे[43] वि वसइ[44] णं कालभुयंगिणि[45] तरुण डसइ[46] ।

तरुणियाँ जलमें प्रवेश करने लगीं, तो जलतरंगें उनके नितंबोंको पार करके, स्तन शिखरोंपर आकर (उन्हें पार न कर पानेसे) स्खलित हुईं । कोई जलमें अपने कांत (की छवि) को झलकते हुए देखकर, नेत्रोंपर हाथ रखकर अभिषेक करने लगी । कोई चंचल रमणोंवाली प्रिया, प्रियके सामने इस प्रकार तैरने लगी, मानो विपरीत सुरतका स्मरण दिला रही हो । एक भ्रमर न तो किसी तैरती हुई सुंदरीके मुखको ही पहचान सका, और न कमलको (अर्थात् तैरती हुई सुंदरीके मुख व कमलमें कोई विवेक नहीं कर सका) । कोई शिथिलवसना गंभीर जलमें तलस्पर्शी गतिसे शरीरमें हलकापन आनेसे, अपने कंपनशील नितंबप्रदेशको स्थिर करती हुई, अपने उरस्थलमें छिपे हुए (स्तनोंरूपी) घनसे तरंगोंको प्रेरित करती हुई, केवल एक हाथसे तैरती हुई, दूसरेसे गिरते हुए कटिवस्त्रको संभाल रही थी । किसीका भूषा (वस्त्राभूषण-विलेपनादि) रहित शरीर ऐसा शोभायमान हो रहा था, मानो तारुण्यरूपी वृक्षका नवीन अंकुर ही उदित हुआ हो । उद्यानमें रतिक्रीड़ाके आयाससे थकी हुई कोई कामिनी प्रियके कंधेसे लगकर जलमें रमण कर रही थी तथा नखक्षतसे अरुण हुआ उसका वर्तुल-स्तन ऐसा भासित हो रहा था मानो मदन-हस्तिके कुंभस्थलपर अंकुश मारा गया हो । कोई ईषत् खिसके हुए वस्त्र-से (दीखनेवाले) गुह्यांगको ऐसा धारण कर रही थी, मानो मदनके आवासका तवंग (छज्जा ?) शोभायमान हो रहा हो । किसीकी त्रिवलीपर रोमावलि ऐसी बसती थी, मानो तरुणोंको डँसने-

११. क ङ °इ । १२. ख ग घ °दलिय° । १३. घ °क्कहिं । १४. क अह° । १५. ख ग °णिहिं । १६. ख ग चंचलरव; क ङ °रवण । १७. क ङ °हं; घ चलण; ख ग °ह । १८. प्रतियोंमें 'णि' । १९. क काहं; ङ काह । २०. ख ग मम° । २१. ख ग भरंतियाहं । २२. क ङ °उं । २३. ख ग घ वयणु न कमलु । २४. ख ग ताहिं । २५. क कटिल्ल°; ख ग ढिल्लि° । २६. ख ग गहिय° । २७ क °डहिं; घ °यहिं; ङ °डहि । २८. क ङ °अतणु । २९. ख ग घ वावंति । ३०. घ हल्लिय° । ३१. क घ ङ °सल्लिण । ३२. क घ ङ थण° । ३३. घ उद्धसियउ । ३४. घ °इं । ३५. घ तारुन्न° । ३६. क ङ णाइं; घ नाइं । ३७. क घ ङ °इं । ३८. क ङ णहिं°; ख ग °रारणु । ३९. क ङ तहि; घ तहिं । ४०. क ङ °सिय । ४१. क °इं । ४२. क ङ घ °लिहिं । ४३. क घ ङ कहिं । ४४. क कालु भुय° ।

जलल्लोललुलावियपरिहणाहे[45] पिउ मवइ रमणु[46] दिट्ठिए[47] धणाहे[48] ।
केण वि विडेण दूरंतराउ वुड्डेविणु खेडें धरवि[49] पाउ ।
बोलिज्जमाण पुक्करइ दासि धाहावइ कुट्टणि थुक्क पासि ।
घत्ता—करचरणपहारहिँ थणपब्भारहिँ नहरचवेडहिँ जज्जरिउ ।
तं सरवरपाणिउ[50] जुवइहिँ माणिउ[51] सुहयमणूसहो अणुहरिउ ॥१९॥

[२०]

जलकील करेवि कमलायराउ नीसरियइँ[1] मिहुणइँ[1] सरवराउ ।
छुडु छुडु जि सइच्छए[2] कीलियाइँ छुडु छुडु पोत्तइँ[3] निप्पीलियाइँ ।
छुडु छुडु जि नियच्छइँ[4] परिहणाइँ छुडु छुडु लाइयइँ विलेवणाइँ ।
छुडु छुडु जंपाणइँ सज्जियाइँ छुडु छुडु गमतूरइँ वज्जियाइँ ।
पल्लाणियाइँ छुडु[5] वाहणाइँ निव नियडइ[6] ढुक्कइँ साहणाइँ ।
छुडु छुडु मंडलवइ बद्धपट्टु[7] नंदणवणाउ छुडु पुरे पयट्टु[8] ।
तहिँ अवसरि पडिमयगलगलत्थि सेणियमहरायहो पट्टहत्थि ।
नामेण विसमसंगामसूरु [9]कुंभयलुच्चाइयचंदसूरु ।
दंतग्गहुलणहयदिसकरेणु मयजलरेल्लावियधरणिरेणु ।
निट्ठविय मेंठु पयडियदुवालि चलकण्णझडप्पियछप्पयालि ।

वाली कालीनागिनी ही हो । कोई प्रिय, जलकी कल्लोलोंसे जिसके वस्त्र इधर-उधर कर दिये गये थे, ऐसी अपनी धन्याके रमणभागको दृष्टिसे माप रहा था । किसी विटके द्वारा दूरसे ही डुबकी लगाकर क्रीड़ापूर्वक पैर पकड़कर डुबायी जाती हुई दासी पुकार मचाने लगी; तब पास ही खड़ी हुई कुट्टनी जोरसे चिल्ला पड़ी (जिससे उसकी पुकार किसीको सुनाई न दे) । कर और चरणोंके प्रहारों, स्तनोंके तटों, तथा नखोंकी चपेटोंसे जर्जरित वह सरोवरका जल युवतियोंके-द्वारा ऐसा माना गया, माना उसने किसी सुभग मनुष्यका अनुसरण किया हो ॥ १९ ॥

[२०]

मिथुन कमलसरोवरसे (जल) क्रीड़ा करके निकल पड़े । पुनः-पुनः यथेच्छ क्रीड़ा की गयी, फिर वस्त्र निचोड़े गये, परिधान पहने गये और विलेपन लगाये गये । फिर पालकियाँ सजाई गयीं और चलनेके बाजे बजाये गये । वाहनोंपर पलान लगाये गये और सारा लशकर राजाके पास जुट गया । फिर शीघ्र ही पट्टबद्ध-मंडलाधीश नंदनवनसे पुरीकी ओर प्रवृत्त हुआ । उसी समय महाराज श्रेणिकका, शत्रु गजोंको उठाकर फेंक देने वाला 'विषमसंग्रामसूर' नामक पट्ट हाथी अपने कुंभस्थलसे चंद्र और सूर्यको उचाटता हुआ, अपने दाँतोंके अग्रभाग (की हूल) से दिशागजोंको आहत करता हुआ, मेंठको मारकर अपने कानोंके झपाटेसे षट्पदों (भ्रमरों) को

४५. ख ग घ °ललावियपरि°; क घ °णाहिं; रु °णाहि । ४६. रु रवणु । ४७. क रु दिट्टिय; ख ग दिट्ठेइ । ४८. क °हिं; ख ग °थ°; घ रु °हि । ४९. क घ रु धरिवि । ५०. क घ रु °पाणिउं । ५१. क घ रु °उं ।

[२०] १. ख ग °इ । २. क घ रु °च्छइ; ख ग सइं° । ३. ख ग घ °इ । ४. क ग °च्छइ; ख ग °त्थइ; घ °त्थइं । ५. क रु णिरु । ६. ख ग °डइं । ७. क ख घ रु °पट्ट । ८. प्रतियोंमें 'पयट्ट' । ९. ग °कुंभइलु° ।

उद्दंडसुंडकयसलिलविट्ठि पयभारकडक्कियकुम्मपिट्ठि ।
घत्ता—दुद्धररिउबलहरु णं नवजलहरु [10]गरुवगज्जिरवभरियदरि ।
जणमारणसीलउ वइवसलीलउ[11] सो संपत्तउ तेत्थु[12] करि ॥२०॥

[२१]

कहिं पि तेण हत्थिणा विसालसाल-सल्लई-तमालमाल-तुंगताल-जाइजाल-नायवल्लि-
मल्लिलिंब[1]-जंबुलुंबि-उंबरंब-सक्कयंब[2]-पक्कपिंगमाहुलिंग-दालिमालि-चंदणद्द-कंद[3]-
कुंद[4]-मंदमार-सिंदुवार-देवदारु[5]-चारुचार[6]चूरिया[7] ।
कहिं पि डोहिऊण दीहदीहिया[8]-दरुच्छलंतमच्छपुच्छविच्छुरंत[9]वारिलोलमाण[10]-
संचरंतचंचरीयचुंबिएहिं सुंडदंडतोडिएहिं वेल्लिजालजोडिएहिं भूमिभायसूडिएहिं
वंकएहिं[11] पंकएहिं[11] कद्दमेल्लकुल्लतल्लपूरिया[12] ।
कहिं पि मग्गलग्गभग्गआसवार-चम्मजट्ठिघायघुम्ममाण[13]-नीसरंतवाहथट्ट-
तिक्खनक्खखुण्ण[14]-खोणिमंडलाउ उट्ठिएण रेणुणा निरुद्धचक्खुथक्ककंपिरंग-
कामिणीकरं करेण धारिऊण धामिरेण कामुएण कुट्टणी[15] विलुट्टणी[16] विलोट्टिया ।

झड़पता हुआ नगरीके द्वारपर प्रगट हुआ । सूँड ऊँचा करके जलकी फुहारें छोड़ते हुए उसने अपने पद्भारसे (पृथ्वीको अपने ऊपर धारण करनेवाले) कूर्मकी पीठको कड़कड़ा दिया । दुर्द्धर्ष शत्रुओंके बलको हरण करनेवाला, नये मेघके समान अपने गर्जनरवसे कंदराओंको भरता हुआ व लोगोंको मारनेमें प्रवृत्त वह हाथी वैवस्वत (यम) के समान मृत्युलोला करता हुआ वहाँ आ गया ॥ २० ॥

[२१]

कहीं उस हाथीने विशाल साल और सल्लकी व तमाल वृक्षोंकी पंक्तियाँ, उत्तुंग ताल, परस्पर गुँथकर जालके समान बनी हुई नागलता, मल्लि, निंब, जंबूवृक्षोंका कुंज, उंबर, आम्र व सुंदर कदंब, पके हुए पिंगलवर्ण मातुलिंग, दाड़िमकी पंक्तियाँ, हरे चंदनवृक्ष, विशाल कुंद, मंदमार, सिंदुवार, देवदारु तथा सुंदर चिरौंजीके वृक्ष चूर-चूर कर डाले । कहीं बड़ी दीर्घिकाओंमें घुसकर, ईषत् उछलते हुए मच्छोंकी पूँछोंसे छिटकते हुए जलसे क्रीड़ा करते हुए, संचरणशील चंचरीकोंसे चुंबित व अपने ही शुंडादंडसे तोड़े हुए, लता जालसे संयुक्त, व भंजन करके भूमिभागपर डाले हुए वांके पंकजोंसे छोटी नदी (अथवा नाले) के कर्दमयुक्त तलको पूर दिया । (ऐसी अवस्थामें) कहीं मार्गमें पड़नेवाले व जिनके सवार भाग गये थे और जो चर्मयष्टि अर्थात् चाबुकके आघातसे चक्कर खा रहे थे, ऐसे घोड़ोंके समूहोंके निकलनेसे उनके तीक्ष्ण खुरोंसे खुदे हुए पृथ्वीमंडलसे उठनेवाले धूलसे आँखें अवरुद्ध हो जानेके कारण थर-थर काँपती हुई कामिनीके हाथको हाथसे पकड़कर किसी गर्वीले कामुकने झूठ बोलनेवाली कुट्टनीको

१०. ख ग घ गरुय° । ११. क ड वयवस° । १२. क ड तत्थ; घ तित्थु ।

[२१] १. क ड °मल्लिणिंब° । २. ख ग संकयंब । ३. क ड °तुंद । ४. घ °कंद । ५. घ °दार । ६. क ड °चारु । ७. ख चूलिया । ८. ख ग दीहि° । ९. क ड °विच्छरंत । १०. क घ ड °लोललोलमाण° । ११. ड °एहि । १२. क घ ड कद्दमल्ल° । १३. क ड °हम्ममाण । १४. घ °खुण्ण । १५. क ड कुट्टिणी । १६. ख ग में विलु° नहीं ।

कहिं पि संचरंतहत्थियारफारनट्ठघंठ[17]-तिक्खनक्खखुण्णखोणि[18]-कोंतकोडि-घट्टणेण[19] दोमियंगहत्थिणीपमुक्कचिक्कराडि-[20]चंचलुच्चलंतनट्ठगुंठि[21] पट्टिवाहरं[22] अलंभिरी विसट्टवत्थघल्लियानरिंदसंदणीए[23] उट्ठिउं न पारए तरट्टि खोट्टिया[23] ।

किं च[24]—तओ पेल्लियं झत्ति जाणेण जाणं गइंदेण[25] अण्णं[26] गइंदं सदाणं[27] ।
तुरंगेण[28] मग्गम्मि तुंगं तुरंगं भुयंगं भुयंगेण वेसासु रंगं ।
पई पत्तिणा संदणो संदणेणं पिएणं पिया जंपिया कंदणेणं ।
वियाणं वियाणेण छत्तेण छत्तं अथामं[29] बलिट्ठेण पत्तेण पत्तं ।
पलायंतसंतेण[30] दंडेण दंडं धएणं धयग्गं कयं खंड-खंडं ।

घत्ता—सहुँ[31] राएँ तट्ठउ दिसिहिं पणट्ठउ सबलु ससाहणु नयरजणु ।
पर एक्कु जि थक्कउ मिल्लिवि[32] हक्कउ जंबुसामि अक्खुहियमणु ॥२१॥

[२२]

तो नवर नाएण मिल्लियनिनाएण ।
पडिभग्गरुक्खेण जणदिण्णदुक्खेण ।

भी झुठला दिया। कहीं बड़े-बड़े हथियारोंका संचरण देख धूर्त्त नष्ट हुआ, और तीक्ष्ण खुरोंसे पृथ्वी खुदी। कहीं भालेकी नोकके आघातसे पीड़ितदेह हथिनीकी चीत्कारसे त्रस्त होकर चंचलतापूर्वक जाती हुई, व (धूर्तके) प्रत्युत्तरको न पा सकनेवाली प्रगल्भ दासी जिसके वस्त्र (भाग-दौड़में) फट गये थे, धक्का दिये जानेसे (गिरकर) राजमार्गसे उठनेमें भी समर्थ न हो सकी।

और भी—तब झट-पट यानसे यान भिड़ गया, व हाथीसे दूसरा मदमत्त हाथी। मार्गमें तुरंगसे ऊँचा (बलिष्ठ) तुरंग, वेश्याओंमें आसक्त जारसे जार, सेवकसे स्वामी, रथसे रथ और भयपूर्वक क्रंदन करती हुई प्रिया अपने प्रियतमसे भिड़ गयी। वितानसे वितान, छत्रसे छत्र, बलवान्से दुर्बल, व पदातिसे पदाति भिड़ गये; तथा भागते हुओंके दंडसे दंड, और ध्वजसे ध्वजाग्र खंड-खंड कर दिये गये। राजा समेत पौरजन सारे साधनों व सैन्य सहित त्रस्त होकर दिशाओंमें भाग गये। परंतु एक अकेला जंबूस्वामी हाँका मारकर (अर्थात् उस दुष्ट हाथीको आह्वान करके) अक्षुब्ध (शांत) भावसे वहाँ खड़ा रहा ॥२१॥

[२२]

तब वृक्षोंको तोड़नेवाले, लोगोंको दुःख देनेवाले, जलको कीचड़ कर देनेवाले, वीरोंको

---

१७. प्रतियोंमें 'णट्ठ°'। १८. ख ग खोणिमं। १९. क क दोमिअंग°। २०. क क °ब्वलंत; घ °ल्ललंत। २१. क क °गुंढ; घ °गुंठ। २२. क क यट्ठिया°; ख ग पट्ठिया°; घ पट्ठिया°। २३. क क उट्ठिऊण पारपत्तरट्टिखोट्टिया; ख ग उट्टिपुण्ण पारए°। २४. क क क्वचित्। २५. ख ग गयंदेण। २६. घ अन्नं। २७. क क गइंदस्सदाणं; ख ग गयंदं स°। २८. ख ग °गाण। २९. क °सं। ३०. क घ क °संतेहिं। ३१. ख ग सहु। ३२. ख ग मेल्लिय; घ मिल्लिय।

कद्दवियनीरेण[1] कियदूरवीरेण ।
संगामडमरेण गुंजंतभमरेण ।
दाणंबुसंगेण चूरियभुयंगेण[2] ।
दुव्वारवारस्स जंबूकुमारस्स ।
थिरथोरकरघाउ पुणु मुक्कु[3] सकसाउ ।
तं नियवि तेणावि जिणवइसुएणावि ।
विक्कमविसुद्धेण रणरंगलुद्धेण ।
करिवरहु[4] रुट्ठेण[5] डसियाहरोट्ठेण ।
आरत्तनेत्तेण भूभंगवत्तेण ।
सलवट्टिभालेण नं पलयकालेण ।
तिणसमु गणंतेण बंधं जणंतेण ।
करु[6] धरिउ परिकलिवि हत्थेण आवलिवि ।
आयड्ढिओ[7] जं जि ओसरइ[8] करि तं जि ।
निक्खिल्लकयगत्तु सक्कइ न तिलमेत्तु[9] ।
कुंचइय[10]-धुयकंधु[11] विहडियसिराबंधु ।
कडुरडियरववयणु निड्डरियनियनयणु ।
मयमुक्कगंडयलु [12]पसरंतभयवियलु[13] ।
अप्पाणु घल्लंतु[14] चिक्कार मेल्लंतु[15] ।
कलुघुलइ रसमसइ[16] अवसइ[17] कसमसइ[16] ।

दूर हटा देनेवाले, संग्राममें भयंकर, मदजलसे युक्त होनेसे भ्रमरोंसे गुंजायमान, तथा भुजंग (शेषनाग ?) को भी चूर-चूर कर देनेवाले उस हाथीने बड़ा भारी निनाद छोड़कर, जिसका वार (प्रहार) अत्यन्त दुर्निवार था, ऐसे जंबूस्वामीपर अपने बलिष्ठ सूंडसे कषाय सहित अर्थात् क्रोधपूर्वक, आघात किया । यह देखकर उस जिनमतीके पुत्रने भी, जो विशुद्ध विक्रमी एवं रण-रंगका लोभी था, उस हाथीसे रुष्ट होकर, अधरोष्ठ काटकर, आरक्त नेत्र करके, भौंहें टेढ़ी करके, मस्तकपर सलवटें डालकर, प्रलयकालके समान बनकर उसे तृणके समान मानते हुए, नियंत्रण करनेके प्रयासमें हाथोंसे ही चारों ओरसे लपेटकर उसके सूंड़को पकड़ लिया, व जैसे ही खींचा, तो हाथी पीछे हटने लगा । परंतु उसका सारा शरीर निष्क्रिय हो चुका था, और वह तिलभर भी चल नहीं सका । उसका कांपता हुआ कंधा कुंचित हो गया, व शिराबंध विघटित हो गया (अर्थात् शरीरकी नस-नस टूटने लगी) । मुखसे उसने बड़ा करुण निनाद किया; उसके नेत्र डरे-डरे हो गये; व गंडस्थल मदमुक्त हो गया, बढ़ते हुए भयसे वह अत्यन्त विकल हो गया । वह अपने शरीरको गिराता हुआ-सा चीत्कार छोड़ने लगा, गलगलाने लगा,

[२२] १. घ कद्दमिय° । २. क ङ °भुअंगेण । ३. ख ग वेमुक्क; घ पम्मुक्क । ४. ख ग °वरह; घ °वरहं । ५. ख ग रुद्धेण । ६. क ङ करि । ७. ग °ड्ढिउ । ८. क ङ °रिउ । ९. क ङ °मत्तु; घ °मित्तु । १०. क ख ग ङ °कंचुइय° । ११. क ङ °धुअकंधु । १२. घ °पसरंतु । १३. क ङ °विहलु । १४. ख ग °मे । १५. ख ग घ° । १६. क °सइं । १७. घ °भसइ ।

नीससइ गडयडइ महिवट्टि क्रिर पडइ।
संतेण[18] ता मुक्कु वसि होवि [19]पुणु थक्कु[19]।
जो नट्ठु सनरिंदु पडिमिलिउ जणविंदु।
घत्ता—वण्णइ[20] मगहाहिउ पइँ करि साहिउ अण्णहो[21] छज्जइ एउ कसु।
जणणिए[22] उप्पण्णउ[23] तुहुँ पर-धण्णउ[23] असरिसु[24] जसु जसु वीररसु॥२२॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए जंबूसामिउप्पत्ती-
कुमारविजउ[25] नाम [26]चउत्थो संधी समत्तो[26] ॥ संधि—४ ॥

रसमसाने लगा, पीछेको चलने लगा, कसमसाने लगा, निःश्वास छोड़ने व गड़गड़ाने लगा, और पृथ्वीतलपर गिर पड़ा। तब जंबूस्वामीने भी शांत होकर उसे छोड़ दिया। फिर वह हाथी वशवर्त्ती होकर खड़ा हो गया। उधर राजा सहित जो जनसमूह भाग गया था, वह वापिस एकत्र हो गया। (तब) मगधराज जंबूस्वामीकी इसप्रकार स्तुति करने लगे—तूने जो हाथीको वशमें कर लिया, वह अन्य किसको शोभा देता है, अर्थात् अन्य कौन कर सकता है? माँसे उत्पन्न तू ही एक परम-धन्य है, जिसका वीर-रसात्मक यश (अर्थात् वीरताका यश) (लोकमें) सर्वथा असदृश (अद्वितीय) है॥२२॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें जंबूस्वामी-उत्पत्ति तथा कुमारकी (हस्ति) विजय नामक यह चतुर्थ संधि समाप्त॥४॥

१८. ख ग संचेण। १९. ख ग पुण एक्कु; घ पुणु हुक्कु। २०. क क °इं; घ वन्नइं। २१. क क °हुं; घ अन्नहो। २२. क क °णिय; ख °णिउ। २३. क घ क °उं। २४. क क °रिस। २५. क क कुमर°। २६. क क चउत्थी इमा संधी; ख चउत्था इमा संधी।

संधि—५

[१]

संते सयंभुएवे एक्को य कइत्ति[1] विण्णि[2] पुणु भणिया।
जायम्मि पुप्फयंते तिण्णि तहा देवयत्तम्मि ॥१॥
दिवसेहिँ इह[3] कवित्तं निलए निलयम्मि दूरमावण्णं[4]।
संपइ पुणो नियत्तं जाए कइवल्लहे वीरे ॥२॥
बालु करिणिगमु खंचवि[5] रयणहिँ[6] अंचवि[7] अद्धासणे वइसारिउ[8]।
नयरुच्छाहरमाउले पुणु नियराउले[9] नरनाहेँ पइसारिउ[10]।
वस्तु—ताम राएं दिण्णु[11] अत्थाणु
सिंहासणु[12] विहि मि ठिउ एक्कु पासि कामिणिजणावलि[13]।
पज्जलियमणिमउडसिर[14] पुणु निविट्ठु मंडलियमंडलि।
पुणु सामंत महंत थिय सेणिउ[15] इयराउत्त[16]।
भडथड थक्क विणोयकर नरनाणाविहधुत्त ॥
केरिसं तं राइणो अत्थाणं[17]—जं तं कसवट्टयनिव्वडियकणयघडिय-माणिक्कजडियदं-डियाचउक्कविणिबद्ध[18]रयणविणिम्मिय-[19]वियाणतलि[20] [21]संनिवेसियसोहमाणसिंहासणं।

[१]

स्वयंभूदेवके होनेपर एक ही कवि था, पुष्पदंतके होनेपर दो हो गये और देवदत्तके होनेपर तीन। यहाँ बहुत दिनोंसे यह काव्य घर-घरमें-से दूर चला गया था, अब कविवल्लभ वीरके होनेपर पुनः लौट आया।

राजाने अपनी नूतन (तरुण) हस्तिनीकी चालको रोककर, रत्नोंसे अर्चा करके बालक जंबूस्वामीको अर्द्धासनपर बैठाया, और फिर (नागरिकोंके) उत्साहरूपी लक्ष्मीसे आकुल अर्थात् उत्साहसे परिपूर्ण नगरमें, तदनंतर अपने राजकुल (राजप्रासाद) में प्रवेश कराया। तब राजाने सभा लगायी और वे दोनों सिंहासनपर बैठे। एक पार्श्वमें कामिनियोंकी पंक्ति खड़ी हुई, फिर रत्नोंकी दीप्तिसे प्रज्वलित मणिमुकुटोंको सिरपर धारण करनेवाले मांडलीकोंकी मंडली बैठी, और फिर बड़े-बड़े सामंत व अमात्य बैठे, तथा फिर अन्य श्रेणियों (व्यापारी, स्वर्णकार, चित्रकार आदि लोगोंके संघ) के मुखिया बैठे, फिर भटोंके समूह और फिर मनो-विनोद करनेवाले लोग तथा अंतमें नाना प्रकारके चतुर लोग बैठे।

राजाका वह सभामंडप कैसा था? वहाँ कसौटीपर कसे हुए खरे सोनेसे गढ़े हुए, माणिक्योंसे जड़े हुए एवं चार दंडिकाओंसे युक्त रत्नमयी वितानके नीचे रखा हुआ सिंहासन

[१] १. क ङ कई य। २. ख ग घ विन्नि। ३. क ङ इय। ४. क ङ °वण्णं; ख ग °पन्नं। ५. क घ ङ खंचिवि। ६. क ङ °णिहिं। ७. क घ ङ अंचिवि। ८. ख ग घ °सारियउ। ९. क ङ णिउ-रावलि। १०. ख ग पयसारियउ; घ °सारियउ। ११. घ दिन्नु। १२. क घ सिंघा°। १३. क घ ङ °उलि। १४. क °धर। १५. घ °उं। १६. क ङ °रावत्त। १७. ङ °णो। १८. ग °विणिबद्ध। १९. ख ग °वियाणि°। २०. ख ग घ °तल। २१. क ख ग ङ सणि°।

जं तं सिंहासणपरिसंठियमहारायाहिरायपायत्थवण[22]-फलिहफलएण चलचमर-धारिविलासिणीमुहकंतिनिजित्त-[23]दासत्तणपत्तनक्खत्तसामिणा इव [24]पडिछित्तनरिंद-कमकमलं। जं तं नरिंदकमकमलपणमणमिलंत-[25]भूवालमउलिमाणिक्कसंकंत[26]-नह-निउरुंबपडिबिंबच्छलेण तिव्वपयावमसंहंतेहिं[27] रायाणएहिं मुत्तियसयमिव[28]-पयडु-त्तमंगि[29] बुज्झंनरायसासणं[30]। जं तं[31] रायसासणसमीहमाणसयलदेसभासासंवलिय-सत्थत्थविचित्तकणकणंत[32]-कंकणदाहिणकराहिट्ठियकणयदंडपुरट्ठिय[33]-महापाडि-हारं[34]। जं तं [35]पडिहारय नाम[35]-पत्थावाणंतर-[36]समोसारणाउलसुपसत्थहत्थ-त्थियपरिभमिर[37]-दंडप्पयंड[38]-सहासंकियतरलतरचलंतदिट्ठि[39]-सत्थाणमुवविसंत[40]-मामंतचक्कं। जं तं सामंतचक्कसेणावइपाइक्कपमुहपरिग्गहवसीकियमंडलवइसंपेसिय-दूरमंडलागयरायवारिएहिं ढोइज्जमाणपाहुडगलंतमुत्ताहलकरंबियभूमिभायं। जं तं भूमिभायसम्मज्जणकुंकुमकप्पूरकत्थूरियामोयविक्खिरियकुसुममयरंदमत्तगुमुगु-मिय[41]-भमरझंकारसद्दाणुकारियवीणाविलासं। जं तं [42]वीणाविलास-गिज्जंतगेय-

शोभायमान था। और वह सिंहासन उसके ऊपर बैठे हुए महाराजाधिराजके पैर रखनेके स्फटिकमय फलक (पादपीठ) में चंचल चमरोंको धारण करनेवाली विलासिनियोंकी मुख-कांतिसे विजित होकर मानो दासभावको प्राप्त हुए नक्षत्रोंके स्वामी (चंद्रमा)के समान नरेंद्रके चरणकमलोंके प्रतिबिंबसे युक्त था। और वह सभामंडप नरेंद्रके चरणकमलोंको प्रणाम करनेके लिए एकत्र हुए भूपालोंके मुकुटमणियोंसे संक्रांत होते हुए नखसमूहके प्रतिबिंबोंके छलसे, उसके तीव्रप्रतापको सहन न करनेवाले राजाओंके उत्तमांग (मस्तक) पर सैकड़ों मौक्तिकोंके समान प्रगट होकर मानो राजाके शासनको भलीभाँति समझा रहा था। और वह सभामंडप राजाज्ञाकी प्रतीक्षा करनेवाले, सकलदेश भाषाओंसे युक्त शास्त्रार्थके समान विचित्र कणकणध्वनि करते हुए कंकणको धारण किये हुए, दाहिने हाथमें स्वर्णदंडको लिये हुए द्वारपर अधिष्ठित महा-प्रतिहारसे युक्त था। और वह सभामंडप उस महाप्रतिहारके द्वारा नाम-प्रस्ताव (अभ्यागत परिचय) के अनंतर राजाके सामने एकत्र हुए सभासदोंको दूर करनेके लिए आकुल उसके प्रशस्त हाथोंमें स्थित, घूमते हुए प्रचंड दंडके शब्दसे आशंकित, चंचलतर घूमती हुई दृष्टियोंवाले, व अपने-अपने स्थानोंपर बैठते हुए सामंतवृंदसे युक्त था। और वह सभामंडप सामंतचक्र, सेनापति, पदाति प्रमुख साधन संपत्तिसे वशीकृत मंडलपतियों द्वारा प्रेपित दूरमंडलोंसे आनेवाले राजकीय नाइयों द्वारा उपस्थित किये जाते हुए भेंटोंसे गिरते हुए मुक्ताफलों व मणिरत्नोंसे व्याप्त भूमिभाग-वाला हो रहा था। और वह सभामंडप उस भूमिभागके संमार्जनसे कुंकुम, कर्पूर व कस्तूरीकी आमोदसे व कुसुमोंकी विकीर्ण मकरंदसे आकृष्ट हुए गुम्-गुम् गुंजार करते हुए मत्त भौंरोंके झंकार शब्दका अनुकरण करनेवाले वीणाविलाससे युक्त था। और वह सभामंडप वीणाविलास-

२२. क ख ङ °पायट्ठवण°। २३. क ङ दोसत्तण; घ दासित्तण°। २४. ख ग पडिछिंद°। २५. क ङ भूपाल°। २६. ख ग °सक्कंत। २७. क ङ °ममहंतेहिं। २८. क घ ङ मुत्तिमय°; ख मुत्तियमय°। २९. क घ ङ °मंग। ३० घ दुक्कंनराया°। ३१. क घ ङ में 'राय' पद नहीं। ३२. घ °कणक्कणंत। ३३. क ङ °पुरिट्ठिय। ३४. ख ग घ °पडिहारं। ३५. क ख घ ङ °पणाम। ३६. ख ग °सारुणाउल°; घ °मरणाउल°। ३७. घ °परिभमिय। ३८. क ङ दंडपयंड; ख ग दंडसप्पयंड। ३९. क ङ °वलंतदिट्ठि। ४०. ख ग °मुवविपण्ण। ४१. ख गुमगुमिय। ४२. व °विलासं।

वज्जंतवज्जसमवायरइयपेक्खणय-नच्चिरविलासिणीसब्भाविय-[43] महकइनिबद्धनाडयरसंतं। जं तं रसंतकामिणीचरणनेउरेहिं पढमाणमंगलपाढएहिं महुरक्खरं गायंतगायणेहिं [44] नियवावसर-अणवरयपविसंत[45]-जोक्कारमुहरजोहेहिं [46]-सुहपुण्ण[47]-कण्णजणनिवहं।

घत्ता—पुहईसरु कणयच्छवि सुहिपंकयरवि जंबुकुमारसहिट्ठिउ[48]।
अच्छइ विविहविणोयहिं पयडियभोयहिं जावत्थाणे परिट्ठिउ ॥१॥ १०

[२]

वत्थु—ताम[1] चउदिसु कयसमुज्जोउ
कणकणिरें[2] किंकिणिमुहलु निवसमीवलोएहिं दीसइ।
अवरुप्परु विंभियमणहिं अवयरंतु गयणाउ दीसइ।
धुव्विर[3] धयमालाललिउ मारुयवेयबहुत्तु।
दिव्वविमाणु सलक्खणउ[4] रायत्थाणे[5] पहुत्तु ॥१॥ ५

तहिं फुरियाहरणविराइयउ विज्जाहरु एक्कु पराइयउ।
जयकारिवि नरवइ नविवि सिरु बोल्लणहं[6] लग्गु पुणु[7] होवि[8] थिरु।
इह अत्थि खेयरालंकियउ गिरिसहससिंगु नामंकियउ।

सहित गाये जाते हुए गीतों, बजते हुए बाजोंके समुदायमे रचित प्रेक्षणक (दृश्य नाटक व नृत्य आदि) में नाचती हुई विलासिनीके-द्वारा दिखाये जाते हुए महाकवि-निबद्ध (रचित) नाटकके कोलाहलसे पूर्ण था। और वह सभामंडप गानेवाली कामिनियोंके झनझनाते हुए चरणनूपुरों से, पाठ करते हुए मंगलपाठकोंसे, मधुराक्षरोंसे गाये जाते हुए गायनोंसे, एवं अपने-अपने अवसरपर प्रवेश करते समय जय-जयकार करनेमें मुखर योद्धाओंके स्वरसे मुखसे पूर्ण हो गये हैं (भर गये हैं) कान जिनके, ऐसे जन-समूहसे युक्त था। इसप्रकार जब वह राजा सुवर्णके समान वर्णवाले एवं सुहृज्जन रूपी पंकजोंके लिए सूर्यके समान जंबूकुमारके साथ विविध प्रकारके विनोद व प्रदर्शन किये जाते हुए गंध, वर्ण व शब्दादि विषयोंके साथ सभामंडपमें बैठा था—॥१॥

[२]

—तभी राजाके पासके लोगों-द्वारा अतिविस्मित मनसे, एक दूसरेको आकाशसे उतरता हुआ एक दिव्य विमान दिखाया गया जो चारों दिशाओंको प्रकाशित कर रहा था; कण-कण करती हुई किंकिणियोंसे मुखर था; एवं फहराती हुई ध्वजमालाओंसे सुंदर, मारुतसे भी अधिक वेगवाला तथा लक्षणोंसे युक्त था। ऐसा वह विमान (शीघ्र ही) राजसभामें प्राप्त हुआ। उसमें-से कांतिमान आभरणोंसे सुशोभित एक विद्याधर निकला। जय-जयकार करके, नृपतिको शिर नवाकर स्थिर होकर वह बोलने लगा—यहीं (इसी भरतक्षेत्रमें) खेचरोंसे अलंकृत सहस्रशृंग नामका एक पर्वत है। मैं गगनगति नामका विद्याधर वहां प्रीतिपूर्वक रहता

४३. क ड महाकइ°। ४४. ख ग °णेहिं। ४५. ख ग °यणवरयपविसंत। ४६. क °मुहरजो°। ४७. घ °सुहपुन्न°। ४८. क °हिट्ठिउं।

[२] १. क ड ताव। २. क ड कणकणिण°। ३. क धु°; ख ग धुव्विर°। ४. क घ °णउं। ५. °त्थाणु। ६. क ड बोल°। ७. घ पुणु। ८. क ड होइ।

हउं वसमि तित्थु संजायरइ *विज्जाहरु नामें गयणगइ।*
अज्जेणए[9] दिणि जं लक्खियउ आलोइणिविज्जए[10] अक्खियउ[11]।
तं कहमि देव कारणसहिउ[12] उत्तालु जइ वि किर पंथि थिउ।
दाहिणपहे नयणाणंदयरि मलयाचलम्मि केरलनयरि।
तहिँ निवइ मियंकु नएण सहुँ मालइलय[13] परिणिय बहिणि[14] महुँ[15]।
तहि[16] नंदणि जाय विलासवइ[17] सिंगारु अणंगु जाहे[18] थवइ।
सिक्खियगइसहयरु हंसगणु विहवहो कारणु परिवारजणु।
अंगच्छवि जाहे[19] पसाहणउ[20] भोयायरु[21] घुसिणविलंवणउ[22]।
अलयावलि भालुम्मीलणउ[23] नीलुप्पलमंडणु कोलणउ[24]।
न मुणइ[25] रत्ताहररंगगुणु[26] जा छोल्लइ सुद्ध वि दंत पुणु।
कण्णंतपत्तनयण[27] जि धवला सिरभारु[28] पुप्फमाला[29] विमला।
बोल्लंतिहिँ कोमल जाहि गिरा[30] वीणावायणउ[31] विणोयपरा[32]।
वयणुल्लउ निरुवमु[33] मणहरउ ससिहरु[34] तहे[35] निवट्टणखप्परउ[36]।

हूँ। आजके दिन जो मेरे लक्ष्यमें आया, तथा आलोकिनी विद्यासे मुझे जो कुछ ज्ञात हुआ, उसको, यद्यपि मैं बहुत उतावला हूँ, और बीच यात्रामें ही खड़ा हूँ, (तथापि) कारण सहित कहता हूँ। दक्षिणापथमें मलयाचलमें नेत्रोंके लिए आनंदप्रद केरलपुरी नामकी नगरी है। वहाँ मृगांक नामका राजा न्यायपूर्वक रहता है। उसने मेरी मालतीलता नामक बहनसे परिणय किया। उसकी विलासमती नामकी पुत्री हुई, जिसके शृंगारका कारीगर स्वयं अनंग ही है। उसका सहचारी हंससमूह (उसका अनुकरण करनेके कारण) गमन क्रियामें कुशल हो गया है, और परिवार-जन अर्थात् सेवकोंके लिए वह वैभवका कारण है; तथा जिसकी शारीरिक कांति स्वयं ऐसी है कि चंदनविलेपनादि प्रसाधनोंका प्रयोग केवल उन प्रसाधनोंका आदर करनेके लिए ही किया जाता है (उसके शारीरिक सौंदर्यकी वृद्धिके लिए नहीं)। उसके भालपर खुली हुई अलकावली ऐसी लगती है, मानो नीलकमलरचित अलंकार वहाँ क्रीड़ा करने आया हो, और जो अपने रक्तिम अधरोंके गहरे रंगके प्रतिबिंबको न समझ सकनेके कारण अपने स्वच्छ दाँतोंको बार-बार छीलती है। उसके नेत्र कानोंके सिरे तक पहुँचे हुए हैं, तथा धवल पुष्पमाला (टि० मुकुट) उसके शिरपर भार मात्र है। बोलते समय उसकी कोमल वाणी वीणावादनको भी उत्कृष्टतासे मात करनेवाली है। उसका मुख ऐसा निरुपम व मनोहारी है कि चंद्रमा उसके समक्ष श्मशानपर पड़ी हुई उल्टी खोपड़ी अथवा उल्टे ठीकरेके समान प्रतीत होता

९. क ङ °णइं। १०. ख घ ङ आलोयणि°; क ङ °विज्जइं। ११. क °यउं। १२. घ °सहिउं। १३. क ङ मालय°; घ मालयलइ। १४. ख ग °ण। १५. क ख ग महु। १६. क ग घ ङ तहिं। १७. क ङ °मई। १८. क घ जाहिं; ङ जाहि। १९. घ जाहि। २०. घ °णउं। २१. ख ग °इरु। २२. क घ ङ °वणउं। २३. प्रतियोंमें '°णउं'। २४. घ ङ °णउं। २५. क ङ °इं। २६. क ङ °गणु। २७. ख ग कण्णत्त°; घ कन्नंत°। २८. क ङ भार। २९. ख ग घ मुंड°। ३०. क ङ सरा। ३१. क घ ङ °णउं। ३२. ख ग घ विणोउ परा। ३३. ख ग घ °वम। ३४. क घ ङ °पर; ख °हर। ३५. क ङ तहो; घ तहि। ३६. क विवडण°; घ ङ णिवडण°।

घत्ता—महरिसिनाणुवएसें कयआएसें तेण मियंकें देवउ[37]।
तं[38] पयपरिपालियधर नरपरमेसर कण्णरयणु[39] परिणेवउ ॥२॥

[३]

वस्तु—असमसाहसु[1] हंस दीवम्मि
विज्जाहरु रयणसिहु करइ रज्जु संगरि अचप्पिउ[2]।
करितुरंग[3]-रह-सुहड-थड[4] अप्पमाणबलविसमदप्पउ।
सामभेयउवयाणेयहिं मग्गिय तेण कुमरि।
पुणु पारंभिय[5] दंडकिय जाए[6] पयट्टइँ[7] मारि ॥१॥
मग्गंतहो कण्ण[8] न दिण्ण[8] जाम केरलपुरि वेढिय तेण ताम।
चउपासिउ पसरिउ बलु रउद्दु मज्जायमुक्कु[9] नावइ समुद्दु।
जिणभवण-सवण[10]-संघट्टणाइँ लोट्टियइँ[11] मियंकहो पट्टणाइँ।
नीसेसइँ[11] देसइँ नासियाइँ बहुधणइँ जणइँ[12] निव्वासियाइँ[13]।
सुहधामइँ गामइँ लूडियाइँ[14] आरामइँ रामइँ[15] सूडियाइँ।
संपण्णइँ धण्णइँ भारियाइँ रसवंतइँ[16] छेत्तइँ[17] चारियाइँ[18]।
असरालइँ[19] वाडइँ[20] खुण्णियाइँ[21] कयनीडइँ[22] वीडइँ[22] वुण्णियाइँ[23]।
तरुतीरइँ[22] नीरइँ[22] फोडियाइँ भडथट्टइँ[22] कोट्टइँ[22] मोडियाइँ।

है। तो, हे प्रजापालक-धराके समान धीर नरेश्वर! महर्पिके ज्ञानोपदेश व आदेशानुशार मृगांकके द्वारा वह कन्या-रत्न आपको परिणयके लिए दिया जाता है ॥ २ ॥

[३]

हंसद्वीपमें अतुल्य साहसवाला, व संग्राममें अपराजेय, रत्नशेखर नामका खेचर राज्य करता है। वह अपने हाथी, घोड़े, रथ, और सुभटसमूहके अप्रमाण बलका अत्यंत अभिमानी है। उसने साम, भेद व दामसे उस कुमारीको मांगा, और तत्पश्चात् दंडक्रिया (युद्ध) प्रारंभ कर दी, जिससे मृत्यु ही प्रवृत्त होती है। जब मांगनेपर भी उसे कन्या नहीं दी गयी तो उसने केरलपुरीको घेर लिया। चारों पाश्वोंमें रौद्र सेना इसप्रकार फैल गयी मानों समुद्र मर्यादा मुक्त हो गया हो। मृगांकके जिनमंदिरों व श्रमणोंके संघट्टन अर्थात् बाहुल्यसे युक्त नगर लूट लिये गये, समस्त प्रदेश बरबाद कर दिये गये, एवं बहुत धनवान लोगोंको निर्वासित कर दिया गया। सुखके धाम गाँव भी लूट लिये गये, रमणीक आरामोंका विनाश कर दिया गया, पके हुए धान्यको भरकर ले जाया गया, एवं हरे-भरे खेतोंको चरा दिया। अधिकांश बाड़ों (सीमाबंधों) को खोद डाला गया, तथा विस्तीर्ण घोंसलोंमें रहनेवाले पक्षियोंको भी भयभीत कर दिया गया। वृक्षस्थित तटोंवाले जलाशयोंको फोड़ डाला गया, एवं अनेक भटसमूहोंसे

३७. घ देव्वउ। ३८. क ख ड पइं पालियधर। ३९. घ कन्न°।

[३] १. घ अह सुसाहसु। २. क ड अवप्पिउं; ग अव°। ३. ख ग घ °तुरय। ४. क ड भड। ५. घ आरं°। ६. ख ग जाइ; घ जाइं। ७. ख °ड्रइ; घ °ट्टइं। ८. घ °भ। ९. घ °मुक्क। १०. क रावण; ख ग घ रवण। ११. क °इ। १२. ख ग °जणइ घं; घ °धणइं जणइं। १३. घ निम्वासियाइं। १४. ख ग लूटि°। १५. क ड सोमइं। १६. क ख ग ड °तइ। १७. घ रवं°। १८. ड °याइ। १९. क ख ग ड °लइ। २०. क घ ड मालइं। २१. घ खुन्नि°। २२. ख ग °इ। २३. क ख ड चुण्णि°; घ चुन्नि°।

घत्ता—कल्लइँ[२४] रह-गयवाहणु परिमिय-साहणु रणे मियंकु झिज्झेसइ[२८]।
खत्तियकुलकमनिम्मलु [२५]परिरक्खियछलु वयणीयहे[२६] जुज्झेसइ[२७] ॥३॥

[४]

वस्तु—जइ वि[१] परबलु पलयजमसरिसु
अप्पमाणु साहणु जइ वि[१] जइ वि[१] सव्वु संगरे मरिज्जज।
धीरत्तणु परिचएवि[२] लोयनिंदु किम कज्जु किज्जइ।
परिथोडए[३] अप्पए[४] बहुए[४] गोहत्तणु सव्वासु[५]।
अरिसंकडे मणुसइय जसु [६]बलि किज्जउ हउँ[६] तासु[७] ॥१॥
इय विज्जावयणहिं[८] सल्लियउ हउँ तेत्थु[९] झत्ति[१०] संचल्लियउ[११]।
गयणंगणे जंतहो जणघणउँ[१२] अत्थाणु नियच्छेवि तउ तणउँ।
हुउ[१३] वइयरसुमरणु[१४] चित्ते महु[१५] पासंगिउ अक्खिउ देव लहु[१६]।
सविसेसु कहंतहो समउ न वि लइ जामि [१७]सत्तुधरे हामि पवि।
इय भणिवि विमाणुचालियउ तं जंबुकुमारें वालियउ[१८]।
थिरु[१९] थाहि मित्त सामंतसहुँ साहेज्जउ चिंतइ जाम पहु।
तो बलि विहसंतु खयरु भणइ[२०] चंदहो करफंसणु को कुणइ[२१]।

युक्त दुर्गोको ध्वंस कर दिया गया। अतः कलके दिन रथ, हाथी, व अन्य वाहन आदि परिमित साधनवाला मृगांक राजा अपनी निर्मल क्षत्रियकुल-परंपरा व पौरुषका लोकनिंदासे रक्षण करनेके लिए रणमें जूझेगा और क्षयको प्राप्त होगा ॥ ३ ॥

[४]

'यद्यपि शत्रुबल प्रलय करनेवाले यमराजके समान है, यद्यपि वह अप्रमाण साधनवाला है, और यद्यपि सबको संग्राममें मर जाना है, फिर भी धीरताको छोड़कर लोकनिंद्य कार्य कैसे किया जाये ? सुभटत्त्व और अग्नि अपने आपमें थोड़े होते हुए भी बहुत हैं। शत्रुसंकटमें भी जिसका मानुष्य (पौरुष) स्थिर रहे, मैं उसकी बलि जाती हूँ', (आलोकिनी) विद्याके इन वचनोंसे बिधकर मैं झटपट वहाँसे चल पड़ा। गगनांगनमें जाते हुए घने लोगोंसे युक्त तुम्हारी सभाको देखकर मेरे मनमें इस वृत्तांतका स्मरण आ गया और प्रासंगिक बातोंको संक्षेपमें मैंने देवको (आपको) निवेदन कर दिया। विस्तारसे कहनेका समय नहीं है। मैं जाता हूँ, और शत्रुरूपी पर्वतके विनाशके लिए वज्र बनूंगा। ऐसा कहकर जब उसने विमानको ऊपर उठाया तो जंबूकुमारने उसे (यह कहते हुए) वापिस लौटाया कि मित्र जरा ठहरो, जब तक राजा अपने सामंतोंके साथ करणीय साहाय्यका विचार कर लें। इसपर हँसता हुआ खेचर

२४. ख ग जुज्झे; घ कुज्झे°; ङ झुज्झे°। २५. क ङ पडि°। २६. क ङ वहिणीवइ; ख ग °वहो। २७. ख ग झुज्झे°।

[४] १. ख ग जय वि। २. घ °चयवि। ३. क घ ङ °इ; ख ग परथोडए। ४. क घ ङ °इ। ५. घ सव्वस्स। ६. क घ ङ हउं बलि किज्जउं। ७. क ग ङ ख तास्सु; घ तस्स। ८. क ख ग ङ °णिहिं°। ९. ख ग घ तित्थु। १०. क मत्ति। ११. क °यउं। १२ घ घण°। १३. क ङ हुय। १४. क ङ वइयरु°। १५. क ङ महो; ख ग महुँ। १६. क ङ लहो; ख ग लहुँ। १७. क ङ °धरि; घ °गिरि। १८. क ख ग ङ वोलि°। १९. ख ग थिर। २०. क °इं; घ तणइं। २१. क घ °इं; ख ग करए।

फुडु[22] लोयाहाणउं इयगिरए जोयणसयविज्जु[23] सप्पु सिरए।
सो थाउ[24] जेत्थु थिउ वइरिगढु इह[25] ठायहो[26] जोयणसउदिवढु[27]।
भूगोयर तुम्हइँ किर भणउं[28] अज्जु जि जाएव्वउ कहिँ[29] तणउँ।
पडिभणइ[30] कुमारु म किं पि भणु तुहुँ नेहि तेत्थु मइँ[31] एक्कु जणु।
समरंगणु जेम समाणियइ[32] [32]अणुबलु संपेसिउ[33] जाणियइ[34]।
समियंकु जेम तुहुँ[35] लच्छिफलु अणुहुँजहि[36] निच्चलु निहयखलु।
सविलाससलक्खणहंसगइ परिणइ[37] नरनाहु विलासवइ[37]।
घत्ता—मणे विज्जाहरु कंपिउ पुणु वि पयंपिउ जो समाणु रिउ कालहो।
सो मइँ नीयहो एक्कहो जइ वि सुसक्कहो केम सज्झु तुह बालहो ॥४॥

[५]

वस्तु—को[1] दिवायरगमणु पडिखलइ
जममहिससिंगुक्खणइ[2] कवणु गरुडमुहकुहरे पइसइ[3]।
को कूरग्गहु निग्गहइ को जलंते सव्वासे पइसइ।
को वा सेसमहाफणेहिँ[4] फणमणि[5] मंड-हरेइ।
को कप्पंतुट्टंतु[6] जलु जलनिहिँ[7] भुएहिँ[8] तरेइ[9] ॥१॥

बोला—चाँदकी किरणोंको कौन छू सकता है? तुम्हारी इस बातसे यह लोकाख्यान(लोकोक्ति) ही प्रकट होता है—सौ योजनपर वैद्य और शिरपर साँप (सीसे सप्पो, विज्जे वेज्जो)। वह वहाँ स्थित है, जहाँ उस शत्रुका गढ़ है, और यहाँसे डेढ़सौ योजन दूर है। तुम लोग भूगोचरी हो, तुमसे क्या कहा जाये? आज ही तुम लोग कहाँ तक जा सकते हो? तब कुमार फिर बोला—यह सब कुछ मत कहो, तुम मुझ अकेले ही व्यक्तिको वहाँ ले चलो, जिससे यह युद्ध समाप्त किया जा सके, सहायक सैन्य भेजा हुआ समझा जा सके; तू उस दुष्टको मारकर मृगांक राजा सहित निश्चल रूपसे राजलक्ष्मीका भोग कर सके, और राजा श्रेणिक विलासशील, सुलक्षणा व हंसगामिनी विलासमतीका परिणय कर ले। यह सुनकर विद्याधर मनमें काँप गया—जो शत्रु यमराजके समान है, वह, मेरे द्वारा अकेले ले जाये गये तुझ बालकके द्वारा कैसे साधा जायेगा ॥ ४ ॥

[५]

सूर्यकी गतिको कौन अवरुद्ध कर सकता है? यमराजके भैंसेके सींगोंको कौन उखाड़ सकता है? गरुड़के मुखकुहरमें कौन प्रवेश कर सकता है? क्रूरग्रहका कौन निग्रह कर सकता है? और जलते हुए अग्निमें कौन प्रवेश कर सकता है? शेष-महाफणि (शेष नाग) के फणपर स्थित मणिको बलात् अपहरण कौन कर सकता है और कल्पांत अर्थात् प्रलयकालके समय ऊपर उठती हुई भयंकर लहरोंसे युक्त जलवाले जलनिधिको भुजाओंसे कौन पार कर सकता है?

२२. ख ग फुडु। २३. क घ ङ मइ°; ख ग °मय। २४. ख ग थाउं। २५. क ङ इय। २६. क ख ग ङ था°। २७. क घ ङ °दिवड्ढू। २८. क घ ङ °उं। २९. घ कहु। ३०. क घ ङ °इं। ३१. ख ग मइ। ३२. क °णियए; ङ सम्मा°। ३३. क ङ °बालु पगंमिउ। ३४. क ख ग घ °यइं। ३५. ख ग तुह। ३६. ख ग °जहिं। ३७. क ङ °मई।

[५] १. क को वि। २. क घ ङ °णइं। ३. ख ग पय°। ४. क ङ सेसि°। ५. क ङ फणि°। ६. क घ ङ °ढंतु। ७. ख ग णिहि; घ °णिहि। ८. क घ ङ भुयहि। ९. क ग °इं।

तओ जंपियं राइणा[10] हासिरेणं समं खेयरेणं सहाभासिरेणं[11]।
किमेएण बोल्लेण एक्को वि बालो समत्थो समत्थस्स कालस्स कालो।
फुरंतप्पयावस्स सूरस्स सूरो इमो खे विडप्पस्स कूरस्स कूरो।
इमो सग्गथक्कस्स सक्कस्स सक्को इमो पक्खिरायस्स[12] चक्कस्स[13] चक्को[14]।
इमेणं करत्ताडिओ सीसि सेसो फणामंडलाओ मणिं मुंच एसो।
इमस्स प्पयावेण संडज्झमाणो सिही सीयलो होइ भूईनिहाणो[15]।
विवक्खो सखग्गम्मि एयम्मि बाले[16] पवच्चेइ मिच्चुं अपूरम्मि काले[17]।
सुणेऊण तं खेयरो रायवाणिं कुमारं समारोवए दिव्वयाणिं[18]।
नरिंदस्स बालो पएसु पडिण्णो[19] समासीसदाणो विमाणं चडिण्णो[19]।
जवेणं समुद्धाइयं वोमभाए[20] खणद्धेण दिट्ठीए दिट्ठं सहाए।

घत्ता—तक्खणे बाहुविसालें चित्तुत्तालें तं अत्थाणु विसज्जिउ।
केरलनयरिपएसहो[21] दक्खिणदेसहो निवेण पयाणउ[22] सज्जिउ[23] ॥५॥

[६]

वस्तु—सरसनरवइ-सबलसामंत-
सेणावइ[1]-साहणिय-तंतवालदलनिविडभडथड[2]।
आइट्ठकट्ठियधरहिँ[3] तुरिउ[4] जाउ सामग्गिवावड।

इसपर हँसते हुए राजाने (अपनी प्रभासे) सभाको भास्वर करनेवाले उस खेचरसे कहा—यह सब बोलनेसे क्या ? यह अकेला ही बालक समर्थ यमके लिए भी यम होनेमें समर्थ है। सूर्यके लिए भी (सूर्यके तेजको अपने तेजसे पराभूत करनेवाला) सूर्य है, और आकाशमें क्रूर राहुके लिए भी क्रूर है ! यह स्वर्गस्थ शक्रका भी शक्र, और पक्षिराज (गरुड़) के समूहके लिए भी (सुदर्शन) चक्रके समान है। यह शेषके शिरपर हाथसे ताड़न करनेवाला है, और उसके फणामंडलसे मणिको छुड़ा लेनेवाला है। इसके प्रतापसे दग्ध होकर अग्नि भी शीतल होकर भस्मराशि मात्र रह जाता है, और इस बालकके खड्ग ग्रहण करनेपर शत्रु अपना समय पूरा होनेसे पहले ही मृत्युको प्राप्त होता है। राजाकी इस वाणीको सुनकर खेचर कुमारको दिव्ययानमें चढ़ाने लगा, तो बालक राजाके पैरोंमें पड़कर, राजा द्वारा आशीर्वाद देनेके साथ ही विमानमें चढ़ गया। क्षणार्द्धमें ही सभाके लोगोंने प्रसन्नतापूर्वक विमानको वेगसे व्योमभाग (नभोमार्ग)में भागते हुए देखा। उसी समय विशाल भुजाओंवाले उस राजाने उतावले चित्तसे उस सभाको विसर्जित कर दिया और दक्षिण देशमें केरलनगरी प्रदेशकी ओर प्रयाण करनेकी तैयारी की ॥ ५ ॥

[६]

तब नरपति वीर भावसे सेना, सामंत सेनापतियों, निज सेनापतियों, राष्ट्रपालोंके दल, घने भटसमूह, तथा आदेश किये हुए प्रतीहारोंसे कार्य-रत हो गया। रथ जोते जाने लगे, गजों

१०. ग रायणा। ११. क क महा°। १२. क क पंखि°। १३. क क वंकस्य°; घ वक्क°। १४. क क वंको; घ वक्को। १५. क क °णियाणे। १६. क ख ग क बालो। १७. क ख ग क कालो। १८. ख ग देवि पाणें; घ देवि पाणि। १९. घ °ण्णो। २०. क क °हाए। २१. क क केरलि°; ख ग °नयर°। २२. क घ क °णउं। २३. क °उं।

[६] १. ख ग °वय। २. ख ग °णिवड°। ३. क क आइद्ध°। ४. घ तुरिय।

रह जुप्पंति गुडंति गय पल्लाणिय[5] हयथट्ट ।
करह-वलद्द-कहारियहिँ संवाहिय करकट्ट ॥१॥

तो महारायदारम्मि सरलालियं[6] भरियदरिविवरतूरं[7] समुप्फालियं ।
पहय पडुपडह पडिरडियदडिडंबरं करडतडतडण-तडिवडण[8]-फुरियंबरं[9] ।
धुमुधुमुक[10]-धुमुधुमियमद्दलवरं सालकंसालसलसलिय-सुललियसरं[11] ।
डक्कडमडक्क[12]-डमडमियडमरुब्भडं घंट-जयघंट[13]-टंकाररहसियभडं ।
ढक्क[14] त्रं त्रं हुडुक्कावलीनाइयं[15] रुंजगुंजंत-संदिण्णसमघाइयं[15] ।
[16]थगगदुग-थगगदुग-थगगदुगो[16] सज्जियं किरिरिकिरि-तट्टकिरिकिरिरि किर[17] वज्जियं ।
[18]तखिखितखि-तक्खि-तखितत्तासुंदरं[18] तदिदिखुदि-खुंदखुद खुंद भाभासुरं ।
थिरिरि[19]-कटतट्टकट थिरिरि[19] कटनाडियं किरिरि तटखुंद[20] तटकिरिरि-तडताडियं[21] ।
पहय-समहत्थ[22]-सुपसत्थवित्थारियं मंगलं नंदिघोसं मणोहारियं ।
तूरसद्देण चलियं[23] महाकलयलं रायराएण सह चाउरंगं बलं ।

घत्ता—उट्ठियरयजलल्लोलउ नहयलवोलउ तं[24] नरवइबलु चल्लिउ[25] ।
निवमणे रयणरमाउलु करिमयराउलु णं समुद्दु उच्छल्लिउ ॥६॥

को हौदा लगाकर सजाया जाने लगा, एवं अश्वसमूहपर पलान लगाया जाने लगा । ऊँटों, बैलों व कहारों-द्वारा ले जाने योग्य वस्तुएँ ले जायी जाने लगीं । तब महाराजाके द्वारपर ललित स्वरवाला, समस्त दरि-विवर प्रदेशोंको भरनेवाला तूर बजाया गया । पटु-पटह बजाये गये, व दडिडंबर उससे प्रतिध्वनित हो उठा । करडकी तड़-तड़से आकाश विद्युत्पतनके समान हिलने लगा । श्रेष्ठ मर्द्दल धुम्धुमुक् धुमधुमुक् करने लगा, और विशाल कंसाल सुललित स्वरसे सलसलाने लगा । डक्का डमडक्क, व डमरू डमडमका स्वर करने लगा और घंटों व जयघंटोंकी टंकारसे भट उत्तेजित हो उठे । ढक्का त्रं त्रं, व हुडुक्का नामक बाजोंका समूह नाद करने लगा, और आघात करनेसे रुंज नामक वाद्य गुंजन करने लगा । थगगदुग, थगगदुग आदि थग-दुग ध्वनियोंका साज सजाया गया और किरिरि-किरि-तट्टकिरि करते हुए किरिरि नामक वाद्य बजाया गया । तक्खा नामक वाद्य तखिखि-तखि-तक्खि इत्यादि ध्वनियाँ करने लगे और खुंद नामक वाद्य तदिदि खुदि खुंद खुद खुंद आदि उच्च स्वर करते हुए बजे । थरिरि-कट-तट्ट-कट करते हुए थरिरि नाचने लगा, और तटखुंद नामक वाद्य किरिरि-किरिरि करते हुए ताड़न करके बजाया गया । हलके हाथोंसे सुप्रशस्त एवं मनोहारी मंगलकारक नंदिघोषका विस्तार किया गया; इस प्रकार तूरोंके शब्दसे बड़ा भारी कलकल करते हुए चतुरंग सैन्य राजाधिराजके साथ चल पड़ा । उठे हुए चंचल धूलिरूपी जलसे आकाशका उल्लंघन करता हुआ उस नरपतिका सैन्य ऐसा चल पड़ा मानो नृपके मनमें रत्नों व रमा (लक्ष्मी) से युक्त तथा हस्तिरूपी मगरोंसे आकुल समुद्र ही उछल पड़ा हो ॥६॥

५. क ङ °णहि । ६. ख ग °लालयं । ७. क घ ङ भरियदर° । ८. क ङ नडवडिण । ९. क ङ फुडि° । १०. ख ग घ धुम्मु धुम्मुक्क° । ११. ख ग सल° । १२. क ख ग घ °ढंक । १३. ख ग °घंड । १४. ख ग टक्क । १५. क ङ °ययं । १६. घ थगगदुगदुग्गो थगथगदुगे° । १७. ख ग घ किरि । १८. ख ग तखे खे खि तखे तखि तखे त्तासुरं तं खुदे तं खुदे तं खुदे खुदि भासुरं । १९. घ थरिरि । २०. ख ग घ कट-खुंद । २१. घ तटता° । २२. क ङ सुम° । २३. क घ ङ वलियं । २४. ख ग तें; घ ति । २५. घ चल्लियउ ।

[७]

वस्तु—समयकरिघडकुंभसिंदूर[1]-
पूरेण[2] पवणाहएण रत्तकिरणु मज्झण्णे[3] भावइ।
अत्थंत[4] संझाविरहु चक्कवायमिहुणाण दावइ॥
हरिखुरखुण्ण[5]समुग्गएण[6] धूलीरएण विहाइ[7]।
भडपहरणछिज्जंतकर रवि संकिल्लइ नाइ[8] ॥१॥

खंधारु वहइ परबलजइल्लु उड्डीण[9]रेणुपसरणमइल्लु।
रहकरितुरंगभडसंकडिल्लु उब्भियसिहिसाहुलसयजडिल्लु।
गयगंडगलियमयकद्दमिल्लु हयफेणचिलिचिलदुग्गमिल्लु।
धुव्वंतचिंधधयसुरडरिल्लु तंडवियछत्तपड[10]-पंडुरिल्लु[11]।
पालिद्धयालिविहुणियकरिल्लु[12] मंडलियमउडमणिगणगरिल्लु।
सामंतकुमरकस[13]-हयहरिल्लु [14]खेल्लंतपत्तिपयथरहरिल्लु[15]।
डोहियजलवाहिणिजलतरिल्लु सिरि[16] जूडबद्ध-थोरियवरिल्लु।
कच्छडयदिण्ण[17]-कामिणिकडिल्लु[18] पयचप्पणकयचिक्खिलतडिल्लु[19]।
रहचक्कमुक्कचिक्कारतट्टु पाडवि[20] कंठालु[21] वइल्लु नट्टु।

[७]

मदसहित गजसमूहके कुंभस्थलोंसे पवनसे आहत होकर उड़ते हुए सिंदूरके पूरसे सूर्य मध्याह्नकालमें ही ऐसा लाल-लाल किरणोंवाला दीखने लगा, जैसा कि संध्यांतमें अस्तंगत होता हुआ चक्रवाक् मिथुनोंको विरह उत्पन्न करता है, तथा घोड़ोंके खुरोंसे खोदे हुए आकाश-को उड़नेवाले धूलिकणोंसे ऐसा लगने लगा मानो भटोंके शस्त्रप्रहारसे अपने किरणोंरूपी हाथ काटे जानेसे संक्लेश पा रहा हो। शत्रुसैन्यको जीतनेवाला स्कंधावार उड़ते हुए रेणुके प्रसारसे मैला हो रहा था, तथा रथों, हाथियों, घोड़ों व भटोंसे संकुल एवं उठाये हुए सैकड़ों मयूरध्वजोंसे मानो जड़ा हुआ था। वहाँ गजोंके गंडस्थलोंसे गलित मदसे कीचड़ हो रहा था और घोड़ोंके फेनसे मार्ग दुर्गम हो रहा था। फहराती हुई ध्वजा-पताकाओंसे देव भी डर रहे थे। तने हुए छत्रपटोंसे वह (स्कंधावार) पांडुरवर्ण हो रहा था, व बांसमें लगी हुई कपड़ेकी छोटी-छोटी झंडियोंसे वह करीलके वृक्षोंको कंपायमान कर रहा था, और मांडलीकोंके मुकुटमणिसमूहसे महान् गौरव संपन्न था। सामंतकुमारोंके कशों (चाबुकों) से आहत होते हुए अश्वों और खेलती हुई पदाति सेनासे उस प्रदेशको थरथराते हुए उस सेनाने एक जलवाहिनीका अवगाहन करके उसके जलको पार किया। उस प्रदेशके लोग अपने सिरपर जटाजूट बांधे और गोलाईसे शिरोवस्त्र लपेटे हुए थे, वहांकी कामिनियां कटिवस्त्रमें कछोटा लगाये हुए थीं, एवं लोगोंके पदचापसे उस नदीका तटवर्ती प्रदेश कीचड़मय हो रहा था। कहीं

[७] १. घ °कुंभि सिं°। २. ख दू°। ३. ख ग °ण्णणं; घ °न्नि। ४. क ख क अच्छंत। ५. घ °खुम। ६. ख ग घ समु°। ७. क °इं। ८. नाहं। ९. क क उड्डीर°। १०. क पय। ११. ख ग घ पंड°। १२. क क पालद्ध°। १३. क °कुस। १४. ख ग घ क खोल्लंत°। १५. ख °थरह°। १६. क क सिर°। १७. क क °तडिय; ख ग काछ°। १८. ख ग °करिल्लु। १९. ख ग घ °चिप्पिल। २०. क क पाडिव। २१. प्रतियोंमें कंठाल।

वीएण बलदें दामिएण पडिभरिउ[२२] बोज्झु गोसामिएण ।
उल्ललिय बइल्लु[२३] विवंधणीए[२४] पाइक्कु निवारिउ रंधणीए[२५] ।
करु परए झडप्पिर फरयचेट्टु[२६] कुंभंडिव[२७] डिंभु पाडिहहि विट्ठु[२८] ।
कंसारबोज्झनिवडणघणाइँ रणरणियइँ[२९] फुट्टइँ[३०] भायणाइँ[३१] ।
दोत्तडिहिं[३२] धरंतहो[३३] गउ झडत्ति तेल्लियहो सयडुमोडिउ तडत्ति[३४] ।
विब्भुल्लु बइल्लु[३५] हो मुक्कराडु[३६] हा मुट्ठउ[३७] पुकारइ किराडु ।
कल्लालहो फोडिउ मज्जपट्टु[३८] सुर छंटइ[३९] उत्तेडियइ[४०] भट्टु[४१] ।
संकुइउ[४२] नासु हत्थें[४३] धरंतु विहुणियसिरु नासइँ[४४] हुंकरंतु ।
कल्होडबइल्लें[४५] जायरेल्लु संघाडुल्लालिउ गयउ तेल्लु ।
कुट्टणियइ[४६] वुच्चइ हत्थिरोहु ओसरहि करहि मा मग्गरोहु[४७] ।
रे कुसलु कवणु करि धारिऊण राउलउ तुरंगमु मारिऊण ।
घत्ता—अगणिय निसिदिणु[४८] नरवइ कहिँ मि न विरमइ कारणु तउ वि महल्लउ[४८] ।
दुद्धरवइरिमहाहउ[४९] महिलपराहउ बालु गयउ एक्कल्लउ[५०] ॥७॥

रथके चक्केसे छोड़ी हुई चीत्कारसे त्रस्त होकर काठी (गोण) को गिराकर बैल भाग गया, दूसरे वशमें किये हुए (अभ्यस्त) बैलपर गोस्वामीने पुनः बोझ लादा। रसोई पकानेवाली अर्थात् दूसरोंका खाना बनाकर गुजारा करनेवाली एक विवंधनी अर्थात् असहायस्त्रीने (तेज हांकनेके लिए) बैलको पीटते हुए पदाति (भृत्यसैनिक) को (यह कहकर) रोका—अरे ! अपने इस फलकके समान चेष्टा करनेवाले (अर्थात् भड़कीले) बैलको झटपट दूर हटाओ, वरना यह ढीठ, बालकको भी कुम्हड़ेके समान दे पटकेगा। कंसेरोंके बोझे गिर जानेसे उनके बहुत घने (अधिक) भाजन रण-रण करके फूट गये। रोकते-रोकते भी एक तेलीका शकट दुष्ट नदीमें चला गया, और तड़ाक्से टूट गया। (हो =) अरे लोगो ! मेरा बैल कहीं भुला गया, हाय मैं लुट गया, इसप्रकार एक किरात चीख-चीखकर पुकार मचाने लगा। एक कल्लालका मद्यपात्र फोड़ डाला गया, इसपर एक भाट (भट्ट) सुराको बूंद-बूंद करके छांटने अर्थात् एकत्र करने लगा। संकुचित नाकको हाथसे पकड़ता हुआ, सिर धुनकर एवं नाकसे हुंकार करता हुआ (रातमें) जागनेवाला एक प्रतिहार बोला—दुष्ट बैलके द्वारा (तेलवाहक बैलोंकी) जोड़ीको लात मार देनेसे तेल नष्ट हो गया। एक महावत एक कुट्टनीसे बोला, हट जाओ, मार्गावरोध मत करो ! (किसीने कहा) अरे राजकुलके हाथीको बांधकर और घोड़ेको पीटकर अब तुम्हारी क्या कुशल है? रात (को रात) व दिन (को दिन) नहीं गिनते हुए, राजा कहीं भी विराम नहीं लेता था, और इसका कारण भी बहुत बड़ा था कि दुर्द्धर वैरीसे महान् युद्ध होना था, अपनी (होने वाली) महिलाका पराभव हो रहा था, और बालक अकेला ही (लड़ने) चला गया था॥७॥

२२. ख ग घ परि° । २३. प्रतियोंमें °ल्ल । २४. क क °णीइ; घ °णीइं । २५. ख ग °णीउ । २६. घ °चेट्टु । २७. क घ क °डु व । २८. घ विट्ठ । २९. क क °यइ । ३०. ख ग °इ । ३१. ख भाणियाइं । ३२. क घ क दोत्तडिहिं; ग दोत्तडहिं । ३३. ख ग धरं° । ३४. क क क° । ३५. प्रतियोंमें °ल्ल । ३६. क क मुक्कु । ३७. क सु° । ३८. क मज्जु°; ग °घट्टु । ३९. क क छंडइ । ४०. क घ क °यउ । ४१. ग भट्ट । ४२. क क °इय । ४३. ख ग हत्थे । ४४. घ क °इ । ४५. क °ल्ले । ४६. क कड्ड°; ख ग कट्टणिइं; घ कड्डणिएं । ४७. क °रोहुं । ४८. क घ क अइसंकियमणु णरवइ भणइ महल्लउ । ४९. क क दुद्धरि व° । ५०. क क एक्के°; घ इक्क° ।

[८]

वस्तु—एम पइसइ निवइ खंधारु
गिरिविंझु[1] दुग्गमसिहरु सरलवंसपव्वहिँ अहिट्ठिउ[2]।
पुव्वावरोवहि धरवि[3] धरपमाणदंडु[4] व[5] परिट्ठिउ ॥
गिरिनिज्झरकंदरविसम तरुवरनियरवरिट्ठ।
रवबहिरियवणयरभमिर[7] विंझमहाडइ दिट्ठ ॥१॥
कहिँ मि[8]—अहिमारखर-[9]खइर-धवधम्मणा कंटिबोरीघणा[10]।
वंसिझंसी[11]-तिरिंगिच्छि-अंजणवणा[12] रोहिणी-रावणा।
विल्ल[13]-चिरहिल्ल[14]-अंकोल्लतरु-धायई मल्लि-भल्लायई।
घोंटि[15]-टिंबरु-निघण-फणसमहरुक्खया हिंगुणी-मोक्खया।
सिरिसु[16] सेवन्नि[17]-सेहालिया[18]-सिसमो[19] सज्ज-गुंजा-समो।
कडहु-किरिमाल-करहाड[20]-कणियारिया कुडय-गणियारिया[21]।
कउह-बड[22]-ढउह-सकरीर-करवंदिया मार-महु-सिंदिया।
निंब-कोसंब-[23]जंबुइणि-निंबुंबरा[23] सग्गलग्गं वरा।
कहिँ मि गिरिकडणि[24]गज्जंतकरिकाणणा कुद्धपंचाणणा।

[८]

इसप्रकार नृपतिका स्कंधावार सीधे बांसोंकी मेखलाओंसे भरे हुए एवं दुर्गम शिखरों-वाले विंध्यपर्वतमें प्रविष्ट हुआ, जो पूर्व और अपर (पश्चिम) उदधिको धारण करके धराके प्रमाणदंडके समान स्थित था। इसके उपरांत पहाड़ी झरनों, विषम कंदराओं और सुंदर वृक्षोंके उत्तम कुंजों तथा अपने शोरसे बहरा कर देनेवाले वनचरोंके भ्रमणसे युक्त विंध्य महाअटवी दिखाई दी। कहीं अहिमार, कठोर खदिर (खैर), धव, धम्मण और घने कंटीली बेरीके वृक्ष थे। कहीं बांस, झंसी (झाड़ ?) तिरिंगिच्छ और अंजण तथा रोहिणी (गुल्म विशेष) व रावण (औषधि विशेष) आदिके बड़े-बड़े वन थे। कहीं बेल, चिरिहिल्ल, अंकोल्ल, धातकी और मल्लि तथा भल्लातकीके वृक्ष थे। कहींपर मुख्यतया घोंटी, टिंबर, निघन, फणस व हिंगुणीके बड़े-बड़े वृक्ष थे ! कहीं सिरीष, सेवणि, शेफालिका, सिसम (शीशम-शिंशपा), सर्ज, गुंजा और शमी (छोंकार) के वृक्ष थे। कहीं कटभू (कटहल ?), किरिमाल, शिफाकंद (मैनफल) और कर्णिकार (कनेर) व कुटज और गणिकारके तरु थे। कहीं ककुभ (चंपा ?) वट, ढउह (ढोह ?) करील, करवंदी (करौंदा) मार व महुआ और सिंदोके वृक्ष थे। कहीं निंब, कोशाम्र, जंबूकिनी (वेतस-बेंत), नींबू व उंबर (उदुंबर) के सुंदर वृक्ष मानो स्वर्गको छू रहे थे। कहीं पर्वतमेखलापर हाथी व क्रुद्ध सिंह गर्जन कर रहे थे। कहीं दंड (शस्त्र)से

[८] १. क ॰ज्झ। २. क ॰ट्ठउ। ३. क ख ग घरिवि। ४. क धरहिं माणदंडु। ५. क वि; ख नावइ। ६. ख ग ॰वणयरं। ७. ख ग घ ॰भमिय। ८. क ख ग में सर्वत्र 'कहि मि'। ९. क खयर १०. घ कंटि०। ११. क वंसज्झंसं। १२. ख ग घ ॰वरा। १३. क विल्लि॰। १४. क घ चिरि॰। १५. ख ग घ घोंटि॰। १६. ख ग घ ॰स। १७. क ख ग सेवणि। १८. क सेया॰; ख ग सोहा॰। १९. क सिसिमी। २०. ख ग कडहार; घ करहार। २१. ख ग गणॅ। २२. ख ग वउ॰। २३. क जंबुइणि उंबरा; ख ग जंबुइणि निवंबुरा। २४. घ ॰कडिणि।

कहिँ मि हयदंडवग्घेहिं[25] गुंजारिया गवय विद्दारिया[26] ।
कहिँ मि घुरुहुरियकोलउलदाढुक्खया कंदया सुक्खया ।
कहिँ मि हुँकरियदिढमहिससिंगाहया रुक्ख भूमिं[27] गया ।
कहिँ मि मेल्लंतु वुक्कार दीहरसरा धाविया वाणरा ।
कहिँ मि घुग्घुइयघूयडसया[28] रोसिया वायसा वासिया ।
कहिँ मि [29]भल्लुंकिफेक्काराहक्कारिया जंबुया[30] धारिया ।
कहिँ मि पज्झरियखलखलियजलवाहला कसणतणुनाहला[31] ।
कहिँ मि [32]महिपडियतरुपण्णसंछन्नया[33] संठिया पन्नया[34] ।
कहिँ मि [35]फणिमुक्कफुक्कारविससामला जलिय दावानला[36] ।
अवि य—
दीसंति जत्थ[37] पल्लीवणाइँ [38]कंटयतरुविसमइं झरिवणाइँ ।[39]
वि-सरिसघरदारविणिम्मियाइँ वग्गुरगलजालोलंबियाइँ ।
सुक्कंतमयामिस-स-स-घराइँ उक्कत्तियचित्तयछवघराइँ ।
जहिँ[40] भिल्लुलुक्कसिर[41]-तणुकराल निल्लोमकुंच-गुरुदाढियाल ।
सलहिज्जइ[42] जहिं भिल्लेहिं[43] नामु मंडलि उवविट्ठहिं[44] जंघथामु ।
क वि पल्लि वहइ हलभूमिलील[45] संपच्चमाणगोधूमनील[46] ॥

आहत व्याघ्रों (को चिंघाड़)से वह अटवी गुंजारित हो रही थी, और कहीं नील गाय विदीर्ण कर डाली गयी थी। कहीं घुरघुराते हुए बनैले सूअरोंके दाढ़ोंसे उखाड़े हुए कंद सूख रहे थे। कहीं हुंकार करते हुए बलवान् महिषोंके सींगोंसे आहत हुए वृक्ष गिर गये थे। कहीं दीर्घ-स्वरसे बुक्कार छोड़ते हुए वानर दौड़ रहे थे। कहीं घूग्घू-घूग्घू करते हुए सैकड़ों घूयडोंके स्वरसे रुष्ट हुए वायस कांव-कांव कर रहे थे। कहीं शृगालियोंके फेत्कारसे आह्वान किये गये जंबूक पकड़े जा रहे थे। कहीं खल-खल करके झरते हुए जलके छोटे-छोटे प्रवाह थे, और कहीं काले शरीरवाले म्लेच्छ थे। कहीं पृथ्वीपर गिरे हुए पत्तोंसे ढके हुए सर्प पड़े थे, और कहीं नागोंके छोड़े हुए फूत्कारोंसे विषके समान श्याम वर्णके दावानल जल रहे थे।

और भी—वहाँ चोरोंके निवासके योग्य ऐसे घने अरण्य दिखाई देते थे जिनमें विषम कांटेदार वृक्ष और झाड़ियोंके जंगल थे। वहाँ पारधियोंके घरोंके द्वार बिल्कुल एकसमानरूपसे बने थे, और उनपर पशुओंको पकड़नेके जाल और मछली फंसानेके कांटे व जाल लटके हुए थे। उन सबके अपने-अपने घरोंमें मृगोंका मांस सूख रहा था, तथा काटे हुए चीतोंके शव पड़े हुए थे। और भी वहाँ मुंडे हुए शिर व भयानक शरीर तथा लोमरहित कूर्चा किंतु बड़ी भारी दाढ़ी वाले भील थे, तथा मंडलीमें बैठे हुए भीलों-द्वारा वहाँ जंघाबल (दौड़ने व युद्ध करनेकी शक्ति) की श्लाघा (सराहना) की जाती थी। कहीं कोई छोटा गांव हलभूमि (कृषि क्षेत्र) की लीला धारण कर रहा था, और पकते हुए गेहुओंसे नीला (हरा) हो रहा था।

२५. ख ग घ हयदंडि° । २६. क ङ गयवि वि° । २७. क ङ भूमी । २८. ख ग घुरुघुरियघूवड°; घ घुरुघुरियघूयडसरा; क ङ °सरा । २९. क ङ भाल्लंकि° । ३०. ख ग °आ । ३१. घ नाहणा । ३२. घ °तरुपन्न° । ३३. क ङ °णया । ३४. क ख ग ङ पणया । ३५. ख ग °पुक्कार° । ३६. क ङ °णला । ३७. क ङ जे° । ३८. घ कंठय° । ३९. ख ग झरु° ४०. क ङ जहि । ४१. क °लहक्कसिर°; ङ लहुक्कसिर° । ४२. घ °ज्जहि । ४३. ख ग °ण । ४४. ङ °ट्ठहि । ४५. क ङ हलि° । ४६. क °णाल ।

पुणु केरिसी विंझाडई—

भारहरणभूमि व सरहभीस[४७] हरि-अज्जुण-नउल-सिहंडिदीस ।
गुरु-आसत्थाम-कलिंगचार[४८] गयगज्जिर-ससर-महीससार ।
लंकानयरी व सरावणीय चंदणहिं चार कलहावणीय ।
सपलास-सकंचण-अक्खयड्ढ[४९] सविहीसण-कइकुलफलरसड्ढ[५०] ।
कंचाइणि व्व ठिय कसणकाय सद्दूलविहारिणि-मुक्कनाय ।
तिणयणतणु व्व दारुवणछंद गिरिसुय-जड-कंदल-खंडयंद ।

घत्ता—वोलवि वणु परिसक्कइ कहिं मि[५१] न थक्कइ जहिं छइल्लु[५२] जणु निवसइ[५३] ।
गहयारंभुच्छाहिउ मगहनराहिउ विंझएसु तं पइसइ[५४] ॥८॥

और फिर वह विंध्याटवी कैसी थी ?—वह (महा) भारत रणभूमिके समान भयंकर थी; भारत रणभूमि चीत्कार करते हुए रथोंसे भयानक थी, अटवी शरभों (अष्टापदों)से; भारत युद्धमें कृष्ण, अर्जुन, नकुल और शिखंडी थे, अटवीमें सिंह, अर्जुन वृक्ष, नेवले और मयूर थे; भारत रणभूमि गुरु (द्रोणाचार्य), अश्वत्थामा और कलिंगराजके संचरण (परिभ्रमण) से युक्त थी, अटवी बड़े-बड़े पीपलके वृक्षों, हरी-हरी लताओं एवं चार (चिरौंजी) वृक्षोंसे; भारत रणभूमि गजोंके गर्जन, तथा बाणधारी राजाओंसे समृद्ध थी, और अटवी गजोंके गर्जन, सरोवर, तथा महिषोंसे । और भी—वह अटवी लंकानगरीके समान थी, लंकानगरी रावणसे सनाथ थी, और चंद्रनखाके आचरणके कारण वहाँ कलह हुआ था, और विंध्याटवी रावण (फलविशेष) वृक्षों, चंदनवृक्षों, चारवृक्षों एवं कलभों (बालहस्तियों) से युक्त थी । लंकानगरी पलाश (राक्षस), कांचन (सुवर्ण) और अक्ष (रावणका पुत्र) सहित होनेसे गर्विष्ठ थी, एवं विभीषण तथा रसिक कवियोंसे परिपूर्ण थी; विंध्याटवी पलाश, कंचन (मदनवृक्ष), चक्षु-विभीतक (बहेड़ा) के वृक्षोंसे गर्विष्ठ, तथा नाना प्रकारकी विभीषिकाओं एवं वानरों व खूब रसभरे फलोंसे समृद्ध थी । वह अटवी कात्यायनी (चामुंडा) के समान थी; कात्यायनी कृष्ण-शरीरवाली हैं, तथा शार्दूल (शरभ)पर विहार करती हुई फेत्कार छोड़ती रहती हैं, विंध्याटवी काले कौओं, शरभोंके विहार व नाना वन्यपशुओंके नादसे युक्त थी । वह अटवी महादेवके समान थी, महादेवने गौरीके अभिप्राय (छंद) से नाना प्रकारका रौद्र नृत्य किया, तथा वे गिरिसुता (पार्वती), जटाओं एवं कपालपर खंडचंद्र (चंद्रकला) से युक्त हैं, और विंध्याटवी दारुवनोंसे आच्छादित थी, एवं पर्वतों, शुकों, नानाप्रकारकी मूलों, विशेष अंकुरों एवं खंडकंदों (कंदविशेष) से युक्त थी । वनको लांघकर, राजा आगे बढ़ गया, व कहीं भी रुका नहीं । इसप्रकार मगधाधिपने बड़े-आरंभ (कार्य) के उत्साहसे उस विंध्यप्रदेशमें प्रवेश किया जहाँ छैले लोग (विदग्ध-जन, ज्ञानीपुरुष) रहते थे ॥८॥

---

४७. क °लीस । ४८. क ख कलिअंगयार; घ °धार । ४९. क ख °यट्ट । ५०. क ख ग ख °रसट्ट । ५१. ख ग कहि मि । ५२. क ख छयल्लु । ५३. क °सइं । ५४. ख ग पय° ।

[९]

वस्तु—जेत्थ[1] [2]पट्टणसरिस-वरगाम
गामार वि नायरिय[3] नायरा वि बहुविविहभोइय[4] ।
भोइया वि धम्माणुगय[5] धम्मिणो वि जिणसमयजोइय[6] ॥
महिसीबद्धसणेह[6] जहिँ[7] कमलायर-गयसाल ।
परिरक्खियगोहण रमहिँ[8] गोवाल व[9] गोवाल ॥१॥
जत्थ केयारवरसालिफलवंधयं[10] [11]नियडतरुगलियमहुकुसुमसमगंधयं ।
जत्थ सरवरइँ न कयावि ओहट्टइँ[12] मंदमयरंदवियसंतकंदोट्टइँ[12] ।
जत्थ भमरोलि कीरेहिँ समहिट्टिया नीलमरगयपवालेहिं[13] णं कंठिया ।
छेत्तछोक्काररवपामरीसल्लिया पहिय-कणइल्ल-मिग पउ वि नउ चल्लिया ।
थोरथणभारसंरुद्धभुवडालिया[14] भरइ जलपाणु पहियाण[15] पावालिया ।
[16]वियडकडिबिंबखिन्नाए[17] थक्किज्जए नीलनेसणयगोवीए गाविज्जए[18] ।
जम्मि देसम्मि जणवेसहासियसुरं पट्टणं वसइ नामेण नम्माउरं[19] ।

[६]

जहांके ग्राम नगरों जैसे थे, और ग्रामीण नागरिकों जैसे, तथा नागरिक बहुविध भोगोंसे युक्त थे। भोगोंसे युक्त होकर भी वे धर्मानुगत (धर्मपालक) थे, और धर्मानुगत होकर जिनधर्मसे योजित (युक्त) थे। जहांके गोपाल (ग्वाले) गोपालों (भूमि अथवा प्रजापालक राजा) के समान रमण करते थे; राजा लोग महिषी (महादेवी) के प्रति स्नेहासक्त होते हैं, लक्ष्मीके निधान होते हैं, तथा हस्तिशालाओंके स्वामी होते हैं, और गोधन (पशुधन, पृथ्वीधन व जनधन) का रक्षण करते हुए आनंद मनाते हैं, उसीप्रकार वहांके ग्वाले महिषियोंसे स्नेह करते थे और कमल सरोवरोंरूपी गजशाला (गवयशाला-गोशाला) से युक्त थे (क्योंकि उनकी भैंसें तालाबोंमें ही प्रसन्न रहती हैं), तथा अपने गोधन (पशुधन) की रक्षा करते हुए रमण करते थे। जहां श्रेष्ठ शालि (धान) के खेत फूले हुए थे, जो पासके वृक्षोंसे गिरे हुए मधु (मधूक-महुआ) के फूलोंकी गंधसे सुगंधित थे। जहांके सरोवर कभी सूखते नहीं थे, और जो मंदमकरंदसे युक्त विकसित होते हुए नीलकमल समूहोंसे पूर्ण थे। जहां शुकोंसे समाधिष्ठित भ्रमरपंक्ति मरकत व प्रवाल (मूंगा) मणियोंसे जड़ी हुई नीलमणिके समान शोभायमान होती थी। जहां खेतोंमें कृषक-वधुओंके छोक्कार रव (पक्षियोंको डरानेके लिए की जानेवाली ध्वनि) से बिधकर, पथिक, शुक और मृग एक पग भी आगे नहीं बढ़ते थे। जहां स्थूल स्तनोंके भार (उभार) से संरुद्ध-भृकुटि (दृष्टिपथ) वाली प्र-पालिका (प्याऊ वाली) पथिकोंके जलपात्रोंको भरती थी। जहां अपने कटितलकी विशालतासे क्लान्त हुई नीले वस्त्रोंवाली गोपी-द्वारा गीत गाये जाते थे। जहांके लोगोंका वेश अर्थात् पहनावा

[९] १. क जित्थ; घ क जित्थु। २. ख ग पट्टणु सरिसु बहु°। ३. ख ग णाइ°। ४. घ क °इया। ५. ख ग °गया। ६. क घ क °सिणेह। ७. ख ग जिह। ८. क °हि। ९. ख ग वि। १०. घ °रंधयं। ११. क क णिवड°। १२. क क °ट्टइ; ख ग घ °ट्टयं। १३. क °लेहि। १४. ख ग भुय°; घ तुय°। १५. ख ग °याणु। १६. क क वियडि°। १७. क घ ग °खिण्णाए; घ °खिन्नाइं। १८. क घ क गाइ°। १९. क क णामा°।

मिलियबहुदेसिजणमंडलीसोहियं चारुनेवत्थरममाण[२०]-सिसुसोहियं ।
जत्थ पयडंतनवनेहपियलालिया[२१] जिणइँ[२२] गिरितणयसोहग्गु[२३] कुलबालिया ।
जत्थ पुरवासिलोएण बहुबुद्धिणा धम्मकामत्थसेवासु मणसुद्धिणा ।
घत्ता—वेसायउ कय[२४] थक्कउ निट्ठुरवंकउ गंठिहिँ[२५] भरिउ सखारउ ।
उच्छु व मेल्लवि[२६] परवसु कोमलु[२७] बहुरसु सेविज्जइ कंतारउ ॥९॥

[१०]

वत्थु—सुहड-संदण-तुरय-करिसारु
कंपाविय सधर-धरु[१] अडोहिय गहिरनइजलु ।
तं नयरु वामउं करिवि सिमिरु जाइ जा किर जसुज्जलु ।
दिणमणिकिरणुत्ताविययहँ[३] वणकरिघडहँ[४] मणिट्ठ ।
जंबुलुंबितोरवियजल[५] ता[६] रेवानइ दिट्ठ[७] ॥१॥
मज्जमाणलयगलमयसंगिणि णं मयतरलतरंगतरंगिणि ।
विमलनीरवोलियतरुसाही गरुयखयाणखणंतपवाही[८] ।
पुलिणट्ठाणनिवेसियकच्छी चुयमहुकुसुमुद्धाइयमच्छी ।

देवताओंका भी उपहास करनेवाला था, वहाँ नर्मपुर नामका पट्टण था, जो बहुत देशोंकी मिली-जुली जनमंडलीसे अवरुद्ध (भरा हुआ) था, तथा मनोहर वस्त्रोंको पहने हुए क्रीड़ाशील शिशुओंसे सुशोभित था । जहाँकी सदैव अभिनव स्नेहको प्रगट करनेवाले प्रियतमकी लाडली (प्यारी) कुलबालिकाएं गिरितनया (पार्वती)के सौभाग्यको भी जीतती थीं; व जहाँके बहुत बुद्धिमान तथा मनःशुद्धिपूर्वक धर्म, अर्थ व कामकी सेवा करनेवाले पुरवासी लोगोंके-द्वारा निष्ठुर छलयुक्त, हृदयसे कुटिलभाव पूर्ण तथा आद्यंत खारे (अर्थात् दुःखद) और पराधीन व मूल्य देकर प्राप्त होनेवाले वेश्यारत (वेश्यारमण) को कठोर, वक्र, व गांठोंसे भरे हुए तथा खारे व दूसरोंके आधीन इक्षुके समान त्याग कर, आद्यंत सुकोमल (स्नेहयुक्त) तथा बहुत रसवाले (अर्थात् अत्यंत सुखद) कांता (स्वपत्नी)रतका सेवन किया जाता था ॥९॥

[१०]

सुभट, स्यंदन तुरग व श्रेष्ठ हाथियोंसे धरा-सहित धराधर (पर्वत) को कंपायमान करते हुए गहरी नदीके जलको अवगाहन कर, उस नगरको बायें करके जिस राजाका उज्ज्वल यश-प्राप्त सैन्यशिविर चला जा रहा था, उस राजाने सूर्यकी किरणोंसे तप्त, वनगजोंके समूहको बहुत प्रिय, और जंबूफलोंके (गिरते हुए) गुच्छोंसे हिलते हुए जलवाली रेवानदीको देखा । मज्जन करते हुए मदगजोंसे युक्त वह नदी मानो तरलमद अर्थात् सुरारूपी तरंगोंवाली तरंगिणी थी । अपने निर्मल जलसे वह वृक्षों और बाटों (पगडंडियों) का उल्लंघन करनेवाले एवं बड़े-बड़े खदान खोद देनेवाले प्रवाहसे युक्त थी । वह रेतीले तटप्रदेशरूपी कच्छा (कटि-

२०. क ङ चारुणेवरुरम° । २१. क °लासिया । २२. ख ग घ °इ । २३. क ङ °सोहग्ग । २४. क ङ में 'कय' नहीं । २५. ख ग घ हुं° । २६. क ग घ ङ मेल्लिवि । २७. ख ग °ल ।

[१०] १. क ङ °घरु । २. घ °उं । ३. क ङ °किरण° । ४. क ङ °घडइ । ५. ख ग घ °जलु । ६. ख ग घ तो । ७. ख ग दिट्ठु । ८. ख ग °क्खडक्कखलंतप;° घ °खलंत° ।

पडियंकोल्लफुल्लसयभमरी[9] गंधिधिर[10]-रुणुरुंटियभमरी।
कीलिरसबरनियंबिणिवहरी[11] [12]थड्डथोरथणफोडियलहरी।
सा उत्तरिवि महाजलवाहिणि कुरलगिरिंदु[13] नियइ निववाहिणि।
जो फुरंतजिणभवणरवण्णउ[14] [15]वंदणभत्तिमिलियसुरछण्णउ[16]।
रायागमणु मुणिवि णं रहसिउ[17] फुल्लकयंबदुमहिँ उद्धसिउ।
नच्चइ व्व नच्चंतमऊरहिं गज्जइ व्व सुरदुंदुहितूरहिँ।
पणवइ व्व फलनामियडालहि उप्पिडइ[18] व कुरंगसिसुफालहिं।
ण्हावइ[19] जिणपडिमहिँ सुरण्हवियहिँ[20] कुलकुलइ व कोइलकुललवियहिं।
सो गिरि नियवि नवेवि जिणचलणइँ[21] पुणु थोवइँ[22] लंघेवि नइवलणइँ[23]
तहिँ आवासु निवेण लइज्जइ सेणावइपमुहहिँ[24] सूइज्जइ[25]।
रायंतेउरवासु पइण्णउ[26] अग्गए सीहवारु[27] संदिण्णउ[28]।
तक्खणे रुद्ध-पत्तसंचारहिँ संदण उज्जोत्तिय[29] जोत्तारहिं।
[30]मत्तमयंग-निबंधणचेट्ठहिं[31] सरलरुक्ख पडिगाहिय मेट्ठहिँ।

वस्त्र) पहने हुए थी, तथा महुएके गिरे हुए कुसुमोंके लिए लपकती हुई मछलियोंसे युक्त थी। उसमें गिरे हुए सैकड़ों अंकोल्ल पुष्प मानो सैकड़ों स्त्रीभ्रमर थे, जिनकी गंधसे अत्यंत आसक्त हुए भौंरे उनपर मधुर गुंजार कर रहे थे। क्रीड़ा करती हुई शबर सुंदरियोंसे वह ईषत् मर्दित हो रही थी, और उनके कठोर व स्थूल स्तनोंसे उसकी लहरें टूक-टूक हो रही थीं। उस महाजलवाहिनीको उतरकर नृपसेनाने कुरलपर्वतको देखा, जो (अपने उन्नत शिखरोंसे) चमकते हुए जिनभवनोंसे रमणीक था, और वंदन-भक्तिसे एकत्र हुए देवोंसे आच्छादित था, (अथवा जहाँ वंदनाकी भक्तिसे देवकन्याएँ एकत्र थीं)। राजाके आगमनको जान, मानो हर्षित होकर वह फूले हुए कदंबद्रुमोंसे रोमांचित हो गया; नाचते हुए मयूरोंसे वह मानो नाचने लगा, और देवदुंदुभियोंके तूरसे मानो (हर्षपूर्वक) गर्जन करने लगा; फलों (के भार) से झुकाये हुए डालोंसे मानो प्रणाम करने लगा, और कुरंग शिशुओंके उछल-कूद करनेके रूपमें, मानो उसने नृपतिको (अर्घ) अर्पण किया, देवों-द्वारा अभिषेक करायी जाती हुई जिनप्रतिमाओंके रूपमें मानो उसने नृपतिका ही अभिषेक कराया, और कोकिलसमूहके आलापसे मानो आनंदसे कुलकुला उठा। उस पर्वतको देखकर, जिनचरणोंको नमन करके, और फिर नदीके और थोड़े-से मोड़ोंको लांघकर नृपने पड़ाव डाला, तथा सेनापति प्रमुख लोगोंसे इसकी सूचना की गयी। राजाका अंतःपुरनिवास विस्तीर्ण किया गया, व उसके आगे सिंहद्वार दिया गया। तत्क्षण पदातियोंके संचरणको अवरुद्ध करते हुए, योक्ताओं (रथवानों) ने रथोंके जोत उतार दिये। मत्तमातंगोंको बांधनेमें सचेष्ट महावतोंने सरलवृक्षोंको ले लिया। गलेमें बेलें डालकर बांधी

९. क ख क °समरी। १०. ख ग गंवंद्धिर०; घ गंधं°। ११. घ °वहरो। १२. क क थट्ट°; ख घट्ट°; ग घट्टघोरघण°। १३. क क कुरल°। १४. क °ण्णउं; घ न्नउं। १५. क क °हत्ति°। १६. क क °ण्णउं; ग °कण्णउ; घ °न्नउं। १७. क घ क हरिसिउ। १८. क क उप्फलइ; ख ग उप्पि°। १९. क °वइ व; क °वइ व्व ख ग ण्हाइ व; घ न्हाइ व। २०. घ मुरन्ह°। २१. क °णइ। २२. प्रतियोंमें °इ। २३. क क °णइ। २४.; क क °हहि; ख ग °हाहि। २५. ख सुवि°; ग मुचि°। २६. क क °ण्णउं; ख ग °पयण्णउ। २७. क क सिंह°। २८. क क °ण्णउं; घ °न्नउ। २९. क क उंजो°। ३०. घ मत्तगइंदनिबंधणु। ३१. क °चेट्ठहिं।

दिण्णवल्लिगल[३२]-खोडीसंगम[३३] संचारिय मंदुरहिँ[३४] तुरंगम।
गुड्डरदूसावासकयग्गहु नियठाणहिँ ठिउ रायपरिग्गहु।
घत्ता—तहिँ रेवानइ कण्णए[३५] तरुसंछण्णए[३६] कुरुलगिरिंदहो[३६] नियडउ।
सेणियरायहो[३७] बलु कय-सममहियलु[३८] इय आवासिउ वियडउ ॥१०॥

[११]

वस्तु—सीहवारहो पुरउपरि ठविउ
सविलासकामिणिललिउ पिंडवासु सहुँ पण्णसालहिँ[१]।
पुणु विविहकेणयभरिउ हट्टमग्गु किउ कोट्टवालहिं ॥
नडविडडोवहिँ[२] विट्टलिउ[३] पइसवि[४] रंधणे हट्टु।
दब्भहिँ[५] गद्दहचव्वियहिँ[६] संज्झा वंदइ भट्टु ॥१॥
आर्या—गलनिहितकुसुममालश्चंदनसंचर्चितः सनिःश्रावः।
भट्टः प्रविशति हृष्टो गुणगणिका[७] हट्टकुट्टिन्याः ॥१॥
आवासिउ मगहनरिंदु तेत्थु कह वट्टइ जंबूसामि जेत्थु।
गयणगइसमाणु[८] विमाणवंतु निविसेण जि केरलनयरि पत्तु।
ता पट्टणबाहिरि कयवमालु संगामतूरभरियंतरालु।

हुई गधियोंके संगमके लिए घुड़सालोंमें घोड़ोंका संचार कराया गया। कपड़ेके तंबुओंका आश्रय लेकर राजाका सारा परिग्रह (सैन्य) अपने-अपने स्थानोंपर स्थित हो गया। वहाँ रेवा नदीके किनारे, वृक्षोंके सायेमें, कुरल गिरिराजके निकट श्रेणिक राजाका सैन्य भूमिको समान करके विस्तारसे बस गया ॥१०॥

[११]

सिंहद्वारके आगे सेनाके लिए पण्यशालाओं (दुकानों) से युक्त एवं विलासपूर्ण कामिनियोंसे ललित आवास बनाया गया, फिर कोटपालोंके द्वारा विविधप्रकारके क्रेय (कीनने-योग्य) पदार्थोंसे भरा हुआ हाटमार्ग (बाजार) बनाया गया। नटों, विटों व डोमोंने रसोइयोंमें प्रवेश कर उन्हें बिटाल दिया (अशुद्ध कर दिया), और भ्रष्ट ब्राह्मण गधोंके द्वारा चबाये गये दर्भसे संध्यावंदन करने लगा। गलेमें पुष्पोंकी माला डाले (मस्तकपर) चंदनका लेप किये हुए एवं पसीना चूते हुए एक भ्रष्ट (ब्राह्मण) गुणोंकी गणिका (अर्थात् गुणोंको लूटनेवाली) बाजारू कुट्टनी (के डेरे) में हर्षित होकर प्रवेश करने लगा।

इसप्रकार वहाँ मगधराजने पड़ाव डाल लिया। उधर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँकी कथा इसप्रकार हुई—गगनगतिके साथ विमानमें बैठकर निमिषमात्रमें वह केरल नगरीको प्राप्त हुआ। वहाँ पत्तनके बाहर संग्रामतूरोंके द्वारा किया हुआ कोलाहल दिगंतोंको भर रहा था। फहराते

३२. ख ग घ दिन्न°; क क °वेल्लि। ३३. क क खोलो°। ३४. क °रहि। ३५. घ °ग्गइं। ३६. क ग क कुरल°; ख ग °गिरंदहो। ३७. ख ग घ क सेणियमहरायहो। ३८. क क °यलु।

[११] १. घ पन्न°। २. क घ क °भडडोमहिँ। ३. क क विट्टिलउ; ख ग घ विट्टलउ। ४. क घ क °सिवि। ५. क °हि। ६. क गद्दहि च°; ख ग °चब्बि°। ७. ख ग गुणतणिका। ८. घ °समाण।

घुव्वंतमहाधयधवलचिंधु उम्मग्गलग्गु णं पलयसिंधु ।
गज्जंतमत्तमायंगफारु हिलिहिलियतुरंगमथट्टसारु ।
तिक्खुक्खयपहरणसुहडवंतु आमुक्कहक्कभेसियकयंतु ।
तं नियवि कुमारें तक्खणेण गयणगइ वुत्तु विंभियमणेण ।
प्रहु[९] दीसइ[१०] काइँ सकोउहल्लु तो कहइ खयरु प्रहु[११] अम्ह सल्लु ।
प्रहु[११] सो जो मग्गइ वरकुमारि प्रहु[११] सो जो बलथंभियतमारि ।
प्रहु[११] सो जो विसरिसजमपयाउ संताविउ[१२] जेण मियंकु राउ ।
प्रहु[१३] सो जसु रणजयकयपयज्जु[१४] तुहुँ[१५] आउ वइरिसिरसिहरिवज्जु[१६] ।
सहुँ सेण्णें[१७] सुरहु[१८] मि हिययसूलु[१९] प्रहु[१२] सो विज्जाहरु रयणचूलु ।
बोल्लइ कुमारु पेक्खहुँ[२०] पमाणु खंधारसमुहुँ खंचहि[२१] विमाणु ।

घत्ता—ताम विमाणु विलंबिउ महियले लंबिउ जंबुकुमारुत्तिण्णउ[२२] ।
पुणु पइसइ आसंकहो कज्जि मियंकहो रिउखंधारु पइण्णउ[२३] ॥११॥

[१२]

वस्तु— नियडनहयले[१] चलइ सविमाणु
विज्जाहरु गयणगइ जंबुसामि महिवट्टे चल्लइ ।
रणरहसरंजियमणहो[२] जंसु चलंत[३] महिवीढु हल्लइ[४] ॥

हुए महाध्वजों तथा धवल पताकाओंसे वहाँ ऐसा दृश्य उपस्थित हो रहा था, मानो प्रलय-समुद्र ही उन्मार्ग अर्थात् (अपनी मर्यादा छोड़कर) आकाशमें जा लगा हो। मत्तमातंग भारी गर्जन कर रहे थे, और श्रेष्ठ तुरंगमोंके समूह हिनहिना रहे थे, तथा म्यानोंसे निकाले हुए तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करनेवाले सुभटोंके द्वारा छोड़ी हुई हुंकारोंसे वह कृतांतको भी भयभीत कर रहा था। यह सब देखकर कुमारने तत्क्षण ही विस्मित मन होकर कहा—कौतूहलवर्द्धक यह सब क्या दीख रहा है? तो खेचरने कहा, यही तो हमारा काँटा है, यही वह है जो उस श्रेष्ठ कुमारीको माँगता है, जो अपने बलसे सूर्यको भी स्तंभित कर देता है, जो यमके समान अद्वितीय प्रतापवाला है, जिसने मृगांकराजाको संतप्त किया है, और जिसको रणमें जय करनेकी प्रतिज्ञा करके तू इस वैरीके शिररूपी पर्वतके लिए वज्र बनकर आया है। अपनी सेनाके साथ यह देवताओंके लिए भी हृदयका शूल बना हुआ है, यही (वह) विद्याधर रत्नचूल (रत्नशेखर) है। इसपर कुमारने कहा, मैं इसका (सैन्य) प्रमाण देखना चाहता हूँ, अतः विमानको स्कंधावारके सन्मुख खींच लीजिये। तब गगनगति विद्याधरने विमानको रोककर, पृथ्वीसे मिलाया, जंबूकुमार उसमें-से उतरा, व मृगांकके कार्यसे, शत्रुके उस फैले हुए स्कंधावारमें आशंकापूर्वक प्रवेश किया ॥११॥

[१२]

नभस्तलके निकट विमानसहित गगनगति चल रहा था, और पृथ्वीपर जंबूस्वामी चल रहे थे। रणकी उत्कंठासे भरे हुए मनसे उसके चलते हुए पृथ्वीतल हिल उठा। अनार्य जाति-

९. क ख ग क इउ। १०. क क °इं। ११. क क इहु। १२. क क संतवियउ। १३. क घ क इहु। १४. क क रणकयजयपयज्जु; ख ग °पयज्ज घ °पइज्जु। १५. प्रतियोंमें 'तुहुं'। १६. ख ग °वज्ज। १७. क क सण्णें; घ सिन्नि। १८. घ °हि। १९. क क हियइ°। २०. प्रतियोंमें °हु। २१. ख ग घ °हिं। २२. क घ क ण्णउं। २३. घ °ष्णउं।

[१२] १. ख ग घ नियडु नह°। २. घ °रंगियम°। ३. क घ क पयभरेण। ४. क क धरवीढु डोल्लइ।

देसल्लहसि संबंधियउ[5] वणि ववहारु बहुत्तु ।
पेक्खंतउ दीसइ जणहिँ[6] राउलबारि पहुत्तु ॥ १ ॥

तं भणिउ[7] कुमारें नयपसत्थु पडिहारु कणयमयदंडहत्थु ।
कह नियनरिंदहो सारभूउ पट्ठविउ मियंकें आउ दूउ ।
[8]तो गं पि[8] दंडधारें[9] समत्त[10] अत्थाणे[11] निवेइय निवहो[12] वत्त ।
परमेसर रक्खणसुहडसारि अच्छइ मियंकपहुदूव[13] वारि ।
लहु[14] पइसउ[15] इय आएसिएण पइसारिउ जंबुकुमारु तेण ।
आवंतउ रयणसिहेण दिट्ठु सव्वहं[16] मि[17] चमक्कउ मणे पइट्ठु ।
नहमणिफुरंतपयदिण्णविक्खु तणुतेयतविय-अरिदुण्णिरिक्खु[18] ।
पीवरचामीयरथंभजंघु[19] थिरदिट्ठि[20]-विलंबियवइरिसंघु ।
करजुवलुब्भासियकमलकंबु[21] केसरिकिसोरचक्कलनियंबु[22] ।
दिढसुललियनेसियदिव्ववत्थु[23] मणिफुरियछुरियबंधणपसत्थु[24] ।
हारच्छवि[25] पयडइ छइयवच्छु[25] [26]संगामसूरकरि-दवणदच्छु[27] ।
दीहरकरिकरसमबाहुदंडु मणिकुंडलमंडियचारुगंडु ।

के उस देशके व्यवहारमें कुशल वह वणिक् (पुत्र) लोगोंके देखते-देखते राजकुलके द्वारपर पहुँचा हुआ दिखाई दिया । (वहाँ पहुँचकर) कुमारने सुवर्णमयदंड हाथमें लिये हुए, और व्यवहार-कुशल प्रतिहारको कहा—अपने नरेंद्रको यह महत्त्वपूर्ण बात कहो कि मृगांकका भेजा हुआ दूत आया है । तब सभामंडपमें जाकर दंडधरने राजाको समस्त वार्ता निवेदित की— 'हे श्रेष्ठ सुभटोंके पालक परमेश्वर, मृगांक राजाका दूत द्वारपर विद्यमान है ।' 'शीघ्र प्रवेश कराओ', ऐसा आदेश पाकर, उसने जंबूकुमारको प्रवेश कराया । रत्नशेखरने उसे आते हुए देखा, और सबके मनमें एक चमत्कार उत्पन्न हो गया । उसके नखमणियोंसे प्रकाशित चरणोंमें जिनकी दृष्टि लगी थी, ऐसे शत्रुओंके लिए तेजसे तप्त उसका शरीर अत्यंत दुष्प्रेक्ष्य था ! वह पुष्टसुवर्णस्तंभके समान जाँघोंवाला था, और उसकी स्थिर (निश्चल) दृष्टिसे वैरियोंका संघ तिरस्कृत हो रहा था । उसके करयुगलमें कमल और शंख (के चिह्न) उद्भासित हो रहे थे, और उसके नितंब तरुणसिंहके समान चक्राकार थे । वह सुदृढ़, बहुत सुंदर तथा प्रशस्त एवं दिव्यवस्त्रोंको पहने हुए था, जिनके बंधन मणियोंकी कांतिसे व्याप्त हो रहे थे । उसका वस्त्रोंसे आच्छादित वक्षस्थल, जो संग्रामसूर हाथियोंका दमन करनेमें दक्ष था, हारकी कांतिसे प्रकट हो रहा था । हाथीके दीर्घ सूँडके समान उसके बाहुदंड थे, और सुंदर कपोल

५. ख ग घ °मंवद्धि° । ६. क ङ °हि । ७. क ख ग ङ दिट्ठु । ८. क ङ जं जं पि । ९. क ङ दंडधारेण; घ °धारिण । १०. ङ °त्तु । ११. क ङ में अत्थाणे'''वत्त के पूर्व 'तो भणिउ कुमारें णयपमत्त' यह अर्द्ध पंक्ति अधिक है । १२. ङ णियहो । १३. ख ग घ °दूउ । १४. घ लहु । १५. ख ग °सइ । १६. क ख ग ङ °हु । १७. क ङ वि । १८. घ °दुन्नि° । १९. क ङ °खंभजंघु । २०. ख ग थिरदिट्ठ° । २१. घ करजुयलु° । २२. क घ ङ °किसोरु० । २३. क ङ °वत्थ । २४. क ङ °समत्थ; ख ग °समत्थु । २५. ख ग घ पडपच्छइय° । २६. ख ग °मूरु° । २६. घ °दमणदच्छ ।

तंबिरफुरियाहरु[28] पीणखंधु   सियकुसुमुब्भासियकेसबंधु।
चिंतिज्जइ रयणसिहेण एम[29]   दूयत्तणु आयहो[30] घडइ केम।
एहु बालु न माणुसु अण्णु[31] कोइ   रेहा वि एह दूवहो[32] न होइ।
नउ नवइ न बइसइ साहिमाणु   लइ सुणमि[33] ताम[34] आयहो[35] पमाणु।
मण्णंतें[36] इय विज्जाहरेण   देवाविउ आसणु मइवरेण[37]।
वइसरेवि कुमारें न किउ खेउ   रयणसिहुँ[38] पुवुत्तइ सावलेउ।
घत्ता–जइ जाणहि[39] परमत्थें[40] भणमि हियत्थें[41] अणयायारु म पवत्तहि[42]।
[43]दप्पु विलुंपिवि[43] बुज्झहि[44] समरे म जुज्झहि[45] अज्ज वि गयप्प[46] नियत्तहि[47] ॥१२॥२५

[१३]

वत्थु— माय-बप्पहिं[1] दिण्ण जा कण्ण
निन्नासियदुन्नयहो[2] वइरिवीरतिहविय छायहो।
सरणाइयपविपंजरहो[3] सेणियस्स महरायरायहो॥
तहि[4] कारणि असगाहु किउ जो सो अज्ज वि मेल्लि।
जाणंत वि मा मुहि[5] छुवहि[6] हालाहलविसवेल्लि॥१॥

मणिकुंडलोंसे मंडित थे। उसके अधर तांबेके समान-लालिमासे प्रकाशित थे, और कंधे बहुत ऊँचे, एवं केशबंध श्वेत कुसुमोंसे उद्भासित। (उसे देखकर) रत्नशेखर सोचने लगा—'इसका दूतपना कैसे घटित (संभव) हो सकता है? यह बालक मनुष्य नहीं, कोई अन्य ही है। दूतकी इसमें कोई रेखा तक नहीं है। न तो यह नमस्कार करता है, और न स्वाभिमानके कारण (अपने आप बिना कहे) बैठता ही है। तो फिर अब इसकी बात सुन लेता हूँ'; इसप्रकार मानते हुए उस मतिमान विद्याधरने उसे आसन दिलवाया। बैठकर कुमारने जरा भी कालक्षेप नहीं किया, और वह रत्नशेखरसे अभिमानपूर्वक ऐसा कहने लगा—यदि तू समझे, तो मैं परमार्थसे तेरे हितकी बात कहता हूँ कि अनाचारका प्रवर्त्तन मत कर! दर्पका लोप (त्याग) करके इस बातको समझ! युद्धमें मत जूझ, और अभी भी गये (चले) हुए (अनीतिके) मार्गसे वापिस लौट जा! ॥१२॥

[१३]

माँ बापने जिस कन्याको दुर्नीतिका नाश करनेवाले, वैरी-वीरोंकी कांतिको नष्ट करनेवाले, शरणागतों (की रक्षा) के लिए वज्रपंजर एवं महाराजाओंके राजा अर्थात् महाराजाधिराज श्रेणिकके लिए दे दी, उसके लिए तूने जो असद् आग्रह किया है, उसे अब भी छोड़ दे। जानते हुए भी हालाहल विषकी बेल मुँहमें मत डाल!

२८. ख ग घ °हर। २९. क ङ एव। ३०. घ °हि। ३१. घ अन्नु। ३२. ख ग घ दूयहो। ३३. घ मु°। ३४. क ताइं; ङ ताव। ३५. क ङ एयहु। ३६. घ मन्नंति। ३७. क ङ मय°। ३८. क घ ङ °सिहु। ३९. क ङ °इ; घ °हिं। ४०. क; °वत्थे ङ °वत्थें। ४१. क °त्थे। ४२. घ °त्तहिं। ४३. क ङ दप्पुब्भडपवि°; ख ग दप्पुविलंघिवि। ४४. क ख ग °हि। ४५. क ङ °हिं। ४६. घ °इं। ४७. ख ग निवत्तयहिं; घ °त्तहिं।

[१३] १. क ख° हि। २. क कण्णिण्णा° दुण्ण°; ख ग निण्णा° दुण्ण°। ३. क ङ °वियपयपंज°, घ सरणागय°। ४. क ङ तह, घ तहिं। ५. क ङ मुहिं। ६. क घ ङ छुहहि।

अक्क-मियंक-सक्ककंपावणु हा मुउ सीयहे[७] कारणे रावणु ।
अलियं[८]दप्पदप्पिय[९]-मइमोहणु कवणु अणत्थु पत्तु दुज्जोहणु ।
तुज्झु न दोसु दइवकिउ[१०] धावइ अणउ[११] करंतु महावइ पावइ ।
जिह जिह[१२] दंडकरंबिउ जंपइ तिह तिह[१३] खेयरु रोसहिँ[१४] कंपइ[१५] ।
थड्ढकंठु-सिरजालु पलित्तउ चंडगंडपासेयपसित्तउ ।
दट्ठाहरु गुंजुज्जललोयणु फुरहुरंतनासउडभयावणु[१६] ।
पेक्खेवि पहु सरोसु सन्नामहिँ[१७] वुत्तु वओहरु मंतिहिँ ताम हि[१८] ।
अहो अहो दूय दूय साहसगिर जं पइँ[१९] चविउ दंडगब्भिउ[२०] फिर ।
अण्णहो[२१] जीह एह[२२] कहो वग्गए[२३] खयरविसरिसनरेसहो अग्गए ।
भणइ[२३] कुमारु एहु रइलुद्धउ वसणमहण्णवे[२४] तुम्हहिँ[२५] छुद्धउ ।
रोसं भरिउ[२६] हियत्थु वि न सुणइ[२७] कज्जाकज्जु बलाबलु न मुणइ ।
रोसु अ दोसु मणूसु नडावइँ[२८] अयसु[२९] समुन्नयवंसेचडावइँ[२८] ।
पहिलउ गलइ बुद्धि रूसंतह[३०] पच्छइ सेयसलिललवसंतइ[३०] ।
पढमविवेउ पावरसु रंजइ[३१] पच्छइ पुणु लोयणइँ न वज्जइ[३०] ।

'अहो ! अर्क (सूर्य), मृगांक (चंद्र) और शक्र (इंद्र) को (अपने भय से) कंपानेवाला रावण सीताके कारण मरा । मतिको नष्ट करनेवाले झूठे दर्पसे दर्पित दुर्योधन कैसे अनर्थको प्राप्त हुआ । तेरा कोई दोष नहीं है, तू दैवका मारा भागा-भागा फिरता है । इसप्रकारकी अनीति करनेवाला महान् आपत्तिको प्राप्त होता है ।' जैसे-जैसे जंबूकुमार ऐसे दंडगर्भित (दर्पपूर्ण व अभिमानोत्तेजक) वाक्य बोलता, वैसे-वैसे खेचर अधिकाधिक रोषसे काँपता । (क्रोधके आवेगसे) उसका कंठ स्तब्ध हो गया, शिरा-जाल प्रदीप्त हो उठा, और विशाल कपोल प्रस्वेदसे सिक्त हो गये । ओठोंको काटते हुए, गुंजाके समान उज्ज्वल (चमकीले) लोचन, तथा फड़कते हुए नासापुटसे भयानक, ऐसे अपने स्वामीको रुष्ट हुए देखकर, तभी सन्नामधारी मंत्रियोंने दूतसे कहा—अहो ! अतिसाहसपूर्ण वाणी बोलनेवाले दूत ! तूने जो कहा वह निश्चयसे शक्तिके अभिमानसे पूर्ण एवं नाशका कारण है । क्या किसी दूसरेकी जिह्वा है, जिससे तू प्रलयकालीन सूर्यके समान प्रचंड तेजस्वी इस राजाके आगे ऐसा बोल रहा है ? इसपर कुमारने कहा—रतिके लोभी इस राजाको तुम लोगोंने संकटके महासागरमें डाल दिया है । रोषसे भरा होनेसे यह अपने हितार्थको भी सुनता नहीं, और न कार्य-अकार्य व बलाबलको ही समझता है । रोष व द्वेष मनुष्यको नाना नाच नचाते हैं, एवं अति उच्च (महान्) वंशमें भी अपयश लगाते हैं । रुष्ट होनेवालेकी बुद्धि पहले ही भ्रष्ट हो जाती है, पीछे पसीनेके जलबिंदुओंकी धारा (संतति) विगलित होती है । पहले तो पाप-रस विवेकको रंग देता है (दूषित कर देता है), पीछे नेत्रोंको भी नहीं छोड़ता (उन्हें भी क्रोधके आवेशसे लाल कर देता है) ।

७. घ °हिं । ८. ख दलियं° । ९. क क °दप्पिउ । १०. घ दइउ° । ११. घ °उं । १२. घ जिहं जिहं; क ख जिहं जिह । १३. ष तिहं तिहं । १४. क क रोसिंहि । १५. क °इं । १६. क क °णासिउड° । १७. क क सण्णा° । १८. क घ क °हिं । १९. क ख घ ग क पइ । २०. ख ग दुंड° । २१. घ अन्नहो । २२. क क एम । २३. घ °इं । २४. घ °णवि । २५. ख ग °हि । २६. ख घ °सरिउ । २७. क मुणइं; घ क सुणइं; । २८. ख ग °वइ । २९. क अजसु । ३० क घ °इं । ३१. क °इं ।

पहिलउ कालसप्पु मणु डंकइ[31] पच्छइ अहरबिंबु ना संकइ[31]।
पहिलउ फुरणु अकित्तिहिँ धावइ[31] पच्छइ पुणु नासउडिहिँ[32] पावइ[31]।
रोसमहाभरु धीरहिँ[33] दम्मइ[34] इयरु[35] पुणु वि[35] रोसेण निहम्मइ[36]।
जित्तु जि एण वि कुमइ न लज्जइ केम महंतविरोहेँ गज्जइ।
पभणइ[37] रयणचूलु[38] अवमाणहि[39] दूउ होवि बोल्लणहँ न जाणहि[39]।
वार वार अम्हहँ[40] अवगण्णहि[41] वार वार सेणिउ[42] निव्वण्णहि[43]।
महु भएण पुरे पइसिवि थक्कहो वार वार जउ ठवहि मियंकहो।
कहहि[44] तासु जइ रणे अब्भिट्टइ तेरउ दूउ[45] गमागमु तुट्टइ।
विज्जाहरहिँ अम्हे रणे आयहिँ कवणु गहणु भूगोयररायहिं।
भणइ बालु रहुवइ भूगोयरु रावणु किं न आसि विज्जाहरु।
जइ आयासे[46] गमणु हुउ कायहो तो किं सो ज्जि[47] थाणु गुणभायहो[48]।
विरुवउ[49] वुत्तु मियंकु असक्कउ तउ भएण किं नियपुरि थक्कउ।

घत्ता—विद्धंसियकरिकाणणु जं पंचाणणु निवसइ सिहरिखयालहिँ[50]।
पयइ[51] एह तहो लक्खहि[52] अह पुणु अक्खहि[53] किं बीहंतु[54] सियालहिँ ॥१३॥

पहले तो यह (क्रोधरूपी) काला साँप मनको डंस लेता है, पीछे निःशंकरूपसे अधर-बिंबको भी (क्रोधके आवेशसे व्यक्ति ओठोंको काटने लगता है)। प्रथम तो अपकीर्तिका स्फुरण होता है, पीछे नासापुटोंका फड़कना। रोषके महान् आवेगका धीरपुरुषों-द्वारा दमन किया जाता है, किंतु इतर (अधीर) व्यक्ति स्वयं रोषसे मारा जाता है। इस (क्रोध) से विजित होकर भी यह कुमति (दुर्बुद्धि खेचर) लज्जित नहीं होता, प्रत्युत कैसे महान् वैरसे गरजता है। (यह सुनकर) रत्नचूल कहने लगा—दूत होकर बोलना भी नहीं जानता, और हमारा अपमान करता है। बार-बार हमारी अवगणना (निंदा) करता है, और श्रेणिक राजाकी प्रशंसा; तथा मेरे भयसे नगरमें भीतर घुसकर बैठे हुए मृगांकके विजयकी स्थापना। रे दूत! उससे कहो कि यदि रणमें आकर भिड़े, तो तेरा यह आना-जाना छूट जाये! हम विद्याधर राजा जहाँ युद्धमें आये हों, वहाँ भूगोचरी राजाओंकी हमसे क्या स्पर्धा? इसपर बालकने कहा—क्या रघुपति भूगोचरी और रावण विद्याधर नहीं थे? यदि कौवे (काक, पक्षमें काय = शरीर)का आकाशमें गमन हो गया, क्या इसीसे वह गुणोंका पात्र बन गया? और यह वृत्तांत भी विरूप अर्थात् झूठा है कि मृगांक अशक्य (असमर्थ) है। वह क्या तेरे भयसे अपनी नगरीमें स्थित है? हस्तिसमूहरूपी काननको विध्वस्त करनेवाला जो सिंह गिरिकंदरामें (जाकर) रहता है, यह तो उसकी प्रकृति ही देखी जाती है; कहीं कहो! वह क्या सियालोंसे डरकर ऐसा करता है? ॥१३॥

---

३२. क ख क °डहो। ३३. ख ग वी°; घ वीरिहिं। ३४. क ग घ क °इं। ३५. क वि पुणु। ३६. क घ क °इं। ३७. घ °णइं। ३८ क °चूल। ३९. प्रतियोंमें °णहिं। ४०. घ अम्हहं। ४१. क ख ग क °ण्णहिं; घ °न्नहिं। ४२. घ °उं। ४३. क क णिउ वण्णहिं; ख ग °ण्णहिं; घ °न्नहिं। ४४. ख ग कहइ। ४५. क क दूअ। ४६. क घ क °स। ४७. क घ क जि; ख ज्जे; ग जे। ४८. क घ क गुण°। ४९. ख ग °यउ। ५०. क° खयालहि। ५१ क क °इं। ५२ प्रतियोंमें °हि। ५३. क ख ग क °हिं। ५४. क घ क °ति।

[१४]

वस्तु — हत्थतलहयकुंभिकुंभयल[1]—
उक्खित्तमोत्तिय नियवि नहरक्खुत्त[2] सीहहो कमंतहो।
अहिलसहि[3] तं हरि हणवि[4] अवसबंधु तुहुँ तहो कयंतहो[5]॥
सो हउँ[6] दूउ न जो कहमि जायवि बोल्लु निरत्थु।
तउ वड्ढियदुण्णयदुमहो[7] [8]फलदक्खवणसमत्थु॥ १॥
तो महितलप्पंतविज्जाहरिंदेण उक्खित्तहत्थेण णं वणकरिंदेण।
नवनिसियपहरणफडाडोयनाएण[9] पंचमुहगुंजारसण्णिहनिनाएण[10]।
लइ लेहु लेहु त्ति आणत्तभिच्चेण[11] उट्ठंतसंतेण संगरदइच्चेण।
ता उट्ठिया दुट्ठदप्पिट्ठबललट्ठ[12] हणु हणु भणंताण खयराण सहसट्ठ।
[13]उग्गिण्णकरवालसंथाणथक्केहिं[14] नामंतकोंतेहिं[15] भामंतचक्केहिं[16]।
धणुगुणनिवेसंत[17]-कड्ढंतबाणेहिं[18] हंतुं समारद्ध अमुणियपमाणेहिं।
तो दिट्ठ दट्ठोट्ठरुट्ठारिभावेण[19] उद्धं कमंतेण जंबूकुमारेण।
करि[20] धरिय असिदुहिय-संदिण्णरणलीह[21] छुहदुहियकालस्स[22] लवलविय णं जीह।
[23]इय जुज्झमाणेण हयपेयखंडेण पाडेइ विज्जाहरा भीमगयएण[23]।

[१४]

अपने हाथके पंजेसे आहत हाथीके कुंभस्थलसे उखाड़े हुए(गज)मुक्ताओंको, जाते हुए सिंहके नखोंसे गिरे हुए देखकर, (उसका पीछा करके) तू उस सिंहको मारना चाहता है, तो तू अवश्य ही उस यमराजका बंधु है (अर्थात् तू बहुत शीघ्र यमपुरी जाना चाहता है)। मैं वह दूत नहीं हूँ, जो जाकर निरर्थक बात कहूँ। मैं तेरे बढ़े हुए दुर्नीतिरूपी द्रुमका फल तुझे यहीं दिखानेमें समर्थ हूँ। तब पृथ्वीपर ठोकर मारते हुए, बनैले हाथीके समान हाथ (पक्षमें सूँड) उठाये हुए, नागके फणाटोपके समान नये शान दिये हुए शस्त्रको लिये हुए, सिंहगर्जनके समान निनाद करके उठते हुए, उस-संग्राम दैत्यके द्वारा अपने भृत्योंको यह आज्ञा दी जाने पर कि ले लो ! ले लो (पकड़ो ! पकड़ो !) ! बलमें प्रधान (श्रेष्ठ बलशाली) अष्टसहस्र दुष्ट व दर्पिष्ठ (गर्वीले) खेचर मारो मारो कहते हुए उठे। तलवारोंको निकालकर और वार करनेकी स्थितिमें आकर, भालोंको झुकाते हुए और चक्रोंको घुमाते हुए, धनुषपर डोरी चढ़ाते हुए एवं बाणोंको निकालते हुए, ऐसे अज्ञात प्रमाण (सहस्रों) भटोंने उसे मारनेका उपक्रम किया। तो यह देखकर जंबूकुमारने शत्रुओंके ऊपर बड़े भारी क्रोध भावसे ओष्ठ काटते हुए व ऊपरको उछलते हुए, अपने हाथमें वह कटारी धारण की जिसमें युद्धोंको रेखाएँ पड़ी हुई थीं, और जो मानो भूखसे दु:खी यमराजकी लपलपाती हुई जिह्वा ही थी। इसप्रकार युद्ध करते हुए मारे गये

[१४] १. क °कुंभयड। २. प्रतियोंमें °धक्कुत्तु। ३. घ °सहि। ४. ख ग हणिवि। ५. क ङ कियं°। ६. क ख ग ङ हउ। ७. क ङ वट्टिय°; घ °दुन्नय°। ८. क ङ फलु°। ९. ङ °फडाहोय°। १०. क घ ग °गुंजारि°; घ °सन्निह°। ११. क ङ आसत्ति°। १२. ख ग °लद्ध। १३. घ उग्गिन्न°। १४. ङ °थक्केहि। १५. क ङ णामंति°। १६. क ङ भामंति°। १७. क ख ग ङ धणुगुणु°। १८. क ङ कट्टंत°। १९. क ख ग ङ °भारेण। २०. ख ग कर। २१. क ङ सा दिण्ण रणि°। २२ ख ग छुहु°। २३. घ में यह पूर्ण पंक्ति नहीं।

तहिं काले संपत्तु गयणगइ सविमाणु　　तेणप्पिओ लइउ[24] वरचम्मु[25] सकिवाणु[26] ।
इह चडहि[27] नउ चडमि किं एत्थु[28] चडिएहिं　　संगामकालम्मि कोणंतदडिएहिं ।
नासंतपट्ठीए सिग्घं न धावेवि[29]　　अह[30] जुज्झमाणम्मि एत्थेव पावेवि[31] ।
विज्जाहरा खग्गसलिलम्मि बुडुंत　　अण्णे[31] पुणो पेक्खु[32] हरिणु[33] व्व उड्डुंत ।
इय भणिवि एक्कंगे[34] रिउसेण्णे उत्थरइ　　सो कवणु किर खयरु जो दिट्ठि तहो धरइ ।
परपहरवंचंतु नियघायमेल्लंतु　　सग्गडप्पदिढचम्मवट्टीए[35] पेल्लंतु ।
अवहत्थ-समहत्थ-दढकालवट्ठेहिं[36]　　करिठाणसंठाण-कुम्मासणट्ठेहिं ।
पंचाणणालोय-मिगकडगपाएहिं[37]　　सवियाससंकोयअवसारघाएहिं ।

प्रेतखंडरूपी भयानक गदासे वह कुमार विद्याधरोंको मार-मारकर गिराने लगा । इतनेमें गगनगति भी विमान-सहित वहाँ आ गया, और कुमारने उसके द्वारा अर्पित किये हुए उत्तम ढाल व तलवारको ले लिया । गगनगतिने कहा— यहाँ विमानमें चढ़ जाओ; (कुमारने कहा) नहीं, मैं नहीं चढूंगा । युद्धके समय इसमें चढ़कर (आत्मरक्षाके लिए) डरसे कोनेमें जानेसे क्या लाभ ? भागते हुओंके पीछे त्वरापूर्वक न दौड़कर, परंतु युद्ध करते हुए, यहीं प्राप्त करके (सामना करके) इन (अनेक) विद्याधरोंको मेरे खड्गकी धारारूपी जलमें डूबते हुए तथा अन्य (अनेकों) विद्याधरों (के कटे हुए शिरों) को (आकाशमें) हरिणके समान उड़ते हुए देखो । इसप्रकार कहकर जंबूकुमार शत्रुसेनाके एक अंगपर टूट पड़ा । फिर ऐसा कौन खेचर था, जो उसकी दृष्टिको सह सके (अर्थात् उसके आगे ठहर सके) । वह जंबूकुमार शत्रुके प्रहारसे अपनेको बचाता हुआ, अपना घात (प्रहार) शत्रुओंपर छोड़ता हुआ, झड़पपूर्वक शत्रुसेनाको सुदृढ़ चर्मपृष्ठ (ढाल) से (पीछेको) दबाता हुआ, अतिशय शक्तिशाली कालपृष्ठ (धनुष) के समान हाथोंको मारनेके लिए ऊँचा करके, हस्तिदंतवेधके समान गर्दन काटनेवाली खड्गरूपी नासिका (सूंड) से अधोमुख होकर; बैठकर; तथा कूर्मासनके द्वारा (शत्रुओंके) रथ-हाथी व घोड़ोंके कर-चरणोंका घात करते हुए; एवं सिंहावलोकनके समान आगेके शत्रुओंपर पादाघात करके शत्रुओंका संहार; तथा मृगके समान पैरोंके आगे करके शत्रु भूमिमें घुसकर क्रम-क्रमसे अग्रिम शत्रुओंका विनाश; फलक (शस्त्रविशेष) को वामपार्श्व में, व खड्गको पीछे छिपाकर शत्रुको यह दिखलाते हुए कि यह असावधान हो गया है, (ऐसा सोचकर) मारनेके लिए आगे आये हुए शत्रुको मारना; और शत्रुओंके द्वारा आघात किये जानेपर बाणमें फलक लगाकर शत्रुओंको मारना; एवं अकस्मात् पीछे हटकर फिर (सहसा आगे बढ़कर) शत्रुओंको मारना, इत्यादि अनेक प्रकारके कुमारके दाव-पेंचोंसे वह विद्याधर सैन्य

२४. क ङ लयउ । २५. क ङ °चम्म । २६ ख ग मकिमाणु । २७. क ब° । २८. ख ग एत्थ; घ एण । २९. क घ ङ °वेमि । ३०. घ जह । ३१ घ अण्णे । ३२. ख ग घ पेक्ख । ३३. घ °ण । ३४. प्रतियोंमें 'एक्कंगु' । ३५. क °दट्ठीए; घ ङ °वट्टीए । ३६. ख ग घ °वट्टेहिं; ङ °वच्छेहिं । ३७. ङ °पाणेहिं ।

घत्ता—तं विज्जाहरसाहणु ववगयवाहणु एक्कहो वासु विसट्टइ[३८] ।
वीररसंकियअंगहो तरुणपयंगहो तिमिरु जेम नहि फिट्टइ[३९] ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे [४०]महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए
सेणियदिसाविजउ नाम [४१]पंचमो संधी समत्तो[४१] ॥ संधिः ५ ॥

अपने समस्त वाहन नष्ट हो जानेसे, उस अकेले (जंबूकुमार) से ही इसप्रकार छिन्न-भिन्न होने लगा, जिसप्रकार वीररससे युक्त अंगों अर्थात् अत्यंत तेजस्वी किरणों-वाले सूर्यसे आकाशमें तिमिर फट जाता है ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित 'जंबूस्वामीचरित्र' नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें श्रेणिकका दिग्विजय नामक यह पंचम संधि समाप्त ॥ संधि ५ ॥

---

३८. ख ग °ट्टहो । ३९. क फट्टइ; ङ फट्टई । ४०. क ङ °देवदत्त° । ४१ क ख ङ पंचमा इमा संधी; ख ग पंचमो संधी परिच्छेओ सम्मत्तो ।

संधि—६

[१]

देंत दरिद्दं परवसणदुम्मणं सरसकव्वसव्वस्सं ।
कइवीरसरिसपुरिसं धरणि धरंती कयत्थासि ॥
हत्थे चाओ चरणपणमणं साहुसीलाण सीसे[1] ।
[2]सच्चावाणी वयणकमलए वच्छे[3] सच्छापवित्ती[4] ॥
कण्णाणेयं[5] सुअसुयंगहणं[6] विक्कमो दोलयाणं[7] ।
वीरस्सेसो सहजपरियरो संपया कज्जमण्णं[8] ।
केरलनिवे[9] धरिए विजयंतरिए विहिबलहिं[10] जुज्झमइ[11] फिट्टइ[11] ।
जंबूसामि तहिँ हुउ[12] समरु जहिँ रयणसिहहो रणे अब्भिट्टइ[13] ॥ १ ॥

राउलमज्झे समरकोलाहलु निसुणेवि बाहिरि[14] सण्णज्झइ बलु ।
उव्वेविरु[15] उम्मग्गें[16] धावइ कहिँ[17] पारकउ[18] खोज्जु[19] न पावइ ।
कोइ[20] भणेइ काईं पउ[21] वट्टइ कहिँ[22] संचरहु धरायलु फुट्टइ[23] ।
एक्कु मियंकु असक्कउ विग्गहे[24] पग्गिव[25] को वि लग्गु[25] पारग्गहे[26] ।

[१]

दरिद्रको दान देनेवाले, दूसरोंकी विपत्तिमें दुःखी, और सरस-काव्यको ही अपना सर्वस्व समझनेवाले कवि वीरके समान पुरुषको धारण करती हुई, हे धरित्री ! तू कृतार्थ है ॥१॥ हाथमें चाप (धनुष), साधुशील पुरुषोंके अपने हाथ शिरसः प्रणाम, वदनकमलमें सच्ची वाणी, हृदयमें स्वच्छ प्रवृत्ति, कानोंमें इस सुने हुए मात्र वही ग्रहण, तथा बाहुलताओंमें विक्रम, वीरपुरुष (श्लेष-वीरकवि) का यह सहज-स्वाकारको बोरिकर (साधन सामग्री) है, परंतु इस समय तो कार्य ही दूसरा है (अर्थात् अब तो मान कविको युद्धका वर्णन मात्र करना है) । केरल नरेशके द्वारा धारण किये हुए आश्रय-प्रदेश (केरल-नगरी) को छोड़कर (उसके बाहर) विधाताके बलसे युद्धमें मौत भी (भयसे) पलायन कर रही थी (?) अब जहाँ युद्ध हो रहा था, वहाँ जंबूस्वामी रणमें रत्नशेखरसे भिड़ गये ।

राजकुलमें समर कोलाहल सुनकर बाहर (भी) सैन्य सन्नद्ध होने लगा । कोई उद्विग्न होकर उन्मार्गसे भागा, परंतु शत्रुका कहीं कोई चिह्न भी न पा सका । कोई कहने लगा, यह क्या हो रहा है ? कहाँ चलें—कहाँ भागें, धरातल तो फटा जा रहा है । अकेला मृगांक तो युद्ध करनेमें असमर्थ है, प्रायः (यह) कोई अज्ञात व्यक्ति ही युद्धमें लगा हुआ है । प्रचंड सैन्यने

[१] १. क सेसे; ख ग क सीसो । २. क क सव्वा° । ३. क ख ग वच्छि । ४. ख ग सत्था° । ५. घ कण्णा° । ६. क ख ग सुअ सु°; क सुअ सुअ । ७. ख ग °गणं । ८. क घ क °मन्नं । ९. क क °णिव १०. घ विहि°; क °बलहि । ११. ख ग °इं । १२. क हुअ । १३. घ °ट्टइं । १४. क ख ग क सण्ण° । १५. घ उव्वि° । १६. क क ओमग्गहि । १७. क कहि । १८. घ पर° । १९. क क °ज्ज । २० क घ क को वि । २१. क घ क हउ । २२. क कहि । २३. ख ग फु° । २४ क °हिं । २५. क घ क लग्गु को वि । २६. क क पारिग्गहि; घ पारिग्गहिं; ।

वेढिउ सिमिरु बलेण रउद्दें जंबूदीउ व खारसमुद्दें।
अण्णें[27] वुत्तु न वइरि न विग्गहु भेयभिण्णु हुउ रायपरिग्गहु।
कहइ को वि कासु वि संतत्तउ[28] कालु व[29] बालु को वि[29] संपत्तउ।
तेण-त्थाणु असेसु सरायउ वट्टइ[30] रणे असिघायहिँ घायउ।

घत्ता—तो मणि विप्फुरियहिँ पइसेवि पुरियहिँ हेरियहिँ मियंकहो अक्खिउ
तहिँ[32] खणे तेत्तडए सत्तुहुँ कडए वित्तंतु नवर जं लक्खिउ[31] ॥ १ ॥

[२]

देव देव एक्को महाइओ कुमरु को वि रिउसेण्णे[1] आइओ[2]।
सेणिएण किं पेसिओ इमो सयणु[3] तुम्ह किं वा न जाणिमो[4]।
तेण पक्खि संचडवि[5] तेरए वइरिसेण्णु करवालकेरए।
गलपमाणु[6] जललोलवोलियं भुयणभारभुयदंडि[7] तोलियं।
गरुयपहररुहिरोहचच्चियं[8] पडियमुंड-भडरुंडनच्चियं[9]।
[10]छिन्नखयरकरचरणमंडियं रत्तपोत्तधररामरंडियं[11]।
तुरिउ तुरिउ सन्नहिवि[12] धावहो जुज्झमज्झे एवहिँ[13] जि पावहो।

(अपने राजाके) शिविरको इस तरह घेर लिया, जैसे जंबूद्वीप लवणोदधिसे घिरा है। तब किसी दूसरेने कहा—न कहीं शत्रु है, और न युद्ध, राजाकी सेनामें ही फूट पड़ गयी है। कोई संतप्त होकर किसीसे कहता है [illegible] कोई बालक आ गया है, और उस (अकेले) के द्वारा राजा सहित [illegible] में [illegible] तलवारके आघातोंसे घायल हुई है। तब मनमें अत्यंत प्रसन्न होकर पुरीमें [illegible] गुप्तचरोंने मृगांकसे वह अशेष वृत्तांत कहा जो उन्होंने उस अवसरपर शत्रुकी छावनी[illegible] ॥१॥

[२]

हे देव ! हे राजन ! [illegible] एक महर्द्धिक कुमार शत्रु-सैन्यमें आया है। क्या इसे श्रेणिकने भेजा है ? अथवा तुम्हारा कोई स्वजन है, यह हम नहीं जानते। उसने तुम्हारे पक्षमें चढ़ाई करके शत्रु सैन्यको अपनी तलवार (की धारा) के जलकी लहरोंमें गले तक डुबो दिया है, और भुवनके समस्त भारको अपने भुजदंडमें तौल लिया है (अर्थात् समस्त भुवनको मानो अपनी भुजाओंमें उठा लिया है); महान् प्रहारजन्य रक्तके प्रवाहसे उसे लीप दिया है; भटोंके गिरे हुए मुंडों व रुंडोंसे नचा दिया है, खेचरोंके कटे हुए हाथों व पैरोंसे मंडित कर दिया है; एवं (सौभाग्य-सूचक) रक्तवस्त्रोंको धारण करनेवाली (शत्रु) नारियोंको विधवा बना दिया है। अत्यंत शीघ्रतापूर्वक संनद्ध होकर वेगपूर्वक गमन कीजिए, और युद्धके मध्य अभी उससे

२७. घ अन्नि। २८. क ङ सलत्तउ। २९. ख ग घ को वि बालु। ३० ख ग वट्टइ। ३१. ख ग °यउ। ३२. ङ तहि।

[२] १. ख ग घ °सेन्नि। २. क ङ आयउ। ३. ख ग °ण। ४. क ङ था°। ५. क घ ङ °डिवि। ६. क घ ङ °पमाण। ७. क ङ भुअणभारभरभुअहिं; °भारभरभुयहिं। ८. क ङ गरुअ°। ९. घ °तुंड न°। १०. क ङ छिण्ण°। ११. घ °मंडियं १२. क ख ग ङ सण्ण°। १३. घ °हिं।

तं सुणेवि रणरसियसूरया पहयविविहसंगामतूरया ।
घत्ता—रहकरितुरयभडु रणरंगपडु[14] तुट्टंतकवयगुणनद्धउ[15] ।
कलयलकलियबलु[16] धयचिंधचलु चउरंगु सेण्णु सन्नद्धउ[17] ॥ २ ॥

[३]

का वि कंत संदेसइ कंतहो चूडुल्लयहो हत्थि मणिकंतहो ।
कोड्डु[1] न मण्णमि एक्कु जि भल्लउ अरिकरिदंतघडिउ वलउल्लउ ।
अक्खइ का वि कंत भत्तारहो कयकिणियहो न सोह इह हारहो ।
आणहि[2] तिक्खखग्गपहनिम्मल सइं[3] हयकुंभिकुंभमुत्ताहल ।
बोल्लइ का वि कण्ण[4] गयखेवहो[5] अवसरु अज्जु[6] सामिरिणछेयहो[7] ।
होइ न होइ एण भडभीसें पहुरिणमोयणु एक्कें सीसें ।
तो वरि हउं मि जामि इउ कारेवि[8] नररूवेण खग्गफरु धारेवि[9] ।
जंपइ का वि कंत म सहिज्जहो[10] दिट्ठए परबले[11] पढमु[12] भिडिज्जहो[13] ।
घत्ता—बोल्लइ को वि भडु महु कंते धडु पेक्खिज्जहि रणे सल्लंतउ[14] ।
अगलियखग्गफरु करिलुणियकरु रिउदंतिदंते[15] झुल्लंतउ ॥ ३ ॥

जा मिलिए ! यह सुनकर शूरवीर संग्रामके रसिक हो उठे और विविध प्रकारके युद्धके बाजे बजाये गये । युद्धकलामें पटु रथ, हाथी व घुड़सवार योद्धाओंने अति पौरुषके उद्वेगसे उत्पन्न अतिशय रोमांचके कारण टूटती हुई कवचकी डोरियोंको बांध लिया, सारी सेनामें कोलाहल मच गया और ध्वजा-पताकाएं फहराने लगीं; इसप्रकार चतुरंग सैन्य संनद्ध हो गया ॥२॥

[३]

कोई कांता अपने पतिको संदेश देने लगी—अपने हाथमें सुंदर मणियोंसे घटित चूड़ेके लिए मुझे कोई कौतुक नहीं, बल्कि मेरे लिए तो एकमात्र वही चूड़ा भला, जो शत्रुके हाथीके दांतोंसे बना हुआ हो । दूसरी कोई प्रिया अपने भर्त्तारको बोली—मूल्यसे खरीदे हुए हारकी यहां कोई शोभा नहीं है; तीक्ष्ण खड्गकी प्रभाके समान निर्मल गजमुक्ताओंको तुम स्वयं (शत्रुके) हाथीके कुंभस्थलको आहत (विदीर्ण) करके लाओ । कोई कन्या कहने लगी—स्वामीके भूतकालके ऋणको काटने (चुकाने) का आज ही अवसर है; भटोंसे भयंकर इस संग्राममें एक शिरसे स्वामीका ऋणमोचन हो या न हो, तो फिर मैं भी इस कार्यके लिए पुरुष-वेष बनाकर, तलवार व ढाल लेकर (रणमें) चलूंगी । और कोई कांता बोली—तुम लोगोंको (दूसरोंको) आज्ञा नहीं देनी चाहिए, बल्कि शत्रुसैन्यको देखते ही सबसे पहले (स्वयं) भिड़ जाना चाहिए । कोई भट बोला—हे कांते ! तू युद्धमें मेरे धड़को बाणों-द्वारा बींधा जानेपर भी, हाथसे खड्ग व ढालको न गिराकर, शत्रुके हाथीके सूंड़को काटकर, उसके दांतोंमें झूलते हुए देखना ॥३॥

१४. क ङ °णड्डु । १५. ख ग °नट्ठउ । १६. ख ग घ °गलु । १७ क ख ग ङ सण्ण° ।

[३] १. क ख ग ङ कोड । २. घ °हिं । ३. क ख ग ङ सइ । ४. क घ ङ कंत । ५. क ख ग ङ °खेयहो । ६ क ङ अज्ज । ७. ख ग सामिरण° । ८. ख ग कारवि । ९. ख ग धारवि । १०. क ग °ज्जहे; घ °ज्जहिं । ११. क ङ दिट्ठइ परबलु; घ दिट्ठइं परबलि । १२. क ङ °म । १३. ज्जहिं; ङ °ज्जहि । १४. क ङ खिल्लंतउ; घ सिल्लं° । १५. ख ग °दंत ।

[४]

नीसरिउ सेण्णु[1] पयडंतखोहु भडलोट्टियकोट्टट्टालओहु[2] ।
संसोहियरोहियसमरखेत्तु तं[3] पेक्खवि[4] धाइउ[5] [6]सबलु सत्तु ।
राउलहो[7] मज्झे जुज्झइ सुधीरु[8] सहुँ[9] खयरहिँ जंबुकुमारु वीरु[10] ।
एत्तहिँ[11] लग्गइँ[12] कियकलयलाइँ बिण्णि वि विज्जाहरनरबलाइँ ।
कंचाहय-चलहय-संदणाइँ बहुसुरवहुनयणाणंदणाइँ[13] ।
मणकोविय-चोइय[14]-गयघडाइँ[15] उक्खेडिय-फेडिय-मुहवडाइँ ।।
सुहसाहिय-वाहिय-हयथडाइँ[16] रणरंगिय-वग्गिय-भडथडाइँ ।
[17]दप्पहरण-पहरण-थिरकराइँ उग्गामिय-भामिय-असिवराइँ ।
गुणगाढिय-काढिय-धणुहराइँ[18] एक्केक्कमेक्कमेल्लियसराइँ ।

घत्ता—उट्ठिउ ताम रउ मइलंतधउ[19] विहिबलहँ[20] भारु असहंतिए ।
निब्भरखिन्नियए[21] निव्विण्णियए नीसासु व मुक्कु[22] धरित्तिए[23] ।।४।।

[५]

अह सुहडकोवडज्झंतियाहे[1] उच्छलइ व धूमुग्गारु ताहे[2] ।

[४]

संभ्रम (क्षोभ) प्रकट करता हुआ सैन्य निकल पड़ा, और भट कोट व अट्टालिकाओंपर (सतर्कतासे) प्रवृत्त हो गये। अच्छी तरह शोधा हुआ समरक्षेत्र घेर लिया गया, ऐसा देखकर शत्रु अपने सैन्यसहित (उसको ओर) दौड़ पड़ा। उधर राजकुलके अंदर वह श्रेष्ठ धीर-वीर जंबूकुमार खेचरोंके साथ युद्ध कर रहा था, और इधर दोनों विद्याधरोंकी सेनाएं कलकल (कोलाहल) करती हुई आपसमें लग गयीं। चाबुकसे आहत हुए चंचल घोड़ोंवाले रथ अनेक सुरवधुओंके नेत्रोंको आनंद देने लगे। मनाक् (थोड़ा) कुपित करके गजसमूहोंको प्रेरित किया गया। जिनके मुखपटोंको उचाटकर हटा दिया गया था, वैसे अच्छी तरह साधे हुए घोड़ोंके समूह चलाये गये। रणके रंगीले भटोंके समूह वर्गोंमें बंट गये। दर्पका नाश करनेवाले आयुधोंको अपने स्थिर हाथोंमें लिये हुए, म्यानसे निकाले हुए तलवारोंको घुमाते हुए, तथा सुगाढ़ अर्थात् सुदृढ़ एवं खींची हुई प्रत्यंचासे युक्त धनुषोंको धारण करनेवाले योद्धा परस्पर एक दूसरेपर बाण छोड़ने लगे। तब ध्वजाओंको मलिन करता हुआ ऐसा रज उठा, मानो दोनों सेनाओंका भार सहन न कर सकनेवाली धरित्रीने अत्यंत खेदखिन्न होकर बड़ा निःश्वास छोड़ा हो ।।४।।

[५]

अथवा सुभटोंके कोप-[ाग्नि] से दग्ध होते हुए मानो उसका धूमोद्गार ही ऊपरको

[४] १. घ गिन्नु । २. क ङ °कोटट्टाल° । ३ क ङ तें । ४. क घ ङ पेक्खिवि । ५. क ङ धायउ । ६. क ङ सयलु°; ख ग सयलु खत्तु । ७. घ °लहं । ८. क ङ सुवोरु । ९. ङ सहु । १० क ङ धीरु । ११ ख ग °हे । १२. ख ग °इ । १३. ख ग °णाय । १४ क ङ °चोविय । १५. ङ °घडाइ । १६. ख ग °तडाइं । १७. कङ दप्पहडण° । १८. ङ °हराइ । १९. ख ग मइलंतधउं । २० क ख ग ङ °बलहिं । २१. क ख ग ङ °खिण्णि° २२. ख ग मुक्क । २३ ख ग धर° ।

[५] क °याहिं; ङ °याहं । २. क ङ ताहें ।

पयछड्डिवि[3] अप्पाणउ[4] तडेइ अकुलीणु अवस मत्थए चडेइ[5] ।
मज्जइ व महागयमयजलेण नच्चइ च चमरचलमरुछलेण[6] ।
अंधारियाइँ निम्मलथलाइँ[7] संरुद्धचक्खु बेण्णि वि बलाइँ ।
परु अप्पु न बुज्झंतेहिँ तेहिँ जुज्झिउ गं जडमइ जोइएहिँ ।
हत्थिहे[8] गलगज्जि निसामिऊण भडु हणइ किवाणें धाविऊण ।
हयहिंसए[9] जाणिवि आसवारु को वि मुयइ चक्कु नवनिसियधारु ।
केणावि कलिउ रहु थरहरंतु धाणुक्कें विद्धउ थरहरंतु[10] ।
हक्कंतहो कासु वि को वि चडइ[11] वज्जासणि व्व सिरि लउडि[12] पडइ ।
घत्ता—सुहडरुहिरपएण करिवरमएण हयफेणपवाहहिं नामिउ[13] ।
परमइलणु पवलु देविणु कवलु[14] दुज्जणु व रेणु उवसामिउ[15] ॥ ५ ॥

[६]

रुहिराणत्तु रणमहि[1] वहई[2] संछिन्नमूलु[3] रउ नहे महई ।
अंगारसेसवइसाणरहो पढमुट्ठिउ धूमु व भमइ[4] तहो ।

उछल रहा हो। चरणों (अर्थतः भूमि)को छोड़कर वह धूल अपनेको विस्तीर्ण कर रहा था, क्योंकि (शक्तिसे न दबाया हुआ) अकुलीन व्यक्ति और पृथ्वीमें लीन(शांत) नहीं हुआ धूल अवश्य मस्तकपर चढ़ता है। वह युद्धभूमि मानो महागजोंके मदजलसे मज्जन (स्नान) करने लगी, और चंचल चमरोंसे प्रसूत मरुत्के छलसे मानो नाचने लगी। निर्मल स्थलप्रदेश अंधकारपूर्ण हो गये। दोनों सेनाओंके नेत्र धूलसे अवरुद्ध हो गये। उन्होंने अपने और परायेको न बूझते हुए इसप्रकार युद्ध किया जिसप्रकार कोई जड़मति (मूर्ख) जुगनुओंसे(?) भिड़ जाये। हाथीके (द्वारा किये हुए) गलगर्जनको सुनकर किसी भटने दौड़कर वार किया; घोड़ेके हींसनेसे सवारको जानकर किसी योद्धाने पैनी की हुई धारवाले चक्रको छोड़ा। किसी धनुर्धरने घरघराहट करते हुए रथको जान लिया, और उसे (बाणोंसे) ऐसा बींध दिया कि वह थर्रा उठा। किसीको हांक लगाते हुए कोई योद्धा किसी अन्यसे ही जा भिड़ा, और उसके शिरपर वज्रदंडके समान लकुटि(लाठी)का प्रहार हुआ। सुभटोंके रुधिररूपी पयसे, हाथियोंके मदसे, और घोड़ोंके फेनके प्रवाहसे नमाया हुआ (अर्थात् गीला करके शांत किया हुआ) धूल, दूसरेको मैला (कलंकित) करनेवाला प्रबल ग्रास (पर्याप्त सामग्री) देकर किसी दुर्जनके समान उपशांत हो गया ॥५॥

[६]

रणभूमिने रुधिरजन्य अरुणत्व अर्थात् लालिमाको धारण किया, और मूल-संछिन्न (पृथ्वीसे बिलकुल अलग कटा हुआ) रज आकाशमें ऐसा शोभायमान हुआ मानो पूर्णतया अंगाररूप हुए (निर्धूम) वैश्वानरका प्रारंभमें उठा हुआ धूम्र भ्रमण करता हो। रजका

३. क ड °छंडिवि। ४. क ड °णउं। ५. ख ग °वि। ६. ख ग °बलेण (?)। ७. ख ग °बलाइं या °छलाइं (?) ८. क °हिं; घ ड °हिं; ख ग हत्थेहे। ९. क घ ड °हिंगिय ख ग °हिंसइ। १०. ख ग घर°। ११. क °इं। १२. क ड लवडि। १३. क ड °उं। १४. ड °ण। १५. क °मिउं।

[६] १. ख ग रणि°। २. ख ग हवई। ३. क घ ड संछिण्ण°। ४. ड त°।

दूरयरोसारिय रयपसरे[५] परिकलिए[६] परोप्परु अप्प-परे[७] ।
संवाहिय संदण भयरहिया पच्चारयंत पहरहिं[८] रहिया ।
थिरथक्क पडिच्छइ हत्थिहडा धावंतिहि[९] पडिगयघडहि झडा ।
वाहंति हणंति वाह कुमरा खणखणखणंतकरवालकरा ।
विंधंति[१०] जोह जलहरसरिसा [११]वावल्लभल्लकण्णियवरिसा ।
फारक्क परोप्परु ओवडिया[१२] कोंताउह कोंतकरहिं[१३] भिडिया ।
घत्ता—खंडियकयसिरउ रयभरथिरउ दट्ठाहरु[१४] रणु सरसव्वणु[१५] ।
णं [१६]नहखयचियउ निट्ठुरहियउ कण्णाडविलासिणिजोव्वणु ॥ ६ ॥

[७]

रणं [१]निबिडभडथट्टसंघट्टसूरं महाकलयलारावबज्जंततूरं ।
रणं सरिय-हुंकरिय-धाणुक्कचंडं सटंकारकोवंडउड्डंतकंडं ।
रणं घडिय-खडखडिय-तिक्खासिधारं झडप्पंत-झंपंत-फारक्कफारं ।

प्रसार दूरतर अपसृत हो जानेपर, परस्पर अपने परायेको पहचानकर, (शत्रुपक्षके) रथियोंको प्रहारोंसे आह्वान करते हुए, निर्भय होकर रथ चलाये गये। एक ओरकी हस्तिसेना स्थिरतापूर्वक स्थित रहकर, दौड़कर आते हुए शत्रुगजोंसे झड़पकी प्रतीक्षा कर रही थी। खणखण करते हुए करवाल हाथोंमें लेकर, राजकुमार (अपने) अश्वोंको चला रहे, व (शत्रुसेनाके अश्वोंको) मार रहे थे। योद्धा लोग जलधरोंके समान बल्लम, भालों व बाणोंकी वर्षा करते हुए (परस्परको) बींध रहे थे। फारक्क (शस्त्र) को धारण करनेवाले एक दूसरेपर टूट पड़े, और कुंतवाले कुंत धारण करनेवाले प्रतिपक्षियोंसे भिड़ पड़े। (योद्धाओंके) कटे हुए शिर, स्थिर (शांत) रज-भार (धूलि-विस्तार), (योद्धाओं-द्वारा क्रोधसे) दष्ट-अधर और (योद्धाओंको लगे हुए) सद्यःव्रणों तथा आकाशमें पक्षियोंके समूहसे युक्त एवं निष्ठुर-हृदय(योद्धाओं)वाला वह युद्ध(स्थल)ऐसी कर्णाट-विलासिनीके यौवनके समान हो रहा था (सुरतक्रीड़ोपरांत) जिसके शिरपरके केश बिखरे हों, जिसका रजभार (रजस्राव अथवा रतभार अर्थात् सुरतक्रीड़ाका आवेग) शांत हो गया हो, एवं रतियुद्ध (अथवा प्रणय-कलह) में जिसके अधर काट लिये गये हों, और उनपर अभी भी सरस-व्रण (ताजे घाव) विद्यमान हों, तथा जिसके कठोर स्तन नखक्षतसे युक्त हों ॥६॥

[७]

वह संग्राम संघर्षशूर महान् वीरोंके समूहों और बजते हुए तूरोंसे बड़े भारी कोलाहलसे युक्त था। उच्चस्वरसे हुंकार छोड़नेवाले धनुर्धरोंसे वह बड़ा प्रचंड हो रहा था, और वहाँ टंकार करते हुए धनुषोंसे बाण उड़ रहे थे। वह युद्ध आपसमें मिलकर खड़खड़ाती हुई तीक्ष्ण असिधाराओंसे युक्त था, और वहाँ झपटे जाते हुए बड़े-बड़े फारक्क (शस्त्र) टूट रहे थे।

५. क ङ °रइपसरो। ६. क ङ °लिय। ७. क ङ °परो। ८. क ङ °रहि। ९. ङ °तिहि। १०. ख ग विद्धंति। ११. क ङ प्रतियोंमें 'वावल्ल····वरिसा' के पूर्व 'विहिबलहिं परोप्परु सामरिसा' इतनी अर्द्धपंक्ति अधिक है; ख प्रति में भी यह पाठ है, परन्तु पीछे किसीके द्वारा लिख दिया गया है, और शुद्ध भी नहीं है। १२. क ङ उव्व°। १३. क °करहि। १४ क दिट्ठा°। १५. ख ग सह°। १६. क णहं°।

[७] १. ख ग निवड°।

रणं[2] कुंतकोडीहुलिज्जंतजोहं विकंत[3]-परिचत्त[4]-तणुताणसोहं ।
रणं पहरपज्झरिय-रुहिरप्पवाहं रणं [5]लुणियमुहनालिचियलंतवाहं ।
रणं दंतिदंतग्ग[6]भिज्जंतगत्तं रणं रत्तकणसित्तकयरत्तछत्तं ।
रणं मासवसगाससंचरियगिद्धं रणं सिरपरिक्खंत-हिंडंत[7]सिद्धं ।
भडो को वि रहसुब्भडो[8] रहि सखग्गो गिरिंदे मइंदो व्व [9]उक्कमवि लग्गो[9] ।
भडो को वि दंतग्गे दाऊण पायं महाकुंभिकुंभत्थले देइ[10] घायं ।
भडो को वि जसलंपडो निग्गयंतो वलग्गो[11] मयग्गे[12] गुणक्कं[13] कमंतो ।
भडो को वि निज्जंतु नो जाइ सग्गे पयंपेइ गिव्वाणनारीण मग्गे[14] ।
न ता[15] जामि ओसारि दूरे विमाणं रणे जा न भग्गं विवक्खस्स माणं ।
घत्ता—मारिय सारिनरु भडु[16] कोंतकरु तणुभिन्नदंत[17] अमुणंतउ[18] ।
करिणी मणि गणइ[19] करिणो[20] हणइ[21] रणरक्खसु[22] छलिउ धणुंतउ[23] ॥७॥

[८]

भडु को वि विसूरइ दलियसत्तु बहुपहरविहंडिउ भूमिपत्तु ।

वह समर भालोंकी नोकोंपर हूले जाते हुए योद्धाओं एवं शूरोंके द्वारा परित्यक्त तनुत्राणों (रक्षाकवचों) से शोभायमान था । वह संग्राम प्रहारोंसे झरते हुए रुधिरके प्रवाह तथा काटी हुई मुखनाड़ियोंसे निकलती हुई वाष्पसे युक्त था; और वह युद्ध हाथियोंके दांतोंके अग्रभाग (नोक) से भेदे जाते हुए शरीरों, तथा रक्तकणोंसे सिंचकर रक्तवर्ण हुए छत्रोंसे भरा था । और वह समर मांस व चर्बीके ग्रासके लिए संचार करते हुए गृद्धों, व (शवोंकी) कपाल परीक्षाके लिए भ्रमण करते हुए सिद्धों (औघड़ों) से व्याप्त था । कोई वेगमें उद्भट अर्थात् अत्यंत वेगवान् (फुर्तीला) योद्धा खड्ग लिये हुए उछलकर इसप्रकार रथपर जा चढ़ता था, जिसप्रकार मृगेंद्र कूदकर पर्वतराजपर जा चढ़े । किसी भटने दांतोंकी नोकोंपर पैर देकर किसी महागजके कुंभस्थलपर आघात किया; कोई यशके लोभसे (मैदानमें) निकलता हुआ योद्धा, प्रत्यंचाको टंकारता हुआ एक श्रेष्ठ खच्चरसे जा लगा । कोई भट स्वर्गमें ले जाया जानेपर, मार्गमें गीर्वाण नारियोंसे इसप्रकार कहकर नहीं जाता था—मैं तबतक नहीं जाऊँगा जबतक रणमें शत्रुका मान भंग नहीं हो जाता; इसलिए (मुझे लेनेके लिए लाये हुए) अपने विमानको दूर हटाओ । कोई योद्धा गजपर्याणपर बैठे हुए सारि-नर (महावत ?) को मारकर हाथमें कुंत लिये हुए दांतोंसे विलक्षण (हस्ति) शरीरपर ध्यान न देते हुए, अपने मनमें (हाथीको भी) हथिनी समझते हुए हाथीको मारकर एक धनुर्धारी रणराक्षस (युद्धपिशाच, प्रचंड योद्धा) को भी वंचना दे देता है ॥७॥

[८]

कोई भट शत्रुका दमन करके (स्वयं भी) प्रहारोंसे आहत होकर भूमिपर गिरता

२. क रणे । ३. क विक्कंत°; ख ग विकंतार° । ४. क °परिपत्तु°; ख ग घ °परिवत्त°; क °परिचत्तु° । ५.ख ग लुलिय° । ६. ख ग घ °दंतग्गि । ७. क क हिंडंनि । ८. क क °सुभडे । ९. क घ क °मिवलग्गो । १०. घ देवि । ११. क °ग्गे । १२. क घ क मयंगे । १३. क घ क गुणुक्कं । १४. क मग्गो । १५. क ख ग क तो । १६. क भड । १७. क क भिण्ण° । १८. घ अणु° । १९. क घ क °इं; घ मणइं । २०. क घ क °णा । २१. क घ क °इं । २२. घ °स । २३. घ क धुणंतउ ।

हा मह्नु वि हणंतहो को विसेसु जं वइरि न जायउ वंससेसु।
सीसेण[1] सामिरिणु किर निमुत्तु भडु सुवइ[2] मरणनिद्दाए मुत्तु[3]।
रिउघायहिँ[4] पहु-किंकर-विहत्त मुच्छंगय[5] बेण्णि वि भूमिपत्त।
पक्खानिलेण[6] उम्मुच्छमाणु पहु पेक्खवि[7] मण्णइ[8] सुहनिहाणु।
तोडंतु[9] नियंतइँ[10] दुहयरेण[11] वारिज्जइ गिद्धु न किंकरेण।
सिरु दिण्णउ[12] समरि न तो[13] वि सक्कु सामियपसायरिणु[14] सेसु थक्कु।
अंतावलि नियलहिँ लद्धबंधु दारियतणु[15] निवडइ भडकबंधु।
सिरु सामिहे[16] सहुँ[17] हियएण दिण्णु सयखंडु[18] पलासहँ[19] पलु पइण्णु[20]।
जीविउ सुररमणिहुँ[21] महिहे[22] वण्णु[23] पाइक्कसरिसु को होइ अण्णु।

घत्ता—करिकरकलियगलु[24] पयदलियनलु उर-सिर-सरीरसवचूरिउ[25]।
न मुणइ[26] पिउ कवणु सममरणमणु रणे सुहडकलत्तु विसूरिउ ॥८॥

हुआ इसतरह सोच करता है—अहो ! मेरे भी (शत्रुओंको) मारनेका क्या वैशिष्ट्य जबकि वैरी वंश शेष नहीं हुआ। अपने शिरसे (अर्थात् शिर देकर) कोई भट स्वामीके ऋणसे निर्भुक्त (निर्मुक्त) होकर मरण-निद्रासे सेवित होकर (निश्चिंत) सोता है। शत्रुके आघातसे स्वामी सेवकसे अलग हो गया और मूर्च्छित होकर दोनों हीं भूमिपर गिर पड़े। पंखेकी हवासे उन्मूर्च्छित होते हुए स्वामीको देखकर एक सेवक ऐसा मानता है मानो उसे सुखका खजाना मिल गया हो। उसकी आंतोंको तोड़ता हुआ गृद्ध भी इसप्रकारके दुःखमें लीन सेवकके द्वारा हटाया नहीं जाता कि युद्धमें शिर भी दिया तो भी स्वामीकी कृपाका ऋण शेष ही रह गया। जिसके पेटकी आंतें तक भी सांकलोंसे जकड़ी गयी हैं, इसप्रकार विदीर्ण शरीर होकर किसी भटका कबंध (धड़) गिर पड़ा। (जिसने) हृदयके साथ-साथ अपना शिर भी स्वामीके लिए समर्पित कर दिया, और मांस सौ-सौ टुकड़े करके मांसभोजियों अर्थात् राक्षसोंके लिए दे दिया, जीवन सुररमणियोंके लिए, तथा पृथिवीके लिए अपना वर्ण अर्थात् यश.गाथा प्रदान कर दी, ऐसे पदातिके समान अन्य कौन हो सकता है ? गर्दन (स्वयंके द्वारा मारे गये) हाथीके सूंडमें फंसी हुई, पैर हाथीके पांव तले कुचले हुए, उरस्थल, शिर व संपूर्ण शरीर चूर-चूर किया हुआ—ऐसी स्थिति देखकर (प्रियतमके) साथमें मरनेकी भावनासे आयी हुई सुभटप्रिया पहचान नहीं पायी कि प्रिय कौन है ? और शोक करती हुई बैठ रही ॥८॥

[८] १. घ नीसेस। २. ख ग घ सुयइ। ३. घ सुत्तु। ४. ख ग °यहि। ५. क ङ वल्लि व; घ विल्लि व। ६. क ङ परकामिणिलेण। ७. क घ ङ पेक्खिवि। ८. ख ग मन्नइ; घ मन्नइं। ९. क ङ °त। १०. ख ग °तइ। ११. क ङ °परेण। १२. घ °उं। १३. क ङ सो। १४. घ सेसथक्क। १५. घ धारिय°। १६. क ग °हि; घ ङ हि। १७. ख ग सहु। १८. क ख ग ङ °खंड। १९. क ङ °सह। २०. घ पयन्नु। २१. ख ग °णिहिं। २२. क घ ङ °हि। २३. क घ ङ घण्णु। २४. ख ग °गलियगलु। २५. क ङ °समचूरिउ। २६. ख ग घ ङ °इं।

[९]

उहयबलइँ निब्भरु जुज्झंतइँ उहयबलइँ[1] संगरसमसत्तइँ[2] ।
उहयबलइँ[3] [4]आवट्टियसूरइँ उहयबलइँ भीसद्दियतूरइँ[5] ।
उहयबलइँ मोडियधयछत्तइँ उहयबलइँ[3] अवलंबियसत्तइँ[6] ।
उहयबलइँ पहरणनिब्भिण्णइँ[7] रणदेवयहे[8] बे वि बलि दिण्णइँ[7] ।
बेण्णि वि बार-बार संघट्टइँ बार-बार कायरनर फट्टइँ[9] ।
बार-बार जज्जरियमयंगइँ[10] बार-बार तोरवियतुरंगइँ ।
बार-बार कप्पियतणुत्ताणइँ बार-बार ढुक्कंतविमाणइँ ।
बार-बार रुहिरोहतरंतइँ बार-बार मुच्छिरइँ मरंतइँ ।
बार-बार आमिसवसगासइँ बार-बार रसघवियपलासइँ ।

घत्ता—बार-बार झरिहे[11] लोहियसरिहे[12] [13]हयकरडिकरंकसिलायडे ।
बार-बार बलहिं[14] पयडियछलहिं[15] पक्खालिय पहुपरिहवपडे ॥९॥

[१०]

परिसम्मि दुद्धरम्मि भीसणे रणे गरुयनाय-[1]दिण्णघाय-तुट्टपहरणे ।
सुहडसंड-बाहुदंडमुंडमंडिरे लुणियटंक-जणियसंक-बाहुहिंडिरे[3] ।

---

[९]

दोनों सेनाएं घमासान रूपसे जूझ रही थीं । दोनों सेनाएं युद्धमें समान बलवाली थीं । दोनों सेनाओंमें शूरवीर परस्परकी ओर बढ़ रहे थे । दोनों सेनाएं तूरोंके रवसे भयानक हो रही थीं; एवं दोनों सेनाओंके योद्धा परस्परके ध्वज व छत्रोंको भग्न कर रहे थे; तथा पौरुषका अवलंबन लिये हुए थे। दोनों पक्ष आयुधोंसे विदीर्ण हो रहे थे, और दोनों ही रणदेवताके लिए बलि चढ़ रहे थे। दोनों सैन्य बार-बार परस्पर संघट्टन कर रहे थे, व कायर लोग बार-बार फूट रहे थे, अर्थात् तितर-बितर होकर भाग रहे थे। बार-बार हस्ती जर्जर हो रहे थे, व घोड़े उत्तेजित। बार-बार शरीर-त्राण (रक्षाकवच) काटे जा रहे थे, एवं (मृत वीरोंको स्वर्ग ले जानेके लिए देवोंके)विमान उपस्थित हो रहे थे । बार-बार रुधिरके प्रवाहमें तैरते हुए लोग मरते समय मूर्च्छित हो रहे थे । बार-बार राक्षस आमिष एवं वसाको निगल रहे, तथा रक्त पी-पीकर प्रसन्न हो रहे थे । पुनः-पुनः झरती हुई लोहित-सरिताके घोड़ों व हाथियोंके अस्थिनिर्मित शिलातटों पर सेनाओंके द्वारा अनेक प्रकारका चातुर्य प्रकट करते हुए, अपने स्वामीका पराभवपट धोया जा रहा था ॥९॥

[१०]

इसप्रकारके उस दुर्द्धर व भीषण रणमें जहाँ कि बड़े भारी नादके साथ किये हुए आघातोंसे शस्त्र टूट गये थे, और जहाँ कि सुभट-समूहके (कटे हुए) बाहुदंड व तुंड बिछे हुए

---

[९] १. उभय° । २. क °संतइ; घ °संतइं; क संगरसंमंतइं । ३. ख क °बलय । ४. घ आवड्डिय°; क आवट्टिय° । ५. क ख ग नीस° । ६. क घ क °सत्थइं । ७. °न्नइं । ८. क क °यहि; घ °यहिं । ९. क क फुट्टइ । १०. क क °मइंगइ । ११. क भरहि घ झरिहि; ज्झरहि । १२. घ °सरिहिं । १३. ख ग °करडं° । १४. क क ब्बलहि । १५. क °छलहि । विशेष—इस कडवकमें क ख ग और क इन चारों प्रतियोंमें अधिककर बहुवचनके °इं में अंतमें होनेवाले शब्द 'इ' से अंत होते हैं। जैसे जुज्झंतइं > °तइ, सूरइं > सूरइ; बलइं > बलइ इत्यादि ।

[१०] १. घ दिन्न° । २. क क °तुंड° । ३. क क °हुंडिरे; ख ग बाहुंडिरे ।

खंडसुंडवेयथंड[4]-चंडभिंभले करधरंत-नीसरंत-अंतचुंभले[5] ।
रुहिरपंकखुत्तचक्क[6]-थक्कसंदणे पत्तमोहँ-पडियजोह-कडविमद्दणे ।
[7]करि व[8] घडिय वे वि भिडिय-बद्धमूल [9]दुद्वदवणगयणगमण-रयणचूल ।
वे वि खयर विज्जपवर-लच्छिलक्ख हयगयंद णं मयंद खग्गनक्ख ।
सुप्पमाणवरविमाण-निबडआय वे वि वीर मेरुधीर दिण्णघाय[7] ।
जमनिहेण मणिसिहेण घाउ दिण्णु[10] वइरियाणु वंचमाणु खग्गु छिण्णु[10] ।
रिउ निरत्थु[11] सुण्णहत्थु[12] नियवि ताम जउ[13] मुणेइ[14] आहणेइ पुणु वि जाम ।
खग्गखंडु चयवि[15] चंडु[16] पाविऊण थिरकरेण मोग्गरेण भामिऊण ।
पहउ तासु मणिसिहासु सिग्घजाणु धयसडंतु खडहडंतु गउ विमाणु ।
नहे ठिएण मणिसिहेण वच्छे भिण्णु[10] निसियधारु असिपहारु अरिहे[17] दिण्णु[10] ।

घत्ता—घाएं[18] गयणगइ हुउ वियलमइ[19] कीलालोहालियदेहउ ।
सहइ विमाणवरे संझावसरे अत्थइरिसिहरे[20] रवि जेहउ[21] ॥१०॥

थे, तथा जहाँ योद्धाओंकी कटी हुई जांघ व बाहू शंका (भय) उत्पन्न करते हुए घूम रहे थे, और जहाँ सूंड कटा हुआ कोई हाथी प्रचंडतासे विह्वल एवं भयानक हो रहा था, तथा अपने सूंडको निकली हुई आंतोंका शेखर बनाये हुए था, और जहाँ कि रुधिर-पंकमें चक्का फंस जाने से रथ ठहर गये थे, तथा मूर्च्छित होकर पड़े हुए योद्धाओंका मर्दन हो रहा था; ऐसे उस महा संग्राममें वे दोनों ही विद्याधर, दुष्टोंका दमन करनेवाला गगनगति और (दूसरा) रत्नचूल (रत्नशेखर), मिलकर हाथियोंके समान बद्धमूल होकर अर्थात् जमकर भिड़ गये। वे दोनों ही प्रवर विद्याओंके धारक थे, और (विजय)लक्ष्मीपर इसप्रकार अपना लक्ष्य दिये हुए थे जिसप्रकार नखोंरूपी खड्गसे युक्त वह मृगेंद्र जिसने गजेंद्रको मार डाला है। फिर सुप्रमाण (सुनिर्मित) उत्तम विमानोंसे निकट आकर दोनों ही मेरुके समान धीर-वीर परस्पर आघात करने लगे। यमके समान रत्नशेखरने (गगनगतिपर) प्रहार किया और शत्रुको वंचना देते हुए उसका खड्ग खंडित कर डाला। इसप्रकार शत्रुको शस्त्ररहित खाली हाथ देखकर, अपनी जय मानते हुए जब तक कि वह पुनः आघात करे, तब तक गगनगतिने उस खड्गके टुकड़ेको छोड़कर, एक प्रचंड मुद्गर पाकर, उसे स्थिर हाथोंसे घुमाकर रत्नशेखरके शीघ्रयान-पर प्रहार कर दिया, तो ध्वजाको गिराता हुआ वह विमान खड़-खड़ करता हुआ नष्ट हो गया। तब नभस्थित मणिशेखरने पैनी की हुई धारवाले तलवारसे शत्रुके वक्षस्थलको चीरता हुआ प्रहार किया। आघातोंसे गगनगति विकलमति अर्थात् विह्वल, और लोहू-लुहान शरीर हो गया, तथा संध्याके समय अपने विमानमें बैठा हुआ वह ऐसा शोभायमान हुआ जैसा अस्ताचल पर सूर्य ॥१०॥

४. क °वेपयंड° । ५. ख ग °रंभले । ६. क °खुत्तचक्क । ७. घ घत्त° । ८. क करिउ । ९. क घ ङ दुट्ठदमण° । १० घ °भु । ११. क ङ °त्थ । १२. घ सुण्ण° । १३. क जइ । १४. क घ ङ म° । १५. क ङ चइवि । १६. क चंड । १७. क घ °हिं; ङ °हि । १८. क घाए । १९. क ङ विमल°; घ °गइ । २०. क ङ अत्थयरि° । २१° घ °उं ।

[११]

सकिवाणु रयणसिहु[1] वणियगत्तु[2] गयणंगाउ रणभूमि पत्तु।
एत्थंतरे पाइहिँ[3] पहु निएवि[4] पडिगाहिउ नियसेण्णे[5] नएवि।
करि ढुक्कु[6] सपहरणु[7] सरिउ[8] गुडिउ[9] विज्जाहरवइ लहु तेत्थु चडिउ।
तहिँ[10] काले मियंकें[11] मुक्कखोहु पुच्छिज्जइ नियकरिखंधरोहु[12]।
इय कवणु गयणे जुज्झिय-सलेव आरोहु भणइ[13] विण्णवमि[14] देव।
पहु हयविमाणु जो भूमि आउ सो सत्तु रयणसिहु[15] खयरराउ।
बीयउ पुणु अवसरु[16] मुणिय-वत्तु गयणगइ तुम्ह मेहुणउ[17] पत्तु।
दीसइ विमाणे[18] मुच्छावसंगु[19] निद्दयपहारवियारियंगु[20]।

घत्ता—संभावियसयणु निसुणिवि[21] वयणु आरोहनरेण संसाहिउ[22]।
उम्मुहलोयणेण[23] विंभियमणेण[24] सविसेसु मियंकें चाहिउ ॥११॥

[१२]

परियाणवि[1] फुडु नेहड्ढिएण गयणगइ पसंसिउ पत्थिवेण।
इयरेण[2] सरिसु किर[3] [4]को य[4] बंधु को विहुरमहाभरे देइ खंधु।

[११]

रत्नशेखर घायलशरीर (व्रणितगात्र) होकर अपने कृपाणसहित, आकाशसे भूमि-पर आ गया। इसके अनंतर पदातियोंने अपने स्वामीको देखकर अपनी सेनामें ले जाकर स्वागत किया। वहाँ स्मरण करनेसे कवच व शस्त्रोंसे युक्त हाथी उपस्थित हुआ, और विद्याधरपति (रत्नशेखर) शीघ्र उसपर चढ़ गया। उस समय मृगांक राजाने अपने क्षोभरहित महावतसे पूछा—आकाशसे दर्पपूर्वक युद्ध करके आनेवाला यह कौन है ? तब सवार (महावत) ने कहा—देव ! विज्ञापन करता हूँ कि यह जो हत-विमान होकर भूमिपर आया है, वही तो हमारा शत्रु खेचरराज रत्नशेखर है; और वह दूसरा अवसर तथा वृत्तांत जानकर तुम्हारा साला गगनगति आया है। वह निर्दय प्रहारोंसे विदीर्णशरीर होकर विमानमें मूर्च्छित पड़ा हुआ दिखाई देता है। महावतने जो कहा, उसे सुनकर और स्वजन (गगनगति) को जानकर आकाशकी ओर आंखें उठाये हुए मृगांकने विशेषरूपसे (उसके लिए शुभ)कामना की ॥११॥

[१२]

इस बातको जानकर (गाढ़)स्नेहवश राजा मृगांकने गगनगतिकी इसप्रकार प्रशंसा की—इसके समान दूसरा कौन मेरा बंधु है ? महान् आपत्तिमें कौन कंधा (सहारा) देता है, धनी

[११] १. घ °सिहुं। २. क ख ग क °सत्तु। ३. क घ पायहि; क पायहिं। ४. क णएवि। ५. घ °सिन्ने। ६. क दुक्खु। ७. क °रण। ८. क क यारि; घ सारि। ९. क उडिउ। १०. ग क तहि। ११. क मयंकें। १२. घ °खंडरोहु। १३. ख ग घ क °इं। १४. घ विन्न°। १५. ख ग °सिहुं। १६. घ °सर। १७. ख ग घ °णउ। १८. क क °णु। १९. क ख ग क °यमंगु। २०. क क °अंगु। २१. क ख ग घ °णिय। २२. ख ग घ जं सा°। २३. क क जम्मुह°; ख ग जं मुह°। २४. क क °मणिणा।

[१२] १. क घ क °णिवि। २. ख ग इय एण। ३. क किय। ४. क के य; ख ग घ कवणु।

फलहीणु वि[5] वरतरु छायबहुलु[6] मं[7] विडु[8]-कज्जत्थिउ[9] होइ सहलु ।
हियएण सरिसु जसु नत्थि मित्तु तहो रज्जु रज्जुबंधणनिमित्तु ।
सुहिपहरदुक्खु[10] असहंतएण चोइउ[11] गइंदु[12] केरलनिवेण[13] ।
वलु-वलु[14] हक्कारिउ रयणचूलु रे रे वड्ढारिउ[15] कलहमूलु ।
थामेण जेण लंघिउ[16] समुद्दु विद्धंसु देसि दंसिउ रउद्दु ।
आसंघवि[17] मइँ[18] मग्गहि[19] कुमारि लइ पहरु तेण तउ करमि मारि ।
अब्भिट्टु[20] खयरु कडुवयणविद्धु[21] चोइय[22] मयंगु धुव्वंतचिंधु ।
घत्ता—तक्खणे[23] ओवडिय[24] पेक्खिवि भिडिय रहकरितुरंग संकिण्णइं[25] ।
निम्मलु[26] छलु धरिवि[27] रणु परिहरिवि ओसरियइँ[28] विण्णि वि सेण्णइँ[29] ॥१२॥

[१३]

तओ करि विण्णि वि[1] मेल्लियधाव[2] परिट्ठिय[3] राय-चडावियचाव ।
बलुद्धर[4]केसरिविक्कमसार रसड्ढिय-कड्ढिय-संगरभार ।
रणंगणसंगविलासियवच्छ छणिंदुसमाणवराणणदच्छ ।

छायासे युक्त उत्तम वृक्ष फलहीन होने पर भी क्या कार्यार्थी विटके लिए सफल नहीं होता ? जिसका अपने हृदयके जैसा मित्र नहीं है, उसके लिए राज्य केवल एक रज्जू बांधनेका ही निमित्त है। सुहृद्के ऊपर किये हुए प्रहारके दुःखको नहीं सहते हुए केरलनृपने अपने गजेंद्रको प्रेरित किया; और वापिस आओ ! वापिस आओ ! कहकर रत्नचूलको आह्वान किया । अरे ! अरे ! तूने बड़ा कलहका कारण बढ़ा रखा है । जिस स्थानसे समुद्र पार किया उस स्थानपर तूने देशको विध्वंस करके अपना रौद्ररूप दिखलाया । तू अध्यवसाय करके (अर्थात् बलपूर्वक) मुझसे राजकुमारीको मांगता है, ले ! मेरा प्रहार ले ! इससे मैं तेरी मृत्यु कर डालता हूँ । ऐसे कटुवचनोंसे बिंधकर ध्वजा उड़ाते हुए अपने मातंगको प्रेरित कर वह खेचर (रत्नशेखर) (मृगांक राजासे) भिड़ गया । उस समय उन दोनोंको एक दूसरे पर झपटकर भिड़े हुए देखकर, रथ हाथी और तुरंगोंसे संकीर्ण दोनों सेनाएं निर्मल चातुरी करके युद्ध छोड़कर अलग-अलग हट गयीं ॥१२॥

[१३]

तब उन दोनों राजाओंने हाथीपर स्थित होकर चाप चढ़ाये हुए (एक दूसरे पर) धावा बोल दिया। वे दोनों ही प्रचंड बलको धारण करनेवाले केशरीके समान विक्रममें श्रेष्ठ, युद्धके रसिक व अनेक संग्रामोंके भारको खींच लेनेवाले थे । उनके वक्षस्थल रणांगन (युद्धभूमि) के साथ विलास करनेवाले थे, और उनके सुंदर मुखोंका तेज पूर्णचंद्रमाके समान था । उन्होंने डोरीकी

५. ख ग जे । ६. क च छ °बहुलु । ७. क च छ तं । ८. क विड । ९. ख ग च °ट्ठिउ । १०. ख ग घ °दुक्ख । ११. क छ चांविउ । १२. क छ गयंदु । १३. क च छ केरण° । १४. क चलु चलु । १५. च °विउ । १६. क छ °य । १७. क °घिवि; छ °घिवि । १८. क मइ । १९. ख ग °हे । २०. क छ आभिट्ट । २१. ख ग °वयणु° । २२. घ चोइउ° । २३. क च तं खणे । २४. च ओवचडिया; छ उचडिया । २५. क छ °ण्णइ; घ °ण्णइ । २६. क छ °ल । २७. ख ग धरवि । २८. ख ग °यइ । २९. च सिन्नइं ।

[१३] १. क छ मि । २. क मेल्लियइ° । ३. ख धरट्ठिय; ग धएट्ठिय । ४. क वलुद्दर° ।

टणक्कियदोर-निवेसियकंड डराविययवइरि[5] हणंति[6] पयंड।
डसंति नियाहर निट्ठुरचित्त तमारिकरेहिँ पसेयपसित्त।
तण[7] व्व गणंति[8] परोप्परु कुद्ध धराधरधीर-जयासयलुद्ध।
धसक्किय घायहिँ बिण्णि[9] [10]वि सेण्ण[10] नहंगणि देव वि दूरि पवण्ण।
न जाणहुँ[11] संसए थक्क[12] वरच्छि छिवेइ न एक्कु वि मज्झए लच्छि।
घत्ता—खंड-खंडु[13] गयइँ पहरणसयइँ धय-चिंध[14]-कवय-सीसक्कइँ[15]।
दोहिँ[16] मि समबलइँ [17]पर-केवलइँ नीसंगइँ अंगइँ[18] थक्कइँ ॥१३॥

[१४]

खयरें[1] जिणिवि न सक्किउ जामहि[2] मायाजुज्झु पसारिउ तामहि[2]।
घणु वाऊलि धूलि दावानलु[3] गज्जइ पलयजलहि[4]-पसरियजलु।
विज्जाबलेण तिमिरु उप्पायउ तिव्वतएण[5] भुवणु संताविउ।
नहु गडयडइ धरणितलु फट्टइ[6] कुम्मकडाहु जेण[7] निव्वट्टइ[8]।
करणु देवि सत्थइ[9] समचाइउ[10] धरिउ मियंकु राउ करि घाइउ[11]।
एम वियंभिवि[12] भडसद्दूलें[13] बद्धु मियंकु[14] राउ मणिचूलें[13]।

टंकार की, व उसपर बाण चढ़ाया एवं वैरियोंको डराकर (बाणोंसे) प्रचंड मार करने लगे। दोनों ही निष्ठुर चित्त होकर अपने अधरोंको (क्रोधसे) काट रहे थे, व सूर्यकी किरणोंसे पसीनेसे सिंच गये थे। परस्पर क्रुद्ध हुए वे दोनों एक दूसरेको तृणके समान गिन रहे थे, तथा धराधर अर्थात् पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वतके समान धीर एवं विजयाभिप्राय(अर्थात् विजय प्राप्ति)के लोभी थे। उनके आघात-प्रत्याघातोंसे दोनों सेनाएं भयभीत हो गयीं, और गगनांगनमें देव भी दूर हट गये। न जाने इनमें-से कौन विजयी होगा, इसप्रकारके संशयमें पड़ी हुई सुंदर आँखोंवाली विजयलक्ष्मी दोनोंके मध्यमें-से किसी एकको भी नहीं छू रही थी। सैकड़ों आयुध, ध्वजा-पताकाएँ, कवच और शिरस्त्राण खंड-खंड हो गये। दोनों ही समान रूपसे बलशाली, बिलकुल अकेले-अकेले अपने-अपने शरीरके प्रति बिलकुल निःसंग भावसे युद्धमें डटे रहे ॥१३॥

[१४]

जब खेचर जीत नहीं सका तो उसने माया-युद्धका प्रसार कर दिया। बादल, आंधी, धूल और दावानल (सब एक साथ) जलके प्रसारयुक्त प्रलयजलधिके समान गर्जन करने लगे। रत्नशेखरने विद्याबलसे अंधकार उत्पन्न कर दिया, और तीव्र आताप (दाह) से सारे भुवनको संतप्त कर डाला। आकाश गड़गड़ाने लगा और धरणीतल फटने लगा, जिससे (पृथ्वीको धारण करनेवाले) कूर्मका पीठरूपी कड़ाह उलटने लगा। पैंतरा देकर उसने बलवान् मृगांक राजाको तो पकड़ लिया, और उसके हाथीको घायल कर दिया। इसप्रकार उत्कट साहसके द्वारा उस भटशार्दूल रत्नशेखरने मृगांक राजाको बाँध लिया। फिर उसको उठाकर

---

५. क क °वेरि। ६. क ख क °त। ७. क क तिण। ८. क क °त। ९. ख ग वेण्ण। १०. क क विसण्ण। ११. क क °हु; ख ग °हो। १२. क क थक्कु। १३. क खंडु°। १४. घ °चिंदु। १५. क क °वकइ। १६. क ख क दोहि। १७. क पक्खेवलइं। १८. ख °इ।

[१४] १. क °रे। २. ख ग घ °हि। ३. क क °णलु। ४. ख ग घ °जलहि। ५. क घ क तिव्वावइण। ६. ख ग फु°। ७. क घ क णाइ। ८. क °ट्टइं। ९. क घ क म°। १०. क घ क °वाइउ। ११. क ख ग क घायउ। १२. ख ग °भिय। १३. ख ग °लइं। १४. ख म°।

घल्लिउ[15] नियकरिवरि[16] उब्बाइवि छुडु चल्लिउ भुवबलु[17] पोमाइवि[18] ।
कडयहो बाहिरि इय रणु वट्टइ सुहडहँ[19] चित्तु[20] जयास न फिट्टइ[21] ।
अब्भंतरि[22] पुणु जंबुकुमारें थिरभुयबलेण खग्गफरु[23] धारें ।
जे अब्भिट्ट[24] महाउहिनियडहो[25] अट्ठसहस विज्जाहर सुहडहो ।
जुज्झमाण ते दिसिहिँ[26] भमाडिय निसियकिवाणपहारहिँ[27] ताडिय ।
चलणलुलंत-अंतगुप्फाविय[28] रस-वस-नसकद्दमे खुप्पाविय[29] ।
रुहिर[30]-कुसुंभए सव्व वि राइय[31] खयरकबंध-भंध-नचाविय ।
रणवसुमइसेज्जहि[32] सोवाविय भडसीमंतिणि[33]-सयरोवाविय ।

घत्ता—पडिभडअसिवसेण[34] खडियाकसेण[35] रणमहिकडित्त[36]-वित्थिण्णउ[37] ।
अंकनिरंतरओ सकलंतरओ वीरेहिँ सामिरिणु दिण्णउ[38] ॥१४॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए उहय-बलसंगामो[39] नाम[40] छट्ठो संधी समत्तो[40] ॥ संधिः ६ ॥

(अपने) हाथीपर डाल लिया, और अपने भुजबलकी श्लाघा करके तुरंत (वहांसे) चल पड़ा। छावनीके बाहर इसप्रकार युद्ध हो रहा था, फिर भी सुभटोंका चित्त (अपनी-अपनी) विजयकी आशा नहीं तोड़ (छोड़) रहा था। और उधर छावनीके भीतर स्थिर-भुजबलशाली व खड्ग और फलक (ढाल) को धारण करनेवाले उस कुमारके द्वारा उस महायोद्धा-सुभटके सन्निकट जो अष्टसहस्र विद्याधर आकर भिड़े, वे सबके सब युद्ध करते हुए पैनी तलवारके आघातोंसे आहत करके दिशाओंमें घुमा दिये गये (अर्थात् चारों ओर भगा दिये गये व तितर-बितर कर दिये गये)। उनके पैर काट लिये जानेसे (बाहर निकली हुई) आंतोंके गुल्फ बन गये, और विद्याधर सैनिक वसा एवं नसोंके कर्दममें निमग्न कर दिये गये। सभी रुधिरके रंगसे रंग दिये गये, तथा खेचरोंके कवंध(धड़)रूपी भृत्य नचा दिये गये। वे रणभूमिकी शय्यापर सुला दिये गये, एवं भटोंकी सैकड़ों सीमंतिनियां रुला दी गयीं। जिसप्रकार हारते जानेसे जूएके फलक-पर निरंतर बढ़ती हुई ऋणसूचक संख्याओंको सव्याज चुकाकर खड़ियासे मिटा दिया जाता है, उसीप्रकार रणभूमिरूपी फलकके समान विशाल (महान्) और निरंतर अंकोंवाले अर्थात् सतत बढ़ते हुए स्वामीके ऋणको वीरोंने सव्याज चुकाकर शत्रुभटोंकी (उनको मार-मारकर छीनी हुई) तलवारोंरूपी खड़ियासे घिस दिया (अर्थात् मिटा दिया) ॥१४॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित 'जंबूस्वामीचरित्र' नामक इस शृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें दोनों सेनाओंका संग्राम नामक यह षष्ठ संधि समाप्त ॥ संधि ६ ॥

---

१५. घ घत्तिउ। १६. क क पुणु करिवर। १७. घ भुय°। १८. ख ग तं पेक्खिवि। १९. ख ग क °डह। २०. ख ग घ चित्त°। २१. ख पिट्टइ। २२. ख ग अब्भि°। २३ ख ग घ °फर। २४. प्रतियोंमें 'महाउह°'। २५. क °णिविडहि; ख ग °नियडहे; क °णिविडहु। २६. क °हि। २७. क क °पहारहि। २८. क घ क °गुप्पाविय। २९. घ °इय। ३०. क क रुहिरु°। ३१. क क राविय। ३२. क क °वसुमइं सेज्जहिं; ख °सेज्जहे; घ °सिज्जहि। ३३. ख ग °सीमंतणि। ३४. क क पडिभडे असिवसण; घ °असिवसिण। ३५. क ख क °कसिण। ३६. क रणमडि°; ग रणमज्झि°। ३७. क ख क विच्छि°; घ विच्छिन्नउं। ३८. घ दिन्नउं। ३९. ख ग °बल-समागमो। ४०. क घ क छट्ठा इमा संधी ॥ संधिः ६ ॥

[१]

चिरकइकव्वामयमुहाण[1] रुइभंगरसणाणं[2]
सुयणाण[3] मए वि कयं[4] अल्लयकसरकउकव्वं[5] ॥ १ ॥
अत्थाणुरूवभावो[6] हियए पडिफुरइ जस्स वरकइणो[7] ।
अत्थं फुडु[8] गिरइ निरा[9]-ललियक्खरनेम्मिएहिं[10] तस्स नमो[11] ॥ २ ॥
भावो तारो[12] दूर[13] अत्थस्स वि लडहमंडणं[14] दूरे ।
[15]पयडेवि कहाकहणे[16]अण्णं चिय का वि सा भंगो[16] ॥ ३ ॥
इय[17] पाडिय खयरबले निसुणिय[18] सयले दीसइ न को वि[19] थिरसत्तउ[20] ।
असिदाढए[21] धरेवि[22] जगु संघरेवि खयकालु व बालु नियत्तउ[23] ॥ ४ ॥
बोलवि[24] खंधारु न जाइ जाम   निज्जीणउ बलु रणे दिट्ठु ताम ।

[१]

जिनके मुख प्राचीन कवियोंके काव्यामृतसे अतिशय भरे होनेसे, उनकी रसनाओंका रुचि भंग हो गया है, ऐसे सज्जनोंके (स्वादको बदलनेके) लिए मेरे द्वारा भी आर्द्रक (आदी)के फूलको कलीके समान भिन्न व चटपटे स्वादसे युक्त यह काव्य रचा गया ॥ १ ॥ जिस श्रेष्ठ कविके हृदयमें अर्थानुरूप भाव प्रतिस्फुरित होता है, और जिसकी नितांत ललिताक्षरोंसे परिमित (निर्मित) वाणीसे अर्थ स्फुट होता है (अर्थात् स्पष्टतासे प्रकट होता है), उसके लिए नमस्कार है ॥ २ ॥ (काव्यमें) अति ऊँचा भाव (स्थापित करना) बहुत दूर (दुष्कर) होता है; अर्थका सुंदर (व सुकोमल और चतुर) मंडन और भी दूर (दुष्करतर) होता है; इन दोनोंको प्रकट कर (अर्थात् अति ऊँचा भाव और अर्थका सुंदर कोमलकांतपदावलीसे मंडन करके) कथा कहनेकी वह कोई अन्य ही (अद्‌भुत) विधा है ॥ ३ ॥

इसप्रकार खेचर सैन्यको मारकर गिरा दिया गया, यह सुनकर सब विद्याधरोंमें-से वहाँ कोई भी स्थिर-सत्त्व अर्थात् धैर्यको स्थिर रख सकनेवाला दिखाई नहीं दिया। अपनी तलवाररूपी दाढ़में पकड़कर, (विद्याधर) लोगोंको मारकर, प्रलयकालके समान वह बालक वापिस लौटा ॥ ४ ॥ जबतक जंबूकुमार स्कंधावारको पार करके जा भी

[१] १. क क चिरकवि°; क ख ग क °कव्वामयमुहेण; घ °कव्वममेयं। २. क रइभंग°; घ रइभंगं वि सरसणाणं। ३. क क सुइणेण; ख ग सुएणेण। ४. क ख ग क काए। ५. घ अल्लयसकरंजियं कव्वं। ६. ख ग क अत्थाण°। ७. क ख ग क वीरकइणा; घ वइकइणा। ८. घ पि। ९. घ में 'निरा' नहीं। १०. घ ललियक्खरेहिं नेम्मिए। ११. क ख ग क मणो। १२. क ख ग क ता; घ तारे। १३. क ख ग क दूरयर; घ में 'दूर' नहीं। १४. घ °वण्णणं। १५. क क में इस पंक्तिके उपरांत एक अधिक पंक्ति इस प्रकार है—इययरे बले णिज्झण सयले दीसइ न को वि थिरु थिरु मत्त। १६. क क अणाविय सा भंगो। १७. क घ क में 'इय' नहीं। १८. ख ग सुणे; घ सुणि। १९. क क कोइ। २०. क क °मत्तउ। २१. क क °दाढइ; घ °दाढइं। २२. क क धरवि। २३. ख ग घ निय°। २४. ख ग बालु वि।

[25]रुहिरनइसोत्ते छत्तइँ[25] तरंति मत्थिक्कमास-[26]वसवह झरंति[26] ।
[27]सं-तित्तचित्तभूयइँ[28] रमंति डाइणि[29]-वेयालसयइँ[30] कमंति ।
सिव-धार[31]-गिद्ध-वायस[32] भमंति मच्छियसंघायइँ[33] छमछमंति ।
कत्थइँ[34] भडु पडिउ पसारियंगु मुग्गरपहारहउ[35] अकयवंगु ।
तं नियवि [36]गाढठियलउडिहत्थु आसण्णु न ढुक्कइ कायसत्थु ।
भडु को वि पडिउ दिट्ठीकरालु जाणइ[37] जियंतु बीहइ सियालु ।
करु [38]कहिँ मि[38] भडहो मणिवलयवंतु चव्वंतिहे[39] भग्गु डसंति[40] दंतु ।
[41]तं सेवइ[42] डाइणि नरवसाइँ[43] भल्लुक्किमुहाणलसम[44]-रसाइँ[45] ।
फाडियकुंभत्थल[46] दिण्णसंक[47] कप्पियकर दीसहिँ करिकरंक ।
कत्थइ[48] विहत्थपल्लाणसार[49] पल्लहत्थ[50] तुरंगम सासवार ।
खंडियधुर-संदण-मोडियक्ख निव्वट्टिय दीसहिँ[51] हेइ[52] लक्ख ।

घत्ता—चिंतइ चरमतणु किउ केण रणु एउ हड्ड-रुंड-विच्छड्डिरु[53] ।
सहइ भयावणउ[54] बहुरसघणउ[55] णं वइवसभोयणमंदिरु ॥ १ ॥

नहीं पाया, तबतक उसने रणमें विजित हुए सैन्यको देखा। वहाँ रुधिर नदीके स्रोतमें छत्र तैर रहे थे, तथा मथित हुए मांस और बसाके प्रवाह (झरने) झर रहे थे। भूत-पिशाच संतृप्तचित्त होकर आनंद मना रहे थे, और सेकड़ों डाकिनियाँ व वेताल उछल-कूद मचा रहे थे। शृगाली, चील, गिद्ध और वायस(कौवे) मंडरा रहे थे, व मक्खियोंके झुंडके झुंड भिन-भिना रहे थे। कहीं कोई भट अपने शरीरको पसारे पड़ा था, जिसके अवयव मुद्गरके प्रहारसे आहत होनेपर भी विकृत नहीं हुए थे। उसके सुदृढ़ लकुटियुक्त हाथको देखकर काकसमूह पासमें नहीं आता था। कोई भट आँखोंको भयानकतासे फाड़े हुए पड़ा था, उसे जीवित समझकर सियार भयभीत हो रहा था। कहीं किसी भटके मणिवलय-युक्त हाथको काटकर चबाती हुई शृगालीके दांत ही टूट गये थे। वहाँ कोई डाकिनी मनुष्योंकी वसा तथा शृगालीके मुखानलके समान लाल-लाल रसाओं (रक्तवाहक धमनियों)को से रही (अर्थात् खा रही) थी। कहींपर विदीर्ण कुंभस्थलोंसे शंका (भय) उत्पन्न करनेवाले तथा सूँड़ कटे हुए हाथियोंके धड़ पड़े हुए दिखाई दे रहे थे। कहींपर जिनके श्रेष्ठ पर्याण (पलान) जुदा हो गये थे, ऐसे घोड़े सवारोंसहित मरे पड़े थे। कहींपर भग्न-धुरा और टूटे हुए जूएवाले लाखों रथ उलटे हुए एवं हेति नामक शस्त्र पड़े हुए दिखाई दे रहे थे। तब वह चरमशरीरी (इसी जन्ममें निश्चयसे मोक्ष जानेवाला) कुमार सोचने लगा—किसने ऐसा युद्ध किया है, जो हाड़ों व रुंडों (धड़ों) के बिस्तारसे युक्त होनेसे ऐसा लग रहा है, मानो यह वैवस्वत(यमराज)का हाड़ों व रुंडोंसे वैभवशील, भयानक एवं बहुत अधिक रक्तरूपी रससे युक्त भोजनगृह हो हो ॥ १॥

२५. क ङ °नइसोनिच्छत्तइं। २६. ग °वस पज्झरंति। २७. क ख ग ङ संतत्त°। २८. क ङ °चूयइ। २९. ङ डायणि। ३०. क ङ वेयालइ सइ। ३१. ख ग घाय; ङ धार। ३२. क ङ वाइस। ३३. ख ग °संघायइ। ३४. क ङ °वि; घ °इं। ३५. क ङ °हुउ। ३६. क ङ गाढविय°। ३७. क ङ °इं। ३८. क ङ कहु वि; घ कहो वि। ३९. क ङ °तिहि; ख ग °तिहिं; घ °तिहें। ४०. ग टसंति; घ ङ टसंत्ति। ४१. घ तिं। ४२. क ङ सेयइ। ४३. ग ङ °बसाइ; घ °बसाए। ४४. क ङ सुहाणल°; ख ग महाणल°। ४५. क ङ रसाइ। ४६. ख पाडिय°। ४७. घ दिन्न°। ४८. घ °इं। ४९. ख ग घ विहत्त°। ५०. घ पल्लत्थ। ५१. ख ग °हि। ५२. ख ग रहे य। ५३. क घ ङ हेय; क ङ विच्छंडिरु। ५४. घ °णउं। ५५. ख ग °उं।

[२]

जंतेण रणंगणमज्झे तेण दिट्ठाइँ[1] नवर दूरंतरेण।
बहुपहरणसव्वणवाहणाइँ[2] मुयसेसइँ[3] बेण्णि वि साहणाइँ।
एक्कहिँ[4] बले सुम्मइ[5] विजयसद्दु अण्णेक्कहिँ[6] हा-हा-रव[7]-निनद्दु[8]।
एक्कहिँ[4] बले मंगलतूरवज्जु[9] अण्णेक्कहि रोविज्जइ सलज्जु।
एक्कहिँ[4] बले छत्तइँ भावियाइँ[10] अण्णेक्कहिँ[11] पुणु मउलावियाइँ।
एक्कहि बले चिंधइँ[12] उब्भियाइँ[13] अण्णेक्कहिँ[11] महिहि[14] निसुंभियाइँ[13]।
अवलोयइ[15] विंभियचित्तु जाम सविमाणु गयणगइ आउ ताम।
दीसइ कुमारु [16]जयसिरिय संगु[16] रिउरुहिरतुसारतिडिक्कियंगु[17]।
[18]सरसवसोहालियमंडलग्गु विज्जाहरु तो वण्णणहँ[19] लग्गु।
अहो अहो कुमार पइँ[20] मुयवि[21] कवणु एक्केल्लउ[22] जि बहुखयरदवणु[23]।
वरि एक्कु जि केसरि नहरसारु[24] मं करिमेलावउ गज्जिफारु[25]।
वरि एक्कु जि दिणमणि गयणपवहु[26] मं सं[27] खज्जोययकीडनिवहु[28]।
वरि एक्कु जि वडवानलु[29] विरूढु मं सं[27] रयणायरजलसमूहु।
वरि एक्कु जि गरुडु[30] झडप्पसालु मं विसहरसंघु[31] महाफणालु[32]।

[२]

जाते हुए उसने समरांगणमें दूरसे ही बहुत प्रहारोंसे घायल हुए वाहनों(हाथी, घोड़े आदि)वाली दोनों मृतप्रायः (मृतशेष, मृतकशेष) सेनाओंको देखा, (और देखा कि) एक सेनामें विजय (सूचक) शब्द सुनाई पड़ रहे थे, दूसरी ओर हाहाकारका निनाद हो रहा था; एक सेनामें मंगलतूर्य बज रहा था, दूसरी ओर लज्जापूर्वक रोया जा रहा था; एक सेनामें छत्र लगाये जा रहे थे, दूसरी ओर संवलित किये जा रहे थे; एक सेनामें ध्वजचिह्न उड़ रहे थे, व दूसरी ओर पृथ्वीपर गिरे हुए थे; जब तक कि वह विस्मितचित्तसे यह सब देख ही रहा था, तब तक विमानसहित गगनगति आ गया। विजयश्री-समवेत जंबूकुमार रिपुओंके रुधिरकणोंके छींटोंसे युक्त दिखाई दे रहा था। तब सर्षप (सरसों)के समान नील शोभावाले तलवारसे युक्त वह विद्याधर (इसप्रकार) कुमारके वर्णन (स्तुति)में लग गया—धन्य हो कुमार ! तुम धन्य हो ! तुम्हें छोड़कर दूसरा कौन अकेला ही अनेक खेचरोंका दमन करनेवाला है ? नखोंके पराक्रमसे युक्त एक केशरी ही श्रेष्ठ है, महान् गर्जन करनेवाला हाथियोंका मेला (झुंड) नहीं। गगनमें प्रवहमान एक दिनमणि (सूर्य) ही श्रेष्ठ है, खद्योतक कीड़ोंका बहुत बड़ा समूह नहीं। बढ़ा हुआ एक बड़वानल ही श्रेष्ठ है, रत्नाकर(सागर)का अतिशय जलसमूह नहीं।

[२] १. क दिट्ठइ। २. ख ग वाह°। ३. क °सेसइ; क सुय°। ४. घ °हिं। ५. ख घ °इं। ६. घ अस्सिक्कहिं। ७. क क रउ। ८. क क णिणद्दु। ९. क क °वज्ज। १०. घ भामि°। ११. ख ग घ °क्कहिं। १२. क ख ग °इ। १३. क °याइ। १४. ख ग घ °हिं। १५. क घ क °लोयइ; ख ग °लोवइ। १६. ख ग °सिरिपसंगु। १७. क क °तिरिक्क°। १८. ख ग सरुसव°। १९. ख ग °णह; घ वन्नणहं। २०. क पइ। २१. क क मुइवि। २२. क घ क एक्क°। २३. घ वरखयर°; क घ क °दमणु। २४. क णहरु°। २५. ग °पारु। २६. क क °पहु; ग °प्पवहु। २७. क ख ग घ मं। २८. क घ क खज्जोवय°; ग खज्जोइय°। २९. क क °णलु। ३०. क क ड°। ३१. क क विसहरु°। ३२. क क °फडालु।

घत्ता—अट्ठसहसपरहँ[33] विज्जाहरहँ एक्कल्लएण पइँ[34] रणे पहय ।
अम्हइँ[35] काउरिस[36] इय बलसरिस एवडावत्थहे[37] पुणु गय ॥२॥

[३]

तउ दूआलावपयट्ट[1] समरु रिउसहहे[2] नियच्छवि[3] पहरडमरु[4] ।
हेरियहिं[5] मियंकहो कहिउ जाम सन्नहवि[6] सो वि नीसरिउ ताम ।
इय जुज्झियाइँ सेण्णइँ मुयाइँ खिण्णइँ[7] भिण्णइँ[7] छिण्णइँ[7] लुयाइँ ।
अब्भिट्टइ[8] मइँ[9] रणे मणिसिहासु चूरिउ विमाणु मोग्गरेण[10] तासु ।
तेण वि असिघाएँ[11] [12]वच्छु भिण्णु[12] जुज्झंतरु हुउ[13] मुच्छाए[14] दिण्णु ।
आलग्गु[15] मियंकु वि[15] तज्जिऊण मायाजुज्झेण परज्जिऊण[16] ।
बंदिग्गहे लइउ[17] महाणुभाउ एहु दीसइ रिउबले विजउसाउ ।
अम्हाण सेणि[18] पुणु भग्गसोह नायकें[19] विणु किं करहिं[20] जोह ।
अब्भंतरे पइँ[21] जुज्झंतियाहु[22] इय बाहिरि रणवित्तंतु जाउ ।
इह[23] कालहो थिर-पडिवन्नचित्त[24] पइँ[25] मुयवि[26] अम्ह के हियपरित्त ।

झपट मारनेवाला एक गरुड ही श्रेष्ठ है, महाफणाटोपवाला विषधरसमूह नहीं। तुमने अष्ट सहस्र विद्याधरोंको रणमें अकेले ही मार डाला। हम लोग कापुरुष हैं, हमारा ऐसा ही बल है जिससे ऐसी अवस्था (पराजय)को प्राप्त हुए (अथवा हम लोग कापुरुष हैं, जो एतद्सदृश बलवान् होते हुए भी ऐसी अवस्थाको प्राप्त हुए) ॥२॥

[३]

दूतरूपमें तुम्हारे आलाप(कहा-सुनी)से युद्ध प्रारंभ हुआ देख, और रिपुसभामें प्रहारका डंका बजते हुए देखकर जब गुप्तचरोंने मृगांकको यह बतलाया, तो वह भी संनद्ध होकर निकला। अथानंतर लड़कर सेनाएँ मरीं, शोकग्रस्त हुईं, छिन्न-भिन्न हुईं और काटी गयीं। मैंने रणमें रत्नशेखरसे भिड़कर मुद्गरसे उसका विमान तोड़ डाला। उसने भी तलवारके आघातसे मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया और युद्ध करते-करते ही मुझे मूर्च्छित कर दिया। मृगांक भी उसकी भर्त्सना करके उससे भिड़ गया। माया-युद्धसे (उसको) पराजित करके (यह रत्नशेखर) उस महानुभावको बंदीगृहमें ले गया। यह शत्रु सेनामें विजयका उत्साह दिखाई दे रहा है, और इधर हमारी (सेनाकी) पंक्ति शोभाहीन दिखाई देती है। नायकके बिना योद्धा क्या करें ? तुम्हारे (छावनी के) भीतर युद्ध करते समय, (छावनीके) बाहर रणमें इसप्रकारका वृत्तांत घटित हुआ। इस अवसरके लिए, हे धीर व हितपरायण

३३. क °पडह। ३४. ख पए। ३५. क ङ °इ। ३६. क ङ कापु°। ३७. घ °वत्थहो।

[३] १. ख ग घ दूआलाव°; ख ग °पयट्टु°। २. क घ ङ °सहहिं। ३. ख ग घ °च्छिवि। ४. ख ग घ पडह°। ५. ख ग °यहि। ६. क ङ सण्ण°; ख ग सण्णहिवि। ७. घ °ग्रइं। ८. घ ङ °ट्टइं। ९. क ख ग ङ मइ। १०. घ मुग्ग°। ११. क °घाए। १२. ख ग वच्छि भि°; घ वच्छे छिण्णु। १३. ख ग घ महु। १४. घ °इं। १५. क ङ मियंकहु। १६. क परज्जि°। १७. क ङ लयउ। १८. ख ग सेण्णे; घ सत्ति। १९. घ नाइक्कि। २०. क ग घ ङ °हि। २१. क ख ग ङ पइ। २२. ख ग °तिसाउ; घ °तियाउ। २३. क ङ इय। २४. क ङ °पडिवण्ण°। २५. ङ पइ। २६. क ङ मुअवि।

जाणिज्जइ एवहिं[२७] भुवणसार[२८] सुहडत्तणे अवसरु तउ कुमार।
गुरुआसए[२९] आणिउ[३०] कहवि[३१] कज्जु लइ सहलमणोरह[३२] होहु सज्जु[३२]।

घत्ता—छाइय कसरु[३३] डरु गउ मुडिवि[३४] भरु सो धवल-धुरंधर उद्धरि।
कज्जे विणासियए अम्हइँ[३५] नियए[३६] जं जाणहि[३७] तं बंधव[३८] करि ॥३॥

[४]

मालागाहो—नहकुलिसदलियमायंगतुंग[१]कुंभयलगलियकीलाललित्तमुत्ताहलोह
विप्फुरियकविलकेसरकलावघोलंतकंधरद्देसा।
हुंजंति ताम[२] सीहा जाम[३] न सरहं पलोयंति ॥१॥
नियघरिणिवासहरसंठिएहिं[४] कीरंति भडयणुल्लावा।
ते नवर के वि विरला जे सुहिकज्जं समप्पंति ॥२॥
परकज्जभारधुरधरणगरुय[५]निहसणकिणंकदिढखंधा।
दो तिण्णि जए पुरिसा अहवा एक्को तुमं चेव ॥३॥

हृदयवाले कुमार ! तुम्हें छोड़कर (अब) हम लोगोंके हृदयका आश्रय और कौन है ? लोकके सारभूत (लोकमें श्रेष्ठ) हे कुमार ! अब यह समझिए कि यही तुम्हारे सुभटत्व(को प्रगट करने)का अवसर है। बड़ी आशासे कार्य(प्रयोजन) बतलाकर तुम यहाँ लाये गये हो, तो हे सफल मनोरथ (कुमार) ! अब तैयार हो जाओ। अधम बैल डर लेकर (अर्थात् डरकर) भारको भग्न करके(अर्थात् कार्य नष्ट करके) भाग गया। हे धुरंधर नरवृषभ ! (अब) तुम्हीं उसका उद्धार करो, और कार्य विनष्ट हुआ देखकर, हे बांधव ! जैसा समझो वैसा करो ॥ ३ ॥

[४]

नखरूपी वज्रसे विदीर्ण किये हुए मदमाते हाथियोंके उत्तुंग कुंभस्थलोंसे गलित रुधिर-लिप्त मुक्ताफलसमूहसे विस्फुरायमान कपिल-केशर-कलाप जिनके स्कंधप्रदेशपर लहरता है ऐसे सिंह तभी तक दहाड़ते हैं जबतक कि शरभको नहीं देखते ॥१॥. अपनी-गृहिणीके वासगृहमें बैठे हुए लोगोंके द्वारा बहुत भटजनोचित संभाषण (कथन) किये जाते हैं (अर्थात् पत्नीके सामने सभी लोग अपनी बहादुरीका बड़ा बखान करते रहते हैं) परंतु ऐसे लोग निश्चयसे अति विरले होते हैं जो सुहृद्के कार्यको संपन्न करते हैं ॥२॥ दूसरेके कार्यभारके धुरे अर्थात् जूएको धारण करनेसे उसके गुरुतर घर्षणसे जिनके बलिष्ठ कंधे किणयुक्त (चिन्हांकित) हो गये हैं, ऐसे लोग जगतमें

२७. क क एम्महि; ग °हि। २८. घ भुअण°। २९. क घ °आसइं; क °आसइ। ३०. ख ग घ क °उं। ३१. ग कहिवि। ३२. क क हुंतु अ°; ख घ होतु अ°। ३३. ख ग घ क °र। ३४. ख ग मुडिउ। ३५. क °इ। ३६. घ °इं। ३७. ख ग घ °हिं। ३८. क बंधु।

[४] १. ख ग °तुंगं। २. क क ताव। ३. क क जाव। ४. ख ग नियघरणी°; ग °संठियहिं; क °संठियहि। ५. ख ग °धुरधवलाण°; क घ क °गरुअ°।

ताम तं खेयरालाव कहियंतरं जंबुसामी सुणेऊण चित्तंतरं[6]।
रोसतुलियासिहत्थो तओ बोलए[7] कालकवलम्मि परिकलिउ को बोलए[8]।
कवणु सुरदंतिदंतेहिं हिंदोलए जमतुलाजंके अप्पाणु को तोलए।
को कमंतेण सीहेण सहुँ कोलए[9] विसहलं को वि नियवयणि[10] निप्पीलए।
नाहिपंकयदलं हरिहि[11] को तोडए वसहसिंगं तियक्खस्स को मोडए।
को मियंकं धरेऊण बंदिग्गहे केम निविसं[12] पि जीवेइ महु विग्गहे।
गज्जमाणे[13] कुमारम्मि केरलबलं गयणगइणा[14] भमाडेइ चीरंचलं।
जुज्झभावेण रावेण[15] हक्कारियं घरिय[16] पहुपरिहवेणं खरं-खारियं।
पहरफुट्टंत[17] विहडप्फडं धावियं जत्थ जंबूकुमारो तहिं पावियं[18]।
[19]सग्गिणीनाम छंदो॥

घत्ता—जं सेसिय जियउ[20]मुयउ व थियउ[20] तं नियवि कुमारुद्दीविउ[21]।
विजयासहे नियउ आसासियउ चलु नावइ पच्चुज्जीविउ[22] ॥४॥

[५]

पुणु वि बले चलिए[1] ससिधवलपसरियजसे।

दो ही तीन हैं, अथवा अकेला तू ही है ॥३॥ इसप्रकार खेचरके कहे हुए कथांतर (वृत्तांत)को सुनकर जंबूस्वामी रोषपूर्वक हाथमें तलवार उठाये हुए बोला—कालके ग्रास (मुख)में आनेपर कौन जा सकता है ? देवताओंके हाथी (ऐरावत) के दांतोंसे कौन झूल सकता है ? यमके तुलादंडमें अपनेको कौन तौल सकता है ? आक्रमण करते हुए सिंहके साथ कौन क्रीड़ा कर सकता है ? विषफलको अपने मुंहमें कौन चबा सकता है ? हरिके नाभिकमलको कौन तोड़ सकता है ? त्र्यक्ष (त्रिनेत्र-महादेव)के वृषभके सींगको कौन भग्न कर सकता है ? (और) मृगांकको बंदीगृहमें रखकर मुझसे युद्ध करके निमेष मात्र भी कौन जी सकता है ? कुमारके इसप्रकार गर्जना करने पर गगनगतिने (अपनी) सेनामें चोरांचल (युद्ध सूचक झंडा) घुमाया और स्वामीके पराभवसे बेचैन सेनाके लिए घावपर नमक छिड़कनेके समान तिलमिलाहट उत्पन्न करते हुए युद्धाशयको प्रकट करनेवाले स्वरसे सेनाको ललकारा, तथा प्रहारोंसे विदीर्ण हुआ सारा सैन्य शीघ्र दौड़कर जहाँ जंबूस्वामी थे, वहाँ प्राप्त हुआ। जो सैन्य केवल जीवित (श्वासोच्छ्वास) मात्र शेष हुआ मरे जैसा पड़ा था, वह कुमारको देखकर उद्दीपित (उत्साहित) हो गया, और स्वयंकी विजयाशासे आश्वस्त होकर मानो पुनरुज्जीवित हो उठा ॥ ४ ॥

[५]

चंद्रमाके समान धवल एवं विस्तीर्ण यश वाले सैन्यके पुनः चल पड़नेपर उस संग्राम

६. ख क चित्तं॰। ७. ख, ग बोल्लए। ८. ख डोल्लए; ग घ बुल्लए। ९. क क ली॰; ख ग तो॰। १०. घ निए व॰। ११. क ख क ॰हिं। १२. क क णिवसं; ख ग णेवसं; घ निमिसं। १३. क क ॰माणं। १४. ख ग ॰गयणा। १५. ख ग राएण। १६. क ख ग घ धरिय। १७. घ ॰कुट्टंत। १८. क क आ॰। १९. ख ग में छंद नाम नहीं। २०. क क मुवउट्ठियउ; ख ग मु॰ वि ठि॰; घ मुवउ व थि॰। २१. क क ॰द्दीवियउ। २२. क क ॰ज्जीवियउ।

[५] १. क क ॰य।

समररसभरिय-भडफुरिय-वण-वस-रसे।
करडि-करडयल[2]-परिवडिय[3]-दर-मयजले।
गयणवह-पहय-फरहरिय-धुय-धयवडे[4]।
चलणभरदलण[5]-दमदमिय-रणमहियले[6]।
निविड[7]कडयडिय[8]-भडमउड-उर-सिर-नले।
गुडिए[9] करि-पवरि[10] थिरि चडिउ पहरणभुओ[11]
समरु परियरवि[12] थिउ नवरि[13] जिणवइ सुओ।
नियवि बलु पवलु खयविसम-वइवसनिहो।
वलिउ[14] खयरवइ तउ भिडिउ रणे मणिसहो[15]।
उहयवलमिलणपडिखुहियजलयरबलं[16]।
समय-तडफिडवि[17] झलझलइ जलनिहिजलं।
तुरय-करि-सुहड-रह[18]-फुरियरुइपहरणं।
गिलइ तिहुवणु व कलयलेण[19] पुणरवि रणं।
घत्ता—सुमरियपहुफलइं[20] कियकुलछलइं[21] कलिकालकयंतमरट्टइं[22]।
धुत्तिवरवयवडइं जयलंपडइं[23] पुणु उहयबलइं[23] अब्भिट्टइं ॥५॥

(स्थल)में जहां कि वीर रससे भरे हुए भटोंके फूटे हुए व्रणोंसे वसा एवं रस अर्थात् लोहू बह रहे थे, और जहां कि हाथियोंके गंडस्थलोंसे थोड़ा-थोड़ा मद चू रहा था, एवं आकाश-पथ-(गामी)अर्थात् वायुसे आहत होकर चंचल ध्वजपट फहरा रहे थे, और जहां कि चरणोंके भारसे दलित हुई रणभूमि दम-दमा उठी थी, तथा जहां (घायल) भटोंके आपसमें टकराते हुए मुकुट, सिर व उरस्थल और पैर कड़कड़ा रहे थे, वहां वर्म एवं कवच युक्त श्रेष्ठ हाथीपर चढ़कर, हाथोंमें शस्त्र धारण करके युद्ध(स्थल)का पूरा चक्कर लगाकर जिनमतीका पुत्र (जंबूस्वामी) (एक स्थान पर) खड़ा हो गया। (युद्धके लिए उद्यत) प्रबल सेनाको देखकर, प्रलयंकर रौद्ररूप वैवस्वत(यमराज)के समान भयानक वह खेचरपति रत्नशेखर वापिस लौटा और रणमें भिड़ गया। दोनों सेनाओंके मिलने (भिड़ने)से जलचर समूह क्षुब्ध हो उठा और जलनिधिका जल अपने मर्यादा तटका उल्लंघन करके झलझला उठा। तुरग, हस्ति, सुभट, रथ और चमचमाते हुए कांतिमान शस्त्रोंसे कलकल (कोलाहल) युक्त होता हुआ वह युद्ध पुनः त्रिभुवनको लीलने लगा। प्रभुके फलों अर्थात् कृपापूर्वक किये गये उपकारों-का स्मरण करके अपनी कुल परंपरागत चतुराई (युद्ध कौशल)को प्रकट करते हुए, कलिकाल एवं कृतांतके समान गर्वीले तथा जयलंपट (विजयलिप्सु) वे दोनों सैन्य पुनः भिड़ गये ॥५॥

२. क ख ङ °यर। ३. ख ग पडि°। ४. ख ग घ °चले। ५. क ख ग घ ङ चरण°। ६. घ° घले। ७. ख ग निवड°। ८. ख °पडिय। ९. क ङ °य। १०. ख ग °र। ११. क ङ °भुवो; ग °चुओ। १२. क ङ °यरिवि। १३. घ °र। १४. ख ग च°। १५. क ङ मण°। १६. ख ग घ °घलं। १७. क ङ तडिफिडिवि; घ तडि°। १८. घ रह। १९. क ङ °यलिय। २०. क °इ। २१. ख ग घ ठिय°; घ °छलइ। २२. क ङ °कियंत°। २३. ख ग पुणुहयम°; क °बलइ।

[६]

तओ य संजायं महादंडजुज्झं। जुज्झंतपत्ति कोंतग्ग-खग्ग[1]-वावल्ल-भल्ल-सव्वल-[2]मुसुंढिविणिहम्ममाण अण्णोण्णं[3]। अण्णोण्णदंसणारुट्ठ[4]-निट्ठवियमिट्ठमुण्णासणमिलंतमत्तमायंगं[5]। मायंगदंतसंघट्टनिहसणुट्ठंत-[6]हुयवहफुलिंगपिंगलियसुरवहूविमाणं। सुरवहुविमाणसंछण्ण[7]गयणदूरप्पयंतपडिलग्गकोडिखडक्कियवीरकरवालं। वीरकरवालफालिज्जमाण[8]-कुंजर-तुरंग-सुहडंग-गरुय[9]कल्लोलवाहपज्झरियकीलालं[10]। कीलालवाहिणीवेयपवहावियनिज्जंतकंचाइणी[11]-विसाल[12]-करयलकवालकुट्टलग्ग[13]-धावमाणजालामुहकरालवेयालं। वेयालविरसमुक्कट्टहाससंतट्ठभीस[14]-भज्जंतगयघडाचरणचप्पणोसरिय-[15]सेण्णकोलाहलपूरियदियंतं। दियंतपसरंतासवारतरलतरवारितासणासंत-[16]कायरदंसणुच्छहियवरसुहडं। [17]वरसुहडहत्थपरिभमिरलउडिदंडप्पहारचूरिज्जमाणनरवरकरोडि-[18]कडुकडक्कारसद्दजूरंतकावालियसमूहं। कावालियसमूहकरकत्तियाकप्पणकडक्खियसुरसुंदरीसंरक्खिय-उव्वंतनयणोल्लियसामंतकुमरं। सामंतकुमरपुव्वसंमाणदाणपरिपूरिय-

[६]

तब वहाँ महान् सैन्य-युद्ध हुआ। जूझते हुए पदाति कुंत, खड्ग, वावल्ल (बल्लम ?) भाले, सब्बल, और मुसुंढि नामक शस्त्रोंसे एक दूसरेको मारने लगे। एक दूसरेको देख-देखकर रुष्ट हुए, एवं (शत्रु-पक्षके) महावतोंको मारकर रिक्तहौदेवाले मत्तमातंग परस्पर भिड़ गये। हाथियोंके दांतोंकी टक्करसे उठते हुए अग्निके स्फुलिंगोंसे सुरवधुओंके विमान पिंगल वर्ण हो गये। सुरवधुओंके विमानोंसे आच्छादित गगनमें दूर जाते हुए विमानोंसे नोक टकराकर वीरोंके करवाल खड़खड़ा उठे। वीरोंके करवालसे विदीर्ण किये जाते हुए हाथी, घोड़े और सुभटोंके शरीरसे बड़ा भारी कल्लोल करता हुआ रक्तका झरना बह निकला। रक्तवाहिनीके वेगसे प्रवाहित होकर ले जायी जाती हुई कात्यायनी-देवीके विशाल करतल-स्थित कपाल कोष्ठ(खोपड़ी)से लगकर एक भयानक अग्निमुख वेताल दौड़ पड़ा। वेतालके छोड़े हुए कठोर व उत्कट अट्टहाससे संत्रस्त होकर भागते हुए भयानक हाथियोंके समूहसे पैरोंसे कुचले जानेसे बचते हुए सैन्यके कोलाहलसे दिगंत भर गये। दिगंतमें फैलते हुए अश्ववारोंके चंचल तलवारोंके त्राससे भागते हुए कायरोंको देखनेके लिए श्रेष्ठ सुभट उत्साहित हो उठे। श्रेष्ठ सुभटों के हाथोंमें घूमते हुए लकुटिदंडके प्रहारसे चूर-चूर होते हुए नर-कपालोंसे बड़ा कटुक डक्कार शब्द उत्पन्न होनेसे कापालिकोंका समूह झूरने लगा। और कापालिक समूहके हाथोंकी कैंची द्वारा (अपने केशादि) काटे जानेसे कटाक्षयुक्त सुरसुंदरियों-द्वारा संरक्षित (मृत)सामंतकुमार (मानो स्नेहभरे) नेत्रोंको ऊँचा करके सुरसुंदरियोंकी ओर देखने लगे। सामंतकुमारोंके पूर्व दिये हुए सम्मान व दानसे भरपूर, लटकते हुए केशोंवाले और कछोटेपर हाथ देकर स्वामी-

[६] १. ख ग खग्गि। २. क घ ङ मुसंढि°। ३. घ अन्नोन्नं।/४. क °दंसणारूढ। ५. घ सुन्नासणमि°; क °सत्तमायंगं। ६. क ङ हुअवह°; ख ग हुयवहु°। ७. घ संछन्न°। ८. घ °फाडिक्कमाण। ९. क ङ गरुअ°। १०. घ पसरिय की°। ११. क °कंचाइणी। १२. ख ग वियाल°। १३. ख ग °कवालकुठ°; ङ °कवालपुट्ट°। १४. क घ ङ °भीरु। १५. घ सिन्न°। १६. क ख ग घ ङ कायर°। १७. ख ग वरसुहडसत्थ° १८. क ङ कडक्कडक्कार°; ख ग घ कडुक°।

लंबंतचूलं[19]-[20]परिहच्छकच्छ-[21]पहुपंगणवग्गिरदूरुभडविहडंतभेडसंघायं । भेड-संघायविहडणपरितुट्ठअलद्धसम्माणदाणनिम्माणियभिडंतभिच्चसच्चवियनिसग्ग-चारहडिय[22]-विसेसठक्कुरनिवेसियहियय-सल्लं ।

गाहा—चिक्किणचिक्खिल्लचहुट्टचक्कथक्के[23] भरम्मि रे घणिय ।
अवमाणियं पि धवलं विहडियकसरेसु जा निहसि ॥ १ ॥
कसरेसु कव्वरेसु य[24] पालणपडिलग्गवग्गगहवइणो[25]
अमुणियभरनिव्वाहे[26] धवलो हियए वि वीसरिओ ॥ २ ॥
धवलेण तेण विसमे धुयकंधरडंतकसरमुक्कभरो ।
लीलाए[27] कड्ढिओ[28] तह जह[29] फुट्टइ[30] कुसामिणो हिययं ॥ ३ ॥
अवगण्णियं[31] न मण्णइ[32] पहुणो घणकसरपालणपरस्स ।
जो धरइ धुरं विहुरे नमो नमो तस्स धवलस्स ॥ ४ ॥
कसरेण समं जुप्पंतएण धवलेण जोइयं पासं ।
गरुयभरकड्ढणाए[33] होसइ मे पडिहरो एसो ॥ ५ ॥
कसरेक्कचक्कथक्के[34] भरेण[35] धवलेण[36] झूरियं[37] हियए ।
हा किं न खंडिऊणं जुत्तोहं दोहि मि दिसाहिं[38] ॥ ६ ॥

के प्रांगणमें बड़ी-बड़ी बातें मारनेवाले कायरोंका समूह भाग पड़ा; और कायरसमूहके भागनेसे परितुष्ट हुए, पहले सम्मान व दान प्राप्त नहीं करनेवाले, तथा अपमानित होकर भी डटकर युद्ध करते हुए भृत्योंके द्वारा अपना विशेष नैसर्गिक शौर्य प्रमाणित किया जाने पर उनके ठाकुरोंके हृदयमें (पश्चात्ताप रूपी) शल्य उत्पन्न होने लगा ।

चिक-चिक-चिकने कीचड़में चक्का फंस जानेसे भारसे भरी हुई गाड़ीके रुक जानेपर श्रेष्ठ वृषभका अपमान करके, रे धनिक जबतक तू अधम बैलों पर अनुराग करता है—॥ ॥ (तबतक) अधम और कबरे बैलोंके प्रतिपालनमें लगा हुआ (तुझ जैसे) गृहपतिका (परिचारक)वर्ग श्रेष्ठ वृषभ (धवल) के द्वारा भार निर्वाह करने (की क्षमता) को न जानता हुआ, उसे हृदयसे भी भुला देता है ॥२॥ परंतु आपत्तिके समय अधम बैलके द्वारा चीत्कार करके कंधेको गिराकर भारमुक्त हो जाने पर उसी धवलके द्वारा लीलामात्रमें (क्षणभरमें) इसतरह भार खींच लिया जाता है, जिससे कि पृथ्वीपति (कु-स्वामी) का हृदय खिल उठता है ॥३॥ जो धवल बिलकुल अधम बैलोंको पालनेवाले प्रभुके अपमानको नहीं मानता (अर्थात् अपने पूर्वकृत अपमानको ध्यानमें नहीं रखता, और संकटमें धुराको धारण करता है, उसे पुनः-पुनः नमस्कार ॥४॥ अधम बैलके साथ जोड़े जाते हुए धवलने अपने पार्श्वको देखा, और सोचा कि भारी बोझको खींचनेमें यह अधम बैल वास्तवमें मेरा प्रतिभार (अतिरिक्त बोझ) मात्र होगा ॥५॥ भारसे अधम बैल वाला एक चक्का रुक जाने पर धवल अपने हृदयमें इसप्रकार झूरने लगा—हाय ! मैं ही खंडित करके दोनों दिशाओं (पार्श्वों) में क्यों नहीं जोत दिया गया ? ॥६॥

१९. घ °धूलि । २०. क परिहत्थ°; ख ग पवि° । २१. घ पहुयंगण° । २२. क क °चारहडि । २३. क °थट्टे । २४. क क आ । २५. ख ग °हग्गगहवइणो । २६. क घ क °णिव्वाहो । २७. क घ क °इं । २८. ख ग क कट्टिओ । २९. ख ग जइ; घ जहं । ३०. ख ग फुडइ; क पुट्टइ । ३१. घ °गन्नियं । ३२. ख ग घ मन्नइं । ३३. क क °कट्टणाए । ३४. क क °थक्को । ३५. ख ग घ भरम्मि । ३६. क धवलंमि; क धवलम्मि । ३७. घ जू° । ३८. ख ग घ °ए ।

जेण भरधरणखुरक्खयमग्गो वि समुद्दसंकिमा[39] वहई।
धवलेण समं समसीसियाए कसरो धुवं[40] मरई ॥ ७ ॥
दोहउ—ससहर[41] हरिणट्ठाणे जइ सीहसिलिंबु धरंतु।
तो जीवंतहो[42] तुह मलणु[42] दुक्करु राहु करंतु ॥ ८ ॥
घत्ता—तो तहिं[43] वरवियडु[44] पेक्खिवि नियडु मणिसिहु बालें[45] पचारिउ।
चुक्कउ[46] तहिं[47] जि खणे अत्थाणरणे एवहिं[48] कहिं[49] जाहि[50] अमारिउ ॥६॥

[७]

रे रे रणु मेल्लेवि मइँ[1] समाणु जं नट्ठु[2] लद्धु तं तउ पमाणु।
जं अट्ठसहसपहरणकराहँ माराविय वरविज्जाहराहँ[3]।
पडिगाहिउ संगरु एत्थु[4] एवि निक्खत्तइँ[5] नीयइँ बलइँ[6] बे वि।
नहगइहे[7] दिण्णु उरे खग्गघाउ बंदिग्गहे लइउ मियंकु[8] राउ।
हेवाइउ[9] इय सुहडत्तणेण चारहडि[10] न मण्णमि[11] एत्तडेण।
जइ अत्थि अंगि तउ जुज्झगव्वु तो अच्छउ सेण्णु[12] नियंतु सव्वु।
तुज्झु वि मज्झु वि संगामु होउ[13] अज्जु वि मा मरउ वराउ लोउ।
अणुमण्णेवि[14] बोल्लइ खयरराउ किं बलबलेण इह महु पयाउ।

जिस धवलके द्वारा भार धारण (वहन) करनेके हेतु खुरोंसे आहत मार्गमें भी समुद्र (होने) की शंका धारण की जाती है, वैसे धवलकी स्पर्द्धा करनेसे अधम (गर्रा) बैल निश्चयसे मरता है ॥७॥ रे शशधर ! यदि तू हरिणके स्थानमें सिंहशिशुको धारण कर लेता तो उस (सिंह-शावक) के जीते हुए राहुके लिए तेरा मर्दन करना (ग्रस लेना) दुष्कर होता ॥८॥

तब वहीं पासमें विकट(विशाल)वक्षस्थल वाले मणिशेखरको देखकर बालकने व्यंग्य किया—वहाँ, उससमय सभास्थलके युद्धमें तू चूक गया (बच गया), अब बिना मारा हुआ (अर्थात् मृत्युसे बचकर) कहाँ जायगा ? ॥६॥

[७]

अरे रे ! तू जो मेरे साथ युद्ध छोड़कर भाग गया, वही तो तेरा(वीरताका)प्रमाण मिल गया। तूने अष्टसहस्र शस्त्रधारी श्रेष्ठ विद्याधरोंको तो मरवा डाला, और यहाँ आकर दूसरोंको लड़ाकर दोनों सेनाओंको क्षत्रियहीनताको प्राप्त करा दिया; गगनगतिके उरस्थल पर खड्गसे प्रहार किया, और मृगांक राजाको बंदीगृहमें ले गया; इस बहादुरीसे तू बड़ा गर्वित है। पर इतनेसे मैं तेरी शूरता नहीं मानता ! यदि तेरे शरीरमें युद्धका गर्व है तो सारी सेना देखती बैठी रहे, तेरा-मेरा संग्राम हो, और बेचारे ये साधारण(सैनिक)लोग अब(व्यर्थ)न मरें। इसका अनुमोदन करके खेचरराज बोला—सैन्य शक्तिसे क्या ? और बहुत प्रलाप करनेसे

---

३९. ख ग °संकमा°। ४०. क ङ धुअं। ४१. क ङ °हरु। ४२. क ङ मलण तहु; ख तहो म°; ग तुहु म°; घ तु° मलण। ४३. घ तहि। ४४. ख ग उवरवियडु; ङ रउवि°। ४५. क ङ बाले; ख ग बालि। ४६. ख ग ङ चुक्कउ। ४७. ङ तहि। ४८. क °हि। ४९. ख ग कहि। ५०. ख ग घ जाहि।

[७] १. क ङ मइ। २. क लट्ठु; ङ णट्ठु। ३. ख घ °हराह। ४. क घ एत्थ। ५. ख ङ °त्तइ; ग नक्खत्तइ। ६. ख ग °इ। ७. क ङ °इहि। ८. ख ग °क। ९. क ङ देवा°। १०. क वार°। ११. घ मन्नमि। १२. ख ग सव्व; घ सिन्नु। १३. ख ग होइ। १४. घ °मन्निवि।

किं बलबलेण मणुसइय मज्झु   किं बलबलेण साहमि असज्झु[15] ।
मइँ कुविए[16] समरे देव वि असार   तुहुँ[17] कवणु गहणु पुणु किर कुमार ।
घत्ता—तो पेसणकारहिं[18] कड्ढियधारहिं[18] अण्णोण्णवइरविणिबद्धइँ[19] ।
दुक्खनिवारियइँ[20] ऊसारियइँ[21] उहयबलइँ[22] सन्नद्धइँ[23] ॥ ७ ॥

[८]

सरवंतइँ[1] तोणहिँ[2] धारियाइँ   [3]धणुचडियगुणइँ[3] उत्तारियाइँ ।
पडियारहिं[4] खग्गइँ[5] पोइयाइँ[6]   सेल्लइँ[7] [8]सेल्लहरि हिरोवियाइँ[8] ।
तिक्खंकुससाहिय वरगइंद[9]   दिढवग्गोसारिय तुरयविंद ।
किउ कलयलु तूरइँ आहयाइँ   महि-गयणइँ णं फुट्टिवि गयाइँ ।
दूरट्ठियाइँ जोयहिं घणाइँ   लिहियाइँ[10] व वेण्णि वि[11] साहणाइँ ।
उत्थरिय वे वि पेल्लिय गइंद[12]   बिहिं[13] गिरिहिं थक्क णं वे[14] मइंद ।
टंकारिउ धणु खयरें झडत्ति   गिरिसिंगि पडिय णं तडि तडत्ति ।
अप्फालिउ बालेणावि[15] चाउ   बहिरंतु भुवणु[16] पसरिउ[17] निनाउ[18] ।
मंभरियमहणपीडायरेण   आरडिउ नाइ[19] रयणायरेण ।

क्या ? यहाँ मेरा ऐसा प्रताप है कि मैं मनुष्यगति(लोक)में असाध्य साधन कर सकता हूँ । मेरे कुपित होनेपर युद्धमें देव भी तुच्छ हो जाते हैं, फिर तेरी तो गिनती ही क्या ? तू तो अभी कुमार ही है । (इसके)अनंतर आज्ञाकारी प्रतीहारोंके द्वारा परस्पर वैरबद्ध दोनों संनद्ध सेनाओंको बड़ी कठिनाईसे युद्धसे निवारण करके दूर-दूर हटा दिया गया ॥७॥

[८]

बाणोंको तूणीरोंमें रख दिया गया, धनुषोंपर चढ़े हुए गुण(प्रत्यंचा)उतार दिये गये, खड्गोंको म्यानोंमें पिरो दिया गया, और कुंत(बर्छे)भालाघरोंमें रख दिये गये। तीक्ष्ण अंकुशोंसे श्रेष्ठ गजेंद्र साधे गये, और सुदृढ़ लगामसे(खींचकर)घोड़े हटा दिये गये । (इन सबसे) वहाँ ऐसा कोलाहल किया गया और तूर बजाये गये, मानो पृथ्वी और आकाश फूट गये हों । दूरपर स्थित दोनों घनी(विशाल)सेनाएँ चित्रलिखित सरीखी(युद्ध)देखने लगीं । दोनों ही (जंबूकुमार एवं रत्नशेखर) श्रेष्ठ हाथियोंपर चढ़कर, उन्हें प्रेरित करते हुए ऐसे शोभायमान हुए, मानो दो पर्वतोंपर दो सिंह स्थित हों । खेचरने झट धनुषको टंकारा, मानो गिरिशृंगपर तड़से बिजली गिर पड़ी हो । बालकने भी चापको हाथसे आस्फालित किया, उससे सारे लोकको बहरा करता हुआ (ऐसा) निनाद प्रसृत हुआ, मानो अपने मंथनका

१५. क ङ °ज्जु । १६. क ङ कुइय । १७. क ङ तुहु; घ तुह । १८. ख ग °रहि । १९. ख ग °वइरविणि°; घ अन्नोन्न° । २०. क ख ग दुक्खु निवा°; ङ °निवारियइ । २१. ङ उंसारियइ । २२. ख ग °सेण्णइं । २३. क ख ग ङ सण्ण° ।

[८] १. ख ग °वत्तहि । २. प्रतियोंमें °इं । ३. क ङ °चडियं गुण; घ °चडियइं गुण । ४. क ङ °रहि; ख ग °रह । ५. ख ग °इ । ६. ङ °याइ । ७. क °हि; घ °इ; ङ °हिं । ८. ख ग सेल्लहर°; घ °हरहो रोवियाइ । ९. क ङ गयवरिंद । १०. ख ग घ °याइ । ११. ङ मि । १२. ङ गयंद । १३. क घ ङ विहि १४. ख ग दो । १५. ख ग बालेंणावि । १६. ख ग घ भुयणु । १७. घ °रिय । १८. क ख घ ङ णिणाउ । १९. घ णाइं ।

तं[20] सद्दं भडहँ[21] पडंति पाण लंबंति ढलक्किय सुरविमाण।
कंपंति दवक्किय सूरचंद उट्टंति झलक्किय जलहिमंद।
तुट्टंति कडक्किय[22] सिहरिसिहर फुट्टंति धवलहर जाय विहुर[23]।
घत्ता—गाढवि करेण[24] धणु[25] वंकेवि तणु खयरें सपत्त[26] गुणे[27] सज्जिय।
किविणेण व[28] जिएण अविवेइएण[29] रणे मग्गण वीस विसज्जिय॥ ८॥

[९]

तं नियवि कुमारें वाणसंडु वीसहिं[1] मि सरहिं[2] किउ खंड[3]-खंडु।
वाणावलि खयरें पुणु वि मुक्क असइ व[4] सप्पुरिसहो नियड[4] ढुक्क।
लोहमय[5]-तिक्ख-विंधणसहाव धम्मच्चुय[6]-परमारणसहाव।
नारायहिं[7] वालें नहे पइण्ण[8] गरुडेण सप्पपंति व्व छिण्ण[8]।
गुणे[9] संधेवि पेल्लिउ[10] दिढकरेण अग्गेयवाणु विज्जाहरेण।
धाविउ[11] डहंतु[12] वेण्णि वि वलाइँ[13] धूमाउलजालहिँ सामलाइँ।

स्मरण करनेसे पीड़ित हुए रत्नाकरने ही करुण चीत्कार किया हो। उस शब्दसे भटोंके प्राण गिरने(छूटने)लगे, और देवताओंके विमान (स्वर्गसे)ढुलककर (आकाशमें) लटकने लगे। सूर्य व चंद्र द्रुतगतिसे कांपने लगे, और मंद(शांत)जलधि झुलसकर ऊपर उठने लगे। पर्वतोंके शिखर कड़ककर टूटने लगे, और प्रासाद विघटित (विश्लिष्ट)होकर फूटने लगे। जिसप्रकार किसी अविवेकी कृपण जीवके द्वारा धनको हाथसे खूब दृढ़तासे पकड़कर, गुणोंसे सज्जित अर्थात् खूब गुणवान् ऐसे बीसियों भिक्षार्थियोंको भी मुंह बांका करके(बिना कुछ दिये, अपने घरसे)बिदा कर दिया जाता है, उसीप्रकार उस अविवेकी खेचरने अपने हाथसे धनुषको दृढ़तासे पकड़कर व शरीरको थोड़ा झुकाकर, पत्रयुक्त बाणोंको प्रत्यंचापर चढ़ाकर रणमें बीस बाण छोड़े ॥८॥

[९]

उस बाणसमूहको देखकर कुमारने बीस ही बाणोंसे उसे खंड-खंड कर दिया। खेचरने पुन: बाणावलि छोड़ी, वह जंबूस्वामीके निकट उसीप्रकार गयी, जिसप्रकार कोई असती (कुलटा)स्त्री किसी सत्पुरुषके पास जाये। जिसप्रकार किसी लोभमय(लोभी) और तीक्ष्णतासे (तीखे वचनोंके द्वारा दूसरोंको) बींधनेके स्वभाववाले तथा धर्मसे च्युत व्यक्तिका दूसरोंको मारना स्वभाव ही होता है, उसीप्रकार उस लौहमय, तीक्ष्णतासे शरीरको बींधनेके स्वभाववाली, धनुषसे च्युत तथा शत्रुको मारनेके स्वभाववाली उस बाणावलिको बालकने आकाशमें छोड़े हुए अपने बाणोंसे उसीप्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जिसप्रकार गरुड़ सर्प-पंक्तिको कर देता है। तदनंतर प्रत्यंचापर संधान करके समर्थ भुजावाले उस विद्याधरने आग्नेय बाण छोड़ा। वह बाण अपनी धूम्राकुल-श्यामल ज्वालाओंसे दोनों सेनाओंको

२०. ख तं। २१. ख ग °ह। २२. क ङ °क्किय। २३. क ख ग ङ विहुर। २४. क ङ °णु। २५. ङ धणु। २६. ख ग घ ङ मुपत्त। २७. क ङ गुण। २८. क ग वि। २९. ख ग अविवेएण।

[९] १. क ख ग ङ °हु; घ °हं। २. ख ग °हि। ३. घ ङ खंडु। ४. क ङ °सहे णि°; ख ग सप्पुरिस न नि°। ५. ग °मउ। ६. क धम्मह चुअ; ख धम्महं चु°; ग धम्महं चु°। ७. क °यहि। ८. घ °न्न। ९. क घ ङ गुण। १०. ख ग घ भेल्लिवि। ११. क ङ धाइउ। १२. क द°। १३. ग °इ।

तहिं काले गयणगइणा सुहाइं दिण्णइं[१४] बालहो दिव्वाउहाइं ।
तो मुक्कु[१५] कुमारें वारुणत्थु तहो सरहो पहावें मेहसत्थु ।
उन्नइउ[१६] गयणे पच्छइयसूरु तडयडियविज्जु[१७] नच्चियमऊरु[१८] ।
वरिसणहँ[१९] लग्गु[२०] गुरुधारजालु आणंदियदद्दुर-रवबमालु ।
नउ थक्कु[२१] ताम बहुसलिलवहणु गउ खयहो[२२]असेसु वि[२२] जाम डहणु ।
बोल्लाविउ पुणु बालें विवक्खु जइ सत्ति सरासणु रक्खु रक्खु ।
घत्ता—अरुहयाससुएण करिकरभुएण[२३] तोमरघाएण निवाडिउ[२४] ।
अरिहे[२५] धरंताहें[२६] पहरंताहें[२७] आरोह-चिंधु[२८]-धणु पाडिउ ॥ ९ ॥

[१०]

तो विज्जाहरु [१]दिढदट्ठाहरु ।
खंडियकर[२]-धणु जोइय-पहरणु ।
चक्कु धरेविणु थाणु रएविणु[३] ।
मेल्लइ जामहिं बालें तामहिं ।
कण्णियबाणें[४] हय-रिउपाणें ।
मज्झए[५] खंडिउ अद्धु विहंडिउ ।
अद्धउ करयले भामवि[६] नहयले ।

जलाता हुआ दौड़ा । उसी समय गगनगतिने बालकको शुभ व दिव्यशस्त्र प्रदान किये । तब कुमारने वारुणास्त्र छोड़ा । उस शरके प्रभावसे एक बड़ा मेघसार्थ(समूह) आकाशमें उन्नत हुआ, जिसने सूर्यको आच्छादित कर लिया, विद्युत् कड़कने लगा, और मयूर नाचने लगा । बहुत भारी जलधारासमूह बरसने लगा और, आनंदित दर्दुरोंका(टर-टर)रव व्याप्त हो गया । प्रचुर पानीको वहन करनेवाला वह मेघसमूह(वर्षा करनेसे) तबतक नहीं रुका, जबतक कि अग्नि पूर्णरूपसे शांत नहीं हो गया । तब बालकने पुनः शत्रुको आह्वान किया—यदि शक्ति है तो अपने शरासन(धनुष)को बचाओ ! अरहदासके उस पुत्रने, जो हाथीके सूंड़के समान भुजाओंवाला था, शत्रुके पकड़ते-पकड़ते और (उनकी रक्षाके लिए जंबूस्वामीपर) प्रहार करते-करते भी, उसके महावत, (ध्वज-)चिह्न एवं धनुषको तोमरके आघातसे भूमिपर गिरा दिया ॥९॥

[१०]

तब विद्याधरने दृढ़तासे अधरोंको काटकर, अपने हाथके टूटे हुए धनुपदंड और शस्त्रको देखकर, चक्र हाथमें लेकर, आसन जमाकर (अर्थात् निशाना साधकर) उसे जैसे ही छोड़ा, वैसे ही बालकने शत्रुका प्राणहरण करनेवाले कणिका नामक बाणसे चक्रको बीचसे खंडित कर आधेको तो टुकड़े-टुकड़े कर दिया, और आधेको हथेलीपर रख, नभस्तलमें घुमाकर

१४. ख ग °इ। १५. ख मुक्क। १६. क ङ उण्ण°,ख ग °उणण्यउ । १७. क ङ °तडिय°; ग तडियडिय°। १८. ख ग नच्चिर° । १९. ख ङ °णह । २०. ख ग लग्ग । २१. क ङ थक्क । २२. क ङ असेसहो । २३. क ङ °भुवेण । २४. क ङ °रिउ । २५. क ख ङ °हिं । २६. क ङ °तहो; घ °ताहो । २७. क ङ पर पहरंतहो; ग °ताहें; घ पहरंताहो । २८. क ङ चिंध ।

[१०] १. ख दढ° । २. ख °पर । ३. क ङ °प्पिणु । ४. घ कन्निय° । ५. क ङ मज्झुए; घ °इं । ६. क घ ङ भामिवि ।

मुक्कु कुमारहो[7] वइरि-निवारहो।
मंड धरंतहो पहरु[8] करंतहो।
निवडिउ करिवरे वज्जु[9] व गिरिवरे।
घाय-समाहउ घुलइ महागउ।
विरसु रडंतउ नियवि[10] पडंतउ।
पेल्लिवि[11] गयवरु कोंताउहकरु।
खयरुद्धाविउ[12] वेएं पाविउ।
कोंतुक्खेविउ बालहु[13] डेविउ।
ताम कुमारें विक्कमसारें।
धरिउ समत्थें दाहिणहत्थें।
जं अच्छोडिउ अहिमुहुँ पाडिउ।
कोंत-विलग्गउ थाणहो भग्गउ।
विहडप्फडु[14] अरि करिखंधोवरि[15]।
कड्ढिउ[16] विसहइ थाहरु[17] न लहइ।

घत्ता—कुमरें कमु रयवि नियकरि चयवि अरिकुंभिकुंभे[18] उड्डेविणु।
हरिणा नहखइउ हरिणु[19] व लइउ[20] रिउ[21] पहरण-रणु छड्डेविणु ॥१०॥

[११]

धरेवि मंड भुअथामगरिल्लें बद्धउ चप्पेवि[1] खयरु वरिल्लें[2]।
उच्चायवि[3] गयसारिहे[4] घल्लिउ छोडेवि बंध मियंकु पमेल्लिउ।

छोड़ दिया। कुमारके द्वारा वैरीका निवारण करनेके लिए अत्यंत बलपूर्वक प्रहार करनेपर वह चक्र (शत्रुके)हाथीपर ऐसा गिरा, जैसे पर्वतपर वज्र। प्रहारसे आहत होकर वह महागज चक्कर खाने लगा। दारुण चीत्कार करके गिरते हुए देखकर, उस हाथीको-(अंकुश-से) प्रेरित कर, कोंत नामक आयुध हाथमें लेकर खेचर दौड़ा, और वेगसे बालकके पास पहुँचा। विद्याधरने कोंत फेंका, वह बालकको लांघता हुआ चला गया। तब विक्रममें श्रेष्ठ उस कुमारने अपने समर्थ (बलिष्ठ) दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया, और (एकाएक) छोड़कर उसे अपने सामने पटक दिया। भालेसहित वह विद्याधर अपने स्थानसे भग्न(भ्रष्ट) हो गया। भयसे विह्वल शत्रु हाथीके कंधोंपर खींचा हुआ ऐसा लगता था, मानो उसे (अन्यत्र) कहीं (शरण-) स्थान नहीं मिलता। तब कुमारने कूदकर, अपने हाथीको छोड़कर, शत्रुके हाथीके कंधेपर उड़-कर (छलांग लगाकर), शस्त्र-युद्ध छोड़कर, सिंहके नखोंसे खचित (पंजोंमें आये हुए) हरिणके समान शत्रुको पकड़ लिया ॥१०॥

[११]

अत्यंत बलपूर्वक महान् भुजबलशाली उस कुमारने खेचरको चांपकर (दबाकर) वस्त्रसे बांध लिया, और उचकाकर (अपने) हाथीके होदेमें डाल दिया। मृगांकके बंधन छुड़ाकर

७. घ कुमारो। ८. ख °र। ९. ख वज्ज; घ विज्जु। १०. क °डि। ११. ख ग घ °य। १२. ख ग °विव; घ °द्धाइउ। १३. ख घ °हो; ग °ह। १४. क °प्फड। १५. ख ग °कंधो°। १६. क ङ कट्टिउ। १७. क ङ ठा°। १८. क ङ °कुंभ। १९. क °ण। २०. क ङ लयउ। २१. क ङ पहरणु छड्डे°; घ °छंड।

[११] १. क ङ चप्परि। २. °ल्ले। ३. ख ग उद्धा°; घ °इवि। ४. ख घ °रिहि; ग °रिंहि।

तं पेक्खेवि किय-नियड-विमाणहिं[५] मेल्लिय कुसुमविट्ठि गिव्वाणहिं।
जय-जय-सद्दु कुमारहो घोसिउ नच्चइ नारउ[६] नहे परितोसिउ[७]।
गयणगइहे[८] आणंदु पवड्ढिउ मिलियउ केरलसेण्णु[९] रसड्ढिउ।
तूरइँ हयइँ गहिरु गाइज्जइ वंदिहुँ[१०] वत्थु कणय-धणु दिज्जइ।
भग्ग-मडप्फरु[११] हुउ खेयरजणु हेट्ठामुहु अवलंबिय-पहरणु।
गयणगइए[१२] तहिँ[१३] काले नवेविणु[१४] सरह-सुगाढालिंगणु देविणु।
वइयरु सव्वु[१५] मियंकहो सीसइ[१६] जीविउ तुम्ह एहु जो दीसइ।
मइँ[१७] कहियए[१८] वित्तंतु निएसिउ[१९] अज्जु जि सेणिएण संपेसिउ।
पुरि न पइट्ठु तुहुँ[२०] मि[२१] नउ दिट्ठउ दूउ होवि[२२] रिउसहहि[२३] पइट्ठउ।
तहिँ हुए[२४] समरे सपहरण[२५] धाइय अट्ठसहस खयरहँ[२६] विणिवाइय।
अब्भंतरि रिउसेण्णु[२७] हणंतहो तुह रणु हुउ एयहो[२८] अमुणंतहो।
एमहिँ[२९] पइँ[३०] जि दिट्ठु जुज्झंतउ एहु[३१] सो वरकुमारु खयरंतउ।
घत्ता—सुणिवि पसन्नमइ[३२] केरलनिवइ कह पुणु वि पुणु वि वद्धारइ।
पयडियबहुपणउ[३३] जिणवइतणउ[३४] नियपुरिहि[३५] मज्झे पइसारइ[३६] ॥११॥

उसे मुक्त किया। ऐसा देखकर अपने विमानोंको निकट करके देवोंने पुष्पवृष्टि की और कुमारके जय-जयकार शब्दका घोष किया। परितुष्ट हुए नारद आकाशमें नाचने लगे। गगनगतिको अत्यंत आनंद बढ़ा, और केरल सैन्य स्नेह व प्रीतिपूर्वक मिला। (विजय) तूर बजाये गये, गंभीर गान किया जाने लगा, और वंदियोंको वस्त्र, धान्य व धन दिया जाने लगा। खेचरजन (रत्नशेखरके सैनिक) भग्नमान हो, शस्त्रोंका अवलंबन लेकर अधोमुख होकर बैठ रहे। तब गगनगतिने प्रणाम करके और उत्कंठा व आवेगपूर्वक गाढ़ आलिंगन करके मृगांकको सब वृत्तांत कहा—तुम्हें जीवन देनेवाला यह जो (कुमार) दिखाई देता है, मेरे कहे वृत्तांतको निर्दिष्ट करके श्रेणिकने आज ही इसे यहाँ भेजा है। यह नगरमें भी प्रविष्ट नहीं हुआ, और न तेरे द्वारा देखा ही गया। दूत होकर शत्रुकी सभामें प्रविष्ट हो गया। वहाँ हुए युद्धमें आठ हजार खेचर आक्रमणके लिए शस्त्रोंसहित दौड़े, और मारे गये। भीतर रिपुसैन्यको मारते हुए, इसके नहीं जानते हुए ही यहां तुम्हारा युद्ध हुआ। अभी तुमने जिसे युद्ध करते देखा, यह वही, खेचरोंके लिए कालस्वरूप श्रेष्ठ कुमार है। (यह सब) सुनकर मनमें प्रसन्न होकर केरल नृप कैसे-कैसे पुनः-पुनः बधाई देने लगा, और बहुत प्रणय प्रगट करके जिनमतिके पुत्रको अपनी पुरीके मध्य प्रवेश कराया ॥११॥

---

५. ख ग °णहें। ६. ब मुरयणु। ७. क क °ओसिउ। ८. क घ क °गइहिं; °गयहे। ९. घ °सेन्नु। १०. प्रतियोंमें °हु। ११. क क °प्परु। १२. क क °गइय। १३. क क तहि। १४. क घ क °प्पिणु। १५. क सव्व। १६. क °इं। १७. क क मइ। १८. ख ग °यइ; घ °यइं। १९. ख ग घ निवे°। २०. क क तुहु। २१. क घ क वि। २२. क ख ग क होइ। २३. ग घ °हिं। २४. क घ क हुइ। २५. क क सुपह°। २६. क खयरह; घ खयरइं। २७. घ °सिन्नु। २८. क क एहु। २९. क क °हिं; घ एवहें। ३०. क क पइ। ३१. क क सु। ३२. क ख ग क पसण्ण°। ३३. घ क °पणउं। ३४. क घ क °तणउं। ३५. क क °पुरिहिं; ख ग °पुरेहिं। ३६. क °सारइं।

[१२]

मणिमोत्तियमंडणजणियमोह[1] दरसाविय[2] पट्टणे हट्टसोह।
घर घरे कप्पूरामोयभिण्णु[3] सिरिखंडबहलरसछडउ दिण्णु[3]।
रंगावलिविहुमचुण्णएहिँ[4] पूरिउ चउक्कु[5] मणिवण्णएहिँ[6]।
बज्झंति[7] रयणमालाघणाइँ[8] सुरतरुनवकिसलयतोरणाइँ[9]।
सियपुण्णकलसु[10] फलपत्तरिद्धु[11] दहि-दुव्व-कुसुम-अक्खयसमिद्धु[12]।
दीसइ कुमारु पीणत्थणीहिँ साहरणहिँ नयरनियंबिणीहिँ।
हले हले पर[13] मण्णमि[14] चंदमुहिय धण्णिय[15] विलासवइ रायदुहिय।
जा सरणागय[16]-सासणसमत्थे लग्गेसइ सेणियरायहत्थे।
वरइत्तहो बलि किज्जमि[17] सुधीरु जसु घरि एरिसु एक्कलवीरु।
उच्छाहेँ इय राउले[18] पइट्ठ दिण्णासणेसु[19] सव्व वि[19] वइट्ठ।
तो जंबुकुमारेँ कलहमूलु मेल्लेवि सम्माणिउ[20] रयणचूलु।
अहो खेयरवइ को इत्थ[21] गव्वु जं जुज्झिउ तं खंतव्वु सव्वु।
खत्तियहो परम एक्कु जि सुकम्मु जं समरे न भज्जइ एहु धम्मु[22]।
लज्जिज्जइ अवसारेण लोइ विजयाजउ दइयायत्तु[23] होइ।

[१२]

पत्तनमें मणिमौक्तिकोंकी सजावटसे उत्पन्न किरणोंसे हाट-शोभा दिखायी गयी। घर-घरमें कर्पूरकी आमोद प्रस्फुरित हुई, और श्रीखंडके घने रससे छटाएँ दी गयीं। विद्रुमके चूर्ण तथा मणिवर्णोंसे चौक पूरकर रंगोली बनायी गयी। प्रचुर रत्नमालाओं और कल्पवृक्षोंके नये किसलयोंके तोरण बांधे गये। धवल व पूर्ण कलश जो फलों व पत्रोंसे ऋद्धिसंपन्न, एवं दधि, दूर्वा, पुष्पों और अक्षतोंसे समृद्ध थे, उन्हें लिये हुए उन्नत स्तनोंवाली तथा आभरणयुक्त नगरकी सुंदरियोंने कुमारको देखा (स्वागत किया)। (किसीने अपनी सखीसे कहा)—सखी ! हे सखी ! मैं मानती हूँ कि चंद्रमाके समान मुखवाली राजकन्या विलासवती धन्य है, जो शरणागतके लिए शासन (अर्थात् शरण व निर्वाहसाधन आदि सब कुछ) देनेमें समर्थ श्रेणिक राजाका पाणिग्रहण करेगी। ऐसे वरके लिए बलिहारी है, जिसके घरमें ऐसा धीर-साहसी अद्वितीय वीर पुरुष (जंबूस्वामी) विद्यमान है। इसप्रकार उत्साहपूर्वक सब राजकुलमें प्रविष्ट हुए, और दिये हुए आसनोंपर बैठे। तब जंबूकुमारने कलहके कारणभूत रत्नचूलको (बंदीगृहसे) छोड़कर, उसका सम्मान किया, (और कहा)—अहो खेचरपति ! यहाँ (इस संसारमें) गर्व किस बातका ? जो आपके साथ युद्ध किया उस सबको क्षमा करें। क्षत्रियका एक ही परम सुकर्म यह है कि युद्धमें भी अपने इस (क्षात्र)धर्मको नष्ट न होने दे, क्योंकि पीछे हटनेसे लोकमें लज्जित होना पड़ता है; विजय और अजय(पराजय) तो दैवाधीन होती है।

[१२] १. क ख ग क °सोह। २. क घ क दरि°। ३. ब °भु। ४. ब °चुन्न°। ५. क °क्क। ६. घ मणिवन्न°। ७. क क °त। ८. घ °घराइं। ९. ग °किसलइ°। १०. क क °कलस। ११. क °रिद्ध। १२. क क °समिद्ध। १३. क यर। १४. घ मन्नमि। १५. घ धन्निय। १६. क क °गह। १७. क घ °उ। १८. क क रावलि। १९. क क सव्वइं। २०. घ क °उं। २१. घ इत्थु। २२. घ धंमु। २३. क ग °पत्तु; घ °वत्तु।

लइ जाहि सपरियणु करहि रज्जु रयणसिहु भणइ[24] सहगमणु[25] सज्जु।
सहुँ[26] पइँ[27] जि[28] जसुज्जल जामि ताम मगहाहिउ नियमि[29] कुमार जाम।
घत्ता—सज्जणजणियरस[30] कइवयदिवस[31] बोलेविणु सुहि-साहारें।
वरविमाणट्ठिएण उक्कंठिएण गमु सज्जिउ जंबुकुमारें ॥१२॥

[१३]

विज्जाहररयणसिहसमाणइँ[1] चलियइँ पंचसयाइँ विमाणइँ।
चलिउ[2] मियंकु सभज्ज[3]-सकण्णउँ[4] गयणगइ वि चलियउ[5] माणुण्णउँ[6]।
सयल वि नहि सविमाण पधाइय नम्मय-कुरलसिहरि[7] संपाइय।
खंधावारु नियवि सुपमाणइँ लंबियाइँ अत्थाणे विमाणइँ।
उत्तरेवि जयकारिउ राणउँ[8] मउडबद्धनरनाहपहाणउँ[8]।
जंबूसामि नियवि मगहेसें आलिंगिउ भुयहिँ संतोसें[9]।
सिरु[10] चुंबेवि जंघहिँ[11] वइसारिउ[12] मुहु[13] जोयंतें साहुक्कारिउ।
सव्वु वि गयणगइए[14] जं चाहिउ रणवित्तंतु नरिंदहो साहिउ।
एहु मियंकु देव उवलक्खहि[15] कण्णारयणु[16] एउ तं लक्खहि[17]।
एहु सो विज्जाहरवइ आयउ[18] नामें रयणचूलु विक्खायउ।
ताम नराहिवेण परियाणिय[19] कयसंभासण पुणु सम्माणिय।

लीजिए, अपने परिजनोंसहित जाइए और राज्य कीजिए! इसपर साथमें चलनेको प्रस्तुत रत्नशेखर कहने लगा—हे धवल-यशस्वी कुमार! मैं भी तुम्हारे साथ ही जाऊँगा और मगधराज श्रेणिकके दर्शन करूँगा। सज्जनोंके हृदयमें प्रेमरस उत्पन्न कर और कतिपय दिवस कृतज्ञ सुहृत्के साथ व्यतीत कर, सुंदर विमानमें बैठकर, जंबूकुमार गमनके लिए उद्यत हुआ ॥१२॥

[१३]

विद्याधर रत्नशेखरके साथ पांच सौ विमान चले। मृगांक अपनी भार्या व कन्या सहित चला। गगनगति भी उन्नत-मान होकर चला। सभी विमानोंसहित आकाशमें दौड़ने लगे और नर्मदाके निकट कुरल पर्वतपर आये। वहाँ सुप्रमाण स्कंधावार देखकर, सभास्थलमें विमान लटकाये गये। (सबने) उतरकर मुकुटबद्ध-राजाओंके प्रधान राजा (श्रेणिक)का जय-जयकार किया। जंबूस्वामीको देखकर मगधेशने संतोषपूर्वक भुजाओंसे आलिंगन किया, शिर चूमकर अपनी जांघोंपर (गोदीमें) बैठाया, और उसका मुख देखते हुए साधुवाद दिया। गगनगतिने भी जैसा उसने चाहा, वैसा युद्धका समस्त वृत्तांत राजाको कहा—हे देव! इन मृगांकको देखिए, और यह वह कन्यारत्न है, इसे भी देखिए! यह वह विद्याधरपति आया है, जो रत्नशेखर नामसे विख्यात है। तब नराधिपने सबको जानकर संभाषण करके,

२४. घ क °इं। २५. ख ग घ °गमण। २६. क ग सहु। २७. ख ग पइ। २८. घ मि। २९. क क °वि। ३०. क क °रसा। ३१. क क कयवयदिवसा।

[१३] १. ख ग घ °समाणहं। २. क क °य। ३. ख ग घ °ज्जु। ४. घ °ण्णउ। ५. क ख ग क चलिउ। ६. क °ण्णउ। ७. क क कुरल°। ८. क °णउ। ९. प्रतियोंमें °सि। १०. ख ग सिरि। ११. क क °हि। १२. ख ग °रिउं। १३. घ मुहुं। १४. घ °गइइ। १५. क ख ग घ °क्खहिं। १६. घ कण्णा°। १७. क ख ग लक्खहिं। १८. क क आइउ। १९. घ °णिउं।

सुहमुहुत्ते जणनयणाणंदणि परिणिय निवेण मियंकहो नंदणि[२०] ।
खयर-मियंक विरोहविवज्जिय बेण्णि वि किंकर करिवि विसज्जिय ।
पेसिउ गयणगइ वि सत्थाणउँ[२१] अप्पणु[२२] नरवइ देवि[२३] पयाणउँ[२१] ।
नियपुरि पत्तउ जाम पईसइ उववणे ताम महारिसि दीसइ ।
नाम सुहम्मसामि विहरंतउ पंचहिँ[२४] सीससयहिँ[२५] सहुँ पत्तउ[२५] ।
पविरलकयलोएण महीसें वंदिउ भत्तिए[२६] पणविय सीसें ।
घत्ता—निवइ-नियड-चरहिँ संथुउ नरहिँ तउ[२७] जंबुकुमारें उत्तमु[२८] ।
हयतमु[२९] तणु चरमु गणहरु[३०] परमु सिरि-वीरजिणंदहो[३१] पंचमु ॥१३॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए रयणसिहसंगामो नाम[३२] सत्तमो संधी समत्तो[३२] ॥ संधि-७ ॥

फिर संमान किया। शुभमूहूर्तमें सब लोगोंके नेत्रोंको आनंद देनेवाली मृगांककी पुत्रीको राजाने विवाह लिया। परस्पर शत्रुभावरहित विद्याधर(रत्नचूल) और मृगांक राजा, इन दोनोंको किंकर(सेवक)बनाकर विसर्जित(विदा) कर दिया। गगनगति भी स्वस्थानको भेज दिया गया, और स्वयं नरपति प्रयाण करके, अपने नगरको पहुंचकर, जब (भीतर)प्रवेश करने लगा, उसी समय उपवनमें महामुनि दिखाई दिये। उनका नाम सुधर्मस्वामी था, और वे पांच सौ शिष्योंके साथ विहार करते हुए वहाँ पधारे थे। लोगोंके कम हो जानेपर, राजाने (मुनिको) शिरसः प्रणाम कर भक्तिपूर्वक वंदना की। (अज्ञान)अंधकारका नाश करनेवाले, चरमशरीरी, तथा श्री महावीर जिनेंद्रके पांचवें अंतिम व उत्तम गणधरकी राजाके निकटवर्ती अनुचरोंने स्तुति की और फिर जंबूकुमारने ॥१३॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस श्रृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें 'रत्नशेखर संग्राम' नामक सप्तम संधि समाप्त ॥ संधि—७ ॥

---

२०. ख ग णंदिणि। २१. क °णउ। २२. क घ ङ अप्पुणु। २३. ख ग घ देइ। २४. ख ग °हि। २५. ख ग सहु प°; घ संजुत्तउ। २६. क ङ °य। २७. क ख ग णुउ। २८. क घ ङ हयतमु। २९. क घ ङ सोहिय। ३०. क °हर। ३१. क घ ङ जिणि°; ख ग °दहं। ३२. क घ ङ सत्तमा इमा संधी ॥ संधिः ७ ॥

संधि—८

[१]

आरिसकहाए अहियं महुकीला[1] करि-नरिंदपत्थाणं[2] ।
संगामो वित्तमिणं[3] जं दिट्ठं तं खमंतु महुँ गुरुणो[4] ॥१॥
[6]कव्वंगरससमिद्धं[7] चिंतंताणं कईण सव्वं पि[6] ।
[8]वित्तमहवा न वित्तं[8] सच्चरिए घडइ [9]जुत्तमुत्तं जं[9] ॥२॥
मा वण्णउ[10] असमत्थो धारेउं सव्वकव्वरसपूरं ।
नियसत्तिरूव[11]-संगहियरसकणो ठाउ[12] तुण्हिक्को[13] ॥३॥
कव्वस्स इमस्स मए विरइय-वण्णस्स[14] रससमुद्दस्स ।
गंतूण पारमहियं थावउ[15] अत्थं महासंतो ॥४॥
सालंकारं कव्वं काउं पढिउं च बुज्झिउं तह य ।
अहिणेउं[16] च पवोत्तुं[17] वीरं मुत्तूण[18] को तरइ ॥५॥
[घत्ता]—भत्तिए[19] अरुहयाससुएण जोड़ियभुएण[20] पणवेप्पिणु हरिसियगत्तें ।
निम्मलनाणचउक्कधरु गणहरु[21] पवरु[22] पुच्छिज्जइ उत्तमसत्तें ॥१॥

---

[१]

आर्षप्रोक्त कथासे अधिक मैंने वसंतक्रीड़ा, हाथी(का उपद्रव), नरेंद्रके प्रस्थान व संग्रामका, यह सब जो वृत्त कहा, उसके लिए गुरुजन मुझे क्षमा करें ॥१॥ चिंतनशील कवियोंके द्वारा काव्यके अंग व रसोंसे समृद्ध चाहे वह घटित हुआ हो या न घटित हुआ हो, जो कुछ युक्ति-युक्त कहा जाता है, वह सब सच्चारित्रमें घटित अर्थात् संभावित होता है ॥ २ ॥ समस्त काव्यरसके पूरको धारण करनेमें असमर्थ लोग स्वयं (काव्यगत विषयोंका) वर्णन न करें, अपनी शक्तिके अनुरूप रसकणोंका संग्रह करके अर्थात् काव्योंके अध्ययनका ही रस लेकर, मौन ही रहें ॥३॥ मेरे द्वारा रचे हुए नाना वर्णों व रसोंके समुद्र इस काव्यके पार जानेके लिए महासंत जन (सहृदय लोग) इसमें (अभिधाशक्तिसे प्रतीयमान अर्थको अपेक्षा, लक्षणा व व्यंजना शक्तियोंके आश्रयसे) अधिक अर्थ (विशेषार्थ)की स्थापना करें ॥४॥ अलंकार-सहित काव्य रचने, पढ़ने, जानने तथा अभिनय और प्रयोग करनेमें वीर (कवि)को छोड़कर और कौन पार पा सकता है ॥५॥

अरहदासके उत्तम आत्मा पुत्रने भक्ति-भावसे हाथ जोड़कर, प्रणाम करके प्रसन्न गात्र हो, निर्मल ज्ञानचतुष्क (मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय)के धारक उन गणधरप्रवरसे पूछा—॥१॥

---

[१] १. क °कीलाल । २. ख ग करिंदप° । ३. घ चिंतामणि । ४. ख ग मह; घ मम । ५. क ङ गुणिणो; घ गुणिणं । ६. घ में इस पूर्ण पंक्तिके स्थानमें यह पंक्ति है—'संसेसु सिद्ध तंतं ताणं कवीण सव्वं पि कहियकमं' । ७. क ङ कव्वं सरसपमिदं । ८. घ चित्तमहवा ण चित्तं । ९. ख ग जुत्तमजुत्तं । १०. क घ ङ °उं । ११. क ङ °त्तव; ग °रूवं; घ °रूय । १२. घ ङ ठाउ । १३. ख ग °क्के; घ तुन्हिक्को । १४. घ वन्न° । १५. घ ङ थो° । १६. ख ग °णेतुं । १७. घ पउत्तुं । १८. घ मो° । १९. क ङ °य । २०. घ °भुइणा । २१. क° घ हर । २२. घ पउरु ।

[२]

खंडयं—पहु तउ दंसणकारणं लहिवि[1] वियप्पइ मे मणं।
सहुँ[2] तुम्हेहिं समुचयं[3] चिरभवि कहि मि परिचयं[4] ॥

तं निसुणेवि वयसीलसमुद्दें विद्दुम इव[5] फुरियाहरमुद्दें।
दर[6] दरसियकुंदुज्जलदंतें अमियपवाहु व गिरए सवंतें।
चिरभवकारणु सुमरावंतें जंबूसामि भणिउ[7] भयवंतें।
कहमि कुमार तुज्झु[8] आयण्णहि[9] मणसंकप्पु एहु फुडु मण्णहि[10]।
भव्वहो नियडीहुयभवछेयहो सव्वु जि[11] फुरइ चित्ति सविवेयहो।
एत्थु जि मगहादेसि असंकिउ नामें गामु वड्ढमाणंकिउ।
तहिं[12] भवयत्तनामदेवोत्तर[13] दियवरतणय वेण्णि दीहरकर।
परममहावयचरणु[14] चरेप्पिणु हुय सुर तइयए सग्गे मरेप्पिणु।
पुव्वविदेहि जाय तत्थहो चुय वज्जयंत-महपउमनिवह-सुय
सायरससि-सिवकुमर-वियक्खण घोरु वीरु तउ चरिवि सलक्खण[15]।

घत्ता—वेण्णि वि बंभोत्तरि अमर सक्कसिरीधर जलकंतविमाणए[16] सुत्थिय।
आउसु जेत्थु सुहायरइँ दससायरइँ[17] भुंजंत सोक्ख-विविहाइँ[18] थिय ॥२॥

---

[२]

'प्रभु आपके दर्शनोंका हेतु प्राप्त कर मेरे मनमें ऐसा विकल्प हुआ है कि आपके साथ कहीं पूर्वभवमें विशिष्ट (प्रगाढ़) परिचय रहा।' इस बातको सुनकर व्रत और शीलके समुद्र, विद्रुमके समान स्फुरायमान अधरमुद्राके धारक, कुंदपुष्पके समान उज्ज्वल दांतोंको ईषत् दिखलाते हुए, और वाणीसे अमृतका प्रवाह-सा बहाते हुए, तथा पूर्वभवके कारण (संबंध)को स्मरण कराते हुए उन भगवान्(मुनि)ने जंबूस्वामीको कहा—'हे कुमार, मैं तुम्हें कहता हूँ, सुनो! यह तुम्हारा मनोभाव है, ऐसा स्पष्टतासे समझो। क्योंकि जिस भव्यजीवका भवच्छेद (मोक्ष) निकट हो गया है, ऐसे विवेकवान्के चित्तमें सब कुछ स्पष्ट भासित होता है। यहीं इसी मगधदेशमें वर्द्धमान नामका एक भय-भीतिरहित गाँव था, वहाँ एक भवदत्त और दूसरा (अपने नामके अंतमें 'देव' पद युक्त) भवदेव, ये दो दीर्घबाहु ब्राह्मण-पुत्र उत्पन्न हुए। परम महाव्रत चारित्र (मुनि-धर्म)का पालन कर वे मरकर तीसरे स्वर्गमें देव हुए। वहाँसे च्युत होकर पूर्वविदेहमें वज्रदंत और महापद्म नामक राजाओंके सागरचंद्र और शिवकुमार नामक (शुभ)लक्षणोंसे युक्त एवं विचक्षण पुत्र हुए। वहाँ घोर पराक्रमपूर्वक तप करके वे दोनों ही ब्रह्मोत्तर स्वर्गके जलकांत नामक विमानमें इंद्रकी लक्ष्मीके धारक देव हुए; और दस सागरकी सुखकर आयु पाकर, विविध सुखोंका भोग करते हुए वहाँ रहे ॥२॥

[२] १. क क लहु वि; ख ग लहइ। २. क मह; क महु। ३. घ कहिं। ४. क क परच्चियं। ५. क क रुइ; घ रइ। ६. घ दरिसिय°। ७. घ °उं। ८. क ख ग तुज्झ। ९. प्रतियोंमें °ण्णहिं। १०. क क °हिं; ख ग मण्णहिं। ११. घ वि। १२. क तहि। १३. क घ क भवणामदत्त°। १४. ख ग °चरण। १५. क क °क्खणु। १६. घ °णइं। १७. क क °रइ। १८. क °हाइ; ख ग °हइ; घ °हउ; क °हाउ।

[३]

खंडयं—तहिँ बेण्णि वि परोप्पर चिरभवनेहनिब्भरं[1] ।
वसिऊणं तओ चुया इह [2]भरहे पुणो हुया[2] ॥

अह एत्थु जि वरमगहाविसए सुररमणिसासवासियदिसए ।
जिणमंदिरमंडियधरणियले इंदीवररयकयसुरहिजले ।
संवाहणु [3]नामु अत्थि[3] नयरु नायरविलासहासियखयरु[4] ।
सावयसंकिण्णवणु[5] व ट्ठियउ पायलु व नायाहिट्ठियउ ।
रहुकुलु व सलक्खणरामधरु[6] अण्णाणुवएसु व नट्ठपरु ।
बहुवाणिउँ[7] मयरहरु व सहइ जहिं हट्टमग्गु भारहु कहइ[8] ।
वावरइ दोणु पसरंतसरु पत्थु वि संचरइ करेण करु ।
भुयतुलतोलियकंसावरिउ[9] पयडइ व कहिं[10] मि केसवचरिउ ।
बहुसंथउ जणियपयक्खलणु[11] कत्थइ[12] थिउ णं जडचट्टगणु ।
जणु कहिं[13] मि सवासणु ववहरइ रक्खससमवायहो अणुहरइ ।

[३]

वहाँ दोनों ही परस्पर पूर्वभव-जन्य स्नेहसे भरपूर होकर रहे । वहाँसे च्युत होकर पुनः इसी भारतमें हुए । अब यहीं इस सुंदर मगध देशमें, जहाँ सुररमणियोंके आश्वाससे दिशाएँ सुगंधित हैं, जहाँका भूमंडल जिनमंदिरोंसे मंडित है, और जहाँका जल इंदीवरोंके पराग-रजसे सुरभित है, ऐसा संवाहन नामका नगर है, जहाँके नागरिकोंका विलास खेचरोंके विलासका उपहास करता है । श्रावकोंसे संकीर्ण होनेसे वह श्वापदोंसे संकीर्ण बनके समान स्थित है, और नागोंसे अधिष्ठित पातालके समान नागवृक्षों अथवा न्याय-नीतिसे अधिष्ठित है । लक्ष्मणसहित राम तथा सुलक्षण रानियोंको धारण करनेवाले रघुकुलके समान वह नगर सुलक्षण वृक्षोंसहित आरामों तथा सुलक्षणा सुंदरियोंका धारक है । जिसप्रकार अज्ञानोपदेशसे परमार्थ नष्ट हो जाता है, उसीप्रकार उस नगरके शत्रु नष्ट हो गये हैं । बहुत बनियों (व्यापारियों)से युक्त होनेसे वह बहुत अधिक पानीवाले मकरगृह (सागर)के समान शोभा पाता है । वहाँका हाटमार्ग (बाजार) मानो भारत कथाको कहता है । भारत-युद्धमें बाणोंका प्रसार करते हुए गुरुद्रोण (युद्ध) व्यापृत थे, वहाँके हाटमार्गमें खूब शब्द करता हुआ द्रोण नामक माप व्यापृत अर्थात् व्यवहृत होता है । कहीं पर वह केशवके चरित्रको प्रगट करता है, जिसमें केशवने अपनी भुजाओंरूपी तुलामें कंस-जैसे प्रधान (शत्रु) को तोला अर्थात् विजित किया था; वहाँ हाथोंसे तोलनेवाली तुलामें काँसेकी बनी श्रेष्ठ वस्तुएँ तोली जाती हैं । कहीं बहुत-से व्यापारियोंके सार्थ व्यापारमें गिरावट (या रुकावट) जानकर इसप्रकार ठहरे हुए हैं, जैसे कि मूर्ख शिष्य पाठमें स्खलन जानकर खड़े हो जाते हैं । कहीं बासनों(बरतनों)का व्यापार करनेवाले लोग,

[३] १. क चिरु°; ख ग °नेहानि° । २. क क भरहेण पु°; ख ग भारहे पु°; घ भरहे पुणु ते हुय । ३. क क णाम अ°; घ अत्थि नाम न° । ४. क णायरविसाल° । ५. ग सावइ°; क क °संकिण्णुववणु; ख ग घ °संकिण्णु वणु । ६. ख ग घ सलक्खणु राम° । ७. ख ग घ °वाणिउं । ८. क क सहइ । ९. क भुअ°; ख ग घ °तुलतोलिउ कंसा°; क भुअतुलतोलियकंसाचरिउ । १०. घ कहिं । ११. क क जाणियपयखलणु । १२. घ °इं । १३. घ कहिं ।

जहिँ अक्खरसंगहिँ[14] सहहिँ[15] कइ टेंटहिँ[16] जूवार[17]-विचित्तमइ।
जिणहरहिँ[18] सद्प्पण-पुज्जवया[19] दीसंति मुणिंद वि तहिँ जि सया।
घत्ता—तं पुरु[20] [21]सुपइट्ठियनिवइ जिणचरणमइ परिपालइ समरे बलुद्धरु[22]।
कुवलयपरिवड्ढियहरिसु[23] छणससिसरिसु महिवीढभारधारियधुरु[24]॥३॥

[४]

[खंडयं]—तहो सुहलक्खणभायणा[1] गुरुदेवच्चणकयमणा[2]।
सिंगारासयसिप्पिणी[3] [4]पढमकलत्तं रुप्पिणी[4]।

भवयत्तु[5] जेट्ठु जो विहि मि चिरु[6] सुरु[7] सायरचंदु पुणो वि सुरु।
सो जाउ[8] पुत्तु जणजाणियहे[9] नरनाहहेँ रुप्पिणीराणियहे[10]।
सउहम्मनामु[11] विज्जापवरु नीसेससत्थविण्णाणधरु[12]।
सज्जणमणनयणाणंदयरु[13] लाइयपडिवक्खकुमारडरु।
एक्कहिँ[14] दिणे सुप्पइट्ठु[15] निवइ सकलत्तु सनंदणु सुद्धमइ।
गउ वंदणभत्तिए[16] भवतरणु सिरिवीरजिणंदसमोसरणु[17]।

शव-अशनका व्यवहार (प्रयोग) करनेवाले (शव-भोजी) राक्षस समूहका अनुकरण करते हैं। कहीं अक्षरोंका संग्रह अर्थात् काव्य पदोंकी रचना करते हुए कवि ऐसे शोभायमान होते हैं, जैसे द्यूतगृहोंमें पासोंके रसमें तल्लीन विचित्रबुद्धिवाले जुआड़ी। वहाँके जिनगृहोंमें सद्+अर्पण अर्थात् सदाचारका पालन करनेवाले तथा पूज्य-वचन बोलनेवाले मुनींद्र सदैव दिखाई देते हैं। जिनचरणोंका भक्त, समरमें उद्धत बलशाली, कमलों (कुमुदों)को पूर्णतः प्रफुल्लित करनेवाले पूर्णचंद्रमाके समान पृथ्वीमंडलके हर्षको बढ़ानेवाला, एवं पृथ्वीके भारकी धुराको धारण करनेवाला सुप्रतिष्ठ नामका राजा उस नगरका पालन करता है ॥३॥

[४]

उसकी शुभलक्षणोंकी भाजन, गुरु व देवताके अर्चनमें मन लगानेवाली तथा शृंगारके आशयकी शिल्पिनी अर्थात् शृंगारके मर्मको समझनेमें दक्ष, ऐसी रुक्मिणी नामकी प्रधान रानी है। पूर्वभवमें जो ज्येष्ठ (भ्राता) भवदत्त था, फिर देव, फिर सागरदत्त और पुनः देव हुआ था, वह राजाकी जनमान्या रुक्मिणी रानीका पुत्र हुआ। उसका नाम सौधर्म रखा गया। वह विद्याओंको जाननेमें श्रेष्ठ और समस्त शास्त्रों व विज्ञान(कलाओं)का धारक, तथा सज्जनोंके मन और नयनोंको आनंद देनेवाला, एवं शत्रुपक्षके राजकुमारोंको डर उत्पन्न करनेवाला हुआ। एक दिन वह शुद्धमति सुप्रतिष्ठ राजा अपनी पत्नी और पुत्रके साथ वंदना करनेकी भक्तिसे संसारसे पार उतारनेवाले वीरजिनेंद्रके समोशरणमें गया और उन परमेष्ठीकी दिव्यध्वनि सुनकर

१४. क ङ °संगय। १५. ख ग ङ °हि। १६. ख ग घ टिंटिहि। १७. घ जूयार। १८. क ङ °रहि। १९. क ख ग °रया; घ पूयरय। २०. घ पुरि। २१. क ङ ट्ठियट्ठियणि°। २२. क बल°; ङ °द्धइ। २३. क °परिवड्ढय°। २४. क ख ग ङ °धरु।

[४] १. क ङ °भायणं। २. क ङ °मणं। ३. ख ग °सप्पिणी। ४. क ख ग ङ °कलत्ता रु°। ५. क ङ भयवत्तु। ६. क चरु; घ विरु। ७. ख ग सुर। ८. ख ग जायउ। ९. क घ °यहेँ; ङ °यहोँ। १०. ख ग घ °यहेँ; ङ °यहोँ। ११. क ङ °णाम; घ °नाम। १२. घ °विन्नाण°; ग °वरु। १३. घ °णंदणहो। १४. ङ °हि। १५. ख ग °इट्ठु। १६. क घ ङ °हत्तिए। १७. क घ ङ °जिणिंद°; क ङ °समवसरणू।

निसुणेवि परमेट्ठिहि[18] दिव्वझुणि पव्वज्ज लेवि हुउ परममुणि ।
गणहरु[19] चउत्थु तवतवियतणु सिद्धिवहुनिवेसियविमलमणु ।
पेक्खेवि जणेरु निवसिरिच्चइउ[20] सउहम्मकुमारु वि पव्वइउ ।
गणहरु पंचमु नासियदुहहो अविणट्ठथाणु सासयसुहहो ।
सो हउँ[21] रिसिसंघविराइयउ विहरंतुज्जाणि पराइयउ[22] ।

घत्ता—जो भवएउ विहि मि लहुउ पुणु अमरु हुउ पुणु सिवकुमारु सुरवरु पुणु ।
विज्जुमालि[23]-णिव्वाणु[24] हुउ[25] चउ-देवि-जुउ जलकंते विमाणे महागुणु ॥४॥

[५]

खंडयं—सग्गचविउ मणोहरे जायउ एत्थु जि पुरवरे ।
सो तुहुँ[1] जियसक्कंदणो अरुहयासवणिनंदणो ॥१॥

जं तं तउ चिरु देविचउक्कं छम्मासावहि-पियचवणमुक्कं ।
चिरुभवनेहनिबद्धं आयं सायरदत्ताईणं जायं ।
दुहियचउक्कं विज्जाविमलं चरणोहामिय[2]–कोमलकमलं ।
करपल्लवजियरत्तासोयं[3] भमरपीयमुहसासामोयं[4] ।
मणिमयकुंडलमंडियगंडं कामधणुद्धरअग्गिमकंडं ।

प्रव्रज्या लेकर महामुनि हो गया। उन तपसे तपाये हुए तनवाले चतुर्थ गणधरने सिद्धिवधूमें अपने विमल मनको लगाया। इसप्रकार अपने जनकको राजलक्ष्मीका त्यागी होते देख सौधर्म कुमार भी प्रव्रजित हो गया। उन दुःखका नाश करनेवाले और शाश्वतसुखके पद (मोक्ष)को प्राप्त वीरजिनेंद्रका वह पाँचवाँ गणधर ही मैं हूँ, और मुनिसंघके साथ विहार करते-करते इस उद्यानमें आ पहुँचा हूँ। दोनों भाइयोंमें छोटा जो भवदेव हुआ था, फिर देव, फिर शिवकुमार और फिर उत्तम देव हुआ, वह विद्युन्माली नामका महागुणवान् देव जलकांत विमानमें चार देवियोंसे युक्त हुआ ॥४॥

[५]

वही तू स्वर्गसे च्युत होकर इस मनोहर सुंदर व श्रेष्ठ नगरमें अरहदास वणिक्का इंद्रको भी जीतनेवाला पुत्र हुआ है। पूर्वमें वे जो तुम्हारी चार देवियाँ थीं, वे प्रियतमके स्वर्गसे च्युत होनेकी छह मासकी अवधिके उपरांत पूर्वभवके स्नेहसे बंधी हुई (स्वर्गसे) आकर सागरदत्तादिको उत्पन्न हुई हैं। वे चारों पुत्रियाँ विद्याओंमें विमल अर्थात् विद्याओंके विमलज्ञानसे युक्त, अपने चरणोंकी शोभासे कोमल कमलोंको तिरस्कृत करनेवाली, तथा अपने कर-पल्लवोंसे रक्ताशोकको भी जीतनेवाली हैं, और उनके मुखश्वासका आमोद भ्रमरों-द्वारा पीया जाता है, अर्थात् भ्रमर उनके मुखोंको कमल एवं उनके मुखके श्वासको कमलगंध समझकर उनपर मंडराते रहते हैं। मणिमय कुंडलोंसे उनका कपोलप्रदेश मंडित है, और वे काम-धनुर्द्धरके अग्रिम (श्रेष्ठ)बाण ही

१८. ख क °ट्ठिंहि। १९. क क गहणरु। २०. ख तवसिरिवइउ। २१. ख ग हउ। २२. क क इहाइयउ। २३. ख ग विज्ज°। २४. क क °णे; ख ग °ण। २५. क क चुउ।

[५] १. क क तुहु। २. क °च्चलणो°। ३. ख ग °सोएं। ४. ख ग °मोएं।

दिण्णं[5] तुज्झ ताएँ[6] तं सव्वं दसमए[7] वासरे परिणेयव्वं[8] ।
इय कज्जेण कुमार पवित्तं परिचए[9] पडिलग्गं ते चित्तं ।
अम्हे[10] लोयाणंदियदेहं परयाणहिँ जम्मंतरनेहं ।
निसुणेवि मुणिवयणं सुहकम्मो सविसेसं सुमरिय नियजम्मो ।
पुणु पुणु जइचलणेसुं[11] भत्तो जंपइ[12] जंबूसामि सुसत्तो ।

घत्ता—मोक्खमहापहे गमु रयमि परियणु चयमि निव्विण्णउ[13] महु दय किज्जउ ।
चिरु भवे जिह मणु[14] संवरिउ[15] दइयंबरिय सुहु[16] मोक्खदिक्ख पहु[16] दिज्जउ ॥५॥

[६]

खंडयं—इय सोऊणं मलहरो[1] बोल्लइ वयणं[2] गणहरो ।
ता वच्चसु सनिहेलणं[3] पुच्छसु पियमायाजणं[4] ॥१॥

भणइ ताम मेल्लियमणुब्भवो अरुहयासजिणवइतणुब्भवो ।
मायवप्पु इह अज्जु भणियओ[5] एत्तिओ[6] जं तेहिँ जणियओ[7] ।
कहि मि काले जं पुणु न भावियं दुलहु [8]जम्मकोडिहिँ न पावियं[8] ।
धम्मरयणु तं तउ पसाएणं[9] लद्धु सीलु तह विणु[10] कसाएणं[9] ।

हैं । (तुम्हारे) तातने उन सबको तुझे दे दिया है, अर्थात् तुम्हारे लिए उनका वाग्दान कर लिया है, दसवें दिन उनसे तुम्हारा परिणय होगा । इस कारण (पूर्वभव संबंध) से, हे कुमार ! तुम्हारा पवित्र चित्त मेरे परिचयमें लग गया । हम-लोग लोगोंके शरीरमें आनंद उत्पन्न करनेवाले पूर्वजन्मके स्नेहको जानते हैं । मुनिके वचनोंको सुनकर विशेषरूपसे अपने पूर्वजन्मका स्मरण कर पुनः पुनः यतिके चरणोंमें भक्ति दर्शाते हुए, शुभकर्मोंवाले सुसत्त्व (पवित्रात्मा) जंबूस्वामी कहने लगे—हे प्रभु ! मैं मोक्ष-महापथमें गमन करूँगा और परिजनोंको छोड़ूँगा । मैं संसारसे उदासीन हो गया हूँ, मेरे ऊपर दया कीजिए, और पूर्वभवमें जिसप्रकार (मेरे) मनको संवृत अर्थात् संवरयुक्त बनाया था, उसीप्रकारकी शुभ (श्रेयस्कर) दिगंबरी-मोक्ष-दीक्षा दीजिए ॥५॥

[६]

यह सुनकर वे (कर्म) मलनाशक गणधर बोले—'तो फिर अपने घर जाओ और माता-पिताजनोंसे पूछो ।' तब मनोद्भव अर्थात् कामवासनाको त्यागनेवाला अरहदास और जिनमतीका तनुज बोला—आज जिन्हें यहाँ माँ-बाप कहा जाता है, वह इतने (से) ही कि उनके द्वारा जन्म दिया जाता है । कोटि-कोटि जन्म पाकर भी जो दुर्लभ धन पहले कभी नहीं मिला था, और जिसका पहले कभी अभ्यास नहीं किया था, वह धर्मरत्न तथा कषायरहित शील

५. ख ग दिन्नं । ६. घ तए । ७. क घ ङ दसमे । ८. ख ग °दव्वं । ९. क ख ग घ परिचय; ङ पडिचय । १०. क घ ङ अम्हा । ११. क ङ जय° । १२. ख ग °इं । १३. घ °ण्णउं; ङ °ण्णउं ।
१४. प्रतियोंमें 'मण' । १५. क ख ग संचरिय; घ ङ संवरिय । १६. क ङ मोक्खु दिक्ख महु ।

[६] १. क घ मण° । २. ख ग वइणं । ३. क ङ सहणिहे°; ख ग सुहनिहे° । ४. क घ ङ पिउ° ।
५. ग °यउ । ६. ख ग °उं । ७. ख ग °यउ; घ ङ °यउं । ८. क घ ङ जम्मकोडि-कोडीहिं (घ न) पावियं ।
९. ख ग °यणं । १०. क विण ।

मायवप्पु तुहुँ[11] तुहुँ जि बंधवो[12] तुहुँ[13] जि मित्तु तारियमहाभवो[14]
तुहुँ[13] जि देउ गुरु तुहुँ[13] जि सामिओ[15] पइँ जि पढमु महु मोहु नामिओ[16]।
विज्जमाणकणयमयचामरं दाविथं सुहं माणुसामरं।
करि पसाउ लइ पुव्वचारिणं देहि दिक्ख[17] किं बहु-वियारिणं[18]।
घत्ता—निच्छउ तहो वीरहो[19] मुणेवि वयणइँ सुणेवि सउहम्ममहामुणि भासइ।
मायवप्पु पुच्छंताहँ[20] [21]तउ लिंताहँ[21] भणु पुत्त काइँ किर नासइ[22] ॥६॥

[७]

खंडयं—चरमसरीरहो ते मणं म करउ किं पि वियप्पणं।
आउच्छेप्पिणु[1] परियणं सेवसु वच्छ तवोवणं ॥१॥
गुरुभासिउ आएसु लहेप्पिणु चलणजुयलु[2] भत्तिए[3] पणवेप्पिणु।
गयउ कुमारु पत्तु नियमंदिरु दाणाणंदियवंदिणवंदिरु।
जणणि-जणेरहँ[4] पयहँ[5] सिरु नाविवि करकमलंजलि सीसे चडाविवि।
संसारिणिअवत्थ पुणु बोल्लइ [6]चच्चरदीउ व माणुसु डोल्लइ।
अहिजीहाफुरणुँ[7] व जीविउ चलु गिरिणइपूरु व ओहट्टइ बलु।
लच्छिविलासु गंडपडभालणु विसयसोक्खु पामा-नहचालणु।

तुम्हारे ही प्रसादसे प्राप्त हुआ। तू ही मेरा माँ-बाप है, और तू ही मेरा बांधव, तथा तू ही महासंसार(समुद्र)से पार उतारनेवाला मित्र। तू ही देव है, गुरु है, और तू ही स्वामी। तूने ही सर्वप्रथम मेरा मोह उपशांत किया था, और जहाँ स्वर्णमय चंवरोंसे व्यजन डुलाया जाता है, ऐसे मनुष्य और देवसुखोंको दिलाया था। (अतः) कृपा कीजिए और पूर्व (जन्मों) से ही (मोक्षमार्गपर) चलनेवाले (मुझ)को दीक्षा दीजिए! बहुत विचार करनेसे क्या?

उस धीरका निश्चय जानकर और उसके वचनोंको सुनकर सौधर्म मुनि कहने लगे—रे वत्स कहो तो! माँ-बापको पूछकर, फिर तप लेनेसे क्या हानि होती है? ॥६॥

[७]

रे वत्स! तुझ चरमशरीरीको अपने मनमें कोई विकल्प लानेकी आवश्यकता नहीं है, अतः परिजनोंसे पूछकर तपोवनका सेवन करना। गुरुके कहे हुए आदेशको लेकर, उनके चरण-युगलको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके, कुमार गया, और दानसे बंदीवृंदको आनंदित करनेवाले अपने घरको पहुँचा, एवं जननी और जनकके पैरोंको सिर नमाकर, करकमलोंकी अंजलिको शिर-पर चढ़ाकर, वह बोला—'यह संसारी अवस्था ऐसी है, जिसमें मनुष्यका (चंचल) मन चौरस्तेके दीपकके समान (सांसारिक विषयोंमें यहाँ-वहाँ) डोलता है। जीवित(आयुष्य) सर्पके जिह्वा-स्फुरणके समान चंचल है, और बल गिरिनदीके पूरके समान (निरंतर) ह्रासको प्राप्त होता रहता है। लक्ष्मीका विलास गंडमाला(रोग)के जैसा है, और विषयसुख नखोंसे खाज-

११. क ख ग तुहु। १२. क क °उ। १३. क क तुहु। १४. क °मओ। १५. क °उ; घ °उं। १६. क क णासिओ; घ °उं। १७. ख ग देक्ख। १८. क विया°। १९. क क धी°। २०. क क °तहं। २१. क क तउ तं लेंतहं। २२. ख ग °इं।

[७] १. घ °विणु। २. ख ग °जुअलु। ३. क क °य। ४. क घ क जणेर। ५. क क °हि; घ °हिं। ६. क क °दीवउ। ७. °फुरणु।

इय कज्जेण अज्जु पव्वज्जमि सहुँ तुम्हहिँ[8] खंतव्वु विरज्जमि।
अप्पणु[9] खामिउं[10] जगु जि खमावमि रायविरोह वे वि उवसावमि।
सुयवयणाउ माय मुच्छंगय कह व कह व उम्मुच्छिय न वि मुय।
खरपवणाहयकेलि व कंपिय सजलनयण-गग्गिर-गिर जंपिय।
पुत्त पुत्त महु जं पइँ[11] पयडिउ महिहरसिहरि[12] वज्जु[13] णं निवडिउ।
पुत्त पुत्त तुहुँ[14] मंडणु निलयहो[15] तउ लेंतेण जाइ कुलु विलयहो।

घत्ता—पुत्तु जि गोत्तहो आसतरु संताणधरु गुरुभारसमुड्डियकंधरु[16]।
पुत्तु जि आवइवल्लरिहि[17] कुलक्खयकरिहि[18] विद्धंसणबंधुरसिंधुरु ॥७॥

[८]

खंडयं—इय[1] संसारे जं पियं निसुणेवि जणणी जंपियं।
चउगइदुक्खनियामिणा भणियं जंबूसामिणा ॥१॥
एहु लोयायारु विसुद्धकम्मि को चवइ चविउ जं[2] तुम्हि अम्मि।
किर वंसुज्जालइ जो स पुत्तु गुणिगणणि[3] पढमु आयारजुत्तु।
जाएण न कंदहिं वइरि जेण नंदंति न सज्जण सइ[4] सुहेण।
दाणेण अहव निज्जियरणेण सुकवित्तें[5] अह जिणकित्तणेण।

खुजलानेके समान है। इस कारणसे मैं आज ही प्रव्रज्या लूँगा। अपने आत्माको मैंने (सबके प्रति) क्षमा(भाव)से युक्त कर लिया है, और लोकसे भी मैं (अपने प्रति) क्षमा(भाव) चाहता हूँ, एवं राग और विरोध(द्वेष) दोनोंको उपशांत करता हूँ।' पुत्रके इन वचनोंसे माँ मूर्च्छित हो गयी, और किसी-किसी तरह उन्मूर्च्छित हुई, मरी नहीं (अर्थात् किसी-किसी तरह मरनेसे बची)। वह तीक्ष्ण पवनसे आहत कदलीके समान कांपने लगी, एवं सजलनेत्र होकर ऐसी गद्-गद वाणी बोली—हे पुत्र! तुम्हारे वचन (कुल)कल्याणके विरुद्ध और धिक्कारणीय हैं। हे पुत्र! तूने जो कहा वह मेरे लिए पर्वतशिखरपर वज्रपातके समान है। हे पुत्र! तू ही घरकी शोभा है, तेरे तप लेनेसे कुलका विनाश हो जायगा। पुत्र ही कुलका आशावृक्ष है, संतानोंका धारक है, और कुटुंबके गुरुभारको कंधोंपर उठानेवाला है। पुत्र ही कुलका क्षय करनेवाली आपत्ति-वल्लरीको विध्वंस करनेवाला श्रेष्ठ हस्ति है ॥७॥

[८]

इस संसारमें जो प्रिय है, जननीके वैसे कथनको सुनकर चारों गतियोंके दुःखका नियमन करनेवाले जंबूस्वामीने कहा—'हे शुद्धशील माँ! यह जो लोकाचार तुमने बतलाया, वह दूसरा कौन कह सकता है? निश्चयसे पुत्र वही है, जो वंशको उज्ज्वल करे, तथा जो गुणियों-की गणनामें प्रथम हो, और आचारयुक्त हो। जिसके जन्म लेनेसे वैरी क्रंदन नहीं करते, और सज्जन सदा सुखसे आनंद नहीं मनाते; जिसके दानसे अथवा रणको जीतनेसे; सुकवित्व-से

८. क ङ °हं। ९. क ङ °उ; घ अप्पुणु। १०. क ङ खमियउ; घ खमियउं। ११. क ङ पइ। १२. क ङ °सिलहिं। १३. ङ वज्ज। १४. ङ तुहु। १५. क °यहुं। १६. ख ग °भारुसमु°; घ °समुद्दिय°। १७. क ङ °रिहो; घ °रिहिं। १८. क ङ °करिहो; घ °करिहिं। १९. ग °सिंधुर।

[८] १. क ङ इह। २. ख ग जो। ३. ख ग गुण°; घ °गणेण। ४. घ सइं। ५. क ङ सुकयत्तें।

जसहंसु भुवणपंजरे[6] न मंतु बंभंडे न धावइ अइकमंतु ।
किं तेण पयापरिपूरणेण नियजणणीजोव्वणलूरणेण[7] ।
दुव्वसणभुत्तु कुलकंदखणणु अत्थत्थिउ मारइ जणणि-जणणु ।
तो वरि तं करमि विवेयकम्मु जिणकेवलीहिं जं आसि गम्मु ।
सामण्णहो[8] सज्झु[9] न धरणिवलए कुलनामु करमि चंदफलए[10] ।
तं करमि न विग्गहगइ पुणो वि डंकेइ न जहिं[11] मणमंकुणो वि ।
इंदियवावारु न जेत्थु फुरइ अत्थोवलंभु न वियारु करइ ।
जहिं[12] मिलिउ विलीयइ कालदव्वु अत्थवणु[13] जाइ आयासु सव्वु ।
जहिं[14] खयहो पवइ कलिकयंतु[15] तउ चरमि निरंजणु होमि संतु ।
कहियइँ[16] इय कहिवि निरंतराइँ सविसेसइँ[17] नियजम्मंतराइँ ।
संबोहियाए[18] मायए[19] पवुत्तु[20] पडिवज्जिउ सयलु वि पुत्त जुत्तु[21] ।

घत्ता—निच्छउ परियाणिवि नंदणहो सिवसुहमणहो पियरें सिक्खनिवेसिय[22] ।
सायरपमुहुम्माहियहो वइवाहियहो नियपुरिस वेण्णि संपेसिय ॥ ८ ॥

अथवा जिनभगवान्का कीर्तन करनेसे जिसका यशःहंस इस संसाररूप पिंजड़ेमें न समाता हुआ, इसका अतिक्रमण करके संपूर्ण ब्रह्मांडमें तीव्रगतिसे नहीं जाता; उस मात्र उदरपोषण करनेवाले अथवा प्रजापूरण (संतति वृद्धि) करनेवाले, निज-जननीके यौवनको काटने(लूटने)वाले पुत्रसे क्या जो दुर्व्यसनोंसे भक्षित(वशवर्त्ती) होकर कुलके मूल(धर्म)को ही खोद डालता है, एवं अर्थपरायण होकर माँ-बापको भी मार डालता है।' तो अच्छा है कि मैं वह परित्यागकर्म (संसारत्याग) करूँ जो जिनकेवलियों-द्वारा गम्य रहा है। सामान्य व्यक्तिके लिए जैसा साध्य नहीं है, उसप्रकारसे मैं चंद्रमंडलपर अपने कुलके नामको उकेरूँगा। मैं वह करूँगा जिससे पुनः विग्रह-गति (संसारमें आवागमन) न हो, और जिससे यह मनरूपी मत्कुण पुनः डंक न मारे (अर्थात् विषयोंकी तृष्णासे अभिभूत न करे)। जहाँ इंद्रिय व्यापार प्रगट ही नहीं होता है, अर्थको (उपलब्धि या अनुपलब्धि) जहाँ विकार उत्पन्न नहीं करती, जहाँ मिलने (पहुँचने)से कालद्रव्य विलीन हो जाता है (अर्थात् जहाँ जन्म-जरा व मृत्यु नहीं होते), जहाँ समस्त आकाश अस्तंगत हो जाता है, और जहाँ कलिकृतांत क्षय हो जाता है, मैं ऐसा तप करूंगा, और निरंजन(कर्मरूपी कालिमासे रहित)-संत होऊँगा। यह कहनेके अनंतर उसने विशेषतासे (विस्तारपूर्वक) अपने निरंतर (पाँच) जन्मांतरोंको कहा। तब बोधको प्राप्त हुई माँने कहा—पुत्र! तूने जो कुछ प्रतिपादन किया, सब युक्त है। शिवसुखमें मन लगे हुए पुत्रका निश्चय जानकर पिताने विवाहके लिए उमाहे हुए (उत्साहित) सागरदत्त प्रमुख वणिकोंके पास शिक्षा(समाचार) देकर अपने दो पुरुष भेजे ॥८॥

६. क ङ भुवणु°; ख ग भुयण°; घ भुअण°। ७. ख ग नियजणणं°। ८. घ °ण्णहो। ९. क मज्झु। १०. घ °फलइं। ११. घ जहि। १२. ङ जहि। १३. क ङ अंथ°। १४. क ङ जहि। १५. क ङ °कियंतु। १६. ख ग °यइ। १७. ख ग °सइ। १८. प्रतियोंमें °याइं। १९. क घ ङ °इं। २०. क ङ पउत्तु। २१. क ङ जुत्त। २२. ख ग सिक्खाइ विनि°; घ सिक्खवि विनि°।

[९]

खंडयं—ता तहिं[1] मंडवे थक्कयं दिट्ठं[2] सेट्ठिचउक्कयं।
तोरणदारपराइया तेहिं[3] मि ते वि विहाइया॥

तो अब्भुत्थाणु करेवि तहु आसणु दहि[4]-कुसुमक्खयहिं[5] सहुँ।
तंबोलु[6] विलेवणु[7] सज्जियउ आयारजोग्गु सव्वु वि कियउ।
बोल्लणहँ[8] लग्गु विहि एक्कु नरु वरताएं[9] पेसिय[10] तुम्ह घरु।
अघडियउ घडावइ दिण्णदिहि[11] विहडावइ सुघडिउ दुट्ठविहि[12]।
दइवहो[13] किं करइ सुपुरिसमइ असमत्तकज्जे जहिं[14] अवरगइ।
बोल्लंतहो तहो संवरियमणु[15] अणिमिसदिट्ठिए[16] मुहु[17] नियइ जणु।
सव्वत्थ[18] वि लय[19]-विप्फारयाइँ वज्जंतइँ तूरइँ वारियाइँ।
कलवेणु-वीणसमलंकियाइँ नीसहइँ गेयाइँ[19] मि कियाइँ।
कामिणिसंचारइँ धारियाइँ रुद्धइँ[20] नेउरझंकारियाइँ।
लिहिओ[21] इव संठिउ[22] बंधुजणु अवरु वि सव्वो वि निहियसवणु।
आहासइ पुणरवि[23] सो ज्जि नरु अवलोयहु कण्णहु[24] अण्णु[25] वरु।
नियचित्तु सिद्धिवहुवहि[26] धरिउ परिणयणु कुमारें परिहरिउ।

[९]

तब (इन दोनों पुरुषोंने वहाँ जाकर) मंडपमें बैठे हुए चारों श्रेष्ठियोंको देखा, और तोरण द्वार पार करते ही वे दोनों भी उन श्रेष्ठियोंके द्वारा देखे गये। फिर उनके लिए अभ्युत्थान करके दधि, कुसुम व अक्षत आदिसे मंगलोपचार करके आसन दिया; तांबूल, कुंकुम व चंदन आदि विलेपन सामग्री आगे करके जो-जो कुछ आचार-व्यवहार योग्य है, सभी किया गया। तदनंतर दोनोंमें-से एक व्यक्ति बोलने लगा—'वरके तातने तुम्हारे घर भेजा है। (दुः) साहसी और दुष्ट-विधि अघटितको तो घटाता है, और सुघटितको विघटित कर देता है। सत्पुरुषकी बुद्धि इस दैवका क्या करे, जहाँ असंपन्न कार्यमें कोई और ही गति हो जाती है? उसके बोलते हुए सब लोग अपना मन थामकर निर्निमेष दृष्टिसे उसका मुँह देखने लगे। सर्वत्र विस्फार अर्थात् उच्चलयसे बजते हुए तूर रोक दिये गये। मधुर वेणु और वीणासे समवेत सभी गान बंद कर दिये गये। कामिनियोंका संचार रोक दिया गया, और नूपुरोंकी झंकार अवरुद्ध कर दी गयी। बंधुजन तथा और जिन्होंने भी कानोंसे सुना, सभी चित्रलिखितके समान (स्तंभित) हो गये। पुनः वही व्यक्ति कहने लगा—कन्याओंके लिए अन्य वर देखिए! अपने चित्तको (अतिशयरूपसे) सिद्धिवधूमें लगानेवाले कुमारने विवाहको त्याग दिया है।

[९] १. ख ग क तहि। २. ख ग घ दिट्ठउ। ३. ख ग तेहि। ४. ख ग तहिं। ५. क क °यहि। ६. क क तंबोल। ७. क क °वण। ८. क क बोलणह। ९. क °ताए। १०. क क एं°। ११. ख ग घ दिन्न°। १२. घ दइ°। १३. ख ग °यहो। १४. ख ग जह। १५. क °गमणु। १६. क ख ग क अणमिस°। १७. ख ग सहुं; घ सुहु। १८. ख ग विलइं। १९. क ख ग क °इ। २०. क क °इ। २१. ख ग लिहियउ। २२. घ संतिउ। २३. ख ग पुणु°। २४. घ कन्नहो। २५. घ अवरु। २६. क क °वहुवहिं; ख ग °वहुअइं; घ °वहुयहि।

तुम्हहिँ[27] सहुँ अम्हहँ[28] परमरइ जं करहु एत्थु तं देहु मइ।

घत्ता—पिउ-मायरि-बंधव-जणहिँ दुक्खियमणहिँ वुज्झाविउ कह व न[29] वुज्झइ।
सच्चउ अज्जु जि तवचरणु वइरायमणु लिंतउ कुमारु किम रुज्झइ ॥ ९॥

[१०]

खंडयं—सुणेवि वयोहरजंपियं[1] करवत्तेण व[2] कप्पियं[3]।
विसकवलेण व घुम्मियं सव्वाणं हिययं ठियं ॥

हेट्ठामुहुँ संठिउ सयणविंदु वज्जासणिसूडिउ णं गिरिंदु।
णं गरुडझडप्पिउ फणिसमूहु हरिदारियसिरु णं हत्थिजूहु।
खरपरसु[4] हयउ[5] विडवो[6] व्व रुक्खु वुच्चइ कण्णापियरहिँ[7] सदुक्खु।
वरु जंबुसामि मेल्लिवि वरिट्ठु तइलोके[8] कवणु तहो सरिसु दिट्ठु।
चिरु दिण्णियाउ कण्णाउ[9] जाउ अण्णहो[10] कहो[11] एवहिँ[11] देहु ताउ।
अह ताउ जि[12] पुच्छहु[13] बालियाउ [14]नवसिरसकुसुमसोमालियाउ।
इय भणेवि वयोहरु[15] करे धरेवि माइहरब्भंतरे पइसरेवि।
कण्णाण कहिउ कारणु समण्णु[16] वरइत्तु तुम्ह[17] लइ नियहु अण्णु[16]।
निसुणेवि कज्जंतरु जित्तसिरिए[18] दिज्जइ पच्चुत्तरु पउमसिरिए[18]।
निम्मलगुणगोत्तविसालियाहँ पइ[19] एक्कु जि किर कुलबालियाहँ।

तुम्हारे साथ हमारी परम प्रीति है, इस प्रसंगमें जो किया जाये वैसी मति दीजिए ! दुःखित-मन माता-पिता और बांधवजनोंके द्वारा समझाये जाने पर भी वह कैसे भी नहीं समझता। वैराग्य-मन कुमारको आज ही सचमुच तप लेनेसे कैसे रोका जाये ? ॥९॥

[१०]

उस संदेशवाहकके कहेको सुनकर सभीका हृदय करोंतसे चीरे हुए जैसा तथा विष खा लेनेसे घूमता हुआ (चकराता हुआ) जैसा हो गया। स्वजनवृंद इसप्रकार अधोमुख होकर बैठ रहे जैसे अतिकठोर वज्रायुधसे तोड़ा हुआ पर्वतराज, जैसे गरुड़से झपेटा हुआ फणिसमूह, सिंहके द्वारा शिर-विदीर्ण किया हुआ हाथियोंका झुंड, और तीक्ष्ण परशुसे कटी हुई शाखाओंवाला (ठूंठ) वृक्ष हो जाता है। कन्याओंके पिता दुःखपूर्वक कहने लगे—'जंबूस्वामी-जैसे श्रेष्ठवरको छोड़कर तीनों लोकोंमें उसके समान और कौन देखा गया है ? जो कन्याएँ बहुत पहलेसे हो (उसे) दे दी गयी थीं, उन्हें अब किस दूसरेको दें ? अब उन्हीं नवीन सिरीषपुष्पके समान सुकुमार बालिकाओंसे पूछा जाये'—ऐसा कहकर संदेशवाहकको हाथ पकड़कर और मातृगृहमें भीतर प्रवेश कराकर कन्याओंको सब कारण(समाचार) बतलाया, (और पूछा) अच्छा, अब तुम लोगोंके लिए दूसरा वर देखें ? (विवाह)कार्यमें व्यवधानको यह बात सुनकर, लक्ष्मीको शोभाको जीतने-वाली पद्मश्रीने प्रत्युत्तर दिया—निर्मलगुणों और महान् गोत्रवाली कुलकन्याओंका निश्चयसे एक

२७. क ङ °इं। २८. क ङ °इं; घ °हिं। २९. घ नउ।

[१०] १. ख ग घ वओ°। २. क ङ य। ३. ख ग कंपियं। ४. क ख ग ङ °फरुस; घ °परुस। ५. ख ग खइउ। ६. ख ग घ उ°। ७. घ कन्ना°। ८. क ङ °लोए। ९. घ अन्न°। १०. ख ग कहें; घ कहिं। ११. क एमहि; घ एवहिं; ङ एमहिं। १२. घ वि। १३. क ङ पुं°। १४. ख ग नवकुसमसरिस°; घ °सिरसि। १५. ख ग घ वओ°। १६. घ °न्नु। १७. घ तुम्हि। १८. घ °सिरि। १९. क ख ग घ पइं।

एक्कु जि जणेरि जगि एक्कु ताउ एक्को जि[२०] देउ[२१] जिणु वीयराउ।
गुरु एक्कु जि भण्णइ[२२] परमसाहु सुहि एक्कु जि जसु तउ-धम्मलाहु।
परिणयणु अम्ह न करंतु कंतु[२३] जइ परतउ लेइ विरायवंतु।
घत्ता—अह[२४] पुणु जइ[२५] विवाहु घडइ[२५] दिट्ठिहे[२६] चडइँ[२७] अब्भग्गलु बोल्लु न जाणहुँ[२८]।
तो तरलच्छिविलासवसु[२९] रइलद्धरसु जम्मावहि वल्लहु माणहुँ ॥१०॥

[११]

खंडयं—इयवयणं हियच्छियं इयराहिं मि[१] समत्थियं[२]।
कयपरिणयणे वयधणं[३] दूरे तस्स तवोवणं[४] ॥१॥
गरुयउ[५] कज्जु जइवि[६] लज्जिज्जइ लज्ज मुएवि तो वि बोल्लिज्जइ।
अच्छउ ताम कामसंजीवणि कोमलझुणि जुवाणमणदीवणि।
रइनाडयविलाससंसिक्खणु वंकउ-तिक्खकडक्खनिरिक्खणु[७]।
सरसु सरलबाहुलयालिंगणु गाढत्तणे[८] पीडियथोरत्थणु।
दंसणे[९] जि दरसियसिंगारहो[१०] रइविहलंघलदिट्ठिकुमारहो।
पेक्खेसहुँ[११] चलणंसु रमंतो गुरुरमणत्थले खिन्न[१२]-भमंती[१३]।

ही पति होता है, लोकमें एक ही जननी होती है, एक ही तात, और एक ही देव—वीतराग जिन। एक ही परम साधुको गुरु-कहा जाता है, और एक ही सुहृत्, जिससे तप व धर्मका लाभ हो। यदि प्रियतम हम लोगोंका परिणय नहीं करके, वैरागी होकर परम-तप (दिगंबरीदीक्षा) लेते हैं (तो लें), परंतु फिर भी यदि (किसी तरह) विवाह घटित हो जाय, और हम लोग उसकी दृष्टिमें चढ़ जायें, तो मैं बहुत आगे बढ़कर तो बोलना नहीं जानती, (लेकिन फिरभी) चंचलनेत्रोंके विलासके वश हुए, और रतिमें रस लेनेवाले उसको हम लोग आजन्म अपना प्राणवल्लभ मानें (अर्थात् चंचल नेत्रोंके कटाक्ष और रतिरसमें डूबकर वह आजन्म हमलोगोंका प्राणप्रिय होकर रहेगा) ॥१०॥

[११]

इस मनोवांछित वचनका दूसरी कुमारियोंने भी समर्थन किया–(कि) परिणय कर लेने-पर उसके लिए व्रतप्रधान तपोवन तो दूर ही है। यद्यपि यह बड़ा भारी लज्जनीय कार्य है, तथापि लज्जा छोड़कर कहना पड़ता है—'तो फिर जवानोंके मनको उद्दीपित करनेवाली कामको संजीवनी कोमल-ध्वनि, रतिनाटक और विलासकी शिक्षा, बांके तीक्ष्ण कटाक्षोंसे देखना, प्रेमरससे पूर्ण होकर सुंदर बाहुलताओंसे आलिंगन और स्थूल स्तनोंसे प्रगाढ़तासे मर्दन हो। हमलोगोंके दर्शनमात्रसे ही दर्शितश्रृंगार अर्थात् उद्दीप्त-काम कुमारकी रति-विह्वल दृष्टिको हमलोग अपने चरणोंमें रमण करती और विशाल रमणस्थलपर खिन्न होकर भ्रमण करती

२०. क घ ङ वि। २१. ख ग देउ वि। २२. क ङ °इं; घ भन्नइं। २३. ख ग संतु। २४. क ङ जइ पुणु। २५. ख ग °इं। २६. क ङ °हि; घ °हिं। २७. ख ग घ °इ। २८. ख ग °हो; २९. क लइ°।

[११] १. क घ ङ पि। २. ख समि°। ३. प्रतियोंमें °घणं। ४. ख ग तओं°। ५. क घ ङ °वउ। ६. ख ग जयवि। ७. ख ग °निर°। ८. क ङ °त्तण। ९. ङ °ण। १०. घ दरिसिय°। ११. क ङ °सहु। १२. क ख ग ङ खिण्ण। १३. क ङ भवंती।

रोमावलिपएसि[14] विहडप्फड तिवलितरंगविसमि[15] दिंती झड ।
नाहीबिंबे थक्क न पयट्टइ दुब्बलढोरिव पंके चहुट्टइ ।
हुय निप्फंद चडवि[16] घणथणयड[17] तिसिया इव [18]जलदंसणे लंपड[18] ।
तरलतरंगमयणमयसंगिणि ईहइ दीहरनयणतरंगिणि ।
पेक्खेवउ विलासरंजियमणु पणइणिपणयपायपहरियतणु ।
माणिणिमाणुवसावण[19]-कंखिरु महुरमम्मणुल्लावण[20]-झंखिरु ।
पणमणमिलियमउलिपयलग्गउ नेउरग्गकयबंधविलग्गउ[21] ।
इय निसुणिवि सव्वहिं[22] परिभाविउ मिलिवि कुमारु विवत्थहिं थाविउ ।
घत्ता—कण्णहँ[23] चउहँ[24] वि हत्थ[25] धरि परिणयणु करि सुहिनयणहँ[26] जणहि[27] महारइ[28] ।
एक्कु जि वासरु कल्लि पुणु वयविमलगुणु तवचरणु[29] लेंतु को वारइ[30] ॥११॥

[१२]

खंडयं—तो बालेण न वज्जियं वयणमिणं पडिवज्जियं ।
झत्ति विराय-विवज्जियं गहिरं [1]तूरं वज्जियं[1] ॥
पत्ते विवाहमुहुत्ते मणोहरे उण्णामउ[2] निबद्धु कंकणु[3] करे ।

हुई देखेंगी। रोमावलि प्रदेशपर विह्वल होकर, विषम त्रिवली तरंगोंपर झपट मारते हुए नाभिबिंबपर ठहरकर उसका प्रवर्तन इसप्रकार रुक जायेगा, जिसप्रकार कीचड़में फँसा हुआ दुर्बल पशु; और घने स्तनतटोंपर चढ़कर वह ऐसी निष्पंद हो जायेगी, जैसे जलदर्शनका लंपट कोई प्यासा (जलको देखकर)। तरल तरंगोंवाली (अर्थात् चंचल प्रेक्षणोंसे युक्त) व मदन-मदकी संगिनी, हमलोगोंके दीर्घनेत्रोंरूपी तरंगिणीको वह अभिलाषापूर्वक देखेगा। (और भी हमलोगोंके द्वारा) वह विलासमें अनुरक्त मनवाला और हम प्रणयिनियोंके प्रणयसे पादप्रहारसे युक्त शरीरवाला-अर्थात् प्रणयवश हमलोगोंके चरणोंको चूमते हुए; तथा मानिनियोंके मानको उपशांत करनेकी आकांक्षासे मधुर कंदर्पालाप करते हुए, व (दीर्घ) निःश्वास लेते हुए; और प्रणाम करनेके लिए उसका मुकुट अपने चरणोंसे इसप्रकार लगा हुआ मानो वह नूपुरोंके अग्र-भागसे बाँधकर चिपका दिया गया हो, इस रूपमें देखा जायगा। यह सुनकर सभीने विचार किया, और मिलकर कुमारको इन व्यवस्थाओंमें स्थापित किया (अर्थात् बांधा) कि केवल एक दिनके लिए चारों कन्याओंके पाणिग्रहण करके सुहृज्जनोंके नयनोंके लिए महद् प्रीति उत्पन्न कीजिए। फिर कल ही विमल व्रतों और शुद्ध गुणोंवाले तपश्चरणको लेते हुए (तुम्हें) कौन रोकेगा ॥११॥

[१२]

तब बालकने अस्वीकार नहीं किया, और इस वचनको मान लिया। शीघ्र ही विराग-विवर्जित अर्थात् किसी भी प्रकार रस-भंगरहित गंभीर तूर बज उठा। शुभ विवाह मुहूर्त

१४. क ड °स। १५. क ड °विसम; ख ग °विसमें। १६. ख ग चडिवि। १७. क ड °तड। १८. घ दंसणि जलल°। १९. क घ ड °सामण। २०. क ड महुराममम्मणलावणु; ख ग °लावण। २१ क घ,ड °कयकंध°। २२. ख ग घ °हं। २३. क ड कण्ण जु; घ कन्नहं। २४. क घ ड °हु; ख ग °ह। २५. क घ ड हत्थु। २६. ख ग सुहिनय°; क ड °णयणहु। २७. क घ ड °हिं। २८. क ड °रइं। २९. क ड तउ°। ३०. क ड °इं।

[१२] १. क ड तूर विवज्जियं°। २. ख ग घ उन्ना°। ३. क °ण।

सिरि[४] सियकुसुममउडु जियससहरु   गंधुद्दुंत[५]-महुरसर-महुयरु[६] ।
सेयसुहुम[७]-नववत्थनियंसणु   चंदणलित्तरयणमंडियतणु ।
चउहुँ[८] मि कण्णहँ[९] जंबुकुमारें   किउ विवाहु वणिगोत्तायारें ।
सायरदत्तु करेवि[१०] धुरे तारए[११]   कण्णचयारि[१२] कएहिँ[१३] जलधारए[१४] ।
बहुकरसंगहे[१५] गोत्तपवित्तहो   दिज्जइ दाइज्जउ वरइत्तहो[१६] ।
डाहुत्तारु[१७] चारु चामीयरु   मोत्तिउ तारु सुत्तिसंभउ[१८] वरु ।
दित्तिफुरंतु रयणु जाइल्लउ[१९]   वइरायरउ वज्जु कंतिल्लउ ।
चेलिउ कंचिवालु बहुमोल्लउ   अवरु वि[२०]जं जं काइँ मि[२०] भल्लउ ।
दिण्णउ[२१] दासिउ चीर वि अंकें   दीवउ मंचउ सहुँ पल्लंकें ।

घत्ता—मंडवि मिलियलोयपवरे[२२] आणंदयरे परिणयणु कज्जु निव्वत्तिउ ।
जोयहो आइउ णं वरहो नववहुवरहो मज्झण्णहो[२३] सूरु पवत्तिउ[२४] ॥१२॥

[१३]

खंडयं—खरतरघम्मपसित्तए[१] चंदणपंकविलित्तए ।
कामिणिकंकणकलरवे गंडुब्भासियजललवे ॥

आने पर ऊर्णामय कंकण हाथमें बांधा गया। शिरपर अपनी शोभासे चंद्रमाको जीतनेवाला तथा अपनी गंधसे आकृष्ट भ्रमरोंके गुंजारसे युक्त श्वेत(कमल)पुष्पोंका मुकुट बाँधा गया। धवल, सूक्ष्म और नये वस्त्रोंको पहने, तथा चंदनसे लिप्त और रत्नोंसे मंडित-देह कुमारने चारों कन्याओंसे वणिक्कुलके आचारके अनुसार विवाह कर लिया। सागरदत्तको प्रमुख करके चारों कन्याओंके लिए (कन्यादानके निमित्त) स्वच्छ जलधारा की जानेपर वधुओंके पाणिग्रहण-के उपरांत उस पवित्र कुलवाले वरके लिए बहुत-सा दायज (दहेज) भी दिया गया। तापसे तपाया हुआ श्रेष्ठ सोना, शुक्तिमें उत्पन्न होनेवाले बड़े-बड़े सुंदर मोती, दीप्तिसे स्फुरायमान श्रेष्ठ (जात्य) रत्न, वज्रकी खानसे निकाला हुआ कांतिमान वज्ररत्न एवं बहुमूल्य कांची देश निर्मित वस्त्र तथा अन्य भी जो जो कुछ वस्तुएँ हैं, सभी दी गयीं। दासियाँ भी दी गयीं, और सुंदर सुंदर वस्त्र; विशेषप्रकारके आसन एवं दीपक और मंच पलंग सहित दिये गये। आनंददायक मंडपमें प्रवर अर्थात् वरिष्ठ लोगोंके एकत्र हो जानेपर परिणयका कार्य संपन्न किया गया, और मानो श्रेष्ठ नव-वधुओं तथा वरको देखनेके लिए आया हुआ सूर्य मध्याह्नमें प्रवृत्त हुआ ॥१२॥

[१३]

(अब जिस समय कि)—तीव्रतम घाम (धूप) से पसीनेसे तर, तथा चंदनका खूब गाढ़ा लेप की हुई कामिनियोंके कपोलोंपर जल लव अर्थात् स्वेदबिंदु चमक रहे थे, और उनके कंकणोंका

४. क सिर। ५. घ °दुंत। ६. क ङ °अरु। ७. क ख ङ °सुहम। ८. प्रतियोंमें °हु। ९. क ङ °हु। १०. ख करवे; ग करिवे। ११. क तारइं; ख ग तामए; ङ तामइ। १२. ख ग घ कण्णावरि। १३. क घ ङ कि°। १४. क ङ °धारइं। १५. क ख ग °संगहो; घ °संगहि। १६. घ °यत्तहो। १७. ख ग उत्तमु डाहु। १८. क ङ °संभव। १९. ख ग जाय°। २०. क ख ग ङ जं जं काइ मि; घ काइं मि जं जं। २१. घ दिन्नउ। २२. °लोए° २३. घ °न्हो। २४ ग पवित्तउ।

[१३] १. घ खरयर°।

तिणमयकायमाणसंठियजणे वारिपसिंचमाणचुय[2]-जलकणे[3]।
कुसुमवाससुरहियसीयलघणे सेवियचमरुक्खेवपहंजणे।
[4]कोवुण्हवियसलिलसरे सरतडे जलणसरिससंतवियसिलायडे।
कद्दमलोलविलोलियदद्दुरे[5] इंदीवरनिलुकइंदिंदिरे।
महिसि[6]जूहडोहियपंकिलजले तरुछायानिविट्ठगोमंडले।
तेहए काले कुमारु विसुद्धउ[7] भुंजइभोयणु सवहु-सबंधउ।
जं नाडयवित्थरु व रसिल्लउ वायरणु[8] व विंजणसोहिल्लउ[9]।
पिसुणलोयहिययं व सकूरउ सज्जणमणु व नेहपरिपूरउ।
[10]वरतरुणीवयणु व लवणुग्गउ पसर-सूरमंडलु व समुग्गउ।
वासहरं पिव सहइ सखट्टउ[11] जं च महानयरु[12] व बहुवट्टउ।
सुपुरिसधणु व सुपत्तहिं[13] थक्कउ रेहइ[14] पंडियजणु व सतक्कउ[15]।
घत्ता—नाणाविहभक्खहिं[16] पयरु[17] मुहमहुरयरु भुंजवि[18] नियाणखणे ढुक्कउ[19]।
लइयरसेहिं[20] मि[21] परिहरिउ कवडहिं[22] भरिउणंधुत्तिहि[23] पेम्मघवक्कउ[24] ॥१३॥

मधुर कलरव हो रहा था; और जबकि लोग तृणमय कायमानों अर्थात् आसनोंपर बैठ गये थे, तथा जलसे तर किये हुए व वारिकणोंको चुआते हुए चंवरोंके खूब शीतल प्रभंजन (पवन)का सेवन किया जा रहा था; और जबकि ईषत् उष्ण जलवाले सरोवरके तटपर शिला-तट अग्निके समान तप रहे थे; दर्दुर कर्दम-क्रीड़ा करके प्रसन्न हो रहे थे, भौंरे इंदीवरोंके पीछे छिप रहे थे; महिषोंके यूथोंके अवगाहन करनेसे (सरोवरोंका) जल पंकिल हो रहा था, तथा पशु-मंडली वृक्षोंकी छायामें बैठी थी; वैसे समयमें कुमार वधुओं और बांधवोंके साथ विशुद्ध भोजन करने लगा। वह भोजन शृंगारादि रसोंसे युक्त नाटकके विस्तारके समान नानाप्रकारके अम्ल-मधुर इत्यादि रसोंसे युक्त था; और क् ख् ग् आदि व्यंजनोंसे युक्त व्याकरणके समान नाना व्यंजनों अर्थात् विविध पकवानोंसे शोभायमान था। दुर्जन लोगोंके सकूर अर्थात् क्रूरतापूर्ण हृदयके समान वह भोजन कूर नामक श्रेष्ठ चावलोंसे युक्त था, और सज्जन लोगोंके स्नेहपूर्ण मनके समान घृतादि स्नेह-पदार्थोंसे परिपूर्ण था। सुंदर तरुणियोंके लावण्ययुक्त वदन (मुख)के समान वह लवणयुक्त था; और संपूर्णरूपसे उद्गत अर्थात् पूरी तरह उदित हुए प्रातःकालीन सूर्यमंडलके समान समुग्ग अर्थात् मूँगके व्यंजनोंसे युक्त था। खाटोंसे युक्त वासगृहके समान वह भोजन सुंदर खट्टे पदार्थों(अचार-चटनी आदि)से युक्त था। बहुत-से बाटों अर्थात् मार्गोंसे युक्त महानगरके समान वह बहुत-सी बाटों अर्थात् कटोरियोंसे युक्त (कटोरियोंमें सजा हुआ) था। सत्पुरुषके सुपात्र अर्थात् सद्व्यक्तियोंमें नियोजित धनके समान वह भोजन सुपात्रों अर्थात् सुंदर बरतनोंमें रखा हुआ था, और सतर्क अर्थात् तर्कशास्त्रके ज्ञानसे शोभायमान पंडितोंके समान सतक्र अर्थात् तक्र(मट्ठा) सहित होनेसे अच्छा लग रहा था। इसतरह रस लेनेवालोंके द्वारा नानाप्रकारके भोजनोंका समूह जो मुखको मधुर

२. क ङ चुअ॰। ३. ख जण॰। ४. क किं उण्ह॰; ङ किं वुण्ह॰। ५. ख ॰दुद्दुरे। ६. क ङ महिस॰। ७. ख ग विसिट्ठउ। ८. ख ग ॰रुणु। ९. ख वंजणहिं रसिल्लउ; ग घ वंजण॰। १०. ग वर॰। ११. क सु॰। १२. ख ॰नयर। १३. प्रतियोंमें ॰त्तहि। १४. क ॰इं। १५. ख ग सु॰। १६. ख ग ङ ॰भक्खहि। १७. क हिययहरु। १८. क घ ङ भुंजिवि। १९. घ ढ॰। २०. क ख ग ङ ॰हि। २१. क ङ व; ख ग व्व। २२. ग ॰डिहि। २३. ख ग घ ॰हि। २४. क घव॰।

[१४]

खंडयं—जलगंडूसविसोहणं पुणु तंबोल-विलेवणं ।
लइयं[1] धरियदरुण्हयं[2] तो जायं अवरण्हयं[2] ॥१॥

[3]ताव हि[3] वहुचउक्कसंजुत्तउ गउ वरइत्तु[4] नियघरु पत्तउ ।
अहलु व[5] तुट्टु[6] झुलुक्कियपवणहो दीसइ जंतु तवणु अत्थवणहो ।
सेवियकमलकोसमहुमत्तउ निवडइ गलियनियंसु[7] व रत्तउ ॥५॥
लग्गु सिलायडरमण[8]-विराइहे[9] पेक्खेवि अत्थसिहरे वणराइहे[9]
ईसाइयि[10] पच्छिमदिसपत्तिए[11] किउ आयंबिरु मुहु[12] असहंतिए ।
तेउ हुयासि[13] नाउ विरहीयणे राउ वि दिण्णु[14] तरुणमिहुणहँ[15] मणे
मयणे पयाउ रविहि[16] अप्पंतहो अइ चाउ जि कारणु अत्थंतहो[17]
लइउ सव्वु तुम्हहिँ[18] चिर-महणें अंतोधणसुद्धिहे[19] रविगहणें ।
पुणु मंथणभएण मुहिमुद्दें धरिउ दीउ णं सुरहँ[20] समुद्दें ।

करनेवाला और 'कवड' अर्थात् पुरवोंमें भरा हुआ था, खाया जाकर अंतमें बहुत-सा उच्छिष्ट उसीप्रकार छोड़ दिया गया, जिसप्रकार किसी धूर्त्तस्त्रीका कपटभरा उद्दीप्त प्रेम उसे भोगकर छोड़ दिया जाता है ॥१३॥

[१४]

जलगंडूषके द्वारा मुखशोधन किया गया और विलेपन (कुंकुम-चंदनादिके पिष्ट चूर्ण) लिये गये। इतनेमें थोड़ा गरम अपराह्नकाल हो गया। तब तक चारों वधुओंके साथ वर गया, और अपने घर आ पहुँचा। (गरम) हवासे झुलसा हुआ, और (आकाशरूपी वृक्षसे) मानो निरर्थक ही टूटा हुआ सूर्यरूपी फल अस्ताचलको जाता हुआ देखा गया; मानो वह (दिनभर) कमलसरोवरोंसे अपने किरणोंरूपी हाथोंसे कमलकोषोंका सेवन करके मधुसे मत्त (रक्तवर्ण) होकर सुरापानसे मत्त हुए किसी रागी पुरुषके समान अपने वस्त्रोंको (सूर्यपक्षमें किरणोंको) फेंककर गिर रहा हो। अस्ताचलके शिखरपर शिलातटरूपी रमण (नितंब)से विराजमान वनराजीसे (अपने प्रियतम सूर्यको) लगे हुए देखकर उसकी पश्चिम दिशारूपी पत्नीने ईर्ष्या करके, इसे सहन न करते हुए क्रोधसे मानो सांध्य-अरुणिमाके व्याजसे अपना मुख तांबेके समान लाल-लाल कर लिया। उस सूर्यने अपना तेज अग्निमें, ताप विरहीजनोंमें, और राग (लालिमा-अनुरागके रूपमें) तरुण मिथुनोंके मनमें दे दिया; और प्रताप रातभरके लिए कामदेवको अर्पित कर दिया, (इसप्रकार) उसका यह अतिशय त्याग ही उसके अस्त होनेका कारण हुआ। मेरे भीतरी धनका पता लगानेके लिए सूर्यको लेकर तुम लोगोंके द्वारा बहुत प्राचीनकालमें ही मंथन करके मेरा सब कुछ ले लिया गया था; अतः अब पुनः मंथनके भयसे पृथ्वीरूपी मुद्रासे मुद्रित

[१४] १. ख ग घ लइयउ। २. घ °ण्हयं। ३. क ङ तामहि; घ तामहिं। ४. क ङ °यत्तु। ५. ख ग घ अ। ६. क ख ग ङ तुट्टु। ७. ख ग वि। ८. ख ग घ °रवण। ९. क घ ङ °इहिं। १०. क ङ °यवि। ११. घ °दिसि°। १२. क घ ङ मुहुं। १३. ख ग °सें। १४. घ दिन्नु। १५. क ङ °णहुं; ख ग °णहु; घ °णहो। १६. क °हि। १७. ख ग अच्छं°। १८. ख °हि। १९. क ङ °धणुमुद्धिहिं; घ °मुद्धिहि। २०. क ख ग °हु; घ °हुं।

परिपक्कउ नहरुक्खहो निवडिउ　　फलु व दिवायरमंडलु विहडिउ।
[21]अत्थंगयरविपिययमकामए[22]　　वासरलच्छिए[23] संझारामए[22]।
रत्तंबरजुवलउ[24] नेसेविणु　　कुंकुमपंकें पियलि करेविणु[25]।
खणु अच्छेवि दुक्खसंसल्लिउ　　अप्पउ घोरमहण्णवि घल्लिउ।
तमे पसरंते[26] तडिहिं[27] विब्भुल्लउ　　कंदइ चक्कवायमिहुणुल्लउ।
पंकयसरइँ[28] अलिहिं णं छइयइँ[29]　　काणणाइँ[30] णं [31]कोइलछइयइँ।
नच्चिरमोरपिच्छसंछन्नइँ[32]　　णं पव्वयसिहराइँ पवन्नइँ[32]।
दिम्मुहाइँ[33] कत्थूरिए[34] कलियइँ　　निवघराइँ गयवरघडललियइँ[35]।
घत्ता— [36]वम्महपीडियविडजणहो ववगयधणहो[36] [37]विरहग्गिफुलिंग व छड्डिय[37]।
[38]नीलीरसे णं[38] बोलियए[39] जगि कवलियए[40] जोइंगण[41] गयणे समुड्डिय[42] ॥१४॥

[१५]

खंडयं—अहिसारीहिं[1] निसागमे दूयडियाण[2] गमागमे।
लइयं कसणनियंसणं मरगयघडियविहूसणं ॥१॥
तिमिरकुंभिकुंभत्थलभेयउ[3]　　दीवियाउ भल्लिउ[4] हेमेयउ[5]।

(अर्थात् मर्यादित) समुद्रने मानो देवताओंके सूर्यरूपी दीपकको धर लिया (अर्थात् अपने गर्भमें छिपा लिया)। आकाशवृक्षसे गिरे हुए पके फलके समान दिवाकरमंडल (एकाएक) विघटित हो गया। अस्ताचलको गये हुए सूर्यरूपी प्रियतमकी कामनासे दिवसरूपी लक्ष्मीने संध्यारामा (नायिका)के रूपमें लालवस्त्रोंका (आत्माहुतिसूचक) जोड़ा धारण करके, तथा कुंकुमके गाढ़े द्रवसे टीका करके, क्षणभर ठहरकर (प्रियतमके विरहरूपी) दुःखसे अत्यंत पीड़ित होकर अपने आपको महासमुद्रमें डाल दिया। अंधकारके प्रसारसे (अलग-अलग) तटोंपर भूला हुआ चकवोंका जोड़ा क्रंदन करने लगा। पंकज सरोवर मानो भ्रमरोंसे छा दिये गये और उद्यान कोकिलोंसे ढक दिये गये। पर्वतोंके शिखर ऐसे हो गये मानो नाचे हुए मोरोंके पंखोंसे आच्छादित हो गये हों। दिशामुख मानो कस्तूरीसे पोत दिये गये, और राजाओंके प्रासाद उत्तम गजसमूहके समान ललित लगने लगे। (यह ललितक नामक छंद है)। मन्मथसे पीड़ित, धनहीन विटजनोंके द्वारा छोड़े हुए विरहाग्निके स्फुलिंगोंके समान अपनी नीलिमासे सारे जगत्को व्याप्त करते हुए, तथा नीलके रंगको भी अतिक्रमण करते हुए जुगनूं आकाशमें उड़ने लगे ॥१४॥

[१५]

रात्रिका आगमन होनेपर दूतियोंका गमनागमन होने लगा। अभिसारिकाओंने काले वस्त्र पहने और मरकतमणियोंसे गढ़े हुए आभूषण धारण किये। अंधकाररूपी हस्तिके कुंभस्थलको विदीर्ण करनेवाली सुवर्णनिर्मित सुंदर दीपिकाओंरूपी बरछियां जलायी गयीं (पक्षमें चमकायी-

२१. ख ग अत्थंगउ रवि°। २२. क क °मइं। २३. क क °लच्छिय। २४. क क °जुअ°; घ °जुय°। २५. क क °प्पिणु। २६. क क °रंत। २७. ख ग क °हि। २८. क क °सरहु; घ °सरिहिं। २९. क °यइ। ३०. ग °णाइ। ३१. ख ग कोयल°; घ °लवियइं। ३२. क ख ग क °ण्णइं। ३३. ग क दिण्णु°। ३४. क क °रिय। ३५. क घ क गयघडहिं व ललि°। ३६. क ख ग क वम्महं°। ३७. क क °पुलिग व ताडिय। ३८. क क °रसेण; ख ग °रस नं। ३९. घ °यइं। ४०. घ क °यइं। ४१. ख ग जोयं°। ४२. क क °ड्डिया।

[१५] १. ख ग °रीहि। २. क क दूअ°; घ °याहं। ३. क क °कुंभत्थलि°, व °कुंभत्थलु°। ४. ख ग भल्लीय। ५. ख ग हेमोयउ।

जालियाउ गयवइहियर्याह सहुँ उइउ[6] नहंगणे मयलंछणु लहु ।
भमिए[7] ‘तमंधयारे वरअच्छिए[8] झिणउ[9] दीवउ णं नहलच्छिए ।
[10]जोण्हारसेण भुवणु[11] किउ सुद्धउ[10] खीरमहण्णवम्मि[12] णं छुद्धउ ।
किं गयणाउ अमियलवविहडहिं किं कप्पूरपूरकण निवडहिं ।
किं सिरिखंडबहलरससीयर[13] मयरद्धयबंधवससहरकर ।
जाल-गवक्खइँ[14] पसरियलालउ[15] गोरसभंतिए लिहइ[16] विडालउ ।
मुद्धडमुहिय[17] लेइ[18] कर-वावड[19] मोत्तियहारमणोहरलंबड[20] ।
गोट्ठि निविट्ठ गोवि न वियाणइ[21] दहिउ भणिवि[22] मंथइ मंथाणइ[23] ।
मालिणीउ नियडाउ निवासए[24] उच्चिणंति मालइकुसुमासए[24] ।
गेण्हइ[25] समरि[26] पडिउ बोरीहलु[27] मण्णेविणु[28] करिसिरमुत्ताहलु ।
पुरउ वि थक्कु वइरिरोसिउ[29] पडु हंसु व काउ न याणइ[30] घूयडु[31] ।

घत्ता—एरिसे[32] कइरवनंदिणए सियचंदिणए नववहुचउक्कसंसिट्ठउ[33] ।
वरपल्लंकपंचसहिए परियणकहिए वासहरे कुमारु पइट्ठउ[34] ॥१५॥

गयीं) । गत-पतिकाओंके द्वारा अपने हृदयों अर्थात् उरस्थलों(स्तनों)पर कंचुकी (पहने जाने)के साथ-साथ गगनांगनमें मृगलांछन शीघ्र उदित हुआ; (जो ऐसा शोभायमान हुआ) मानो घना अंधकार फैल जानेपर वराक्षी (सुंदर नेत्रोंवाली) नभलक्ष्मीने दीपक जलाया हो । ज्योत्स्नाके रस अर्थात् चाँदनीके प्रसारसे भुवन ऐसा शुद्ध अर्थात् धवल कर दिया गया मानो उसे क्षीरोदधिमें डाल दिया गया हो । मकरध्वजके बांधव चंद्रमाकी किरणें ऐसी हो गयीं मानो आकाशसे अमृतबिंदु ही विघटित होकर गिर रहे हों; अथवा कर्पूरके पूरसे कण गिर रहे हों, अथवा श्रीखंडके प्रचुर रस-शीकर (फुहारें) ही पड़ रहे हों । लार फैलाता हुआ एक मार्जार घरोंके झरोखोंको गोरसकी भ्रांतिसे चाटने लगा । मोतियोंके मनोहर व लंबे हारके समान उन चंद्रकिरणोंको कोई मुग्धमुखी अपने व्याकुल हाथोंसे पकड़ने लगी । गोथानमें बैठी हुई गोपी जान नहीं सकी (कि इस मथानीमें कुछ नहीं लगा है), अतः (इस मथानीमें) दही है, ऐसा कहकर (खाली) मथानी को ही मथने लगी। मालिनियाँ आवासके निकटसे मालती कुसुमकी आशासे चुनने लगीं । कोई शबरी (भूमिपर) गिरे हुए बेरके फलको हाथीके शिरका मुक्ताफल (गजमुक्ता) समझकर उठाने लगी । अपने वैरी(कौवे)से रुष्ट किया हुआ चतुर घूक (उल्लू) अपने सामने ही स्थित, (परंतु अतिशय चाँदनीके प्रभावसे) हंसके समान (दीखनेवाले) कौवेको पहचान नहीं पाया । ऐसी कुमुदोंको प्रसन्न (विकसित) करनेवाली धवल ज्योत्स्नामें चारों नववधुओंके साथ कुमार परिजनोंके द्वारा बताये हुए, पांच सुंदर पलँगोंसे युक्त वासगृहमें प्रविष्ट हुआ ॥१५॥

६. ख ग उयउ । ७. क ङ °य । ८. क ङ °तमंधयारवर°; ख ग घ तमंधयारवरअच्छिय । ९. घ °उं । १०. घ में इस पंक्तिका पूर्वपाद इस प्रकार—जोन्हारसेण कियउ जगु सुद्धउ । ११. ख ग घ भुअणु । १२. घ °म्नवम्मि । १३. क ङ °सीयलु । १४. ख ग °क्खय । १५. ग °जालउ । १६. ख ग °ए । १७. क ङ मुद्धउ° । १८. क ङ तो वि । १९. क ङ °वावउ । २०. क °लंवउं, ख ग घ °लंपड । २१. ख ग विजा° । २२. ख ग °इं । २३. ख ग घ ङ °णइं । २४. क घ ङ °सइं । २५. घ गिन्हइ । २६. क घ ङ सवरि । २७. ख ग वेरी° । २८. घ मन्नें° । २९. घ वइररोसिय । ३०. क घ ङ °इं । ३१. घ घूवडु । ३२. क घ ङ °स । ३३. ङ °ट्ठउं । ३४. ख ग पय° ।

[१६]

खंडयं—खणु अच्छेवि कयायरा नियनिलएसु सहयरा।
[1]पट्ठवेवि पुणु निविडए[2] दिण्णए[3] दारकवाडए[4] ॥१॥

पंच वि तूलिसमिद्धहिँ[5] पंचहिँ आसीणइँ पच्छाइयमंचहिँ[6]।
छिन्नच्छाहु[7] पईवउ किज्जइँ[8] करे तंबोल वि सम्माणिज्जइँ[9]।
पडुलसमु वेइल्लु निबज्झइ[10] सुमहुरु[11] कप्पूरायरु[12] डज्झइ।
पयडइ[13] का वि बहुय[13] भत्तारहो थणहरु मिसिण गुत्तगुणहारहो।
नाहीमंडलु का वि वियासइ[14] विरयण[15] संवरणेण पयासइ[16]।
का वि नियंसणसारें भल्लउ दावइ मसिणोरुव[17]-जुवलुल्लउ[18]।
कक्खंतरु कहेइ क वि कवणें[19] मउलियनयणकण्णकंडुवणें[20]।
कुडिलालोएं भउहउँ[21] वंकइ क वि दंतहिँ निययाहरु डंकइ।
अवर वि वरजुवाणदीवियमणु सालंकारु पढइ वच्छायणु।
वीणावज्जसमाणु[22] वि रायइ[23] बहुय[24] का वि हिंदोलउ गायइ[25]।
अवरइ[26] समउँ[27] अवर[28] क वि जंपइ सुण्णउँ[29] सिक्कारंती[30] कंपइ[31]।

[१६]

कुछ देर ठहरकर आदर किये हुए (अर्थात् आदर करके) अपने सब सहचरों(मित्रों)को अपने-अपने घरोंको पठाकर (फिर) द्वारके कपाटोंको निविड अर्थात्—निश्छिद्र रूपसे बंद कर दिये जानेपर वे पाँचों वर-वधू रुईके गद्देदार एवं चादरोंसे आच्छादित पाँच मंचोंपर आसीन हो गये। प्रदीपोंकी शोभा (ज्योति) मंद कर दी गयी (अथवा श्लेषमें जंबूस्वामी एवं वधुओंके देदीप्यमान मुखोंरूपी दीपकोंके तेजसे तैलदीपकोंका तेज फीका पड़ गया)। हाथमें आदरपूर्वक तांबूल ग्रहण किये गये। गुलाबके पुष्पके साथ विचकिल्लका फूल बाँधा गया (विशेषार्थके लिए देखिये परिशिष्ट)। सुगंधित कर्पूर व अगर जलाया गया। कोई वधू हारकी छिपी हुई लड़को बतानेके बहानेसे भर्त्तारके लिए अपने वक्षस्थलको प्रकट करने लगी। कोई अपने नाभिमंडलको खोलती हुई विवाहसे की हुई अपनी विरचना (पत्ररचना आदि रूप सजावट)को प्रकट करने लगी। कोई वस्त्रोंको खिसकाकर अपने भले (आकर्षक) और मसृण ऊरुयुगलको दिखलाने लगी। कोई आँखें बंद करके कान खुजलानेके कपट (बहाने)से अपनी कुक्षिको बतलाने लगी। कोई कुटिलतासे अर्थात् कटाक्षोंसे देखती हुई भौंहोंको बांका करने लगी, और दाँतोंसे अपने अधरोंको काटने लगी। कोई दूसरी वधू सुंदर युवकके मनको उद्दीप्त करनेवाले वात्स्यायन अर्थात् कामसूत्रको अलंकारपूर्वक(अर्थात् शृंगार-भावसे भरकर) पढ़ने लगी। और कोई वधू वीणावाद्यके साथ रागपूर्वक हिंदोला गाने लगी। कोई किसी दूसरीके साथ बोलने लगी और शून्यभाव से सीत्कार

[१६] १. घ पट्ठाविवि। २. क ङ णिविडयं; ख ग नियडइं। ३. क ङ दिण्णं; ख °इं; ग °यं; घ दिन्नइं। ४. क ङ °डयं; ख ग °डइं। ५. ख °द्धहि। ६. °मंचहि। ७. क ख ग ङ छिण्ण°। ८ ख ग घ °इ। ९. ख ग सामी°। १०. क °ज्झइं। ११. क ङ सुमुहुर°। १२. ख ग कत्थू°। १३. घ वहुय का वि। १४. क ङ पया°। १५. क ङ वरि°। १६. क °सइं। १७. घ °रुय। १८. घ जुय°। १९. क कविणें। २०. घ °कन्न°। २१. ख ग भउं°; ङ °हउ। २२. प्रतियोंमें °वज्जुसमाणु। २३. ख ग °यए; क घ °यइं। २४. ख ग °व। २५. क घ ङ °इं। २६. क घ ङ °रइं। २७. ख ग घ °उ। २८. क °ह। २९. घ सुन्नउ। ३०. ख ग सिंका°। ३१. क ग °इं।

घत्ता—अवर वि केरलपुरिगमणु निवपरिणयणु वरइत्ते[32] जित्तु रणु[33] भासइ[34]।
जुज्झिय विज्जाहरभडउ हासुब्भडउ सिंगारु सवीरु पयासइ[35] ॥१६॥

इय जंबूसामिचरिए [36]सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए[36]
विवाहुच्छवो नाम [37]अट्ठमो संधी समत्तो[37] ॥ संधि—८ ॥

छोड़ती हुई कांपने लगी। कोई वरके केरलपुरीको गमन, राजाके विवाह एवं वरके द्वारा जीते हुए युद्धका वर्णन करने लगी; और इसप्रकार विद्याधरभटोंके साथ किये हुए युद्धवर्णनके द्वारा, उद्भट हास्यके साथ वीररसपूर्वक शृंगाररसको प्रकट करने लगी ॥१५॥

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित, जंबूस्वामी चरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें विवाहोत्सव नामक अष्टम संधि समाप्त ॥संधि—८॥

---

३२. क घ ङ °इत्तु। ३३. घ रणि। ३४. क °इं। ३५. क °सइं। ३६. क ङ में इस प्रकार—°वीरे महाकइदेवदत्तसुयवीरविरइए महाकव्वे विवाहु°। ३७. क ङ अट्ठमा इमा संधी; घ अट्ठमो परिच्छेओ समत्तो ॥ संधि—८ ॥

[१]

तुम्हेहिं वीरकव्वं सुयणेहिँ परिक्खिऊण घेत्तव्वं ।
कसतावछेयसुद्धं कणयं नेहेण मा किणह[1] ॥१॥
चिरकव्वतुलातुलियं बुद्धीकसवट्टए कसेऊणं ।
रसदित्तं[2] पयछिन्नं[3] गिण्हह[4] कव्वं सुवण्णं[5] मे ॥२॥
[6]मयरद्धयनच्चु नडंतिउ[6] जंबुकमारें भेल्लियउ[7] ।
वहुवाउ[8] ताउ णं दिट्ठउ कट्ठमयउ वाउल्लियउ[9] ॥३॥

रइविडंबु तं नयणहिँ जोयइ[10] पुणु वि नाणदिट्ठिए अवलोयइ[11] ।
हा हा [12]महिलामोहनिबद्धउ मयणकालसप्पहिँ जगु खद्धउ[13] ।
वुच्चइ अहरु [14]अमियमहुवासउ अवरु जि नाउ[15] ठविउ वयणासउ ।
को रसु उट्ठचम्मे[16] खज्जंतए[17] [18]चिविलललालामले पिज्जंतए[17] ।
मुत्तदुवारु पूइगंधिल्लउ रमणु नाउ[19] किउ विडहिँ महल्लउ ।

[१]

वीर (कवि) द्वारा रचित काव्य आप सज्जनोंके द्वारा परीक्षा करके ही ग्रहण किया जाना चाहिए। कसौटी, ताप और छेनी से शुद्ध जानकर ही सोना खरीदिए, उसके स्नेह मात्रसे नहीं ॥१॥ रसोंसे शुद्ध किये होनेसे खूब दीप्तिमान एवं व्यवसायमें सुनिर्धारित (शुद्ध)सुवर्णके समान काव्यरसोंसे देदीप्यमान, एवं सुपरीक्षित-विविध-शब्दसमूहसे (दोषरहित रूपसे) सुनिर्धारित तथा चिरप्रसिद्ध काव्योंरूपी तुलापर तोले हुए मेरे इस काव्यरूपी सुवर्णको बुद्धिरूपी कसौटीपर कसकर ग्रहण कीजिए ॥२॥ मकरध्वजका नाच नाचती हुई उन वधुओंको जंबूकुमारने अपने संपर्कमें लायी हुई काष्टकी पुतलियोंके समान देखा ॥३॥

(उनके) उस रति(प्रेम)प्रपंचको वह अपने नेत्रोंसे देखता, फिर ज्ञाननेत्रोंसे अवलोकन(चिंतन) करता। अहो खेद! स्त्रीके मोहमें जकड़ा हुआ यह जगत् मदनरूपी काले साँपके द्वारा खाया जाता है। (स्त्रीके) अधरको अमृत व मधुका वास कहा जाता है, उसका दूसरा नाम वदनासव (अथवा आध्यात्मिक दृष्टिसे, 'व्रतनाशक') भी रखा गया है। (पर) ओष्ठचर्मको काटनेमें और परित्याज्य लार-मलको पीनेमें कौन-सा रस है? जो मूत्रका द्वार है, और पूतिगंधसे युक्त है, उसे विटजनोंने 'रमण' जैसा महत् नाम दे दिया है। स्त्रीका

[१] १. क ख क °हं। २. ख °दिन्नं। ३. ख ग छित्तं; क क °छिण्णं। ४. घ गिन्हहं। ५. घ °न्नं। ६. क क °णड्डु णडंतियउ। ७. क क भि°; घ भ°। ८. ख ग घ °याउ। ९. क क वाव°। १०. घ °इं। ११. क ग क °यइं। १२. क क मिहिला°। १३ क °उं। १४. क घ क अमय°। १५. क क णाउं; घ नाउं। १६. क °बम्मि; घ °चम्म। १७. क घ क °तइं। १८. ख ग विच्चिल°; क क °लालामणि। १९. क क माणु; घ नाउं।

पच्छलु तियहे[२०] जेण लज्जिज्जइ राइहिं[२१] सो ज्जि नियंबु भणिज्जइ।
एरिस[२२]-तियमय[२३]-पोग्गलखंधए अप्पउ नाणवंतु को बंधए।
वत्थुसरूउ[२४] चएवि[२५] जहिच्छए[२६] बुद्धिवियप्पु पवत्तए[२७] मिच्छए
भाउ जि पढमु नियत्तणु पावइ पच्छए बहि तियदव्वहो[२८] धावइ
सम्मन्नाणिउ[२९] एउ विवेयइ भाउ जि महिल अयाणु न चेयइ
दव्वसरूवविसय[३०] भुंजंतउ अच्छइ जिउ संसारे भमंतउ।
घत्ता—उवयागउ[३१] भावसरूवें भुंजइ कम्मासएण विणु
संसाराभावहो[३२] कारणु भाउ जि छड्डिय[३३] परदविणु[३४] ॥१॥

[२]

दिढचित्तु[१] कुमारु नियंतियाए[२] मुहकंतिजित्तससिकंतियाए[२]।
दीहरनीसासु ससंतियाए[३] थोवं सविलक्खु हसंतियाए।
पंकयसिरीए आलत्तियाउ परिवाडिए[४] ताउ सवत्तियाउ[५]।
वरइत्तहो का वि अउव्वभंगि संकिल्लि-हेल्लि-विब्भमु वरंगि।
किं मयणबाण संढहो वहंति पच्चुप्फिडेवि सयखंडु[६] जंति ॥

पृष्ठभाग ऐसा है जिससे लज्जा उत्पन्न होनी चाहिए, किंतु रागियोंके द्वारा उसे ही नितंब (श्लेषार्थ—पर्वतके मध्यवर्ती ढालू प्रदेशसे तुलनीय) कहा जाता है। ऐसे (जुगुप्सनीय) त्रिक (अधर, रमण व नितंब)-मय (स्त्रीरूपी)पुद्गलस्कंधमें कौन ज्ञानवान् अपनेको बाँधता है? वस्तुके (सत्य)स्वरूपको छोड़कर स्वेच्छया हमारा बुद्धिविकल्प मिथ्यात्वमें प्रवृत्त हो जाता है। पहले हमारा भाव (चित्त) स्त्रीत्व(स्त्रियाकांक्षा)को प्राप्त करता है, और फिर वही बाह्य जगतमें द्रव्य स्त्रीत्व (भौतिक स्त्रीशरीर)के लिए दौड़ता है; सम्यक्ज्ञानी इसप्रकारका विवेचन करता है; किंतु हमारा भाव(मन) ही स्त्रीरूप होता है, इस बातको अज्ञानी नहीं समझता। द्रव्यात्मक(भौतिक) विषयोंको भोगते हुए यह जीव संसारमें भ्रमण करता हुआ रहता है। ज्ञानी इस परिस्थितिको उदयागत भावों(कर्मों)के अनुसार (नवीन)कर्मास्रवके बिना, परद्रव्य (में आसक्ति)को छोड़कर भोगता है, और यही भाव (विवेक) संसाराभाव अर्थात् मोक्षका कारण है ॥१॥

[२]

कुमारको इसप्रकार दृढ़चित्त देखकर अपने मुखकी कांतिसे चंद्रमाकी शोभाको जीतनेवाली, दीर्घनि:श्वास छोड़ती हुई, और कुछ लज्जापूर्वक हँसती हुई पद्मश्रीने परिपाटीसे (क्रमशः) अपनी उन सपत्नियोंको कहा—हे सुंदरी! संकुचित की हुई भुजाओंसे पागलपन सरीखो वरकी कोई अपूर्व ही भंगिमा है। क्या कहीं षंढको भी मदनके बाण लगते हैं? प्रत्युत वापस आकर सैकड़ों

२०. क ङ °हिं। २१. ख ग रायहें; ङ °हि। २२. क घ ङ °म्मि। २३. क ङ °मइं; घ °मइ। २४. क ख ग ङ °सरूवहो। २५. क वय वि; ख ग ङ चयवि। २६. घ जहिं°। २७. घ °त्तइं। २८. ख ग तिए°। २९. क ङ °ण्णाणिउ; ख ग °णिउं। ३०. ख ग घ °सरूय°। ३१. ख ग घ उअ°। ३२. क संसारी°। ३३. क ङ छं°। ३४. क ङ °हविणु।

[२] १. क ग ङ दिढु°। २. कङ °याउ। ३. क ङ °याइं। ४. ख ग °डिउ। ५. ख सवि°। ६. क °खंड।

किं करइ अंधु नच्चुच्छवेण किं कण्णहीणु[7] गेयारवेण ।
अविवेयहो एयहो गाहु लग्गु तवचरणकिलेसें[8] महइ[9] सग्गु ।
घरे संपय[10] एरिस[11] कासु लोए दुक्करु देवाहँ[12] मि[13] बहिणि होइ ।
इय तुम्हहँ[14] [15]रूवजियच्छराउ संपज्जइ सव्वु निरंतराउ ।
साहीणु[16] चयवि[17] सुहु[18] लेइ दिक्ख घरे रुद्धउ[19] नालिउ[20] भमइ[21] भिक्ख ।
तवचरणहो फलु संदेहि लग्गु पच्चक्खु कासु सग्गापवग्गु ।
घत्ता—आणंदरूउ मणजोयहो जइ[22] तो रमणिजोउ पवरु ।
विणु मोक्खें सोक्खपयक्खउ पच्चक्खु जि पावेइ नरु ॥२॥

[३]

हले एक्कु कहाणउ[1] कहमि वरि जइ रोसु न [2]मण्णहिं [3]महु उवरि[3] ।
भत्तारु तुम्ह जाणमि जडहो अणुहरइ जि हालियधणदडहो ।
निसुणंति ताउ विंभियमणाउ आयण्णइ[4] जिह[5] जिणवइतणउ ।
तिह कहइ पउमसिरि दुल्ललिउ धणदत्तु नामेण आसि हलिउ[6] ।
तहो गेहिणि घरवावाररया[7] सुउ एक्कु जणेवि पंचत्तु गया[8] ।

टुकड़े हो जाते हैं । नृत्योत्सवमें कोई अंधा क्या करे ? और कोई बहरा गीत-रवसे क्या करे ? इस अविवेकीको ग्रह(भूत) लग गया है, तपश्चरणके क्लेशसे यह स्वर्ग चाहता है । हे बहन ! इस लोकमें ऐसी संपत्ति किसके घरमें है, जो देवोंके लिए भी मिलनी दुष्कर है । यहाँ रूपमें अप्सराओंको भी जीतनेवाली तुमलोग तथा (अन्य) सब कुछ निर्बाधरूपसे प्राप्य है । स्वाधीन सुखको छोड़कर दीक्षा लेना ऐसा है, जैसे किसीके घरमें कमलनाल पके हुए हों, और वह (उन्हें छोड़कर) भिक्षाके लिए भ्रमण करे । तपश्चरणका फल तो संदेहमय है । स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) किसने देखे हैं ? यदि मनोयोग(अर्थात् चित्तवृत्तियोंका निरोध व ध्यानसमाधि)का स्वरूप आनंदमय है, तो उससे श्रेष्ठ तो रमणीयोग है, जिससे पुरुष मोक्षके बिना ही प्रत्यक्ष सुखकी अनुभूति पा लेता है ॥२॥

[३]

हे सुंदर सखी ! यदि मेरे ऊपर रोष न मानें तो एक कथानक कहती हूँ । मैं समझती हूँ कि तुम लोगोंका यह भर्तार मूर्ख धनदत्त नामक हालीका अनुकरण कर रहा है । वे सब विस्मित मनसे सुनने लगीं, और जिसतरह जिनमतीका पुत्र—जंबूस्वामी सुने (अर्थात् उसीको लक्ष्य करके) उसप्रकार पद्मश्री कहने लगी—धनदत्त नामका एक दुर्विदग्ध(मूर्ख) हाली था । उसकी घरके सारे काम-काज करनेवाली पत्नी एक पुत्रको जन्म देकर पंचत्वको प्राप्त हो

७. घ कम्न° । ८. क नववरण° । ९. क ङ °इं । १०. क ङ °इ । ११. क ङ °मु । १२. ख ग °हुं । १३. ख ग वि । १४. क ङ °इ । १५. क ङ रूउ° । १६. ख ग सो° । १७. क ङ चइवि । १८. ख ग महुं । १९. क ङ रुंधइ । २०. ङ °डे । २१. घ °इं । २२. ख ग जय ।

[३] १. क घ ङ °णउं । २. घ मन्नहि । ३. घ मज्झुवरि । ४. ख ग घ °ण्णइं । ५. ख ग घ जिहं । ६. क °उं । ७. ख ग °रय । ८. ख ग गय ।

सो पुत्तु पवड्ढियथोरकरु[९] निव्वाहियपियरारंभभरु[१०]।
वुड्ढत्तणे[११] विहिणा वाहियउ[१२] धणदत्तेण कलत्तु विवाहियउ ॥
तरुणउ[१३] [१४]तरट्टु मयजोडियउ[१८] सोहग्गदुवाएं मोडियउ ॥६॥
उव्विवु[१५] [१६]थेरु पियपिल्लणउ हिंडिहिंडउ खेरुजणखेल्लणउ[१७]।
अह अद्धरत्ति[१८] सा तासु पिया पच्छामुह रोसें चडेवि थिया ।
अणुणंतहो बोल्लइ विरसु[१९] सरु मा लग्गि[२०] अंगे करु परइ करु ।
वट्टइ तउ तणउँ समत्थु[२१] घरे जे पुत्त हवेसहिँ महु उवरे[२२]
ते एयहो चलणइँ अणुसरेवि[२३] जीवेसहिँ भिच्चत्तणु करेवि[२३]
घत्ता—विणिवायहि[२४] पुत्तु महारा जे नंदण होसंति पिय ।
वुड्ढत्तणे ताहँ[२५] पसाएं भुंजेसहुँ निक्कंट-सिय ॥३॥

[४]

पामरु भणइ[१] कंति लज्जिज्जइ[२] पियरें केम पुत्तु मारिज्जइ[३]।
विणयवंतु घरभारधुरंधरु बलिउ विसेसें मारंतहो[४] डरु ।
बोल्लइ घरिणि कयग्गह[५] पुणु पुणु मंतु कहेमि एक्कु जो बहुगुणु ।
हलु वाहंतु पसरे एहु अच्छए नियहलु नवबइल्लु करि पच्छए ।

गयी । वह पुत्र दीर्घ व स्थूल (बलिष्ठ) भुजाओंवाला और पिताके आरम्भ भार - अर्थात् समस्त कृषि-उद्योगका अच्छीप्रकार निर्वाह करनेवाला हुआ । बुढ़ापेमें विधिसे प्रेरित होकर धनदत्तने एक दूसरी स्त्रीको ब्याह लिया । वह तरुण, प्रगल्भ और (काम-)मदसे भरी हुई स्त्री सौभाग्य(सौंदर्य)रूपी दुर्वातसे भग्न अर्थात् मर्यादा च्युत हो गयी, और वह वृद्ध किसान प्रियाकी कामप्रेरणासे उद्विग्न एवं व्याकुल होता हुआ गाँवके लोगोंके लिए एक खिलौना बन गया । पश्चात् एक दिन उसकी वह प्रिया अर्द्धरात्रिके समय रुष्ट होकर मुँह फेरकर पड़ रही । अनुनय करनेपर कठोर स्वरमें बोली—मेरे शरीरसे मत लगो, अपने हाथको दूर करो, घरमें तुम्हारा समर्थ पुत्र विद्यमान है । मेरे उदरसे जो पुत्र होंगे वे सब इसके चरणोंका अनुसरण करके (अनुगामी बनकर), इसका भृत्यपना(दासत्व) करके जीयेंगे । (अतः) हे प्रिय ! इस पुत्रको मार डालो, हमारे जो पुत्र होंगे, बुढ़ापेमें उनके प्रमादसे निष्कंटक लक्ष्मीको भोगेंगे ॥३॥

[४]

तब किसानने कहा—कांते ! यह बड़ी लज्जाकी बात है; पिताके द्वारा पुत्रको कैसे मारा जाये ? वह विनयवान् है, गृहभारको धुराको धारण करनेवाला है, और विशेषरूपसे बलवान् है, इसलिए उसे मारनेमें डर भी है । गृहिणी आग्रह करके पुनः पुनः कहने लगी—एक मंत्र (उपाय) बतलाती हूँ, जो बहुत गुणकारी (हितसाधक) है । प्रातःकाल जब यह हल बहा रहा

९. क घ ङ पवड्ढिउ° । १०. ख ग °भारभरु । ११. ख ग वूढ° । १२. घ ङ चाहि° । १३. ङ °णउं । १४. ख ग तर दुम्मय° । १५. क ख ङ उव्वेंवु; ग उव्वंवु । १६. क ङ थेर । १७. ख ग खेलणउ; घ खिल्लणउं । १८. ङ °रत्ते । १९. क ङ °स । २०. घ लग्गु । २१. क °त्थ । २२. क ख ग ङ उयरे । २३. क ङ °रवो । २४. क ख ग घ °यहिं । २५. क ङ ताह; ख ग ताहुं ।
[४] १. ख ग घ °इं । २. ख ग °ज्जइं । ३. क °ज्जइं । ४. ग °तहं । ५. क °ग्गहु ।

तो उद्धत्तबलद्दइं[6] सारहि[7] फोडिवि हलमुहेण[8] पुणु मारहि[9]।
पडिभउ नत्थि नत्थि अवजसु जणे पडिवज्जेवि[10] बेण्णि वि तुट्ठइँ[11] मणे।
सव्वु वि नियडघरम्मि[12] पसुत्तें इय[13] संकेउ निसामिउ पुत्तें।
पसरि गयम्मि पुट्ठि[14] गउ पामरु[15] दुद्दमविस[16]—तिक्खंकुडहलहरु[17]।
पुरउ दिट्ठु सुउ[18] लंगलवंतउ[19] पक्कउ सालिछेत्तु वाहंतउ।
वारिउ पुत्तु[20] काइँ[21] किर मुक्कउ[22] अत्थछेउ मा करि गिरितुल्लउ।
नंदणु भणइ[22] ताय[23] उम्मूलमि अहिणवसालि एत्थु पुणु रूवमि।
वुच्चइ धणहडेण वढ गच्छहि[24] सिद्धउ चयवि[25] असिद्धउ वंछहि[24]।
तणएं वुत्तु पइँ जि सइँ[26] सिट्ठउ रयणिहि[27] जं जंपंत उदिट्ठउ।
पुत्तु[28] पमाणु[29] पत्तु[30] मइँ घायहि[31] महिलहि[32] अण्ण पुत्त[33] उप्पायहि।
तं निसुणेवि विमुक्क[34]-दीहरसरु सुउ अवरुंडेवि रोवइ पामरु।

घत्ता—पिउ हालियधणहडतुल्लउ वंछइ[35] किच्छें तउ करिवि[36]।
संदेहगउ[37] सुरनारिउ[38] आयउ[39] तुम्हइँ[40] परिहरिवि ॥४॥

हो, तब अपने नये बैलवाले हलको इसके पीछे कर लेना। फिर उस उद्धत बैलसे इसपर (सींगोंका) प्रहार करना (कराना), फिर हलमुखसे विदीर्ण करके मार डालना। इसमें न तो (पुत्रसे) प्रतीकारका भय है, और न लोकोंमें अपयश। ऐसा निश्चय करके दोनों मनमें संतुष्ट हुए। यह सारा संकेत(वार्तालाप) पासके घरमें सोये हुए पुत्रने सुन लिया। प्रातःकाल पुत्रके चले जानेपर हाली भी दुर्दम्य वृषभ और तीखे फलवाले हलको लेकर उसके पीछे-पीछे गया। सामने ही उसने हल लिये हुए अपने पुत्रको पके हुए धानके खेतमें हल चलाते हुए देखा। उसने पुत्रको (ऐसा करनेसे) रोका—अरे क्या (मति-)भ्रष्ट हो गया है? यह पर्वतके समान महान् अर्थछेद (धन-नाश) मत कर! तब पुत्र कहने लगा—तात इसका उन्मूलन करूँगा, और फिर बिलकुल नया धान यहाँ रोपूँगा। धनदत्तने कहा—अरे मूर्ख चला जा, सिद्ध(प्राप्त)को छोड़कर असिद्धकी इच्छा करता है। (तब फिर) पुत्रने कहा—'रात्रिमें बातचीत करते हुए (तुमने पत्नीसे) जो कहा, उससे स्वयं तुमने ही यह सिखाया। प्रमाणको प्राप्त अर्थात् मुझ जवान पुत्रको मारकर तू स्त्रीसे अन्य पुत्र उत्पन्न करेगा।' यह सुनकर दीर्घ निःश्वास छोड़कर, वह पामर पुत्रको आलिंगन करके रोने लगा। प्रियतम धनदत्त हालीके समान है, (क्योंकि) यह (स्वयं देवियों-जैसी साक्षात् उपलब्ध) तुम सबको छोड़कर, बहुत कष्टसे तप करके ऐसी सुर-नारियोंकी वांछा करता है, जिनकी प्राप्तिमें पूर्ण संदेह है ॥४॥

---

६. क घ क उत्तद्धवलद्दहिं; ख ग उद्धवडबलद्दहिं। ७. क °हिं। ८. क हलु°। ९. क °हिं। १०. ख ग °ज्जिए। ११ क ख ग क °इ। १२. ग नियडि°। १३. ग इउ। १४. क घ क पुत्ति। १५. क पासरु। १६. क ख ग घ उद्दम°; क क °विसु। १७. क क °हलकरु। १८. ख ग सुय। १९. क मंगल°। २०. क घ क पुत्त। २१. क विब्भु°। २२. क °इं। २३. घ ताम। २४. क °हिं। २५. क ख ग क चइवि। २६. क क णउ; घ नउ। २७. ख ग घ क °णिहिं। २८. घ पत्तु। २९. क क °णि। ३०. क घ क पुत्तु। ३१. क ख ग घ °हिं। ३२. क घ क °लहिं। ३३. क क पुत्तु। ३४. क क मुक्क। ३५. ख ग °इं। ३६. क क करवि। ३७. क संदेहह°। ३८. क °रिउं। ३९. क क आइउ। ४०. घ तुम्हहं।

[५]

अक्खाणावसाणे चिंतइ वरु आयए[1] कियउं[2] केम हेउँ[3] पामरु।
मुक्खत्तणु[4] अवहेरि[5] करंतहँ[6] तो वरि किं पि कहमि नियकंतहँ[7]।
भणइ[8] कुमारु मुद्धमुहि[9] निसुणहि[10] [11]अज्जु वि अवरकहाणउँ न मुणहि[12]।
जामि न खयहो एण रइ लोहें वायसो व्व विसयामिसमोहें।
विंझमहाहरे एक्कु महाकरि आउसंते[13] पाविवि[14] नम्मयसरि[15]।
मुउ पाउसपूरेण वहंतउ एक्कें वायसेण खज्जंतउ।
[16]गरुवपवाहपडिउ गउ सायरे विसममच्छकच्छवमयरायरे[17]।
जलनिहिमज्झे गिलिउ करि मीणें वायसेण[18] उड्डिज्जइ दीणें।
अंतरालि थिउ जोयइ[19] जामहि[20] गामु न थामु न तरुवरु[21] तामहि।
थोवउ परिभमेवि[22] गयणच्चुउ[23] कं कं कं करंतु निवडिवि[24] मुउ।
[25]अप्पाणउ जं दिण्णउँ[25] काएँ[26] आमिसगासवसेण वराएँ[27]।
घत्ता—तह[28] तुम्ह सोक्खु[29] चक्खंतउ[30] विसयासत्तु सज्झु[31] मयणे[32]।
संसारमहण्णवे निवडेवि खयहो न वच्चमि मिगनयणे ॥५॥

[५]

इस आख्यानके समाप्त होनेपर वर सोचने लगा—कैसे इसने मुझे पामर बना दिया ? तो फिर मैं भी अपनी प्रियाओंको (मेरे ऊपर लगाये हुए) मूर्खता(के आरोप)का अपहरण करनेवाला कुछ तो भी कहूं। (ऐसा विचारकर) कुमार बोला—हे मुग्धमुखी सुनो ! एक दूसरा कथानक तुम अभीतक नहीं जानती। विषयभोगोंरूपी आमिषके मोहमें पड़कर मांस लोभी कौवेके समान, इस रति लोभसे मैं विनाशको प्राप्त नहीं होऊंगा। विंध्यपर्वतपर एक बड़ा हाथी आयुष्यके अंतमें नर्मदा नदीको प्राप्त कर वर्षाके पूरसे बहता हुआ मर गया, और एक कौवेके द्वारा खाया जाता हुआ, भारी-प्रवाहमें पड़कर भयानक मच्छ, कच्छप और मगरोंके आकर समुद्रमें चला गया। जलनिधिके बीच हाथी मछलियों-द्वारा निगल लिया गया। वह दुःखी कौवा भी आकाशमें उड़ने लगा। आकाशके अंतरालमें स्थित होकर जब उसने देखा तो कहीं कोई गाँव, न कोई स्थान और न कोई वृक्ष (ऐसा कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा)। वह कौवा थोड़ा-सा परिभ्रमण करके आकाशसे च्युत होकर काँव-काँव-काँव करता हुआ, गिरकर मर गया। जिसप्रकार उस बेचारे कौवेने मांस भोजनके वश होकर अपने (प्राणों) को दे दिया, उसी प्रकार हे मृगनयने, मैं भी तुम लोगोंके सुखका आस्वाद लेता हुआ विषयासक्त हो, कामदेवके वशीभूत होकर, इस संसाररूपी महासागरमें पड़कर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा ॥५॥

[५] १. क घ ङ °इं। २. क °उं। ३. घ हउ। ४. ख ग मो°। ५. ख ग °हेर। ६. ङ °तहो। ७. क हउं कं°; ङ हउं कंतहो। ८. घ °इं। ९. क ङ मुद्धि°; ख ग मुद्धे मुहे; घ सुद्ध°। १०. क घ ङ °णहिं°। ११. ख ग अज्ज मि; घ अज्ज त्रि। १२. प्रतियोंमें °हिं। १३. क पाउ°। १४. ख ग पाविसि। १५. क ङ णि°; ख ग नि°। १६. ख ग गरुय°; घ गयरु°। १७. ख ग °उरे; ङ °वरि। १८. क ङ वायसो वि। १९. ख ग °इं। २०. क घ ङ °हिं। २१. क ङ गय°; ख ग तर°। २२. घ °मेइ। २३. ख ग गयणुच्चउ। २४. ख ग °डिउ। २५. क घ ङ अप्पउ जेम ण जाणिउं। २६. ख ग काइं। २७. क ङ °यं। २८. ख ग तिह; घ तिहं। २९. खग °क्ख। ३०. क °तउं। ३१. क मज्झु। ३२. ख ग °णे।

[६]

अह कहइ कहाणउ[1] कणयसिरि कइ एक्कु वसइ कइलासगिरि ।
सिहराउ पडिउ[2] सयदलिउ मुउ मणिकणयमउडधरु[3] खयरु हुउ ।
विज्जाहरु अह अवरेक्कु[4] जणु तं[5] पेक्खिवि हुउ विंभइयमणु ।
नियपियए समाणु एम चवइ जहिं कइ मुउ विज्जाहरु हवइ ।
तहिं[6] मरइ कह व जइ[7] किर खयरु तो[8] अवस होइ गिव्वाणवरु[9] ।
लइ मरमि एत्थु इय बुद्धि थिया रोवंति[10] निवारइ तासु पिया ।
खेयरु वि[11] सहावें नाह तुहु[12] संपज्जइ[13] चिंतिउ विसयसुहु ।
देवाहँ मि[14] सग्गे किमब्भहिउ अवगण्णिवि तं कंतए[15] कहिउ[16] ।
अप्पाणउ[17] घल्लवि[18] चुण्णु किउ रत्ताणणु वाणरु होवि थिउ ।

घत्ता—साहीणइं[19] सोक्खइं[20] मेल्लेवि अहिउ मुणंतु नट्ठु खयरु ।
तिह[21] आयउ तुम्हइँ[22] निच्छइ दइवें छलिउ विणट्ठु वरु[23] ॥६॥

[७]

आयण्णिवि[1] जंबूसामि चवइ विंझम्मि एक्कु कइ[2] जूहवइ ।
कामाउरु सेवियरइवसणु असहियपडिमक्कडथडरसणु ।

[६]

इसके अनंतर कनकमाला कथानक कहने लगी—कैलासपर्वतपर एक कपि रहता था। वह शिखरसे गिरा और खंड-खंड होकर मर गया, तथा (मरकर) मणि व स्वर्णमय मुकुटधारी विद्याधर हुआ। कोई एक दूसरा विद्याधर उसे देखकर मनमें बड़ा विस्मित हुआ, और अपनी पत्नीके साथ ऐसा वार्तालाप करने लगा—जहाँ कपि मरकर विद्याधर होता है, तो यदि किसी तरह कोई खेचर मरे तो वह अवश्य उत्तम गीर्वाण(देव) होगा। तो लो, अब मैं ही यहाँ मर जाता हूँ, ऐसी उसकी (दृढ़)बुद्धि हो गयी। रोती हुई उसकी प्रिया उसे रोकने लगी—हे नाथ, खेचर स्वभाव(रूप)से भी तुम्हें मनोवांछित विषयसुख प्राप्त होता है। देवोंके लिए ही स्वर्गमें कौन-सा अतिशय सुख है? कांताके कहे हुएकी अवहेलना करके उस खेचरने अपनेको गिराकर चूर्ण कर लिया और लाल मुँहवाला वानर होकर रह गया। स्वाधीन सुखोंको छोड़कर, अधिककी कामना करनेवाला खेचर (जिसतरह) नष्ट हुआ, उसीतरह (प्राप्त हुई) तुम लोगोंको यह नहीं चाहता। (अतः) यह वर दैवसे ठगा जाकर विनष्ट हो रहा है ॥६॥

[७]

यह सुनकर जंबू स्वामी कहने लगे—विंध्यमें एक यूथपति बंदर रहता था। वह बड़ा कामातुर था, सदैव रतिव्यसनका सेवन करता था, और दूसरे वानरयूथकी आवाज़ भी सहन

[६] १. क घ ङ °णउं। २. क ङ °वि। ३. क ङ मणि-कडय°। ४. क ङ °रक्क। ५. ग तो। ६. ख ग तहि। ७. क ङ जे। ८. ग तउ। ९. ग गिव्वाणु°। १०. ङ रोमंति। ११. क ङ जि। १२. ख ग घ तुहुं। १३. क ङ °ज्जउ। १४. क ङ °हुं वि; ख ग °हु वि। १५. क ङ °इं। १६. क °उं। १७. क घ ङ °णउं। १८. क घ ङ घल्लिवि। १९. ङ °णइ। २०. क ङ °इ। २१. ख ग तिहं; घ तह। २२. क ङ °हं। २३. घ नरु।

[७] १. ख आइ°; घ °ण्णिवि। २. घ कवि।

वाणरिय पुत्तु जं किर जणइ परिहरइ धूव[3] नंदणु हणइ[4] ।
अह एक कयावि सगब्भ हुया तं छड्डिवि[5] अण्णहिँ[6] वणे पसुया[7] ।
सुउ जाउ ताहि[8] पिंगलनयणु[9] परिवड्ढिउ दाढावलिवयणु ।
पुच्छिय जणेरि[10] कहिँ महु जणणु सुय[11] अच्छउ पुत्तंकुरखणणु ।
ता भणइ[12] कुइउ धुयभुयजुवलु[13] कहि[14] अम्मि कहमि तहो[15] पावफलु ।
निउ तेत्थु परोप्परकुद्धमण उद्धाइय[16] वाणर बे वि जण ।
नहदंतपहारहिँ वणियतणु नासइ जरवाणरु[17] मुयवि रणु ।
हुउ पुट्ठिहि[18] इयरु वि असहमणु छड्डाविउ[19] ताम जाम गहणु ।
अइनिसिउ सलिलसण्णिहु[20] नियइ[21] करु छुहेवि जाम[22] पाणिउ पियइ ।
लेवम्मि[23] चहुट्टु ताम[23] वियलु अहिलसिवि[24] जडेण पुणो वि जलु ।
बीओ वि हत्थु तेत्थु जि[25] निहिउ[26] लाएवि जाणु वयणु वि निहिउ ।
जाणंतु वि मूढु[27] विणट्ठमइ लेवम्मि खुत्तु[28] मुउ जेम कइ ।

घत्ता—तह[29] विसयसुहेसु तिमायउ[30] होइवि[31] हउँ मि[32] न जामि खउ ।
अहिसंकडे अवडे पडंतहो महुलवलेहणे[33] आसकउ[33] ॥७॥

न करनेवाला था । वानरी जो संतान जनती थी, पुत्रीको छोड़कर पुत्रको मार डालता था । पश्चात् किसी समय एक वानरी सगर्भा हुई । उस वनको छोड़कर उसने अन्य वनमें प्रसूति की । उसे पिंगलनेत्र और खूब बड़ी दंष्ट्रापंक्तिसे-युक्त मुखवाला पुत्र हुआ । उसने जननीसे पूछा—*मेरा पिता कहाँ है ? (माँने कहा)—हे पुत्र ! वह पुत्ररूपी अंकुरका उन्मूलन करनेवाला* (पिता, जहाँ है, वहीं) रहे, अर्थात् उस पुत्रघातक पितासे तुझे क्या लेना देना है ? तब अपने भुजयुगलको फटकार कर, कुपित होकर वह बोला— माँ बतलाओ (कि वह कहाँ है ?) ! उसे उसके पापका फल बतलाऊँगा । माँ उसे वहाँ ले गयी । परस्पर क्रुद्ध होकर दोनों वानर (एक-दूसरेपर) झपटे । नखों और दाँतोंके प्रहारसे घायल शरीर होकर बूढ़ा बंदर रण छोड़कर भाग निकला । दूसरा भी असहिष्णु होकर उसके पीछे हो गया, यहाँतक कि उससे वन छुड़वा दिया । अत्यंत प्यासे हुए उसने अपने सामने जलके समान कुछ (द्रव पदार्थ) देखा । और जब (एक) हाथ डालकर उस पानी(जैसे पदार्थ) को पीने लगा तो उस लेप (चिपचिपा पदार्थ—शिलाजीत)में चिपककर व्याकुल हो गया । फिर भी उस मूर्खने जलकी अभिलाषा करके दूसरा हाथ भी उसीमें डाल दिया, तथा घुटने लगाकर मुख भी डाल दिया । जिस-प्रकार जानते हुए भी वह हतबुद्धि मूर्ख वानर लेपमें चिपककर मरा, उसी प्रकार विषयसुखोंका प्यासा होकर मैं भी, किंचिन्मात्र मधुको चाटनेमें आसक्त होकर सर्पोंसे संकीर्णकूपमें पड़कर विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा (देखिए परिशिष्ट : मधुबिंदुदृष्टांत) ॥ ७ ॥

३. ख ग धूय । ४. ख ग °इं । ५. क रू छंडिवि । ६. क रू °हिं; घ अन्नहिं । ७. क रू °आ । ८. घ तासु । ९. क रू पिंगलु° । १०. ख ग कहु । ११. ख ग सुअ । १२. क घ रू °इं । १३. ख ग घ °जुयलु । १४. ख ग कहि । १५. क तं । १६. क रू °विय । १७. क रू मुइवि । १८. क घ रू °हिं । १९. क रू छंडा° । २०. क घ रू सलिलु सम्मुहुं । २१. क रू °ए; घ °इं । २२. ख ग घ °उं । २३. घ °टू जाम । २४. घ °लसिउ । २५. ख ग घ वि । २६. क दि°; घ रू वि° । २७. क मूढ । २८. क रू पत्तु । २९. क तिहिं: घ तहं; रू तिहं । ३०. ख ग घ तिसाइयउ । ३१. घ होयवि । ३२. ख ग घ वि । ३३. ख ग आसत्तउ; घ आसकउं; रू आसकओ ।

[८]

विणयसिरीए[1] कहाणउ[2] सीसइ[3] संखिणिनिहि वरइत्तहो[4] दीसइ[3] ।
कम्मि पुरम्मि दरिद्दें[5] ताडिउ संखिणि नाम को वि कव्वाडिउ ।
दिणि दिणि वणे कव्वाडहो धावइ भोयणमत्तु[6] किलेसें पावइ ।
भुत्तसेसु[7] दिवसेसु पवन्नउ[8] रूवउ[9] एक्कु रोक्कु संपन्नउ ।
महिलसहाएँ रहसें चड्डिउ कलसे[10] छुहेवि धरायले गड्डिउ ।
अह रविगहणे कयावि विहाणइँ[11] चलियइँ तित्थे चयवि[12] नियथाणइँ ।
पूरिएहिँ मणिरयणसुवण्णहिँ[13] अवलोइउ संखिणिनिहि[14] अण्णहिँ ।
मंतिज्जए[15] आएण असारें खडहडंतरूवयसंचारें ।
जाणाविउ[16] लोयाण समग्गा अम्हइँ गिण्हाविज्जहु[17] लग्गा ।
चिंतेवि तम्मि[18] छुद्धु निउ[19] भल्लउ एक्केक्कउ मणिरयणु गरिल्लउ ।
सो संपुण्णु करेवि पवत्तइँ ण्हाएवि[20] तित्थे नियघरु पत्तइँ ।
अह छणदिणि[21] महिलाए[22] कहिज्जइ रूवउ[9] अज्जु नाह विलसिज्जइ ।
संखिणि खणइ[23] कलसु जहिँ धरियउ दिट्ठउ ताम कणयमणिभरियउ[24] ।

[८]

(तब) विनयश्रीने यह कथानक कहा, और वर(जंबूस्वामी)को एक संखिणी नामक कबाड़ीका दृष्टांत दिखलाया। किसी नगरमें दारिद्रयसे पोड़ित संखिणो नामका कबाड़ी रहता था। वह प्रतिदिन वनमें लकड़ी आदि इकट्ठा करनेको जाता और भोजन-भर भी बड़े क्लेशसे पाता था। कुछ दिनोंमें खानेसे बचा-बचाकर उसके पास एक रुपया रोकड़ (जमा) हो गया। पत्नीके सहयोगसे बहुत उत्कंठापूर्वक एक कलशमें रखकर उस रुपयेको (कहीं वनमें) धरातलमें गाड़ दिया। अथानंतर किसी समय सूर्यग्रहणके अवसरपर प्रातःकालके समय (कुछ लोग) अपने निवास स्थानोंको छोड़कर तीर्थयात्राको चले; और मणि, रत्न व सुवर्णसे भरपूर उन लोगोंने संखिणीकी उस निधिको देखा; तथा कुछ खड़-खड़ करते हुए उस अल्प मूल्यवान् रुपयेके संचरणसे ऐसी मंत्रणा की—इस रुपयेके द्वारा लोगोंको ऐसा जनाया (बतला) जा रहा है कि (तीर्थयात्रा के) अपने (इस) मार्गसे जानेवाले लोग हमें (मुझे) कुछ ग्रहण करावें; अर्थात् इस घड़ेमें एक-एक सिक्का डालकर इसे पूरा कर दें। ऐसा सोचकर वे सब लोग एक-एक श्रेष्ठ सुंदर मणिरत्न उस घड़ेमें डालकर, उसे फिर वापस जमीनमें गाड़कर पुनः अपनी-अपनी यात्रापर प्रवृत्त हो गये, और तीर्थस्नान करके अपने घर आ गये। पश्चात् किसी समय उत्सवके दिन (कबाड़ीकी) स्त्रीने कहा—नाथ ! आज उस रुपयेसे आनंद मनाया जाये। तब संखिणीने उस स्थानको खोदा जहाँ कलश रखा था, तो उसे सुवर्ण और मणियोंसे भरा

[८] १. क ङ °सिरीय। २. क घ ङ °णउं। ३. क °इं। ४. क ङ °यत्तहो। ५. क ङ दरद्दें। ६. ख ग भोयणु मित्तु। ७. क ङ भुत्तु°; ख ग °सेस। ८. क ङ °ण्णउं; ख ग °ण्णउ। ९. ख ग घ रूयउ। १०. प्रतियोंमें 'कलसें'। ११. प्रतियोंमें 'णिहाणइं'। १२. ख घ चइवि। १३. क °ण्णइं; ङ °ण्णइ; घ °ण्णहिं। १४. क घ ङ °णिहि। १५. क घ ङ °ज्जइ। १६. प्रतियोंमें 'जाणाविवि'। १७. घ गिन्हाविज्जइ। १८. क ङ मंति; घ तम्हि। १९ क ङ णिरु; घ निरु। २०. क ङ °यवि; घ न्हाइवि। २१. क छवि°। २२. क घ ङ °लाइं। २३. प्रतियोंमें 'खणइं'। २४. क ङ कणयमय°।

[२५]सरहसु रहसें[२६] कहिउ[२७] पिए[२८] पेक्खहि[२९] मइँ सम पुण्णवंतु[३०] को लक्खहि[३१] ।
अज्जवि[३१] सिद्धिनएण निहाणें रयमि उवाउ अवरु मइनाणें[३२] ।
किं पि न लेमि करेमि न खोयणु[३३] होसइ कव्वाडेण वि[३४] भोयणु ।
अह कलसेसु छुहेवि एक्केक्कउ[३५] बहु दविणासए गड्डेवि मुक्कउ[३५] ।
अण्णहिं[३६] पव्वे पुणु वि पहे दिट्ठइ[३७] पूरहु केम हियए[३८] न पइट्ठइ[३९] ।
निहिहिँ रयणु एक्केक्कउ लइयउ सुण्णउ[४०] करेवि सव्वु परिचइयउ ।
अवरहिं[४१] समए जाम उग्घाडइ[४२] रित्तउ नियवि करहिं सिरु ताडइ[४२] ।
अच्छउ[४३] रयणसमूहु सरूवउ[४४] सो वि विणट्ठु मूलि जो रूवउ ।
घत्ता—साहीणलच्छि नउ भुंजइ[४५] महइ[४६] समग्गल सग्गदिहि ।
संखिणिहि[४७] जेम वरइत्तहो करे लग्गेसइ सुण्णनिहि[४८] ॥८॥

[९]

बोल्लइ कुमारु रइसुहहो भामि भमरो व्व वरच्छि न खयहो जामि ।
सयवत्तब्भंतरे गंधलुद्ध अलि न कलइ दिवसत्थवणु मुद्ध ।
रयणीसंगमे मंकुइउ कमलु नीसरिवि न सक्कु विवण्णु भसलु ।

देखा । उसने उत्कंठासे उत्कंठित होकर कहा—प्रिये, देखो । मेरे जैसा पुण्यवान् और कौन दिखाई देता है ? सिद्धिनय(दैवयोग) से अर्जित खजानेके द्वारा मैं अपने बुद्धिबलसे (प्रभूत धनार्जन करनेका) एक अन्य उपाय रचता हूँ । इस निधिमें-से न तो कुछ लूँगा और न इसे खो-दूँगा, अपना भोजन तो कबाड़ीपनसे भी चलता रहेगा । फिर एक-एक मणिको एक-एक कलशमें रखकर अत्यधिक धनकी आशासे गाड़कर छोड़ दिया । (उन्हीं) अन्य यात्रियोंने (किसी दूसरे) पर्वपर मार्गमें फिर उस निधिको देखा, और (घड़ेमें एक ही रत्न देखकर) यह निधि कैसे पूरी हो, यह बात उन लोगोंके हृदयमें अर्थात् समझमें नहीं आयी । (अंततः उन लोगोंने खोज-खोजकर) उस निधिमें-से एक-एक करके सब रत्न ले लिये और सब घड़ोंको खाली करके (वहीं) छोड़ दिया । जब (पुनः) संखिणीने पत्नीके साथ उस निधिको उघाड़ा तो (सब घड़ोंको) रिक्त देखकर हाथोंसे सिर पीटने लगा ।—वह सुंदर रत्नसमूह तो दूर ही रहे, जो मूलमें एक रुपया था, वह भी विनष्ट हो गया । स्वाधीन लक्ष्मीको तो भोगता नहीं, और श्रेष्ठ स्वर्गसुखकी आकांक्षा करता है, ऐसे इस वरके लिए उस संखिणीके समान शून्य निधि (खाली घड़े) ही हाथ लगेगी ॥ ८ ॥

[९]

कुमार बोला—हे सुंदर आँखोंवाली भामिनी ! रति (रमण, क्रीड़ा-)सुखके कारण मैं भ्रमरके समान विनाशको प्राप्त नहीं होऊँगा । शतपत्रके भीतर गया हुआ गंधका लोभी मुग्ध भौंरा दिवसके अस्त होनेको नहीं जान पाता । रात्रिके संगम(प्रदोषकाल)पर कमल संकुचित

---

२५. क ङ सरहसेण कहियउ । २६. घ रहसि । २७. क ङ पिय । २८. क °हि; ख ग °हें । २९. क ङ पुण्णि°; घ पुन्न° । ३०. ख ग °हि । ३१. क ङ अज्जु वि । ३२. क घ ङ °पाणें; ख ग मइंपाणें । ३३. घ खोहणु । ३४. क ङ य । ३५. क °क्कउं । ३६. क ङ °हि । ३७. क ख ग ङ °इं । ३८. क ङ °इं । ३९. ख ग घ °ट्ठउ । ४०. क ङ °इं घ सुन्नउं । ४१. क घ ङ °रहिं । ४२. क °डइं । ४३. घ °हुं । ४४. क °वउं । ४५. क ख ग °इं । ४६. क °इं । ४७. ख ग °णिहिं । ४८. क ङ °णिहिं; घ सुन्न° ।

इय विसयसोक्खु अचयंतु संतु   पलयहो न पवक्कमि एहु[1] मंतु।
तो कहइ रूवसिरि कवलियप्पु   परिसथोहें गउ खयहो सप्पु।
कालम्मि कम्मि महिजणियसत्तु   सिहिवल्लहु वासारत्तु पत्तु।
पाउससिरि-संतरयंबरीय[2]   हेट्ठामुह[3]-लंबिपओहरीय[4]।
घणपडलच्छण्णतारयविहाइ[5]   उल्लसियकासु[6] जरथेरि नाइ[7]।
वरिसइ घणोहु अच्छिन्नधारु[8]   तरुवरदलघट्टणतारतारु[9]।
गिरिकडणि सिलायडे[10] मंदमंदु   हलकिट्ठछेत्तमालेसु संदु।
आलावणिवज्जहो अणुहरंतु   सरि-सर[11]-निवाण-दरि-दह[12] भरंतु।
पडणुच्छलंतजलु धरणि[13] वहइ   फलिहमयलिंगजडिलें व सहइ[14]।
घत्ता—निसिदिवससत्त धाराहरु[15] वरिसइ पूरियधरणियलु[16]।
संचारु न लब्भइ सलिलें हुउ आदण्णउ[17] जगु सयलु ॥९॥

[१०]

फुट्टतलायपालिवहनिग्गय[1]   [2]नइउण्णाहलग्गजलयर गय।

हो जाता है, भौंरा उसमें-से निकल नहीं पाता, व उसीमें मर जाता है। इसीप्रकार विषय-सुखका त्याग न करके मैं विनाशके मार्गपर नहीं चलूँगा, यही मेरा मंतव्य है। इसपर रूपश्री बोली—ऐसे ही पराक्रम(आत्माभिमान)से एक सर्प अपने-आपको कालकवलित करके विनाशको प्राप्त हुआ। किसी समय पृथ्वीमें अनेक सत्त्वोंको उत्पन्न करनेवाला शिखि-वल्लभ वर्षाऋतु प्राप्त हुआ। अंबरमें रज शांत हो गया, पयोधर(मेघ) अधोमुख होकर आकाशमें लटक गये, मेघपटलसे तारकगण आच्छादित हो गये, और काश(घासविशेष) खूब फूल उठे; इसप्रकार वह पावसलक्ष्मी ऐसी जराजीर्ण वृद्धाके समान प्रतीत हुई, जिसका रजोंबर शांत हो गया है, अर्थात् ऋतुमती न होनेसे जो रजोवस्त्र धारण नहीं करती; जिसके पयोधर(स्तन) अधोमुख होकर लटक गये हैं; जिसके अक्षि-तारक (आँखोंकी पुतलियाँ) घने अक्षि-पटल (मोतियाबिंद)से आछन्न(आवृत्त) हो गये हैं, और जिसका काश अर्थात् खाँसी रोग (श्वास) अत्यधिक बढ़ गया है। उत्तम वृक्षोंके पत्रोंसे संघट्टन करता हुआ वारिद-समूह गिरिमेखला और शिलातटोंपर मंद-मंद, एवं हल चलायी हुई क्षेत्र-मालाओंमें खूब घना, अतः आलापिनी(वीणा)के वादनके स्वरका अनुहरण करता हुआ, और नदी, तड़ाग, गढ़ों, दरों व द्रहोंको भरता हुआ अविच्छिन्न धारासे बरसने लगा। वर्षा गिरनेसे उछलते हुए जलको धारण करती हुई पृथ्वी ऐसी शोभायमान हो रही थी, मानो स्फटिकमय लिंगोंसे जड़ दी गयी हो। सात रात-दिनों तक मेघ निरंतर बरसता रहा, और उसने धरातलको जलसे पूर दिया। पानीके कारण संचरण (मार्ग) मिलना भी कठिन हो गया, और सारा जग व्याकुल हो गया ॥ ९ ॥

[१०]

तालाबोंकी पाल(मेंढ) फूट गयी, और उससे जलका प्रवाह बह निकला। नदीकी बाढ़में

[९] १. घ एउ। २. घ ङ °वलीय। ३. क ङ °मुहुं। ४. क ङ पयो°। ५. क °इं। ६. ख ग °कास। ७. क घ ङ °इं। ८. क ख घ ङ अच्छिण्ण°। ९. घ तरवर°; ङ °दलघणत्ताडणताऊ; क °दलवट्टणतारताऊ। १०. क ङ °वड; ख ग घ °यड। ११. क °सरि। १२. ख ग दर°। १३. ख ग °णे। १४. ख ग व°। १५. घ °धरु। १६. क ङ °वलु। १७. क घ ङ °ण्णउं।

[१०] १. ख ग °पहनि°। २. क ङ णय°; ख ग नय°।

थिप्पिर-जुण्ण[3]-तण्ण[3]-कुडिलीणइँ[4] कंदिरडिंभइँ[5] तवणविहीणइँ[6]।
सलसलंति भुक्खइँ सविडंबइँ[7] निव्ववसायइ[9] रोड[10]-कुडंबइँ[11]।
नीडनिवासिएहिँ अच्छिज्जइ बार बार पक्खिहिँ[12] मुच्छिज्जइ।
गिरिकुहरेसु थक्कु वणयरगणु तल्लूवेल्लि करइ पीडियतणु।
मंदी जाइ जलोहि नियत्तिए पविरलजलसंचार[13]-पवत्तिए[14]।
नियआहारु चरंतें सरढें दिट्ठउ कालसप्पु मइजरढें[15]।
कुंडलियंगु तडियउद्धरफणु ललणललंतु[16] जगु जि भक्खणमणु।
खद्धु भुयंगमेण कहिँ[17] लुक्कमि केण उवाएं आयहो चुक्कमि।
पुव्वदिट्ठनउलदरि सरंतें जय-जय सद्दु करेवि तुरंतें।
वुच्चइ सामिसाल मइँ[18] मारहि[19] खुद्दजंतुजोणिहि[20] उत्तारहि[21]।
एम भणेवि करेवि[22] मुहुँ[23] वुण्णउ[24] अंसुपवाहु मुयंतें[25] रुण्णउ[26]।
अहिणा भणिउ[27] काइँ[28] विवरेरउ चरिउ तुहारउ[29] जणे अच्छेरउ।
करकेंटिउ कहेइ[30] तुहुँ कुलपहु पइँ[31] खद्धउ[32] पावेसमि सिवपहु[33]।
इय जयकारु रहसकिउ मण्णहि[34] रोविउ जं पि तं पि आयण्णहि[35]।

पड़कर जलचर बह गये। खाद्य पदार्थोंके न मिलनेसे क्रंदन करते हुए बच्चे गलती हुई जीर्णतृण-निर्मित कुटियोंमें लीन हो गये। कुटुंबीजन भूखसे व्याकुल होकर सलबलाने लगे और व्यवसाय-हीनताके कारण हैरान हो गये। पक्षी अपने नीड़ोंमें ही निवास करते रह गये, और बार-बार मूर्च्छित होने लगे। वनचर-समुदाय गिरिकंदराओंमें स्थित हो गया, और पीड़ित शरीर होकर तड़फड़ाने लगा। जलके प्रवाहमें-से निवृत्त होकर(बचकर), उथले जलमें संचरण प्रवृत्तिसे धीरे-धीरे चलते हुए एक मतिवृद्ध (प्रौढ़मति) करकेंटेने स्वयंके आहारके लिए विचरण करते समय एक काला सर्प देखा, जो शरीरको कुंडलित किये हुए अर्थात् कुंडली मारे हुए, विस्तीर्ण फणको ऊपर उठाये हुए, मानो सारे जगको भक्षण करनेके मन(इच्छा)से अपनी जीभोंको लपलपा रहा था। अब मैं भुजंगमसे खाया गया, कहाँ लुकूँ और किस उपायसे इससे बचूँ? (ऐसा सोचकर) पहले देखी हुई एक नकुल गुफाका स्मरण करके उस करकेंटेने तुरंत जय-जय शब्द करके कहा—हे स्वामिश्रेष्ठ! मुझे मार डालिए और क्षुद्र जंतु योनिसे उद्धार कर दीजिए! ऐसा कहकर, उद्विग्न मुख करके अश्रुप्रवाह छोड़ता हुआ रोने लगा। सर्पने कहा—तुम्हारा चरित्र लोगोंमें बड़ा विपरीत और आश्चर्य-कारक है, इसका क्या कारण है? करकेंटा कहने लगा—तू हमारा कुलदेवता है, तुम्हारे-द्वारा खाया जाकर मैं शिवपथको पाऊँगा, इस कारण तो हर्षसे जय-जयकार की ऐसा मानिए, और जो रोया, उसका कारण भी

३. ख °न्न। ४. क कडि°। ५. ख ग ङ °डिभइ। ६. क घ ङ तवणि°। ७. क घ ङ °इं। ८. ङ °बइ। ९. क घ °यइं। १०. क रोड। ११. क ङ °बइ। १२. क ङ पंखिहिं। १३. क घ ङ °रि। १४. ख ग पवि°; ङ पवत्तिय। १५. घ मइं°। १६. घ ललइ°। १७. ख ग कहि। १८. ख ग मइ। १९. क °हिं। २०. क घ ङ °जोणिहिं। २१. क घ °रहिं°। २२. क करवि। २३. क घ ङ मुहुं। २४. ख ग ङ चुं; घ वुन्नउं। २५. घ मुवंति। २६. घ °उं। २७. क घ ङ °उं। २८. क ङ काइ। २९. क ङ °रउं। ३०. घ भयेइ। ३१. ख ग पइ। ३२. क घ °उं। ३३. क °पहुं, °मुहु। ३४. क ङ °हिं; घ मन्नहिं। ३५. क ख ग °ण्णहिं।

महु कुडंबु संताणगरिट्ठउ मइँ[36] एक्केण जि विणु एक्कल्लउ।
केम हवेसइ त्ति दय किज्जउ तो[37] वरि तं पि देव[37] भक्खिज्जउ।
वुत्तु कुडंबु कहहि[38] जहिं[39] अच्छइ चल्लिए चलिउ सो वि तहो पच्छए।
निउ गिरिदरिहिं[40] भडारा लक्खहि[41] गोत्तु महारउ[42] पइसिवि भक्खहि[43]।
तुट्ठु पइट्ठु[44] दिट्ठु मुहतंबें खद्धउ फाडिवि नउलकयंबें। २०
अहिलसंतु अहि अहिउ[45] जि लक्खइ इट्ठु[46] नियइ वडिपहरु न पेक्खइ।
घत्ता—[47]इच्छंतहो अहिउ असिद्धउ सिद्धविणासु वि [48]पियहो किह[47]।
सिवमाहवधुत्तविलोहिउ[49] रायपुरोहिउ मुट्ठु[50] जिह ॥१०॥

[११]

तं निसुणेवि कुमारें वुच्चइ विसु साहीणु किं न लहु मुच्चइ[1]।
रयणिहिं[2] नयरे सियालु पइट्ठउ मुउ वलद्दु रच्छामुहे दिट्ठउँ[3]।
भक्खंतेण दंत-वणे[4] काणिउँ[5] रयणिविरामपमाणु न जाणिउँ।
हुए[6] पहाए[7] वस-आमिसमुज्झिउ[8] जणसंचारवमालें बुज्झिउ।
भयकंपिरु नीसरिवि न सक्कइ[9] चिंतियमंतु पडेविणु[10] थक्कइ[9]। ५

सुन लीजिए ! मेरा कुटुंब बहुत संतानोंवाला है। मुझ एकके बिना अकेले (निराश्रय) होकर उसका कैसे क्या होगा ? इसलिए हे देव ! दया कीजिए, और उसको भी खा लीजिए ! सर्पने कहा—तुम्हारा कुटुंब कहाँ रहता है, यह बताओ ! करकेंटेके चलनेपर वह सर्प भी उसके पीछे-पीछे चला। गिरिकंदरामें ले जाकर करकेंटेने कहा—भट्टारक, यह देखिये हमारा कुल ! भीतर प्रवेश करके इसे खा लीजिए ! प्रसन्न होकर वह(सर्प) प्रविष्ट हुआ, वहाँ लाल मुँहवाले नकुल समूहने उसे देखा, और फाड़कर खा लिया। अभिलाषाके वशीभूत हुआ सर्प अधिकको ओर ही लक्ष्य करता है; अतः अपने इष्ट(दुग्ध)को तो देख लेता है किंतु प्रतिप्रहारको नहीं देखता। और अधिक अनुपलब्ध(सुखों)की इच्छा करनेवाले प्रियतमके उपलब्ध सुखोंका भी विनाश उसीतरह हो जायेगा, जिसप्रकार शिव और माधव धूर्तों-द्वारा ललचाया हुआ राजपुरोहित ठगा गया ॥१०॥

[११]

इस कथाको सुनकर कुमारने कहा—अपने आधीन विषको (भी) क्या तुरंत त्याग नहीं दिया जाता ? रात्रिमें एक शृगाल नगरमें प्रविष्ट हुआ और (उसने) रास्तेके मुँहपर ही एक मरा हुआ बैल देखा। (उसे) खाते-खाते उसके दाँत व मुख छिद गये और वह रात्रिके अंत होनेकी अवधिको भी नहीं जान सका। प्रभात होनेपर वृषभके मांससे मोहित वह शृगाल लोगोंके संचारके कोलाहलसे सचेत हुआ। भयसे काँपता हुआ वह (नगरसे) निकल भी नहीं

३६. ख ग मइ। ३७. ख ग घ वरि देव ते (घ तं) पि। ३८. ख घ °हिं। ३९. ख ग जहि। ४०. क क °हिं। ४१. क °हिं। ४२. क °रउं। ४३. क ख ग °हिं। ४४. क क पयट्टु। ४५. क °उं। ४६. क घ क दुद्धु। ४७. ख ग में पूरी पंक्ति इस प्रकार—लोहें जाइ खउ अहि वि विणासु त्ति पियहो किह। ४८. क °हुं। ४९. क क °धुत्तु°। ५०. क क मुद्धु; ख ग मुद्ध।

[११] १. क °इं। २. प्रतियोंमें °णिहि। ३. क °उं; क दिट्ठिउ। ४. क घ क °वण; ग °वणु। ५. क क °उ। ६. क क हुय; ख ग हुउ। ७. क क °इं। ८. क हामिस°। ९. क °इं; ख ग घ क °इ। १०. घ °प्पिणु।

अप्पउ मुयउ करिवि दरिसावमि किर वणु पुणु वि निसागमि पावमि ।
दीसइ दिवसि[११] मिलिय पुरलोएं एकें नरेण पवड्ढियरोएं ।
ओसहत्थु[१२] लुउ पुच्छ[१३]-सकण्णउ[१४] चिंतइ जंबुउ अज्ज वि धण्णउ[१५] ।
जीवेसमि अपुच्छु[१६] विणु कण्णहिं एकवार जइ छुट्टमि पुण्णहिं ।
बोल्लइ अवरु एक्कु कामुयजणु गेण्हमि[१७] दंतु करमि वसि पियमणु ।
पाहणु लेवि दंत किर चूरइ जाणिवि जंबुउ[१८] हियइ[१९] विसूरइ ।
खंडियपुच्छ[२०]-कण्ण मण्णिय तिणु[२१] दुक्करु जीवियास दंतहिं[२२] विणु ।
चिंतवि[२३] मुक्कु धाउ जव-पाणें लइउ कंठे हरिसरिसें साणें ।
मारिउ ताम जाण कयनाएं खद्धउ मिलिवि सुणहसमवाएं ।
इय विसयंधु मूढु जो अच्छइ कवणभंति सो पलयहो गच्छइ ।

घत्ता—[२४]गय अद्धरत्ति[२४] बोल्लंतहँ[२५] तो वि कुमारु न भवे रमइ[२६] ।
तहिं[२७] काले चोरु विज्जुचरु चोरेवइ[२८] पुरे परिभमइ[२९] ॥११॥

[१२]

विरइयगाढगंठिपरिहणसलु कियआयत्तछुरियपिहुकडियलु ।
निविडनिबद्धजूडसिरपरियरु अयरुग्गारधूवें-सुरहियमरु[३] ।

सका और यह मंत्र सोचकर निश्चल होकर पड़ रहा—अपनेको मरा हुआ दिखला देता हूँ, पुनः रात आनेपर वनको चला जाऊँगा। दिनमें नगरके लोगोंने मिलकर देखा। एक मनुष्यने जिसका रोग बढ़ा हुआ था, औषधिके लिए उसकी पूंछ व कान काट लिये। जंबूक सोचने लगा—अभी भी धन्य (भाग्य) हूँ; यदि एक बार पुण्यसे छूट जाऊँ तो बिना पूंछ और कानोंके ही जी लूँगा। एक दूसरा कामी पुरुष बोला—इसका दाँत ले लेता हूँ, (उससे) प्रियाका मन वशमें करूँगा। और पत्थर लेकर सचमुच ही उसके दाँत तोड़ डाले। (यह) जानकर शृगाल अपने हृदयमें खेद करने लगा—पूंछ व कानके काटे जानेको तो मैंने तृणके समान समझा, परंतु दाँतोंके बिना तो जीनेकी आशा दुष्कर ही है। ऐसा सोचकर (लोगोंसे) छूटते ही जब वह अपने प्राण लेकर भागा, तो सिंहके समान श्वानने उसे गलेसे पकड़ लिया, और जानसे मार डाला, तथा शोर मचाते हुए कुत्तोंके समुदायने मिलकर खा डाला। इसप्रकार जो मूढ़ विषयांध होकर रहता है, वह अवश्य विनाशको प्राप्त होगा, इसमें क्या भ्रांति है? (इसप्रकार) कथा-वार्ता करते-करते आधीरात बीत गयी, तो भी कुमार संसारमें आसक्त नहीं हुआ। उसीसमय विद्युच्चर नामका चोर चोरी करनेके लिए नगरीमें भ्रमण कर रहा था ॥११॥

[१२]

सुदृढ़ गाँठसे अपने परिधानमें शलाका (डंडा) लगाये हुए, और पृथुल (विशाल) कटितलपर छुरीको स्वाधीन किये हुए अर्थात् लटकाये हुए, शिरके चारों ओर घना जटाजूट बांधे हुए, अगरुके

११. घ °स। १२. क ङ अंस°। १३. क घ ङ पुच्छु। १४. घ ङ °ण्णउं। १५. ख ग धन्नउ; घ ङ °उं। १६. घ °च्छ। १७. क ङ °वि। १८. ख ग जंबू। १९. ग हियय। २०. ख ग घ खंडिउ°; °पुच्छु। २१. क घ ङ तणु। २२. ख ग °हि। २३. क ङ चिंतिवि। २४. क ख ग ङ गउ °रत्तु। २५. क ङ °तहं; ख ग °तहो। २६. ख घ ङ °इं। २७. ख ग तहुँ। २८. घ चोरिज्जइ। २९. ख ग °इं।

[१२] १. ख ग निवड°। २. ख ग घ °घूय। ३. घ पसरिय°।

सियतंबोलवत्तवीडियधरु फेरियपत्तिवालदाहिणकरु।
कामिणिकामलयहे[4] मेल्लिवि घरु वेसावाडउ नियइ निरंतरु।
वेसउ जत्थ विहूसियरूवउ नरु मण्णंति[5] विरूउ विरूवउ।
खणदिट्ठो वि पुरिसु पिउ सिट्ठउ पणयारूढु न जम्मे[6] वि दिट्ठउ[7]।
नउलुब्भउ ताउ किर गणियउ[8] तो वि भुयंगदंतनहवणियउ[9]।
वम्महदीवियाउ[10] अवितत्तउ[11] तो वि सिणेहसंगपरिचत्तउ[12]।
लग्गिरसाइणिसत्थसरिच्छउ[13] [14]कामुयरत्ताकरिसणदच्छउ।
मेरुमहीहरमहिपडिबिंबउ[15] सेवियबहुकिंपुरिसनियंबउ।
नरवइनीइसमाणविहायउ दूरुज्झियअणत्थसंजोयउ।
अहरे राउ मयणु[16] वि जहिं[17] वट्टइ पुरिसविसेससंगि न पयट्टइ।

उद्‌गार व धूपसे पवनको सुगंधित करते हुए, श्वेत तांबूल(पका पान)पत्रका बीड़ा चबाते हुए दाहिने हाथसे तलवार घुमाता हुआ, कामलता नामक कामिनीके लिए घर छोड़कर निरंतर वेश्यावाटको देखा (जाया) करता था, जहाँपर वेश्याएँ खूब सजे हुए रूपवाले मनुष्यको भी रुपयेसे रहित अर्थात् धनहीन होनेसे विरूप (कुरूप) मानती हैं। क्षण-भरके लिए देखा हुआ (धनवान्) पुरुष जहाँ अतिवल्लभ कहा जाता है, और जीवन-भर प्रणयासक्त रहनेवाले पुरुषको (भी निर्धन हो जानेपर) ऐसा कहा जाता है कि इसे जन्म-भर कभी देखा ही नहीं। जो नकुल संतान होकर भी भुजंगों(सर्पों)के दंत-नखोंसे व्रणित (घायल) होती हैं(यह विरोधाभास है); अर्थात् वे न-कुल—हीन कुलमें उत्पन्न होती हैं, और भुजंगों अर्थात् कामीजनोंके दाँतों व नखोंसे उनके अंगोंपर व्रण लगा दिये जाते हैं(विरोध परिहार)। (कामभोगसे) कभी भी तृप्त न होनेवाली कामदेवकी दीपिकाएँ होते हुए भी वे स्नेहसंगसे परित्यक्त होती हैं (विरोधाभास); अर्थात् कामवासनाका उद्दीपन करनेवाली होनेपर भी किसीसे सच्चा स्नेह (प्रेम) नहीं करतीं (विरोध परिहार)। रक्त चूसनेमें दक्ष व लगी हुई शाकिनियोंके समूहके समान वे कामुक व्यक्तियोंका रक्त (शक्ति व धन) चूसनेमें दक्ष होती हैं। वे मेरुपर्वतकी समभूमिके प्रतिबिंबके समान होती हैं। मेरुपर्वतकी समभूमि किंपुरुषादि देवोंसे सेवित होती है, वेश्याओंके नितंब किंपुरुषों अर्थात् क्षुद्र मनुष्योंसे सेवन किये जाते हैं। वे राजनीतिके समान ऐश्वर्यसंपन्न होती हैं, और अनर्थ संयोगोंको दूरसे ही छोड़ देती हैं। राजाकी नीति ऐश्वर्यवृद्धि करनेकी तथा राजा और प्रजाको हानि करनेवाले कारणोंको दूरसे ही छोड़नेकी होती है; उसीप्रकार वेश्याएं ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवानोंको तो चाहती हैं, और अर्थहानिके संयोगों अर्थात् जिन लोगोंसे कोई अर्थलाभ होनेवाला नहीं, ऐसे धनहीन लोगोंके संपर्कको दूरसे ही त्याग देती हैं। जिनके अधरोंमें राग(प्रेमरस) भी विद्यमान है और मदन(कामदेव) भी, तथापि वह पुरुष-विशेषके साथ प्रवृत्त नहीं होता (यह विरोधाभास है); (विरोधपरिहार) जहाँ ओठों व अधम(अहरे) पुरुषोंमें राग होता है, और जो नीच मदन(काम)से युक्त हैं, अथवा जिनके ओठोंमें नीच पुरुषोंके प्रति राग

४. क °लयहो। ५. घ मण्णंति। ६. ख ग जम्म। ७. ग दिट्ठिउ। ८. घ °यउं। ९. क घ ङ °दंतखय°। १०. प्रतियोंमें वम्मह°। ११. क ख ग ङ °भत्तउ। १२. क ङ सणेह°। १३. ख ग °सायणिसत्थ°। १४. ख ग कामुअ°। १५. ब °बिंबिउ। १६. ख ग पमाणु। १७. ख ग जहुं; घ जहु; ङ जहि।

परकोऊहलत्थु[18] विरइज्जए कडिपरिहाणु न लज्जए[19] किज्जए।
सरलत्तणु बाहुलयहिं[20] सिट्ठउ परवंचणअ[21] हियाए[22] न दिट्ठउ।
रुइरवेसविरयण[23] न सरूवउ कामुयमण[24]-सायड्ढणभूवउ[25]।
जं मिट्ठंतु न सद्दहे[26] इहु गुणु तरुणे[27] चित्तरंजण[28] पीडइ[29] पुणु।
मंडणे[30] वण्णावेक्ख[31] न विडजणे[32] [33]गउरउ रवणे[33] न माणुसे निद्धणे।
घत्ता—आयरेण सुइरु[34] आलिंगिवि[35] सरसु[36] पुरिसु महुसंचु जिह।
रिच्चेवए निउणउ[37] खुद्दउ खुद्दउ[38] संचुंबति तिह[39] ॥१२॥

[१३]

का वि वेस नवदविणु गणंती हियधण[1]मणुससंगु अगणंती[2]।
ईसामिसेण निरोहवि[3] वारइ मंदिरि अवरु सधणु पइसारइ।

व काम रहता है, वहाँ पुरुष-विशेष अर्थात् उत्तम-पुरुषमें उसका प्रवृत्त न होना स्वाभाविक है। और जहाँ दूसरोंको कौतूहल (औत्सुक्य) उत्पन्न करनेके लिए ही कटिवेशकी विरचना (सजावट) की जाती है, लज्जाके नहीं। और सारल्य उनकी बाहुलताओंमें तो कह दिया गया है, परंतु उनके परवंचक हृदयमें किसीने नहीं देखा अर्थात् उनके हृदयकी कुटिलतापर किसीने लक्ष्य नहीं दिया। और जिनमें कामीजनोंके मनको आकर्षण करनेवाली रुचिर(सुंदर) वेशरचना तो होती है, परंतु स्वाभाविक रूप (नैसर्गिक सौंदर्य) नहीं होता। और उनमें जो मीठापन है, तो यह गुण श्रद्धाके लिए, अर्थात् श्रद्धाके कारण नहीं; क्योंकि वह तरुणाईमें तो चित्तका अनुरंजन करता है, परंतु पीछे पीड़ा देता है। अपने शारीरिक मंडनमें तो उन्हें सब वर्णों (रंगों)की अपेक्षा (चिंता) रहती है, परन्तु विटजनोंके संबंधमें उन्हें किसी वर्ण—जातिकी कोई अपेक्षा नहीं रहती। और उनका गौरव (गुरुता, गुरुभाव) उनके रमण(भोग करनेवाला धनी व्यक्ति अथवा नितंब-प्रदेश)में होता है, निर्धन मनुष्यमें नहीं। जिसप्रकारसे किसी छत्तेसे उड़ायी हुई निपुण मधुमक्खियाँ मधुके उस सरस(मधुयुक्त) छत्तेको रिक्त करनेके लिए आदरपूर्वक खूब देर-तक चूमती अर्थात् चूस लेती हैं, उसीप्रकारसे ये क्षुद्र(दुष्टाभिप्राय) व निपुण वेश्याएँ किसी सरस (स-काम, स-धन) व्यक्तिको रिक्त (धन-हीन) करनेके लिए आदर(अनुराग)-पूर्वक चिरकाल तक आलिंगन करके चुंबन करती हैं (अर्थात् पूर्णतः चूस लेती हैं।) ॥१२॥

[१३]

कोई वेश्या किसी नये-नये धनिकको गिनती (आदर देती) हुई किसी हृतधन अर्थात् धनहीन मनुष्यके संसर्गकी अवगणना(अवहेलना) करती हुई ईर्ष्याके बहानेसे (कि तुझे यहाँ देखकर उस धनिकको ईर्ष्या होगी) उसका गृहप्रवेश निषिद्ध करके, उसे हटा देती है, और घरमें

१८. ख ग °रलत्थु। १९. क ङ °हिं; घ °इं। २०. ख ग °लयहो। २१. क ङ वंचण; घ °वचणु। २२. क घ ङ हिययाए; ख ग हिउए। २३. क घ ङ °यणु। २४. ख ग कामुअ°। २५. क ख ग ङ साड्ढयण;° क घ ग ङ °भूयउ। २६. ख ग सद्दहे। २७. ख ग घ °ण। २८. क ङ चित्तु°। २९. ख ग °ए। ३०. घ °ण। ३१. घ वक्ख°। ३२. घ °यणि। ३३. क °रउ वणि; ख ग गउर वणे। ३४. ग मुयरु। ३५. ङ °घिवि। ३६. ग °स। ३७. ख ग णेउणउ; घ °णउं। ३८. ख ग °ए। ३९. घ तिहं।

[१३] १. ख घ ग °धणु। २. क ख ग ङ अमु°; घ अय°। ३. क घ ङ °हिंवि।

काए वि जूरंतीए[4] वियप्पिउ[5] वंचयकामुएण[6] जो अप्पिउ।
कूडउ दम्मु निएवि विमत्तिए किज्जइ काइँ कज्जे निव्वत्तिए।
भग्गभाडिविडु[7] दिट्ठउ काय वि लयउ[8] कडच्छए[9] चोडए[10] धाएवि[11]।
पच्छए जं धणु लद्धु चउग्गुणु नियसोहग्गखोरे निक्खइ पुणु।
धणु वि दिण्णु निरवेक्ख वियंभइ ढोउ न लहमि[12] को वि उवलंभइ।
इय पेक्खंतु चोरु किर गच्छइ मिहुणहँ[13] निहुवणु[14] [15]कहिं मि[15] नियच्छइ।
गाढालिंगणचप्पियथणयडु [16]कामट्ठाण चारुचुंबणपडु।
दसणकोडिपीडियबिंबाहरु नच्चावियभूभंगमणोहरु।
सेयसलिलवलियकवोलउ[17] अद्धक्खरखलंतकलरोलउ।
गामासन्नवणु[18] व हयवच्छउ[19] रायउलं व करणपरिहच्छउ[20]।
कम्मवियारु व रूवियबंधउ रिद्धकिसाणु[21] व अप्पियखंधउ।

दूसरे धनीको प्रवेश कराती है। किसी मतिहीन (किंकर्तव्यविमूढ़) गणिकाने, धूर्त कामुकके द्वारा अर्पित झूठे द्रमको देखकर खेद करते हुए सोचा कि अब कार्य समाप्त हो चुकनेपर क्या किया जा सकता है? किसीने अपना भाड़ा लेकर भागे हुए विटको देखा तो दौड़कर उसको कछोटे व चोटीसे पकड़ लिया। पीछे जो चौगुना धन मिला, उसे अपनी शृंगारपिटारीमें डाल लिया। (अत्यासक्तिके कारण) धन दी जानेपर भी कोई वेश्या (यह निर्धन है, ऐसा सोचकर) उसके प्रति निरपेक्ष रहती है (उसे स्वीकार नहीं करती), और किसी अन्य(धनी)के प्रति बड़ा अनुराग दिखलाती है, (ऐसा देखकर) मुझे अपनी भेंट नहीं मिली, इस प्रकार कोई किसी गणिकाको उलाहना देता (फिरता) है। विद्युच्चोर यह सब देखता हुआ चला जा रहा था, तो कहीं उसने मिथुनोंके सुरत (व्यापार) को देखा। कहीं गाढ़ आलिंगनके द्वारा स्तनोंके अग्रभागोंको आक्रांत करके कामस्थानोंके सुंदर चुंबनमें पटुता दिखाई जा रही थी। कहीं दाँतोंके अग्रभागसे बिंबाधरोंका पीड़न, भ्रूभंगिमाका मनोहररूपसे नर्तन, स्वेदसलिल कणोंसे सुंदर कपोल और आधे अक्षर स्खलित होते हुए (प्रणयक्षणोंकी) वार्त्ताका कलकल हो रहा था। कहीं स्त्री-पुरुषोंके जोड़े ग्रामके निकटवर्ती वनके समान हो रहे थे—ग्रामका निकटवर्ती वन हतवृक्ष होता है, अर्थात् उसके वृक्ष काट भी लिये जाते हैं, व नानाप्रकारसे आहत भी होते हैं, उसीप्रकार स्त्री-पुरुष युगल भी परस्परके वक्षस्थलोंको आहत कर रहे थे; और भी वे स्त्रीपुरुषोंके जोड़े राजकुलके समान करण दक्ष थे—राजकुल न्यायालय, मंत्री, सेना, दुर्ग आदि अनेक करणों—साधनोंसे परिपूर्ण होता है, मिथुन कामक्रीड़ाके समस्त साधनों (व आसनों) में परिपूर्ण (व दक्ष) थे। ज्ञानावरणादिरूप अथवा प्रकृति-स्थिति आदिरूप अनेक प्रकारके कर्म-विकारकृत बंधनके समान, वे जोड़े अनेक प्रकारके रतिबंध रच रहे थे। समृद्ध किसानके समान उन्होंने अपने कंधे

४. क ङ °तियइं। ५. क ङ विअ°। ६. क ङ वंचइ°। ७. क °चिउ। ८. क ङ लइउ। ९. क ङ °च्छहि। १०. क ङ °एं। ११. क ङ वायवि; घ धाविवि। १२. पं० में 'लहइ'। १३. क ङ °णहुं; ख ग घ °णहु। १४. क ङ °अणु। १५. क ङ कहि मि; ख ग कहिं वि। १६. क कामट्ठीण°। १७. क °वलियकवो°। १८. क ङ गामासण्ण°। १९. क ख ग °वत्थउ। २०. क ख ग °हत्थउ। २१. क ङ रिद्धि°।

अंधयवहु व जायनहरव्वणु[22] मेल्लियसरु णं धाणुक्कियरणु।
फारक्कु व कड्ढियकरवालउ[23] नइपुलिणं पि व रेयविसालउ।
दाणवबलु व[24] समुग्गयसुक्कउ वणवियलंगु व मुच्छहे ढुक्कउ[25]।
घत्ता—इय मिहुणइँ सयणासीणइँ नयणदलइँ[26] मउलंताइँ[27]।
निव्वत्तियरयभरखिन्नइ[28] निद्दइ[29] नियइ[27] घुलंताइँ[27] ॥१३॥

[१४]

धवलहरपंतिछायए[1] चलंतु हिंडिरतलारकलयलु[2] कलंतु[3]।
निहुअं[4] जि मुणिय पाहरियसासु[5] संपत्तु अरुहयासहो निवासु।
आसरेवि थक्कु कयचोरवित्ति जंबूकुमारवासहरभित्ति।
चिंतइ चोरत्तणु कवणु मज्झु जइ हरमि न इउ धणु जं असज्झु।
तं सुउ वर-वहुव[6] कहावसेसु[7] परियाणिउ[8] कारणु निरवसेसु।
तावेत्तहिं जंबुकुमारजणणि परिसुसइ डज्झमाणे व[9] धरणि।

अर्पण कर रखे थे; समृद्ध किसान सहारेके लिए (दूसरे वंधुओंको) कंधा अर्पित करता है, युगलोंने परस्पर आलिंगनमें अपने कंधे अर्पित कर रखे थे। युगल किसी अंधेकी वधूके समान थे—अंधा व्यक्ति अपनी वधूको यत्र-तत्र अनुचित स्थानोंमें नख-व्रण लगा देता है; उसीप्रकार युगल भी विवेक किये बिना परस्परको अनुचित स्थानोंमें नख-व्रण लगा रहे थे, और इसप्रकार स्वर छोड़ रहे थे, मानो धनुर्धरोंका युद्ध हो, जिसमें बाण छोड़े जाते हैं। फारक्क धारण करनेवालोंके समान वे करवाल (तलवार, युगलपक्षमें हाथोंसे बाल) खींच रहे थे। नदीके पुलिन(तट)के समान वे अत्यधिक रेत (बालू, युगल पक्षमें रेतस्-रज, वीर्य) से युक्त थे; अथवा नदीके रेत एवं जलके आगार तटके समान, युगल रेतस्रूपी जलके आगार थे। युगल दानव सैन्यके समान थे—दानव सैन्यमें शुक्र अर्थात् शुक्राचार्य उत्पन्न हुए थे, और युगल समुत्पन्न शुक्र अर्थात् (रति क्रीड़ामें) अत्यंत वीर्यवान् थे, तथा व्रणोंसे विकलांग अर्थात् घायल होकर मूर्च्छित हो रहे थे। इसप्रकार विद्युच्चरने शयनोंपर आसीन मिथुनोंको, जिनके नेत्र मुकुलित हो रहे थे, संपन्न किये हुए रतके आयाससे थककर निद्रामें घुलते (डूबते) हुए देखा ॥१३॥

[१४]

प्रासाद पंक्तिकी छाया(ओट)में चलते हुए, घूमते हुए नगर रक्षकोंके द्वारा किये जाते हुए कोलाहल व पहरेदारोंके श्वासको मौन हुआ जानकर, वह अरहदासके घर प्राप्त हुआ, और जंबूकुमारके वासगृहकी भित्तिका आश्रय लेकर चोरवृत्तिसे अर्थात् छिपकर वहाँ खड़ा हो गया, एवं सोचने लगा—यदि इस असाध्य(दुर्लभ)धनका अपहरण न करूँ तो मेरा चोरपना ही क्या ? इसके अनंतर (वहीं खड़े-खड़े) उसने वर-वधुओंके उस अवशेष कथालापको सुना और निःशेष कारण (वृत्तांत) को जान लिया। तबतक इधर जंबूकुमारकी माता जलती

२२. ख ग °नहरच्चणु। २३. ख ग कड्ढिय°। २४. ख ग दाणु व बलु व। २५. व °उं। २६. क ङ °लइ। २७. ङ °ताइ। २८. क ङ° खिण्णइं। २९. क घ ङ °इं।

[१४] १. क °छायइं। २. क ङ हिंडियतलाय°। ३. क कयंतु; ख ग करंतु। ४. क ङ °अउ; ग °वउ। ५. ख ग वाहि°। ६. क ङ वहुय। ७. ग °विसेसु। ८. क घ ङ °णिउं। ९. ख ग वि।

सिवएवि जेम दुहवियलपाण[10] सिरिनेमिकुमारें मुवमाण[11] ।
घरु पंगणु मेल्लइ [12]वार-वारु[12] पुणु जोवइ[13] सुयवासहरदारु[14] ।
एत्तहिँ[15] कुमारु किर दढपइज्जु[16] बहुबाहु[17] चउक्कु[18] वि कलियविज्जु[19] ।
किं अज्ज वि सुउ तवचरणबुद्धि किं वट्टइ बहुमुहरायलुद्धि ।
किं अज्ज वि मण्णइ[20] मोक्खवासु किं कंठे पडिउ पियबाहुपासु ।
किं अज्ज वि अप्पउ महइ सिद्धु किं तिक्खकडक्खसरेहिँ विद्धु ।

घत्ता—इय [21]चिंताचक्कचडावियए[21] चित्तब्भमणचमक्कियए[22] ।
जिणवइए कुड्डसंलीणउ[23] दिट्ठु चोरु अदवंक्कियए[24] ॥१४॥

[१५]

बोल्लावियउ तिमिरि किं वंछइ[1] माणुसु कवणु एउ रे अच्छइ[1] ।
तक्करु भणइ[2] माए[3] मा बीहहि[4] सहलु होउ जं हियवइ ईहहि[4] ।
हउँ नामेण चोरु विज्जुचरु हिंडमि नयरु निसिहिँ[5] नीसंचरु ।
करमि अकम्मु सिट्ठजणदूसिउ मंदिरु तं न जं न मइँ मूसिउ[6] ।
तेरउ एक्कु नवर न निहेलणु चोरमि अज्जु तं पि पेरिउ[7] मणु ।
ताम कुमारहो मायए[8] वुच्चइ[8] गेण्हहि[9] दविणु पुत्त जं रुच्चइ[8] ।

हुई भूमिके समान (दीर्घ और उष्ण) श्वास ले रही थी। श्रीनेमिकुमार (२२वें जैन तीर्थंकर) के घर छोड़ते समय जिसप्रकार शिवदेवी दुःखसे विकलहृदय हुई थी, उसी प्रकार विकलात्म होकर बार-बार घर-आँगनको छोड़ती (आती-जाती) थी, फिर पुत्रके वासगृहका द्वार देखती कि क्या कुमार अभी भी दृढ़प्रतिज्ञ है, अथवा वधूचतुष्ककी (काम)विद्याके वशमें हो गया ? क्या अभी भी पुत्रका मन तपश्चरणमें ही लगा है, अथवा उसे वधुओंके मुखरागका (कुछ) लोभ हुआ है (अर्थात् वधुओंमें आसक्ति हुई है) ? क्या अभी भी वह मोक्षवासको ही (श्रेष्ठ) मानता है, अथवा क्या उसके कंठमें प्रियाओंका बाहुरूपी पाश पड़ गया है ? क्या अभी भी अपनेको सिद्ध बनाना चाहता है, अथवा तीक्ष्ण कटाक्ष शरोंसे बिंध गया ? इस प्रकार चिंता-चक्रपर चढ़ाई हुई उद्भ्रांत चित्त व विस्मित जिनमतीने बिना डरे हुए, भित्तिसे लगकर छिपे हुए चोरको देखा ॥१४॥

[१५]

(जिनमतीने) उसे पुकारा—अरे ! अंधेरेमें यह कौन आदमी है ! और क्या चाहता है ? तस्करने कहा—माँ डरो मत, तू जो हृदयसे चाहती है, वह बात सफल हो। मैं विद्युच्चर नामका चोर हूँ, रात्रियोंमें नगरका भ्रमण करनेवाला निशाचर हूँ, तथा शिष्टजनों-द्वारा दूषित अपकर्म करता हूँ। ऐसा कोई घर नहीं है, जिसे मैंने लूटा नहीं। एक तेरा ही घर नहीं लूटा। इसमें भी आज चोरी करूँ, इस प्रकार मेरा मन प्रेरित हुआ। तब कुमारकी माँ

१०. ग °पाणि। ११. ख ग वुच्च°; क मुंच°। १२. क वारु°; ख नारुहारु; ग °वार; घ नारुहारु। १३. क क जोयइ। १४. ख ग घ सुअ°; ख ग °दार। १५. ख ग °हि। १६. क क °ज्ज। १७. क क °याउ; ख ग °याहु। १८. ख ग °क्क। १९. घ °विज्ज। २०. क क °इं; घ मन्नइं। २१. घ चिंताचक्कि चडा°; ख ग °चडावियइं। २२. ख ग °ब्भमणें°। २३. ख ग °सइंलीणउ;; घ °सइलीणउ। २४. ख ग अवद°; घ °यइं।

[१५] १. क °हिं; घ क °हि। २. क घ क °इं। ३. ख ग माय। ४. क °हिं। ५. ख ग घ °हि। ६. घ °उं। ७. घ पेसिउ। ८. क °इं। ९. क क °हिं; घ गिन्हहि।

निसुणेवि बोलिज्जइ कुसुमालें तउ धणु पेक्खमि सरिसु पलालें ।
चोरिय चित्ते[10] एत्थु न पयट्टइ चिंतासल्लु अवरु महु वट्टइ ।
वार-वार जं निलए पईसहि[11] मंदिराउ पुणु पंगणि दीसहि[12] ।
दारकवाड पुणु वि जं लक्खहि[13] कारणु कवणु माए तं अक्खहि[13] ।
सीसइ तासु [14]सगग्गिरवयणए बइयरु अंसुजलोल्लियनयणए[15] ।
एक्कु जि पुत्तु पुत्त अम्हारउ बंधव-पियरमणोहरगारउ ।
अज्जु[16] जि परिणावियउ विवत्थए[17] लेसइ दिक्ख [18]विहाणए सत्थए[18] ।
घत्ता—इय पुत्तविओयकुढारें फाडेवि खंडु खंडु कियउ[19] ।
अंगारपुंजे संदिण्णउ[20] लवणु व सयसक्करु हियउ ॥१५॥

[१६]

निसुणेविणु[1] तं वयणं पवरो वयणं पडिजंपइ विज्जुचरो ।
करुणारसरंजियसुद्धमणो पडिवन्न[2]-पवड्ढिय नेहघणो[3] ।
सुणियं[4] [5]व मए[5] रहसुब्भवियं वहुवाहि[6] वरेण समं लवियं ।
न पवत्तइ[7] केम वि पुत्तु[8] तउ वहुवोल्ल-[9]महल्ल-नए-ण-जउ[9] ।
अवरेक्क पयासमि माए[10] मइ विहडेइ न अज्ज वि कज्जगइ ।

बोली—पुत्र तुझे जो रुचे वह द्रव्य ले ले । यह सुनकर चोरने कहा—मैं तेरा धन पुआलके समान समझता हूँ । यहाँ मेरे चित्तमें चोरीकी भावना ही प्रवृत्त नहीं हो रही है । मुझे तो दूसरा ही चिंताशल्य उत्पन्न हुआ है । तू बार-बार घरमें प्रवेश करती है, घरसे फिर प्रांगणमें दिखाई देती है, फिर द्वार कपाटोंको देखती है; तो हे माँ ! इसका क्या कारण है ? सो बताओ ! गद्‌गद वचनों और अश्रुजलसे आर्द्रनेत्रोंसे वह उसको वृत्तांत कहने लगी—हे पुत्र ! हमारा एक ही पुत्र है, जो बांधवों और माता-पिता सबके लिए सुखदायक है । आज ही व्यवस्था (विधि)पूर्वक उसका परिणय कराया गया है; और विहान (प्रभात) होते ही वह शास्त्र-विधिके अनुसार (दिगंबरी)दीक्षा ले लेगा । इस पुत्रवियोगके कुठारने हृदयको फाड़कर खंड-खंड कर दिया है, और अंगारमें डाले हुए लवणके समान शतशः विदीर्ण कर दिया है ॥१५॥

[१६]

विद्युच्चर करुणारससे रंजित शुद्ध मन और स्नेह प्राप्त करनेसे वर्द्धित-स्नेह होकर ये प्रतिवचन बोला—मैंने वधुओंके द्वारा वरके साथ किया हुआ समस्त उत्कंठाजनक वार्तालाप सुन ही लिया है । तुम्हारा पुत्र किसी भी तरह संसारमें प्रवृत्त नहीं होगा, यह वधुओंके बड़े-बड़े बोलोंके न्यायसे जीता नहीं जा सकता। हे माता ! एक और युक्ति प्रकट करता हूँ, जिससे (संभवतः) अभी भी कार्यकी गति (अर्थात् अभीप्सित कार्य) विघटित न हो । हे अम्मा !

---

१०. ख ग चित्तें । ११. क ग घ °इ; °हिं । १२. क ङ °इ । १३. क ख ङ °हिं । १४. ख ग सगि°; घ सगग्गर°; °वयणइं (सभी प्रतियोंमें) १५. क घ ङ °णइं । १६. ख अज्ज । १७. क विइत्थइं; ख ग वियत्थइ; ङ विइत्थइ । १८. क विहाण पसत्थइ । १९. क घ °उं । २०. क घ °णउं ।

[१६] १. क ङ °प्पिणु । २. क ख ग ङ °वण्ण । ३. क ङ °घणो । ४. क ङ °अं । ५. ख ग वइयर । ६. ख ग° याहिं; घ °वाहिं । ७. घ °त्तइं । ८. ख ग पुत्त । ९. क ख ग ङ °ल्लणए अजओ; घ °ल्ल नएण जुओ । १०. घ माय ।

मइँ[11] एत्थु पवेसहि[12] अम्मि[13] जइ तिह[14] बोल्लमि वड्ढइ[15] जेम[16] रइ।
सुइ[17]-सत्थइँ बुज्झमि[18] आरिसइँ[19] परचित्तइँ[20] जाणमि जारिसइँ।
जणकम्मण-थंभण-मोहणयं[21] भुवणस्स[22] वि खोहण[23]-जोहणयं।
नयणंजणजायरभंजणयं सुहसुत्तपबोहणरंजणयं।
विहडंतमहाधिइजोडणयं पियमाणुससंगमतोडणयं।
घत्ता—वहुवयणकमलरसलंपडु भमरु कुमारु न जइ करमि।
आएण समाणु[24] विहाणए[25] तो तवचरणु[26] [27]हउँ मि[27] सरमि ॥१६॥

[१७]

तो कुमारमायरीए[1] [2]पुत्तदुक्खकायरीए।
चोरवीर[3]सासियाए[4] सुद्धमुद्ध[5]भासियाए[6]।
ढिल्लबाहुकंकणाए [7]छित्तदारढंकणाए[8]।
सुण्हनामु[8] उच्चरेवि पिल्लिया कवाड बे वि।
नंदणो मुणेवि माय कारणेण केण आय।
आनमंसियं[9] पयाइँ[10] पुच्छइ त्ति अम्मि काइँ।
एरिसम्मि जं सुसुत्ति[11] आगयासि मज्झरत्ति[12]।
अक्खए कुमार बुज्झु गब्भसंठियम्मि तुज्झु।

यदि तू मुझे यहाँ (भीतर) प्रवेश करा दे तो मैं ऐसा बोलूँगा जिससे उसकी संसारमें रति बढ़े। मैं ऐसे श्रुतिशास्त्रोंको जानता हूँ, जिनसे लोगोंकी जैसी चित्तवृत्तियाँ हैं, उन्हें जान लेता हूँ, और जो लोगोंका वशीकरण, स्तंभन व मोहन करनेवाले, व सारे भुवनको भी विक्षुब्ध कर देनेवाले एवं लड़ा देनेवाले हैं; तथा ऐसा नेत्रांजन भी जानता हूँ, जो जागृतोंको सुला देनेवाला एवं सुखसे सोये हुओंको जागरणका आनंद देनेवाला, तथा विघटित होती हुई (छूटती हुई) महाधृति (महान् प्रीति-सुख) को भी जोड़नेवाला, और प्रियजनोंके संगमको तोड़नेवाला है। अतः यदि मैं कुमारको वधुओंके मुखकमलरूपी मधुका लंपट भ्रमर न बना सकूँ; (अर्थात् कुमारको वधुओंके प्रति अत्यंत आसक्त न कर सकूँ) तो विहान होते ही मैं भी इसके साथ तपश्चरणका अनुसरण करूँगा ॥१३॥

[१७]

तब पुत्र दुःखसे कातर कुमारको माताने उस चोर वीर(भ्राता)के सरल व निश्छल वचनोंसे कहेको सुनकर, ढीले बाहु कंकणोंसे (शब्द करते हुए) द्वार कपाटोंको छूकर वधूका नामोच्चारण करके दोनों किवाड़ोंको ढकेल दिया। किसी कारणसे माँको आयी जानकर पुत्रने माँके पैरोंको नमस्कार करके पूछा—माँ क्या बात है, जो इसप्रकार सोनेके समय अर्द्धरात्रिको ही तू आ गयी? माँने कहा—कुमार समझो(सुनो)—जब तू गर्भमें ही था तो मेरा एक कनिष्ठ भाई जो तभीसे

११. क छ मइ। १२. ख ग °सहि। १३. क छ अंति। १४. घ तिहं। १५. ख ग वट्टइ। १६. क छ जेण। १७. सुह। १८. घ बोल्लमि। १९. क छ °सई। २०. क परि°। २१. क छ खो°। २२. ख ग भुय°। २३. क छ मो°। २४. क छ °ण। २५. क घ छ °णइं। २६. क छ तउ°। २७. क छ हउ°; ख ग °वि।

[१७] १. क छ °रीय। २. ख ग वुत्तु°। ३. क °वीह°। ४. क °याइ; छ °याइ। ५. क सुद्धुमुद्धु°। ६. क घ छ °णाइं। ७. क छ छित्तवार°; ख छिण्ण°। ८. घ मुन्ह°। ९. क छ ता णमसिओ; घ ता नमंसिउं। १०. क °ई। ११. ख ग °त्ते। १२. ख ग मज्झे।

मे कणिट्ठु भाइ एक्कु मंडलंतरम्मि थक्कु ।
वच्छरेसु आउ अज्जु जाणिऊण तुज्झ[13] कज्जु ।
दंसणाणुरायबद्धु दुल्लहेट्ठगोट्ठिसद्धु[14] ।
नेच्छए निसाविरामु अच्छए दुवारे मामु ।
बोल्लए कुमारु बूहि [15]आगुरु लहू व ऊहि[15] ।
किं[16] [17]विलंबए सुधम्मि[17] आवउ समाणि अम्मि[18] ।
घत्ता—पुत्ताणुमइए उवलद्धए [19]अब्भंतरथियाए थिरए[19] ।
जिणवइए[20] भाइ हक्कारिउ [21]निबिडनेहकोमलगिरए ॥१७॥

[१८]

तं सुणिवि[1] सरीरि[2] धरंतु समु परियत्तवि[3] तं चिररूवकमु[4] ।
पयडियकिराडमयवेसपडु आजाणुलंबपरिहाणपडु ।
वंकुडियकच्छ[5]-कयडिल्लकडि[6] कण्णंत[7]लुलावियकेसलडि ।
[8]पुट्ठीनिहित्तकयबंधभरु[9] उग्गंठियविसरिसकुंचधरु[10] ।
[11]आउत्तमंगपंगुरियतणु सिढिलाहरोट्ठदंतुरवयणु[12] ।
डोल्लंतबाहुलयललियकरु वासहरि पइट्ठउ[13] विज्जुचरु ।

देशांतरमें रहता था, वह आज तेरा विवाह कार्य जानकर अनेक वर्षोंपर तुम्हारे दर्शनोंके अनुरागसे बंधा हुआ, एवं ऐसी दुर्लभ अभिलषित गोष्ठीकी श्रद्धा(अभिलाषा)से यहाँ आया है, और द्वारपर ठहरा है, परंतु वह रात्रिमें विराम(रुकना) नहीं चाहता। तब कुमार बोला—माँ ! वे बहुत बड़े अर्थात् पितृस्थानीय हैं, और मैं लघु अर्थात् पुत्र स्थानीय हूँ, यह सोचो ! (अतः) स्वधर्म(स्वकर्त्तव्य)में देर क्यों ? वे ससम्मान आवें (अर्थात् सम्मानपूर्वक उन्हें ले आओ)। (यह सामानिक छंद है)। पुत्रकी अनुमति मिलनेपर भीतर ही खड़ी हुई जिनमतीने स्थिर एवं अत्यंत स्नेहपूर्ण कोमलवाणीसे भाई(विद्युच्चर)को हाँक लगायी ॥१७॥

[१८]

यह सुनकर अपने थकावट-भरे शरीरका वह पुराना वेष बदलकर उसने अपना ऐसा रूप प्रकट किया—किरातोंके समान मृगछालाका पटु(दक्ष या फुर्तीला) वेश, आजानुदीर्घ परिधान वस्त्र, बाँका उरोबंधन, कमरमें कटिवस्त्र (धोती) बाँधे हुए, कर्णांत तक लहराती हुई केशलटाएँ, पीठपर डाला हुआ केशसमूह, खुली हुई विसदृश (असमान या अद्भूत) कूर्चाको धारण किये, संपूर्ण शरीरको उत्तमांगपर्यंत आच्छादित किये, शिथिल अधरोष्ठ व दंतुर (दाँत दिखाई देता हुआ) मुख तथा डोलते हुए बाहु और सुंदर कर धारण किये हुए वह विद्युच्चर

१३. घ तुज्झु । १४. ग °गोट्ठ° । १५. क आवुत्तलक्कुलऊहि । १६. ख ग कं । १७. क ङ विलंब पत्तु धम्मि । १८. क ङ यम्मि । १९. ख ग अब्भंतरंमि माएरिए । २०. क ङ °वयए । २१. ख ग निवड° ।

[१८] १. क ङ मु° । २. क ङ °र । ३. घ °त्तिवि । ४. क ङ °रूय° । ५. क ङ °कच्छु । ६. ख ग घ °ढिल्लकडि । ७. घ कन्नंत° । ८. घ पिट्ठी° । ९. ख ग °बद्धभरु । १०. घ °कुंचु° । ११. क ङ आवत्त-भंग° । १२. ख ग °दंत रु व° । १३. ख ग पय° ।

तं नियवि कुमारु समुट्ठियउ दरपणमियसिरु[14] समहिट्ठियउ।
[15]अण्णोण्णालिंगणरसभरिया [15]विहिं पीढहिं[16] बेण्णि वि वइसरिया।
पुच्छिज्जइ कुसलु पंथसमिउ[17] बहुदिवस माम [18]कहि कहिं[18] भमिउ[19]।
घत्ता—विज्जुच्चरिं कुसलु कहिज्जइ निसुणि कुमार कालु[19] गमिउ।
वाणिज्जकज्जि दिढचित्तें जं जं मंडलु महँ[20] भमिउ[21] ॥१८॥

[१९]

दक्खिणाए दिसाए समुद्दं धरेऊण मलयाचलं सिंघलं केरलं तोसलं कोसलं लंजिया-तंजिया-मंडलं चोडदेसं। असेसं सिरीपव्वयं गंगवाडीसमं पंडि-द्दविडंध[1]-चीणं[2]-सकण्णाड[3]-कंचीपुरं कुंतलं। सज्झगिरि-रट्ठमहरट्ठ[4]-वइदब्भ-वइरायरं भद्दरंगं वराडं च तावीयडं नम्मयाडं[5]। सविंज्झं-पभासं[6]-पइट्ठाण[7]-आहीर-चेउल्ल[8] संजाण-भरुयच्छ-कच्छेल्ल सोपारयं कोंकणं। नागरं[9] सिंधुतीरं कवेरीतडं कडहत्तं[10] वइरि-किंकिंध[11]-तोयावली दीवयं पारसं हंस-छोहारदीवं-[12]लुंठु मम्मणं[12]। पच्छिमेणं थलीमंडलं[13] वालभं सोमसोरट्ठ-कच्छं [14]महं भिल्लमालं[14] विसालं च सोवण्णदोणी-

वासगृहमें प्रविष्ट हुआ। उसको देखकर कुमार थोड़ा नत-शिर होकर (प्रणाम करते हुए) उठ खड़ा हुआ और बहुत अधिक प्रसन्न हुआ। परस्पर स्नेहपूर्वक आलिंगन करके दोनों दो पीठोंपर बैठ गये। पथश्रांत मामासे (कुमारने) कुशल समाचार एवं यह पूछा कि हे मामा! कहो! इतने दिनोंतक कहाँ भ्रमण किया? विद्युच्चरने कुशल कहा—(और बोला) हे कुमार सुनो! वाणिज्यकार्यसे सुदृढ़ चित्तसे मैंने जैसे काल गमाया और जिस-जिस देशका भ्रमण किया ॥१८॥

[१९]

दक्षिण दिशामें समुद्रको धरकर मलयाचल, सिंहल, केरल, तोसल, (महा)कोशल, लंजिया व तंजिया प्रदेश, चोडदेश, श्रीपर्वत, गंगवाडी और उसके साथ पांड्य, द्रविड़, आंध्र देश एवं चीनका भ्रमण किया। फिर कर्नाटक, कांचीपुर, कोंतल, सह्याद्रि, महाराष्ट्रदेश और विदर्भ तथा वज्राकर और भद्ररंगमें घूमा। फिर बरार, ताप्तीतट, नर्मदातट, विंध्य, प्रभासतीर्थ, पैठण, आभीर, चेउल्लदेश, जहाजोंका स्थान (बंदरगाह) भरुकक्ष (भड़ौच), कक्ष, सोपारक (सूरत), कोंकण, नागर देश, सिंधु तट, कावेरी तट, कडहत (?), वइर देश (?) किष्किंधा, तोयावली द्वीप, पारस देश, हंस द्वीप जहाँके लोग दूसरोंको लूटनेवाले(लुंठ) और अव्यक्त वचन बोलनेवाले हैं, उन द्वीपोंका भ्रमण किया। पश्चिमसे स्थलीमंडल (राजस्थान), वालभ (वल्लभी?), सोमनाथ, सौराष्ट्र तथा महान् भिल्लमाल (भीनमाल) जिसकी रचना एक विशाल सुवर्णद्रोणी

१४. क ङ °पणविवि सिरु। १५. घ अन्नुन्ना°। १६. क विहि ए ट्ठिहि; ख ग ङ विहि पी°; घ विहि वी°। १७. घ °मिउं। १८. ख ग °कहि; घ कहिं°। १९. क काल। २०. क ङ मइ। २१. ख घ °उं; ङ भरिउ।

[१९] क ख ग ङ दिवि°। २. क ख ग ङ °वीणं। ३. घ सकण्णाड। ४. ख ग रिट्ठु°; घ °मरहट्ठ। ५. ख ग घ °पाडं। ६. प्रतियोंमें 'प्रयासं°'। ७. ख ग घ पय°। ८. क ग घ ङ वं°। ९. ख ग नारंग। १०. क ङ करहतं; ख ग करहत। ११. क ङ किंकिध; ख ग किंकिथ। १२. क ङ लुडं वंकण; घ लुट्टुं वं मडं मंकणं। १३. क ङ थनी°। १४. ख ग मसंभिल्ल°; घ मरुं भिल्ल°।

समं। अब्बुयं[15] लाडदेसं[16] च मेवाड-चित्तउड[17] मालव य तलहारियं। पारियत्तं[18] अवंती[19] तहा तावलित्ती[20] भडं दुग्गमं। उत्तरेण य सायंभरी[21] गुज्जरत्ताए खस-बब्बरं[21] टक्क[22]-करहाड[23]-कसमीर-हम्मीर-कीरं तुरुक्कं[24] तहाताइयं। वज्जरं सिंधु-सरसइतडं[25] मेच्छदेसं सकिंकाण-लोहउर-पुट्ठाहरं[26] बालुयासायरं [27]इत्थिरज्जं अवज्जं[27] समासाइयं[28]। एक्कवयकण्ण[29]-पावरण-हयवयण-गोवयण-करिवयण-हरिवयण-वाणरमुहं[30]। पुव्वभायम्मि गउडं[31] कुरुं[32] कण्णउज्जं[33] स-राढं[34] वरेंदीसिरी मज्झदेसं वरं। गोल्ल-वंगंग कोंगं कलिंगं महाउड्डियाणं च जालंधरं। गंग-जउणं सरूवायरं कामरूवं[35]-डहाला-पयग्गं[36]-वणघट्ट[37]-वाणारसी-वडहर[38] सत्तगोयावरीभीमगंगोवहिं[39] जोहणारं[40] सुहं।

घत्ता—विहुणवि[41] सिरु विंभियचित्तें वुच्चइ माम[42] न वणियवरु।
पच्चक्खु दइउ[43] इय सत्तिए[44] अवस होसि[45] तुहुँ[46] वीरनरु[47] ॥१९॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए वहू-वरक्खाणयं नाम [48]नवमो संधी समत्तो[48] ॥ संधिः ९ ॥

के समान है; फिर अर्बुद (आबूपर्वत), लाटदेश, मेवाड़, चित्तौड़, मालव तथा तलहारको देखा। फिर पारियात्र, अवंती तथा भटोंके लिए दुर्गम ताम्रलिप्तीको देखा। उत्तरदिशासे शाकंभरी [सांभर-अजमेर], गूर्जरत्रा, खसदेश, बर्बरदेश, टक्कप्रदेश, करहाट, काश्मीर, हम्मीर, कीर देश, तुरुष्क (तुरुक्क-तुर्की), तथा ताजिक, वज्जर देश, सिंधु व सरस्वतीका तट, म्लेच्छ देश, केक्काण देश सहित लोहपुर एवं अन्य (स्थानों)को छूता हुआ बालुकासागर, स्त्रीराज्य व अव्जको पहुँचकर प्रेमतत्पर वचन बोलनेवाली एक म्लेच्छ जातिके देश, एवं अश्वमुख, गोमुख, हरिमुख, व्याघ्रमुख और वानरमुख इन देशोंमें गया। पूर्वभागमें गौड़देश, कुरु(जांगल), कन्नौज, राढ़, वरेंद्रश्री, और सुंदर श्रीमध्यदेशको देखा। फिर गोल्लदेश, बंग, अंग, कुर्ग, कलिंग, और महान् उड़ियों (उड़ीसा निवासियों)के जालंधर (?), गंगा, यमुना, सौंदर्यके आकर कामरूप, डहाला (डाहल-जबलपुर) प्रयाग, चुनार, वाणारसी, बडहर, सप्तगोदावरी, भीम, गंगोदधि (गंगासागर) तथा शुभ(सुंदर)योधनद्वीपकी यात्रा की।

(यह सब सुनकर) सिर हिलाकर विस्मित चित्तसे कुमार बोला—मामा! तुम वणिक्वर नहीं हो। इसप्रकारकी शक्तिसे तुम प्रत्यक्ष दैत्य हो, और अवश्यमेव एक बड़े वीरपुरुष हो।

इसप्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस श्रृंगार-वीर-रसात्मक महाकाव्यमें वधूवर-आख्यान नामक नवम संधि समाप्त ॥ संधि ९ ॥

---

१५. क ख ग घ अच्चुयं। १६. ख ग डाल°। १७. क ङ °वड। १८. ख ग °यत्तू। १९. ख ग यवंती। २०. ख ग नामभत्ती; घ ताम°। २१. क ङ गुज्जरा तार खं संवच्छरं; ख गुत्तरत्ता खसं बब्बरं; ग गुत्तरत्ता खसं चच्चरं। २२. क तुक्क। २३. घ °हार। २४. क ङ ग ङ तुरक्कं। २५. क ङ °वज्जं। २६. क ङ पुव्हाहण। २७. क ङ पच्छिरज्जं; ख ग घ °अतज्जं। २८. ख ग °इणए। २९. क ङ पक्कवय°। ३०. ख ग °मुहा। ३१. क ङ गढडं; घ मउडं। ३२. क ग ङ कुरं। ३३. ख ग कणउज्ज; घ कन्न°। ३४. क ङ भराहं; ख ग राढं। ३५. क ङ कान°। ३६. क ङ पयाग। ३७. ख ग चणेघट्ट; घ वन व घट्ट। ३८. क ङ चडु°। ३९. क ङ सोत्तगोयावरीसीम°। ४०. ख ग घ लोह° ४१. क घ ङ °णिवि। ४२. क ख ग घ मामु। ४३. क दइयउ; ङ दयउ। ४४. क ङ सत्तियए। ४५. घ होहि। ४६. क ङ तुह; ख ग तुहं। ४७. क घ ङ वीरु°। ४८. क घ ङ णवमा इमा संधी।

[१]

विहवेण[1] रायनियडत्तणेण कलहेण जत्थ कव्वगुणो।
कव्वस्स तत्थ[2] कइणा वीरेण जलंजली दिण्णा[3] ॥१॥
जत्थ गुडाईण जहा महुरत्ते[4] भिण्ण-भिण्णमुवलंभो[5]।
निव्वडइ तत्थ गरुवं[6] रसंतरं वीरवाणीणं ॥२॥
[7]पडिपुच्छियकुसलकयायरेण[8] मायामामेण विज्जुचरेण।
[9]संदिण्णसुयणमणरणरणउ[10] बोल्लाविउ[11] अरुहयासतणउ[12] ॥३॥

अहो विमलचार[12]-जंबुकुमार मारावयार-भुवणेक्कसार।
सारंगचंगचलदीहनयण नयणाहिरामछणइंदवयण।
वयणामयपीणियसुयणकण्ण कण्णाइसाइ[13] चायप्पवण्ण[14]।
[15]वण्णाखिलधवलियसिहरिसिंग[16] सिंगारकमलमयरंदभिंग।
भिंगालिसरिसघणनीलबाल बालक्ककिरणतणुतेयमाल।
मालंकियंग-कित्तिलयकंद [17]कंदावियपडिभडरमणिविंद।

[१]

जहाँ ऐश्वर्यसे, राजाके (निरंतर) नैकट्यसे अथवा कलहसे काव्यगुण उत्पन्न होता है, वहाँ, उस काव्यके लिए वीर कविने जलांजलि दे दी है ॥१॥ गुड़ादिकसे जहाँ (व जिसप्रकार) भिन्न-भिन्न माधुर्यकी उपलब्धि होती है, उसीप्रकार वहाँ वीर कविकी वाणीमें उत्कृष्ट रस-भिन्नता निष्पन्न होती है ॥२॥ कुशल समाचारपृच्छा आदिके द्वारा आदर प्राप्त छद्म मामा विद्युच्चर, स्वजनोंके मनमें उद्वेग उत्पन्न करनेवाले अरहदासपुत्रसे इसप्रकार बोला—॥३॥

हे शुद्धाचरण जंबूकुमार! तुम कामदेवके अवतार हो, और लोकके एकमात्र श्रेष्ठधन हो। तुम्हारे नेत्र हरिणके समान सुंदर, चंचल व दीर्घ हैं, और मुख पूर्णचंद्रमाके समान नेत्रोंको आनंद देनेवाला है। अपने वचनामृतसे तुम सज्जनोंके कानोंको प्रीणित(तृप्त) करनेवाले हो, और तुमने महाराज कर्णको भी मात करनेवाले त्यागको अंगीकार किया है। तुम्हारे गौर-वर्णसे संपूर्ण गिरिशिखर धवल हो रहे हैं। शृंगाररूपी कमलकी मकरंदके लिए तुम भ्रमर हो (अर्थात् कामदेवके शृंगारकमलका समस्त मकरंद तुम्हींने पी लिया है, अतः भुवनमें तुम्हीं सुंदरतम हो)। तुम्हारे बाल भृंगावलिके समान अत्यंत काले हैं। बालसूर्यकी किरणोंके समान तुम्हारा शरीर तेजसे वेष्टित (व्याप्त) है। तुम्हारा अंग-अंग लक्ष्मी (सौंदर्यलक्ष्मी एवं विजय-लक्ष्मी)से विभूषित है, और कीर्तिलताके तो तुम मूल अंकुर ही हो। शत्रुभटोंकी रमणियोंको

[१] १. क ङ °एण। २. क घ ङ तस्स। ३. घ दिन्ना। ४. क °रत्तेण। ५. ख ग °लंभे। ६. क घ ङ °य। ७. क घ ङ परि°। ८. क ङ °यएण। ९. ख ग °सुअण°। १०. क घ °णउं। ११. ख ग °विउं। १२. क °चार। १३. क ङ कण्णाइं भाइं, ख ग °इ चाइ। १४. ख ग चाइ°; घ °वन्न। १५. क ङ वण्णा-विल°। १६. क ख ग ङ °सिहर°। १७. क ङ कंदलविय°।

वंदिणपढंत[18]-जयथोत्तसंग [19]संगामुप्पाइयवइरिभंग[20]।
भंगागयकेरलबलवियास आसाइयजयसिरिसोक्खवास।
घत्ता—तुहुँ[21] सुंदरु परमविवेउ तुहुँ[21] जाणहि[22] दुल्लहु संसारसुहु[23]।
लायण्णलच्छि[24]-आरोयतणु पइँ[25] मेल्लेवि अण्णहो[26] कासु भणु ॥१॥

[२]

भोयणसत्ति न भोयणु एक्कहो भोज्जु न भोज्जसत्ति अण्णेक्कहो।
कामुच्छाहु न कामिणी एक्कहो रमणि न रमणसत्ति अण्णेक्कहो[1]।
दाणपवत्ति[2] न धणु पर एक्कहो दविणु न दाणवसणु अण्णेक्कहो[1]।
जसु पुणु [3]उहय-पक्ख[4] संपज्जइँ[5] सो किम [6]छलइ अप्पु पावज्जइ।
भग्गविहीणालसियहँ[7] सिट्ठउ[8] भिक्खनिमित्तु लिंगु उद्दिट्ठउ।
सिज्झइ काइँ[9] एण परिभावहि सुक्ककिलेसिं[10] अप्पु म तावहि[11]।
तउ नामेण कम्मु किर कायहो कारणे[12] कासु[13] कवणु[14] फलु आयहो[15]।
[16]सुद्धु अबद्धु[16] जीउ निद्दिट्ठउ [17]तणुमणवयणचेट्ठअप्पिट्ठउ।

(उनके वीर पतियोंको स्वर्ग भेजकर) रुलानेवाले हो, और वंदीजनों-द्वारा पढ़े जाते हुए जय-स्तोत्रके साथ संग्राममें वैरियोंका भंग अर्थात् विनाश उत्पन्न कर देते हो। पराजित होकर आये हुए केरल सैन्यको तुम्हीं प्रफुल्लित करनेवाले हो और तुमने सुखको निवासरूप जयलक्ष्मीको प्राप्त कर लिया है। तुम सुंदर हो, और तुममें परम विवेक भी है, तथा तुम (स्वयं) जानते हो कि यह संसार-सुख अत्यंत दुर्लभ है। (ऐसी) लावण्यलक्ष्मी और नीरोग(स्वस्थ)शरीर तुम्हें छोड़कर बताओ और किसके पास है? ॥१॥

[२]

एकके पास भोजन करनेकी शक्ति है तो भोजन नहीं, दूसरेके पास भोजन है, तो खानेकी शक्ति नहीं। एकको कामोत्साह है तो कामिनी नहीं; दूसरेको रमणी है तो रमण शक्ति नहीं। एकको दान प्रवृत्ति है तो धन नहीं; दूसरेको द्रव्य है तो दानका व्यसन (आसक्ति-रुचि) नहीं। जिसे दोनों पक्ष (भोग भी व भोग शक्ति भी) संप्राप्य हैं, वह प्रव्रज्या-द्वारा अपने आपको प्राप्त सुखोंसे क्यों वंचित करेगा? लिंग(साधुवेष)का प्रतिपादन भिक्षाके निमित्तसे किया गया है, जो भाग्यविहीन आलसियोंके लिए अत्युत्तम है। इससे क्या सिद्ध होगा? यह विचार करो, और शुष्क (निरर्थक) (काय)क्लेशसे अपनेको मत तपाओ। तप नामकी वस्तु शरीरका एक कर्म है, इसे किस कारणसे करना चाहिए, और इसका क्या फल होगा? जीवको शुद्ध व अबद्ध (निर्गुण-अकर्त्ता) तथा तन-मन और वचनकी चेष्टाओंसे अस्पृष्ट रहनेवाला कहा गया है।

१८. ख ग पढंति। १९. क संसासु°। २०. ख °वइरभंग। २१. क ङ तुहं। २२. क घ °हिं। २३. क ख ग °सुहुं। २४. घ लायन्न°। २५. क ङ पइ। २६. घ अन्नहु।

[२] १. घ अन्ने°। २. ख घ ग °पवित्ति। ३. क ङ उवह°। ४. सभी प्रतियोंमें 'पक्खु'। ५. ख ग घ °ज्जइ। ६. ख ग छलइं अप्पु; घ छलइज्जइ। ७. क ङ °यहि। ८. ङ सिद्धउ। ९. क ङ काइ। १०. क ङ ख ग °लेसे। ११. ख ग भा°। १२. क ङ °णु। १३. क ङ कज्ज। १४. क ङ °ण। १५. क ङ आवहो। १६. क ङ मुट्ठु अवट्ठु; ख ग सुद्धु असुद्धु। १७. क ख ग ङ °मणु°।

तासु विसेसु को वि सविसेसें[18] किज्जइ[19] [20]काइँ न[20] कायकिलेसें।
घत्ता—तणुकम्मु न जीवदव्वु[21] सरइ न वियारु[22] वियप्पु तासु करइ।
जाणिवि कुमारु इय[23] कज्जु निउ तं किज्जइ जं स-सरीरहिउ ॥२॥

[३]

आगब्भमरणपज्जंतु एहु न वि जीउ न जीवहो कज्जु देहु।
अहमिय[1] वियप्पु इह[2] मोहु भणिउ[3] पडिफुरइ[4] भूयममवायजणिउ[5]।
गुड-धायइ-जलजोएण जेम महुसत्ति[6] न अण्णहो[8] कज्जु तेम।
पुग्गलकिउ अह संभूउ कम्मु पुग्गलु जि न अण्णहो[7] तणउ[9] धम्मु।
सो चेय जीउ पडिहाइ जं जि दप्पणमुहबिंबु व भाति[10] तं जि।
जीवहो परिणामासंभवेण सिद्धउ परलोयाभाउ तेण।
परलोयाभावे न सग्गु मोक्खु न नियत्थु[11] मुयवि[12] संसारसोक्खु।
तं निसुणेवि ईसिहसंतएण इंदियवावार[13] चयंतएण[14]।

आत्माके लिए इस अतिविशेष कायक्लेशके द्वारा कुछ भी विशेष(हित) नहीं किया जाता अथवा उस आत्मामें इस अतिविशिष्ट कायक्लेशके द्वारा कोई भी विशेषता उत्पन्न नहीं की जाती। शरीरका कर्म जीवद्रव्यका अनुसरण नहीं करता और न उसमें कोई विकार-विकल्प ही उत्पन्न करता है। इस(सिद्धांत)के अनुसार अपने कार्य(कर्त्तव्य)को जानकर ऐसा करो जो अपने शरीरको हितकारी हो ॥२॥

[३]

यह शरीर गर्भसे लेकर मरणपर्यंत रहता है, और यह देह न तो स्वयं जीव है, और न जीवका कार्य ही है, मैं (देहसे अतिरिक्त अमूर्त-शाश्वत व चैतन्यस्वरूप स्वतंत्र आत्मा) हूँ, इसप्रकारके विकल्पको (चार्वाक् दृष्टिसे) मोह कहा गया है। वास्तवमें यह देह भूतसमवाय (पंचमहाभूत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश)से उत्पन्न होकर स्फुरायमान (प्रगट) होता है। जिसप्रकार गुड़, धातकी और जलके योगसे मधुशक्ति (मादक शक्ति) उत्पन्न हो जाती है, वह किसी अन्य (अव्यक्त-अमूर्त्त) कारणका कार्य नहीं है, उसीप्रकार कर्म भी पुद्गल-निर्मित है, और उसीसे उत्पन्न हुआ है, वह स्वयं भी पुद्गल ही है, किसी अन्य वस्तुका धर्म (स्वभाव) नहीं है। जो कुछ प्रतिभासित होता है, वही जीव है (उसके अतिरिक्त जीव नामकी कोई स्वतंत्र-अमूर्त्त वस्तु नहीं है) और वह दर्पणमें मुखके प्रतिबिंबके समान (एक स्वतंत्र वस्तुके रूपमें) भासित होता है। जीवमें किसीप्रकारका अध्यवसायरूप परिणमन असंभव होनेसे परलोकका अभाव सिद्ध होता है, और परलोकका अभाव होनेसे स्वर्ग व मोक्ष नहीं रहते। अतः संसारसौख्यको छोड़कर अपना कोई अर्थ (हित, लाभ) नहीं हो सकता। यह सुनकर थोड़ा

१८. ङ °सेसे। १९. ग °इं। २०. क ङ एगण; घ काइ न। २१. क जीउ°। २२. क ङ °र। २३. घ इउ।
[३] १. क ङ °तिय; ग °णिय। २. क ङ इहु। ३. क ङ °उं। ४. क घ ङ परि°। ५. प्रतियोंमें °उं। ६. क घ ङ °इ। ७. क पहु°। ८. घ अन्नहो। ९. क ङ भणउं; घ °उं। १०. क घ ङ भंति; ग हुंति। ११. क ङ वि अत्थु; घ णिअत्थु। १२. क ङ मुइवि। १३. ग घ °वार। १४. ग घ ङ रगंत°।

[15]धम्मद्दिसिहरधरणीरुहेण बोल्लिज्जइ जिणवइ तणुरुहेण ।
घत्ता—इय सव्वु वि सुउ पमेयविसमु मिच्छापवंचवंचियसुसमु ।
[16]तत्तत्थु साहुजण-उवहसिउ पइँ मुयवि माम को साहसिउ[17] ॥३॥

[४]

सवियप्पहो णाणहो साहारणु भूयइँ[1] अंतरंगु जइ कारणु ।
तो न काइँ समपरिणइँ मुत्तहो पडरंगेण रंगु जिम[3] सुत्तहो ।
अह सहयारिनिमित्तु निरूविउ[4] अण्णु जि अंतरंगु पइँ सूइउ ।
कज्जहो कारणु नवर सलक्खणु मिउपिंडो[5] व्व घडहो अविलक्खणु[6] ।
सच्चउ अंतरंगु आयण्णहि[7] णाणहो कारणु णाणु जि मण्णहि[8] ।

हंसते हुए, जो इंद्रियोंके व्यापार(प्रवृत्तियाँ, प्रवृत्तिमार्ग)को त्याग रहा था, और जो धर्मरूपी पर्वतके शिखरका (उन्नत) वृक्ष था, ऐसे जिनमतीके पुत्रने कहना प्रारंभ किया—

यह समस्त श्रुत (सिद्धांत व तर्क) प्रमेयविषम है, अर्थात् बहुत कठिन प्रमेयोंको लिये हुए है, मिथ्याप्रपंचसे रहित व ठीकप्रकारसे संतुलन-युक्त है; तथा यह सारा तत्त्वार्थ साधु अर्थात् शोभन है, और साधारणजन अर्थात् अविचक्षण लोगोंके द्वारा (कठिन होनेसे) उसका उपहास किया जाता है, परंतु साधुजनोंके लिए उभयशिव अर्थात् दोनों लोकोंमें कल्याणकारी है। हे मामा ! ऐसी बात आपको छोड़कर और तो कौन कह सकता है; (यह इसका स्तुतिपरक अर्थ है । श्लेषमें निंदापरक अर्थ इसप्रकार है—) अथवा आपका यह सारा सिद्धांत प्रमेयविरुद्ध है, मिथ्यात्वके प्रपंच द्वारा साधारणलोगोंको धोखा देनेवाला है, एवं सज्जनोंके द्वारा उपहास करने योग्य है; तत्रभवान्(तत्तत्थ-तत्रत्यः) आपको छोड़कर हे मामा! ऐसा (कहनेवाला) और कौन साहसी है ॥३॥

[४]

(पंचेंद्रियों एवं मनसे उत्पन्न) सविकल्पक ज्ञानका सामान्य (उपादान) कारण यदि पंचभूत ही हैं, तो फिर सभी जीवोंके मूर्तकारणसे उत्पन्न मूर्तज्ञानकी परिणति (प्रवृत्ति) एक जैसी क्यों नहीं होती, जिसप्रकार किसी पटके प्रत्येक सूत्रका रंग संपूर्ण पटके रंगके अनुसार ही होता है ! इन(भूतों)को आपने ज्ञानका सहकारी-निमित्त निरूपित किया है, और इन्हींको अंतरंग (उपादान) कारण भी सूचित किया है । (किसी भी) कार्यका कारण केवल स्वजातीय लक्षणवाला होता है, जिसप्रकार घटरूप कार्यका कारण उससे (द्रव्यतः) अविलक्षण मृत्पिंड ही होता है । अतः (आपके सिद्धांतके अनुसार) अचेतन पृथिव्यादि भूतोंसे उत्पन्न अचेतन शरीरादिकके समान ज्ञान भी अचेतन ही होना चाहिये (परंतु ऐसी वास्तविकता नहीं है, क्योंकि ज्ञान एक चेतन तत्त्व है, और ज्ञप्ति–जानना यह चेतनकी ही क्रिया है) । इसलिए सच्चा अंतरंग कारण सुनिये ! ज्ञान(रूप चेतन तत्त्व)का कारण ज्ञान(ात्मक चेतनशक्ति-आत्मा)को ही मानिये ।

१५. क धम्मद्दि° । १६. क ङ तं तित्थु । १७. घ उं ।

[४] १. ग भूअइं । २. क ङ °णय । ३. क ङ जिह । ४. क ङ °यउ; ग °इउ । ५. क ङ मउ° । ६. क ङ सवि°; घ अवियक्खणु । ७. प्रतियोंमें °ण्णहिं । ८. क ङ °हिं; घ मन्नहिं ।

बद्धउ जीउ मोहु पइँ[9] सूइउ[10] दप्पणे वयणाभासु निरूविउ।
अवियारिउ सिद्धंतु तुहारउ विहडइ पेक्खु नएण असारउ।
दप्पणे वयणु[11] ताम न[11] पईसइ वयणु मुएवि वयणु काहं दीसइ[12]।
दप्पणतेयमिलिउ नच्छेरउ[13] [14]नायणु तेउ होइ विवरेरउ।
चक्खु निरुद्धु[15] पुरउ न पलोयइ[16] वयणसरूउ वलेवि अवलोयइ[17]।
नाणु वि कम्मसत्तिसंवलियउ जायइ मिच्छादंसणे मिलियउ[18]।
मोहवसेण वत्थु अवगण्णइँ[19] दप्पणे मुहु[20] तुम्हारिसु मण्णइँ।
वट्टइ सज्झु[21] भंति तुट्टइ जिह[22] सुद्धसरूउ[23] वियाणहि[24] कुरु[25] तिह[26]।
घत्ता—सुहभावें असुहु न परिचयइ[26] सुद्धें[27] नएण[28] विण्णि वि खयइँ[29]।
मणुयत्तु लहेवि जो सो अमइ निल्लियवलहु जिम[30] भवे भमइ[31] ॥४॥

'जीव बंधा है', ऐसे विचारको (सांख्यदर्शनके अनुसार) आपने मोह कहा है, और दर्पणमें वदनाभासके समान (मिथ्या) निरूपित किया है। आपका यह सिद्धांत अविचारित व असार है, और देखिये! यह नयों(युक्तियों)से खंडित हो जाता है। (मूर्तस्वरूप)दर्पणमें (मूर्तिमान्) मुख तो प्रवेश करता नहीं, और (स्वशरीरस्थ) मुखको छोड़कर मुख दिखाई ही कैसे दे सकता है? (तब फिर दर्पणमें मुख कैसे दिखाई देता है? इसका समाधान यह है कि) दर्पणके तेजसे मिलकर नेत्रोंका तेज विपरीत हो जाता है (अर्थात् मूलतः दर्पणाभिमुख होते हुए भी लौटकर स्वशरीराभिमुख हो जाता है) इसमें कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि दर्पणके तेजसे प्रतिहत होकर चक्षुओंके (तेजकी गति) निरुद्ध हो जानेसे वह दर्पणमें स्थित मुखके शुद्ध स्वरूपको नहीं देखता, बल्कि लौटकर (अपने शरीरमें स्थित) वदनके स्वरूपको ही देखता है (विशेषचर्चाके लिए देखिये परिशिष्ट)। उसीप्रकार ज्ञान भी कर्मशक्तिसे संवलित (मिश्रित) होकर मिथ्यादर्शनसे मिल जाता है, और इसप्रकार मोहके वशसे अथवा अविवेकके कारण जो वस्तुस्वरूप (अर्थात् यह कि शुद्धदर्पणका स्वरूप तो मुखरहित ही है, और मुख वास्तवमें दर्पणमें नहीं, अपने शरीरमें ही है) की अवहेलना करते हैं, ऐसे तुम सरीखे लोग ही दर्पणमें मुखका होना मान लेते हैं। जो साध्य हो, जिससे भ्रांति नष्ट हो जाय, और जिस तरह तुम अपने शुद्ध स्वरूपको जान सको, वैसा करो।

मनुष्यत्व प्राप्त करके जो व्यक्ति शुभभावके द्वारा अशुभ(भावों)का त्याग नहीं करता, तथा शुद्धनय(शुद्ध आत्मस्वरूपके ध्यान व चिंतन)के द्वारा(शुभ व अशुभ)दोनोंका ही क्षय नहीं करता, वह अमति(कुमति या मतिहीन) तेलीके बैलके समान संसारचक्रमें भ्रमण करता रहता है। (विशेषके लिए देखिये परिशिष्ट) ॥४॥

९. ग पइ। १०. ग सूविउ; घ सूयउ। ११. क ङ ण ताम। १२. क °इं। १३. ख ग °णं। १४. घ नयणु। १५. क घ ङ वि°। १६. क ङ °वइ। १७. क ङ °यउ। १८. ङ मलि°। १९. घ °णइं। २०. क घ ङ मुहुं। २१. क ख ग ङ मज्झु। २२. घ °हं। २३ घ सिद्ध°। २४. ख घ °णहि। २५. ग घ करु। २६. क °यइं। २७. प्रतियोंमें 'सुद्धेंण'। २८. क णएण। २९. ख घ ङ °इ; ग °ए। ३०. क ङ जिह। ३१. क घ ङ °इं।

[५]

अह एयंतनएण अबद्धउ अच्छउ परए जीउ सुविसुद्धउ।
पुग्गलकम्में[1] न वियारिज्जइ[2] तेण वि तणुहे[3] न काइँ[4] मि किज्जइ[2]।
अप्पु स मोहु भणिउ[5] पइँ[6] पोग्गलु करहि कम्मु भुंजहि[7] कम्महो फलु।
सुक्खु दुक्खु जं पयडु जि माणहि धम्माहम्मचिण्हु[8] तं जाणहि[9]।
धम्में सग्गु मोक्खु आवज्जहिं[10] पावें नरयदुक्खु अवहुँजहि[11]।
धम्माहम्म[12] केम समभावहिं[13] जाणमि कालकूडु जइ चावहि[14]।
दुक्खें धम्मरसायणु पिज्जइ किव्विसु[15] विसु[16] लीलए[17] कवलिज्जइ[18]।
करहिं[19] न धम्मु दिसवि[20] परु डंभहिं तुम्हहँ[21] जेहा घरे घरे लब्भहिं।
अप्पणु[22] करइ परहो तह सीसइ[23] पविरलु एक्कु[24] कहि मि[24] सो दीसइ।
पावकम्मे को नाम न ईसरु[25] को उज्झाउ न तह[26] अग्गेसरु।
सो ज्जि समोहु एहु संसारिउ चउगइ भमइ कम्मफलखारिउ।

[५]

(एक ओर तो) एकांत नय (सांख्यमत)से (आपने कहा कि) जीव अबद्ध है और (सदैव) पूर्णतः विशुद्ध रहता है। पुद्गल कर्मसे वह विकृत नहीं होता, और उसके द्वारा इस शरीरके लिए कुछ क्रिया भी नहीं की जाती। (दूसरी ओर चार्वाक् मतका आश्रय लेकर) आपने बताया कि आत्मा पुद्गल(स्वरूप) ही है, यह सब (आपका) मोह है। (तो ठीक है) कर्म कीजिये और कर्मके फलको भोगिये। जो सुख व दुःख (बिलकुल) प्रगट है, उसे (तो) मानिये, और उसे (क्रमशः) धर्म व अधर्मका चिह्न समझिये। धर्मसे लोग स्वर्ग व मोक्ष प्राप्त करते हैं, और पापसे नरक दुःख भोगते हैं। धर्म और अधर्म समान कैसे हो सकते हैं? इसे तो मैं ऐसा मानता हूँ जैसा कालकूट विषको दांतोंसे चबाना। (लोगोंके द्वारा) धर्मरूपी रसायन तो बड़े दुःखसे पीया जाता है और पापरूपी विषको लीला(क्रीड़ा)पूर्वक निगल लिया जाता है। स्वयं धर्म नहीं करनेवाले, और पापोपदेश देकर दूसरोंको वंचना करनेवाले आप सरीखे लोग घर-घर मिलते हैं। परंतु जो स्वयं करे, और दूसरेको भी वैसी ही शिक्षा दे, ऐसा कोई विरला ही कहीं-कहीं दिखाई देता है; पापकर्म करनेमें कौन ईश्वर(समर्थ), उपाध्याय (उपदेष्टा) और अग्रसर(नेता) नहीं बन जाता। जो आत्मा मोहयुक्त है, उसीको संसारी कहा जाता है, और वह अपने कर्मफलसे कदर्थित (पीड़ित) होता हुआ चारों गतियोंमें भ्रमण करता है।

[५] १. ग घ ङ कम्मेण। २. क °ज्जइं। ३. क ङ °हिं; घ °हि। ४. क ग काइ। ५. घ °उं। ६. ख ग मइं। ७. क ग °हिं। ८. घ °चिंधु। ९. क घ ङ °हि। १० घ °ज्जहि। ११. क ङ उवभुंजहि; घ अणुहुंजहि। १२. ग °हम्मु। १३. घ ङ °वहि। १४. क वावहिं; ग °हिं; ङ वावहि। १५. क ग ङ किंविसु। १६. ग विस, घ में 'विसु' नहीं। १७. क घ ङ °इं। १८. क °ज्जइं। १९. क ग °हि। २०. क दिवसि। २१. ग घ °हिं। २२. क अप्पु ण; घ ङ अप्पुणु। २३. क °इं। २४. घ कहि मि। २५. ख ग इं°। २६. क घ ङ तहो।

घत्ता—अहमिय मइ[27] जा ता कम्मरइ[28] वोल्लिज्जइ जीवहो बंधगइ[29] ।
इय रूवाभावि[30] विसुद्ध ठिउ सो मोक्खु[31] निरंजणु[32] संतु सिउ ॥५॥

[६]

पयडमि निययाइँ[1] निरंतराइँ आयण्णि[2] माम जम्मंतराइँ[3] ।
भवएउ नाम हउँ वडुउ आसि तउ चरिवि जाउ सुरु[4] सोक्खरासि ।
सग्गाउ चयवि[5] हुउ कुमरु[6] सारु चक्कवइहि[7] नंदणु सिवकुमारु ।
तवचरणविसेसें हयतमालि नामेण देउ हुउ विज्जुमालि ।
तव[8] बहिणिहे सुउ[9] पुणु गरुयमाणु[10] संजाउ जंबूसामीह जाणु[11] ।
भवे भवे तवचरणावज्जियाइँ मणुयामरसोक्खइँ भुंजियाइँ[12] ।
चिलिसावणे माणुससोक्खे मुद्धु किहँ[13] अच्छमि एमहि[14] पंके लुद्धु ।
तो भणइ[15] विज्जुचरु कम्मकीउ मण्णमि[16] संसारिउ अत्थि जीउ ।
घत्ता—[17]चिरजम्मकम्मपरिणइए[18] तुहुँ संपत्तु कह व जइ[19] सग्गसुहु[20] ।
भवे भवे हियइच्छियलाहु[21] कउ आयण्णि कहाणउ[22] कहमि तउ[23] ॥६॥

'यह मैं' (या मेरा), इसप्रकारकी मति जबतक रहती है तभीतक जीवको कर्मोंमें रति (आसक्ति) रहती है, और उसीको जीवकी बंधगति कहा जाता है—अर्थात् इस कर्मरतिके कारण ही जीवको कर्मबंध होता है, व चतुर्गतियोंमें भ्रमण करना पड़ता है। इसप्रकारके रूपके अभाव अर्थात् ऐसे विकल्प (मैं, मेरा)के सर्वथा अभावसे शुभाशुभ कर्मोपार्जनसे रहित होनेसे जो जीव शुद्धावस्थामें स्थित हो जाता है, वह आत्मा ही स्वयं मोक्ष, निरंजन, शांत एवं शिव (कहलाता) है ॥५॥

[६]

हे मामा! मैं अपने निरंतर कई जन्मांतरोंको बतलाता हूँ, उनको सुनिये! (पहले)मैं भवदेव नामका बटुक था। तपश्चरण करके सुखराशि संपन्न देव हुआ। स्वर्गसे च्युत होकर मैं चक्रवर्तीका पुत्र शिवकुमार नामका श्रेष्ठ राजकुमार हुआ। विशेष तपश्चरण द्वारा (अज्ञान) अंधकार समूहका नाश करके मैं विद्युन्माली नामका देव हुआ। फिर तुम्हारी बहनका विशेष सन्मान-भाजन पुत्र जंबूस्वामी हुआ। मैंने तपश्चरणसे प्राप्त किये हुए मनुष्य व देव संबंधी सुखोंको भोगा है। इस जुगुप्सोत्पादक मनुष्यगति संबंधी सुखमें मुग्ध(मोहित)होकर, (बताओ कि) मैं कैसे इसीतरह (संसार)पंकमें पड़ा रहूँ? तब विद्युच्चर बोला—मैं तो ऐसा मानता हूँ कि संसारी जीव कर्मक्रीत अर्थात् कर्मोंका दास है। पूर्वजन्मकी कर्मपरिणतिसे यदि किसीतरह तुझे स्वर्ग सुख प्राप्त हो गया, तो फिर भव-भवमें हृदयेच्छित लाभ कहाँसे होगा। तुम्हें एक कथानक कहता हूँ, वह सुनो ॥६॥

२७. क ग ङ °मइं। २८. क °रइं। २९. क ङ °रइ। ३०. ख व °भाउ; ग °भाव। ३१. क घ ङ मोक्खु; ख ग मोक्ख। ३२. घ °जण।

[६] १. क °याइ। २. घ °ग्नि। ३. ङ °राइ। ४. ख ग मुर। ५. क ङ चइवि; घ चविवि। ६. क घ ङ °र। ७. क °वइहि। ८. घ तउ। ९. क ङ वहिणि मुओ; घ °णिहिं मु°। १०. क घ ङ °माण। ११. क घ ङ जाण। १२. क °याइ। १३. क ङ किह। १४. ख ग एवहि; घ एवहिं। १५. क घ ङ °इं। १६. घ मन्नमि। १७. क व ङ चिरु जम्मि°, ख ग चिरु°। १८. क ङ °णइय; घ °णइउ। १९. ख ग जइं। २०. ख ग °सुहुं। २१. क ख ग °इंछिय°। २२. क घ ङ °णउं। २३. घ तउं।

[७]

केण वि भम्महेण सकज्जचुक्कु खसपीडिउ अडविहि[1] उंटु[2] मुक्कु[3] ।
सच्छंदचरणे हुउ बलविसद्धु[4] बहु दिणहिँ[5] कहि मि[6] महु तेण खद्धु ।
तं[7] महुरु[8] सरंतु वहंतु वाह किं चरउ म चरउ करीरसाह ।
इय भुत्तु[9] सरंतउ सग्गसोक्खु को करइ मूढु इह[10] सग्ग-मोक्खु ।
पडिकहइ कहाणउ[11] तो कुमारु वणिउत्तु वहइ कु वि तिट्ठभारु[12]
एकल्लउ मणे वाणिज्जतिट्ठु आरण्णे[13] [14]सीयसरसलिलु दिट्ठु ।
चोरेहिँ मुसिउ[15] कंपिरसरीरु[16] तिसपीडिउ[17] सुत्तु सरंतु नीरु ।
सुइणंतरि तं सरु नियइ जाम जलु पियवि विउज्झइ तिसिउ ताम ।
जीहाइ[18] लिहइ उंसाजलाइँ तिस फिट्टइ आयहो[19] तेहिँ[20] काइँ ।
घत्ता—इय माम सग्गसुहु जो सरइ अहिलासछेउ तहो किम करइ ।
एउ माणुससोक्खु घिणावणउ[21] अवियारिउ परकोड्डावणउ[22] ॥७॥

[८]

अह चवइ चोरु विडपुरिसगमणि वणि एक्कु थेरु तहो तरुणि रमणि ।

[७]

किसी घुमक्कड़ने अपने कार्यसे च्युत(भ्रष्ट) एवं खस (खारिश) व्याधिसे पीड़ित ऊँटको अटवीमें छोड़ दिया। स्वच्छंद चरनेसे वह पर्याप्त बलशाली हो गया। बहुत दिनोंपर उसने कहीं मधु खाया। उस मधुका स्मरण करता हुआ एवं भूखकी बाधाको वहन करता हुआ वह ऊँट करीलकी शाखाओंको कभी चरता था, कभी नहीं भी चरता था। यही बात भोगे हुए स्वर्गसुख स्मरण करनेकी है। (वरना) यहाँ स्वर्ग-मोक्ष किस मूढ़को मिलता है? तब कुमार भी उसके उत्तरमें यह कथानक कहने लगा—कोई वणिक्पुत्र भारी (असीम) तृष्णाको धारण करता था। अकेले ही मणि-व्यापारकी तृष्णासे जाते हुए अरण्यमें उसने शीतल सरोवर-जलको देखा। (वहाँ) वह चोरों-द्वारा लूट लिया गया और (भयसे) अंग-अंग काँपता हुआ, एवं तृषासे पीड़ित हुआ, जलका स्मरण करता हुआ सो गया। स्वप्नमें जब उसने उस सरोवरको देखा तो (स्वप्नमें ही) जल पीकर (वास्तवमें) प्यासा ही जाग उठा, और जिह्वासे ओस बिंदुओंको ही चाटने लगा। भला उनसे उसकी तृष्णा कैसे मिटे? इसप्रकार हे मामा! जो स्वर्गसुखका स्मरण करता है, वह अपनी अभिलाषाका छेदन कैसे करे? यह मानुषिक सुख बड़ा घिनौना, और विचारहीन (अर्थात् विवेक भावसे रहित) है, एवं दूसरोंको (व्यर्थ) कौतुक उत्पन्न करनेवाला है ॥७॥

[८]

अब चोर कहने लगा—एक वृद्ध वणिक् था, और उसकी जार पुरुषोंसे गमन करने-

[७] १. क ङ °विहि। २. क ख उंट्टु। ३. ङ मुक्क। ४. क घ ङ °विसुद्धु। ५. ख ग °हि। ६. क ङ कहि भि; ग कह मि। ७. ख ग तें। ८. क ङ °र। ९. ख ग घ भुत्त। १०. क ङ सग्गु। ११. क घ ङ °णउं। १२. क तिट्ठ°। १३. घ °ण्णे। १४. क ख ग ङ पीय°। १५. घ °उं। १६. क ङ कंप्पिर°; घ कंपिय°। १७. क तेम°। १८. घ ङ °इं। १९. घ °हि। २०. घ ङ तेहि। २१. प्रतियोंमें °वणउं। २२. घ ङ °णउं।

भम्मुट्ठि नाम चट्टे समाण　　नीसरिय लेवि मणिगणनिहाण।
वच्चंतहो तहो थोए वि काले　　नरु एक्कु मिलिउ देसंतराले।
बहुकवडभरिउ धुत्ताण धुत्तु　　भम्मुट्ठि चट्टु पहि तेण वुत्तु।
सुहलक्खणलक्खिउ[1] चारु देहु　　पइँ[2] पेक्खिवि वड्ढिउँ[3] मज्झु नेहु।
तुहुँ[4] भाइ भज्ज तउ भाइजाय[5]　　जम्मे वि न मेल्लमि तुम्ह पाय।
गच्छइ सकंतु इय धुत्तनडिउ　　[6]पडिवण्णइ वड्ढियनेहजडिउ[6]।
[7]कइवयदिणेसु लोए सलज्जु[8]　　उवलक्खिवि तं परयारकज्जु[8]।
कलु पढइ नियंबिणि जेम सुणइ[9]　　वम्महसंदीवणु गेउ झुणइ[10]।
चोरियउ चित्तु धुत्तेण ताहि[11]　　बोल्लइ हउँ[12] जोग्ग[13] तुमम्मि नाहि[14]।
लइ[15] करहि मंतु एम वि मयच्छि[16]　　इह गामतलारहो[17] पासि गच्छि।
भणु एम एत्थु[18] देउले[19] सकंतु　　सोवेसमि हउँ[20] गुरुपंथसंतु।
जं सुप्पइ तुम्हहँ[21] कहवि पवरु　　तो निसिहि[22] होइ कल्लाणु नवरु।
इय सुणेवि दिणेवि परूढराउ[23]　　संकेउ तलारहो कहवि[24] आउ।

घत्ता—ता देउले सुहरंजियमणइँ रयणिहि सुत्तइँ[25] तिण्णि वि[26] जणइँ।
भम्मुट्ठि सयणे एक्कहि[27] सपिउ बीयम्मि धुत्तु जग्गंतु थिउ ॥८॥

वाली एक तरुणी रमणी थी। वह ब्रह्ममुष्टि नामके एक चटके साथ मणिसमूह आदि खजाने को लेकर निकल गई। चलते-चलते ब्रह्ममुष्टिको थोड़े काल पश्चात् कहीं देशोंके मार्गमें एक पुरुष मिला, जो बहुत कपटसे भरा हुआ और धूर्तोंका भी धूर्त्त था। रास्तेमें उसने ब्रह्ममुष्टि चटसे कहा—शुभ लक्षणोंसे युक्त सुंदर शरीरवाले तुमको देखकर मुझे बड़ा स्नेह बढ़ गया है। तू मेरा भाई है, और तेरी भार्या मेरी भ्रातृजाया (भौजाई) है। आजन्म तुम लोगोंके पैर (चरण-सेवा) नहीं छोड़ूंगा। इसप्रकार अत्यधिक स्नेहसे जड़ा हुआ वह ब्रह्ममुष्टि बदलेमें उसकी स्तुति करता हुआ उस धूर्त्तसे ठगा हुआ अपनी कांताके साथ चलता रहा। कतिपय दिनोंमें लोकमें निंद्य उस परदार-कार्य (परस्त्री रमण) को देखकर वह मधुरतासे इसप्रकार गाने लगा जिससे वह सुंदरी सुन ले, और कामोद्दीपन करनेवाले गीत आलापने लगा। धूर्तने उसका चित्त चुरा लिया। वह बोली—मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ। धूर्त्तने कहा—हे मृगाक्षी लो! यह मंत्र (उपाय) करो! इस ग्रामके ग्रामरक्षकके पास जाओ, और ऐसा कहो—यहाँ इस देवालयमें लंबे पथसे श्रांत हुई मैं अपने कांतके साथ सोऊँगी। यदि किसीतरह तुममें-से प्रवर (अर्थात् पुरुष) सो गया, तो रातमें निश्चयसे कल्याण हो जायगा। यह सुनकर रागारूढ़हुई वह (धूर्त्तके द्वारा दिये हुए) उस संकेतको दिनमें ही नगररक्षकसे कह आयी। तब देवकुलमें सुखसे प्रसन्न मनसे वे तीनों जन रात्रिमें सो गये। एक शयनपर प्रियाके साथ ब्रह्ममुष्टि (सो गया) और दूसरे पर धूर्त्त जागता हुआ पड़ रहा ॥८॥

[८] १. क ङ °लक्खिय। २. ख ग पइ। ३. ख ग वट्टिउ। ४. क ख ग तुहु। ५. ख ग भाउ-जाउ; घ भाउजाय। ६. ख ग° पडिवण्ण पवड्डिय°; घ पडिवन्न चडिउ° नेह। ७. क ख ग ङ कय°। ८. ख ग °ज्ज। ९. क ख ग घ °इं। १०. क घ ङ °इं। ११. क ख ग घ नाहि। १२. व हउ। १३. क ङ जोगु। १४. क णाहि; ख ग घ नाहे। १५. ख ग लइं। १६. ख ग घ मअच्छि। १७. प्रतियोंमं गामि°। १८. क इत्थ; घ ङ इत्थु। १९. क ङ देवलि। २०. क ङ हउ। २१. क °ह। २२. क ङ °हिं; ख ग °हे। २३. क ए रूढ°। २४. घ ङ कहिवि। २५. ख ग °इ। २६. क घ ङ मि। २७. ख ग °हं; घ °हि।

[९]

तओ अद्धरत्ते दिसामुक्कसद्दा पसोवणि पवज्जंत डिंडिमनिनद्दा[1]।
जमाइट्ठदूयाणुरूवा पयंडा[2] [3]महाचुण्णपंडुरियधिय[4]लउडिदंडा।
समाणं तलारेण वग्गंतभिच्चा नियच्छेवि आवंत-संता दइच्चा।
पमेल्लेवि चट्टं पसुत्तं पि जाया असुत्तस्स धुत्तस्स सयणम्मि आया।
सुणेऊण भडहक्कियं कयवमालो समालत्तु धुत्तेण तो कोट्टवालो।
दिणे चेय कहियं इमे दो वि अम्हे न याणेमि तइयं गवेसेह[5] तुम्हे।
तओ दिट्ठु भम्मुट्ठि लइओ वराओ निओ बंधिऊणं बडोदिण्णघाओ।
तियं लेवि धुत्तो वि तद्दव्वरत्तो पणट्ठो त्ति वेलाणई तीरे पत्तो।
घत्ता—तो बोल्लइ दुत्तर नियवि नइ सो धुत्तु कवडकियनेहमइ[6]।
वत्थाइवत्थु[7] ता वहमि सईं[8] उत्तारमि पुणु वाहुडवि[9] पईं ॥९॥

[१०]

इय निसुणेवि अप्पिउ ताए[1] सव्वु भूसणु[2] सकडिल्लु सुवण्णु[3] दव्वु।
तं लेवि तरवि[4] उत्तरिउ[5] धुत्तु परतीरु जि बोलवि[6] जंतु वुत्तु[7]।
मइँ मुयवि[8] विवत्थ[9] नइम्मि दास रे कित्थु चलिउ वंचिवि हयास।

[९]

तब अर्द्धरात्रिमें जबकि सब सो रहे थे, और दिशाएँ शब्दरहित हो गयी थीं, उस समय डिंडिम निनाद करते हुए, यमसे आदिष्ट दूतोंके समान प्रचंड, महाचूर्ण(मुर्दाशंखचूर्ण)से पांडुरवर्ण बने हुए, एवं लकुटि दंडोंको लिये हुए, खूँखार शब्द करते हुए, भयानक दैत्यों जैसे भृत्योंको नगर-रक्षकके साथ आते हुए देखकर वह स्त्री सोते हुए चटको छोड़कर न सोते हुए धूर्तके शयन पर आ गई। भटोंके हुंकारसे उत्पन्न कोलाहलको सुनकर धूर्त्तने कोटपालसे कहा—दिनमें ही कह दिया था कि ये दो तो हम (पति-पत्नी) हैं, तीसरेको नहीं जानते, तुम लोग खोज लो। तब (उन लोगोंने) ब्रह्ममुष्टिको देखकर बेचारेको पकड़ लिया और बहुत मार-पीटकर बांधकर ले गये। धूर्त भी उसके धनमें आसक्त हुआ, स्त्रीको लेकर, भागकर समुद्रकी तटवर्ती एक नदीके तीरपर पहुँचा। तब वह धूर्त्त उस दुस्तर नदीको देखकर कपट-स्नेहमति करके बोला—तो अब एक बार वस्त्रादि वस्तुओंको लेकर जाता हूँ, पुनः चलकर (आकर) तुम्हें भी पार उतार दूँगा ॥९॥

[१०]

यह सुनकर उसने अपने आभूषण, कटिमेखला, सुवर्ण, द्रव्य आदि सब कुछ उसको अर्पित कर दिया। उस सबको लेकर धूर्त तैरकर पार उतर गया, और दूसरे तीरको अतिक्रमण करके जाने लगा, तो वह बोली—अरे दुराशय दास! मुझे तटपर विवस्त्र(नग्न) छोड़-

[९] १. क ङ °णिणद्दा। २ ख ग घ °रूया°। ३. क °वुण्ण°। ४. ख ग धय°। ५. ख ग °सेय। ६. ख ग °कयनेहमइ। ७. क ङ वत्थइयवत्थु। ८. क सई। ९. क घ ङ °डिवि।

[१०] १. घ ताइं। २. क ङ °ण। ३. क ङ °ण्ण। ४. ग घ तरिवि। ५. क ङ °रइ; ख ग °रिवि। ६. ख ग बोल्लवि। ७. क ङ धुत्त। ८. क ङ मुइ वि; घ मुएवि। ९. ख ग °त्थु।

पच्चुत्तरु हत्थु[10] वलंतएण　　[11]तहे दिज्जइ सिग्घु चलंतएण।
परिणिउ[12] वि मुक्कु भत्तारु सारु　　माराविउ पुणु अण्णत्थु[13] जारु।
किं भक्खणमण मज्झु वि मयच्छि　　लइ[14] जामि भडारिए[15] एत्थु अच्छि।
गइ तम्मि असइ थिय[16] तीरे जाम　　संगहियमंसदलु आउ नाम[17]।
जंबुउ[18] जलाउ थले नियवि मच्छु　　पलु मेल्लवि[19] धाइउ[20] गहणदच्छु।
जले वुड्डु[21] मीणु एत्तहे[22] दवत्ति　　निउ सेणें आमिसखंडु[23] झत्ति।
उहयासावंचिउ[24] हुउ विलक्खु　　अडयणए[25] हसिउ तहो देवि लक्खु।
वुच्चइ निब्बुद्धिय[26] रे सियाल　　साहीणु मुयवि कउ लाहु बाल।
तो[27] तेण भणिउँ[28] हउँ[29] परकुबुद्धि　　कहिँ [30]लब्भइ एही परसुबुद्धि[30]।
एक्कत्थ मुक्कु पइ पावकम्मे　　जारु वि माराविउ[31] पुणु अहम्मे[32]।
कल्लाणकारि तउ बुद्धि लग्ग　　निल्लज्जे लज्ज[33] बोल्लंति[34] नग्ग[35]।

घत्ता—इय असइ कहाणउ[36] अवगमहि[37] सुरसोक्खकज्जे मा मणु दमहि[38]।
अणुहुंजि मणुयफलु दुलहु[39] तुहुँ सायत्तु चयंतहँ कवणु सुहु ॥१०॥

कर, व ठगकर कहाँ चला। उसने शीघ्र चलते हुए, एवं हाथ हिलाते हुए, प्रत्युत्तर दिया—(एक जगह तो) परिणय किये हुए भर्त्तारको छोड़ा, अन्यत्र अपने जारको मरवा डाला, हे मृगाक्षी! क्या (अब) मुझे भी खानेका मन है? ले, भट्टारिके! मैं जा रहा हूँ, तू यहीं रह! उसके चले जानेपर जब वह असती तीरपर खड़ी थी, तभी मांसका टुकड़ा लिये हुए एक शृगाल वहाँ आया। जलसे स्थलपर आये हुए एक मच्छको देखकर, मांसके टुकड़ेको छोड़कर, उस मच्छको पकड़नेकी दक्षतासे दौड़ा। मच्छ (तुरंत) जलमें डूब गया, और इधर वह मांसका टुकड़ा झटसे एक श्येन (बाज़) द्वारा उठा लिया गया। दोनों आशाओंसे वंचित होकर शृगाल बड़ा लज्जित और उदास हो गया। वह कुलटा उसे लक्ष्य करके हँसी और बोली—अरे निर्बुद्धि स्याल! रे मूर्ख! स्वाधीन (वस्तु) को छोड़कर क्या लाभ हुआ? तो उसने कहा—मैं तो अवश्य परम दुर्बुद्धि हूँ; पर, अरे पापकर्म करनेवाली दुराचारिणी! ऐसी (तेरे जैसी) परम सुबुद्धि कहाँ मिले कि एक जगह तो तूने भर्त्तारको छोड़ा, और फिर (दूसरी जगह) जारको भी मरवा डाला। अरे निर्लज्ज कल्याणकारिणी! तेरी ऐसी मद्बुद्धि तुझे खूब लगी है (अर्थात् तेरी परम दुर्बुद्धिका अच्छा फल तुझे मिला है)। नग्न अवस्थामें (खड़े हुए) भी बोलते हुए कुछ तो लज्जा कर! इस असती कथानकको समझो। देव सुखोंके लिए मनका दमन मत करो। दुर्लभ मनुष्य फल (शारीरिक विषय-भोग) को भोगो। स्वाधीन(सुख)को छोड़नेवालोंको कौन-सा सुख मिलता है? ॥१०॥

१०. क ङ हत्थ। ११. क घ ङ तहिं। १२. क घ ङ °णिउं। १३. क ङ °त्थ; ख ग घ अन्न°। १४. ख ग लए। १५. क ङ °रिय। १६. ख ग घ थिए। १७. ख ग नाउ। १८. ख ग °अ। १९. क घ ङ मेल्लिवि। २०. क ङ धायउ; घ धाविउ। २१. क घ ङ वुड्डु। २२. क ङ °हिं; घ °हि। २३. क ङ °खंड। २४. क ङ उहआसा°। २५. क ङ अडइणए; घ अडयणइं। २६. क ङ णिबु°; ख ग निबु°। २७. क ङ ता। २८. ख ग °उ। २९. क ख ग ङ हय। ३०. क ङ ल° तेरी इह सु°; घ एही ल° परसु°। ३१. क ङ भत्तारु मरा°। ३२. प्रतियोंमें °म्मि। ३३. क ङ लज्जि। ३४. ख ग °त। ३५. ख ग लग्ग। ३६. क घ ङ °णउं। ३७. क घ °हिं। ३८. क घ ङ °हिं। ३९. क °हुं।

[११]

जंबूसामि कहाणउ[1] साहइ वाणिउ[2] को वि परोहणु वाहइ[3] ।
गउ परतीरे [4]पुहइधणतुल्लउ एक्कु जि रयणु किणिउ बहुमोल्लउ ।
चडिवि पोइ लंघइ सायरजलु आवंतउ चिंतइ मणे[5] मंगलु ।
जा वेलाउलु पावमि तहिँ[6] पुणु विक्कमि एउ माणिक्कु महागुणु ।
हरि-करि किणवि भंडु णाणाविहु[7] घरु जाएसमि निवसंपयनिहु ।
अह हत्थाउ गलिउ दरनिद्दहो पडिउ रयणु तं मज्झे समुद्दहो ।
धाहावइ तरियहुँ[8] दीहरगिरु हा हा जाणवत्तु[9] किज्जउ थिरु ।
निवडिउ [10]एत्थु रयणु[10] अवलोयहो तं [11]आणेवि पुणु वि महु[11] ढोयहो ।
सायरे नट्ठु वहंतहो पोयहो कहिं लब्भइ माणिक्कु पलोयहो ।
घत्ता—इय मणुयजम्मु माणिक्कसमु रइसुहनिद्दावसजायभमु[12] ।
संसारसमुद्दि[13] हरावियउ जोयंतु केम पुणु लहमि हउँ ॥११॥

[१२]

विज्जुच्चरु [1]भणइ दिढप्पहारि[1] विंझम्मि भिल्लु कोयंडधारि[2] ।
सरघाएं मारिउ हत्थि तेण एत्तहे[3] सो दट्ठु भुयंगमेण ।

[११]

(अथानंतर) जंबूस्वामी कथानक कहने लगे—कोई बनिया जहाज लेकर दूसरे तीरपर गया। वहाँ उसने पृथ्वीके (समस्त)धनके तुल्य एकमात्र अति बहुमूल्य रत्न खरीदा। पोतमें चढ़कर जब वह सागरको लांघ रहा था तो अपने मनमें इसप्रकार इष्टार्थ सिद्धिकी बातें सोचने लगा—जैसे ही मैं वेलाकूल(समुद्रतट)पर पहुँचूँगा, वहीं इस महागुणवान् माणिक्यको बेच दूँगा, और फिर हाथी, घोड़े व नानाप्रकारके भांड खरीदकर राजाके समान संपदासहित घरको जाऊँगा! थोड़ी नींद आनेपर वह रत्न उसके हाथसे गिरकर समुद्रके मध्यमें जा पड़ा। वणिक् दीर्घ स्वरसे तैरनेवालोंको चिल्लाया—अरे! अरे! जहाजको रोकिये! यहीं रत्न गिर गया, उसे देखिये, और उसे लाकर मुझे उपस्थित कीजिये। देखिये! पोतके चलते हुए, सागरमें नष्ट हुआ माणिक्य (भला) कहाँ मिले? यह मनुष्यजन्म माणिक्यके समान है। रतिसुखरूपी निद्राके वशसे भ्रममें पड़कर, संसार समुद्रमें हराकर, खोजनेपर भी मैं (इस मनुष्यजन्मरूपी माणिक्यको) फिर कैसे पाऊँगा? ॥११॥

[१२]

(तब) विद्युच्चर कहने लगा—विंध्यपर्वतमें दृढ़प्रहारी नामका एक धनुर्धर भील रहता था। उसने बाणके आघातसे एक हाथीको मार डाला। इधर वह स्वयं भुजंगमसे डँस लिया

[११] १. क ख ङ °णउं। २. क घ ङ °उं। ३. क °इं। ४. ख ग पुहइ°। ५. क घ ङ मणि। ६. घ तहो। ७. क °विहुं। ८. क ङ तर°। ९. क ङ °वुत्तु। १०. क ख ग ङ र° ए°। ११. क ङ अण्णेसवि पुणु मह्रु। १२. क ङ °भमउ। १३. क ङ संसारि°।

[१२] १. क ङ °इं दिढ°; ख ग घ पभणइं दिढपहारि। २. क घ ङ कोवंड°। ३. क ङ एतहिं; घ °हिं।

धणुघाएं[4] मारिउ विसहरो वि भिल्लु[5] वि विसभुत्तु[6] विवण्णु सो वि।
करि-भिल्ल-सप्पुँ-धणु धरणिपडिय विहरंतसिवालहो[8] चित्ति चडिय।
छम्मासु हत्थि नरु एक्कु मासु अहि होसइ पुणु दिवसेक्कु[9] गासु।
तावच्छउ फेडमि दुट्ठभुक्ख[10] इय[11] खामि दो वि धणुनद्ध[12]-सुक्ख[13]।
करडंतहो तहो दिढनद्धु[14] तुडिउ धणुकोडिए[15] तालु कवालु फुडिउ।
मुउ जंबुउ जेम[16] मुणंतु अहिउ[16] नासेमहि[17] तिह[18] परमत्थु कहिउ।
घत्ता—तो भणइ[19] कुमारु माम सुणहि[20] अक्खाणउ[21] अज्जु वि नउ मुणहि[22]।
कव्वाडिउ [23]को वि कहि मि[23] वसइ[24] इंधणु आहरिवि अन्नु[25] गसइ[26] ॥१२॥

[१३]

वणे एक्कदिवसे सज्जियकुठारु[1] गउ सीसे चडाविउ[2] कट्ठभारु।
उण्हालइ[3] खररविकिरणतत्तु भरु मेल्लिवि तरुतले निद्दपत्तु।
सुइणंतरे[4] पेच्छइ रायलील वरकामिणिहिं सहुँ[5] कामकील।
अप्पाणु कलइ महिवइसमाणु सिंहासणे[6] चमरहिं विज्जमाणु[7]।
करि-तुरय-जोहसामग्गिसारु रायउलु [8]रुद्धपडिहारदारु[8]।

गया। धनुषके प्रहारसे उसने विषधरको भी मार डाला, और वह भील भी विषभुक्त (विष-व्याप्त) होकर मर गया। पृथ्वीपर पड़े हुए हाथी, भील, सर्प और धनुष एक घूमते हुए शृगालके चित्तमें चढ़ गये। हाथी छह मास, मनुष्य एक मास, और यह सर्प एक दिनका ग्रास होगा। तो ठीक, ये सब तबतक रहें, आज तो मैं इस दुष्ट भूखको धनुषके दोनों ओर बँधे हुए सूखे बंधन(तांतकी गाँठ)को खाकर मिटा लेता हूँ। उसके चबानेसे वह दृढ़ गाँठ टूट गया, और धनुषके शिरेसे उसका तालु व कपाल फूट गया। जिसप्रकार अधिकसे और अधिक लाभ-को चाहनेवाला जंबूक मर गया, तू भी उसीतरह नष्ट होगा, इसप्रकार मैंने यह परमार्थ कह दिया। तब कुमार बोला—हे मामा! एक आख्यान सुनो, जिसे तुम अबतक भी नहीं जानते। कहीं कोई कबाड़ी रहता था, और ईंधन लाकर (उसे बेचकर) अन्न खाता था ॥१२॥

[१३]

एक दिन वह अपने कुल्हाड़ेसे सज्जित होकर वनमें गया, और शिरपर काष्ठका भार चढ़ा लिया। ग्रीष्ममें प्रखर रविकिरणोंसे संतप्त होकर भारको छोड़कर(शिरसे उतारकर), वृक्षके नीचे निद्राको प्राप्त हुआ। स्वप्नमें उसने राजलीला देखी, और सुंदर कामिनियोंके साथ काम-क्रीड़ा। अपने आपको राजाके समान समझा, जो सिंहासनपर विराजमान था, जिसके ऊपर चमरोंसे बीजना किया जा रहा था; जिसका राजकुल करि-तुरग एवं योद्धाओं इत्यादिकी समस्त सामग्रीसे सार-युक्त अर्थात् समृद्ध था, और जिसका द्वार प्रतीहारसे अवरुद्ध (संरक्षित)

४. क ङ °घायहिं। ५. क ङ भिल्ल। ६. क ङ विसु°। ७. क घ ङ सप्प। ८. क घ ङ सियालहु। ९. क ङ °सेक। १०. क ङ °भुक्खु। ११. ख ग पर। १२. क ख ग ङ °बद्ध। १३. क मुक्कु; ख ग मुक्कु। १४. क ङ °णद्धु। १५. क ङ °य। १६. ख ग सुहेण छुहिउ। १७. क °सहिं। १८. घ तिहं। १९. क घ ङ °इं। २०. ख ग मु°; घ मुणहिं। २१. क घ ङ °णउं। २२. क ङ °हिं; घ मुणहिं। २३. क ङ कहिमि को वि। २४. क °इं। २५. प्रतियोंमें 'अण्णु'।

[१३] १. घ °कुठारु। २. घ °विवि। ३. ख ग घ उन्हा°। ४. क ङ सुय°। ५. क सहु। ६. क ङ सिंघा°। ७. ख ग विज्जु°। ८. ख ग रुद्धु नं नियवि सारु; ग प्रतिमें दूसरा पाठ भी = चिह्न लगा कर लिखा गया है।

अह आगयाए[9] छुहसोसियाए[10] उट्ठाविउ महिलए[9] रोसियाए।
अंतरिउ रज्जु पर दिट्ठ[11] पत्ति मसिकसणवण्ण णं कालरत्ति
सुक्कंग-पयडसिरसंधिजाल[12] उद्घुसियरुक्खखरविसमवाल।
असहंतु विरसु तं ताए वुत्तु सा पिट्टिवि[13] धाडिय[14] पुणु वि सुत्तु
तो नियइ[15] सुइणु अडइहे[16] सबाहु मलमलिणवहंत[17]-पसेयबाहु।
इंधणभरपीडियउत्तमंगु ता उट्ठिउ [18]दुक्खझुलुक्कियंगु।
घत्ता—जइ सुइणे रज्जु संपत्तु नहो पुणु पुणु वि तं पि संभवइ कहो।
इय माणुसजम्महो जइ लहसिउ तो अच्छमि नरयदुक्खगसिउ ॥ १३ ॥

[१४]

तक्करु कहइ[1] निसुणि बहुचेडउ[2] पाउसे कम्मे[3] नयरे नडवेडउ[4]।
नच्चहु निसिहि[5] गयउ निवपासइ[6] मुक्कउ रक्खणु नियँ[7]-आवासए[8]।
वोडु नाम नडु[9] ठिउ जरजुण्णउ[10] तरुसंकडआरामासण्णउ[10]।
ता पुराउ आहरणहिं लंछिय सासुयाए[11] क वि बहु निब्भच्छिय[12]।
आविवे[13] रुक्खे ताइँ[14] संथाविउ[15] मरणोवाय[16]-पासु गले लाविउ[17]।

था। अथानंतर क्षुधासे शोषित एवं रुष्ट हुई उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया। राज्य (दृष्टिसे) ओझल हो गया, और स्याही जैसे काले वर्णवाली एवं काल-रात्रि जैसी पत्नी दिखाई दी। उसके अंग सूख रहे थे, शिराएँ और संधिसमूह प्रकट हो रहे थे, एवं बाल रोमांचित (खड़े हुए), रूखे, कठोर तथा असमान थे। उसके कठोर वचनको सहन न करते हुए(कबाड़ीने) उसे पीटकर निकाल दिया, और फिरसे सो गया। तो उसने स्वप्नमें देखा कि अटवीमें उसके आँसू बह रहे हैं, मलसे मलिन अतिशय प्रस्वेदका स्रोत बह रहा है, और उसका उत्तमांग (शिर) इंधनके भारसे पीड़ित (दबा हुआ) है। तब दुःखसे झुलसते हुए शरीरसे वह उठ खड़ा हुआ। यदि स्वप्नमें उसको राज्य मिल गया तो वह भी पुनः-पुनः मिलना कैसे सम्भव है? इसी-प्रकार यदि मैं इस मनुष्यजन्मसे गिर गया, तो नरकदुःखोंसे ग्रसित होकर रहना होगा ॥१३॥

[१४]

तब तस्कर कहने लगा—सुनो! बहुत-से चेटोंसे युक्त नटोंका एक बेड़ा(दल) वर्षा ऋतुमें (आजीविकाके) कार्यसे नगरमें आया, और रातमें नाचनेके लिए राजाके पास गया। अपने आवासमें रक्षाके लिए उन्होंने एक रक्षक छोड़ दिया। वोड नामका एक जरा जीर्ण (अतिवृद्ध)नट वृक्षोंसे संकीर्ण आरामके पास बैठ गया। तो उसी समय आभरणोंसे लांछित (युक्त) कोई बहू सासकी निर्भर्त्सना पाकर, नगरसे आकर उसी वृक्षके नीचे ठहरी; और मरनेके उपाय स्वरूप

---

९. क घ ङ °इं। १०. क व °याइं। ११. ख ग दिट्ठि। १२. ख ग °सिरिसंधि°। १३. क ङ पिट्टवि। १४. ख ग °उ। १५. क °इं। १६. क घ ङ °इहिं। १७. घ °वहंतु। १८. क ख ग दुक्खु°।

[१४] १. घ भणइ। २. क ङ °वेडउ। ३. क घ ङ कम्मि। ४. ख ग घ नर°। ५. ख ग घ ङ °हिं। ६. क घ ङ °सइं। ७. ख ग नियइ। ८. क ङ °सइं। ९. ख ग नरु। १०. क घ ङ °ण्णउं; ख ग °न्नउ। ११. क व ङ °याइं। १२. क ङ णिब्भं°। १३. क व ङ आइवि। १४. ख ग तावं; घ ताए। १५. घ सत्था°। १६. क ङ °पाय। १७. घ ङ लायउ; ख ग लायय।

चिंतइ वोडु मुयहे[18] [19]महु जायउ कंचणलाहु वइट्ठहो आयउ।
मरहु न जाणइ[20] सइँ उवएसमि मुइयहि पुणु [21]आहरणइँ लेसमि[21]।
पुच्छिय[22] भणइ[23] भाय उद्देसहि[24] सुहमिच्चुए[25] मइँ[26] जमउरि[27] पेसहि[28]।
पासगाहु तो नडिण कड्डिज्जइ[29] आणवि मुरउ रुक्खतलि दिज्जइ[30]।
तहिं सइँ चडवि[31] पडेण निबद्धउ साहहि पासु पुणु वि गले बद्धउ।
सुंदरि [32]मुरउ एम[32] ढालिज्जइ[33] गाढबंधपासेण मरिज्जइ[30]।
इय तहो दक्खालंतहो वेगं मद्दलु[34] ढलिउ दइवसंजोएं।
निवडिउ[35] पासगंठि गलि गाढिउ चडफडंतु जमदूयहिं[36] कड्ढिउ[37]।
तो तिय पेक्खवि[38] वोडु[39] मरंतउ नट्ठिय सभय करेवि अवरत्तउ[40]।
घत्ता—इय कज्जु असिद्धउ[41] अहिलसइ[37] परिणामे न जाणइ[40] तासु गइ[42]।
जो सो नडवोडहो अणुहरइ[30] नियबुद्धिए सोक्खचत्तु मरइ[30] ॥१४॥

[१५]

बोल्लइ जंबूकुमारु न जाणसि पुरि नामेण अत्थि वाणारसि[1]।
लोयवालु[2] तहिं[3] रज्जधुरंधरु[4] सत्तु जिणेवइ गउ देसंतरु।
विग्गहे लग्ग पंच संवच्छर पच्छए तासु महिसि णं अच्छर।

पाशको गलेमें लगाया। वोड सोचने लगा—इसके मरनेसे मुझे (यहीं) बैठे-बैठे ही स्वर्णलाभ हो गया। यह मरना नहीं जानती, अतः मैं स्वयं इसको शिक्षा देता हूँ, मरजाने पर आभरण ले लूँगा। पूछी जानेपर उसने कहा—भाई मुझे सुखमृत्युसे यमपुरी भेज दो। तो नटने पाशका फंदा बनाया और वृक्षके नीचे मुरज लाकर रखा। फिर वहाँ उसके ऊपर स्वयं चढ़कर एक वस्त्रसे शाखामें बाँधकर फिर पाशको गलेमें बाँध लिया। और बोला—हे सुंदरी ! मुरजको इसतरह लुढ़का देना चाहिये, और दृढ़ पाशबंधसे मरना चाहिये। इसप्रकार वेगसे उसको दिखलाते हुए, दैवसंयोगसे मर्दल लुढ़क गया। सुदृढ़ पाशग्रंथी गलेमें पड़ गई और वह तड़फड़ाता हुआ यमदूतोंके द्वारा खींच लिया गया। स्त्री वोडको मरते देखकर अनुताप करके भयभीत होकर भाग गयी। इसप्रकार जो असिद्ध कार्यकी अभिलाषा करता है, और परिणाममें उसकी गति नहीं जानते हुए, उस वोड नामक नटका अनुसरण करता है, वह अपनी ही बुद्धिसे सुखरहित होकर (अर्थात् दुःखपूर्वक) मरता है ॥१४॥

[१५]

तब जंबू कुमारने कहा—तुम नहीं जानते। वाराणसी नामकी एक नगरी है। वहाँका राज्यकी धुराको धारण करनेवाला लोकपाल नामका राजा शत्रुको जीतनेके लिए देशांतरको गया। युद्धमें पाँच वर्ष लग गये। पीछे उसकी अप्सरा जैसी विभ्रमा नामकी महादेवी जिसे

१८. क ङ मुआहि; ख °हि। १९. ख ग मुहु। २०. क घ ङ °णइं। २१. ख ग °णइ ले°; घ °रण लएसमि। २२. क ङ पुं। २३. क घ ङ भणिउं। २४. क घ °शहि। २५. क घ ङ °मिच्चुइं। २६. क मइ; घ मए। २७. घ °पुरि। २८. क ख ग घ °हि। २९. क ख ग ङ कहि°। ३०. क °इं। ३१. क ख ङ चडिवि। ३२. क ङ एम मु°। ३३. ख ग ट्टालि°। ३४. क ङ मंदलु। ३५. घ निवि°। ३६. क ङ °यइं। ३७. क °उं। ३८. क घ ङ पेक्खिवि। ३९. क ङ वोड। ४०. क ङ °त्तउं। ४१. क ङ °द्धउं। ४२. क घ गइं।

[१५] १. क ङ वारा°। २. क ङ °वाल। ३. क ङ तहि। ४. ख ग रज्जु°।

विब्भम नाम निलय जा मुक्की नरजोए[5] विणु मयणझुलुक्की[6] ।
चडेवि तवंगे अलज्जिर डोल्लिय एक्कय जरदासिए[7] सहुँ बोल्लिय ।
हले दीहुण्हसास[8] अवलोयहि[9] सुसिउ अहरु कंपंतउ जोयहि[10] ।
पेक्खहि[11] हियवउ कज्जविभुल्लउ [12]रयजलसित्तु[12] जंघजुवलुल्लउ[13] ।
आणि जुवाणु को वि गलि लावहि[14] संदीवउ वम्महु[15] उल्हावहि[16] ।
वेसिणि भणइ[17] चविउ किं दीणए[18] काइँ असज्झु[19] [20]मइँ मि[20] साहीणए[21] ।
घत्ता—इय रहसकज्जु दोहि मि तियहु[22] धवलहरउवरि बोल्लंतियहु[22] ।
रच्छाइ जंतु जणजाणियहे[23] दिट्ठीवहे[24] निवडिउ राणियहे[23] ।

[१६]

वियडयडवच्छु[1] सुकुमारभुओ चंगाहिहाणु सुण्णारसुओ[2] ।
सालत्तयनहमणिपयकमलु उप्पुंछियनिद्धजंघजुयलु[3] ।
चोलंतचूल-सोहणपडउ[4] [5]पच्छललंबावियकच्छडउ ।
विप्फुरियछुरियआयत्तकडि कण्णंतखित्त[6]-तालदलघडि[7] ।
नवकुसुमसंच[8]-गब्भिणु[9] पवरु खंधंते लुलावियकेसभरु ।

घर छोड़ दिया था, पुरुष संयोगके विना कामवासनासे जल उठी, और प्रासादपर चढ़कर निर्लज्ज भावसे डोलने लगी, तथा एक बूढ़ी दासीसे बोली—सखी ! मेरे दीर्घ व उष्ण श्वासों को देखो, और कांपते हुए सूखे अधरोंको देखो। और भी कार्यको भूले हुए अर्थात् कृत्याकृत्य विवेकशून्य, मेरे इस (सूने) हृदयको देखो। मेरी दोनों जांघें रज-जलसे सिंच गई हैं। किसी जवानको लाकर गले लगाओ, और संदीप्त मदनको बुझाओ। तब वह कुलटा दासी कहने लगी—इस प्रकार दीनतासे क्यों कहती हो ? मेरे स्वाधीन आपके आधीन) रहते हुए (आपके लिए) क्या असाध्य है ? प्रासादके ऊपर दोनों स्त्रियोंके इस गुप्तकार्यकी चर्चा करते समय जन-मान्य(प्रख्यात) रानीके दृष्टिपथमें मार्गसे आता हुआ—॥१५॥

[१६]

—अतिविस्तीर्ण वक्षस्थल और सुकुमार भुजाओंवाला चंग नामका सुनार पुत्र पड़ा, जिसके चरण कमलोंकी नखमणियोंमें आलक्तक(अलता) लगा हुआ था। उसकी जंघाएँ स्निग्ध और मसृण थीं, व केश लहरा रहे थे। वह एक सुंदर पट धारण किये हुए था, पीछे लम्बा लटकता हुआ कछोटा पहने था, और उसकी कमरमें एक चमकती हुई छुरिका लगी थी। अपने कानोंमें वह तालपत्र निर्मित कुंडल पहने था। नये पुष्पोंके संचय(गुच्छे अथवा माला)में सजाया हुआ

५. ख ग °जोए। ६. ख ग °छुलुक्की। ७. क ङ °दासिय। ८. क ङ °सासु; घ °न्हसास। ९. घ °यहि। १०. क °हि; ख ग जोवहि। ११. ख ग °हि। १२. ख ग घ रइजलु भिन्न। १३. ख ग घ °जुयलु°। १४. ख ग °हे; घ लायहि। १५. ख ग वम्हहु। १६. क °वहि। १७. क ङ °इ; घ भणिउं। १८. क घ ङ °इं। १९. ग °ज्जु। २०. क ङ मइ मि; ख ग मइ वि। २१. क घ ङ °णइं। २२. क ङ °यहुं; घ °यहो। २३. क ख ग ङ °यहो। २४. क ङ °पहि।

[१६] १. क घ ङ °वच्छ। २. घ सुन्नार°। ३. क ङ °जमलु। ४. सोसण°; ख ग घ ङ णेसण°। ५. ख ग पच्छड°। ६. ख ग घ कन्नंत°। ७. ख ग वाल°। ८. ख ग °कुसुम°। ९. क ङ °ण।

संचप्पियवड्डुलकुंचधरु उप्फोडियदाढिय[10]-वामकरु[11]।
सो नियवि कहिउ सण्णंतियए[12] पडिहाइ जुवाणु[13] एहु हियए।
आणिज्जइ किं पि म खेउ करु गय दूई जहिं सो[14] सुहयवरु।
संकेयवि[15] छुडु छुडु आणियउ[16] छुडु छुडु दिट्ठिए परियाणियउ[17]।
छुडु छुडु महएवि रायभरिय[18] छुडु छुडु नियसेज्जहि[19] वइसरिय[20]।
घत्ता—ता[21] परियणलोयसहायसहुँ धयचिंधछत्तपच्छइयनहु[22]।
बरतुरयथट्टसंवाहियउ संपत्तु राउ उम्माहियउ ॥१६॥

[१७]

पसरियथाणंतरि[1] मग्गु रुद्धु देविए[2] पच्छाहरे चंगु छुद्धु।
अह आउ राउ महएविगेहु बहुवरिसहँ[3] रूढनवल्लनेहु।
थोवंतरि समए निरोहसमणु जाणवि[4] पच्छाहरे रायगमणु।
उत्तालियाए[5] भयजणियभंगु घल्लिउ पुरीसकूवम्मि चंगु।
निच्चं चिय माणुसपोसु[6] तासु पेसइ[7] जिह होइ न जीवनासु।
छम्मास जाम तहिं[8] वसइ चंगु दुग्गंधविट्ठु[9] हुउ पंडुरंगु।

उसका केशपाश कंधोंके नीचे तक लहरा रहा था। वह अच्छी तरहसे चांपी हुई बड़ी-बड़ी मूँछें धारण किये हुए था, उसकी दाढ़ी खूब सुंदरतासे सँवारी हुई थी, और हाथ बहुत मनोहर थे। उसको देखकर इशारा करते हुए रानीने कहा—यह जवान हृदयको भाता है, इसको लाओ। जरा भी विलंब मत करो। दूती वहाँ गई, जहाँ वह श्रेष्ठ सुभग था। तदनंतर उसको संकेत करके ले आई। फिर दृष्टिसे पहचान हुई (आँखोंसे आँखें मिलीं) और फिर झटपट रागभरी महादेवीने उसे अपनी शैयापर बैठाया। तभी श्रेष्ठ अश्वोंके समूहपर सवार अपने परिजन लोगों व सहायकोंके साथ, ध्वजा, छत्र और पताकाओंसे आकाशको आच्छादित करता हुआ बड़े उमाह(उत्साह)से युक्त राजा आ गया ॥१६॥

[१७]

(उस समय) राजपरिवारके स्थानांतर तक फैल जानेपर अर्थात् राजमहलके बिलकुल निकट आनेपर मार्ग अवरुद्ध हो गया और महादेवीने चंगको पीछेके घरमें डाल दिया। तब तक इधर बहुत वर्षोंसे अभिनव-वर्द्धित स्नेहसे भरा हुआ राजा महादेवीके निवासको आया। थोड़ी देर बाद श्रम निवारणके लिए पीछेके घरमें राजाका आगमन जानकर उतावली और भयसे पराभूत रानीने चंगको पुरीषकूपमें डाल दिया, और नित्यप्रति उसके लिए मनुष्य(शरीर) के पोषण भरके लिए इतना भोजन देती रही, जिससे उसका जीवनाश अर्थात् मरण न हो। जब छह मास तक चंग वहाँ रहा, (तो) उसका शरीर दुर्गंधसे आविष्ट और पांडुरवर्ण हो

१०. क ङ उप्फेडिय°; घ उप्फेरिय°। ११. क काम°। १२. ख ग °यइं; घ सन्नंतियइं। १३. क ङ °ण। १४. क ङ सा। १५. घ °एवि। १६. ब ङ °यउं। १७. प्रतियोंमें °यउं। १८. प्रतियोंमें °भरिउ। १९. ख ग °ज्जहे; घ °ज्जए। २०. क ब ङ °सरिउ; ख ग वइसारियउ। २१ घ परिमिय°। २२. क ङ धयछत्तचिंध°; ख ग °नहुं।

[१७] १. ख ग घ °तरु। २. ख ग °य। ३. क °महं; ख ग °सह; ङ °सइ। ४. क घ ङ जाणिवि ५. क ङ °याइं। ६. ख ग °तोस। ७. क ङ पों°। ८. क ङ तहि। ९. क ङ दुग्गंधु विद्धु।

अह [10]कम्मकरेहिँ विहच्छभूउ[10] सोहिज्जइ नीरें असुइकूउ।
[11]विट्ठंतरंधदारिण अगाहे निवडइ अमेहु गंगापवाहे।
चंगो वि विणिग्गउ वाहमिलिउ सुरसरिहे[12] तीरे लोएहिं कलिउ।
पुच्छिउ तुहुँ होसि न होसि चंगु पंडुरिउ काइँ[13] दुग्गंधु अंगु।
अक्खइ हउँ रूवासत्तिएहिँ पायालसग्गि[14] पन्नयतिएहिँ[15]।
निउ दिवसेहिँ[16] घरु सुमरंतु मुणिवि घल्लिउ रोसेण विवण्णु[17] कुणिवि[18]।
घरु[19] जाएवि दव्वहिँ सुरहिएहिँ[20] जलसेयहिँ[21] तेल्लहिँ[21] सुरहिएहिं।
बहुवासरेहिं[22] संजाउ[23] चंगु [24]चामीयरवण्णउ पुणु नवंगु[24]।
कालम्मि कम्मि भूओ वि राउ गउ दिवसेहिँ देविहि विरहु जाउ।
पुणुरुत्तु[25] दिट्ठु वाहरिउ[26] चंगु [27]बोल्लइ वि[27] सहिए[28] दुहकंपिरंगु।
सुहयत्तणफलु अणुहविउ[29] जं जि [30]अज्ज वि[30] तणुगंधु न समइ[31] तं जि।
पुण्णेहिं[32] छुट्टु जइ एक्कवार तो पुणु वि जाइ किं वार-वार।
घत्ता—तिज्जंच-नरयगइ अणुहवेवि मणुयत्तु लद्धु जइ भवि[33] भमेवि।
रइसुहलवकारणि मूढमणु को माम [34]पडइ पुणु नरइ[34] जणु ॥१७॥

गया। इसके बाद जब कर्मकरों(मेहतरों)के द्वारा उस वीभत्स हुए अशुचि कूपका जलसे शोधन किया जाने लगा तब विष्टाके भीतर अंध(गुप्त)द्वारसे वह अमेध गंगाके प्रवाहमें पड़ा। चंग भी उस (अशुचि)प्रवाहके साथ मिला हुआ निकल गया। सुरसरिके तीरपर लोगोंने उसे पहचाना, और पूछा—हो न हो तू चंग है, तुम्हारा शरीर दुर्गंध युक्त और पांडुरवर्ण कैसे हो गया? उसने कहा—मैं (मेरे) रूपमें आसक्त नागसुंदरियों-द्वारा पाताल लोकमें ले जाया गया। बहुत दिनोंपर मुझे घरका स्मरण करते जानकर उन्होंने रोषसे मुझे विवर्ण(कुरूप) करके छोड़ दिया। घर जाकर देवताओंके द्वारा लाये गये अर्थात् दिव्य द्रव्यों, सुरभित जल सेचन व सुरभित तेलोंके—(प्रयोग-)द्वारा वह चंग बहुत दिनों बाद पुन: कंचन-वर्ण और अभिनव अंग अर्थात् नवीन तारुण्य एवं सौंदर्यसे भरपूर अंगोंवाला हो गया। किसी समय पुन: राजा गया, और कुछ दिन बीतनेपर रानीको पुन: विरह उत्पन्न हुआ। पुन: वैसेके वैसे सुंदर चंगको देखकर उसे बुलाया, तो दु:खसे कांपते हुए गात्रसे चंग उसकी सखीसे यूं बोला—मैंने सुभगत्व(सुंदरता)का जो फल अनुभव किया (उससे) आज भी शरीरकी वह दुर्गंध पूर्णत: नहीं मिटी। पुण्योंसे यदि कोई एक बार (संकटसे) छूट गया, तो क्या वह बार-बार (संकटमें पड़ने) जाता है? तिर्यंच और नरकगतिका अनुभव करके यदि भवभ्रमण करके मनुष्यत्व प्राप्त हुआ तो, हे मामा! रंचमात्र रतिसुखके लिए कौन मूढ़मति पुरुष पुनः नरकमें पड़े ॥ १७ ॥

१०. क ङ °करहिं वी° । ११. क विट्ठिंत°; ग वट्टंत; घ विच्छिन्न° । १२. क घ ङ °हिं । १३. क काइ । १४. ख ग °संगि । १५. क ख ग ङ पन्नय° । १६. क घ ङ °सहिं । १७. क °न्नु । १८. ग कुणवि । १९. क ङ घरि । २०. ङ °एहिं । २१. क °हिं । २२. क तहु वास° । २३. ख ग °य । २४. ख ग °वण्णु पुणुण्णवंगु; घ वन्नु पुणु° । २५. घ पुण° । २६. क ङ बाहरउ । २७. क ङ वोलाइ वि । २८. प्रतियोंमें °य । २९. क ङ °भविउ । ३०. क ङ अज्जु वि । ३१. घ °इं । ३२. ख ग °हिं; घ पुन्नेहिं । ३३. क ङ भुवि । ३४. क ङ णरइ पुणु पडइ ।

[१८]

[1]तो नवर-नयमग्गपडिबोहदित्तेण नीसारसंसारवइरायचित्तेण।
अणवरयपसरंतरोमंचसंचेण आसन्नभव्वेण[2] वंचियपवंचेण।
कुरुविसयनायरपुररायउत्तेण विज्जुच्चरन्नामेण[3] जुत्तीपउत्तेण।
पोमाइओ जंबुसामीमहाभव्वु मइणाण-सुयणाण[4]-परिमुणिय-छ-द्दव्वु।
तुहुँ परमगुणखाणि तुहुँ धम्मतरुकंदु अम्हाण कइरवगाणं[5] तुमं चंदु।
इय थुणिवि[6] पुणु कहिउ तं तक्करायारु अप्पणउ[7] नीसेसु वासहरपइसारु[8]।
एत्थंतरे गयणमयरहरे[9] पवहंति निसिनाव दिवसयरदोत्तडिहे[10] अरहंति[11]।
संघट्टविहडंतकट्ठागयाफुट्ट पुणु किरणसंताणगुणबंधु[12] बहु तुट्ट[12]।
निव्वुड्ड[13] सियवडु व[13] ससिलंछणो गलिउ[14] सउणयणवणिवग्गु साकंदु कलयलिउ।
एत्तहिं[15] वयाहारु रुइतारु तारोहु दीसेइ मज्जंतु-माणिक्कसंदोहु।

घत्ता—बंधुक्ककुसुमसंकासछवि उययाचले[16] छज्जइ उयउ[17] रवि।
विज्जुचरविमुक्कहो भवघरहो[18] उड्डिउ[19] भायणु व रायभरहो[20] ॥१८॥

[१८]

तो फिर शुद्ध नीतिमार्गसे प्रतिबोधको प्राप्त, निःसार संसारसे वैराग्य(विरक्त)-चित्त, अनवरत प्रसरणशील रोमांच-समूहसे युक्त, आसन्न भव्य और (संसारके माया-मोहके) प्रपंचसे रहित तथा कुरुदेशमें नागरपुर (हस्तिनागपुर) के विद्युच्चर नामके उस राजपुत्रने युक्तिप्रयोग-द्वारा (अर्थात् युक्तिपूर्वक) महाभव्य जंबूस्वामीकी, जिन्होंने मतिज्ञान व श्रुतज्ञान-पूर्वक छह द्रव्योंको जान लिया था, इसप्रकार स्तुति की—तू परमगुणोंकी खान है, धर्मवृक्षका मूल है; और हम-जैसे व्यक्तियोंरूपी कुमुदवनोंके लिए तू ही चंद्रमा है। इसप्रकार स्तुति करके उसने अपना वह तस्कराचार (चोरवृत्ति) और वासगृहमें प्रवेश संबंधी निःशेष वृत्त कहा। इसके अनंतर गगनरूपी मकरगृहमें प्रवहमान रात्रिरूपी नाव सूर्यरूपी दोस्तटिका-के कारण अवस्थितिको प्राप्त न कर पाती हुई संघर्षमें विघटित होकर फूट गयी और उधर जिसका किरणसंततिरूपी रज्जुबंध टूट गया है, ऐसे (रात्रिरूपी नौकाके) डूबते हुए श्वेतपट (पाल)के समान चंद्रमा भी गलित हो गया (डूब गया)। (इसप्रकार मानो रात्रिरूपी नावके खंड-खंड होकर टूटनेसे) शकुनजन(पक्षी समूह)रूपी वणिक्वृंद क्रंदन करने लगा, और इधर उसका आधारभूत सुंदर व विशाल तारासमूहरूपी माणिक्यसमूह भी डूबता हुआ दिखाई देने लगा। ' बंधूक पुष्पके समान छविवाला सूर्य उदयाचलपर उदित होकर ऐसा शोभायमान हुआ, मानो संसाररूपी गृहसे मुक्त विद्युच्चरका राग(मोह, घट पक्षमें लालरंग)से भरा हुआ भाजन ही उड़कर सूर्यके रूपमें आकाशमें जा लगा हो ॥१८॥

[१८] १. प्रतियोंमें इस पंक्तिके पूर्व चरितमें आये अठारह कथानकोंके नाम इस प्रकार दिये गये हैं—हालिय-वायस-खेयर-कइ-संखिणि-भमर-विसहर-सियाल-उंट्ट-वणि-असइ-रयणं-जंबुय (घ कोल्हय) कव्वाडिय-नडो-चंगो—एतानि कथानकानि षोडश, राजपुरोहितो मधुलेहलवनं च इति कथानकद्वयमध्याहार्यं; क ङ में 'अह कूप-सिव-माधवधूर्त्तेति कथानकमध्याहार्यं;'। २. क ख ग ङ आसण्णं। ३. ख ग °च्चरे नाम। ४. ख ग घ सुइ°। ५. ख ग कयरव°। ६. ख ग भणेवि। ७. क घ ङ °णउं। ८. ख ग पयंसार। ९. ख घ °हर। १०. क ङ °त्तडिहि; घ °त्तडिहिं। ११. घ अहरंति। १२. क ङ °दिढतुट्ट। १३. ख ग सियचंदु; ङ सिइवडु व्। १४. क °उं। १५. घ °हि। १६. क ङ उयआचलि; घ °यलि। १७. क घ ङ उइउ। १८. क ग घ ङ °घरहो। १९. ख ग °य। २०. ख ग °हरहो।

[१८]

ताम घरपंगणे	घुसिणचंदणघणे	पडहपडु[1] लालियं ।
करड-करडंतयं	टिविल[2]-टंटंतयं ।	तूरमप्फालियं ।
झल्लरीरामयं	मद्दलुद्दामयं[3]	तडियतडिकाहलं ।
डक्कडमडक्कियं	रुंजगुंजंकियं	संखकोलाहलं ।
सुणिवि खय[4]-रइसुहं	जिणवईतणुरुहं	तुरय-करिसंगओ ।
नेहसंवाहिओ	रायराया्हिओ	सेणिओ आगओ[5] ।
तेण मणिजुत्तयं	कडय-कडिसुत्तयं	सेहरं सिरहियं ।
समउसिय वत्थेण[6]	अप्पणो[7] हत्थेणं[8]	भूसणं परिहियं ।
गाढ-नरजाणए[9]	ढुक्क जंपाणए[9]	पुत्तदुहकणविया ।
वहुउ मेल्लंतिणा	सिद्धिवहुरत्तिणा	मायपिउ पणविया ।
चडिवि संचल्लिओ	बंधुजण[10] सल्लिओ ।	लग्गओ मग्गए ।
खुहिय जणनायरो[11]	धाविओ[12] सायरो	संठिओ अग्गए ।
धुयधयाडंबरं	छत्तछन्नंबरं[13]	पासजणनंदणी ।
वहलरहसंठिया[14]	निवडबलऊरिया[15]	वट्टए संदणी ।

[१९]

तब घने केशर और चंदनसे सुगंधित घर-आंगनमें पटु पटह ललितस्वरसे बजाया गया। करडवाद्य करड-करड ध्वनि करने लगा, टिविल-वाद्य टं टं करने लगा, तूरका आस्फालन किया गया, उद्दाम मर्दल सहित झल्लरी रमण कराने लगे (अर्थात् मनोरंजन करने लगे), काहल-वाद्य विद्युत्के समान तड़-तड़, एवं ढक्का डमडक्क-डमडक्क करके बजने लगा। रुंज नामक वाद्यने गूँज उत्पन्न कर दी और शंखोंने कोलाहल। जिनमतीके पुत्रके रतिसुख (अर्थात् स्त्री आदि विषयसुखको भोगनेकी आकांक्षा) को नष्ट हुआ जानकर, स्नेहसे संवाहित अर्थात् संचालित व प्रेरित होकर घोड़े, हाथी समेत राजाधिराज श्रेणिक आया। उसने जंबूस्वामीको मणिमय कड़ा और कटिसूत्र एवं शिरपर शेखर (मुकुट) पहनाये, और स्वयं अपने हाथसे उसे वस्त्र पहनाये और आभूषण धारण कराये। तब मनुष्यों-द्वारा ले जाये जानेवाले सुदृढ़ जंपानकयान(पालकी)के उपस्थित किये जानेपर, वधुओंको छोड़कर सिद्धिवधूमें अनुरक्त हुए जंबूस्वामीने पुत्रके (वियोग)दुःखसे क्रंदन करते हुए माता-पिताको प्रणाम किया, और पालकीपर चढ़कर चल पड़ा। (इसपर) बंधुजनोंके हृदय (दुःखसे) बिंध गये, और वे मार्गसे लग गये, अर्थात् मार्गमें खड़े हो गये। नागरजन क्षुब्ध हो गये, व सागरचंद्र (दुःखसे विह्वल होकर) दौड़ पड़ा, और मार्गमें आगे आकर खड़ा हो गया। ध्वजा पताकाएँ फहराने लगीं, अंबर छत्रोंसे छा गया, और राजमार्ग दोनों ओर खड़े हुए लोगोंको आनंद देनेवाले

[१९] १. क ङ पडहु° । २. क ङ ति°; ख ग °ल्ल । ३. ख ग घ मंदलुद्दामियं । ४. ख ग खइ । ५. क आयओ । ६. क ङ °वत्थयं । ७. ख ग °णे । ८. क ङ हत्थिएं । ९. ङ °णएं । १०. क ख ग °जणु । ११. क ङ °यरे; ख ग घ जणु° । १२. घ धाइउ । १३. क ख ग ङ छत्तछण्णं° । १४. क ङ °सट्टिया; घ °सड्ढिया । १५. क ङ °वट्टिया; घ °वड्ढिया ।

एम नंदणवणं फुल्लफलदलघणं वंदिथुव्वंतओ[16]।
रुक्खसंपण्णयं[17] मुणिगणाइण्णयं[17] आसमं पत्तओ।

घत्ता—मणुयामरसिरसेवियरयइँ पणविवि सुहम्ममुणिगुरुपयइँ।
विण्णविउ[18] कडक्खियसिद्धिवहु किज्जउ पव्वज्जपसाउ पहु ॥१९॥

[२०]

दिण्णाणुग्गह गुरुणा सारें किज्जइ दिक्खग्गहणु कुमारें।
सीसहो[1] कुसुममाल[2] जं मेल्लिय वम्महवाणपंति तं[3] पेल्लिय।
रयणफुरंतु[4] मउडु जं छोडिउ तं कंदप्पदप्पु णं मोडिउ।
जं सिरे कारिउ बालुप्पाडणु तं[5] किउ[6] मयरचिंधनिद्धाडणु।
हारुज्झिउ तिरेहु[7] रेहइ[8] गलु को आयरइ वित्तमुत्ताहलु[9]। ५
मुक्कउ मणिचामीयरकंकणु विहरंतें[10] नरजम्महो कं-कणु।
उत्तारिवि[11] घल्लंति न मुद्दिउ तणु-मण[12]-वयणगुत्तितउ[13] मुद्दिउ।
छोडिवि खित्त-सपरियर[14]-सत्थी मुच्चइ लोहिणि-बंधसमत्थी।

बहुत-से रथोंमें संस्थित राजसेनासे भरपूर हो गया। इस प्रकार बंदीजनों-द्वारा स्तुति किया जाता हुआ कुमार, नंदनवनमें फूलों, फलों एवं पत्रोंसे सघन वृक्षोंसे संपन्न तथा मुनिगणोंसे आकीर्ण (भरे हुए) आश्रमको प्राप्त हुआ। मनुष्यों व देवोंके शिर जिनकी (चरण) रजको लेते हैं, ऐसे मुनि सौधर्म नामक गुरुके चरणोंको प्रणाम करके उसने विज्ञापना की—हे सिद्धिवधूको कटाक्ष (लक्ष्य) करनेवाले प्रभु (मेरे ऊपर) प्रव्रज्या(-दान)रूपी प्रसाद कीजिए ॥१९॥

[२०]

श्रेष्ठ गुरुका अनुग्रह पाकर जंबूकुमारने दीक्षा ग्रहण की। सिरसे जो कुसुममालाको त्यागा, तो मानो कंदर्पकी बाणपंक्तिको ही फेंक दिया। रत्नोंसे चमकता हुआ मुकुट छोड़ा, तो मानो कंदर्पके दर्पको ही भग्न कर दिया। शिरपर-से बालोंको उखाड़ा तो मानो मकरध्वज-का निष्कासन कर दिया। हार त्याग देनेपर (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप त्रिरत्नके समान) तीन रेखाओंसे-युक्त उसका गला स्वयमेव सुंदर लगने लगा, तो फिर वृत्तमुक्त अर्थात् आचरण-से रहित (=शुद्धाचरणके विपरीत), अतएव निष्फल, ऐसा हार धारण करनेरूप निरर्थक आचरण कौन करे? मणिसुवर्णमय-कंकणको छोड़ा तो मानो उसने नरजन्म (अर्थात् संसारमें मनुष्यरूपमें जन्म) के लिए जलकण छोड़ दिये, अर्थात् जलांजलि दे दी। मुद्रिकाओंको तो उसने अवश्य उतारकर डाल दिया, परंतु वह तन, मन और वचन इस गुप्तित्रयसे मुद्रित हो गया। स्त्रियों सहित अपने क्षेत्र व परिकरको छोड़कर उसने (संसार या कर्म)बंधनमें समर्थ लोभरूपी लौह-शृंखलाको त्याग दिया। उसने (बाह्य)परिधानवस्त्रको तो त्याग दिया,

१६. क ख क थुव्वं°। १७. ख °ययं। १८. ख ग विण्णि°।

[२०] १. क ख क °हु। २. ख ग कुसम°। ३. क क णं। ४. ख ग °फुरंत। ५. ख ग नं। ६. ख ग किय। ७. ख ग °ह। ८. क °इं। ९. क चित्त°। १०. क क विरयंतें। ११. क क °रवि। १२. क क मणु। १३. ग °गुत्त°। १४. ख ग °यरि।

जं परिहाणवत्थु[15] परिसेसिउ[16] वत्थुसरूवे चित्तु तं पेसिउ।
पाणि जि पत्तु पवित्तु विसुद्धउ भिक्खाभमणभोज्जु[17] अविरुद्धउ।
आसउ वासु निरासु पदिण्णउ[18] संथरु[19] धरणिपीढु[20] वित्थिण्णउ[21]।
घत्ता—इय बाहिरत्थपरिहारु[22] किउ तं अंतरसुद्धिहे[23] हेउ[24] थिउ[25]।
नीसंगवित्तिइंदियदवणु[26] निम्मूलहि[27] कम्म[28] भंति कवणु ॥२०॥

[२१]

एत्तहे[1] वि पडिच्छियवयभरेण पव्वज्ज[2] लइय विज्जुच्चरेण।
अण्णहि[3] दिणे सुयणाणंदणासु[4] संताण सहोयरनंदणासु[5]।
जिणसेणहो अप्पिवि ललियबाहु हुउ अरुहयासु[6] निग्गंथसाहु।
जिणवइयए सुप्पहअज्जियासु[7] तवचरणु लइउ[8] पासम्मि तासु[9]।
पउमसिरिपमुह बहुआउ[10] जाउ पव्वज्जिउ[11] अज्जिउ जाउ ताउ।
कइदिणेहि[12] सुहम्महो गणहरासु उप्पण्णउ[13] केवलनाणु तासु।
केवलिसहसंठिउ[14] सुद्धगामि तउ चरइ महामुणिजंबुसामि।
अणसणु पहिलारउ कम्मडहणु नियमियदिणेसु आहारचयणु[15]।

पर वह वस्तुस्वरूप(के ज्ञानके रूप) में उसके चित्तमें प्रविष्ट हो गया। हाथ ही उसके पवित्र एवं विशुद्ध पात्र बने, और भिक्षाभ्रमण ही उसका अविरुद्ध (निरतिचार) भोजन। निर्जन आश्रय (गृह, कुटीर) जो दूसरेका दिया हुआ हो, वह उसका आश्रय स्थान हुआ, और विस्तीर्ण पृथिवी-पृष्ठ ही उसका संस्तरण (बिछौना) बना। इसप्रकार किया हुआ बाह्यार्थोंका जो परिहार है, वह आभ्यंतर शुद्धिका हेतु होता है। निःसंगवृत्ति और इंद्रियोंका दमन करनेवाला व्यक्ति कर्म-को निर्मूल करता है, इसमें क्या भ्रांति है! ॥२०॥

[२१]

इधर व्रतोंको स्वीकार करके विद्युच्चरने भी प्रव्रज्या लें ली। दूसरे दिन अपने वंशजोंको, अपने सहोदरके पुत्र जिनसेनको, जो कि स्वजनों (व सज्जनों) को आनंद देनेवाला था, अर्पित करके, सुंदर भुजाओंवाला अरहदास भी निर्ग्रंथ साधु हो गया। जिनमतिने भी सुप्रभा आर्यिकाके पास तपश्चरण ले लिया। पद्मश्री प्रमुख जो बहुएँ थीं, वे भी प्रव्रजित होकर आर्यिकाएँ हो गयीं। कुछ दिनोंमें सौधर्म गणधरको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। केवलीके साथ रहते हुए शुद्धाचारी जंबूस्वामी इसप्रकार तप करने लगे। सर्वप्रथम कर्मोंको दहन करनेवाला

१५. ख ग °वत्थ। १६. ख ग सवि°। १७. ख ग भिक्खाभवण°; क °भोजु; ङ °भोज्ज। १८. क घ ङ °ण्णउं। १९. घ सत्थरु। २०. क ङ °वीढु। २१. क ख ग ङ विच्छि°; घ °ण्णउं। २२. ग °हार। २३. क ख ग ङ °हिं; घ °हि। २४. ख ग होउ; घ देउ। २५. क थिरु। २६. ख ग घ °दमणु। २७. क घ ङ °लहिं। २८. क ङ कम्मु।

[२१] १. क ङ °हि; घ हिं। २. क ङ पावज्ज। ३. क घ ङ °हिं। ४. ख ग सयणा°; घ णयणा°। ५. ख ग सहोयरु णंद°। ६. ख ग °यास। ७. क ङ °याहि। ८. क घ ङ लयउ। ९. क ङ ताहि। १०. घ °याउ। ११. क ङ पाव°। १२. क ङ कइदिणहिं। १३. घ °न्नउ; ङ °ण्णउं। १४. ख ग घ °सुहसंठिय। १५. ख ग °गहणु।

अणुदिट्ठयभिक्ख[16] फलाणुमेउ[17] संजमझाणागमसुद्धिहेउ[18]।
घत्ता—अवमोयरु एक्कगासु पढमु दिणि दिणि एक्कोत्तरकवलक्कमु।
बत्तीस जाम पुणरवि सरइ एक्केक्कउ जा एक्कु जि हवइ[19] ॥२१॥ १०

[२२]

इय तवेण मुणिमग्गे[1] वलग्गइ[2] दंसणनाणसमाहिहिं[3] जग्गइ।
तइयउ नवर वित्तिपरिसंखउ एक्कपमुहघरनियमियभिक्खउ।
बहुसंकप्पचित्तअवहारणु आसापासविणासण[4] कारणु।
आसानाम नरहो[5] दुक्खायरु परमनिरासवित्ति सुहसायरु[6]।
तउ चउत्थु[7] रसचाउ चरिज्जइ दिढपंचेंदियदप्पु हरिज्जइ। ५
पंचमु पुणु विवित्तसिज्जासणु [8]सुण्णागारुज्जाणनिवासणु।
[9]जंतुपीडविरहिउ [10]वयविद्धिहि कारणु झाणजुयलनयसिद्धिहि[10]।
छट्ठउ[11] कायकिलेसु महातउ जायइ[12] जेण परीसहभयजउ।
जो किर होइ जहिच्छहो[13] दूसहु मुणिणा सो सोढव्वु[14] परीसहु[15]।

अनशन (नामक तप) है, जिसमें नियमित दिनों(अष्टमी चतुर्दशी आदि)में आहार त्याग किया जाता है, अपने उद्देश्यसे न बनायी हुई दीक्षा ली जाती है, एवं जिसका फल अनुमान प्रत्यक्ष है कि वह संयम, ध्यान व ज्ञान-शुद्धिका हेतु होता है।

अवमौदर्यमें पहले दिन एक ग्रास, और फिर प्रतिदिन क्रमशः एक-एक अधिक करते हुए जब बत्तीस हो जावें, तो फिर एक-एक करके ग्रासोंको घटाया जाता है, जबतक कि पुनः एक ग्रास हो जावे ॥२१॥

[२२]

इसप्रकारके तपसे मुनि मार्गमें लगे हुए वे जंबूस्वामी दर्शन, ज्ञान और समाधिसे जागते थे। इसके अनंतर तीसरे वृत्ति-परिसंख्यान नामक तपमें एक(दो) आदि घरों(की संख्या)को निश्चित करके भिक्षा की जाती है। यह (तप) बहु-संकल्पी चित्तका निरोध करनेवाला और आशा-पाशके विनाशका कारण है। 'आशा' यह नाम ही मनुष्यके दुःखोंका आकर है, और निराश वृत्ति अर्थात् सर्वथा निष्काम भावना सुखका सागर है। चौथा रसत्याग(नामक)तप किया जाता है, जिससे प्रबल पंचेंद्रियोंके दर्पका अपहरण होता है। पांचवां विविक्त-शय्यासन (नामक) तप शून्यघर उद्यान आदिमें निवास करना है। जन्तु पीड़ासे रहित होनेसे यह तप व्रतोंकी वृद्धि एवं ध्यान-युगल(धर्म व शुक्ल)रूपी पर्वतकी सिद्धि (आरोहण) का कारण है। छठा काय-क्लेश नामक महातप है, जिससे परीषहोंके भयका विजय हो जाता है। स्वेच्छाचारीके लिए

१६. क °विक्खय दिट्ठ°; ख ग °वेक्खिय दिट्ठि°; घ °दिट्ठिय°। १७. घ °मोउ। १८. घ °सिद्धिहेउ। १९. घ हरइ।

[२२] १ ख °मग्ग; ग °लग्ग। २. क ख ग घ °ग्गइं। ३. ख ग °हिंहि। ४. क ङ °विणासइ। ५. ख ग °ह। ६. ख ग सहयायरु। ७. ख ग चउथउ। ८. घ सुण्णा°। ९. ख ग °पीडविरहियउ। १०. प्रतियोंमें 'वयविद्धिहिं कारणु झाणजुयलु नयसिद्धिहिं'। ११. ख छट्टउ। १२. ख ग घ °इं। १३. क ङ जइच्छहि; ख ग जइ°। १४. ख ग °व्व। १५. क °सहुं।

नियमविसेसें जो सइं किज्जइ[16] कायकिलेसु एम[17]सो गिज्जइ[17]।
घत्ता—इय छप्पयारु बाहिरउ तउ बहिरत्तु वि आयहो भणिउ[18] कउ[19]।
[20]बहिदव्वावेक्खहो तणउ[21] गुणु अण्णु वि जं परपच्चक्खु पुणु ॥२२॥

[२३]

अब्भंतरु पमायपरिहरणउ[1] पायच्छित्तु चरणु भवतरणउ[2]।
पुज्जरिहिं[3] [4]जं आयरु[4] किज्जइ[5] नयपालणु तं विणउ भणिज्जइ[6]।
तणुचेट्ठए[7] अहवा देविणु धणु विज्जावच्चु भणिउ[7] तमनासणु[8]।
नाणब्भासें[9] अलसु जं मुच्चइ निम्मलु तं सज्झाउ पवुच्चइ।
अप्पणत्तु संकप्पु[10] न मण्णइ तं वोसग्गु महातउ भण्णइ[11]।
परसंकप्पचित्तविणियत्तणु अप्पाणें[12] ज्जि अप्परूवियमणु।
[13]सम्मण्णाणबोहिसंसिट्ठउ तं परमत्थझाणु[14] निद्दिट्ठिउ।
छव्विहु नाणविसुद्धिहिं[15] दीसइ[16] अब्भंतरउ तेण तउ सीसइ[16]।
एम महातउ गणहरसण्णिहु[17] जंबूसामि चरइ बारहविहु[18]।

जो दुःसह होता है, मुनिके द्वारा वह परीषह सहन किया जाना चाहिए। नियम विशेषसे जो स्वयं किया जाता है (जैसे खड्गासनमें रहना, शीत, उष्ण व वर्षाको सहन करना आदि) उसीको कायक्लेश(तप) कहा जाता है। इस तरह यह छहप्रकारका बाह्य तप है। इसका बाह्यत्व किस कारणसे कहा गया? क्योंकि इसकी गुणवत्ता बाह्यद्रव्यों(के त्यागादि)की अपेक्षासे है, और दूसरे यह पर-प्रत्यक्ष (दूसरे लोगोंको दिखाई देनेवाला) भी है ॥२२॥

[२३]

प्रमादका अपहरण करनेवाला प्रायश्चित्त नामका आभ्यंतर आचार(तप) संसारसे पार उतरनेवाला है। पूजार्हजनोंका जो आदर किया जाता है, उस नीतिपालनको 'विनय' कहा जाता है। शरीर-चेष्टासे (शरीरसे सेवा करके), अथवा धन देकर जो वैयावृत्य किया जाता है, वह (मोहरूपी)अंधकारका नाश करनेवाला कहा गया है। ज्ञानके अभ्यासमें जो आलस्यको छोड़ा जाता है, अर्थात् आलस्य छोड़कर जो ज्ञानाभ्यास किया जाता है, उसे निर्मल स्वाध्याय कहा जाता है। जो (देहादिकमें) अपनत्वका संकल्प नहीं करना है, उसे व्युत्सर्ग (नामक) महातप कहते हैं। मनकी उस अवस्थाको जबकि वह परद्रव्य संबंधी संकल्पसे अपनेको लौटाकर आत्मामें ही आत्म-रूप होकर, सम्यक्ज्ञान व (आत्म)बोधिसे संश्लिष्ट हो जाता है, उसे परमार्थ ध्यान निर्दिष्ट किया गया है। यह छहप्रकारका तप ज्ञानकी विशुद्धिसे जाना जाता है, इसीसे इसे आभ्यंतर-तप कहा जाता है। इस प्रकार (सौधर्म)गणधरके समान (अथवा समीप रहते हुए) ही जंबूस्वामी बारहप्रकारका महातप करने लगे।

---

१६. क ख ग °इं। १७. ख ग सोहिज्जइ; घ साहिज्जइ। १८. क घ रू °उं। १९. क घ °उं। २०. ख ग बहु°। २१. ख ग रू °उं।

[२३] १. प्रतियों में °णउं। २. ख ग घ °णउं। ३. ख ग घ °रिहि। ४. घ आयरु जं। ५. क °इं। ६. ख ग घ °इं। ७. क रू °उं। ८. क रू तमु णा°। ९. क घ रू °ब्भासु; ख ग °ब्भास। १०. क घ संकेउ; ग में दोनों पाठ है। ११. क ख ग रू °इं; घ भन्नइ। १२. ख ग घ °णो; रू °णि। १३. ख ग घ सम्मन्नाण°। १४. क रू परमत्थु°। १५. क घ रू °द्धिहिं; ख ग °द्धेहि। १६. क °इं। १७. क °हुं; घ °सन्निहु। १८. क °विहुं।

घत्ता—अट्ठारहवरिसहँ[19] कालु[20] गउ माहहो सियसत्तमि पसरे तउ।
विउलइरिसिहरे[21] विसुद्धगुणि[22] णिव्वाणु[23] पत्तु सोहम्मु[24] मुणि ॥२३॥

[२४]

तत्थेव दिवसि पहरद्धमाणि आऊरियजोएं[1] सुक्कझाणि।
पलियंकासीणहो णिम्ममासु जंबूकुमार[2]-मुणिपुंगमासु[3]।
गय खयहो विलीणउ[4] मोहसेसु दंसणणाणावरणु वि असेसु।
अत्थवणपवत्तिउ अंतराउ परियाणिउ[5] जीवें जीवभाउ[6]।
उप्पण्णउं केवलु पुणु णिरंधु अवलोयउ तिहुयणु[7] एक्कखंधु।
[8]करयलजलं व[8] णीसेसु[9] दव्वु पच्चक्खु जि लोयालोय सव्वु।
देवागमु जायउ णहु[10] कमंतु परिमियसहायसहुँ[11] परिकमंतु[12]।
भव्वयणचित्तचूरियकुतक्कु अट्ठारहवरिसहँ[13] जाम थक्कु।
विउलइरिसिहरि कम्मट्ठचत्तु सिद्धालय[14]—सासयसोक्खपत्तु[15]।
सल्लेहणमरणें[16] जणणु-माय बंभोत्तरि इंद-पडिंद जाय।
वहुवउ[17] चयारि चंपापुरम्मि [18]जिणवासुपुज्जचेईहरम्मि।
मासेक्कु करेवि[19] सण्णासु[20] तम्मि अहमिंद जाय बंभोत्तरम्मि।

अठारह वर्षका समय बीतनेपर, माघकी श्वेत(शुक्ल)सप्तमीको प्रातः विपुलगिरिके शिखरपर विशुद्ध गुणोंवाले सौधर्म मुनि निर्वाणको प्राप्त हुए ॥२३॥

[२४]

वहीं, उसी दिन अर्द्धप्रहर प्रमाण दिन व्यतीत हो जानेपर शुक्लध्यानमें, परिपूर्ण योगसे पर्यंकासनसे स्थित, निर्मम मुनिपुंगव जंबूकुमारका शेष (बचा हुआ) मोह (मोहनीय कर्म) क्षय हो गया; दर्शन व ज्ञानावरण कर्म भी अशेषरूपसे विलीन हो गये, और अंतराय कर्म भी अस्तंगत हो गया। जीवने जीवके (शुद्ध)स्वभावको जान लिया। निरंध्र अर्थात् संपूर्ण लोकमें अखंडरूपसे व्याप्त केवलज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे तीनों लोकोंको एक स्कंधके समान स्पष्ट देख लिया; अखिल द्रव्योंको करतल-स्थित जलके समान जान लिया और लोकालोक सभी प्रत्यक्ष हो गये। आकाशका अतिक्रमण करते हुए अर्थात् आकाशमार्गसे, परिमित सहायकोंके साथ परिक्रमा करते हुए देवताओंका आगमन हुआ। (इस प्रकार) अठारह वर्षों तक भव्यजनोंके चित्तका कुतर्क (मिथ्यात्व) दूर करते रहकर, (अंतमें) विपुलगिरिके शिखरपर अष्टकर्मोंको त्याग कर मोक्षके शाश्वत सुखको पा लिया। संलेखनापूर्वक मरण करके पिता-माता ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें इंद्र व प्रतींद्र हुए। चारों बहुएं चंपापुरमें वासुपूज्यजिनके चैत्यघरमें, एक मासका संन्यास करके (मरणोपरांत)

१९. क ङ °वरिसइ; ख ग °सह; घ °सइं। २०. ख ग काल। २१. क घ ङ विउलइरिहिं सि° ख ग विउलिउरि सि°। २२. ख ग °गुणे। २३. ख ग °ण। २४. ख ग °म्म।

[२४] १. ख ग घ आऊरिए°। २. क ङ °कुमारु। ३. क घ ङ °वासु। ४. क घ ङ °उं। ५. क घ °उं। ६. क ङ °वणु। ७. क ङ °वणु। ८. क घ ङ °जलु व (घ व्व)। ९. क ङ °स। १०. क ङ णहिं; घ नहि। ११. घ °सहाए°। १२. प्रतियोंमें 'परिभमंतु'। १३. क ङ °सइं; ख ग °सह; घ °सइ। १४. क घ ङ °लउ। १५. घ °सोक्खि°। १६. ख ग °मरणे। १७. क घ ङ °यउ। १८. क ङ जिणवास°। १९. घ करवि। २०. क °स।

घत्ता—अह सवणसंघसंजुत्त[21] पवरु एयारसंगधरु[22] विज्जुचरु।
विहरंतु तवेण विराइयउ पुरि तामलित्ति[23] संपाइयउ[24] ॥२४॥

[२५]

णयराउ णियडे रिसिसंघे थक्के अत्थवणहो[1] ढुक्कए सूरचक्के[2]।
अह आया[3] ताम कंकालधारि कंचायणि[4] नामें भद्दमारि[5]।
आहासइ सविणय[6] दिवसपंच महु जत्त हवेसइँ सप्पवंच।
आमंतिय[7] भूयावलि रउद्द उवसग्गु करेसइ तुम्ह खुद्द।
इय कज्जें अण्णहिँ[9] कहिं मि[10] ताम पुरि मेल्लिवि गच्छहु जत्त जाम।
गय एम कहेवि तो जइवरेण[11] मुणि भणिय एम विज्जुच्चरेण।
लइ[12] जाहु पमेल्लहु एह थत्ति तो[13] तेहिँ चविउ[13] परिगलउ[14] रत्ति।
बीहंतहँ[15] को किर धम्मलाहु[16] उवसग्गसहणु[17] साहूण साहु[18]।
इय वयणु[18] दिढत्ति[19] सव्वे वि[19] अवक्क[20] निक्कंपिर नियमु करेवि थक्क।
घत्ता—संजायरयणि मसिकसिणपह[21] अंधारियदसदिसि[22] कूरगह।
गयणंगणु-महि एक्कहि[23] मिलइँ खयकालसरिसु[24][25] तमु जगु[25] गिलइ[26] ॥२५॥

ब्रह्मोत्तर-स्वर्गमें अहमिंद्र हुई। इसके अनंतर ग्यारह अंगोंके धारी, एवं तपसे सुशोभित श्रेष्ठ विद्युच्चर महामुनि विहार करते हुए अपने श्रमणसंघ सहित ताम्रलिप्ति नामक नगरीमें आये ॥२४॥

[२५]

ऋषिसंघके नगरके निकट ही ठहर जानेपर एवं सूर्यमंडलके अस्तंगमनके लिए प्रवृत्त होनेपर कंकालको धारण करनेवाली भद्रमारी नामकी कात्यायनी देवी वहाँ आयी, और विनयपूर्वक बोली—'पाँच दिनों तक पूर्ण विस्तारके साथ यहाँ मेरी यात्रा होगी। उसमें रौद्र भूतसमुदाय आमंत्रित है, वह तुम्हें क्षुद्र (असह्य) उपसर्ग करेगा। इस कारण जब तक यात्रा है तब तक इस पुरीको छोड़कर अन्यत्र चले जाइए।' यह कहकर वह चली गयी, तो यतिवर विद्युच्चरने मुनियोंको इसतरह कहा—अच्छा (हो कि), आप लोग इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले जावें। तो उन लोगोंने कहा—'रात्रि व्यतीत हो जावे (तब चले जावेंगे); (क्योंकि उपसर्गसे) डरनेवालोंको क्या धर्मलाभ (हो सकता) है? उपसर्ग सहना ही साधुओंके लिए साधु (कल्याणकर) है।' इस वचन (से अपने)को दृढ़ करके सभी वहीं रह गये, और मौन लेकर निष्कंपरूपसे नियम करके स्थित हो गये। रात्रि होनेपर दशों दिशाओंको अंधकारमय करनेवाले एवं स्याहीके समान कृष्णवर्णवाले क्रूरग्रह(राहु ?)के समान, तथा गगनांगन और पृथ्वी मानो एकत्र मिल रहे हों, ऐसा प्रलयकालके समान (निबिड) अंधकार सारे लोकको गोलने (ग्रसने) लगा ॥२५॥

२१. घ °संघु सं°। २२. ख ग °घर। २३. क ङ तावलित्त; घ ताव°। २४. ख ग संपराइयउ।

[२५] १. क ङ अंथ°। २. ख ग सूरे चक्के। ३. क घ ङ आय। ४. घ °इणि ५. क रुद्द°। ६. क ङ सिविणइ; ख ग सिविणय। ७. ख °सइं। ८. ख ग घ आवं°। ९. क ङ °हिं; घ अन्नहि। १०. घ कहिं मि। ११. क ख ग घ जय°। १२. क जइ। १३. क ङ चविउ तेहिं। १४. ख ग °गलिउ। १५. ख ग °तह। १६. क °हुं। १७. क ङ °सहण। १८. क ङ दिढु वि। १९. क ङ सव्वहिं; घ सव्व वि। २०. ख ग अवक्क। २१. क ङ °कसण°। २२. क ङ °दिसु। २३. ख ग घ ङ °इ। २४. क °कालु°। २५. ख ग घ जगु तमु। २६. क °इं।

[२६]

समुद्धाइया[1] ताम भिउडीकराला कवालेसु[2] पसरंत कीलाललीला ।
समुल्लालयंता महामंसखंडा[3] सधूमग्गि-पम्मुक्क फेक्कारचंडा ।
गले[4] बद्धकंकालवेयालभूया कयाणेयदुप्पिच्छवीहच्छरूया[5] ।
थिया के वि मसियाल[6] हुंवडयमाणा[7] तहा मंकुणा के वि कुक्कुडपमाणा ।
रिसीणं सरीराइँ[8] खाउँ पवत्ता[9] सहंता न तं वेयणं जोयचत्ता ।
पयंपंति दुक्खं सहेउं गरिट्ठं[10] अहो तवफलं केण कत्थेव दिट्ठं ।
अधीरा तओ के वि मुणिणो अयाणा तणुं[11] कंडुयंता[12] वराया पलाणा ।
सरे के वि कूवम्मि चीयाहुयासे[13] विवण्णा पडेऊण तरु—वेल्लिपासे[14] ।
ठिउ नवर विज्जुच्चरो जोयलीणो[15] महाघोरउवसग्गसंगे अदीणो ।
घत्ता—सण्णासु[16] चउव्विहु संगहेवि वयखग्गें[17] मोहवइरि वहेवि ।
संठिउ आराहणसुद्धमणु एक्कल्लवीरु[18] इंदियदमणु[19] ॥२६॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्तसुयवीरविरइए विज्जुच्चरअक्खाणयं जंबूसामिनिव्वाणगमणं नाम [20]दसमो संधी समत्तो[20] ॥ संधिः १०॥

---

[२६]

तब कराल भृकुटियों वाले, कपालोंमें-से लोहूकी धार बहाते हुए, महामांस(नरमांस)-खंडोंको उछालते हुए, धूम्र व अग्नि सहित प्रचंड फेत्कार छोड़ते हुए, गलेमें कंकाल बांधे हुए, अनेक दुष्प्रेक्ष्य और बीभत्स रूप बनाये हुए बैताल और भूत वहाँ उठ खड़े हुए। कोई स्याहीके समान काले भूत हुंकार करने लगे। कोई कुक्कुटके समान विशाल मत्कुणोंके रूपमें प्रकट हुए और ऋषियोंके शरीर खानेको प्रवृत्त हो गये। उस वेदनाको सहन नहीं करके कोई (मुनि) योग (ध्यान) छोड़कर बोले, यह दुःख तो सहनेके लिए बहुत भारी है। अरे तपका फल कब, किसने, कहाँ देखा है ? इससे कोई बेचारे अज्ञानी मुनिजन अधीर होकर शरीर खुजलाते हुए भाग निकले। कोई तालाबमें, कोई कूपमें, कोई चिताग्निमें और कोई वृक्षों एवं लताओंके जालमें पड़कर मर गये। केवल एक विद्युच्चर (महामुनि) ही योगमें लीन हुआ, महाघोर उपसर्गके प्रसंगमें अदीन (निर्भय) भावसे स्थित रहा। चार प्रकारका संन्यास धारण कर, व्रतरूपी खड्गसे मोहशत्रुका वध कर आराधनामें शुद्धमन व इंद्रियोंका दमन करनेवाला वह अकेला वीर वहाँ स्थित रहा ॥२६॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार-वीररसात्मक महाकाव्यमें 'विद्युच्चरका आख्यान' एवं 'जंबूस्वामिका निर्वाणगमन' नामक यह दशम संधि समाप्त ॥ संधि १० ॥

---

[२६] १. क °च्चाइया। २. ख ग कपा°। ३. ख ग घ °मास°। ४. क ख ग ङ गला। ५. क ङ °रूवा। ६. क घ ङ मस°। ७. क घ ङ हूचडयमाणा। ८. ख ग घ °राण। ९. ख ग घ पउत्ता। १०. घ असज्झं। ११. क ग तणु। १२. क घ ङ °वंता। १३. क ख ग ङ बीया°; ख ग °हुवासे। १४. ख ग °पासि; घ पेल्लि°। १५. ख ग जोव°। १६. घ सण्णासु। १७. ख ग °खग्गे। १८. क ङ इक्कल्लउ°। १९. क ख ग ङ °दवणु। २०. क घ ङ दसमा इमा संधी; ख ग °सम्मत्तो। संधिः १०।

[१]

सो जयउ देवयत्तो कइत्तधामोत्ति वीरपडितुल्लो।
जस्स सयासे सिद्धा सीसा सव्वत्थगयवण्णा[1] ॥१॥
विज्जुच्चरहो महामुणिहो[2] जीवहो कम्मनिबंधण[3] छुरियउ।
अइदूसहे उवसग्गे तहिँ[4] बारह मणि[5] अणुवेक्खउ[6] फुरियउ॥२॥
जिह[7] जिह[7] घोरुवसग्गु पहावइ तिहँ तिहँ जगु अणिच्चु परिभावइ।
'गिरिनइपूरु व[8] आउसु खुट्टइ[9] पक्कफलं पि व[10] माणुसु[11] तुट्टइ।
सिय-लावण्णु[12]-वण्णु-जोव्वणु-बलु गलइ[13] नियंतहो[14] णं अंजलिजलु।
बंधव-पुत्त-कलत्तइँ अण्णइँ[15] पवणाहयइँ जंति णं पण्णइँ[16]।
रह-करि-तुरय-जाण-जंपाणइँ अहिणवघणउन्नयणसमाणइँ[17]।
चामर-[18]छत्त-चिंध[18]-सिंहासणु[19] विज्जुलचवलविलासुवहासणु।
आसि[20] निमित्तु जं जि अणुरायहो दिवसहिँ[21] कारणु[22] तं जि[23] विसायहो

वे (महाकवि) देवदत्त जयवंत हों, जो कवित्वके धाम हैं, और उन वीर (भ० महावीर) के प्रतितुल्य हैं, जिनके पास सीखे हुए शिष्य सर्वत्र कीर्त्तिको प्राप्त हुए—वीर भगवान्के पास तप साधनामें सिद्ध हुए शिष्य केवलज्ञानमें समस्त अर्थोंको व्यक्त करनेकी शब्द शक्ति प्राप्त करके अंतमें सिद्ध हुए व सर्वत्र स्तुत्य हुए; महाकवि देवदत्तके पास काव्य-रचनामें सिद्ध हुए शिष्योंको कवित्वमें समस्त अर्थोंको व्यक्त करने योग्य शब्दशक्ति प्राप्त हुई, तथा वे सर्वत्र प्रशंसाको प्राप्त हुए ॥१॥

विद्युच्चर महामुनिके मनमें उस अत्यंत दुःसह उपसर्गमें जीवके कर्मके कारणोंको छेदन करनेवाली बारह अनुप्रेक्षाएँ स्फुरित हुईं ॥२॥

जैसे-जैसे वह घोर उपसर्ग अधिक समर्थ अर्थात् कठोरतर होता जाता था, वैसे-जैसे विद्युच्चर यह जगत् अनित्य है, ऐसा चिंतन करता था। गिरिनदीके पूरके समान आयुष्य खंडित हो जाती है, और मनुष्य पके फलके समान (जीवन वृक्ष-से) टूट जाता है। लक्ष्मी, लावण्य, वर्ण (शरीरका गोर, कृष्ण आदि रंग), यौवन और बल देखते-देखते अंजलिके जलके समान गलित हो जाते हैं। बांधव, पुत्र और कलत्र ये सभी जीवसे अन्य हैं, और इस तरह चले जाते हैं, जैसे पवनसे आहत होकर पत्ते (उड़ जाते हैं)। रथ, हाथी, घोड़े, यान और जंपानक (पालकी) नये मेघ उन्नयनके समान हैं। चमर, छत्र, ध्वजा और सिंहासन विद्युत्के चंचल विलासका भी उपहास करनेवाले (अर्थात् उससे भी अधिक क्षणिक) हैं। (पहले) जो कुछ अनुरागका निमित्त

[१] १. क °धण्णा; च °वन्ना। २. क ख ङ °हिं। ३. घ °धणु। ४. ख ग ङ तहि। ५. ख ग घ च विह। ६. क ङ °वेहउ। ७. घ °हं। ८. ख गिरिनय°; ग °नयपूर व। ९. क °इं। १०. क ङ य। ११. ख ग °स। १२. घ लायन्नु; च लाय°। १३. ख °इं। १४. ख घ °तहं; ग °तह। १५. घ अन्नइं। १६. घ पन्नइं। १७. क ख ग ङ °उण्णयण°। १८. क ङ चिंधछत्त। १९. ख ग सिंघा°। २०. ख आस। २१. ख ग °सहो; घ °सहि। २२. ख ग जंति।

मोहें सो वि जीउ अवगण्णइ[23] अजरामरु अप्पाणउ[24] मण्णइ[25] ।
घत्ता—अद्धुवभावण एह मणे जायइ[26] जासु विवज्जियकामहो ।
दंसणनाणचरित्तगुणु भायणु होइ सो ज्जि सिवधामहो ॥१॥

[२]

मरणसमए जमदूयहिँ[1] निज्जइ[2] असरणु[3] जीउ केण[3] रक्खिज्जइ[4] ।
जइ वि धरंति धरियधुर माणव गरुड[4]-फणिंद-देव-दिढदाणव[5] ।
अक्क-मियंक[6]-सुक्क-सक्कंदण[8] हरि-हर-बंभ[9] वइरि-अक्कंदण[10] ।
[11]पण्णारहं खेत्तेसु सुहंकर[12] कुलयर-चक्कवट्टि-तित्थंकर ।
जइ पइसरइ गाढपविपंजरे गिरिकंदरे सायरे नइ[13]-निज्झरे ।
हरिणु जेम सीहेण दलिज्जइ तेम[14] जीउ[15] कालें कवलिज्जइ ।
आउसु कम्मु[16] निबद्धउ जेत्तउ जीविज्जइ भुंजंतहँ[17] तेत्तउ ।
तहो कम्महो[18] थिरु खणु वि न थक्कइ तिहुवणे[19] रक्ख को वि को सक्कइ ।
घत्ता—दुत्तरे भवसायरसलिले[20] वुड्डंतहँ[21] जगे को साहारइ ।
जिणसासण-उवएसियउ दहविहु धम्मु एक्कु पर तारइ ॥२॥

था, वही दिन बीतनेपर विषादका कारण हो जाता है । तो भी जीव मोह (वश)से(इस सत्यकी) अवमानना करता है, और अपने आपको अजर, अमर मानता है । जिस कामत्यागीके मनमें यह अध्रुव भावना उत्पन्न होती है, वही दर्शन, ज्ञान व चरित्र गुणोंसे युक्त मानव शिवधाम(मोक्ष) का भाजन होता है ॥१॥

(२)

मरणके समय जब यमदूत जोवको ले जाते हैं; उस समय उस अशरण जोवकी रक्षा कौन कर सकता है। चाहे बड़े-बड़े संग्राम धुरंधर सुभट पुरुष ही (जीवको कालसे रक्षाके लिए) धारण कर लें, चाहे, गरुड़, फणींद्र, देव या बलिष्ठदानव; चाहे सूर्य, चंद्र, शुक्र या शक्र; चाहे शत्रुको आक्रंदन करानेवाले हरि और हर; चाहे पंद्रह क्षेत्रोंमें कल्याणकारी कुलकर, चक्रवर्ती, या तीर्थंकर उसे धारण कर लें; चाहे वह सुदृढ़ वज्र-पंजरमें प्रवेश कर जाय, या गिरि कंदराओं, सागर, नदी अथवा निर्झरमें, तो भी जिस प्रकार हरिण सिंहके द्वारा मार डाला जाता है, उसी प्रकार जीव कालसे निगल लिया जाता है । जितना आयुष्य कर्म बांधा है, उतना ही भोगते हुए उसे जीया जाता है । उस आयुकर्मसे अधिक एक क्षण भी स्थिर अर्थात् जीवित नहीं रह सकता । तीनों लोकोंमें कौन उसकी रक्षा कर सकता है ? दुस्तर भवसागर सलिलमें डूबते हुओंके लिए कौन सहारा देता है ? बस एकमात्र जिन-शासन-द्वारा उपदिष्ट दशविध धर्म ही पार उतार सकता है ॥२॥

२३. क °ण्णइं; घ °न्नइ । २४. क घ क °णउं । २५. क °इं; घ मन्नइं । २६. क ख ग क °इं ।
[२] १. ख ग °दूइहे । २. क °ज्जइं । ३. ख ग केण जीउ । ४. घ °ण । ५. क क दानव । ६. ख ग म° । ७. ख ग सक्क । ८. घ °क्कण । ९. ख ग वयरि° । १०. घ पक्कंदण । ११. घ पन्ना° । १२. च महंकर । १३. ख नय । १४. ख ग क तो वि । १५. घ जीवु । १६. ख ग घ कम्म । १७. क °तह । १८. क क समयहो । १९. ख ग °यणे । २०. ख ग °सायरं° । २१. ख ग °तह ।

[३]

संसाराणुवेक्खं[1] भाविज्जइ कम्मवसेण जीउ पाविज्जइ[2]।
जोणि-कुलाउ-जोय[3]-सय-संकडे चउगइभमणे[4] विवज्जियकंकडे।
जम्मंतरइँ[5] लेंतु मेल्लंतउ कवणु न कवणु गोत्तु[6] संपत्तउ।
बप्पुँ[7] जि पुत्तु पुत्तु जायउ[8] पिउ मित्तु जि सत्तु सत्तु बंधउ[9] थिउ।
माय जि महिल महेली मायरि बहिणि वि धीय धीय वि सहोयरि।
सामिउ[10] दासु होवि[11] उप्पज्जइ[2] दासु वि सामिसालु संपज्जइ[2]।
केत्तिउ कहमि[12] मुणहु[13] अणुमाणें जम्मइ[14] अप्पाणउ[15] अप्पाणें।
नारउ तिरिउ तिरिउ पुणु[16] नारउ देउ वि[17] पुरिसु नरु वि[17] वंदारउ।
घत्ता—इय जाणेवि संसारगइ दंसण-नाणु जेण नाराहिउ।
अच्छइ[18] सो मिच्छा-छलिउ काम-कोह-भय-भूएहिँ[19] वाहिउ[20] ॥३॥

[४]

जीवहो नत्थि को वि साहिज्जउ[1] कम्मफलइँ जो भंजइ[2] विज्जउ[3]।
एक्कु जि पावइ निउइ[4] महल्लउ निवडइ घोरनरए एक्कल्लउ।
एक्कु जि[5] खरघम्मेण[6] विलिज्जइ एक्कु वि वइतरणिहिँ[8] वोलिज्जइ।

(३)

अनंतर वह संसारानुप्रेक्षाका चिंतवन करने लगा। चतुर्गति भ्रमणमें मर्यादा (टि० रहित होकर जीव कर्मवशसे सैकड़ों संकीर्ण योनियों, कुलों, आयुष्य तथा योगों (नाना संयोगों) को प्राप्त करता है। जन्मांतरोंको लेते और छोड़ते हुए इसने कौन-सा गोत्र नहीं पाया। बाप पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है। मित्र शत्रु और शत्रु, बांधव हो जाता है। माता स्त्री और स्त्री, माता बन जाती है। बहिन पुत्री हो जाती है, और पुत्री सहोदरा। स्वामी दास होकर उत्पन्न होता है, और दास स्वामि-श्रेष्ठ हो जाता है। कितना कहें, अनुमानसे जान लीजिए, यहाँतक कि स्वयं अपनेसे आप ही उत्पन्न हो जाता है (देखिये भूमिकामें महेश्वरदत्तका कथानक) नारक तिर्यंच हो जाता है, व तिर्यंच नारकी; देव भी पुरुष हो जाता है, और पुरुष देव। इस प्रकार संसारगतिको जानकर जिसने दर्शन-ज्ञानको नहीं आराधा, वह मिथ्यात्वसे छला जाकर, काम, क्रोध व भयके भूतोंसे चालित होकर रहता है, अर्थात् काम क्रोधादि कषायोंके वशीभूत होकर जीवन व्यतीत करता है ॥३॥

(४)

जीवका ऐसा कोई सहायक विज्ञ (ज्ञानी) या वैद्य नहीं है जो उसके कर्मफलोंको काट दे। जीव अकेला ही महान् मोक्षपदको पाता है, और अकेला ही घोर नरकमें गिरता है, तथा वहाँ

[३] १. क ङ °पेक्ख। २. क °ज्जइं। ३. ख ग जोणि। ४. ख ग च °भवणे। ५. क ङ °रइ। ६. क गोत्त। ७. क ङ बापु। ८. क ङ °इ। ९. ख ग °व। १०. क घ ङ °उं। ११. क ख ग ङ होइ। १२. ग कहिमि। १३. घ °हुं। १४. प्रतियोंमें °इं। १५. क घ ङ °णउं। १६. क ङ तह। १७. घ जि। १८. ख ग °उ। १९. क घ ङ °भूयहि। २०. घ °उं।

[४] १. ग च °ज्जइ। २. प्रतियोंमें भुं°। ३. ख °इ। ४. ख ग ङ निउ जि। ५. घ वि। ६. क °धम्मेण। ७. ख ग लइज्जइ। ८. ख ग घ °णिहि।

एक्कु जि ताडिज्जइ असिवत्तहिँ[9]   एक्कु जि फाडिज्जइ करवत्तहि[10]।
एक्कु जि जले जलयरु वणे वणयरु   एक्कु जि महिहरकंदरे अजयरु।
एक्कु जि मेच्छु चंडपरिणामउ[11]   एक्कु जि[12] संढु[12] विसमबहुकामउ[13]।
एक्कल्लो वि महिल एक्कु जि णरु   एक्कु जि महिवइ एक्कु जि सुरवरु।
एक्कु जि जोएं[14] गलियवियप्पउ[15]   जायइ जीउ सुद्धपरमप्पउ।
घत्ता—एक्कु जि भुंजइ कम्मफलु जीवहो बीयउ[16] कवणु[17] कलिज्जइ[18]।
सत्तु मित्तु कहिँ संभवइ[19]   रायदोसु कसु उप्परि किज्जइ ॥४॥

[५]

अॅण्णत्ताणुवेक्ख[1] भावइ पुणु   अण्णु सरीरु अण्णु जीवहो गुणु।
बज्झइ अॅण्णकम्मपरिणामें   जणे कोकिज्जइ अण्णें नामें।
गोत्तु निबंधइ[2] अण्णहिँ खोणिहिँ   उप्पज्जइ[3] अण्णण्णहिं[4] जोणिहिं।
अण्णेण जि[5] पियरेण जणिज्जइ   अण्णइं[6] मायइं उयरें[7] धरिज्जइ।
अण्णु[8] को वि एक्कोयरु भायरु   अण्णु मित्तु घणनेहकयायरु।
अण्णु कलत्तु मिलइ परिणंतहँ   अण्णु जि पुत्तु होइ कामंतहँ[9]।

अकेला ही तीक्ष्ण तापसे (पारदके समान) गलाया जाता है। अकेला ही वैतरणीमें डूबता है, अकेला ही असिपत्रोंसे फाड़ा जाता है, और अकेला ही करौंतसे चीरा जाता है। अकेला ही जलमें जलचर और वनमें वनचर होता है। अकेला ही पर्वत-कंदरामें अजगर होता है। अकेला ही चंड परिणामोंवाला म्लेच्छ होता है। अकेला ही तीव्र एवं विषम काम (वासना) से युक्त नपुंसक होता है। अकेला ही महिला और अकेला ही पुरुष होता है। अकेला ही महीपति, और अकेला ही देव, और अकेला ही योग (ध्यान व तप) से समस्त (सांसारिक) विकल्पोंको त्याग कर यह जीव शुद्ध परमात्मा हो जाता है। अकेला ही कर्मफलको भोगता है, जीवका दूसरा (मित्र या बांधव) किसे गिना जाय? (किसीका) शत्रु या मित्र होना कहाँ सम्भव है? राग व द्वेष किसके ऊपर किया जाय ॥४॥

(५)

फिर वह अन्यत्वानुप्रेक्षाका चिंतन करने लगा। शरीर अन्य है, जीवका स्वभाव (गुण) अन्य है। परिणामोंके अनुसार यह जीव अन्य (अर्थात् अपनेसे भिन्न व पुद्गलमय) कर्मपरिणामों (कर्म-प्रकृतियों) से बँधता है। लोगोंमें किसी अन्य ही नामसे पुकारा जाता है। भिन्न-भिन्न पृथ्वियोंमें भिन्न-भिन्न गोत्र बांधता है और भिन्न-भिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता है। अन्य पितासे उत्पन्न किया जाता है, और अन्य माँके उदरमें धारण किया जाता है। सहोदर भाई भी कोई अन्य ही होता है, और घना स्नेह व आदर करनेवाला मित्र भी अन्य ही होता है। परिणय करते हुए (अपनेसे) भिन्न ही स्त्री मिलती है, और कामभोग करनेसे कोई

९. ख ग °पत्तहिं; घ °पत्तिहिँ°। १०. ख घ °त्तिहिं; क °त्तहि। ११. क घ ङ °मउं। १२. ख संढ। १३. घ ङ °कामउं। १४. ख ग जोए। १५. क घ ङ °प्पउं। १६. ख ग घ च बिज्जउ। १७. क °ण। १८. क ङ कहि°। १९. क °वइं।

[५] १. घ अन्न°। २. क ङ वि°; ख ग °धइं। ३. क अण्णुज्जइ। ४. घ अन्नन्नहि। ५. क ङ वि। ६. क घ ङ °इं। ७. क ङ च उवरि; ख ग उइरि। ८. ख ग अण्ण; घ अन्नु। ९. ख काम्मंतह; ग कम्मंतहं।

अण्णु होइ धणलोहें किंकरु अण्णु जि पिसुणु होइ असुहंकरु।
अण्णु अणाइ[10]-अणंतु[11] सचेयणु[12] सावहि[13] अण्णु पवड्ढियवेयणु।
घत्ता—अण्णण्णाइँ[14] कलेवरइँ लइयइँ मुक्कइँ[15] भवसंघारणे।
अण्णु जि निरवहिजीवगुणु[16] कवणु ममत्तिभाउ[17] तणुकारणे ॥५॥

[६]

जंगमेण संचरइ अजंगमु[1] असुइ सरीरे न काइँ[2] मि[2] चंगमु[1]।
अड्डवियड्डहड्डसंघडियउ[3][4] सिरहिँ[5] निबद्धउ चम्में[6] मढियउ[7]।
रुहिर-मास-वस-पूयविटलटलु[8] मुत्तनिहाणु पुरीसहो[9] पोट्टलु।
थवियउ तो किमि[10]-कीडु[11] पयट्टइ[12] [13]दड्ढु मसाणे छारु पल्लट्टइ[14]।
मुहबिंबेण जेण ससि तोलहि[15] परिणइ तासु कवोले[16] निहालहि[17]।
लोयणसु कहिँ गयउ कडक्खणु कहिँ दंतहिँ दरहसिउ[18] वियक्खणु।
विप्फुरियाहरत्तु कहिँ[19] वट्टइ कोमलबोल्लु[20] काइँ न पयट्टइ[14]।
धूयविलेवणु बाहिरि थक्कइ[21] असुइ गंधु को फेडिवि सक्कइ[21]।

अन्य ही पुत्ररूपमें उत्पन्न होता है। धनके लोभसे सेवक भी अन्य ही होता है, और अकल्याण-कर दुर्जन भी अन्य ही होता है। जीवका अनादि अनंत सचेतन स्वरूप कुछ अन्य ही होता है, तथा सवेदन अर्थात् कर्मोंको उदीरणासे युक्त सावधि (सादि-सान्त) स्वरूप कुछ अन्य ही। बार-बार भवविसर्जन अर्थात् शरीरत्याग करनेमें भिन्न-भिन्न ही शरीर लिये और छोड़े। जीवका निरवधि ज्ञान गुण भी इन सब बाह्य वस्तुओंसे अन्य ही है। अतः इस शरीरके लिए ममत्व ही क्या ? ॥५॥

(६)

चेतन(आत्मा)के सहारेसे अचेतन(शरीर)का संचरण होता है। इस अशुचि शरीरमें कुछ भी चंगा नहीं है। आड़े-टेढ़े हाड़ोंसे यह संघटित है, शिराओंसे निबद्ध है, और चर्मसे मढ़ा हुआ है। यह शरीर पूति रुधिर, मांस, व वसाकी गठरी और मूत्रका निधान व पुरीषकी पोटली है। (मरणोपरांत) इसको रख दिया जाय तो यह कृमि व कीटरूप प्रवृत्त हो जाता है, और श्मशानमें जलानेपर क्षार रूपमें पलट जाता है। जिस मुखबिंबसे चंद्रमाकी तुलना की जाती है, (आयु व्यतीत होनेपर) कपोलोंपर उसकी परिणति देखिये ! लोचनोंका कटाक्षसे देखना कहाँ गया? दाँतोंसे वह विचक्षण ईषत् हास्य अर्थात् वह मंद-मंद मुसकराना कहाँ गया ? ओठोंकी वह शोभा कहाँ गयी ? और कोमल वचन अब क्यों प्रवृत्त नहीं होते ? धूप (आदि) विलेपन बाहर ही रहता है; (शरीरके भीतरकी) अशुचि गंधको कौन मिटा सकता है ?

१०. क अण्णाय; ङ अणाय। ११. क अण्ण; ख ग अण्णु; घ अन्नु। १२. क ङ अचे°। १३. क ङ सव्वहि। १४. ख ग °ण्णाइ; घ अन्नन्नाइं। १५. क ङ °इ। १६. ख ग निरवहे°; क घ ङ °जोउ हउ°। १७. घ ममित्ति°।

[६] १. क घ ङ च °गउ। २. ख ग घ काइ मि। ३. क अद्ढ°। ४. च °संकडियउ। ५. क ख ग ङ सिरिहिं। ६. ख ग च चम्महिं; घ चम्मिहिं। ७. क घ ङ जडि°। ८. ख ग घ पूयटल-ट्टलु। ९. ख ग °सहं। १०. ख ग किम। ११. ख ग कीड; घ कंडु। १२. क घ ङ °ट्टइं। १३ क घ वड्ढ। १४. क °ट्टइं। १५. क घ ङ °हिं। १६. क ङ °ल। १७. क ख ग घ ङ °लहिं। १८. ख ग °हसिय। १९. ख ग कहि। २०. क ङ °लु बोलु। २१. क °इं।

घत्ता—असुइसरीरहो कारणेण केवलु सुद्धु अप्पु अवगण्णइँ[22]।
किसि-कव्वाड[23]-वणिज्जफलु सेवकिलेसु सुहिल्लउ मण्णइँ[24] ॥६॥

[७]

नारय-तिरिय-नरामर थावण मुणि परिभावइ आसवभावण।
तणु-मण-वयण जोउ जीवासउ कम्मागमणवारु[1] सो आसउ।
असुहजोएँ[2] जीवहो सकसायहो लग्गइ निविडकम्ममलु[3] आयहो।
कप्पडे जेम कसायइ[4] सिट्ठउ जायइ बहलरंगु[5] मंजिट्ठउ।
अबलु नरिंदु जेम रिउसिमिरें[6] मंदुज्जोउ दीउ जिहँ[7] तिमिरें[8]।
जीउ वि [9]वेढिज्जइ तिह[9] कम्में निवडइ दुक्खसमुद्दे अहम्में।
अकसायहो आसवु[10] सुहकारणु कुगइ-कुमाणुसत्तविणिवारणु।
सुहकम्मेण जीउ अणु संचइ[11] तित्थयरत्तु[12] गोत्तु[13] संपज्जइ[14]।
घत्ता—मिच्छादंसणे[15] मइलियउ[16] कुडिलभाउ जायइ[17] सकसायहो।
काय-वाय-मणपंजलउ[18] पुण्णनिमित्तु[19] होइ अकसायहो ॥७॥

अशुचि शरीरके कारणसे (अज्ञानी जीव) अनुपम व शुद्ध-आत्माकी अवगणना करते हैं, एवं कृषि, कबाड़ीपन, वाणिज्यफल और सेवाके क्लेशको सुखकर मानते हैं ॥६॥

(७)

अब (वह विद्युच्चर) मुनि नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतिमें स्थापन करनेवाली आस्रव भावना भाने लगा। जीवके आश्रयसे होनेवाला तन, मन व वचनका योग (क्रिया) ही जो कर्मोंके आगमनका द्वार है, वही आश्रव है। सकषाय जीवके अशुभ योगसे उसको घना कर्ममल इस तरह आकर लग जाता है, जैसे कषाय(गोंद)से श्लिष्ट कपड़ेमें मंजीठका रंग खूब गाढ़ा हो जाता है। जिस प्रकार दुर्बल राजाको शत्रुसेनाके द्वारा, एवं मंद प्रकाशवाले दीपकको अंधकारके द्वारा घेर लिया जाता है, उसी प्रकार सकषाय जीव भी कर्मोंसे वेष्टित कर लिया जाता है, और अधर्म करके जीव दुःख समुद्रमें पड़ता है। अल्पकषायवाले जीवका आस्रव शुभ बंधका कारण होता है, और वह कुगति और कुमनुष्य (अधम मनुष्य जाति) योनि (में जन्म होने)का निवारण करता है। शुभक्रियाके द्वारा कर्म परमाणुओंका संचय करनेवाला जीव तीर्थंकर गोत्रको प्राप्त कर लेता है। सकषाय जीवका भाव (परिणाम) मिथ्यादर्शनसे मैला होकर कुटिल हो जाता है, और प्रांजल (शुभ) काय, वाक् व मनवाले अल्पकषायी जीवका भाव पुण्य(बंध)का निमित्त होता है ॥७॥

२२. घ °न्नइं। २३. क ङ °डु। २४. घ मन्नइं।

[७] १. क ख ग ङ °चारु। २. प्रतियोंमें 'असुहजोउ'। ३. ख ग घ °कम्मु फुडु। ४. क घ ङ °यहिं। ५. ख ग घ वहुल°। ६. ख ग °समरें। ७. घ जिहं। ८. ख ग तिमरें। ९. ख ग घ तिहं वेढिज्जइ। १०. प्रतियोंमें °व। ११. क संचइं; घ संघइ। १२. घ °रत्ति। १३. क ङ जाम। १४. क घ ङ विणिबंधइ। १५. च °सण। १६. ख मय°। १७. क °इं। १८. घ °लिउ। १९. घ पुन्न°।

[८]

सहइ[1] परीसहु[2] परमदियंबरु आसवथंभणु[3] जायइ[4] संवरु।
इंदियवित्तिछिद्द दिढु ढक्कइ[5] नवउ कम्मु पइसरेवि[6] न सक्कइ।
नावारूढु जेम जलि जंतउ सुसिरसएहिँ सलिलु पइसंतउ।
जो देविणु पडिबंधणु वारइ[7] तोरुत्तारु तासु को वारइ।
अह मोहिउ मइंधु[8] जइ अच्छइ कवण भंति बुड्डेवि खउ गच्छइ[9]।
इय कज्जें अकसाउ कसायहो दिज्जइ विरइ-निबंधणु रायहो।
कोहहो खंति नाणु अण्णाणहो[10] लोहहो तोसु अमाणु वि माणहो।
अणसणु रसगिद्धिहि[11] निद्धाडणु पायच्छित्तु पमायहो साडणु।
घत्ता—इय जो कुम्मायारसमु संवरियप्पु[12] न आसउ[13] गोवइ।
लाइवि[14] दावानलु[15] गहणे[16] मारुयसम्मुहे[17] होइवि सोवइ॥८॥

[९]

दूरि निरत्थ मरण-जम्मण-जर पुणु अवलोयइ[1] भावण निज्जर।
उइउ[2] सुहासुहफलु भुंजिज्जइ[3] आसियकम्महो निज्जर किज्जइ।

(८)

परीषहको सहन करते हुए उस परमदिगंबर विद्युच्चर महामुनिको आस्रवको रोकनेवाला सवर(भाव) उत्पन्न हुआ। इंद्रिय-वृत्तियोंरूपी छिद्रोंको दृढ़तासे ढँक दिया, जिससे नया कर्म प्रवेश भी नहीं कर सकता। जिस तरह कोई नावारूढ़ व्यक्ति जलमें जाते हुए सैकड़ों छिद्रोंसे प्रवेश करते हुए जलको, छिद्रोंको बंद करके रोक देता है, तो उसको तीरपर उतरनेसे कौन रोक सकता है? परन्तु यदि कोई मतिका अंधा मोहित (मूढ़) होकर बैठा रहे (व छिद्रोंको बंद नहीं करे), तो इसमें क्या भ्रांति है कि वह डूबकर विनाशको प्राप्त होगा? इस हेतुसे कषायके लिए अकषाय, रागके लिए विरति, क्रोधके लिए क्षांति, अज्ञानके लिए ज्ञान, लोभके लिए संतोष, और मानके लिए अमान (मानहीनता, मार्दव भाव) रूपी निबंधन अर्थात् उपशमका उपाय करना चाहिए। उसी प्रकार अनशन रस-लोलुपताका निष्कासन करनेवाला है, तथा प्रायश्चित्त प्रमादको दूर करने वाला है। इस प्रकार जो कूर्माकारके समान अपनेको संवृत करके आस्रवोंसे अपनी रक्षा नहीं करता, वह मानो वनमें आग लगाकर पवनके सन्मुख मुँह करके सोता है॥८॥

(९)

फिर वह निर्जरा भावना करने लगा, जिससे जन्म, मरण व जरा दूरसे ही निरस्त हो जाते हैं। उदित हुए (कर्मानुसार) शुभाशुभ फल भोगने चाहिये, और आसित (स्थित)

[८] १. क घ ङ सहिय; ख °य। २. ख ग °सह। ३. क ङ °रुंभणु। ४. क घ ङ चिंतइ। ५. क ढुक्कइं; ख ग ढंक्कइं; घ ढंकइ। ६. ख पय°। ७. क ख ग ङ धा°। ८. क घ ङ मयंधु। ९. क °इं। १०. घ अन्ना°। ११. क घ ङ °गिद्धिहि। १२. क ख ग ङ °अप्पु। १३. क ङ °वु। १४. ख ग घ लायवि। १५. क ख ग ङ °णलु। १६. क ङ °णें। १७. क ङ मारुवसम्मुहुं; घ °सम्मुहुं।

[९] १. क ङ °वइ। २. क उयउ। ३. क °ज्जइं।

[4]मोक्ख-बंधभेयहिँ [4] नियाणिय कुसलाकुसलमूल[5] परियाणिय।
नरयसमुब्भव[6]-नारयजीवहँ सेसहँ[7] मिच्छादंसणकोवहँ।
दुह-सुहभुंजणएहिं[8] निज्जर अकुसल-अट्ट-रउद्दनिरंतर।
जं निज्जरइ दुक्खु[9] मुणि अंगें कायकिलेस-परीसहसंगें।
अवरु वि जो सम्मत्तालोयणु[10] [11]उवयसहाव-सुहासुहभोयणु।
रायरोसरहियउ[12] नीसल्लउ सुक्खु[13] दुक्खु निज्जरियउ भल्लउ।
घत्ता—पक्कउ फलु तले निवडियउ विंटें [14]पुणु वि[14] जेम-नउ लग्गइ।
कम्मु वि निज्जरसाडियउ पुणु वि न [15]उवइ नाणे जो जग्गइ[15] ॥९॥

[१०]

पुणु लोयाणुरूवे थावइ मणु सुद्धायासे परिट्ठिउ तिहुयणुं[1]।
चउद्दहरज्जुमाणे[2] परियरियउ [3]तिहिँ मि समीरण वलयहिँ[4] धरियउ।
रज्जुव[5] सत्त लोउ हेट्ठिल्लउ पुढविउ[6] सत्त जि दुहहिँ[7] गरिल्लउ।
पढमहिं[8] तीसलक्खनरयायरु रयणप्पहहे[9] आउ जहिँ[10] सायरु।

अर्थात् अभी उदयमें न आये हुए कर्मोंको (उदीरणा-द्वारा) निर्जरा की जानी चाहिए। मोक्ष और बंधकी विशेषताओंके अनुसार, उनके मूलकारण रूपसे निर्जरा भी कुशलमूल व अकुशल-मूल, ऐसी दो प्रकारकी जानी जाती है। नारकी जीवोंको नरक दुःख भोगनेसे और शेष अपुरुषार्थी (क्लीव) लोगोंको दुःख-सुख भोगनेसे निरंतर आर्त व रौद्र ध्यान पूर्वक जो निर्जरा होती है, वह अकुशल(मूल) है; तथा शरीरसे दुःखका बोध होते हुए भी कायक्लेश करते हुए, परीषहोंको सहन करके जो निर्जरा की जाती है, और जो समताभावसे आलोचना है, (कर्मोंके) उदय स्वभावानुसार (निर्द्वंद्व व निष्काम भाव से) जो शुभाशुभका भोगना है, एवं राग-द्वेषसे रहित निःशल्य भावसे जो सुख-दुःखकी निर्जरा है, वह भली (कुशलमूल) है। पका फल नीचे गिरकर जिस प्रकार पुनः डंठलमें नहीं लगता, उसी प्रकार जो कर्म निर्जरा-द्वारा दूर कर दिया गया है, वह भी उस व्यक्तिको पुनः प्राप्त नहीं होता जो ज्ञानमें अर्थात् ज्ञानाराधनामें निरंतर जागरूक (सावधान) रहता है ॥९॥

[१०]

फिर उसने लोकके स्वरूप (का चिंतन करने) में अपने मनको लगाया। यह त्रिभुवन शुद्ध आकाशमें परिस्थित है। यह चौदह राजू प्रमाणवाला है। तीनों लोक वातवलयसे धारण किये हुए हैं। अधोलोक सात राजू है। उसमें अत्यंत दुःखदायक सात पृथ्वियाँ हैं। पहली रत्नप्रभामें तीस लाख नरक-बिल हैं, और एक सागर आयु है (१)। (दूसरी) शर्करा प्रभामें

४. ख ग बंधु मोक्खु भें°; घ बंध-मोक्खु भे°। ५. ख ग घ °कुसलु मूलु। ६. घ °ब्भउ। ७. क ख ग °ह। ८. ग °भंजण°। ९. क दुक्ख। १०. क ङ समता आलों°। ११. क ङ उअय°; घ च उववासहमु°। १२. क ङ °दोसविरहिउ। १३. ख ग मुक्ख। १४. घ पुणउ। १५. घ उयइ नाणि जो लग्गइ।

[१०] १. क °अणु। २. क घ ङ °माण। ३. ख ग तिहि। ४. ख °इहिं। ५. क घ ङ रज्जुय। ६. ख ग च °विहिं। ७. ख ग °हे। ८. क ख ग घ ङ °महि। ९. घ ङ °हहि। १० क ङ जहि।

लक्खइँ पंचवीस नरयइँ[11] तउ सक्करपहे[12] आउसु सायर तिउ[13] ।
वालुप्पहे[14] लक्खइँ[15] पण्णारह[16] उवहि सत्त तइयाहि[17] [18]सायर दह[18] ।
पंकप्पहहे[19] नरइँ[20] लक्खइँ[21] दह धूमहि[22] तिण्णि[23] उवहि[24] सत्तारह ।
पंचविहीणु[25] लक्खु तमनामहि[26] बावीसोवहि आउसथामहि[27] ।
नरयमहातमेहि[28] पंच वि थिय आउसु तिण्णितीस सायर किय ।
घत्ता—धनुहइँ[29] सत्त पढममहिहे[30] हत्थसवातिण्णि[31] वि जायइ[32] तणु ।
विउणउ[33] विउणउ[33] नारयहँ सेसमहीसु[34] होइ[35] उच्चत्तणु ॥१०॥

[११]

मज्झिमलोउ रज्जुपरिखंडिउ दीवसमुद्दहिँ सयलु वि मंडिउ[1] ।
जोयणलक्खु मेरु मज्झंकिउ[2] जंबूदीउ मज्झे दीवहँ[3] ठिउ[4] ।
चउदिसु वेढिउ[5] वलयायारेँ लवणण्णवेण[6] विउणवित्थारेँ ।
हिमवंताइँ तत्थ[7] पव्वय छह गंगापमुहउ[8] नइउ चउद्दह ।
देवोत्तरकुरुहिं[9] सहुँ निम्मिय छेत्तचयारि[10] भोयभूमी थिय ।

पचीस लाख नरक(-बिल) हैं, और आयुष्य तीन सागर है (२)। तीसरी बालुकाप्रभामें पंद्रह लाख नरकबिल और सात-सागरकी अवधि (आयु) है (३)। चौथी पंकप्रभामें दस लाख नरकबिल और दससागर आयु है (४)। पाँचवीं धूमप्रभामें तीन लाख नरकबिल और सत्रह सागर आयु है (५)। छठीं तमःप्रभामें पांच कम एक लाख नरक-बिल औरआयुष्य बाईस सागर है (६); तथा सातवीं महातमःप्रभामें केवल पाँच नरकबिल और आयु तेतीस सागर होती है (७)। पहली पृथ्वीमें शरीर सातधनुष व सवा तीन हाथ ऊँचा होता है। शेष सब पृथ्वियोंमें नारकियोंकी ऊँचाई दुगुनी-दुगुनी होती जाती है ॥१०॥

[११]

मध्यलोक विस्तारमें चतुर्दिक् एक राजू है, और साराका सारा द्वीप व समुद्रोंसे मंडित है। सब द्वीपोंके बीचमें एक लाख योजन विस्तारवाला जम्बूद्वीप है, जिसके मध्यमें सुमेरुपर्वत है, जो कि दुगुने विस्तारवाले लवणोदधिसे चारों दिशाओंमें वलयाकार वेष्टित है। वहाँ हिमवंतादि छह पर्वत हैं। गंगाप्रमुख चौदह नदियाँ हैं। देवकुरु व उत्तरकुरुके साथ निर्मित

११. क ख ग छ °यहं; घ °यहि। १२. क छ सक्कराहि। १३. ख ग तउ। १४. क छ °प्पहं; ख ग °याइं; घ °याहि; च °याहे। १५. ख ग च °हं। १६. क °रहं। १७. क छ °यहि; ख ग घ च °यहु। १८. क °रुदहं। १९. क घ छ °प्पहहि। २०. ख ग छ च °इ। २१. ख ग °इ; घ °ड। २२. क ख ग छ °हि। २३. ख ग घ तिन्नि। २४. ख ग घ उअहि। २५. ख ग च पंचहि°; घ पंचहि°। २६. क छ °हिं; ख ग घ °हो। २७. क छ आउसु°; ख ग घ °धामहो; च °थामहो। २८. क °तमेहिं; ख ग °तमोह। २९. ख ग °हरइ। ३०. क छ °महिहिं; ख ग पढमहे महिहिं। ३१. ख ग घ °तिन्नि। ३२. घ °इं। ३३. क घ छ °णउं। ३४. घ °महीहिं। ३५. घ होउ।

[११] १. क °उं। २. ख ग °किय। ३. क ख ग छ °ह। ४. ख ग ठिय। ५. ख ग मंडिउ। ६. घ °न्नवेण। ७. क छ तित्थ। ८. घ °हउं। ९. घ देउत्तर°; क छ °कुरुहिहिं; ख ग °कुरुत्तहि। १०. क छ खेत्त°।

पुव्वावरविदेहे[11] सुपसत्थउ एकरूउ थिउ कालु चउत्थउ।
भरहेरावएसु उवसप्पिणि[12] विहि मि पवत्तइ[13] तह[14] अवसप्पिणि[15]।
दाहिणमज्झि हिमालय उवहिहि[16] विजयद्धेण गंग-सिंधुहिँ विहि।
भरहखेत्तु छक्खंडिउ छज्जइ[17] आयारेँ रोवियधणु[18] नज्जइ[19]।
इय दीवाउ खेत्तकमु विउणउ[20] धाइयखंडे[21] पुक्खरद्धय[22] तउ।
घत्ता—अड्ढाइयदीवइँ[23] धरेवि[24] मणुसोत्तरगिरि जाम नरालउ[25]।
पुक्खरद्ध धुरि परइ पुणु तिरिय-देव-संचारु विसालउ ॥११॥

[१२]

उवरिमु[1] पंचरज्जु परिमाणेँ सोलहसग्ग मुरयसंठाणेँ।
नव-गेविज्ज[2]-विजयचउजुत्तउ उवरि[3] सव्वत्थसिद्धि पउत्तउ।
बिण्णि-पढमसग्गहिँ[4] विहिँ[5] सायर तइय[6]-चउत्थे सत्त रयणायर।
उवरिमेसु विहिँ[7] विहिँ[8] सग्गइँ[9] तह[10] दस[11]-चउदस[12]-सोलह-अट्ठारह[13]।
वीसोवहि-बावीस-सुहायर[14] साणुत्तर[15]-गेवज्जहिँ[16] सायर[14]।
वट्टइ[17] एक्कु चउहु उवरिल्लहिँ तेतीसोवहि आउसु[18] सव्वहिँ[19]।

और भी चार भोगभूमि क्षेत्र स्थित हैं। पूर्व और अपर (पश्चिम) विदेहमें कल्याणकारी व सुखकर चौथा काल सदैव एकरूप स्थित रहता है। भरत और ऐरावत दोनों क्षेत्रोंमें कालके उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी आरोंका प्रवर्त्तन होता है। हिमालयके मध्यसे दक्षिणकी ओर विजयार्द्ध (पर्वत)से होकर सागरपर्यंत बहनेवाली गंगा व सिंधु इन दोनों नदियोंसे भारतवर्ष छह खंडोंमें विभक्त होकर विराजमान है, और आकारसे चाप चढ़ाये हुए धनुषके समान (अर्धचंद्राकार) जाना जाता है। इस क्रमसे द्वीपोंसे क्षेत्रोंकी संख्या दुगुनी है। फिर धातकी खंड और पुष्करार्द्ध हैं। इस प्रकार अढ़ाई द्वीपोंको लेकर मानुषोत्तर पर्वत-तक मनुष्योंका आवास है। पुष्करार्द्धकी धुरी (मानुषोत्तर पर्वत) के परे तिर्यंच और देवोंका विशाल संचार क्षेत्र है ॥११॥

[१२]

ऊपर पाँच राजू परिमाण मुरजके आकारसे सोलह स्वर्ग तथा चार विमानोंसे युक्त नव-ग्रैवेयक हैं। (इन सबके) ऊपर सर्वार्थसिद्धि (नामक स्वर्ग) कहा गया है। प्रथम दो स्वर्गोंमें दो सागर, तृतीय और चतुर्थमें सात सागर तथा ऊपरके दो स्वर्गोंमें दस, चौदह, सोलह, अट्ठारह और बीस सागर आयु है। आरण और अच्युत तथा नव-ग्रैवेयकोंमें क्रमश: बाईस सागर व उससे एक-एक सागर बढ़ती हुई सुखाकर (सुखदायक) आयु है। ऊपरके चारों विमानोंमें एक

११. क °वरहिंदेहि; ख ग °विदेह। १२. क ख ङ ओस°। १३. घ °त्तइं। १४. क ख ग ङ तहं। १५. घ ओस°; ङ उस°। १६. क ख ग ङ °हिंहिं; घ उअहिंहिं। १७. क °इं। १८. ख ग रोविउ°। १९. ग नि°। २०. घ ङ °णउं। २१. ख ग ङ °मंडे; घ धादइमंडि। २२. ख ग °द्धए; घ °द्धइं। २३. क ङ °दीवइ; घ दीवहं। २४. ख ग मण°। २५. ख ग नरलोउ।

[१२] १. क ङ °रिम। २. क ङ गेवज्जु; घ गेवज्ज। ३. क ङ घरि; घ धरि। ४. ख ग घ °सग्गेहिं; ङ °सग्गहि। ५. क ङ विहि। ६. ख ग तइयइ; घ तयइं। ७. ख ग घ विहि। ८. ख ग विहें; घ विहि। ९. क ङ °इ; ख ग °हि। १०. क घ तहं। ११. घ दह। १२. ख ग घ °दह। १३. घ °रहं। १४. ख ग घ च °यरु। १५. ख ग आणु°। १६. घ °ज्जहि। १७. ख ग घ वड्ढइ। १८. क ङ °वि। १९. क ङ सव्वहिं।

इय कप्पेसु विसयसुक्खारह[२०] वेमाणिय[२१] हवंति[२२] तह बारह[२२] ।
भावणदसपयार[२३] अण्णे तहिँ[२३] अट्ठभेय विंतर एकत्तहिँ[२४] ।
जोइस पंचपयार पमाणिय एम निकाय चयारि[२५] वि जाणिय[२६] ।
घत्ता—एकरज्जु[२७] लोयग्गु[२८] थिउ[२९] विवरियछत्तायारु[३०] सुहावइ[३१]
दंसण-नाण-चरित्ततणु[३२] अमलकलंकु सिद्धु[३३] तं पावइ ॥१२॥

[१३]

पुणु वि मुणिंदु कम्मु निकंतइ बोहिमहागुणु रयणु[१] वि चिंतइ ।
वालुयसायरम्मि ठिय भावइँ[२] हीरयकणिय[३] कवणु किर पावइँ ।
इय संसारि[४] जोणिसंकिण्णइ[५] थावरजंगमजीवपवण्णइ[६] ।
वियलिंदियबाहुल्लु[७] वियंभइ[८] पंचेंदियतणु दुक्खहिँ[९] लब्भइ[१०] ।
तहिँ[११] मि[१२] सिंगि-पसु-पक्खि[१२] बहुत्तणु कह व पमाएं[१३] लहइ[१४] नरत्तणु ।
लद्धइ[१५] माणुसत्ते[१६] सुकुलक्कमु[१७] संपुण्णिंदियत्तु[१८] सुइसंगमु ।
सव्वु वि दुल्लहु[१९] लहेवि वियक्खणु धम्मु न पावइ जइ दसलक्खणु[२०] ।

समान तेतीस सागरकी आयु है। इन कल्पोंमें विषयसुख भोग सकनेमें समर्थ बारह वैमानिक देव होते हैं। दूसरे दस प्रकारके भवनवासी देव हैं, और व्यंतर एकत्र रूपसे आठ प्रकारके हैं। पाँच प्रकारके ज्योतिष देव कहे गये हैं। इस प्रकार देवोंके चार निकाय जाने गये हैं। (सबसे ऊपर) एक राजू-प्रमाण लोकाग्र (सिद्धलोक) स्थित है, जो खुले हुए छातेके आकारका शोभायमान है। दर्शन, ज्ञान व चारित्ररूपी शरीरको धारण करनेवाला अमल(कर्ममल रहित) व अकलंक सिद्ध पुरुष ही उसे प्राप्त करता है ॥१२॥

[१३]

फिर वह मुनींद्र कर्मोंको काटते हुए बोधिरूपी महान् गुणकारी रत्न (बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा) का चिंतन करने लगा—बालुकासागरमें पड़ी हुई हीरेकी कणिकी इच्छा करनेपर उसे कौन पा सकता है? इसी प्रकार नाना योनियोंसे संकीर्ण तथा स्थावर व जंगम जीवोंसे भरे हुए इस संसारमें विकलेंद्रिय जीवोंका अतिशय बाहुल्य है। पंचेंद्रिय शरीर बड़े कष्टसे मिलता है। वहाँ पर भी सींगोंवाले एवं अन्य पशुओं तथा पक्षियोंका ही बहुत्व है। किसी तरह बड़े कष्टसे मनुष्यत्व प्राप्त होता है। मनुष्यत्व मिलनेपर (फिर किसी तरह) उच्च कुलपरंपरा, इंद्रियोंकी पूर्णता, एवं श्रुति(शास्त्र)का संगम (संयोग) होता है। और इन सब दुर्लभ वस्तुओंको

२०. ख ग °रहं; घ °रिह। २१. ख ग वइमाणिय। २२. घ तहं बारहं; क बारहविह। २३. क क अवरे तहिं; अन्ने तहिं। २४. क ब क एक्केत्तहिं; च एक्कहिं तहिं। २५. ख ग °रे। २६. क क यां°। २७. ब एक्कु°। २८. घ ग्गे°। २९. क क ठिउ। ३०. घ °यार। ३१. क °वहं। ३२. ख ग °गुणु। ३३. क क सिद्ध।

[१३] १. क °ण। २. क °इं। ३. क ख ग क हीरइ°। ४. ख ग त्र °र। ५. ख ग घ °ण्णइं; घ °ण्णइं। ६. घ °ण्णइं; ख ग °ण्णइं। ७. ख घ च °ल्ल। ८. घ °मइं। ९. क ब क दुक्खिहिं; ख ग °हें। १०. क घ °इं। ११. ख ग तहि। १२. क क पक्खि-पसु-सिंगि। १३. क °ए। १४. क घ क °इ। १५. घ °इं। १६. क क °सुत्ति। १७. क क सुकुलुग्गमु; घ सुकुलग्गमु। १८. घ संपुन्नें°। १९. ख ग °हो। २०. क ब क दह°।

तो निरत्थु जम्मु वि संपत्तउ वयणु व[२१] विमलु[२२] चक्खुपरिचत्तउ।
धम्मु वि[२३] लहेवि जो न तं पालइ छारनिमित्तु घुसिणु सो जालइ।
घत्ता—इय चिंतिव्वउ रत्ति-दिणु दिढसम्मत्तवित्ति-दय-संजमु।
भवे भवे सामिउ[२४] परमजिणु होउ समाहिए[२५] महु मरणु[२६] ॥१३॥

[१४]

पुणु वि पुणु वि परिभावइ मुणिवरु[१] दसविहधम्महँ[२] आवज्जणपरु।
कयदोसेसु[३] रोसु वंचिज्जइ[४] उत्तमखमइ[५] धम्मु मंडिज्जइ[६]।
जाइमयाइमाणपरिहरणउ[७] मद्दववित्ति[८] धम्मआहरणउ[९]।
कायवायमण जोउ अवक्कउ अज्जवभावे धम्मु तहिं थक्कउ[१०]।
[११]पत्तपरिग्गहलोहु चयंतहो सउचायारपरहो[१२] धम्मु वि तहो[१३]।
सप्पुरिसेसु साहुसंभासणु सच्चु[१४] वि धम्मु[१५] अहम्मविणासणु।
दुद्दमइंदियगिद्धिनिरोहणु संजमु नामु धम्मु[१६] मणरोहणु।
कम्मक्खयनिमित्तु निरवेक्खउ तउ चिज्जंतु[१७] करइ[१८] पावक्खउ।
सीलविहूसियाण जं दिज्जइ[१९] जोग्गु दाणु तं[२०] चाउ भणिज्जइ।

उपलब्ध करके भी यदि कोई बुद्धिमान् दशलक्षण धर्मको प्राप्त न कर सके तो उसका जन्म वैसे ही निरर्थक हुआ, जिस प्रकार चक्षुरहित निर्मल(सुंदर)मुख। और धर्म पाकर भी जो उसे नहीं पालता, वह मानो राखके लिए केशरको जलाता है। पूर्वोक्त प्रकारसे रातदिन सोचना चाहिए, और दृढ़ सम्यक्त्ववृत्ति तथा दया व संयम रखते हुए यह भावना करनी चाहिए कि भव-भवमें परम जिन (अंतिम तीर्थंकर महावीर) हमारे स्वामी (इष्टदेव) हों, व मेरा मरण समाधिपूर्वक हो ॥१३॥

[१४]

दशविध धर्मके अभ्यासमें तत्पर वह श्रेष्ठ यति पुनः पुनः चिंतन करने लगा—दोष (अपराध) करनेवालोंके प्रति रोषका त्याग करना चाहिए। उत्तम क्षमासे धर्मको अलंकृत करना चाहिए। जातिमद आदि मानका अपहरण करनेवाली मार्दववृत्ति धर्मका आभूषण है। काय, वाक् और मनका अवक्र(निष्कपट, सरल) योग आर्जवभावमें ही होता है, और उसीमें धर्म स्थित रहता है। पात्र आदि परिग्रहके प्रति लोभ त्यागनेवाले तथा शुद्धाचारपरायण व्यक्तिका ही शौच धर्म सच्चा होता है। सत्पुरुषोंके साथ साधु संभाषण ही सत्यधर्म है, जो अधर्मका विनाश करनेवाला है। दुर्दम इंद्रिय-लोलुपताका निरोध करना यह संयम नामका धर्म है, जो मनका निग्रह करनेवाला है। कर्मक्षयके निमित्त निरपेक्ष (निष्काम) भावसे तपका संचय करनेवाला व्यक्ति ही पापोंका क्षय करता है। शीलसे विभूषित

२१. क ख ग ङ वि। २२. प्रतियोंमें 'विमल'। २३. क ङ में 'वि' नहीं। २४. क ख ग ङ °उं। २५. क ङ °हिय। २६. घ मरणुज्जमु।

[१४] १. क ङ जय°। २. क ङ दहविहयम्महो; घ °धम्मह। ३. क ङ °संसु। ४. क घ ङ च दंडि°। ५. क ख ग ङ °खमइं। ६. क °ज्जइं। ७. ख ग णइं; घ ङ °णउं। ८. क ख ग ङ °वित्तु। ९. क ङ धम्मु आहरणउं; घ °णउं; ख ग णडं। १०. क °उं। ११. क ङ पत्तु। १२. क घ ङ याह प°। १३. क तहुं; ङ तहु। १४. क ख सव्वु; च सच्छु। १५. क धम्म। १६. ख ग धम्म। १७. क वि°; ख ग ङ कि°। १८. क ख ग °ह। १९. घ कि°। २०. ख ग घ सो।

एहु[21] महारउ इय मइ मुयइ[22] परिवज्जियकिंचित्तु[23] पवुच्चइ।
नवविह-बंभचेरु[24] जो[25] रक्खइ[26] चडेवि धम्मि सिववहुय[27] कडक्खइ[26]।
घत्ता — [28]दसलक्खणधम्माणुगउ[29] जीउ न जाम कम्मु[30] णिकंदइ[26]।
मिच्छादंसणविणडियउ[31] सुद्धचरित्ति ताम कउ नंदइ[26] ॥१४॥

[१५]

अणुवेक्खाउ एम भावंतहो निम्मलझाणे चित्तु[1] थावंतहो[2]।
देहभिन्नु[3] अप्पाणु गणंतहो निरवहि-[4]सासयसोक्खु मुणंतहो[4]।
पत्तपरीसहदुहअवसायहो[5] विज्जुच्चरहो विमुक्ककसायहो।
[6]जिह जिह[6] रुहिरु पियइ[7] भूयावलि [8]तिह तिह मुणि मण्णइ[9] गय भवकलि।[10]
मासु वि तडयडंतु तुट्टंतउ पेक्खइ[11] कम्मोवहि खुट्टंतउ।
हड्डइँ[12] कडयडंत[13] खज्जंतइँ जाणइ[14] कट्ठाइ व भज्जंतइँ।
एम समाहिए[14] [15]मरेवि सुसत्तउ[15] गउ सव्वत्थसिद्धि[16] संपत्तउ।

व्यक्तियोंको जो योग्य दान दिया जाता है, उसे त्यागधर्म कहा जाता है। 'यह मेरा है' इस मतिको छोड़ देना परिवर्जित-किंचित्व अर्थात् आकिंचन्य धर्म कहलाता है। जो नव-विध ब्रह्मचर्यका रक्षण करता है, वह धर्म(रूपी पर्वतके शिखर) पर चढ़कर शिववधूको कटाक्षोंसे देखता है, अर्थात् मोक्षलक्ष्मीसे परिणय करता है। जबतक जीव दशलक्षण-धर्मोंका अनुगामी होकर कर्मोंका उन्मूलन नहीं करता, तबतक मिथ्यादर्शनसे छला हुआ वह जीव शुद्ध चारित्र अर्थात् शुद्ध आत्मस्वभावमें लीनतामें कैसे आनंदित हो? ॥१४॥

[१५]

इस प्रकार अनुप्रेक्षाओंकी भावना करते हुए, निर्मल(धर्म)ध्यानमें अपने चित्तको स्थापित करते हुए, अपने आत्माको देहसे भिन्न मानते हुए, निरवधि-निःसीम शाश्वत(मोक्ष) सुखको समझते हुए अर्थात् उसीका ध्यान करते हुए, एवं आये हुए परीषह-दुःखके वशीभूत न होनेवाले तथा कषायरहित विद्युच्चर महामुनिका जैसे-जैसे भूतोंका वह समुदाय रुधिर पान करता, वैसे-वैसे मुनि अपना भवकलह अर्थात् संसारमें बार-बार जन्म-मरणका झगड़ा, मिटा हुआ मानता। मांसके तड़-तड़ करके टूटनेको वह महामुनि कर्मोपाधिके खंड-खंड होनेके समान देखता; और कड़-कड़ करके खाये जाते हुए हाड़ोंको वह भग्न किये जाते हुए काष्ठादि पदार्थोंके समान जानता। इसप्रकार वह शुद्धसत्त्व अर्थात् शुद्धात्मा मुनि (शुद्धभावोंसे)

२१. क घ ङ च एउ। २२. क °इं; घ मुज्जइ। २३. क ङ °किंचत्तु। २४. क घ ङ णवविहु बंभ°। २५. क जे; ङ जं। २६. क °इं। २७. ख ग °वहुव। २८ क ङ दह°। २९. ख ग °ण गइ; घ °णु गइ। ३० क ङ कम्म। ३१. घ °दंसणि विण°; ख ग °निवडियउ।

[१५] १. ख घ चित्त। २. ख ग थाव°। ३. क देव°; क ङ °भिण्णु। ४. ख ग °सोक्ख-मग्गंतहो। ५. घ °परीसहं°; क घ ङ °अविसायहो। ६. ख ग जह जह; घ जिहं जिहं। ७. घ °इं। ८. ख ग तहं, तह; घ तिहं तिहं। ९. ख ग मन्नइ; घ मन्नइं। १०. क ख ग ङ °सलि। ११. क घ ङ पेक्खिवि। १२. क ग ङ °इ; ख हड्डुय। १३. क ङ °डंति। १४. ख ग घ ङ °इं। १५. क घ ङ °विणु सुत्तउ। १६. घ सव्वट्ठ°।

हत्थपमाणु देहु जायउ तहिँ सायर तिण्णितीस[17] आउसु जहिं।
जत्थहो[18] चइवि जीउ[19] नासियरइ[20] एक्कभवेण लहइ पंचमगइ।
इयकमेण आरिसे जिहँ[21] जाणिउ[22] जंबूसामिहो[23] चरिउ[24] समाणिउ[25]।
घत्ता—सोयारनरहँ तह[26] पाढयहँ [27]चाउवण्णसंघसमदिट्ठिहिं[28]।
सोक्खपरंपरु[28] परमफलु मंगलु[29] देउ वीरु जिणु गोट्ठिहिं ॥१५॥

इय जंबूसामिचरिए सिंगारवीरे महाकव्वे महाकइदेवयत्त[30]—सुयवीरविरइए बारहअणुपेहाउ[31] भावणाए विज्जुच्चरस्स[32] सव्वट्ठसिद्धिगमणं नाम [33]एयारसमो संधी समत्तो[33] ॥संधिः ११॥

समाधिमरण करके सर्वार्थसिद्धिको प्राप्त हुआ। वहाँ उसका हस्तप्रमाण देह हुआ, और तेतीस सागरकी आयु, जहाँसे च्युत होकर जीव समस्त रति अर्थात् राग (एवं द्वेष) का नाश करके एक बार ही जन्म लेकर पंचमगति अर्थात् मोक्षको पा लेता है। इस क्रमसे आर्ष-परंपरासे जैसा जाना, वैसा जंबूस्वामी चरित्रको पूरा किया। श्रोता पुरुषोंको तथा पाठकोंको और सम्यग्दृष्टियोंके चतुर्वर्ण संघकी गोष्ठीके लिए महावीर भगवान् सौख्य परंपरापूर्वक परमफल(मोक्षप्राप्ति)रूपी कल्याण प्रदान करें ॥१५॥

इस प्रकार महाकवि देवदत्तके पुत्र वीर-कवि-द्वारा विरचित जंबूस्वामीचरित्र नामक इस शृंगार वीर रसात्मक महाकाव्यमें बारह अनुप्रेक्षाओंकी भावनासे विद्युच्चरका सर्वार्थसिद्धि-गमन नामक एकादश संधि समाप्त ॥ संधि ११ ॥

---

१७. ख ग घ तिन्नितीस। १८. क ङ °हु। १९. ख ग जीव। २०. क °रइं। २१. ख ग जहिं; ङ जिह। २२. घ ङ °उं। २३. क ग ङ °सामिहिं; ख °सामिहिं; घ °सामिहे। २४. क °उं। २५. क ख ग सम्माणिउ; घ बखाणिउं; ङ °णिउं। २६. ख ग घ तहं। २७. क °वण्णहो संघहो सम°; घ °समदिट्ठिहें; ङ °वण्णसंघहो सम°। २८. घ प्रति यहाँ समाप्त। २९. ख मंगल। ३० क प्रति यहाँ समाप्त। ३१. ङ °पेक्ख। ३२. ङ सव्वत्थ°। ३३. ख ग एयारसमो संधिपरिच्छेउ सम्मत्तो; ङ एयारहमा संधो।

॥ संधि ११ ॥

प्रशस्ति

वरिसाण सयचउक्के सत्तरिजुत्ते जिणेंदवीरस्स ।
निव्वाणा उववण्णे विक्कमकालस्स उप्पत्ती ॥१॥
विक्कमनिवकालाओ छाहत्तरदससएसु वरिसाणं ।
माहम्मि सुद्धपक्खे दसम्मि दिवसम्मि संतम्मि ॥२॥
सुणियं आयरियपरंपराए वीरेण वीरनिद्दिट्ठं ।
बहुलत्थपसत्थपयं पवरमिणं चरियमुद्धरियं ॥३॥
इत्थेव दिणे मेहवणपट्टणे वड्ढमाणजिणपडिमा ।
तेणावि महाकइणा वीरेण पयट्ठिया पवरा ॥४॥
बहुरायकज्ज-धम्मत्थ-कामगोट्ठीविहत्तसमयस्स ।
वीरस्स चरियकरणे एक्को संवच्छरो लग्गो ॥५॥
जस्स कई देवयत्तो जणणो सच्चरियलद्धमाहप्पो ।
सुहसीलसुद्धवंसो जणणी सिरिसंतुआ भणिया ॥६॥
जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिण्णि ।
सीहल्ल लक्खणंका जसइ नामे त्ति विक्खाया ॥७॥
जाया जस्स मणिट्ठा जिणवइ पोमावइ पुणो बीया ।
लीलावइ त्ति तइया पच्छिमभज्जा जयादेवी ॥८॥
पढमकलत्तंगरुहो संताणकयत्तविडविपारोहो ।
विणयगुणमणिनिहाणो तणओ तह नेमिचंदो त्ति ॥९॥

वीर जिनेंद्रके निर्वाण प्राप्त होनेके चार सौ सत्तर (४७०) वर्ष होनेपर विक्रम काल (वि० संवत्) की उत्पत्ति हुई ॥१॥ विक्रम नृपके कालसे दस सौ छिहत्तर (१०७६) वर्ष होनेपर माघ मासमें शुक्लपक्षमें दशमीका दिन आनेपर वीर (कवि) ने वीर भगवान्के द्वारा निर्दिष्ट प्रचुर अर्थ और प्रशस्त पदोंसे युक्त इस श्रेष्ठ चारित्रको आचार्य परंपरासे सुनकर उद्धार किया ॥२-३॥ इसी दिन मेघवनपत्तनमें उसी महाकवि वीरने वर्द्धमान-जिनकी श्रेष्ठ प्रतिमा प्रतिष्ठित की। बहुत-से राजकार्य एवं धर्म, अर्थ और कामगोष्ठीमें विभक्त समयवाले वीर कविको इस चारित्रको रचनेमें एक संवत्सर लगा। शुभशील, शुद्धवंश, सच्चारित्र व लब्ध माहात्म्य कवि देवदत्त जिसके पिता थे, और जिसकी जननी श्री संतुआ कही गयी है; जिसके प्रसन्नमुखवाले सद्बुद्धिमान् तीन छोटे सहोदर भाई थे, जो सीहल्ल, लक्षणांक और जसई नामोंसे विख्यात थे; जिसकी पहली इष्ट भार्या जिनमती, दूसरी पद्मावती, तीसरी लीलावती और चौथी अंतिम भार्या जयादेवी हुई; और जिसकी पहली पत्नीके गर्भसे संतानोंके लिए समृद्धिरूपी विटपका प्ररोहरूप, विनयगुणरूपी मणिका निधान नेमिचंद्र नामक पुत्र हुआ; ऐसा वह वीर कवि

१. प्रतियोंमें 'कय'।

सो जयउ [1]कई वीरो वीरजिणंदस्स कारियं जेण।
पाहाणमयं भवणं पियरुद्देसेण मेहवणे ॥१०॥
अह जयउ जसनिवासो जसनाओ पंडिओ त्ति विक्खाओ।
वीरजिणालयसरिसं चरियमिणं कारियं जेण ॥११॥

॥ इय जंबूसामिचरिसं समत्तं ॥

■

जयवंत हो, जिसने अपने पिताको उद्देश्य करके अर्थात् अपने पिताकी स्मृतिमें मेघवन पट्टणमें वीरजिनेंद्रका पाषाणमय भवन बनवाया; और यशका निवास एवं 'यश' इसी नामसे विख्यात वह पंडित जयवंत हो जिसने वीरजिनालयके समान इस चारित्रको लिखवाया (अथवा रचना करनेकी प्रेरणा दी ?)॥४–११॥

इति जंबूस्वामी चरित समाप्त।

■

१. प्रतियोंमें कय०।

जम्बूसामिचरिउ

संस्कृत टिप्पण

§ १ ये टिप्पण 'जम्बूसामिचरिउ' की जयपुरके जैन-शास्त्रभण्डारोंसे उपलब्ध ख एवं ग प्रतियों तथा जम्बूस्वामिचरित्र-पंजिका (पं) इन तीन प्रतियोंपर-से संकलित किये गये हैं । ख एवं ग प्रतियोंमें ये टिप्पण ऊपर-नीचे, बायें-दाहिने इन चारों हाशियोंपर मूलके केवल एक शब्दके ऊपर = का चिह्न लगाकर प्रतिकी पंक्ति संख्याका उल्लेख करते हुए लिखे गये हैं, फिर वह टिप्पण चाहे उसी शब्दपर हो, शब्दांशपर हो, किसी पादांशपर हो, पूरे पादपर हो, अथवा पूर्ण पंक्तिपर। इन प्रतियोंमें मूल शब्दका उल्लेख क्वचित् ही टिप्पणके साथ किया गया है, शेष सर्वत्र उपर्युक्त पद्धतिके अनुसार केवल = चिह्नसे ही काम चलाया गया है । पंजिकामें इसके विपरीत सर्वत्र मूल शब्द, अथवा एक साथ यथावश्यक कई शब्दोंका उल्लेख करके टिप्पण लिखे गये हैं । इस पद्धतिसे टिप्पणों व मूल दोनोंको समझनेमें अत्यधिक सहायता मिली है । तीनों प्रतियों (ख ग पं) का पूर्ण परिचय भूमिकामें 'जम्बूसामिचरिउ' की सम्पादन सामग्रीके अन्तर्गत दिया गया है ।

§ २ टिप्पणोंकी भाषा अधिकांशतः सरल-संस्कृत है, जो स्थान-स्थानपर संस्कृत व्याकरणकी दृष्टिसे शुद्ध नहीं है । संयुक्त व्यञ्जनोंमें मध्यवर्ती एवं अन्त्य पंचमाक्षरों ङ्, ञ्, ण्, न् एवं म् इन सबके स्थानपर सर्वत्र अनुस्वार (ं) का प्रयोग किया गया है, जैसे सम्बन्ध>संबंध, अङ्ग>अंग, पञ्च>पंच, दण्ड>दंड कार्यम्>कार्यं इत्यादि । ऐसी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं, जिससे टिप्पणोंकी भाषाको सामान्यरूपसे अपभ्रंश-संस्कृत कहा जा सकता है । टिप्पणोंकी भाषाका कुछ परिचय टिप्पणोंके पाठभेदोंसे भी प्राप्त किया जा सकता है । इस प्रकारकी भाषाका प्रयोग अनेक प्राचीन जैन-हस्तलिखित ग्रन्थोंमें हुआ है ।[1]

टिप्पणोंके सम्पादन में 'मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला'के प्रधान-सम्पादकोंके निर्देशानुसार टिप्पणोंकी भाषामें निम्न दो प्रकारके परिवर्तन सम्पादकने किये हैं। एक तो जहाँ-जहाँपर मूलमें पर-सवर्ण (वर्ग का पंचमाक्षर) का प्रयोग नहीं मिलता; जैसा कि उपर्युक्त कुछ उदाहरणोंसे स्पष्ट है, ऐसे स्थलोंपर सर्वत्र पर-सवर्ण जोड़कर शुद्ध-संस्कृतके अनुरूप बना दिया गया है; एवं दूसरे जहाँ-जहाँ पूर्ववर्ती र् के साथ संयुक्त अवस्थामें क्, ग्, ज्, ण्, द्, प्, ब्, म्, य् एवं व् का द्वित्व मिलता है, जैसे तर्कः>तक्कों (१.३.३) दुर्गं>दुग्गं (१.१२.६) पूर्वोपार्जितं>पूर्वोपार्ज्जितं (२.५.६) °वर्णं>अमरकतवर्ण्णं (१.११.१) निर्दलित>निर्द्दलित (४.२२.५) बलीवर्दः>बलीवर्द्दः (७.६.२२) सर्पः>सर्प्पः (३.७.१२) समर्पितः> समर्प्पितः (९.१३.१२) गर्भो>गर्ब्भो (४.१३.१६) मर्मदाः>मर्म्मदाः (४.१५.११) सौधर्मः> सौधर्म्मः (११.१२.३) कार्यं>कार्य्यं (३.१३.५) द्रोणाचार्यः>द्रोणाचार्य्यः (८.२.९) गीर्वाणो> गीर्व्वाणो (२.३.९) °पर्वतः>कुरुलपर्व्वतः (५.१०.११) इत्यादि इत्यादि; ऐसे समस्त स्थलोंपर 'र्'के परवर्ती संयुक्त व्यंजनके द्वित्वका लोप कर दिया गया है । इनके अतिरिक्त अन्य कहीं कोई संशोधन-परिवर्त्तन सम्पादकने अपनी ओरसे नहीं किये हैं । जहाँ किसी ईषत् संशोधन या अर्थ स्पष्ट करनेके लिए कोई सूचना देनेकी अनिवार्यता प्रतीत हुई है, वहाँ उसे [ ] के भीतर दिखाकर मूलसे स्पष्टतः अलग रखा गया है । कुछ उपयोगी पाठभेद भी मिले हैं, उनका यथास्थान मूल अपभ्रंश पाठमें उपयोग कर लिया गया है, और अन्य पाठभेदोंको टिप्पणोंके पाठभेदोंमें सुरक्षित रखा गया है । टिप्पणके द्वारा सूचित अर्थ जहाँ मूलके शब्दार्थके अनुकूल नहीं है, ऐसे स्थलोंपर परिशिष्टमें विचार किया गया है । मूल अपभ्रंश-पाठके संशोधन एवं हिन्दी

---

१ द्रष्टव्य : डॉ० बी० जे० सांडेसरा-द्वारा सम्पादित Lexicographical notes on Jain Sanskrit.

अनुवादमें ये टिप्पण बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध हुए हैं, इस कारण समस्त टिप्पणोंको उनके मूलरूपमें यहाँ प्रकाशित किया जाता है।

टिप्पण सन्धि–१

म० प० २ सुतरणि···छंकारा—(ख पं) आदित्यजलकणालग्नः; (ग पं) तरणिरादित्यस्तस्य तनुः शरीरं तस्यां लग्नास्तश्च ते बिन्दवश्च जलकणास्तेषां छङ्कारास्ते जयन्ति। कथं पुनरचेतनबिन्दुछङ्कारा वन्द्यन्ते ? जगद्वन्द्यतीर्थंकरदेवाङ्गसंपर्कात् तद्बिन्दूनां वन्द्यत्वं जातम्, तेषामपि वन्द्यत्वमुपपद्यते। दृष्टं च भगवदङ्गसंपर्कात् पुष्पगन्धोदकादीनां वन्द्यत्वम्, पुष्पं त्वदीयचरणार्च[र्च ?]नपीठयोग्यं भवति, देव जगत्त्रयस्य अस्पष्टमन्यशिरसि स्थितमप्यतस्ते को नामसाम्यमनुशास्ति खगेश्वराद्यैरित्यभिधानात्; 'तरणिलग्गंतबिंदुछंकारा' इत्युपलक्षणमेतत्, तेन त्रिभुवनाधिपतिसमाश्रितत्वेन तरणिवत् त्रिभुवने संचरतां निर्मलतोयबिन्दूनां भगवदीयाऽमलज्ञानादिवदप्रतिहतगतित्वमुक्तम्[2]; (पं) [उक्तं च]

संपूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-शुभ्रागुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्॥

—भक्ता० स्तोत्र श्लोक १४

म० प० ६ अणियच्छिय···लोयणो जाओ – (ग पं) अस्य व्याख्यानम् : कथं तत् ? परिकल्पितानि सहस्रसंख्यायाः परिसंख्यातानि यानि लोचनानि तैः परिकल्पितलोचनैर्दुस्थो जातः, अपरिपूर्णलोचनो जातः, सहस्र[ाणा]मपि लोचनानामरुणनखमणिरूपावलोकने एव प्रतिलग्नं अन्यावयवरूपावलोकने तद्व्यापारामावात् इन्द्रियान्तरासम्भवात् च तदवलोकने दुस्थत्वं तस्य संजातम्; (पं) उक्तं च –

'रूवालोवणे रूवासत्तइं तित्ति न पत्त पुरंदरनेत्तइं।
जहिं निवडियइं तहिं चिय गुत्तइं दुब्बलगा इव पंकि बहुट्टइं॥'

(ग पं) जिनस्य शरीरेऽष्टोत्तरसहस्रलक्षणानि, इन्द्रशरीरे सहस्रलोचनानि सर्वावयवावलोकने असमर्थानि इति नयनावलोकने दौस्थ्यं दारिद्र्यं जातम्; (पं) उक्तं च –

'अट्ठोत्तरसहासलक्खणधरु इंदोऽपि सहसनयणु' इति प्रसिद्धम्।

म० प० ७ भमिर···दिणसंकं – (ग पं) भ्रमणशीलभुजवेगभ्रमितज्योतिश्चक्रजनितरजनी-दिवसशङ्केति यथा भवति तथा (पं) क्षणे क्षणे जनितरात्रि-दिवसशङ्काम्; इन्द्रस्य हि सहस्रभुजविकुर्वणां कृत्वा नृत्यतोऽनवरत[3]करणाङ्गहारादिविधानेन भ्रामितज्योतिश्चक्रेण दिवसे स्वस्थानच्युतेन रात्रिशङ्का क्रियते, रात्रौ स्वस्थानच्युतेन दिवसशङ्केति; अथवा क्षणे क्षणे स्वस्थानच्युतैः[4] क्षेत्रान्तरगतैः रात्रिशङ्का, पुनः स्वस्थाने आगतैर्दिवसशङ्केति[5]; ख जोइस > शरीरदीप्त्या।

म० प० ९ झाणानल···जस्स—(ग) ध्यानाग्नौ होमितः रति > रमणसुखम्, विषयसेवनसुखं यस्माद्येन वा; अथवा रते [:] निजभार्यायाः सुखं यस्यासौ रतिसुखः कामः; रइसुहो—(पं) रति > रमणात् विषयसेवनात् सुखं यस्मात् असौ रतिसुखः कामः।

म० प० १२ गहियण्ण···सासिउं—(ग पं) गृहीतमन्यन्मूलशरीररूपात् व्यतिरिक्तं शरीररूपयुगलं येन सः; किमर्थम् ? त्रिजगदनुशासितुं सन्मार्गे प्रवर्त्तयितुम्; न हि रूपत्रयविधानव्यतिरेकेन[6] त्रिजगदनुशासितुं[7] शक्यते।

म० प० १३ रेहइ—(ग पं) शोभते।

[१.१] १. पं वा। २. पं °गतित्वमुष्णत्वं (°मुक्तत्वं ?)। ३. पं °ऽनवरतं। ४. पं °च्युतैः। ५. पं आगते दिवस°। ६. पं °रेकेणा। ७. पं °शासित्वं।

म० प० १४ फणिणो⋯फणकडप्पो—(ग पं) धरणेन्द्रस्य [8]विद्युताछिद्रि [°च्छि]तः आषाढोद्भूतनव-जलधर इव मस्तकचूडामणिकर्बुरितः फटाटोपः फटासंघातो वा[9]

आदिदेवं स्तुत्वा पार्श्वनाथस्तवनानन्तरं वर्द्धमानस्वामिनः स्तवनकर्तुमुचितः, तत्र क्रमोल्लङ्घनेन स्तवनकरणैः किं कारणम् ? ग्रन्थकारस्य वर्द्धमानस्वामितीर्थे रत्नत्रयलाभः। उक्तं च—

जस्संतियं धम्मपहं नियच्छे तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
काएण वाचा मणसा वि णिच्चं सक्कारए तं सिरपंचमेण॥

१.१.२ पारंभिय जिह कह—(ख ग पं) यथा कथा आगमे प्रसिद्धा तथैव प्रारब्धा।

१.१.३ वड्ढमाणु—(ग पं) वर्द्धमाननामा; तित्थु—(ग पं) संसारसागरोत्तरणहेतुभूतत्वात् तीर्थमागमः, उत्तमक्षमादिधर्मचारित्रं च; जगे वड्ढमाणु—(ग पं) जगति सर्वोत्कृष्टं।

१.१.४ जम्माहिसेउ—(ग पं) जन्माभिषेकः; सेउ—(ग पं) सेतुबन्धः।

१.१.५ धीरु—(ग पं) निष्कम्पः; निन्नासिय⋯धीरु—(ग पं) निर्नाशिता [10]आशङ्का शङ्का येन, हस्ते हि [11]अष्टयोजनायामदैर्घ्यं, योजनैकमुखाऽष्टोत्तरसहस्रकलशान् गृहीत्वाऽन्तरं भगवच्छरीरमवलोकयतः इन्द्रस्य शङ्कोत्पन्ना एतावता जलप्रवाहेन भगवान् [12]वाहयित्वा नीयते लग्न इति शङ्का चरणाग्रेन मेरुचलना-न्निहिता [°हता] निर्नाशिता ततो भगवतः शक्रेण वीर इति नाम [°मं ?] कृतवान् [कृतम् ?]

१.१.६ धामु—(ग पं) तेजः; कांया⋯धामु—(ग पं) लोकालोकस्थितिः।

१.१.७ जयसासणु—(ख ग पं) जगतः शासनं सन्मार्गे प्रवर्त्तनात्; सरणु—(ग पं) त्राता रक्षक[13] इत्यर्थः।

१.१.८ भूइ—(ख पं) राख वा भस्म; भूइकय—(ग पं) भस्मीकृतः; कंदोट्टबंधु—(ग पं) [14]पद्म-बन्धुरादित्य इत्यर्थः; बंधु—(ख पं) चन्द्र वा रविः।

१.१.९ वरकमला⋯मुत्ति—(ग पं) वरा चासौ कमला च लक्ष्मीरित्यर्थस्तया आलिङ्गिता, चार्वी शोभा-वतीमूर्तिः विशुद्धात्मस्वरूपं शुद्धस्फटिकशङ्काश[15] [°सकाशं ?] शरीरस्वरूपं च यस्य; साहिय परममुत्ति—(ख पं) साधितं मुक्ति मोक्षं वा; परममुत्ति—(ग पं) परममुक्तिः सम्यक्त्वाद्यष्टगुणोपेता सिद्धावस्था।

१.१.१० वयणामय⋯सत्तु—(ग पं) वचनामृताश्वासितसकलप्राणिगणः।

१.१.११ तित्थंकरु (ग पं) तीर्थमागमः उत्तमक्षमादिलक्षणो धर्मः चारित्रं च, करोति परेषामग्रे प्रति-पादयति स्वयमनुतिष्ठतीति [16]चेत्तीर्थंकरः; सासयपयपहु—(ग पं) शाश्वतपदं मोक्षः तस्य प्रभुः स्वामी, पन्था वा मार्गः; सम्मइ—सन्मति नामा।

१.१.१२ सम्मइ—(ग पं) शोभनामतिः[17] केवलज्ञानम्।

....

१.२.१ मंदमइ—(ख) स्वल्पमतिः, (ग पं) स्वल्पमतिः[1]घनमतिश्च निपुणमतिरित्यर्थः; सविणयगिरु—(ग पं) सविनयवचनः।

१.२.२ जियइ—(ग पं) जागर्तिः उद्यतरि[ति इ]त्यर्थः; न जियइ—(ख पं) न पश्यति।[2]

१.२.३ नारुहइ—(ख ग पं) न योग्यो भवति।

१.२.४ पयडइ दोसछलु—(ख पं) असद्भूतदोषोद्भावनम्[3]; खलु (ख पं) दुर्जनः।

---

८. पं विद्युत°। ९. पं वा तत्। १०. पं आसंकिता। ११. पं द्वादशयोजनप्रमाणकलशं। १२. पं वाहि-यित्वा। १३. पं रक्षकः। १४. पं °रादित्येत्यर्थः। १५. पं °शंकाशः। १६. ग च तीर्थं°। ७. ग °मति।
[१.२] १. पं °मतिश्चेन्निरंतरं निपुणं। २. पं जाग्रति। ३. पं °द्भासनं।

१.२.५ परगुण'''परंपरए—(ग पं) परेषां गुणास्तेषां परिहारस्य परम्परा सातत्यं तया; कथंभूतया ? परए—(ख ग पं) परया परमप्रकर्ष[4] प्राप्तया; ओसरउ—(ग पं) मम काव्याग्रे मा भूत्; हयासु—(ग पं) हतवाञ्छः मदीयं काव्ये दोषाणामभावात् तदीया दोषोद्भावनवाञ्छा हता ।

१.२.६ विउसहो—(ग पं) पण्डितस्य; मज्झत्थहो—(ग पं) गुणान् गुणरूपतया, दोषान् दोषरूपतया च परिभावयतो मध्यस्थस्य ।

१.२.७ परिउंछिवि—(ग पं) विनाश्य ।

१.२.८ एक्कगुणु—(ग पं) काव्यकर्तृत्वमेव एकः कस्यचित् गुणः; पउंजेव्वइ निउणु—(ग पं) व्याख्यानयितुं निपुणः । अत्रार्थे दृष्टान्तमाह ।

१.२.९ एक्कु जे'''जणइ—(ग पं) एकः[5] सुवर्णपाषाणः हेमं स्वर्णं जनयति, न तस्य परीक्षां कर्तुं समर्थः; अण्णेक्कु'''कुणइ—(ग पं) अन्नेक्कु—कसवट्टः रोथपाषाणस्तस्य सुवर्णस्य गुणदोषपरीक्षां करोति ।

१.२.१० उहयमइ—(ग पं) करण—[6]व्याख्यानोभयमतिः ।

१.२.११ सुइ सुहयरु—(ख ग पं) [7]श्रुतिसुखकरः; फुरंतु मणे—(ग पं) चेतसि परिस्फुरन् प्रतिभासमानः; कव्वत्थु निवेसइ— (ख ग पं) काव्यार्थमारोपयति ।

१.२.१२ रस—(ख) शृङ्गार-हास्यादि; रसभावहिं—(ग) रसा नव शृङ्गारादयः, भावाश्चित्तोद्भवा उल्हा[ल्ला]सास्तैः; रसभावहिं—(पं) रसा नव :

शृङ्गार-वीर-बीभत्स-हास्य-रौद्र-भयानकाः ।
करुणाद्भुत-शान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः ॥

इति वचनात् । चित्तोद्भवैरुल्लासविशेषैः—

हावो मुखविकारः स्याद् भावः स्याच्चित्तसंभवः ।
विलासो नेत्रजो ज्ञेयो विभ्रमो भ्रूयुगान्तयो—रित्यभिधानात् ।

१.२.१३ सो चेय'''''''करइ—(ग पं) स्वयंभूसमानः पुरुषः, गव्वं—अहङ्कारम्, यदि न करोति; तहो कज्जे''''''धरई—(ग पं) तस्य निमित्तं पवनो वातवलयरूपः, एवंविधं पुरुषरत्नं त्रिभुवने तिष्ठतीति मत्वेति त्रिभुवनं धरति ।

१.२.१४-१५ अकहिज्ज°''''°जाणहिं— (ग पं) अकथ्यमानोऽपि कविश्चौरश्च लक्ष्यते; कैः लक्ष्यते ? बहुजाणहिं—प्रचुरज्ञानवद्भिः; किं विशिष्टोऽपि ? कय अण्णवण्णेत्यादि—कृतान्यवर्णपरिवर्तमानोऽपि । कविः कृतान्यवर्णपरिवर्त्तनः [8]अकारादिवर्णरचितवर्णरचनाविशेष ; चौरस्तु कृतब्राह्मणादिपरिवर्तनरूपविशेषः; कैः कृत्वा लक्ष्यते ? पयडबंधसंधाणहिं—(ग पं) सुकविः प्रकटैः प्रसन्नोदार-गम्भीर-सुश्लिष्ट-रसाढ्य काव्यबन्धसंधानैः, (पं) संधिविधानैश्च, चौरस्तु प्रकटैर्बहुबन्धसंधानैः लक्ष्यते ।

१.३.१ वावडेण—(ख) व्याप्तेन; सामग्गि'''जडेण—(ख) एवं गुणविशिष्टमहाकवीश्वरान् काव्यबन्धकृतम्, मया जडेन—मूर्खेण कें [किम् ?] ।

१.३.२ परिकलिउ'''''''सद्दसत्थु—(ख पं) सहृदयालक्षणेनार्थेन वर्तत इति सदर्थार्थः यः प्रदीप एव मया परिकलितः, परिज्ञातः, न तु शब्दशास्त्राणि अष्टौ व्याकरणानि; सुत्तु—सूत्रार्थम्; सुत्तु वि'''वत्थु—(ख पं) सूत्रमपि येन वस्त्रं निष्पाद्यते तत्परिज्ञातम्, न तु शब्दसिद्धिबन्धनव्याकरणसूत्रम्, चतुष्कादिजातकृतसूत्राणि ।

---

४. पं °प्रकर्ष । ५. ग एकः । ६. ग व्याख्यातुरुभय° । ७. ग श्रोत्र° । ८. पं आकारादि° ।

१.३-३ वणगड सुणिउ—(ख) वने गज एवं श्रुतम्; वणगड....सुणिउ—(ग पं) स्वच्छन्दो घण्टारहितश्च वनगज एव मया श्रुतः, न तु सच्छन्दो[1] समात्रा प्रस्तारेण निघण्टो[2] नाममालाऽमरकोशादिर्न[3] श्रुतः[4]; गोरस........सुणिउ—(ग पं) तक्रं गोरसविकारो दधिविकार एव श्रुतम्, विज्ञातम्, न तु तर्को युक्तिशास्त्रं कन्दली किरणावली अष्टसहस्री[5] प्रमेयकमलमार्त्तण्डादिकं न श्रुतम्, न ज्ञातम्[5]।

१.३.४ महकइ....सेउ—(ग पं) समुद्रबन्धः रामायणे एव श्रुतः न तु सेतुबन्धो नाम महाकविना प्रबन्धेन [प्रवरसेनेन ?] राज्ञा विनिबद्धः काव्यभेदः काव्यविशेषः; सेउ—(ख) समुद्रबन्धः।

१.३.५ गुणु....सुयनामकरणि—(ग पं) गुणः स्वजने एव वृद्धिश्च सुतनामकरणे एव श्रुतः, न तु 'नाम्यन्तयोर्द्वा' 'तु विकरणयोर्गुणः' इति 'वृद्धिरादौ सणे इति (?) च एते गुणवृद्धी व्याकरणे प्रसिद्धे[6] ज्ञाते; चारित्तवित्तु—(ग पं) वित्तं चारित्रमेव ज्ञातम्, न तु वृत्तं एकाक्षरादि वृत्तजातिविशेषः; पयबंधुवरणे—(ग पं) पयसः पानीयस्य बन्धः वरण एव ज्ञातः, न तु गद्य-[7] पद्यबन्धरूपाः काव्यविशेषाः[7]।

१.३.६ दुव्वयणु—(ख) दुर्जनवत् दुर्वचनः; दुव्वयणु....जाणिउ—(ग पं) दुर्वचनः पिशुन एव ज्ञातः, न तु द्विर्वचनं द्विर्वचनमनच्यासस्यैकस्वरस्याद्यस्य; उवलक्खिउ....समासु—(ग पं) सहमासेन वर्तत इति स-मासः संवत्सर एवोपलक्षितो ज्ञातः, न तु व्याकरणे प्रसिद्धः[8] समासोऽव्ययीभावादिः[9]।

१.३.७ सुहियए—(ग पं) एवमेव।

१.३.८ निरत्थु—(ग पं) विफलप्रयासः।

१.३.९ मह....पबंधु—(ग) अथ महाकविरचितप्रबन्धः।

१.३.१०. विद्धउ....पइसिज्जइ—(ग पं) यथा अतिकठिने महारत्ने हीरकेण विद्धे कृतछिद्रेण मृदुना सूत्रेणापि प्रविश्यते, तथा महाकविरचिते[10] गाथाप्रबन्धरूपे जम्बूस्वामिचरित्रप्रबन्धः पच्छडिका [पज्झटिका ?] प्रबन्धद्वारेण सुखेन क्रियते इत्यत्र न किंचिदाश्चर्यम्।

१.४.१ गुडखेड—(ख ग) गुडखेडदेशात्; सुहचरणु—(ग पं) शोभनानुष्ठानः।

१.४.२ सिरिलाडवग्ग—(ख) गोत्रः; निव्वूढकमु—(ग पं) काव्यकरणे सुकविकक्षोत्तीर्णः।

१.४.४ कविगुण—(ग पं) कवितागुणः।

१.४.७ तहो—(ख ग) देवदत्तस्य कवेः।

१.४.८ संतुवगब्भुब्भउ वीरु—(ख ग) संतुवा माता, वीरु कविः।

१.४.९ अखलिय....कलिवि—(ग पं) संस्कृतकविरस्खलितस्वर इति ज्ञात्वा; सुउ—(ग) वीरु कविः।

१.४.१० किं इयरें—(ग पं) संस्कृतप्रबन्धेन किम्।

१.५.३ रसइ—(ग पं) वाचति।

१.५.४ सुही—(ख ग पं) मित्रः; वीरु....दिहि—(ख पं) हे स्वजनधृते वीरः; (ग) कृत-सुजनधृते वीरः।

१.५.५ उद्धरिउ—(ख ग पं) विरचितम्; संकिल्लहि—(ग) संक्षेपं कृत्वा कथय।

१.५.६ पडिभणइ—(ग पं) प्रतिवचनं ददाति।

[१.३] १. पं °छंद। २. पं निघंटो। ३. पं °कोशादि न। ४. ग श्रुताः। ५. ग °दिकः न श्रुतः न ज्ञातः। ६. पं प्रसिद्धा। ७. ग °रूपः काव्यविशेषः।। ८. पं °द्धाः। ९. पं °भावादि। १०. पं °रूपो।

१.५.७ किय तुच्छकहा—(ग) संक्षिप्ता स्वल्पा कथा कृता सती, (पं) संक्षिप्त-स्वल्पा कृत कथा ।

१.५.८ सरहु—(ग पं) अष्टापदः ।

१.५.१० निवाणु—(ग पं) जलस्थानम् ।

१.५.११ थोवउ करयत्थु—(ख ग पं) स्तोकं करकस्थितं संस्कृतम् ।

१.६.१ अवि य—(ख ग पं) अपि च; समत्थमाणेण—(ख ग पं) भरतवचनं समर्थयमानेन :

१.६.३ जाणं—(ख पं) येषाम् ।

१.६.४ उग्गिरंता—(ख ग पं) प्रकाशयन्ती[1] ।

१.६.५ संति ···वाई वि—(ग पं) कवयः, वाई वि हु—धातुर्वादिनोऽपि बहवः सन्ति; हु—(ख) इह लोके ।

१.६.६ रससिद्धिसंचियत्थो—(ख) रससिद्धिः संचियर्थो [°तार्थो ?] निपातितार्था वा सुवर्णशृङ्गारादि नवन[वा]दि, (ग पं) रससिद्धया संचितार्थः निष्पादितः[2] सुवर्णः, पक्षे शृङ्गारादिरसानां सिद्धयाज्ञप्त्या संचितो[3] रचितः शोभनवर्णेषु अर्थो येन स ; विरलो—(पं) प्रविरलः; एक्को—(ग पं) अन्यः ।

१.६.७-८ जाणं वाणी साहयवट्टि व्व अद्दिट्ठपुव्वत्थे निव्वडइ—(ग पं) यथा साधकवर्तिरदृष्टपूर्वेऽपि निधानलक्षणेऽर्थे उपयोगविशेषान्निपतति, (ख ग पं) तथा येषां कवीनां वाणी केनापि कविना अदृष्टपूर्वेऽर्थे निपतति प्रवर्तते, अथवा निव्वडइ—विचार्यमाणा कषोत्तीर्णा भवति । कथं पुनः केनाप्यदृष्टेऽर्थे केषांचिन्मतिः प्रवर्तत इत्याशङ्कयाह ।

१.६.९ जाणं···रमइ—(ग पं) येषां कवीनां समग्रशब्दौघः संस्कृतशब्द-प्राकृतशब्दसंघातः स एव क्षिन्दुकः रमति स्फुरति उच्छलति नानार्थेषु प्रवर्तते; कस्मिन् सति ? मइफलहम्मि—(ग) मत्येव स्फटिकस्तस्मिन् कन्दुकोच्छलन् भूमिप्रदेशे; (पं) मत्याः फडकः उच्छलनमनेकार्थेषु प्रवर्तनम् ।

१.६.१० ताणं···परिप्फुरइ—(ग पं) तेभ्योप्युपरितना अधिका कस्यापि बुद्धिः परिस्फुरति अपूर्वार्थेषु प्रवर्तते ।

१.६.१६ जिणवइनाह—(ख ग पं) जिनमतं[4] [:]भार्यायाः नाथः, जिनपतिर्वा[5] नाथो यस्य[6] ।

१.६.१८ धम्मायार···भारहभूसणु—(ख ग पं) पाण्डवानां नाथो युधिष्ठिरः धर्माचारयुक्तः (पं) निर्दूषणश्च, तहा[°था] मगह[°ध] देशोऽपि; भारहभूसणु—पाण्डवनाथो भारतपुराणस्य भूषणो मण्डनभूतः, मगधदेशस्तु भरतस्येदं (?) भारता (?) भरतक्षेत्रं तस्य भूषणः ।

१.६.१९ विसयसारु···हंसु व—(ख ग पं) वीनां पक्षिणां शतानि तेषु मध्ये यो हंसः सार उत्कृष्टो वर्ण्यते, तथा विषयाणां देशविशेषाणां मध्ये मगधदेशः सारो वर्ण्यते; किं तु···फंसु व —(ख) हृविष-मध्ये यथा तरुणी तेन पयोधरासारः तस्य स्पर्शो तथा मगधदेश विषयसारः; (ग पं) किन्तु यथा[7] तरुणीस्तनमण्डलस्पर्श इव, तरुण्याः स्तनमण्डलस्पर्शो यथा विषयेषु मध्ये सारस्तथा मगधदेशो विषयेषु सारः ।

१.६.२० कुकइ···वीसइ—(ख ग पं) कुकविकृतकथाप्रबन्धो हि विगतस्वरबन्धः विशिष्टसन्धिविधान-विकलः, देशस्तु विशिष्टोद्यानादिषु[8] वीनां पक्षिणां स्वरैः शब्दैः युक्तः; कुकइकयकहबन्धु नीरसस्स सुमनोहरु भावइ—(ख ग पं) कुकविकृतकथाप्रबन्धः नीरसस्य ग्राम्यस्य पुरुषस्य, भावइ—प्रतिभासते, सुमनोहरः, न तु पण्डितानाम् देशस्तु विशिष्टैर्नीरैः सरसैश्च सुमनोहरः ।

[१.६] १. ग °यती । २. पं °दित । ३. ग सिं° । ४. पं °मतो । ५. ख °पतेर्वा । ६. पं यस्याः । ७. पं तथा । ८. पं °ष्टोपवनादिषु ।

१.६.२१ जहिं—(ग पं) यत्र देशे; जल····गमणउ—(ख ग पं) जलवाहिन्यो नद्यः स्त्रीसमानाः[९], स्त्रियो हि स्थिरगमनाः, नद्योऽपि मन्दगमनाः, मन्दप्रवाहाः; गुरु····रमणउ—(ग पं) तथा स्त्रियो गुरुगम्भीर-बलाधिकरमणाः नितम्बप्रदेशाः[१०] भवन्ति, नद्यः पुनर्ये गुरवो गम्भीराश्च बलाधिका महाह्रदास्त[११] एव प्रमाणाः नितम्बप्रदेशाः यासां ताः; बलाहियरमणउ—(ख) रमणदेशबलाधिकः ।

१.६.२२ वियसियइंदीवर—(ग पं) विकसितपद्मः ।

१.६.२३ जलगय····थणहारउ—(ग पं) स्त्रियो हि स्थूलस्तनधारिण्यो भवन्ति, नद्यः पुनर्जलगजा-जलहस्ति-नस्तेषां[१२] कुम्भस्थलानि तान्येव स्थूला-महान्तः स्तनाः तद्धारिण्यः ।

१.६.२४ उहयकूल····वसणउ—(ख ग पं) [१३]उभयतटवृक्षपरिहितवस्त्राः; सज्जियरसणउ—(ग पं) बद्धमेखलाः ।

१.६.२५ सरिउ—(ख ग पं) आश्रितः[१४]; अपेउ—(ग पं) अपेयपानीयम्[१५], विसायरु—विषं कालकूटं पानीयं च तस्य आकरः समुद्रः तम् ।

१.६.२६ जडमइयहिं[१६]—(ग पं) जडमतिभिर्जलमयीभिश्च; अह व तियहिं[१७]····आयरु—(ग पं) अथवा स्त्रीणां स्वरूपमेतत् गुणवन्तं परित्यज्य सलवणे लावण्ययुक्ते आदरं कुर्वन्ति ।

१.७.१ जहिं····कुकलत्ता इव— (ख ग पं) यत्र देशे सरोवराणि सन्ति कुकलत्रसमानानि; कुकलत्राणि हिंडहिंडितपात्रत्वात् हसितशतवाराणि-वक्त्राणि भवन्ति, सरोवराणि तु हसितानि विकसितानि शतपत्राणि पद्मानि यत्र तानि; अविणय—(ख) अविनयः, सरोवरपक्षे जलनिर्गमनप्रवेशः; अविणयवंतइं— (ग पं) अविनयवन्ति, सरोवराणि तु अविनयवन्ति, जलनिर्गम-प्रवेशोऽविनयः, तेन युक्तानि भवन्ति ।

१.७.३ मार—(ख ग पं) मारः हडवृक्षः कामश्च; उज्जाणइं····पियालवणसारइं—(ग पं) उद्यानानि परिवर्द्धित हडवृक्षाणि भवन्ति, यौवनानि तु परिवर्द्धितकामानि भवन्ति; उद्यानानि प्रियालाः चारवृक्षास्तैर्वनैः पानीयैश्च साराणि उत्कृष्टानि भवन्ति; यौवनानि तु प्रियाणामालापाः कामोद्रेककारीवचनानि तैः साराणि; पियालवणसारइं—(ख) चारवृक्षैः पानीयैः साराः, पक्षे प्रियाणामालापाः तैः ।

१.७.६ असुहाविय····रहियहिं—(ख ग पं) अतिगौल्यादसुखापितमुखैः रुचिरहितैररुचियुक्तैः ।

१.७.७ छुहछिज्जइ—(ग पं) बुभुक्षा नश्यते ।

१.७.९ गोट्ठंगणे नीलनियंसणिहिं—(ख ग पं) गोकुले परिहितनीलचेलाभिः; घणथण····कंकतिहिं—(ख पं) घनास्थूलोन्नतोभयाऽन्योन्यसंलग्नाः ये स्तनाः रमणं च नितम्बप्रदेशस्तैराक्रान्ताभिः ।

१.७.१० पहि····विलंबु—(ग पं) पथि मार्गे, पथिकानां गमनविलम्बः क्रियते ।

१.८.१ समीरणु····रंधु—(ख ग पं) वायुभृतदरीविवरप्रदेशाः[१] ।

१.८.२ हल्लिर····वसेण—(ख ग पं) दोलायमाना महल्ला [२]महत्यो मञ्जर्यः[२] कलमशालिकणिशानि तद्वशेन तद्व्याजेन; घुम्मइ व धरणि—(ग पं) [३]घूर्मतीव धरणी पृथ्वीः; कथंभूता सती ? रंजियरसेण—(ग पं) रसो मद्यः[४], कलमशालिमकरन्दास्वादनं[५] च तेन रञ्जिता ।

१.८.३ उद्धूस····धूसरेहिं— (ख ग पं) रोमाञ्चिता इव अतिनिष्पन्नधूमरमुद्गैः; उच्चलइ व····वल्करेहिं—(ख ग पं) उत्पततीव चपलकोपर्युपरि-सिम्बाग्रन्थैः ।

१.८.४ विसट्ट····फलेहिं—(ख ग पं) विकसितमुखकर्पासफलैः ।

---

९. ग °समाना । १०. ग °प्रदेशा । ११. पं °द्रहदास्त । १२. पं °हस्तिनाः तेषां । १३. पं °तटवृक्षाः° । १४. पं आश्रिताः । १५. पं °पानीयाः । १६. पं जल° । १७. पं तियइ । [१.८] १. ग °प्रदेशः । २. पं °महत्री या मंजरी । ३. पं घूर्मयतीव । ४. ग मद्यं । ५. प्रतियोंमें °रन्दः स्वादनं ।

१.८.५ सव्वंगुक्करिसिय—(ख ग पं) सर्वाङ्गोत्कर्षिता सर्वाङ्गे हर्षिता इत्यर्थः ।

१.८.६ जंतचिक्कारएहिं—(ग पं) यन्त्रचीत्कारशब्दैः; गायइ व—(ग पं) गीतं गायन्तीव; सुक्क-सिक्कारएहिं—(ख ग पं) यन्त्रवाहकास्वाद्यमानरससीत्कारैः ।

१.८.७ जंपिएहिं—(ग पं) जल्पकैः ।

१.८.८ देवउल···गाम—(ग पं) देवकुलैर्देवगृहैर्विभूषिता[:] ग्रामाः शोभन्ते; अवइण्ण—(ग पं) अवतीर्ण [:]; गामसग्ग व विचित्तधाम—(ग पं) ग्रामा [:] नानाप्रकारस्थानाः, स्वर्गास्तु विचित्रस्थानाः, नानाप्रकारतेजसश्च ।

१.८.९ परिहा—(ग पं) खातिका; सुरपुर···वट्टणु—(ग पं) इन्द्रपुरीलक्ष्मीनिर्दलनः[६] ।

१.९.१ गोउर—(ख ग पं) प्रतोली; दुद्दमं— (ख ग पं) शत्रूणां दुष्प्रवेशम्[१]; कुंभविहत्था—(ख ग पं) पानीहारिण्यः ।

१.९.२ संघट्टियंगो—(ख) अङ्गो शरीरसङ्घट्ट [नम्] ।

१.९.३ सेयचुयकुंकुम—(ग पं) प्रस्वेदगलितकुङ्कुमे; कुसुमदामेहिं—(ग पं) पुष्पमालाभिः; खुप्पए—(ग) स्खलति ।

१.९.४ गब्भंतरे— (ख ग पं) गर्भगृहे; कामपंडुर···गवक्खंतरे—(ख ग पं) कामोद्रेकेन संजात-पाण्डुरकपोलाः, गवाक्षान्तरे गवाक्षछिद्रे ।

१.९.५ सासमरु··· दावए—(ख ग पं) सुगन्धः श्वाससवायुस्तेन सम्मिलिताः[२] भ्रमराः यत्र तत् तथाविधं मुखं लोकानां दर्शयति; राहुससि···समुप्पावए—(ग पं) राहुशशियोगे ग्रहणं तद्भ्रान्ति समुत्पादयति । |

१.९.६ फलिहसिल—(ग पं) स्फटिकमणिः[३]; पोमराएहिं··· ···दीसिया—(ख ग पं) पद्मरागैः रक्तवर्णैः प्राङ्गणे[४] रङ्गावली विरच्य प्रकाशिता, सा च स्फटिकमणिः शुभ्राकान्त्या तन्मिश्रिता संवलिता ।

१.९.७ रविकंतकिरणेहिं— (ग पं) सूर्यकान्तमणिकिरणैः खिज्जए—(ग पं) नश्यति; जामिणी—(ग पं) रात्रिः ।

१.९.८ कसणमणिखंड—(ख ग पं) इन्द्रनीलमणिसंघातः; चिंचइय—(ख ग पं) खञ्चितं मण्डित-मित्यर्थ; चलवलियकिरणुज्जलं—(ग पं) स्फुरितकिरणोज्ज्वलम् ।

१.९.९ आहणइ···थिरं—(ग पं) आहन्ति [?] स्थिरं यथा भवति तथैव केवलम्; कुंचइयचंचू—(ग पं) भग्नचञ्चूः ।

१.९-१०-११ घरि घरि ···ईसरु जणु । नियरिद्धिए···दयावणु—(ख ग पं) एवंविधं विभूतियुक्तं राज-गृहनगरं दृष्ट्वा स्वर्गोऽप्यात्मनो हीनं मन्यते, दुस्थं दीनं च; स्वर्गे हि एका गौरी सीमन्तिनी स्त्री, इह गृहे गृहे गौर्यः, सीमन्तिन्यः; [५]स्वर्गे, शक्र[५] एक एव धनदः, इह तु गृहे गृहे धनदायकाः, धनेश्वराः; स्वर्गे एक एव ईश्वरः, इह तु गृहे गृहे ईश्वराः धनकनकसमृद्धाः इत्यर्थः ।

१.१०.२ गंधव्वाणुलग्ग आलावणि—(ख ग पं) गीतानुसारिणी वीणा ।

१.१०.३ जहिं नेउर···हंसहो गई—(ग पं) हंसशब्दसमानेन नूपुरशब्देन [१]पृष्टिलग्नान् हंसान् प्राङ्गणे भ्रामयति, नूपुराणि अस्मान्स्वजातीयानीति भ्रान्ति वा तेषामुत्पादयति; गी—(ख पं) वाणी शब्दः ।

---

६. ग °लनं । [१.९] १ पं °शः । २. पं वायुः तस्मिन् मिलिता । ३. ग °मणि । ४. ग °प्रांगणैः । ५. पं शक्रः स्वर्गे । [१.१०] १. पं हंसानुलग्ना प्रां° ।

१.१०.४ दप्पण····आसत्तिए—(ग पं)—रूपावलोकने आश[स]क्तया।

१.१०.५ मुद्धिमाए—(ग पं) अनुत्पन्नया; हूहंतिए सियगुणु—(ख ग पं) दन्तानां श्वेतगुणमभिलषन्त्या इत्यर्थः।

१.१०.६ कामिणीउ····सणाहउ—(ग पं) चन्दनशाखाः विरचितभोगैः कृतफटाटोपैः भुजगैः सर्पैः सनाथाः समन्विताः, कामिन्यस्तु विरचितवस्त्राभरणाद्युपभोगैः कामुकैः सनाथाः; भोय—(ख पं) भोगः, फटाटोपः, वस्त्राभरणाद्युपभोगश्च।

१.१०.७ जाहं रूउ पिच्छिवि—(ग पं) यासां कामिनीनां रूपं प्रेक्ष्य; कलहुत्तउ—(ख ग पं) सकलकलायुक्तम्; हेलए···चित्तउ—(ग पं) हेलया-अप्रयासेन भितं-वशीकृतं[2] महेश्वराणां चित्तं येन रूपेण।

१.१०.८ जय····भयथद्दउ—(ग पं) त्रिनयनजयाभिलाषी, त्रिनयनो महेश्वरस्तद्भयात् त्रस्तो विभीतः; सरणउ····पइट्ठउ—(ग पं) तासामङ्गेऽनङ्गः कामः शरणं प्रविष्टः।

१.१०.९ थणयण····ठवेप्पिणु (ग पं) तेन तत्र शरणं प्रविशता कामेन निजसर्वस्वं शृङ्गारभाण्डागारं घनस्तनकलशेषु मुद्रां रचयित्वा कृत्वा स्थापयित्वा।

१.१०.१० अहरए····छुहेवि—(ख ग पं) ओष्टे मधु आत्मीयं माधुर्यगुणं प्रक्षिप्य काममदम्; धणु सज्जीउ—(ख ग पं) धनुः प्रत्यञ्चायुक्तं कृतम्; मयसंगहिं भूमंगहिं मुक्कु—(ग पं) काममदस्य यौवनमदस्य च संगः संबन्धो येषु भ्रूभङ्गेषु [तेषु] मुक्तं कृतम्।

१.१०.११ वाण····कडक्खहिं—(ग पं) आत्मीयबाणाः नयनकटाक्षेषु समर्पिताः; कथंभूतेषु? कामुअ····दक्खहिं—(ग पं) कामुकजनमनः[3] कदर्थनदक्षेषु।

१.१०.१२ रमणुल्लए—(ग पं) श्रोणितले; ऊरुखंभ···भुवणुल्लए—(ख ग पं) जङ्घास्तम्भशोभितधवलगृहे; रइ···क्किय्उ—(ग पं) रति-प्रीतिकक्षणान्तःपुरस्य आवासः कृतः।

१.१०.१३ रइवरु—(ग पं) कामः।

१.१०.१४ लवणण्णवकूलावहि—(ग पं) लवणार्णवतटपर्यन्त [ः], (ख) आसमुद्रपर्यन्त [ः] [4]सधर···पालियकरु[4]—(ग) पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलगृहीतकरः।

१.११.२ बलिमंडए—(ग पं) बलात्कारेण।

१.११.३ मरगय···णुप्पण्णउ जसु असु—(ख) मरकतवर्णः कृष्णः स चासौ कृपाणः खङ्गः तस्मादुत्पन्नं यस्य यशः; मरगय···गयवण्णउ—(ग पं) यद्यपि कृष्णकृपाणादुत्पन्नम्, तो वि—तथापि, जसु जसु—यस्य यशः, अमरगयवण्णउ—अमरकतवर्णं श्वेतम्, अथवा अमरगजः ऐरापतिः तद्वद्वर्णः शुभ्रो यस्य, अमरेषु वा गत [ः] वर्णः व्यावर्णनं यस्य।

१.११.४ पयाव····अतित्तउ—(ख ग पं) प्रतापाग्निः अतृप्तः; खीणा···णियंतउ—(ख ग पं) क्षीणं च तदरिरेवेन्धनं च शत्रुकाष्ठं तस्य, खोज्जु णियंतउ—तद्गत्वा प्रविष्टमिति मार्गं पश्यन् अन्वेषयन् सन्[2] १.११.५-६ रिउ···पज्जलियउ—(ग पं) शत्रुभार्याणां हृदये प्रज्वलितः; अवस····पाविज्जइ—(ख ग पं) अवश्यमेव विपक्षः शत्रुः अत्र रिपुः [पु] गृहिणी हृदये प्राप्यते; कुतः? विहवी····सुमरिज्जइ—(ख ग पं) यस्मात् कारणात् विधवीभूताभिः रण्डिताभिः अनवरतं हृदये मदीयशत्रुः स्मर्यते, अत्र शत्रुनिवासस्थानत्वात् प्रतापाग्निना हृदयं तासां दह्यते।

---

२. पं महा ईश्व°। ३. ग °मनं°। ४. पं सधर····पानीयकरु—पर्वतसमन्वितपृथ्वीमण्डलं, पानीयकरु गृहीतसिद्धादयः। [१.११] १. पं तदिंधनं। २. पं मार्गमन्वेषयते।

१.११.७ नीइ""सायरु—(ख ग पं) राजनीतिः, आन्वीक्षिकी-त्रयीवार्ता-दण्डनीतिलक्षणा तरङ्गिण्यो नद्यस्तासां सागरः; सरोरुहसंड—(ग पं) पद्मसंघातः।

१.११.९ मंडलियमंडली—(ख ग पं) मण्डलीकसंघाताः; बिसढ—(ख) दन्तुरिते, (ग) बीभत्से।

१.११.१० धाराः""भीयव्व (ग पं) पुनर्धाराखण्डनमीता इव, शत्रुवत् ममापि तत्र वसन्त्या खण्डनं भविष्यतीति भयत्रस्ता इव; जयसिरि""खग्गंके—(ग पं) यस्य खड्गमध्ये जयश्रीर्वसति।

१.११.११ रेरे···सामी—(ख ग पं) भो भो शत्रवः यूयं नश्यत, भयत्रस्तानां मुखानि न प्रेक्ष्यते संग्रामे स्वामी-श्रेणिकमहाराजः।

१.११.१२ पयावघोसणाए—(ख ग पं) प्रतापव्यावर्णनया।

१.११.१३ गोमंडल—(ग पं) गवां संघातः, पृथ्वीमण्डलं च; रक्खिय""पद्धाए—(ख ग पं)पुरुषोत्तम नामा विष्णुः, पुरुषाणां मध्ये उत्तमः श्रेणिकमहाराजश्च, वयमपि रक्षितगोमण्डलाः इति स्पर्द्धया।

१.११.१४ के के सवा (के केसवा)···रिउणो—(ख ग पं) के के शत्रवः शवाः मृतकाः न जाताः, किं विशिष्टाः ? गतप्रहरणास्त्यक्तायुधाः; अथवा के शत्रवः केशवा न जाताः, केशवो हि गदाप्रहरणो लकुटि-प्रहरणो भवति, शत्रवस्तु [3]गतप्रहरणाः [4]भवन्तीति।

१.११.१५-१८ (१७-१८) जस्स नरवइणो रिउरमणीरम्मजोव्वणवणेसु निव्वडिओ—(ग पं) यस्य नरपतेः रिपुरमणीरम्ययौवनवनेषु निपतितः; कोऽसौ ? कोहदुव्वायवेउ—क्रोध एव दुर्वातः तस्य वेगः अनवरतपातः।

(१५) भग्गभूवल्लिसोहो—(ग पं) दुर्वातो हि वनेषु पतितः वल्लीशोभां हन्ति, कोपदुर्वातस्तु तद्यौवन-वनेषु पतितः भग्ना भ्रूवल्लीशोभा येन स भग्नभ्रूवल्लीशोभो भवति। रिपुरमणीनां हि अविधवत्वे सति भ्रूवल्लीशोभा भवति, विधवत्वे तु सति सा भग्ना शृङ्गाराभावात्।
हरिया""च्छाउ—(ग पं) तथा वनेषु पतितो दुर्वातो हृतकोमलपल्लवारुणछायो भवति; कोपदुर्वातस्तु तद्यौवनवनेषु पतितः हृताधरपल्लवारुणछायः—हृताधरपल्लवस्यारुणछाया रक्तिमा येन स।

(१६) समियालियालिमालो—(ग पं) तथा दुर्वातो वनेषु पतितो अलीनां भ्रमराणां अस्तो-व्यस्तहेतु-त्वात् समितालिमालो भवति; कोपदुर्वातस्तु तद्यौवनवनेषु पतितः अलकाः-कुरलकाः, केशास्त एव [5]अलयः भ्रमरास्तेषां माला शमिता शृङ्गाराभावात् उपशामिता अलकालिमाला येन सः।
अहलीकयपुप्फपरिणामो—(ग पं) तथा दुर्वातो वनेषु पतितः अफलीकृतपुष्पपरिणामो भवति, कोपदुर्वा-तस्तु तद्यौवनवनेषु पतितस्तथैव भवति।

(१७) हयचंदणतिलयरुइ—(ग पं) तथा दुर्वातो वनेषु पतितो हृतचन्दनतिलकवृक्षरुचिर्भवति; कोप-दुर्वातस्तु तद्यौवनवनेषु पतितः [6]चन्दनतिलकस्य रुचिश्छाया[6] कमनीयता सा हृता येन शृङ्गाराभावहेतुत्वात्।

१.११.१९ नहमग्गे""तव्वइ—(ख ग पं) नीतिमार्गे नभोमार्गे च आत्मीयमर्यादाया अनतिक्रमेण वायुर्वाति, रविश्च तापयति, मात्राधिकवायुर्न वाति आदित्यश्च न तपति इत्यर्थः।

१.१२.१ दप्पियमयणु—(ग पं) दर्पितो [1]गर्जितः कारितो मदनो येन।

१.१२.२ छण—(ग पं) पूर्णिमासी; तसाक""मयणु—(ख ग पं) भयत्रस्तबालहरिणीवन्नेत्राः।

---

३. ख ग °रणा। ४. पं इति। ५. पं अलया। ६. पं चन्दनेन तिलकरुचि छाया। [१.१२]
१. पं °गज्जि।

१.१२.३ कलयंठि....सह—(ग पं) कलो मनोज्ञः कण्ठो यस्याः सः कलकण्ठि-कोकिला तस्याः इव कण्ठो कलो मनोज्ञो मधुरः श्रोत्र-मन-प्रीतिकरः स्वरो यस्याः; बंधूवकुसुम—(ग पं) माध्याह्निकपुष्पवत्[२]।

१.१२.४ कणहोयकलस—(ग पं) सुवर्णकलशः; णिरिंबट—(ख ग पं) विष्टनिकाररहितः; चक्कयरमणु—(ख ग पं) चक्राकारस्थूलनितम्बः।

१.१२.५ सुहमरु—(ग पं) मुखस्वा[°श्वा°]सवातः।

१.१२.६ सडुं (अत्याणे ?)—(ग पं) मध्याम्; सत्तंगरज्जु—(ख) स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोशो बलं सुहृदिति सप्ताङ्गं राज्यम्; (ग पं) स्वाम्यमात्यसुहृत्कोशो देश-दुर्गं बलं तथेति सप्ताङ्गं राज्यम्।

१.१२.९ अह—(ग पं) अथ, एतस्मिन् प्रस्तावे; कणय....पडु—(ग पं) [३]कनकदण्डे विशेषेण निबद्धः पटः गुडिकारूपो येन।

१.१२.१० दुवारिय—(ग प) प्रतीहारः।

१.१३.१ जयसिरिरस—(ख ग पं) जयलक्ष्म्याशक्त[°सक्त]चित्तः; चउरयणायरंत—(ख ग पं) चतुः-समुद्रपर्यन्त।

१.१३.३ अच्चंभउ—(ग पं) आश्चर्यम्।

१.१३.४ घणु—(ख ग पं) निरन्तर [ः]; काणणु—(ग पं) उद्यानादिवनम्।

१.१३.५ °क्खालिय—(ग पं) क्षालित, प्रक्षालित।

१.१३.६ अकिट्ठपच्च—(पं) अवाहितपक्वाः; पसविय—(ग पं) प्रसूत, निष्पन्न; बहुवण्णहिं—(ख ग पं) बहुवर्णैः धान्यैः।

१.१३.७ गाविउ—(ग) गावः; खिरंति—(ग पं) श्रवन्ति[स्र° ?]; अमोहउ—(ग पं) परिपूर्णं बहुतरमित्यर्थः।

१.१४.४ कंटइयगत्तु—(ग पं) रोमाञ्चितगात्रः।

१.१४.५ कण्णंत—(ग पं) कर्णान्तमध्य; दियंत—(ग पं) दिग्मध्यं दिक्पर्यन्तं वा।

१.१४.६ मुरय—(ग पं) मार्दल[म° ?]

१.१४.९ पूरंतसासु—(ग पं) पूरणसमर्थः, महाप्राणमुक्तः श्वासो यत्र।

१.१४.१० परिघुट्ठुनाउ—(ख ग पं) उच्चारितशब्दः।

१.१५.२ दंतियारेहिं—(ग) हस्तिपकैः; कारेहिं—(ख ग पं) पडिकारैः (?)।

१.१५.३ कस[१]—(ग पं) चर्मयष्टि।

१.१५.४ वियलिया....वेसरो—(ख ग पं) विगलितः पतितः, आसणवरो—अश्ववारो [२]यत्र तत् विगलितासनवरं यथा भवत्येवं नश्यति[२]।

१.१५.५ तक्कइं—(ग पं) समर्थम्; धंत—(ग पं) धावन्त[३]; [४]पाइक्कचक्कसंकडं—(ख ग पं) भड-भट-सुभटसंघातः।

---

२. पं °ह्निकः पुष्पः। ३. ग °दंड। [१.१५] १. पं कसा। २. पं यथा न भवति एवं नश्यति। ३. पं धावंतः। ४. पं पायक्क°।

१.१५.६ भूमीकमं छड्डिरी—(ख ग पं) निज-निज भूमिक्रमपरित्यागिनो; वारिया—वारिभिर्वारिता[·], निवारिताः; [4]निरवीरमोसारिया—(ख ग पं) निजभृत्यसमूहः निज-निज भूम्यां धृतः।

१.१५.७ डंबरं—(ग पं) आटोपम्; छइयंबरं—(ग पं) प्रच्छादिताकाशं।

१.१५.१० नियय····हिट्ठओ—(ख ग पं) निजशोभास्वीकृतः; कणयसंको—(ग पं) मेरुः।

१.१५.११ तुंगिम—(ख ग पं) महत्त्वम्; परए करु—(ख ग पं) दूरत[5] उत्सारय; देवनिकायहो—(पं) भवनवास्यादिदेवसंघातस्य; किम समसीसी—(ख ग पं) समगणना का।

१.१५.१२ आयहो—(ग) एतस्य मेरोः, (पं) कनकगिरेः।

१.१६.१ दूरुज्झिय—(ख ग पं) [1]दूरतः [°त] एव परित्यक्तः; पत्तें—(ख) पात्राणि, (ग) पत्राणि, वाहनानि; परियण····जुयण—(ख ग पं) परिजन, पुरनिवासीलोकयुक्तेन।

१.१६.२ केवलवाहें (ख ग पं)—केवलज्ञानधारकेन।

१.१६.१० सुहमावण—(ग पं) शुभपरिणामाः[2]।

१.१६.११ दल—(ख ग पं) पत्र।

१.१७.१ हरिविट्ठरे—(ग पं) सिंहासने; किरणाहय····करे—(ग पं) किरणैर्निर्जितः सुरेन्द्रमुकुटकिरणो।

१.१७.२ पत्तपहुत्त[1]—(ख ग पं) प्राप्तत्रिभुवनाधिपत्यः; कुसुमंकिए—(ख पं) पुष्पाञ्चिते।

१.१७.३ मइए—(ख ग) मनोज्ञे।

१.१७.४ सयलभाससंवलियए—(ख ग पं) अष्टादशदेशोद्भवभाषासमन्वितया।

१.१७.५ छजिइ (ग पं)—शोभितः; पडिबिंब—(ग पं) प्रतिच्छाया।

१.१७.७ [2]तइलोक्कपियामहु—(ग पं) त्रैलोक्यपितामहः।

१.१७.८ पयाहिण देंतें—(ग) प्रदक्षिणां ददता सता।

१.१७.९ रइतमगहिउ—(ख ग पं) विषयासक्तितमःप्रच्छादितः[3]।

१.१७.१० सुत्तउ—(ख ग पं)—विवेकरहितम्।

१.१८.१ वण्णिऊणं—(ग) वर्णितुम्; बालो—(ख ग पं) अज्ञः।

१.१८.२ समुज्जोइया····पईवेण सूरो—(ख ग पं) समुद्योतितदिशौघो वा किं न पूज्यते प्रदीपेन सूर्यः? किं विशिष्टः? तेयपूरो—(ख ग पं) तेजःसंघातः, तेजोनिधिरित्यर्थः।

१.१८.३ संतवइरस्स—(ग पं) क्षीणकषायस्य।

१.१८.४ परं—(ख ग पं) पवित्री करोतु; [1]सुक्खथामं—(ख ग पं) सौख्योत्पादनपराक्रमं समर्थमित्यर्थः।

१.१८.५ सावज्जलेसो—(ख ग पं) सावद्यलवः।

१.१८.६ कणो····सप्पसत्थो—(ख ग पं) कणो-कणिका, हालाहलः कालकूटस्य संबन्धी, जीवा[2] यथा तथा सप्पसत्थो-सर्पसार्थः; सुहासायरं—(ख ग पं) अमृतसमुद्रम्।

१.१८.७ अविग्घो—(ख ग पं) अविघ्नः प्रतिबन्धरहितः; तए—(ख) त्वया; तिलोयग्गगामीण—(ख ग पं) मोक्षगामिनाम्।

---

५. पं निहवीरमोसारिया। ६. ग दूरतः। [१.१६] १. पं दूरतर। २. पं °णामा। [१.१७] १. पं °पहुत्तु। २. पं तयलोय°। ३. ग °दितं। [१.१८] १ पं सोक्खधामं। २. ग जीवो।

१.१८.८ मोहकाकाहि—(ख ग पं) मोहकृष्णसर्पः; वायामुहाए—(ग पं) वाचामृतेन; विसुद्धो—(ग पं) विशुद्धः, स्वच्छः।

१.१८.९ कूवार—(ग पं) समुद्रः; संपुण्णविज्जा—(ग पं) केवलज्ञानम्।

१.१८.१० सए—(ग पं) त्वया; माण····उद्दित्तमेयं—(ग पं) ज्ञानदीप्त्या उद्गततेजः कृतमिदं हत-प्रतापीकृतमित्यर्थः; समुब्भासए—(ग) समुद्भासति, शोभते।

१.१८.११ मुहामासयं—(ग पं) मुखप्रतिबन्धम् [°छन्दम् ?]।

१.१८.१२ वत्थुरूवं—(ग पं) वस्तु-पदार्थम्, नित्यं निश्चे [°श्चे] दत्वमित्यादिशरीरस्वरूपम्; अहंबुद्धि-लुद्धा ते मुद्धा सरूवं निरूवंति—(पं) तव स्वरूपमिति निरूपयन्ति—(ग पं) वयं भगवत्स्वरूपं यथावत् ज्ञात्वा प्रतिपादयामः इत्यहङ्कारेण विपर्यासिताः; शरीरस्वरूपाद्भगवत्स्वरूपस्यानन्तज्ञानाद्यात्मकस्यान्य-त्वात्[3]।

१.१८.१८ भूयो—(ख ग पं) पुनरपि।

टिप्पण सन्धि–२

२.१.१ समवाएं—(ख पं) सर्वेषां अभिप्रायेण।

२.१.३ पयंपइ—(ग पं) प्रजल्पति।

२.१.४ निरंजणु—(ख ग पं) कर्ममुक्तः।

२.१.५ निरवहि—(ख ग पं) अनाद्यनन्तः; सण्णाण····मेत्तु (ख ग पं) स्वज्ञानप्रमाणमात्र; 'आदाणा-णपमाणं' इत्यभिधानात्।

२.१.६ परेण मिलिउ—(ख ग पं) परेण स्पृष्टः परामृष्टो वा; आयास····दव्वहिँ—(ग पं) आकाश-प्रमुखैराकाशाद्यैर्द्रव्यैः।

२.१.७ नीसेस—वाहि—(ग पं) [1]निःशेषं शरीरी-मनुष्यो-देवो-बाल-कुमारः सुखी-दुःखीत्यादिरूपो निरर्थो-ऽनात्मस्वरूपः कर्मजनितमित्यर्थः उपाधिविशेषणम्; सहइ—(ग पं) सहते, भजते, तथा भजते चात्मनि सति अचेतनशरीरादिकं संसारे प्रवर्त्तते; केन सता क इव ? जंगमेण—(ग पं) जङ्गमेन बलीवर्दादिना अजङ्गमं शकटादिकम्, जेम—यथा; तथा कर्मणा सता शरीरादिकं संसारे [2]प्रवर्तयिष्यति।

२.१.८ भवसमत्थु—(ख) संसारकर्मकरणे समर्थः; संतें गयणे····समत्थु—(ग पं) अतः किमात्मनेत्या-शङ्क्याह—संतें—सता आत्मना भवः प्रादुर्भावः कर्मपरमाणुस्कन्धः समर्थो भवति, आत्मनि वा अवकाशं लभते; केन, क इव ? गयणेण व—(ग पं) आकाशेन सता यथा (ख ग पं) पृथिव्यादिपदार्थः आकाशे अवकाशमवगाहं प्राप्नोति स्वकार्यकरणे समर्थश्च भवति, आत्मानं च सकषायं प्राप्य कर्मणो योग्यपरमाणु-स्कन्धोऽपि विचित्रफलदाने [3]समर्थः कर्मरूपतया परिण [म] ते, 'सकषायत्वात् जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः' इत्यभिधानात्; (ख) अत्र दृष्टान्त [:] सूर्यकान्त [मण] यः।

२.१.९ दिवसयर····अग्गिवंतु—(ग पं) [4]अमुमेवार्थं प्रति दृष्टान्तमाह, दिवसयरेत्यादि—दिवसकरकिरण-कारणं सहायम[सहायं]लभमानः सूर्यकान्तो यथा अग्निना [अग्निमान्] दृश्यते—

---

३. ग ज्ञानाद्यात्मकस्यान्यम्यत्वात्।

[२.१] १. पं षः। २. पं °प्रवर्तिष्यते। ३. पं °र्थो। ४. पं अत्रैवार्थे।

२.१.१० सिद्दे जोग्ग ···बुद्धिबंधु—(ग पं) कथंभूतः ? स्वकर्मयोग्यपरि[पर°]माणुस्कन्धः; परिवर्द्धितोऽहमिति बुद्धिबन्धः आत्मनि संबन्धो येन; ननु इन्द्रियाण्येवाहमिति बुद्धिमुत्पादयिष्यन्ति, तत्किमात्मना कर्मणा वा ? अत्राह—

२.१.११ [6]जीवेन····करणगामु[6] (ग पं) जीवेन निमित्तीभूतेन करणग्राम. इन्द्रियसंघातः; किं विशिष्टः ? मोहथामु[7]—(ग पं) ·महामोहनीयकर्मणः सकाशात् (पं) मोहो वा मोहजनने विषयासक्तिः प्रादुर्भावि थामु–थामाः [थामः] सामर्थ्यं यस्य सः; विधणु भाव—(पं) द्रव्येन्द्रियभेदसहितः; वियंभइ—(पं) स्वविषये यथेष्टया प्रवर्त्तते ।

२.१.१२ इयजाउ····जीउ सो वि—(ग प) एवमुक्तप्रकारेण आत्मानं निमित्तीकृत्येन्द्रियद्वारेण जनितोपयोगलक्षणलक्षितः सन् निमित्तिकोऽपि जातः, व्यवहारेण सोऽपि जीवः इत्युच्यते; निश्चयेन एकोऽविनश्वर उपयोगयुक्त इति, (ख) "निश्चयेन ह्येकोऽविनश्वरो स उपयोगयुक्त इति चिद्रूपलक्षणो जीवः, न तु क्षयोपशमिकादिनश्वरैरिन्द्रियोपयोगयुक्त इति ।

२.१.१३ संसार····जणिउ—(ग पं) संसारस्य भवात् भवान्तराप्राप्तेर्निबन्धनं कारणभूतं कर्म तेन व्यवहारनयेन जीवेन, जनितं—आत्मनि प्रादुर्भावितं भवति; तं नासु मोक्खु भणिउ—(ग पं) तस्य तथाभूतस्य कर्मणो नाशो मोक्षो[8] भणितः; निरामउ—(ग पं) आमयो व्याधिस्तस्मान्निष्क्रान्तः ।

२.१.१४ खिज्जइ—(ग पं) क्षियते; उप्पज्जइ····अणुहवइ—(ग पं) स एव जीवो व्यवहारिकः मोहसंघातं क्षपयति; किं विशिष्टः सन् ?

२.१.१५ [9]कम्मासवधारणु° लवइ—(ग पं) कर्मास्रववारणः कर्मणामास्रवस्य 'मिथ्यात्वाविरतिप्रमादकषाययोग'लक्षणस्य निवारकः; किंविशिष्टः सन् तन्निवारको भवति ? भावियकारणु—(ग पं) भावितकारणः भावितं कारणं मोक्षमार्गो रत्नत्रयस्वरूपो येन ।

२.२.८ अणिट्ठु —(ग पं) अनिष्टं दुःखम्; मइ—(ख ग पं) मया; कट्ठें—(ख ग पं) महातापकष्टेन ।

२.२.११ संसारिणि·तिस – (ख ग पं) संसारिणीतृष्णा भोगाकांक्षा ।

२.३.१ नरामरे····वहंतए—(ख ग पं) नरामरेषु विशुद्धभावनां धारयमाणे ।

२.३.२ एंतयं—(ग) आगच्छन्; नियच्छियं····तेयवारि—(ख) स्फुरन्त तेयवारि(?)विज्जु(?)मालिविमानं नमेद्यार्म(?)तदृशं दृश्यते आगच्छन्तु शुद्धतोन्या (?) धारयन्ते; पूरिया दियंतयं—(ख ग पं) [1]पूरितदिगा[दिग°]न्तम् ।

२.३.३ अतिव्वतावयं—(ग पं) अतीवप्रतापः, (पं) अतीव्रतापं येन, सूर्यकिरणसंघातस्तु अतीवतापकः; न सूरगोनिउंजयं—(ख ग पं) सूरस्य आदित्यस्य, गोनिकुञ्जः—किरणसंघातो न भवति ।

२.३.४ साहुवाहुणा—(ख ग पं) साहु-गणधरवचनेन, सुन्दरवाचा वा कृत्वा ।

२.३.६ सत्तमे····चविस्सए—(ख ग पं) सप्तमे दिने आयुष्यक्षये आयुषः क्षयात् च[च्य°]विष्यति; भवेण—(ख ग पं) अग्रेतनमनुष्यभवेन; केवली ह····भविस्सए—(ख ग पं) इह—भरतक्षेत्रे, पश्चिमोऽन्तिमः केवली भविष्यति ।

२.३.८ पियाचउक्कपंचमो—(पं) प्रियाचतुष्टेन[°ष्केन] सह पञ्चमः; सहाए दिट्ठओ—(ख ग पं) सभामण्डपिकानिवासीजनेन दृष्टः ।

२.३.९ गिव्वाणु—(ख ग पं) गीर्वाणो विद्युन्मालीदेवः ।

---

५. प्रतियोंमें यष्यंति । ६. पं जीवेनेत्यादि । ७. ख ग °थामु । ८. ग मोक्षः । ९. पं कम्मासव° । [२.३] १. पं पूरिता° ।

२.४.३ आवहो—(ग) एतस्यागतस्य वा।

२.४.४ न मिल्लिउ—(ग) न त्यक्तः; पच्चेल्लिउ—(ख) अपृष्ट (?), (ग) केवलम्।

२.४.९ पुण—(ग) विद्युन्मालिना।

२.४.१० दिवि दिवि—(ग) दिने दिने।

२.४.११ सवणलयाहरे—(ग पं) निरन्तरलतागृहे; कडुय—(ख ग पं) कटुकः कर्कशवचनः।

२.४.१२ चलसिह[1]—(ग पं) चलचूलिका।

२.५.१ संसु—(ग पं) प्रशंसः[1]; गुणवंतु—(ख ग पं) गुणाः सुशीलत्वादयः, पक्षे (ख पं) प्रत्यञ्चा चापः; वंसु —(ख ग पं) संतानः वंशश्च।

२.५.२ सुत्तकंठु—(ख ग) ब्राह्मणः।

२.५.३ कमलायरो व्व—(ख ग) सरोवरवत्; गोविसनिहाणु—(ख ग पं) ब्राह्मणपक्षे गावो धेनवः, [2]वृषभाः बलीवर्दास्तेषां निधानम्; कमलाकरपक्षे गो[3] पानीयम्, विषाः—पद्मिनीकन्दास्तेषां निधानम्; मंडलवइ व्व—(ख ग पं) मण्डलपतिरिव राजा इव स ब्राह्मण इति; महिसीपहाणु—(ग पं) ब्राह्मणपक्षे महिष्यः प्रधानाः बहुदुग्धघृतदायिन्यो यस्य, मण्डलपतिपक्षे महिषी-अग्रमहादेवी पट्टराज्ञी प्रधाना [4]यस्य।

२.५.४ [5]पइवयधारिणी—(ख ग पं) पतिव्रतधारिणी, (ग) अन्यभर्तृकत्वव्रतधारिणी।

२.५.५-६ (ग पं) समयणेत्यादि पाणहियकंतेत्यनेन संबन्धः; प्राणानां हिता-कान्ता-भार्या प्राणहिता वाहणा कान्ता-कमनीया; समयणतणु—(ग पं) कान्तापक्षे समदना कामोद्रेककारीतनुर्यस्याः [सा], पाणहियपक्षे तु समदनेन सिक्ता लिप्ता तनुर्यस्याः; रत्ती—(ख ग पं) कान्तापक्षे निजभर्तुरनुरक्ता, [6]पाहणियपक्षे रक्तवर्णा; ललियकण्ण—(ग पं) कान्तापक्षे [7]ललितं[ललितकम् ?] आभरणविशेषपरिधानशोभायमानौ कर्णौ यस्याः; [8]पाहणियपक्षे तु[8] ललितकर्णा; नेह—(ग पं) स्नेहः तैलं च।

२.५.६ अविहत्तसंग—(ग पं) अविभक्तसङ्गौ[9] अविनाभाविनावित्यर्थः।

२.५.१२ वरथु—(पं) गृहीतः।

२.५.१४ सरंतु—(ग) स्मरन्; विट्ठु—(ग) विष्णुम्।

२.५.१५ तहिं पविट्ठ—(ग) चिताग्नौ प्रविष्टा।

२.५.१६ दुक्खभरिय—(ग पं) [10]दुःखपूर्णौ।

२.५.१७ संठविय—(ग) संस्थापितौ।

२.६.१ सथणिट्ठु—(ग पं) लघुभ्रातृसंयुक्तः।

२.६.९ जीवणनिओय—(ख ग पं) जीवनव्यापाराः असि-मसि-कृष्यादयो[1] यस्य तत्; सण्णालुयउ—(ख ग पं) आहारभयमैथुननिद्रापरिग्रहलक्षणसंज्ञायुक्तम्।

२.६.१० खलियउ—(ख ग) कदर्थितम्।

२.६.१२ सहियए—(ग) स्वहृदये।

२.७.१ किलेसिं—(ग पं) क्लेशेन प्रयासेन।

[२.४] १. पं चलसिहु [२.५] १. पं °सा। २. वृषाश्च। ३. ख ग गोः। ४. पं यत्र। ५. पं पयवय°। ६. पं पाणादिता। ७. पं °ओ। ८. पं पाणहिता तु। ९. पं °संगा। १०. पं °पूर्णः। [२.६] १. पं °दया।

२.७.३ संकेसु—(पं) संक्लेशः ।

२.७.४-५ अब्भंतरु····णियइ बाहिरउ····दंडकरु—(ग पं) बाह्यं देहस्वरूपं यद्यपि इन्द्रियाणामभिलाषकरन्, तो वि—तथापि आभ्यन्तरदेहस्वरूपं यदि वा बाह्यं पश्यति तदा मांसपिण्डस्वरूपत्वात् वायसमेव दण्डकरः [1]उड्डापयति ।

२.७.७ विन्नत्तु—(ग पं) विज्ञप्तः ।

२.७.११ गुरु····रइ—(ग पं) गुरुवचनश्रवणरतिः; कम्मा°····संवरु—(ग) कर्मास्रवकृतसंवरः ।

२.८.२ भमिवी—(ग) भ्रमित्वा ।

२.८.६ समनियपरहो—(ख ग पं) समौ निजपरौ यस्य, समं वा परमोपशमं [1]संसारोपशमं वा[1] नीतः परः आत्मा येन ।

२.८.७ अणुउ—(ख ग पं) लघुभ्राता; भवगुरु सरिहिं[2]—(ख ग पं) संसारमहानद्यां; [3]दरिहिं—(ख ग पं) गर्तायाम् ।

२.८.९ जोयण अज्झाणु—(ख ग) योजनाध्वानं योजनमार्ग इत्यर्थः ।

२.८.१० न पमाउ—(ख) न दोषः ।

२.८.११ नत्थि····दिसि—(ख ग पं) दोषलेशोऽपि नास्ति ।

२.८.१३ वड्ढमाणु—(ख ग पं) वर्द्धमाननामनगरम् ।

२.९.८ सिप्प—(ख ग पं) [1]काष्ठचित्रकर्मादिविशेषं[1] ।

२.१०.१ महिवीढे निवेसिवि—(ग) क्षितितले निवेश्य ।

२.१०.२ सुय—(ग) भो सुत भो भ्रातः; धम्मविद्धिसंभवउ—(ग) धर्मवृद्धिः संपद्यताम्; तउ—(ग) तव ।

२.१०.३ तउ—(ग) ततः पश्चात्; करिवी—(ग) कृत्वा ।

२.१०.४ पहरणु—(ग) पगरणं[प्रक°]विवाहमहोत्सवः ।

२.१०.७ सवाहनयणु—(ख ग पं) अश्रुप्रवाहयुक्तलोचनः; [1]उद्धंतमण्णु—(ख ग पं) उद्भूताभिमानः ।

२.१०.८ जणणि-जणेरहं—(ग) जननी-जनकयोः ।

२.१०.९ जो—(ग) स्नेहः; भंसियउ—(ख ग पं) नाशितः ।

२.१०.१० अजपमाणहिं—(ख ग पं) [2]संप्रत्यनुभूयमानैः; कय आगमणहिं—(ग पं) कृतागमनैः; पुणुण्णउ—(ग पं) पुनर्नवो नवीनः ।

२.११.३ मइ—(ग) मया ।

२.११.१० नियहिउ—(ख ग) निजहितहेतुः ।

२.११.११ [1]ही तं[1]—(ख ग पं) धिक् निन्द्यं तं मनुष्यम्; अवगण्णहि—(ग पं) अवधीरय ।

२.१२.३ विहाणें—(ग पं) आगमोक्तविधिना ।

२.१२.५ नियसणाए ससद्ध—(ख ग पं) [1]व्याघुट्टनश्रद्धायुक्तः ।

[२.७] १. ग उड्डा° । [२.८] १. पं °परमो वा । २. पं °सरिहो । ३. पं °दरिहे । [२.९] १. पं कोष्ठ····विशेषा । [२.१०] १. पं °मंनु २. ख सांप्रत्य° । [२.११] १. पं हित्तं । [२.१२] १. ग °घुटन ।

२.१२.७ उद्देसइ—(ख ग पं) कथयति; अण्णालावकीलु—(ख ग) अन्योक्तिलीलाम्, (ग) अन्योक्त्यासक्तः ।

२.१२.८ पाड—(ख ग पं) शाखा, प्ररोहम्; नग्गोह—(ग पं) वटवृक्षः ।

२.१२.११ परिसोलिय—(ग) दृष्टाः, (पं) दृष्ट्वा (?) ।

२.१३.६ नववहुवाए—(ग पं) नूतनवध्वा ।

२.१३.७ अपग्गिव—(ख ग पं) प्रागेव[1] इति लोकोक्तौ; [2]जेट्ठें····निच्छइयउ—(ग पं) भवदत्तेन, चिरु = पूर्वं सङ्घस्याग्रे, निच्छइयउ—प्रतिज्ञातं भवदेवं तपोग्रहणार्थं अहमिह गृहीत्वा आगमिष्यामीति ।

२.१३.९ °रडे—(ख ग पं) रडि-पूत्कारः ।

२.१३.१२ समासइ—(ख ग पं) पर्यालोचयति ।

२.१३.१३ भवयत्तु—(पं) भवदत्तो यथा; पडंतउ भववइतरिणिहे उद्धरहि—(ख ग पं) भव एव वैतरणी-नरकनदीः (ख ग) तस्याः(तस्याम् ?) पततः उद्धर इति भवदेवः ।

२.१४.१० कवलिज्जए—(ख ग पं) चित्र्यते ।

२.१४.१२ धण्णउ—(ख ग पं) कृतार्थः ।

२.१५.५ (ख) [1]इय आयंत[2]—ईदृक्कूआकया (?), (ग) इय सेच्छय—स्वेच्छया ।

२.१५.९ वियडए—(ख पं) शीघ्रया ।

२.१५.१० परिओसइ—(ग) परितोषयति ।

२.१५.१२ दिसउ—(ग) दिशः; निज्झाएवि—(ख ग पं) अवलोक्य ।

२.१५.१७ परिसक्कइ—(ख ग पं) आक्रामति; चित्तु····चमक्कइ—(ख ग पं) चित्तेन समं ऊहापोहं करोति ।

२.१५.१८ इउ कारणु—(ख पं) विषयसेवानिमित्तं व्रतभङ्गादिकम्; धिद्धिकारिउ—(ख पं) निन्दितम्; आरिसहिं—(ख पं) आगमैः ।

२.१६.१ वीणोवमझुणि—(ख) वीणावज्ज[°वाद्य]इव धुनि [ध्वनिः] ।

२.१६.५ डहइ—(ख) पश्चात्तापं कारयति ।

२.१६.६ विकासपिया—(ख ग पं) रतिक्रीडाभिलाषिणी; कवणकिया—(ख ग) का क्रिया, का गतिस्तस्याः वर्त्तत इत्यर्थः ।

२.१६.११ चेइहरु—(ग) चैत्यालयः ।

२.१६.१४ सूलिनि—(ख ग पं) चण्डिका ।

२.१७.४ अज्जवसुदियहो—(ग पं) आर्यवसूनाम्नो द्विजस्य ।

२.१७.५ विसिद्दइयंबरिया—(ख ग पं) दिगम्बराणामियं दैगम्बरी-निर्ग्रन्थप्रवृत्तिरित्यर्थः ।

२.१७.७ किह—(ग पं) केन पतिव्रताप्रकारेण; विवरीयकिया—(ख ग पं) विपरीतक्रिया, कुलमार्गपरित्यागक्रिया, (ख) कुलभ्रष्टक्रिया ।

२.१८.४ परिगलियवयसि—(ख) गतवयसे वृद्धकाले; (ग) परिगलिते वयसि सति, वृद्धत्वे सतीत्यर्थः ।

२.१८.७ लेइ हिम्मि—(ख ग पं) व्रतानुष्ठानादिदिशाग्रभ्रष्टो भवति ।

[२.१३] १. पं प्र णेव । २. पं जेट्ठइ । [२.१५] १. पं पयसिज्जइ ।

२.१८.९ आ···कायपणरसु—(ख)—हे मुने त्वया पृष्टा तस्याः नागवस्वाः स्वरूपं कथयामि, त्वं शृणु ।

२.१८.१२ चिच्चुय—(ग)[1] चिबुक (?) [हिंदी—चिचुड़ जाना, पिचक जाना]।

२.१९.६ संकड···पमाणो—(ख ग पं) [1]संलब्धः शिक्षातोऽपमानो[1] येन ।

२.१९.८ पुव्वसंकेअचत्तो—(ख ग पं) पूर्वसङ्केतः विषयसेवासङ्कल्पः स त्यक्तो येन ।

२.१९.१० म वंकहि—(ख) मदीया प्रार्थनाया सज्ज्यक्तां [संत्यक्तां ?] मा कुरु; (ग) मदीया प्रार्थना, तामवक्रां कुरु, (पं) मदीयप्रार्थनायामवक्रां कुरु; उब्वेढ्यउ—(ख) संक्लेशकल्पनाभावत्यक्तः, (ग पं) उद्विग्नः ।

२.२०.२ अब्भसइ—(ग पं) ध्यायते[1] ।

२.२०.५ अजिब्भु व—(ख ग पं) जिह्वारहित इव, जिह्वायास्वादनमगृह्णन्नित्यर्थः ।

२.२०.८ (ग पं) पुव्वज्जिय[2]—(ख ग पं) पूर्वोपार्जित[म्] ।

२.२०.१० मइए—(ख ग पं) परिमिते ।

सन्धि—३

३.१.३ लक्खे पयाइं—(ख) लक्षपदानि, (ग) लक्ष्ये पदानि ।

३.१.७ किविणमाणसा—(ग पं) अल्पमतयः ।

३.१.८ जे संपण्णणाणसा—(ग पं) ये सम्प्राप्तज्ञानलक्ष्मीकाः, केवलज्ञानश्रीसमन्विता इत्यर्थः; सव्वु वि··· दिणसमु—(ग पं) तेषां सर्वमपि कालद्रव्यं [1]सुषमसुषमादिभेदभिन्नं षड्विधमपि दिनसमानं, यथा दिनमथिरं पुनः पुनरुदयास्तमनरूपतया परिणमति, तथा कालद्रव्यमप्यथिरतया[2] पुनः पुनः सुषम-सुषमादिरूपतया परिणमते[3] [इ]ति ।

३.१.९ मंदराउ—(ख ग) मेरोः; पुव्वासए—(ख ग पं) पूर्वस्यां दिशि ।

३.१.११ जया—(ख ग पं) मघेश्वर ।

३.१.१३ विवक्ख—(ग पं) शत्रुः ।

३.१.१४ घरसिंग—(ख ग पं) गृहशिखराग्र;[4] पज्झरिय—(ख पं) क्षरितपानीयम्; घणु—(ग पं) मेघः ।

३.१.१५ दिसमाणरिद्धि—(ख ग पं) दिक्मानऋद्धिः[5], या या दिक् अवलोक्यते तत्प्रमाणा[6] अस्य-रिद्धिरित्यर्थः ।

३.१.१६ कणकणिरदसण—(ख ग पं) दशन-दन्तकम्पजनकः; बिलु—(ख ग पं) कन्दरं विवरम् ।

३.१.१७ सरलु—(ख ग पं) वृक्षविशेषः; सरलु···तरलु—(ख पं) सरसफलभक्षहरिणी—प्राञ्जलफालविशेषं[7] कुर्वाणाभिः हरिणीभिः तरलं—चंचलम् ।

३.१.२० मणिसारपायार—(ख पं) रत्नमयप्राकार[:] ।

[२.१८] १. पं चिवुक्तं, अथवा चिचुक्तं । [२.१९] १. पं °क्ष शिक्षाऽपमानो । [२.२०] १. ग °यतो । २. पुव्वासिय । [३.१] १. पं सुखमसुखमा° । २. पं °स्थिरतया । ३. ग °मति । ४. पं °राग्रं । ५. पं दिक्समानाऋद्धिः । ६. पं °माण । ७. ख ग प्रांजलफालं ।

३.१.२४ (ख ग) मंड[1]—(ख ग पं) मडः वृक्षविशेषः धवलगृहविशेषश्च, (ख ग) लतामण्डपादि(?); णिवथाणइं[2]—(ख ग पं) राजकुलानि ।

३.२.५ वाहोल—(ख ग) तालाब, वाटिकाः; ताकड—(ख ग पं) वृक्षविशेषः, ताल-मञ्जीर-समताला, दिवायवादनविशेषश्च, स च महापुराणटिप्पणके नीलञ्जसा[3] नृत्यसमये विशेषेण व्याख्यातः इह द्रष्टव्यः[4] ।

३.२.६ सरपालिउ—(ख ग पं) सरोवरपाल्यः, (ख ग) वेश्यापक्षे कामयुक्ताः; विडंगणह वणियउ—(ख ग पं) विडङ्गाः वृक्षविशेषाः, [5]नखाः-जं वनविशेषाः [6]तैः वणियउ—उपलक्षिताः,[7] वा वणियउ—वणिकाः—लघुनिरन्तरवृक्षविशेषसमूहाः, वणि इति लोके; वेश्यापक्षे विडंग [8]वणियउ—विटैरङ्गेषु नखैः व्रणिताः; गणियउ—(ग पं) गणिकाः, वेश्याः ।

३.२.७ मुणिवर—(ख ग पं) अगस्थिकवृक्षविशेषाः[8], मुनिप्रधानाश्च ।

३.२.८ सुपओहरउ—(ख ग पं) शोभनपयोधारिण्यः, स्त्रीपक्षे शोभनपयोधराः; सुरमणिउ—(ख ग पं) सुरमण्यः, शोभनरमण्यः सोपानपङ्क्तयः, (पं) स्त्रियश्च, (ख ग) स्त्रीपक्षे शोभनरमणशीला; रमणिउ—(ग) स्त्रियः ।

३.२.९ सहल····थाणइं जणदाणइं—(ख ग पं) मण्डपस्थानेषु फलैः सहितानि शोभनानि पत्राणि, जनदानपक्षे तु सफलानि जनानां चिन्तितफलसम्पादकानि शोभनपात्राणि[9] उत्तम-मध्यम-जघन्यभेदभिन्नानि यति-श्रावक-श्रा[ ]वका-अविरतसम्यग्दृष्टिलक्षणानि ।

३.२.११ गयउलाइं—(ग पं) हस्तिसङ्कुलानि; रयणुल्लइं—(ग पं) रदना दन्तास्तेषां रुक् दीप्तिर्येषु, बालकपक्षे रत्नाभरणदीप्तियुक्तानि; डिंभलयइं—(ख) डिम्भाः बालकाः तेषां रत्नाभरणदीप्त्या, (ग) लेकरुकानि(?)बालकानीत्यर्थः ।

३.२ १२ वज्जयंतु—(ख ग) वज्रदन्तु ।

३.३.१ °ऽच्छ—(ग पं) अच्छ स्वच्छं निर्मलमित्यर्थः ।

३.३.२ कमला इव—(ख ग पं) लक्ष्मी इव ।

३.३.४ सायरचंदु—(ख) सागरचन्द्रनाम; वाहरइ—(ग) आकारयति ।

३.३.७ हवि—(ख ग पं) हविः अग्निः; महाणसि—(ख ग पं) रसवत्याम्, (ख) रसोई लोके; पवणछवि—(ख ग पं) पवने छविः तेजः प्रभावमित्यर्थः ।

३.३.९ मरगय····सामलिया—(ख ग पं) मरकतमणिभित्तौ कृतश्यामवर्णाः; गोरंगी—(ख ग पं) उज्ज्वल-गौरशरीरापि; णाहं····कलिया—(ग पं) भर्तारेण न ज्ञाता ।

३.३.११ अत्थियण—(ख ग पं) याचकजनाः; पउमालंकरिउ—(ग पं) लक्ष्म्यालङ्कृतः; महापउमु—(ख ग) महापद्मनामा ।

३.३.१२ वरियकर—(ग पं) गृहीतसिद्धादयः ।

३.३.१५ हरिणंकसिया—(ख ग पं) चन्द्रकान्तिशोभा[1] ।

३.३.१८ वणमालहे—(ग पं) वनमालायाम् ।

३.४.७ संथविउ—(ख ग पं) कृतयुवराजपट्टबन्धः ।

३.४.८ देहि आएसु जीवि—(ख पं) यस्यादेशदत्ते जीवितं मन्त्रि [मन्त्री ?] ते कुमार मन्त्री प्रामन्त्रादि ।

[३.२] १. पं मड्ड° । २. पं णिय° । ३. पं नीलंयमा । ४. पं °ख्याता । ५. पं °ख्या । ६. पं नखा । ७. पं तैः उपलक्षिताः । ८. पं अगस्थिक° । ९. पं °पत्राणि । [३.३] १. ख ज्ञाताः । २. चंद्रकांत° ।

३.५.२ सुबंधुतिलउ—सुबन्धुतिलको मुनिः ।

३.५.१३ राउत्तहिँ—(ग पं) राजपुत्रैः; उवहिचंदु—(ख पं) सागरचन्द्रः ।

३.६.१ राय····ताउणो—(ख ग पं) क्रोधादि-विकथादिनिर्नाशकः ।

३.६.७ पग्गिव—(ख ग पं) प्रागेव ।

३.६.८ इह[1] निम्मलु—(ग पं) ईदृशो[2] निर्मलः ।

३.६.१० विहिणा—(पं) आगमोक्तविधिना ।

३.६.१२ मणि भिण्णउ—(ग पं) कृताश्चर्यवितर्कः ।

३.७.१२ भवकालसप्पु—(ग पं) भव एव कृष्णसर्पः ।

३.७.१३ विसरिस—(ग पं) अद्वितीयः ।

३.७.१४ उद्धरिय—(ग)[1] उद्धृतः ।

३.८.२ विहडप्फडु—(ग पं) विकलगात्रः ।

३.८.१० नउ वंकइ—(ख ग पं) शरीरं न मोटयति ।

३.८.१२ निकउ—(ग पं) स्थानम् ।

३.८.१३ चयणिज्जहे—(ग पं) त्यजनीयायाः; अविज्जहे—(ख ग पं) अविद्यारूपायाः मोहवृद्धिहेतुभूताया[1] इत्यर्थः; तहे[2] (पं तहो)—राजलक्ष्म्याः; अविलंबेण[3]—(ख ग पं) शीघ्रमेव; विकउ[4]—(ख ग पं) परित्यागः ।

३.९.२ निग्गहु····तउ तं किर—(ख ग पं) तत्तपः किल इन्द्रियाणां निग्रहः ।

३.९.७ घरकज्जचुओ—(ग पं) त्यक्तगृहस्थव्यापारः ।

३.९.१० आहारु····ग्घविउ[1]—(ग पं) आरनालेन कञ्जिकेन सहितः आहारः ममायं योग्य; इति शंसितः[2] ।

३.९.१२ पारणकज्जु—(ग पं) पारणार्थम्; मुणि—(ख ग पं) जानीहि ।

३.९.१६ दिणसंज्झहे—(ग पं) दिन-सन्ध्यायाम् ।

३.९.१७ मरुभोयणहिँ—(ख ग) वायुभोजनेषु सर्पेषु ।

३.९.१८ अज्जियतवफलु—(ग पं) अर्जिततपःफलं असुभकम्मनिज्जरा[3]—अशुभकर्मावाप्तिलक्षणं येन ।

३.१०.१ वाउ —(ख ग पं) वातः ।

३.१०.४ अबाहिए[1]—(ख ग पं) व्याधिरहिते बाधारहिते च ।

३.१०.६ इय तवफलु महंत—एतस्य कञ्जिकाहारस्य तपसः फलं महत्, इय तणुपह—(ग पं) एषा शरीरप्रभा ।

३.१०.१० विहियतवंतरु—(ख ग पं) अनुष्ठिततपोविशेषः ।

३.१०.११ जणकिण्णी[3]—(ख ग पं) जनसङ्कीर्णा[4]; वित्थिण्णी—(ग) विस्तीर्णा ।

[३.६] १. पं इउ । २. ग ईदृश्यो । [३.७] १. पं उद्धृत्य । [३.८] १. ख ग °भूतायाः । २. पं तहो । ३. ख ग अव° । ४. पं °ओ । [३.९] १. पं °ग्घविओ । २. पं प्रशंसितः । ३. ग °निज्जरं । [३.१०] १. अबाहियए । २. पं तवहलु । ३. पं °कित्तो । ४. पं संकीर्ण ।

३.१०.१२ सुचित्तउ (पं सहचउ)—(ग पं) सुचित्तः साभिप्रायः धूर्त्त इत्यर्थः; नामें सूरसेण—(ख ग पं) सूरसेननाम्ना इभ्यः श्रेष्ठिः; धणड्ढउ—(ख ग पं) धनाढ्यः ।

३.१०.१४ सज्जिय—(ख ग पं) तीक्ष्णीकृतः ।

३.११.१ तेहिं—(ग) ताडवतलः; सकम्मभविणं(पं °भावेणं)—(ग पं) स्वकर्मणा स्वकीयमनोभ्यापारभवः प्रादुर्भावो यस्य ।

३.११.२ वाहि····घत्थु—(ख ग) व्याधिशतैः ग्रस्तः पीडितः (पं) गृहीतः; निप्पहु—(पं) अनादेयमूर्त्ति[:]; अज्जियपुव्वपाविणं—(ग पं) पूर्वोपार्जितपापकर्मणस्तेन ।

३.११.४ °वाउ—(ख ग पं) वातो व्याधिः ।

३.११.५ कंतहं—(ख ग) भार्याचतुष्कः ।

३.११.८ सहुट्ठउ—(ग) उष्ट[ओष्ठ]सहितम् ।

३.११.९ सखुद्दु—(ग) स क्षुद्रः; समुद्दु—(ख ग) स्वमुद्राङ्कितम् मुद्रासहितम् ।

३.११.१५ रइधावणु—(ग पं) सर्वेषां रुचेः प्रीतेर्वा जनकः ।

३.१२.१–२ नववसंतओ हणुवंतु व—(१) विरहा····वंतओ—(ग पं) विरहातुरेण रामेण हनुमान् आलोक्यमानः, नववसन्तस्तु विरहातुररामाभिरालोक्यमानः; (२) मारुयचुंबियासु—(ग पं) हनुमान् मारुता वायुना पित्रा चुम्बितास्यः चुम्बितमुखः, नववसन्तस्तु मारुता दक्षिणवायुना कामोद्रेकजनकेन चुम्बितदशदिशः ।

३.१२.५ मानहो मउखिज्जइ—(ख ग पं) मानस्य मदः क्षीयते ।

३.१२.६ करंति····सुम्मइं—(ग पं) गृहस्योपरि सुष्ठुमतिं अतिशयेन अनुरागबुद्धिं कुर्वन्ति ।

३.१२.८ पहावइ—(ख ग पं) प्रधावति; पहावइ—(ख ग पं) प्रभावती मति कान्तिमती नायिका ।

३.१२.९ विरहु निद्दाडइ—(ख ग पं) विरहं निर्द्धाटयति, स्फेटयति; (पं) निद्दाटइ—(पं) स्निग्धा-सजलअटवी ।

३.१२.१० मालइ····वज्जइ—(ग पं) भ्रमरो यथा वर्जयति मालतीकुसुमम्, पाटलादिकुसुमेषु तदा तस्य शक्तेः [आसक्तेः] ।

३.१२.१२ वेयल्लें—(ग पं) शीघ्रेण ।

३.१२.१३ °मंत····किं सुय—(ख ग पं) शुकपक्षसमानैः हरितपत्रैः, मुखसमानैः सुरक्तपुष्पैः भ्रान्तचित्तो जनः किंशुकाः एते इति जानाति ।

३.१२.१४ पुज्जसमारइ—(ख) समारति पूजा, समारइ—(ग) करोति; वट्टइ—(ग) वर्त्तते; मिहुणहं—(ग) मिथुनस्य स्त्रीपुरुषयुगलस्य; हियइ—(ग) हृदये; समारइ—(ग) समा रतिः, समाना रतिः, समद्युतिः इत्यर्थः; (ख) हियइ समारइ वट्टइ—हृदये रति प्रवर्त्तते ।

३.१२.१५ तुरयहिं····न चिज्जइ—(ग पं) आर्द्रस्वादिकाः चणकाः, न चिज्जइ—न भक्ष्यन्ते, तदा चणकानां प्रक्षरत्वात् तद्भक्षणात् तुरगानां शूलप्रकोपनात्; (ख) अल्लहज्जि न चिज्जइ—नीलचणका[:] न भक्ष्यते [°यन्ते] ।

---

५. पं °प्रायो । ६. पं नामइं । [३.११] १. ग °भावाः । २. ग °भावा । ३. पं रति । ४. पं प्रीतिर्वा । [३.१२] १. पं स्फोट° । २. पं भंतचित्तु जणु जाणइ किं सुय । ३. पं समपातः । ४. पं आद्रस्वादिका । ५. ग नाम । ६. पं भक्षते । ७. ग तुरं° । ८. पं मूल°

३.१२.१७ वल्लइ—(ख ग पं) वीणा ।

३.१२.१८ वसंतहो—(ख ग पं) वसन्तमासे, (ख) वा उपवासे; वसंतहो—(ख ग पं) तिष्ट[ठ]तः[१] ।

३.१२.१९ नायहो अक्कणहो—(ख ग पं) ज्वलननाम्नो नागस्य ।

३.१२.२० निवइ—(ग) नृपतिः; विहउ—(ग) विभवः; पयडीकयविहउ—(ख) प्रकट[ीकृत] विभवम् ।

३.१३.१ रविसेणें—(ख ग) सूरसेनेन ।

३.१३.२ जत्तुच्छवि—(ग) यात्रोत्सवे; रक्खणसहिउ—(ख ग) रक्षा[रक्षक]संयुक्तः ।

३.१३.३ अहिभवणु—(ख ग) नागभवनम् ।

३.१३.४ फणसच्छायहो—(ख पं) फणेषु[१] सती शोभना छाया रत्नदीप्तिः, शोभा वा यस्य[२] ।

३.१३.५ एत्तडउ करेज्जहि—(ग) एतावन्मात्रं कार्यं कुर्याः; म दिज्जहि—(ग) मा दद्याः ।

३.१३.७ सुमइ—(ग) सुमतिनामा ।

३.१३.८ तहिं—(ग) ताभिश्चतसृभिः स्त्रीभिः ।

३.१३.१२ ववगयसत्तउ—(ख ग पं) व्यपगतसत्त्वः ।

३.१३.१३ केवलवाहहो—(ख ग पं) केवलज्ञानधारकस्य ।

३.१३.१४ सुव्वय—(ख) व्रतिका [सुव्रता नाम आर्यिका]; चयारि वि कंतउ—(ख) चतुःभार्याः; निक्खंतउ—(ख ग पं) गृहीतदीक्षाः ।

३.१३.१६ एउ चयारि ... पियउ—(ग) एता चतस्रः प्रियाः जाताः ।

३.१४.४ विज्जुच्चरहिहाणु—(ग) विद्युच्चराभिधानम् ।

३.१४.६ °वरु (पं °धरु)—(ख ग पं) प्रधानम् ।

३.१४.७ पळयमहामरु—(ग पं) प्रलयकालमहावातः ।

३.१४.१३ जग्गंतो वि—(ग पं) जाग्रदपि ।

३.१४.२१ °भाविणि—(ख ग पं) प्रतिभासिनी[१] वल्लभेत्यर्थः ।

३.१४.२३ विणु निन्तिए—(ग) नीत्या विना ।

सन्धि—४

४.१.१ दट्ठुं न सहंति—(ख) दृष्टिं नावलोकते; दट्ठुं—(ग) द्रष्टुमवलोकयितुम् ।

४.१.४ मगहाहिउ—(ख) श्रेणिकु [°कः] ।

४.१.६ धाराहरं—(ख ग पं) मेघे[१] ।

४.१.८ एयहो—(ग) अर्हद्दासस्य; पियहो—(ग) प्रियायाः ।

---

१. पं तिष्ठततः । [३.१३] १. ग फणासु । २. पं यस्याः । [३.१४] १. ख °पिणी, पं °शिनी । [४.१] १. पं मेघ ।

४.१.९ अक्खु—(ख) अक्ष [यक्ष] कथा।

४.२.२ सइत्तउ—(ग) सचित्तः सावधानः; संतप्पिउ—(ख ग पं) नामेदं श्रेष्टि[ठ]नः; धणइत्तउ—(ग) धनाढ्यः।

४.२.५ जिणयास—जिनदासः।

४.२.७ ढक्कहुडुक्क—(ख ग) ढाक डिंडिम; समाणइ—(ख ग पं) सहिते; आवाणए—(ख पं) [1]मद्यपानगोष्ठ्या मिलित्वा[1] मद्यपानस्थाने।

४.२.१० छलय (ख) टौंटा नामम्; छलयनामजूयारें—(ग) छलकनामद्यूतकारेण।

४.२.११ पभणइ—(ग) जिनदासः [उत्तरं ददाति]; तउ—(ग) तव।

४.२.१३ विप्फारहिं—(ग पं) प्रयोगिभिः; हँबाइउ—(ख ग पं) गर्वं नीतः।

४.२.१५ पग्गिव""जायउ—(ख ग) प्रागेव प्रतिज्ञां कृत्वा ईर्ष्यां गतः।

४.२.१६ निरग्गलु—(ख ग पं) निवारकरहितम्; असिदुहियए—(ख ग पं) छुरिकया।

४.३.१ तं वइयरु—(ग) तं व्यतिकरं वृत्तान्तम्; अरुहयासें—(ख ग) अर्हद्दासेन भ्रात्रा [भ्रात्रा]।

४.३.२ अंतइं धोविवि—(ख) अन्तनिये (°पे° या °वं°) सिवि (?)

४.३.८ महभाइहि—(ख) वहउ भाइउ मदीयं मम भ्रातुः।

४.३.१२ भवजलु—(ख पं) संसारजाड्यम्[1]।

४.३.१४ कम्मा""दप्पिणिहिं ओसप्पिणिहिं—(ख) कर्माश्रवः [2]स एव[2] मरुत् वातः, तस्य दर्पः उत्कटता, सा विद्यते यस्यां सा अवसर्पिणी; कम्मा""दप्पिणिहिं—(ग पं) कर्मभिरभिभूतं[3] आशयं चित्तं तदेव[4] मरुत् वातः, तस्य दर्पः[5] उत्कटता सोऽस्याः (सोऽस्या अस्तीति) सा कर्माशयमरुद्दर्पिणी, तस्यां [अवसर्पिण्यां]।

४.३.१५ तमनियरु—(ग पं) अज्ञाननिकरः।

४.४.१२ जयसासण—(ख ग पं) प्राणिनां आश्वासकः, अथवा इहलोक-परलोकाकाशानिराकारकः।

४.४.१३ धर (पं धरा)—(ख ग पं) अभ्युद्धारकम्।

४.५.३ सहामासिरीए—(ख ग पं) सभाया भासनशीलया[1] शोभायमानया।

४.५.४ससामंतविंद्रो—(ख ग पं) सामन्तवृन्दसहितः।

४.५.५ सरंतो—(ग) स्मरन् सन्।

४.५.६ मयालोयणीणं—(ख ग पं) मृगवदा[°वत्°]लोचनीनाम्।

४.५.६ मणत्थोहयेणो—(ख ग पं) मन एव अर्थौघः तस्य स्तेनश्चोरः, परहृदयहारकः इत्यर्थः।

४.५.८ समुट्ठंतरावो—(ख ग पं) उच्छन्त् कोलाहलः।

४.५.९ रमाकीढवच्छो—(ख ग पं) लक्ष्म्यलङ्कृतवक्षस्कः।

४.५.९ पयापालणिट्ठो—(ख ग पं) प्रजापालनमिष्टं यस्य।

४.५.१३ तओ ससिरत्ते—(ख ग) तद्दिनात् सप्तमदिने।

[४.२] १. पं मद्यपानामिलित्वा गोष्ठ्या। [४.३] १. पं संसारं°। २. ग तदेव। ३. पं °भूत। ४. पं स एव। ५. पं दर्प्पं। [४.५] १. ख ग °शाकाया। २ पं °लंत।

४.५.१४ वासधामे—(ख ग पं) चित्रशालिकायाम् ।

४.५.१५ तमीसेसरामे—(ख ग पं) रात्रिशेषे रमणीये ।

४.५.१६ तूलियंके —(ख ग पं) तूलिचिह्ने तूलिमध्ये च ।

४.६.२ जोइय सव्वासं—(ख ग पं) उद्योतितसमस्तदिशम्[1]; सव्वासं—(ख ग पं) अग्निम् ।

४.६.४ कूइय—(ख ग पं) शब्दितः[2] ।

४.६.५ मयर····पायारं—(ग पं) मकरमत्स्यकच्छपानां प्रकाराः भेदाः यत्र; पारावारं—(ख ग पं) समुद्रम् ।

४.६.६ सुयणालोयं—(ख ग) स्वप्नालोकम् ।

४.६.१० परमत्थं—(ग) सत्यस्वरूपम्, (ख) परमं अत्युत्कृष्टं अर्थं पुत्रलाभलक्षणम् ।

४.६.११ जंबुफलालोए—(ख ग पं) जम्बूवृक्षफलालोकनेन ।

४.६.१३ रयणाहारो—(ख ग) रत्नानां धारकः, (पं) रत्नधारः ।

४.७.३ लालसइं—(ख ग पं) दोहदलम्पटानि ललितानि मृदुकोमलानीत्यर्थः; सालसइं—(ख ग पं) [1]आलस्ययुक्तानि ।

४.७.४ सिय—(ख ग पं) पाण्डुर ।

४.७.५ मरगय····सेहरिया—(ख ग पं) मरकतकलशैः शेखरिताः, अग्रभागे मरकतकलशोपेता इत्यर्थः ।

४.७.९ नव···पओहरिया—(ख ग पं) प्रावृड्लक्ष्म्यां नव पयसा अभिनवपानीयेन [2]पूर्णाः पयोधराः[3] मेघाः भवन्ति गर्भवत्यां तु नवपयसा दुग्धेन [2]पूर्णाः पयोधराः[3] स्तनाः[4] भवन्ति; आसन्न····सिरिया—तथा प्रावृड्लक्ष्म्यां आसन्नं ज्येष्ठानक्षत्रं भवति, गर्भवत्यां तु आसन्ना: ज्येष्ठाः[5] प्रसवनकर्मकुशलाः[6] वृद्धाः स्त्रियः[7] सूयिन्यो (?) भवन्ति ।

४.७.१० रोहिणिठिय····लंछणे—(ख ग) रोहिणीनक्षत्रे स्थिते चन्द्रे; मयलंछणे—(ख) सोमवासरे ।

४.७.११ पच्चूसे—(ग पं) प्रभाते; पसूय—(ग) प्रसूता ।

४.७.१३ कण्ण···°वडियमइ—(ग) कर्णयोः पतितमपि न श्रूयते ।

४.८.१ अलंकियनिसंतेण—(ख ग पं) अलङ्कृतं भूषितं निशान्तं राज्यवसानम्, राजगृहं वा येन सूर्येण, (ख) प्रभातेन, (ग) कुमारेण च; बालेण—(ग पं) तेन जम्बूस्वामिनाम्ना; पसरेण—(ग पं) प्रसरेण वा प्रभातेन वा ।

४.८.२ सूयाहरे—(ख ग पं) प्रसूतिगृहे; दिण्ण····निहित्ता—(ग) कृतदीपौघदीप्तिः निक्षिप्ता, (पं) दिनदीपौघप्रभाकृता तद्वत्; कथंभूतेन तेन बालेन प्रभातेन वा ? (४.८.१) तथा तरुणा····तेएण—तरुणश्चासौ अरुणश्चारक्तः स चासावादित्यश्च तस्यैव तेजो यस्य बालस्य प्रभातस्य [1]वा तेन ।

४.८.३ विद्धि····कोएहिं—(ग पं) वृद्धिवर्द्धमाने[वर्द्धापने] आगच्छद्भिः[2] लोकैः ।

४.८.४ दरमत्त—(पं) यौवनमदेन (ख ग पं) ईषन्मत्त [:] ।

४.८.५ महापट्टसंघट्ट—(ग पं) महामेलापकसङ्घट्टः ।

४.८.६ पंडो····नेत्तेहिं—(ख ग) पण्डोदेशोद्भवानि प्रभावन्ति नेत्रदेशोद्भवानि च तैः, (पं) पण्डोबालं चीरं प्रभावन्त नेत्राणि च, अथवा पण्डोदेशोद्भवानि च प्रभावन्तनेत्राणि च ।

३. पं °अंके । [४.६] १. पं °सव्वदिगं । २. पं °ता । [४.७] १. ख ग आलस° । २. पं पूर्णा । ३. पं °धरा । ४. पं स्तना । ५. पं ज्येष्टा । ६. पं °कुशला । ७. पं स्त्रिया । [४.८] १. ग च । २ °च्छतः ।

४.८.६ वियाणेसु—(ख ग पं) वितानेषु चन्द्रोदकेषु ।

४.८.७ सक्काउहायार—(ख ग पं) [3]पञ्चवर्णेन्द्रधनुषसदृशाकाराः ।[1]

४.८.१२ अकत्तिए—(ख ग) अकार्तिके; निरंतरं—(ख ग पं) अतिशयेन निरन्तरम्; निरब्भमंबरं—(ख ग) अभ्ररहिताकाशम् ।

४.८.१३ असारयं—(ख ग पं) विरूपकम्; खयं—(ख ग पं) नष्टम् ।

४.८.१४ रुक्खसंतई पफुल्लिया—(ग) सा वृक्षसन्ततिः प्रफुल्लिता; तई —(ख ग पं) तस्मिन् काले; वणासई सई—(ख ग पं) न केवलं वृक्षसन्ततिः, सई—सापि वनस्पतिरपि प्रकर्षेण पुष्पिता ।

४.८.१५ सुवण्ण... सासुरा सुरा—(ख ग पं) सुवर्ण इत्यादिः सुवर्णवृष्टिम्, किं लक्षणाम् ? (ग पं) भासुरां दीप्तां मुञ्चन्ति तथा सुराः शोभनं रा द्रव्यं मुञ्चन्ति, के ते ? सासुराः असुरकुमारैः समन्विताः सुराः देवाः ।

४.९.५ गुरु...सत्थइं—(ख ग पं) गुरुच्छायाः[1] निमित्तमात्रम् शास्त्राणि पुनः पठितानीव स्वयमेव तेन ज्ञातानि; (ग पं) तथा मन्त्राश्च शस्त्राण्यायुधानि स्वयमेव तेन ज्ञातानि; मंतत्थइं सत्थइं—(ख) तथा मन्त्राणि च शस्त्राणि च आयुधानि ।

४.९.६ नीसेसाउ...अब्भसियउ—(ग पं) तथा निःशेषाः समस्ताः कलाः अभ्यस्ताः; कथंभूताः कलाः ? संपाइय...रंजियउ—(ग पं) संपादितं च तत् त्रिवर्गफलं च धर्मार्थकामफलं तेन रसिकाश्चित्तानन्दजनकाः यास्ताः ।

४.९.९ तिहुयणभमि सइत्तिए—(ग पं) त्रैलोक्यभ्रमणे दत्तचित्तया ।

४.१०.४ कवणु...सुरकरि—(ग पं) [1]को [हस्ति] ? न कश्चिद्धस्ती[1] अस्ति यो यशसा धवलितः [2]सुरकरि-एरावणिद्धावल्यगुणेन न जातः; सा सरि...सुरसरि—तथा सा का सरित् नदी या यशसा धवलिता सुरसरित् गङ्गातुल्या धावल्यगुणेन न जाता ।

४.१०.५ तुहिणायलु—(ग) हे(हि)माचलः ।

४.१०.७ लुद्द (पं लोद्द)—(ग पं) लोद्रवृक्षः ।

४.१०.१० [3]मइं...मणु—(ग पं) मां दुःखभाजनं करोति; तत्किं द्वितीयमपि मनोऽस्ति ?

४.११-१,२ काहे वि...कवोले खित्त; पलुट्टइ...सुण्णु—(ग पं) विरहानलेन संप्रज्वलितः[1] स चासौ अश्रुजलौघश्च तेन [2]नु ल्लितः प्लावितः[2] स चासौ कपोले क्षिप्तो; हत्तो हस्तश्च तं हस्तं शून्यं चूडकरहितं कुर्वन्, पलट्टइ—प्रवर्तते (परिवर्तते ?); कथं पुनः हस्तस्य चूडकरहितत्वं संपन्नं ? (पं) अश्रुजलौघेन विरहानलसंपन्नाग्निवर्णेन ओहल्लितस्य (?) दन्तिमचूडकस्य अवस्यतिशयेन(?) चूर्णीकृतस्खलनोद्गतत्वात् ।

४.११.५ कंजपुंजु[3]—(ग) कमलशय्याम् (पं) पद्मशय्या ।

४.११.६ नीसा (°जु) हुंतु—(ख ग पं) निःश्वास एव [4]उल्लिचुणं अरहट्टघट्टिका विरहानलस्य बहिर्निक्षेपकं यदि नाऽभविष्यत्; बंदिसंदोह—(ग पं) [5]बन्दीनां नग्नाचार्याणां, संदोहः संघातः ।

४.११.८ कंठालु[6]—(ग पं) कमणि (?) ।

४.११.९ उक्कलियाए—(ग पं) उत्सुकया[7] ।

---

३. पं °धनुषः सदृशाः आकाशः । [४.९] १. ख ग °च्छायाः । [४.१०] १. पं कश्चिन्न हस्ति । २. ग °करी । ३. मइ । [४.११] १. ग °ज्वलितः । २. पं तुलित ओहप्ला° । ३. °पुंज । ४, पं चल्लिचुणं अरगर्त्तघटिका । ५. ग बंदिनां । ६. पं कंटाणलु । ७. पं °कयाः ।

४.११.१० कवरी—(पं) वेणी ।

४.११.१२ मयजल—(ग) प्रेमसलिलम्, (पं) शुक्रः ।

४.११.१४ नहे—(ख ग) नभसि ।

४.११.१५ नसावडइ—(ख) न संपद्यते ।

४.१२.३ मलंतकणय—(ख ग पं) कनकमाला[1] ।

४.१२.५ वयसवणजुत्ति—(ख) कुबेरसदृशम्, (ग) ऐश्वर्यादिना वैश्रवणयुक्तिरूपापत्तिर्यस्य ।

४.१२.६ रूवलच्छी—(ग पं) रूपश्रीः ।

४.१२.७ फेरियाउ—(ग पं) [2]हस्तेनोत्क्षिप्य भ्रामिताः[3] ।

४.१२.११ भासा''' लक्खु—(ख ग पं)—संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशस्वरूपं भाषात्रयं तल्लक्षणं च; लक्खु—(ख पं) लक्षणम्; दंसण[4]—(ग पं) दर्शनानि षड्; नअ—(ग पं) नयाः नैगमादयः सप्त ।

४.१२.१३ सचित्तु—चित्रेण सह ।

४.१३.१ नवल्लु—(ग) अभिनवः, (पं) अभिनवं अन्यजनासम्भवम् इति; उम्मीलइ—(ख ग पं) प्रकटीभवति ।

४.१३.३ आउंचिय—(ग पं) कुण्डलायमानः; अंगुलिताणावलि—(ग पं) अङ्गुलयः (पं त्राण-अङ्गुलिः) षोडशकाः तासां आवलिः[1] पङ्क्तिः ।

४.१३.७ नासावंसु—(ग पं) नासिका; अहरमुद्द—(ख ग पं) अधरस्वरूपम्; करमुद्दव—(ख ग पं) हस्तमुद्रिकेव ।

४.१३.८ धणुगुणु'''टंकारइ—(ग पं) तासां कोमलध्वनिद्वारेण मकरचिन्हः[2] कामः धनुषो गुणं दोरं टङ्कारयति, वादयतीव ।

४.१३.९ अच्छं—(ग पं) अच्छं पतलं निर्मलं वा ।

४.१३.१० रेहाइल्लु—(ग पं) रेखायुक्तः; कलु—(ग पं) मनोज्ञः; विजयसंखु—(ग पं) त्रिभुवनविजय-सूचकशङ्खः; नज्जइ—(ग पं) ज्ञायते ।

४.१३.११ विडंबइ—(ग पं) कदर्थयति ।

४.१३.१२ उक्कुक्किकरियसिहिण—(ग पं) [3]प्रथमतो उद्गतवन्तौ, सिहिण—स्तनौ; रइवइरायहो—(ग पं) कामस्य ।

४.१३.१३ गुलिया—(ख ग) 'गुलही' इति लोके ।

४.१३.१४ रोमंचिए[4]—(ग पं) रोमावल्या ।

४.१३.१६ रंभागब्भोरु व[5]—(ग पं) रंभा-कदली, तस्याः गर्भो (?) इव; रइरामहो—(पं) रत्याः रमणीयस्य; वम्महधामहो—(पं) मन्मथधवलगृहस्य-श्रोणिततलस्य ।

४.१३.१७ कुम्मायारु—(ग पं) कूर्मोन्नताकारम् ।

४.१३.१९ ताउ—(ग) ताडवतस्त्र; अहिट्ठिउ—(ग पं) अधिष्ठिता यत्र देवो स्थिताः प्रत्यक्षीभूता न यत्र दृष्टा इत्यर्थः ।

[४.१२] १. ख ग °मालां । २. पं हस्ते उत्क्षिप्य । ३. ग °ता । ४. पं वसुदंसण । [४.१३] १. पं °लि । २. ग °विधृ । ३. ग. प्रथम । ४. पं °वइ । ५. पं य ।

४.१४.१ मयणसयणं व—(ख ग पं) मदनस्य शयनं शय्या इव ।

४.१४.२ धारंति ताउ—(ख ग पं) ताः धरन्ति; विद्दुम⋯अहरं—(ग पं) ओष्ठम्, कथंभूतम् ? विद्दुम⋯दंतुरं—(ख ग पं) विद्रुमं प्रवालकं हीरकश्च प्रसिद्धः तयोः रुचिः दीप्तिः तया दन्तुरं कर्बुरं विद्रुमोपमाधरबिम्बं तदास्थानीयम्, हीरकतुल्या दन्तरुचिः पुष्पप्रकरस्थानीयेति ।

४.१४.५ चलणच्छविसाम—(ख ग पं) चरणानां पादानां छविः कान्तिः तया, साम—तुल्यता[1]; अहिलासि—(ग) अभिलाषेण, वाञ्छया; कमलेहिं—(ग) पद्मैः ।

४.१४.६ निययं....पमाणम्मि—(ग) निजमात्मानं क्षिप्त्वा कण्ठप्रमाणे ।

४.१४.७ सकरट्ठिलाइयाले—(ख ग पं) नाभेरधोरेखा सैव खातिका तया युक्ते; तिवलि—(ग पं) नाभेरुपरि रेखात्रयम् ।

४.१४.१० आयउ—(ग) एताः; निम्मविउ—(ग) निर्मिताः; पयावइ—(ग) ब्रह्मा ।

४.१४.११ निएवि—(ग) दृष्ट्वा; हसिय—(ख) उपहसितम्, (ग) उपहसति ।

४.१४.१२ नासंकमि—(ग पं) अस्माकमभं छमप्यमुमर्थं सर्वाङ्गः सहोत्पन्नं[2] वक्तुं (न) शक्नोमि ।

४.१४.१३ लग्गु—(ग पं) लग्नः; जोईर्में—(ग) ज्योतिष्केन ।

४.१५.१ पंचप्पयारु—(ख ग पं) पञ्चपरमेष्ठीभेदभिन्नं पञ्चप्रकारम् ।

४.१५.८ केरलि—(ख ग पं) केरलदेशोद्भवनायिकाः ।

४.१५.९ (ख) सउझहरि—(ख) सह्याचलस्य; कणिर—(ग) कण कण इति शब्दितः; कण्णावसंसु—(पं) ताडपत्रम् ।

४.१५.१० कोंतलि—(ग पं) कोन्तलदेशोद्भवा नायिकाः[1]; कोंतलभर—(ग पं) केशसंघातः ।

४.१५.११ उद्दीविय—(ख) उत्कृष्टं कृतम्; उद्दीविय[2]⋯विडंबु—(ग पं) उद्दीपितम् उत्कटं कृतं कामक्रीडनं यासां तास्च ता[3] रेवायाश्च[3] नर्मदाः तत्तद्देशोद्भवनायिकास्तासां विडम्बकः[4] कदर्थकः; पं नर्मदातटदेशो०⋯ ।

४.१५.१२ पयडिय दरोरुगाउ—(ख ग पं) ईषत् प्रकटित ऊरुदेशरूपा[5] येन ।

४.१५.१५ कोवइ—(ख ग पं) त्रुटीवानि ।

४.१६.३ तरुकदल—(ग पं) तिर्यक्प्रसृतपत्रावली; लवली—(ग पं) लवङ्ग; कयलीमुहं—(ग पं) कदलीप्रभृति ।

४.१६.५ नग्गोह—(ग पं) वटवृक्षः ।

४.१६.८ रइवराणत्ता—(ग पं) कामादिष्टा; अवयवण—(ग) व्यावृता, (पं) व्यावृत्य; माहवसिरि—(ग पं) वसन्तलक्ष्मीः ।

४.१६.१२ थण⋯विडंबिणि—(ख ग पं) स्तनरमणप्राग्भारादर्थिता; निहुअणकेलिहिं—(ख ग पं) कामक्रीडायाः ।

४.१७.१ अणुणइ—(ख ग पं) अनुकूलं करोति; परिहासा⋯भणइ—(ख ग पं) विशिष्टानां परिभाषणयोग्यानि पेशलानि मनोज्ञवचनानि भणति एवं वक्ष्यमाणा कन्या येन ।

[४.१४] १. ख ग समा°; पं समतुल्यता । २. पं °पोद्भवस्ये । [४.१५] १. पं °का । २. पं °विएं । ३. पं तरोघश्च । ४. पं विटं° । ५. पं °रूपः । [४.१६] १. पं निहुवण° केलिहिं ।

४.१७.२ कुरुओ[1]—(ख ग पं) वृक्षविशेषः; साणंदु[2] जं न[2] आलिंगिओ सि—(ख ग पं) यतः यस्मात्र [3]सानन्दो भवसि[3] आलिङ्गितः सन् ।

४.१७.३ केसररुक्ख—(ग पं) बकुलवृक्षः ।

४.१७.४ कलिओ····रुक्ख—(ग पं) आकलितोऽसि ज्ञातोऽसि त्वं अशोकवृक्ष इति; लइ—(ग पं) पूर्यतां; पाय····मुक्ख—(ग पं) यतः पादप्रहारेण त्वं मूर्ख हससि, विकससि ।

४.१७.५ विवरंमुयवयण—(ग पं) विपरीतवदना, पराङ्मुखा; पणयकुद्ध—(ग) प्रणयकोपा, (पं) सभया—भयरहित्यक्तप्रणयकोपाः [°कोपा] ।

४.१७.७ परियत्तवि—(ग) व्याघुटय ।

४.१७.८ विराइ—(ग पं) विराजते; धाइ—(ग पं) धावति ।

४.१७.९ नववहुवहे—(ग) नवीनकान्तायाः ।

४.१७.१२ आवाणए[4]—(ग पं) आपानके हि मद्यपा-मद्यपानमेलापकस्थाने ।

४.१७.१४ झिज्जंत····मयणु वयणु वहइ—(पं) मद्यपानरहितप्रदेशे प्रसरन्मदनवशादचलमवस्थितकोप-प्रदेशो वा रक्तं मुखं धरतीति ।

४.१७.१५ फलिहमय अवाणयचसउ—(ग पं) स्फटिककोशकपीयमानमद्यः ।

४.१७.१६ मयणाहि—(पं) कस्तूरिका ।

४.१७.१६-१७ मयणाहि····चंदसरिसु मुहुं किउ एउ कूडमंतु—(ग पं) निष्कलङ्कं मुखं कस्तूरिकातिलकं कृत्वा सकलङ्कं कृतमिति कूटमन्त्रोऽयम् ।

४.१७.२० लहासु—(ग पं) लडहिमा[5] ।

४.१७. १ संसत्त····पत्त—(ग पं) तव शिष्यत्वं सकलमप्युद्यानं प्राप्तम् ।

४.१७.२२ कलइ—(ग पं) आकलयति ।

४.१७.२३ वंकाकावहिं····पडिक्खलइ—(ग पं) परिखलइ वक्रोक्त्या अर्थान्तरे योजयति ।

४.१८.१ नच्चंता मोरा—(ग पं) जम्बूस्वामिनोऽभिप्राये मयूराः, नायिकया च तद्वचनं छलितम्, त्वदीया नृत्यन्तमिति, 'मोरा' शब्दो हि मयूरे आत्मीये च वर्त्तत इति ।

४.१८.२ कारंडाण····रिडघरिणिहुं—(ग पं) कारण्डानां विषवानां पङ्क्ति चेत्पृच्छसि[1] । या तव रिपुगृहिणीनामिति छलोक्त्या उत्तरं [2]दत्तम्

४.१८.३ सरु····चावे वहइ—(ग पं) सरु—शब्दः कोकिलायाः कोमल एव वहति प्रवर्त्तते इति स्वामिनो वचः, तच्छलोक्त्या प्रश्नं करोति, कः शरः कोमल एव वधते इति चेत् ? उत्तरमाह—(ग पं) यं शरं मदनश्चटापितं चापे गृह्णाति स पुष्पमयबाणत्वात् कोमलोऽपि वधते ।

४.१८.४ एयं च····जणाण—(ग पं) इदं चारवृक्षवनं[3] जानीहीति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः प्रिया-लापं[4] प्रियतमस्य आलपनं संभाषणं दुर्लभं दुर्भगजनानाम् ।

४.१८.५ सारंगं····पडहु गच्छि—(ग पं) सारंगं-हरिणं गता, सारंगी-हरिणी, दक्षा-धूर्त्ता इति (पं) स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः यदि सारङ्गो उत्तमाङ्गं येना सारङ्गं गता भूमिं प्रविष्टा ततः सा नृत्यतु, पटहं वादय त्वं ! गच्छ !

[४.१७] १. पं कुरवो । २. पं जन्न । ३. पं सानंद भि । ४. पं °णइं । ५. ग °हिम । [४.१८] १. पं °से । २. दत्तः । ३. पं चारवनं वृक्षः । ४. °लवणं ।

४.१८.६ पिय····कमधेणु—इन्द्रगोपकान् रक्तकीटकविशेषान् विगतरेणून् निर्मलान्[5] पश्य पश्येति[6] स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः यदि इन्द्रगोः कामधेनुस्तस्याः पादान् पश्यसि विरेणून्—परिस्फुटान् तदा कङ्कपूर्यताम्, कामधेनुरियमिति, मग्गि दुद्धु—याचय दुग्धम्।

४.१८.७ जले····जलम्मि मंदु—(ग पं) जले कङ्कः बकः, हंसो चेय, हंसो यद्यपि स न भवति, तथापि मन्दमन्दगतिः, क्व ? जलम्मि—जले, इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः तु हंसो चिवय स्वमेव स कङ्कः कं परमात्मा सुखं (पं स्वरूपं) कोति (पं कोपति) प्रतिपादयतीति कङ्कः, जलम्मि मंदु—जडे जडस्वरूपे मन्दः निरन्तर[7] [°तर]जडस्वरूपमित्यर्थः।

४.१८.८ सुउ....करहु नाह—(ग पं) शुकः कोटो विशेषेण जलातिरनत्र [अत्र] का बाधा का पीडा इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः—यदि सुतः पुत्रो विलपति, हे नाथ! तदा संठवि—संस्थाप्य श्रद्धां कुरु, यतः इदं परकीयकार्यं न भवति।

४.१८.९ म हे सरु····णिड्डणहाणु—(ग पं) माघमासे सरः कमलसरोवरः शिशिरेण हिमेन दग्धं जानीहि त्वमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः—माहेश्वरो महेश्वरभक्तः[8] गड्डुकादिकं ददाति[10] यदि शीतेन म्रियते[11] तदा मरिहिइ—त्रिदण्डी अतिशयेन म्रियतां[12] यतो यस्य नित्यमेव त्रिसन्ध्यास्नानम्।

४.१८.१० सुद्धिहे····कंत कंतावसाणु—(ग पं) तापसानां शुद्धेः कारणं कं-पानीयमिति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः कंतावसाण[13]–कान्तावशवर्तिना रागिणां तापसानां जलस्नानमात्रेण का शुद्धिर्न कदाचिदपीत्यर्थः [कावि० ?]।

४.१८.११ केरिस ····हरिणंकरेह—(ग पं) हे तन्वङ्गि त्वं अथ च कीदृशा वक्रा ? अतिवक्रासीत्यर्थः[14] इति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः–हे नाथ यासौ तन्वङ्गी अतिवक्रा च सा हरिणाङ्कस्य चन्द्रस्य रेखा द्वितीयाचन्द्रस्य कलेत्यर्थः न चाहं तथाभूता इति।

४.१८.१२-१३ (पं) दोहडा —गोरी····सुकंति। तं वा····न भंति॥—(ग पं) गोरी गौरवर्णताम्राधरेण आरक्तौष्ठेन सुकान्ता सुष्ठुरमणीया केवलं न भवति, किन्तु सामली—श्यामवर्णाताम्राधरेण सुकान्ता भवतीति स्वामिनो वचः, तत्र छलोक्तिः—तंबा गौः, वसहें—वृषभेण, रमिय—सेविता, न पुनः तम्बा हरेण महेश्वरेण सेविता; हरेण पुनर्गौरी रमिता अत्रार्थे न कदाचिदपि [कावि० ?] भ्रान्तिः, सर्वथा सुप्रसिद्धमेतत्।

४.१८.१४-१५ जइ साहिवि····सिंगाररसु। दूरंतरे····विसयकसु—(ग० पं०) तत्रोद्यानवने क्रीडतां[15] जम्बूस्वामिप्रभृतीनां योऽसौ शृङ्गाररसः, मदनोऽपि तं यदि साहवि सक्कइ—वर्णयितुं शक्नोति, अथवा सोऽपि न शक्नोत्येव, दूरन्तरे तिष्ठतु,[16] आरिसु[17]—अभ्युत्पन्नः[18] अस्मदृशः कविः[19] कथं परिजानाति, विसयकसु— —(ख ग पं) शृङ्गारविषयविभागनिश्चयम्।

४.१९.१ कामवेए—(ग पं) कामस्य वेगे[1] आवेशे[2] अथवा कामवेदे[3] गुणरताकादिकामशास्त्रप्रतिपादके[4] शास्त्रे[5]।

४.१९.६ विसइ—(ग पं) प्रविशति; वरंगु—(ख ग पं) नितम्बप्रदेशः।

४.१९.८ विवरीयसुरउ—(ख ग पं) विपरीतरतं[6] (पं °रतं)।

४.१९.१० तलवाइहिं····सरीरि—(ख ग पं) तलवाइहिं—तरन्तो शरीरलघुत्वं स्थापयन्ती।

४.१९.११ उरसोल्लिण[7]····तरंग(ख ग पं) हृदयेन पानीयपिल्लणम्।

५. पं पश्यामीति। ६. पं °यंतीति। ७. पं जल°। ८. निरंतरजलस्व°। ९. पं °भक्तः। १०. पं °मि। ११. पं मृयतं। १२. पं० मृयते। १३. पं °वसान। १४. पं अतीववक्रा°। १५. पं °ता। १६. पं तिष्टतु। १७. पं °सो। १८. पं °पन्नो। १९. पं कवि। [४.१९] १. पं वेगः। २. पं °शः। ३. पं °वेदो। ४. पं °पादकं। ५. पं शास्त्रं। ६. ख ग °रत। ७. पं °सेल्लिण।

४.१९.१६ आवास धवलगु—(ख ग) आवासं धवलगृहम् (पं) आवासधवलगृहे ।

४.१९.१८ जलकल्लोल.....परिहणाहे—(ख ग पं) जलकल्लोलैरितस्ततः कृत्तवस्त्रायाः ।

४.२०.२ सइंछए—(ग) स्वेच्छया; पोत्तइं—(ख ग पं) परिधानवस्त्राणि ।

४.२०.९ हुलण—(ग पं) वेधः ।

४.२१.२ दालिमालि—(ग पं) दाडिमपङ्क्तिः; मंदमार—(ग पं) घनहन्दवृक्षाः ।

४.२१.४ वारिकोलकोलिज्जमाण—(ग पं) जलकल्लोलैरितस्ततः क्षिप्यमाणाः[1] ।

४.२१.५ भूमिभायसूडिएहिं—(ग पं) त्रोटयित्वा भूमिभागे आस्फालितैः; वंकएहिं—(ग) अड्डवियड्डैः, (पं) अडवियाडे (हिंदी-आड़े-टेढ़े); कुल्लतल्ल—(ग पं) कुल्यासारिणी, (पं) तल्ल—छिल्लराणि (हिन्दी-छिछला)

४.२१.७ वाहथट्ट—(ख ग पं) घोटकसंघाताः[2] ।

४.२१.११ दुम्मियंग—(ग पं) दुःखिताङ्गा[3] ।

४.२१.११ गुंठि (गोट्टं)—(ख ग पं) भारः ।

४.२१.१२ तरट्टिलोट्टिया—नवयौवना,[4] तरङ्गहृका; विसट्टवत्थ—(ख ग पं) नग्ना ।

४.२१.१७ सदाणं—(ख ग पं) समदम् ।

४.२१.१८ वेसासुरंगं—(ख ग पं) वेश्यायां सुरङ्गमस्यासक्तम् ।

४.२१.१९ पई पत्तिणा—(ख ग पं) प्रभुः[5] भृत्येन ।

४.२१.२० वियाणं—(ख ग पं) मणिवितानम् । अथामं—(ख ग पं) सामर्थ्यरहितम्; बलिट्ठेन—(ख ग पं) बलवता ।

४.२२.१ नागेण—(ख ग पं) नागेन हस्तिना ।

४.२२.३ कियदूरवीरेण पडिकारेण—(ख ग पं) दूरीकृतप्रतीकारेण सुभटेन वा ।

४.२२.४ डमरेण —(ख ग पं) भयानकेन ।

४.२२.५ चूरियभुयंगेण—(ख ग पं) निर्दलितशेषेण ।

४.२२.६ दुव्वारवारस्स—(ख ग पं) दुर्वाराणां दुष्टानां (पं दुर्वाराणामयज्ञानां ?) वारकस्य विजेतुः ।

४.२२.१० रणरंगलुद्धेण—(ग पं) सङ्ग्रामभूमौ जयकाङ्क्षिणा[1] ।

४.२२.१३ बंधं जणंतेण—(ख ग पं) करबन्धं कुर्वता ।

४.२२.१७ कंडुइय—(ख ग पं) आपीडितः; [2]धुयकंधु—(ख ग पं) कम्पितस्कन्धः; विहडियसिरावंधु—(ख ग पं) गलितदर्पत्वात् विघटितशिराबन्धः, संजातशिथिलसर्वगात्र इत्यर्थः ।

टिप्पण सन्धि ५

५.१.३ आवण्णं—(ख ग) प्राप्तम् ।

५.१.४ नियत्तं—(ख ग) प्रवर्तितम् ।

५.१.५ बालु—(ख ग) जम्बूस्वामी ।

[४.२१] १. पं °माण । २. ख ग °संघातः । ३. पं °तांगाः । ४. पं °वनाः । ५. पं प्रभु । [४.२२] १. पं °कांक्षिणाः । २. पं० धुव° ।

५.१.८ एक्कु पासि—(ख ग पं) एकस्मिन् पार्श्वे ।

५.१.१४ पायत्थवणफलएण—(ख ग पं) पादपृष्टे[ठे]न ।

५.१.१५ नक्खत्तसामिणा—(ख ग पं) नक्षत्रस्वामिना, चन्द्रेण ।

५.१.१८ रायसासणं—(ख ग पं) आज्ञा शासनम् ।

५.१.१६ राय''''समीहमाण—(ख ग पं) आज्ञां प्रतीच्छन् ।

५.१.२० समोसारणा—(ख ग) दूरीकरण ।

५.१.२१ सत्थाणमुवविसंत—(ख ग पं) स्वकीयस्थाने उपविशन्तः ।

५.१.३० सुहि—(ख ग) सज्जन [:] ।

५.२.४ मारुयवेयवहुत्तु—(ख ग पं) समीरणवेगादधिकवेगम् ।

५.२.६ हुउं गयणगइ—(ख ग) गगनगतिरहम् ।

५.२.११ उक्कलु—(ख पं) उत्सुकः ।

५.२.१४ अणंगु थवइ—(ख ग पं) कामदेवो स्थयति ।

५.२.१९ मुण्डमाला—(ख ग पं) मुकुटः[1] ।

५.२.२३ मियंकें—(ग पं) मृगाङ्केन विद्याधरेण; देवउ—(ग) दातव्यम् ।

५.३.१ असमसाहस—(पं अह-अथ, सुसाहसु)—(ग पं) साध्वससहितः ।

५.३.८ जिण''''संघट्टणाइं—(ग पं) जिनभवनरमणीयत्वम्, (पं जिनभवने रमणं रमणीयत्वं) तेन संघट्टणं संबन्धो येषाम्; रवण—(ख) रमणीयत्वम् ।

५.३.९ निव्वासियाइं—(ख ग पं) उद्वासितानि, नग्नीकृतानि वा ।

५.३.१० रामइं—(ख ग पं) रमणीयानि ।

५.३.११ मारियाइं—(ख ग पं) मरणिकया मृतानि ।

५.३.१२ कयनीडइं—(ग पं) कृता निनाहलादिभिः पक्षिभिर्वा नीडानि गृहाणि येषु ।

५.३.१३ तरुतीरइं—(ग पं) तरवस्तीरेषु तटेषु येषाम् ।

५.३.१५ परिरक्खियछलु—(ख ग पं) परिरक्षितं छलं पौरुषं येन; वयणं यहं—(ख ग पं) लोकवाच्यतया ।

५.४.४ गोहत्तणु—(ग) पौरुषत्वम्; सव्वाहसु—सर्वा[र्व?]स्यापि ।

५.४.५ मणुसहय—(ग) पौरुषत्वम् ।

५.४.८ पासंगिउ—(ख ग पं) प्रसंगायातम्; कहुं—(ख ग पं) संक्षेपेण ।

५.४.९ समउ—(ग) समयोऽवसरः; सत्तुवरं—(ख ग पं) वैरिपर्वतं; पत्ती—(ग) दत्तम् ।

५.४.११ साहेज्जउ—(ग) सहायी ।

५.४.१३ विज्जु—(ख ग) वैद्यः; सप्पु—(ख ग) सर्पः ।

५.४.१४ गढु—(ख पं) व्यूहं; सयदिउढु—(ख ग) १५० ।

५.४.१७ अणुबलु (ख ग पं) साहाय्यनिमित्तं सैन्यम् ।

[५.२] १ ख ग °टाः ।

५.४.१८ समियंकु— (ग पं) मृगाङ्केन सह ।

५.५.३ सव्वासें—(ख ग) अग्नौ ।

५.५.५ कप्पंतुद्दंतु[1] जलु—(ग पं) कल्पान्ते प्रलयकाले भ्रमितमूर्द्धकल्लोलमालाकुलितं जलं यत्र ।

५.५.६ समं भासिरेण—(ख ग पं) भाषणशीलेन विद्याधरेण, समं—सह ।

५.५.८ विहप्पयस्स (ख ग पं) राहोः ।

५.५.९ वंकस्स पक्खिरायस्स—(ख ग पं) दुष्टाशयस्य गरुडस्य ।

५.५.११ भूईनिहाणो[2]—(ख ग पं) भस्मविधानः ।

५.५.१३ खेयरो—(ख) गगनगति नाम खचरः; रायराणी –(ग) राजराणीम्; (ग) देवि पाणि—(ग) दत्वा हस्तम् ।

५.५.१५ खणद्धेन दिट्ठु सहाए—(ग पं) श्रेणिकस्य सभया क्षणार्द्धेन विमानं दृष्टम् ।

५.५.१६ चिन्तुत्तालें (ग पं) उत्सुकचित्तेन ।

५.५.१७ निवेण—(ख ग) श्रेणिकेन ।

५.६.१ सरस[1]—(ख ग पं) सद्यःमत्सैन्यविस्ताः[2] ।

५.६.२ तंतवाउदलनिविड—(ग) सैन्यनिविडाः; भडथड—(ख पं) भटसंघातः, (ग) भट्टसंघातम्, (पं) भडसंघातम् ।

५.६.३ आइट्ट—(ख ग पं) आदिष्टाः आकृष्टा[3] वा शीघ्रं प्रयाणके चलन्तु भवन्तु इत्यर्थः; सामग्गिवावड[4]—(ग पं) प्रयाणकसामग्रीव्यापृताः[5] व्याकुला वा ।

५.६.५ संवाहियकरकट्ट—(ख ग पं) संवाहितं चालितम्, प्रयाणकयोग्यं वस्तु (ख) °ज्ञातं येषां ते ।

५.६.७ पहय'''दडिडंवरं—(ग पं) प्रहताश्च पटुपटहाश्च तेभ्यः प्रतिरडिताः[6] प्रतिवादिताः अपि प्रतिशब्दिताः दडिडंबराः दमडाख्याः वाद्यविशेषाः ।

५.६.८ सालकंसाल—(ग पं)विस्तीर्णकंसाल ।

५.६.९ टंकार—(ग पं) शब्दः ।

५.६.१० 'नाइयं—(ग पं) निनादयुक्तम्[7]; संदिण्णसमघाइयं—(ग पं) दत्तसमहस्तम् ।

६.११.१४ (ग पं) थगगदुगे'''विस्तारियं—(ग पं) सज्जियं—एतैः शब्दैः सज्जितं[1]—प्रगुणीकृतं[2] यत् एतैः प्रागुक्तैः[3]प्रगदितशब्दैः प्रहतसमहस्तेन सुप्रशस्तं यथा भवति एवं विस्तारितः ।

५.७.४ हरिखुर'''समुग्गरणउ[1]—हरिखुरैर्घोटकनखैः क्षुण्णतोच्छलितेन[2] समुत्पन्नेन गगनतले गतेन ।

५.७.६ जइल्लु—(ख ग पं) जयनशीलः जययुक्तः; मइल्लु[3]—(ख ग पं) मलिनः ।

५.७.९ डरिल्लु--(ख ग) भयानकः; तंडविय—(ख) ताणितम् (ग) ताडित (पं) ताडितम् ।

५.७.१० पालिद्धयालि—(ख ग पं) वंशलग्नचीरं; गरिल्लु—(ग पं) महागौरवोपेतः ।

५.७.११ कसहयहरिल्लु—(ग) तर्जनहुलादवः ।

[५.५] १ पं °धंत । २ पं °निहाणे । [५.६] १ पं °सा । २ पं °वित्ता । ३ पं °ष्टः । ४ पं °ष्ट । ५ पं °वावडा । ६ पं सामग्र्यं व्यावृताः । ७ पं °रट्टिताः । ८ पं नाययं । ९ पं °युक्तः । १० पं °घाययं । [५.६] १ पं °तां । २ पं °कृतां । ३ पं पडगति° । [५.७] १ पं °खमुण्णएण । २ पं °च्छालितेन । ३ पं मयल्लु ।

५.७.१२ सिरिजूड''''वरिल्लु—(ग पं) सिरो जूडे बद्धं योरिकैरेल्ल उपरितनवस्त्रं यत्र ।

५.७.१३ पयचप्पण''''तडिल्ल—(ग पं) [4]पादयोश्चम्पणेन कृतानि त्रिफलानि नद्योभयतटानि यानि तैरिल्लः युक्तः ।

५.७.१४ तट्ट—(ग पं) त्रस्तः; नट्ठ—(ग पं) मग्नः ।

५.७.१६ विबंधणोए—(ग पं) विगतबन्धननिमित्तपुरुषया असहायया इत्यर्थः ।

५.७.२० मुक्कराहु—(ग पं) मुक्ताक्रन्दः ।

५.७.२१ मज्जयट्टु—(ग) मद्यवपकः (पं गव चटसः) मद्यव्रता वा ।

५.७.२४ हत्थियरोहु—(ग) गजारोहकः[5] ।

५.७.२६ कारणु''''महल्लउ—(ख ग पं) महदपि स्त्रीपराभवादिलक्षणं[6] कारणं, महल्लउ—अतिशयेन महत् ।

५.८.७ वंसिज्झंसी—(पं) वंसज्झालो समूहः ।

५.८.१४ करिकाणणा—(ग पं) हस्तिकदर्थिकाकाः[1] ।

५.८.१५ वग्घेहिं गुंजारिया—(ग पं) व्याघ्रशासिता[2] ।

५.८.१६ कोलउल—(ग पं) सूकरसंघाताः ।

५.८.२५ विसरिस—(ग पं) परस्परानुगतः ।

५.८.२६ हकभूमिल्लील—(ग पं) कुष्टमुक्षेत्रलीलाम्[3] । संपच्च''''नील—(ग पं) संपच्यमानगोधूमैर्नीला भवति; संपच्यमानगवां[4] धूमैश्च[5] नीला भवति ।

५.८.३१ विंज्झाडई भारहरणभूमि व :—

(i) सरहभीम—(ख ग पं) भारतरणभूमिः सरथा रथसमन्विता, भीसा—भयानका; विन्ध्याटवी तु शरभैष्टापदैर्भयानका[6] ।

(ii) हरि''''दीस—(ख ग पं) भारतरणभूमौ हरिर्वासुदेवः, अर्जुनो, नकुलः शिखण्डी च पाण्डवबले राजपुत्रविशेषाः एते दृश्या भवन्ति; विन्ध्याटव्यां तु हरिः—सिंहः, अर्जुनो—वृक्षविशेषः, नकुलः—प्रसिद्धः, शिखण्डी—मयूरः एते दृश्या भवन्ति ।

५.८.३२ (iii) गुरु''''चार—(ख ग पं) भारतरणभूमौ गुरुर्द्रोणाचार्यः तत्पुत्रः अश्वत्थामा, कलिङ्गः कलिङ्गदेशाधिपतिः राजा, एतेषां चारः—चेष्टा भवति; विन्ध्याटव्यां तु गुरुर्महान्, अश्वत्थः—पिप्पलः, आमः—आर्द्रः,[7] कलिंगा—वत्सः, चाराः वृक्षविशेषाः भवन्ति ।

(iv) गयगज्जिर''''सार—(ख ग पं) भारतरणभूमौ गजगर्जिताः[8] सारा भवन्ति, सशराः बाणसमन्विताः, महीशाः राजानः, तैः सारा भवन्ति यत्र; विन्ध्याटव्यां तु गजगर्जिताः,[9] ससरा—सरोवरसमन्विताः, महीससारा—महिषाः सारा भवन्ति यस्याम् ।

५.८.३३ विंज्झाडई लंकानयरी व :—

(i) सरावणीय—(ख ग पं) लङ्का रावणसहिता भवति; विन्ध्याटवी तु सरावणीया—रावणवृक्षविशेषसहिता भवति ।

---

४ पं पादौ चप्प° । ५ पं महिला (?) । ६ पं °लक्षण । [५.८] १ पं °कदर्थिकः । २ पं °वासिताः । ३ पं °लीला । ४ पं गवं । ५ प धूमैः । ६ पं °पदैर्भीसा । ७ पं सार्द्रः । ८ ख °गर्जिता । ९ पं °गर्जिरा ।

(ii) चंदणहिं····°वणीय—(ख ग पं) लङ्कानगरी चन्दनआचारेण चेष्टाविशेषेण कलहकारिणी भवति; विन्ध्याटवी तु चन्दनैः चन्दनवृक्षविशेषै[10]श्चारैः चारवृक्षैः वा मनोज्ञैः कलभैः लघुहस्तीभिर्युक्ता[10] भवति ।

५.८.३४ (iii) सपलास····थट्ट—(ख ग पं) लङ्कानगरी सपलाशा, पलाशैः राक्षसैर्युक्ता,[11] सकाञ्चना, [12]अक्षयःकुमारो रावणपुत्रस्तेन[13] युक्ता; विन्ध्याटवी तु पलाशवृक्षसमन्विता, सकाञ्चना-मदनवृक्षविशेषसहिता, अक्षाः –विभीतकवृक्षाः ते तच्छा [तत्स्था ?] यत्र ।

(iv) सविहीसण····रमट्ट—(ख ग पं) लङ्कानगरी विभीषणसहिता भवति, विभीषणो रावण-भ्राता, कइउल—कपीनां वानराणां, कवीनां काव्यकर्तृणां वा कुलानि—संघाताः (पं कुलैः संघातैः) तः समन्विता, फलानि रसाढ्यानि, [14]एतैः सहिता;[14] विन्ध्याटवी तु सविहीसणा —नाना विभीषिकाभिः सहिता भवति, वानरसंघाताः [संघातैः सहिता] फलरसाढ्या च ।

५.८.३५ विंझाडई कंचायणिव्व :—

(i) ढ्रियकसणकाय—(ख ग पं) कात्यायनी-चामुण्डा घृतकृष्णकाया भवति; विन्ध्याटवी तु [15]घृतकृष्णकाकाः ।

(ii) सदूलविहारिणि—(ख ग पं) कात्यायनी तु शार्दूलेन वाहनेन विहारिणी—विहरणशीला; विन्ध्याटवी तु शार्दूला विहारिणो यस्याम् ।

(iii) मुक्कनाय—(ख ग पं) कात्यायनी मुक्तनादा, मुक्तफेत्कारा; विन्ध्याटवी नानाजीवै-र्मुक्तनादा च ।

५.८.३६ विंझाडई तिनयणतणुव्व :—

(i) दारुवणछंद—(ग पं) त्रिनयनो महादेवस्तस्य तनुः, छन्देन-गौर्य्यभिप्रायेण नानाछदैर्व्यर्नर्त्तितः, दारा (पं दारु) भवानी [16]गौरी, तस्याः दारुणिकः नृत्यो भवति; विन्ध्याटवी तु दारुभिः काष्ठैः पवनैः पलाशैः छंदा—प्रच्छादिता ।

(ii) गिरिसुय····खंडयंद—(ख ग पं) त्रिनयनतनु गिरिसुतायाः[17] गौर्याः, जटाभिः कन्दलैः—कपालखण्डैः, खण्डचन्द्रेण च सहिता[°तः?]भवति; विन्ध्याटवी तु गिरिभिः, शुकैः, जटाभिर्नामूलैः कन्दलैरङ्कुरविशेषैः, खण्डकन्दैश्च सहिता भवति ।

५.८.३७ परिसक्कइ—(ख ग पं) अग्रतनभूमिमाक्रामति; छइल्लु—(ख ग पं) विदग्धः ।

५.९.२ गामार वि—(ग पं) कुटुम्बिका अपि ।

५.९.४-५ जहिं गोवाल व गोवाल—(ग पं) यत्र देशे गोपालाः गवां रक्षकाः,[1] गोपाला इव–राजान इव ।

(i) महिसी····जहिं—(ग पं) राजानो हि महिष्यां अग्रमहादेव्यां बद्धस्नेहाः भवन्ति गोपालास्तु महिष्यां धेन्वां च बद्धस्नेहा भवन्ति ।

(ii) कमलायरगयसाल—(ग पं) तथा राजानः कमलाकराः कमलाढ्याः लक्ष्म्याः आकराः गजशालायुक्ताश्च भवन्ति; गोपालास्तु कमलाकरात्[2] पद्मिनीखण्डमण्डितसरोवरात् शालीन-विशालगुणान्[3] गताः महिषीणां तत्र रतिसद्भावात् (?) ।

५.९.७ कंदोट्टइं—(ख ग पं) पद्मानि, कमलानि ।

---

१० पं श्चार्भौः कलभो लघु° । ११ पं °युक्तः । १२ पं अक्षय° । १३ पं °पुत्रस्तयो । १४ पं यत्र । १५ पं घृताः । १६ पं गौर्या । १७ ख ग °सुतया । [५.९] १ ग °णाः । २ पं °कराः । ३ पं °गुण ।

५.९.८ कोरेहिं—(ग पं) कीरैः शुकैः; ढ्रिया—आगताः [°ता] ।

५.६.६ कणइल्ल—(ख ग) शुकाः, (पं)शुकः ।

५.६.१२ जनवेस—(ख ग पं) जनवेषो, जनानां वेषः शरीराकारः ।

५.९.१४ कालिया—(ख ग पं) सन्मानिताः[४] ।

५.६.१५-१६ सेविज्जइ कंतारउ—(ख ग पं) कान्तारतम्, गण्डकविशेषइव सेव्यते; कथंभूतं तत् ? कोमल-बहुरसु—(ग पं) तदुभयकोमलं बहुरसं च; किं कृत्वा ? मेल्लिवि (ख ग पं) परित्यज्य; परवसु—(ख पं) विगतस्वादुरति; किं तत् ? वेसायउ—(ख ग पं) वेश्यारतम्; किमिव ? उच्छुव—(ख ग पं) इक्षुरिव; कथंभूतम् तत्—(पं) विगतस्वादं इक्षुस्वरूपं वेश्यास्वरूपं च; कयथक्कउ—(ख ग पं) क्रये मूल्ये स्थितं च उभयं च; तथा निट्ठुरा—(ख ग पं) निष्ठुरं, निस्नेहं (पं निस्नेहलं) अकोमलं च; वंकउ—(ख ग पं) वक्रम्, वैशिकग्रानम्, (पं रसिकग्रानम्) अग्रांजलं च; गंट्ठिहुं भरिउ—(ख ग पं) ग्रन्थिभिः हृदयकुटिलभावैः प्रचुरपर्वविशेषइव भृतम्; सखारउ[५]—(ख ग पं) पूर्वभागं पश्चाद्भागं उभय-मपि सेव्यमानं मधुररसं न भवति ।

५.१०.१ संदण—(ग) रथाः, (पं) रथः ।

५.१०.४ मणिट्ठ—(ग पं) चित्ताह्लादजनका ।

५.१०.८ पुळिण''''कच्छो (ग पं) पुलिनस्थानेषु निवेशिता कच्छो यथा ।

५.१०.६ गंधद्धिर—(ग) गन्धे अत्याश[स]क्ताः ; (पं) गंधधिब—(पं) स्वं चिरं गन्धेनाऽतिशयेन अत्याश[स]क्ताः ।

५.१०.१० चहरी—(ख ग पं) दरमलिता ।

५.१०.११ [१]कुरुकगिरिंदु—(ग पं) कुरुकपर्वतः[२]; निवबाहिणि—नृपसेना ।

५.१०.१८ सूइज्जइ—(ग पं) सूच्यते ।

५.१०.२२ बल्लि (पं वेल्लि)—(ग पं) मंदुरा ।

५.१०.२४ रेवाणए कणए—(ग पं) रेवानदीसमीपे ।

५.११.६ (पं) गुणेल्लिका—(पं) गुणतणिका ।

५.११.१० (पं) आर्या; बमालु—(ख ग पं) कोलाहलः ।

५.११.१६ तमारि—(ख ग पं) आदित्यः ।

५.११.१६ रयणचूलु—(ख ग) रत्नशेखरः ।

५.११.२२ पहुणउ—(ख ग) शीघ्रगतिः ।

५.१२.८ समत्ता—(ख ग) समस्ताः सर्वाः ।

५.१२.१४ करजुयलु'''कमलकंबु—(ख ग पं) करकमलेषु उद्भासितौ लक्ष्यतया शोभितौ, कमलकम्बु-पद्मशङ्खौ यस्य ।

५.१२.१८ पीणखंधु—(ख ग पं) उन्नतस्कन्धः ।

५.१२.२० रेहा न होइ—(ग पं) हुंकारः चिह्नः न भवति ।

५.१२.२३ सावलेउ—(ख ग पं) सदर्पः ।

---

४ पं °निता । ५ पं सखारं । [५.१०] १ पं कुरुल° । २ पं °पर्वतः । [५.१२] १ पं लक्ष° ।

५.१२.२४ अणयचारु—(ग) अन्यायाचारम्, (पं) अन्यायपरः ।

५.१३.२ विहवि। छायहो—(ग पं) निराकृतमाहात्म्यस्य ।

५.१३.३ ढुक्क—(ग) आगत ।

५.१३.६ दंडकरंबिउ—(ख पं) दण्डगर्भितः ।

५.१३.१० पलित्तउ—(ख ग पं) कोपाग्निना प्रज्वलितः ।

५.१३.१२ वओहरु—(ख ग पं) दूतः ।

५.१३.१४ खयरविसरिस—(ख ग पं) प्रलयकालादित्यसदृशः ।

५.१३.१७ अयसु····समुच्चयवंसे[1]—(ख ग पं) अयशोऽकीर्तिरेव, समग्रुच्चवंशो—महावंशः तस्मिन् तत्र वा।

५.१३.१९ पढम····रंजइ—(ख ग पं) प्रथमतो विवेकं पापमेव रसस्तेन रज्यते, मलिनः क्रियते ।

५.१३.२० पहिकइ····डंकइ—(ख ग पं) योऽसौ एतदीयः काल एव [2]सर्पः प्रथमतो मनो ग्रसति ।

५.१३.२२ दम्मइ—(पं) उपशाम्यते ।

५.१३.२३ जिणु जि पुण वि—(ग) कोपादिना अयं जितः, (पं) जिष्णु ज पुण जि—(पं) निर्जितेनापि, कोपादिना अयं जितः ।

५.१३.२६ जउ ठवहि—(ग पं) जयं स्थापयति ।

५.१३.२६ रहुणइ—(ख पं) श्रीरामः ।

५.१३.३० कायहो—(पं) काकस्य; तो किं—(ख ग पं) ततः आकाशगामित्वम्[3]; सो जिज—(ख ग पं) स एव काकः; थाणु गुणभायहो—(ख ग पं) स्थानं गुणविभागस्य, गुणवत्तायाः[4] ।

५.१३.३३ अक्खहि—(पं) कथय ।

५.१४.३ अवस····कयंतहो—(ग) तेन यमविषि कुरुमित्यर्थः (पं) तेन यमदेसे [देशे] किं त्वमित्यर्थः ।

५.१४.१२ असिदुहिय[1]—(ग पं) छुरिका; छुहदुहिय—(ख ग पं) क्षुधादुःखिता, (पं) वरखमुकारकः । (?)

५.१४.२१ अवहत्थ—(ख ग पं) शत्रोरभिघातः; समहत्थ—(ख ग पं) वामपार्श्वे शत्रोरभिघातः; दढकालवट्टेहिं—(ख ग पं) [2]अभिमुखे शत्रोरभिघातः[2]; करिठाण—(ग पं) हस्तिदन्तवेध[3]वत्मे गलकत्ति[°त्ति ?]कया खड्गमुनासिकया च अधोमुखेन भूत्वा शत्रोरभिघातः; हंठाण—(ख ग पं) उपविश्य शत्रोरभिघातः; कुम्भासणट्टेहिं[4]—(ख ग पं) सपक्ष रथ-हस्ति-घोटकानां कूर्मासनेन करचरणाभिघातः ।

५.१४.२२ पंचाणणालोय—(ख ग पं) सिंहावलोकनेन अग्रेतनशत्रूणां क्रमं दत्त्वा प्राक्तनशत्रुहननं; मिग····पाएहिं—(ख ग पं) मृगवत् अप्रकृतपादैः क्रमेण अग्रेतनशत्रुभूमिमाक्रम्य शत्रुहननं; सविग्रास—(ग पं) वामपार्श्वे फरकं दत्त्वा खड्गं पृष्ठप्रदेशे तिरोहितं कृत्वा आत्मानं निरवधानं शत्रोः प्रदर्श्य निरवधानोऽयमिति विश्वासेन हननार्थमागतस्य शत्रोरभिघातः सविश्वासः; संकोय—(ग पं) संकुचितभूत्वा शत्रुभिरभिहन्यमानः [5]शिरसि फरकं दत्त्वा शत्रोरभिघातः संकोचः; अवसारघाएहिं[6]—(ग पं) शत्रुभिः अक्षत्रेण [°तेन° ?] भिहन्यमानः झटिति तान् हत्वा [हत्त्वा ?] स्थानान्तरे अपसरणं संक्रमणं अपसारघातः ।

[५.१३] १ पं °वंसो । २ पं समर्थः । ३ पं °गामित्वाजि [°द्धि ?] । ४ पं °वंतायाः । [५.१४] १ पं °दुहिया । २ पं अभिमुखशत्रुभि° । ३ पं °वत्तु अथवा वन्तु, यो वन्तुनेगलकत्ति° । ४ पं °ठण सगुड्ड । ५ पं शिरसिः । ६ पं अवसरे ।

सन्धि–६

६.१.१ दंत—(ख) दन्त; सव्वस्सं—(ग पं) सर्वस्वम्; (पं) साटकछन्दः।

६.१.३ हत्थे चाओ इत्यादि—(ग) साटकछन्दः।

६.१.४ वच्छे सच्छा पवित्ती—(ख ग पं) हृदये निर्मला प्रवृत्तिः।

६.१.५ कण्णाणेयं इत्यादि—(ग) 'अन्यार्थे अन्या विभक्तिः, सप्तम्यर्थे षष्ठी; कण्णाणेयं—(ख पं) कर्णेष्विदं; सुयसुयणाइणं—(पं) आकर्णितश्रुताचारणम्; दोळयाणं—(ख ग पं) दोर्लतासु, बाहुलतासु, बाहुदण्डेष्वित्यर्थः।

६.१.६ सहज…कज्जमण्णं—(ग पं) सम्पदा पुनः सहजपरिकरो भवति, किन्तु [सांप्रतम् ?] कार्यमन्यत् उत्तरकालीनम्।

६.१.७ केरलनिवे धरिए—(ख ग पं) सिंहावलोकनन्यायेन वचनम्; विजयंतरिए—(ख) विजयेन अन्तरिते; (ग पं) विजयेन अन्तरितेन हरिषितोइत्यर्थः (?)

६.१.१० उव्वेविरु—(ग पं) त्रस्तो व्यस्तम्।

६.१.१६ सरायउ—(ख ग पं) राजासहितम्।

६.१.१८ कडए—(ख ग पं) कटके।

६.२.३ करवालकेरए—(ख ग पं) खड्गसंबन्धिनी।

६.२.४ लोकबोलियं—(ख ग पं) अतिशयेन बोलितम् (?) भुयण…तोलियं—(ख ग पं) भुवनभार-भाराभ्यां, भुवनभातधरणसमर्थाभ्यां भुजाभ्यां तोलितम् लीलया आकलितम्।

६.२.६ रत्तपीत…रंडियं—(ख ग पं) रक्तानि पीतानि वस्त्राणि धरन्ति या ता रामाश्चैता रण्डिता यत्र।

६.२.८ रणरसिय—(ख ग पं) समररसिकाः संग्रामरसिका इत्यर्थः।

६.२.९ तुटंत…मट्टउ—(ख ग पं) अतिपौरुषात् समुत्पन्नरोमाञ्चकञ्चुकेन तुट्टन्ते (ग तुटन्तो, पं तुट्टने) ये कवचाः ते भूमौ प्रविष्टाः।

६.३.३ कय—(ख ग प) क्रयेन, मोल्येन।

६.३.१० अगलियखग्गफरु—(ख) खड्गहस्तात् अपतितः, (ग) अपतितखड्गखेटकः।

६.६.१० कय-सिरउ—(ग पं) [1]शिरःशब्देन मस्तकं मस्तककेशाश्च (पं केशाश्चारमरतरजश्च ?); सरसव्वणु—(ग पं) सरसाः व्रणाः जाताः यत्र रणे यौवनं च सरसव्रणम्।

६.६.११ नह—(ग पं) नखानि, नभश्च; हियउ (ग पं) चित्तं उरश्च।

६.८.२ हा महु…वंससेसु—(ग पं) सर्वेऽपि शत्रवो मया निर्मूलिताः, [1]तदीयगृहस्थितापत्यमात्रावस्थानात् वंशशेषाः[3] (ग) 'कृताः वैरिण इति, इदानीं तेषां संग्रामे युद्धमानानामुपलभ्य विस्तरयति' (ख ग) 'हा वैरिणो न जाता वंशशेषा इति'।

६.८.३ निभुत्तु—(ग पं) निस्तीर्णम्; सुयइ—(ख) सुपति [स्वपिति ?]।

६.८.५ मज्झु सुहनिहाणु—(ख ग पं) मदीयप्रभोरुपकारित्वात्[4] सुखनिधानमयं[5] पक्षो[6]।

[६.१] १ पं °र्थे। २ पं हरिसतो°। [६.६] १ ग दार। [६.८] १ पं त्वदीय। २ पं °स्थिता°। ३ पं °शेषा। ४ पं °कारत्वात्। ५ पं °विधान°। ६ ख ग पक्षः।

६.८.७ सिर····सक्कु····(ख ग पं) यद्यपि शिरो दत्तम्, तो वि-तथापि, स्वामीप्रसादऋणं स्फेटयितुं न शक्त इति; मामिय····थक्कु—(ख ग पं) स्वामीप्रसादऋणशेषस्य सद्भावात् ।

६.८.८ अंतावलि····कद्धबंधु—(ख ग पं) अन्त्रावलिनिगडैर्लब्धबन्धः ।

६.८.९ पलासहं—(ख ग पं) मांसाशिनां राक्षस-पक्षिप्रभृतीनां ।

६.८.१० महिहे वण्णु—(ख ग पं) पृथिव्यामात्मीयगुणव्यावर्णना दत्ता ।

६.८.११ उर-सिर-सरीर—(ग प) उरः शिरः शरीरं च; सव्वचूरिउ—(पं) सर्वमपि चूरितम्; स[श.]वस्य वा मृतकस्य चूरितम् ।

६.९.१ समसत्तइं (प्रं॰ मंतइं)—(ख ग पं) हीनाधिकसत्त्वरहितानि ।

६.९.३ अवलंबियमत्तइं—(ख ग पं) स्वीकृतपौरुषाणि, अपरित्यक्तवीरवृत्तीनीत्यर्थः ।

६.९.६ तोरविय—(ख ग पं) चूर्णीकृताः ।

६.९.९ रसघवियपलासइं—(ख ग पं) रुधिरप्रोणितानि राक्षसानि ।

६.१०.१ महयनाय—(ख ग पं) महानादः (पं) महाहस्तिनश्च ।

६.१०.३ खंड····वेयथंड—(ख ग पं) खण्डा सोण्डा येषां ते च ते वेदाण्डाश्च (ग पं वेयदंडाश्च) ते षण्डास्ते; भिमले—(पं भेमला)—(ख ग पं) विह्वला भयानकाश्च यत्र (पं), भीमके—(पं) भयानके ।

६.१०.४ कडविमद्दे—(ख ग पं) महासंग्रामे ।

६.१०.५ घडिय—(ख ग पं) घृष्टाः, अन्योन्यसलग्नाः; गयणगमण—(ख ग पं) गगनगतिः ।

६.१०.६ कच्छिलक्ख—(ख ग पं) लक्ष्म्या उपलक्षितौ लक्ष्म्या वा लक्ष्यौ ।

६.१०.८ मणिसिहेण—(ख ग पं) रत्नचूलेन ।

६.१०.९ निरत्थु—(ख ग पं) अस्त्र (पं शस्त्र) रहितः, आयुधहीनः; जड मुणेइ आहणेइ—(ख ग पं) वेगेन घातयामीत्यर्थः ।

६.११.१ वणियमत्तु—(ख ग पं) व्रणितगात्रः ।

६.११.५ सलेव—(ख ग पं) सदर्प; आरोहु—(ख) रथवाहिमहावन्त [॰वत ?]

६.११.८ भिसिम—(ख ग पं) खड्ग ।

६.११.१० जंमुहलोयणेण—(ख) सन्मुखलोचनेन ।

६.१२.२ इय····बंधु—(ख ग पं) गगनगतिना सदृशः समानः कथं बन्धुर्न भवति, अपि तु न भवति ।

६.१२.४ रज्जु—(ख ग पं) राज्यम्; रज्जु—(ख ग पं) दोरः ।

६.१२.१० ओवडिय—(ख ग) उच्छरिता, पं च्छरिताः ।

६.१३.२ बलुक्कड—(ख ग पं) बलोत्कटः; रसड्डिय वीररसेन आढ्यभूताः ।

६.१३.३ रणंगण....वच्छ (ख ग पं) रणांगणे संग्रामेन, सङ्कः-संबन्धः, तेन विलक्षितं वक्षः—हृदयं ययोः संग्रामदत्तहृदयौ (॰याः) इत्यर्थः; दच्छ—(ख ग पं) संग्रामकुशलाः [॰लौ] ।

७ पं ॰रणं । ८ प ॰सहि । ९ पं महिहि वन्नु । [६.९] १ पं रसघविय॰ । [६.१०] १ पं ॰या । २ पं ॰लक्षिताः । ३ पं ॰लक्ष्याः । [६.१३] १ पं रसड्ढिय ।

६.१३.५ दिणमणि—(ख ग पं) आदित्यः ।

६.१३.७ धसक्किय—(ख ग पं) परस्परं तेषां घातनं विलोक्य (पं घातनमवलोक्य) धसक्यते, कस्यानयोर्मध्ये जयः इति संशयतुलारूढा ।

६.१४.३ तिव्वातवेण—(ख ग पं) तीव्रातपेन ।

६.१४.१३ कबंध····नच्चाविय—(ग पं) कबन्धा बन्धेन—[1]प्रबन्धेन तृप्तेन[1] नृत्यं कारिताः ।

६.१४.१५-१६ पडि···वसेण—(ग पं) प्रतिभटखड्गाधीनेन[2]; खडियाकसेण—(ग पं) खटिकेव कशः स्वामिरिणनिस्तरणपरीक्षायां कसवट्टः, रणमहि····विरियण्णउ अंकनिरंतरउ—(ग पं) कडित्तं रिणस्यमूलकलन्तरसूचकं एकत्वादिसंख्याविशेषरूपं कतितरं भवति; रणमहिकडित्तं तु अङ्कैः परस्परं युद्धैर्निरन्तरं भवति । सकलंतरउ—(ग पं)सकलन्तरं, [3]प्रभुदत्तप्रसाददानमानादिकं तरां(?) प्रभुकार्यकरणात् सकलन्तरं रिणं [ऋणं] दत्तम्; सामिरिणु—(ग) स्वामिरिणं [°ऋणम्] ।

संधि ७

७.१.१ (पं) °महुणा—(ग) प्रतिगौल्येन ।

७.१.४ गिरइ—(ख ग पं) प्रतिपादयति; नेम्मि[1]—(ख ग पं) परिमितिः ।

७.१.१७ तं— (ग पं) मन्नदन्तं; सेवइ डाइणि—(ग पं) स्वेवते डाकिनि; कया (?) कथंभूतया ? भल्लुक्कि····समरसाइं—(ग पं) भल्लूकीमुखाग्निकृतोष्णया[2]; नरवस इं—(ग) [3]नरवसया [?]

७.१.१८ दिण्णासंक—(ग पं) भयजनकाः[4] ।

७.१.२० (पं) हेट्ठकक्ख—(पं) प्रहरणलक्षाः ।

७.१.२१ चरमतणु—(ख ग पं) जम्बूस्वामि; हड्डरुंडविच्छड्डियर—(ख ग पं) सर्वतो विक्षिप्तहृदरुण्डाः[5] ।

७.१.२२ बहुरत्तघणउ—(ख ग पं) प्रचुररक्तनिरन्तरम् ।

७.२.२ बहुपहरण—(ग पं) बहूनि प्रहरणानि ।

७.२.९ मंडलग्ग—(ग) खड्गः, (पं) खड्गाग्रम् ।

७.३.१ पडहडमरु (पं समर०)—(ग पं) महासंग्रामाटोपः ।

७.४.१२ तियक्खस्स—(ग पं) त्रिलोचनस्य ।

७.४.१३ णिमिसं (निमिसं)—(ग) निमेषमात्रमपि ।

७.४.१५ खरं खारियं—(ग पं) अतिशयेन परिभवितम् ।

७.५.३ परिवडिय[1]—(ग पं) परिपतित[2] (°ता) ।

७.५.४ गयणवहपहय—(ग पं) वायुप्रहत[3] ।

७.५.८ समरु परियरवि—(ग पं) संग्रामं स्वीकृत्य ।

[६.१४] १ पं सांतरयेन । २ पं० घोतेन । ३ पं प्रभुदत्ते° ।

[७.१] १ पं निम्मि । २ ग °ग्नितप्तोष्णया । ३ पं नरेवासाए । ४ ग °जनिका । ५ पं °रुंडः ।

[७.५] १ पं °वडिया । २ पं °पतिता । ३ पं °प्रहतं° ।

७.५.६ खयविसम····निहो—(ग प) क्षयकालरौद्रयमसदृशः ।

७.५.१२ समयतडिफिडवि[4]—स्वमर्यादातटमुल्लङ्घ्य[5] ।

७.५.१५ कलि····मरट्टइं—(ग प) कलिकालेन कृतान्तेन च तुल्यो मरट्टो गर्वो येषां ते ।

७.५.१६ पुणु —(ग प) पुनरपि ।

७.६.७ विरस—(प) भयानकाः ।

७.६.१२ सुरसुंदरी ···कुमरं—(ग प) सुरसुन्दरीदर्शितमूर्द्धोऽङ्गो मध्यं येषां तानि[1] उद्ध्वर्तितानि नयनानि येषां ते च उल्लिताश्च—पतिताः सामन्तकुमाराः[2] यत्र ।

७.६.१३ लंबंतचूल—(ग प) लम्बमान-चुडालः; पविहिच्छकच्छ—(ग प) किरिविलम्बछुटकः ।

७.६.१४ अकज्ज ··निम्माणिय—(ग प) प्रभो-सकाशाद्ग्रयमकृत्वसन्मानास्तिताः[3] प्रभुकार्यं न कुर्मं इत्य-भिमानरहिताः; सच्चविय—(ग प) प्रकाशिनाः ।

७.६.१४ [4]निसग्गचारहडिय—(ग प) सहजपौरुषम् ।

७.६.१८ कसरेसु····गहवइ़गो—(ख ग प) कसरेषु कर्बुरेषु बलीवर्द्दवर्गेषु यत्प्रतिपालनं तस्मात्पृष्ठतः[5] प्रति-लग्नास्ते वर्गाः यस्य धनिकस्य ।

७.६.२५ गरुयभर····एम्भो (ख ग प) एकाकिनो मे भरोद्वहने समर्थस्य अकिंचित्करोऽयं[6] प्रतिभारो द्वितीयभर एक केवलं भविष्यति ।

७.६.२६ समसीसियाए[7]—(ख ग प) समस्पर्द्धया ।

७.६.३० (प) दोहइ सीहसिलिंबु—(ख ग प) सिंहशावकम् ।

७.७.५ हेवाइउ—(ख ग प) गर्वितः ।

७.७.८ किं बलबलेण—(ख ग प) किं सेन बलेन ।

७.७.१२ (प) अवसन्नद्धइ[1]—(प) परित्यक्तसन्नद्धास्वरूपाणि ।

७.८.१ सरवंसहं[1]—(ग प) बाणाः; तोणहिं[2]—(ग) भस्त्रासु, (प) भस्त्रासु ।

७.८.१० टलक्किय[3]—(ग प) टलटलितानि ।

७.८.११ दवक्कीय—(ग प) भीताः ।

७.८.१३-१४ गाढवि····इत्यादि:—खयरें—(प) रत्नचूलविद्याधरेण; मग्गणवीसविसज्जिय—(ग प) विंशतिर्मार्गणाः-बाणाः विसर्जिताः; किविणेण व—(ग प) कृपणेन इव; किं कृत्वा ? गाढवि····धणु—(ग प) गाढमाक्रम्य करेण धनुः (प) स्थानक-विशेषेण; वंकेवि तणु—(ग प) तनुं वक्रं कृत्वा—(प) मार्गणाः विसर्जिताः ।

७.११.६ सोसइ—(ख ग प) कथयति ।

---

४ पं °फिडिवि । ५ पं °मर्यादातटो° । ६ पं मंड गर्व्वो । [७.६] १ पं ऊर्द्ध° । २ पं °कुमारा । ३ ग °नाश्रिताः । ४ पं नोसग्ग° । ५ पं °पृष्ठतः । ६ पं अयमकिंचित्करो । ७ पं °याइं । [७.७] १ प्रतियों में °सण्णद्धइं । [७.८] १ प्रतियोंमें °वसहिं । २ प्रतियों मे तोणइं । ३ पं टल° ।

सन्धि ८

८.१.८ भावउ—(ख) स्वीकारं करोतु ।

८.२.९ णामदेवीसर—(ख) भवदेवः ।

८.२.१३ अक्ककंत—(ख ग) नाम्नि [विमाने] ।

८.३.६ सावयं—(ग) श्रावकैः श्वापदैश्च ।

८.३.७ सलक्खणु रामघरु—(ख ग) लक्ष्मणेन सहितो रामः, लक्षणसहिताः रामाइव; नट्टपरु—(ख ग) नष्टः परमार्थः, नष्टसमुद्रश्च ।

८.३.८ बहुवाणिउं—(ख ग) बहुवाणिजम्, बाहुपानीयं च ।

८.३.९ दोणु—(ख ग) द्रोणाचार्यः, मापविशेषश्च ।

८.३.१५ सुपइट्ठिय—(ख ग) सुप्रतिष्ठो नाम राजा ।

८.४.११ सउहम्म—(ख) सौधर्मः ।

८.५.१४ सुहु—(ख) शुभमनन्तचतुष्टयम् ।

८.७.२ आउच्छेविणु—(ख ग) पृष्ट्वा ।

८.७.३ अम्मि (ख ग) मातः ।

८.७.७ जसहंसु—(ख) परब्रह्म, (ग) यशोहंसः ।

८.७.८. पयापरिपूरणेण—(ख ग) उदरपूरकेण[1] ।

८.९.२ वरताइं—(ख ग) वरपित्राः ।

८.६.६ अघडियउ—(ख) अघटमानवस्तु ।

८.१२.१ तो""न वज्जियं—(ख) सयणात् वचनं जम्बूस्वामिना [न] लङ्घितम् ।

८.१२.३ उण्णामउ—ऊर्णामयम् ।

८.१२.७ कण्णावरि—(ख ग) कन्याप्रतिपक्षे ।

८.१२.८ बहुकरसंगहो—(ख ग) पाणिग्रहणं वधूनां वा करेण सङ्ग्रहो यस्य ।

८.१२.११ चेल्लिउ कंचिवालु—(ख ग) काञ्चीदेशनिष्पन्नपटपरिधानम् ।

८.१३.३ कायमाण—(ख) कइवाणं (?)

८.१३.४ पहंजण—(ग पं) पवनः ।

८.१३.५ कोवुण्हविय—(ख ग) ईषदुष्णीकृतम् ।

८.१३.१४ भियाणखणे—(ख ग) भोजनावसानसमये ।

८.१३.१५ पेम्मघवक्कउ—(ग पं) प्रेमपुञ्जसदृशम्, विशेषणमिदम्; कइय""परिहरि'—(ग पं) आहारमागतं भुक्त्वावसाने त्यक्तमित्यर्थः ।

८.१४.२ दरुण्हयं—(ग पं) ईषदुष्णम् ।

८.१४.५ सेविय""महुमत्तउ (पं मयमत्तउ) णिवडइ—(ग पं) षट्पदः संबन्धः; मद्यपाल इव आदित्यो निपतितः[1] मद्यपालो हि मधुना निपतति, आदित्यस्तु सेवितकमलकोशमकरन्देन मद्येन (पं) मधुना मत्तो

[८.७] १ ख °पूरणेण । [८.१४] १ पं °तितो ।

निपतति; गलियणियंसु वि—(ग पं) भयपालः गलितनिजांशुकः पतितनिजवस्त्रः, आदित्यस्तु गलिता निजांशुकाः किरणाः यस्य स तथोक्तः; रत्तउ—(ग पं) अनुरक्तः।

८.१४.६ लग्गेत्थादि—(पं) लग्नमादित्यं प्रेक्ष [प्रेक्ष्य ?], क्व लग्ने ? अत्थ....वणराइहे—(ग पं) अस्तशिखरि[2]वनराजिकायाः; कथंभूतायाः ? [3]सिलायल...विराइहे[2]—(ग पं) शिलातलमेव रमणं गुह्यं तेन विराजितायाः, तं तथाभूतम् आदित्यम्; पेक्खेवि—(ग पं) दृष्ट्वा।

८.१४.७ ईसाइवि—(ग पं) ईर्ष्यां कृत्वा; पच्छिमदिसपत्तिए असहंतिए—(ग पं) पश्चिमदिशापत्न्या भार्यया असहमानया; किउ...मुहु—(ग पं) कोपेन कृतं आताम्रं मुखं सन्ध्यारागव्याजेन, तेन चारतमनं [4]कुर्वता।

८.१४.८ तेउ हुयासें—(ग) तेजो अग्निना।

८.१४.२०-२१ विरहग्गिफुलिंग—(ग पं) विरह एव अग्निस्तस्य स्फुलिङ्गाः; ओहुंगण—(ग पं) ज्योतिर्गणकव्याजेन, छुड्डिय—प्रसृताः।

८.१५.१ अहिसारीहिं—(ख ग पं) अभिसारिकाभिः, पुंश्चलीभिः।

८.१५.३ हेमेयउ—(ग पं) सुवर्णनिर्मिताः।

८.१५.४ गयवइ... सहुं—(ग पं) गतभर्तृकाहृदयैः सह।

८.१५.६ सुद्धउ—(ग पं) धवलम्।

८.१५.९ किडइ—(ग पं) आस्वादयति।

८.१५.११ मुद्धमुद्धिय—(ग पं) मुग्धमुग्धे; करावउ—(ग पं) करास्तद्गुणव्यावृत्ता[1] यस्याः।

८.१५.१२ णियडाउ णिवासए—(ग पं) गृहसमीपे; कविणंति [2]मालइ कुसुमालइ—(ग पं) मालतीपुष्पाणि मालतीशब्देनोच्यन्ते तानि चन्द्रकरैर्धवलीकृतानि[3] पुष्पाणि [इत्या-] शया त्रोटयन्तीत्यर्थः।

८.१५.१३ सबरि—(ग) शर्वरी (हिंदी सबरी)।

८.१५.१५ एरिसे... णंदिणए—(ग पं) कैरवाणि कुमुदानि नन्दयन्ति विकाशयन्तीत्येवं शीला; संसिट्ठउ—(ग) संशब्दितः।

८.१६.४ [1]छिण्णु....छिज्जइ—(ग पं) प्रदीपो द्वितीये दीपे दत्ते छिन्नछायो[2] भवति।

८.१६.७ पयासइ—(ग पं) उद्योतयति।

८.१६.८ णियंसणसारें—परिधानवस्त्रसारेण[3]।

८.१६.९ कव[4]—(ग पं) केन व्याजेन।

८.१६.१२ विरायए[5]—(ग पं) विराजते।

(पं) इति अष्टम सन्धि

---

२ पं अस्तंसिखर°। ३ पं सिलायल मणविराइयहिं। ४ ग कुर्वीत। [८.१५] १ पं °तद्गुणाव्यावृत्ता। २ पं मालइं। ३ प °ढंवली°। [८.१६] १ पं छिन्न°। २ पं °छाया। ३ पं °वस्त्र°। ४ पं कवणइं। ५ पं विरायइ।

सन्धि ९

९.१.४ रसदित्तं—(ग पं) आवर्तितं सत् सुवर्णं दीप्तं भवति, काव्यं तु शृङ्गारादिरसैः दीप्तं भवति; पयच्छिण्णं[1]—(ग पं) सुवर्णं पदेन भागेन कटिकाद्येकदेशेन छिन्नेन परीक्ष्य गृह्यते, काव्यं तु पदैः छिन्नैर्विविधैः शुद्धं परीक्ष्य गृह्यते।

९.१.५ मेल्लियउ[2]—(ग पं) आकलितान्तस्त्यक्ताः।

९.१.६ वाउल्लियउ—(ग) पुत्तलिकाः।

९.१.८ मयणकाकसण्ण—(पं) मदनबाणः।

९.१.९. अमिय-वासउ—(ग पं) अमृतमधु-आवासः; वयणासउ—(ग पं) वदनमेव आसवो मद्यं[3] [4]वदनमद्यमित्यर्थः।

९.१.१५ बहि····दव्वहो—(ग पं) बाह्यः स्त्रीद्रव्येषु।

९.१.१८ भुञ्जयागउ····सव्वें—(ग पं) कर्मोदयवशात् उदयागतं भावं विवेकी उदासीनः सन् भुङ्क्ते; भुंजइ····विणु—(ग पं) कर्माग्रहेण विना कर्माण्युपार्जयन् भुङ्क्त इत्यर्थः।

९.३.१ हले—(ख ग) कमलश्रीस्वाध (ख) हालो कथा, (ग) कृपोवक कथा।

९.३.४ दुक्खलिउ—(ख ग पं) दुरवेष्टितः।

९.३.५ पंचत्तु—(ग पं) मृत्युम्।

९.३.७ बाहियउ—(ग पं) वञ्चित; विवाहियउ—(ख ग पं) विवाहिता।

९.४.८ उद्दमविस—(ग पं) दुर्दमबलीवर्दः।

९.४.१२ सिद्धउ····वंछहि—(ग पं) सिद्धं त्यक्त्वा असिद्धं वाञ्छसि।

९.४.१६ किच्छें—(ग पं) महता कष्टेन।

९.५.४ जामि न ····कोहें—(ग पं) भवदीयवचनात् विषयाभिलाषेण[1] क्षयं न व्रजामि।

९.५.५ आउसंति—(ख ग पं) आयुषः अन्ते।

९.५.१० थोवउ····भमेवि—(ग पं) स्तोकं भ्रान्त्वा।

९.५.१२ मज्झु (ग पं) साध्यः[2] भवति; मयणें—(ग पं) कामे [न]।

९.६.२ सयखंडिउ—(ग पं) शतखण्डो भूत्वा।

९.६.८ अब्महिउ—(ग पं) अभ्यधिकम्[1]।

९.७.६ जर—(ग) वृद्धः[1]।

९.७.१३ निहिउ (पं विहिउ)—(ग पं) पङ्के कृतः।

९.७.१६ अवडे—(ग पं) कूपे; महु····लेहणे—(ग पं) मधुबिन्दुआस्वादने आसक्तः।

९.८.१ संसइ—(ख ग पं) कथयति।

९.८.४ इमउ एक्कु—(ख ग पं) इममेकम्।

[९.१] १ पं °छिन्नं। २ पं मिलित°। ३ पं मद्यः। ४ पं °मद्योरित्यर्थः। [९.५] १ पं विषयाभिषलोभेन। २ पं साध्या। [९.६] १ पं °धिकः। [९.७] १ पं वृद्धता।

९.८.५ महिलसहाएं—महिला सहायो[1] यस्य तेन; रहसें चडिउ—(ख ग पं) रूपयो[2] ? सम्पत्तौ यः समुत्पन्नो रभसः तेन उभाभ्यां चटितो[3] महति।

९.८.१० निउ—(ग पं) निजं। परिहउ—(पं) अनर्घो-[°र्घो?] यम्।

९.८.१२ रूयउ····विकसिजइ—(ग पं) अस्योपयोगः कर्तव्य इति परिभावितम्।

९.८.१५ मइं पाणें—(ग पं) मतिक्रमणेन।

९.८.१८ पव्वे—(ग पं) पर्वणि; हियए न पइट्ठउ—(ग पं) हृदये न प्रविष्टं (पं) मद्ये [मह्यं ?] झटिति।

९.८.२२ महइ—(ख ग पं) वाञ्छति; समग्गल—(ख ग पं) समधिका; सग्गदिहि—(ख ग पं) स्वर्गधृति, स्वर्गलक्ष्मीं परिपूर्णमित्यर्थः।

९.९.३ विवण्णु—(ख ग पं) मृतः।

९.९.४ एहु मंतु—(ख ग पं) इति एतत् वा तात्पर्यम्।

९.९.५ कयक्खियप्पु—(ख ग पं) विनाशितात्मस्वरूपम्; एरिसथोहें (ख पं) ईदृशेन स्तोमेन व्युद्ग्राहेण।

९.९.६ महि····सत्तु—(ख ग पं) पृथिव्यामुत्पादितं द्वीन्द्रियादिप्राणिगणः।

९.९.७-८ (पं) पाउससिरि इत्यादिपदचतुष्टयेन संबन्धः—पाउससिरि जरथेरि नाइं विहाइ (पं) प्रावृट्काललक्ष्मी जरस्थविरो इव प्रतिभाति; पाउससिरि जरथेरि नाइं (i) संतरयंबरीय—(ख ग पं) प्रावृट्कालश्रीः—लक्ष्मी[1] शान्तमुपशमं गतं रजो धूलिर्यस्यां [2]सत्यां अम्बरे सा, जरस्थविरी पक्षे तु प्रशान्तं रजोम्बरं[3] रजस्वलावस्त्रं यस्याः (ii) पओहरीय—पयोधराः मेघाः स्तनौ च; (iii) घन····विहाइं—(ख ग पं) घनतिमिरेण निबिडान्धकारेण छन्नाः प्रच्छादिताः तारकाः नक्षत्राणि (ख) 'आकाशे' यस्यां प्रावृट्काललक्ष्म्यां सा; [4]जरस्थविरो पक्षे तु[4] घनेन प्रचुरेण च चक्षुर्दोषेण छन्ना तारका [5]यस्या [:] सा[5]; (iv) उल्लसियकास—(ख ग पं) उल्लसिताः पुष्पिताः काशाः तृणविशेषाः यस्यां प्रावृट्लक्ष्म्यां सा, जरस्थविरी तु उल्लसितकाशाः—उत्कटकाश-श्वासा भवति।

९.९.९ तारतारु—(ख ग पं) अतिशयेन तारः।

९.९.१० मंदमंदु—(ख ग पं) अतिशयेन मन्दः; संदु—(ख ग पं) सान्द्रो मनोज्ञश्च।

९.९.१२ फलिह—····जडिउव (ख ग पं) स्फटिकमयलिङ्गैर्जटिता इव।

९.१०.१ वह—(ख ग पं) प्रवाह।

९.१०.२ जुण्णतण्ण—(ख ग पं) जीर्णतृणमय।

९.१०.७ सरडें—(ख ग पं) करकण्टकेन, (ख) कणघेन्यो लोके; महजरडें—(ख ग पं) अतिप्राज्ञेन।

९.१०.१० सरंतें—(ख ग पं) स्मरता।

९.१०.१२ चुण्णउ (पं चुण्णउं)—(ख ग पं) क्षोनम्, (पं) वै स्फुटम्।

९.१०.२० कयंबें—(ख ग पं) समूहेन।

९.१०.२१ अहि—(ख) सर्पः; वडिपहर—(पं) प्रतिप्रहार।

९.१०.२४ सिव-माहव—(ख) शिवभूति ब्राह्मणः, द्वितीय नाम सत्यघोषः।

[९.८] १ ख ग °या। २ पं रूवउ। ३ पं चडितो। [९.९] १ पं सा हि। २ ख ग संत्यां। ३ ख ग रजः°। ४ पं °स्थविरश्नो तु। ५ पं प्रतिभाति।

९.११.३ दंतवणे (पं दंतमुहं) काणिउं—(ख ग पं) दन्तैर्मुखेन च काणितः, दन्तैर्वा मुखे मुखप्रदेशे[1] काणितः कृतच्छिद्रः।

९.११.४ मुज्झिउ—(ख ग पं) अत्यासक्तः।

९.११.१२ तिणु—(पं) तृण[2]।

९.११.१३ जवपाणें—(ग पं) अतिशयेन वेगेन।

९.११.१४ कयनाएं—(ख ग पं) कृतनादेन; सुणह समवाएं—(ग) सुनां [श्वानानां] समवाएन [येन]।

९.१२.५ विहूसियरूवउ—(ख ग पं) विभूषितं रूपं दृष्टम्; नरु⋯विरूवउ—(ख ग पं) स एव [1]नरः विरूपकः रूपरहितः ताभिर्वेश्याभिर्मन्यते,[1] विरूवउ—(ख) यो रूपकेण द्रव्येण रहितः।

९.१२.६ खणदिट्ठो⋯सिट्ठउ—(ख ग पं) सहिरण्यः पुरुषः प्रथमतः क्षणमात्रेण दृष्टोऽपि प्रियो वैशिक-व्याजेन (ग) अतीव वल्लभः शिष्टः प्रतिपादितः; पणया⋯न दिट्ठउ—(ख ग पं) यः पुनराजन्मनः प्रणयारूढो मित्रः स एव निधनो जातो यदा तदा स जन्मनि अपि [2]मया न दृष्टोऽयम् इति[2] परित्यज्यते।

९.१२.७ नउलु⋯वणियउ—(ख ग पं) नकुलोद्भवाः (ख ग [3]द्भूताः) नकुलोत्पन्नाः गणिकास्तदा ताः कथं भुजङ्गैः सर्पैः दन्तनखैः व्रणिताः[3], [4]भुजङ्गानां नकुलाभिर्वध्यमानत्वात्? अत्राह–यतो न कुलोद्भवाः कुलहीनास्ततो भुजङ्गैर्विटैर्दन्तनखैर्व्रणिताः[5]।

९.१२.८ वम्मह⋯परिचत्तउ—(ख ग पं) मन्मथस्य कामस्य दीपिकाः[6] उद्दीपिकाः[6] न तु दीपिका.[6] स्नेह-सङ्गवत्यो भविष्यन्ति; अत्राह—यद्यपि ताः दीपिकाः, तोवि–तथापि स्नेहसङ्गपरित्यक्ता, कार्यवशादेव वैशिकेन ताः केनचित् सह स्नेहसङ्गं प्रदर्शयन्तीत्यर्थः।

९.१२.९ कगिर⋯दच्छउ—(ख ग पं) शाकिन्यो हि रक्ताकर्षणे दक्षाः भवन्ति, गणिकास्तु रक्तानामुत्पा-दितानुरागानां कर्षणे दक्षाः।

९.१२.१० मेरु⋯नियंबउ—(ख ग पं) मेरोः महीधराणां (ग पं) षट्कुलपर्वतानां च मही-भूमिस्तत्-प्रतिबिम्बं तेन सदृशः तन्मही हि किंपुरुषादिभिर्बहुभिर्देवविशेषैः[7] सेवितानितम्बा इति, गणिकास्तु किंपुरुषै-र्बहुभिः [8]कुत्सितैः पुरुषैः सेवितनितम्बाः[9] इति।

९.१२.११ नरवइ⋯संजोयउ—(ख ग पं) नरपतिनीतिभिः समानविभोगाः, नरपतिनीतयो हि अर्थ-वन्त्यः[10] प्रवर्त्तन्ते, अनर्थसंयोगं दूरतः परिवर्जयन्ति, गणिकानां विभोगा अपि अर्थवन्त्यव[11] प्रवर्त्तन्ते, अनर्थ-संयोगं दूरतः परित्यजन्तीत्यर्थः।

९.१२.१२ अहरे राउ—(ख ग पं) ओष्ठे नीचे च रागः, मदनोऽपि कामोऽपि नीचः[12] एवं यासां वर्त्तते।

९.१२.१४ परवंचण—(ग पं) परवञ्चनादि सम्बन्धे स्त्रीजने (पं) परवंचनहहियाए इति पाठे।

९.१२.१५ न सरूवउ—(ख ग पं) तत् स्वभावस्वरूपं न।

९.१२.१६ जं मिट्ठंतु⋯पीडए पुणु—(ग पं) मिष्टान्नं[13] [14]यत् तत्रैव[14] नायं श्रद्धायाः गुणः, तथा सुन्दरं यत् तत्रैव तरुणचित्तेषु रञ्जिता प्रीतिः रञ्जनार्थं पीडा वा इति पाठः, तदभिलाषः यस्य प्रयासस्य च नायं गुणः, (पं) एतेन किं सूक्तम् [उक्तम्]? सेव्यासेव्यं वेश्या न पश्यति [इति]।

[९.११] १ पं °प्रदेशो। २ पं तणु। [९.१२] १ पं नरो विरूपको रूपकरहितस्ताभिर्मन्यते। २ पं न दृष्टः इव। ३ पं °ता। ४ ग भुजं°। ५ पं विटदंतनखैर्व्रणिता। ६ पं °पिका। ७ पं °दिभिर्देवविशेषैर्बहुभिः। ८ ख ग °त। ९ पं °नितंबा। १० ख ग °वंति। ११ ख अर्थवंत एव। १२ पं नीच। १३ पं मृ°। १४ पं यत्तत्रैव।

९.१२.१७ मंडणे····विडअणे (ग पं)—[मंडने] श्वेतपीताविवर्णापेक्षा[15] न ब्राह्मणाद्यपेक्षा[15]; गड-रवणे—(ग पं) नितम्बे एव गुरुता।

९.१२.१८-१९ आयरेण····महुमंचु जिह। रिच्चेवर····संचुंबंति तिह—(ग पं) यथा मधुसञ्चं[16]—मधुछत्रं सरसं कर्त्तुं, निउणउ—निपुणाः[17] दक्षाः उड्डापिताः सत्यः[18] खुद्दउ—मधुमक्षिकाः सञ्चुम्बन्ति मधुसञ्चं, तिह—तथा आदरेण सरसं पुरुषं सुचिरमालिङ्ग्य रक्तं कर्त्तुं निपुणाः[19] गणिकाः क्षुद्राः परवञ्चकत्वेन दुष्टाभिप्रायाः।

९.१३.१ का वि····गणंती—(ग पं) चतुःपदे संबन्धः; नवदविणु—अभिनवोपार्जितार्थं[1] पुरुषम्, गणंती—चित्ते धरन्ती; हियधणमणुम—(ग पं) गृहीतार्थपुरुषम्, अमुणंती[2]—अनिच्छन्ती।

९.१३.२ निरोहवि[3]—(ग पं) गृहे प्रवेशं निषिध्य।

९.१३.३ जो अप्पिउ—(ग) दत्तं यद्द्रव्यम्।

९.१३.४ विमत्तिए—(ग) बुद्धिहीनया, (पं) बुद्धे हीनया।

९.१३.५ [4]कडच्छए—(ग पं) कच्छायाम्।

९.१३.७ धणु वि····उवलंभइ—(ग पं) [5]कश्चिदत्याशक्तिवशाद्दत्तधनापि[6], ढोउ न कहमि[7]—निर्धनोऽयमिति ज्ञात्वा न स्वीकरोति[8], तत्र निरपेक्षा, अन्यत्र विजृम्भते, ततोऽसौ उवलंभइ—उपालम्भयति लोकानामग्रे तस्याः कथां कथयति।

९.१३.८ निहुवणु[9]—(ग पं) सुरतव्यापारम्।

९.१३.११ सेय—(ग पं) प्रस्वेद; कल—(ग पं) मनोज्ञ.[10]।

९.१३.१२ वणु व हयवच्छउ—(ग पं) वनो निवारितवृक्षम्[11], [मिथुनः] हतवक्षस्थलं[12] च; करणपरिपूर्णम्, यथा राजकुलं करणैरधिकम्, किंपुरुषैः पूर्णं च।

९.१३.१३ रूवियबंधउ[13]—(ग पं) निरूपितकर्म-प्रकृत्यादिबन्धः[14] निधुवनं च रतिकृतकरणबन्धः विलासशास्त्रे[15] विशेषतः; रिद्ध····खंधउ—(ग पं) कृषीवलाः समर्पितसिद्धदायाः [°सिद्धयादयः] (पं कृषाणा समर्पन्ति सिद्धादायं) मिथुनमपि अर्पितस्कन्धम्।

९.१३.१४ अंधय····व्वणु—(ग पं) अन्धकदानवस्य वधू इव मिथुननिहुअणं तद्वधार्थं[16] हि न जाता[17] हरस्य व्रणाः[18], [19]निधुवनं तु जातनखव्रणम्[20]; सरु—(ग पं) शब्दः बाणश्च।

९.१३.१५ कड्डियकरवालउ—(ग पं) करवाल—खड्गः,[20] आकर्षिताः करेण बालाः[21] [22]केशाः यत्र तत् च[22]; रेय—(ग पं) रेतः शर्करा[23] सूक्ष्मवालुका च।

९.१३.१६ समुग्गयसुक्कउ—(ग पं) समुद्गतशुक्रः गृहविशेषो दानवबले[24]; पक्षे शुक्रं—रेतः मिथुननिधुवने।

९.१३.१८ नियइ—(ग पं) अवलोकयते।

९.१४.१३ चित्तब्भमणे—(पं) अन्यमनस्कतया गमने।

---

१५ पं °पेक्षणं। १६ ग °सिचं। १७ पं °णा। १८ ग संस्य। १९ ग °णा। [९.१३] १ पं °तोर्थं। २ पं अग°। ३ पं °हेवि। ४ पं °च्छुहे। ५ पं कश्चिदन्या°। ६ पं °धनोपि। ७ पं °इ। ८ पं स्वोकारयति। ९ पं °यणु। १० पं °ज्ञं। ११ पं °वृक्षः। १२ पं °स्थलः। १३ पं °बंतउ। १४ पं °बंध। १५ पं °बंधयोरि[रति°] विलासशास्त्रे। १६ पं °र्थे। १७ पं जातं। १८ पं व्रणं। १९ पं मिथुन निहुअणे जातं नखव्रणं। २० पं खड्गं। २१ पं बाला। २२ पं केशाकर्षणं च। २३ पं शर्करं। २४ पं °बलो।

९.१५.२ तक्कर—(ग पं) चौरः।

९.१५.७ कुसुमालें—(ग पं) चौरेण।

९.१५.१३ विवत्थए—(ग पं) व्यवस्थया[1]।

९.१६.४ न पवसइ पुत्तु तउ—(ग पं) तव पुत्रः[1] न व्रजति, न गच्छति।

९.१६.६ आयरमंतणयं—(ग पं) आग्रहो निद्राकरणम्।

९.१७.१० वच्छरेसु—(ग पं) संवत्सरेषु।

९.१७.११ सद्धु—(ग पं) श्रद्धावान्।

९.१७.१३ बूहि—(ख ग पं) ब्रूहि; आगुरू—(ख ग पं) आसमन्तात् महान्तः एते पितृस्थानीयाः[1]; लहु व—(ग पं) अहं लघुः पुत्रस्थानीयः एतेषाम्; ऊहि—(ख ग पं) एतत् स्वचित्ते संप्रधारय।

९.१७.१४ आवओ समाणि अम्मि—(ख ग पं) [2]आगतः सन्[2], समाणि—सन्मानय, अम्मि—हे मातः; (ग पं) अन्यत् आगुरुलघुचतुष्क[3]गणैरागतं समानिका छन्दो नाम[4]।

९.१७.१५ पुत्ताणुमइए—(ख ग पं) पुत्रानुमतया।

९.१८.२ वेसपद्दु[1]—(पं) वेशदक्षः[2]।

९.१८.३ केसकडि—(ग पं) केशाः।

९.१८.४ कयबंधमह—(ख ग पं) वेशबन्धसञ्जातः; उग्गंठिय—(ख पं) छोटितग्रन्थी, (ग) छोडितग्रन्थिः।

सन्धि १०

१०.१.६ कग्गाइ ...चत्तगण—कर्मातिशयात् त्यागः प्राप्तः प्राप्तो येन।

१०.१.१० वण्णाखिल[1]....सिंग—वर्णेन यशसा धवलितानि [2]अखिलानि शिखरिणां शृङ्गानि[1] शिखराणि येन।

१०.१.१२ मालंकिय—(ख ग पं) लक्ष्मीभूषिता।

१०.१.१४ विभास—(ख ग पं) विकास[3]; आसाइय—(ग पं) समासादित।

१०.२.७ तउ—(ख ग पं) तपः; कायहो कारणे—(ख ग पं) कायस्य निमित्ते; आयहो—(ख पं) एतस्मात् कृततपसः वा शरीरात्मस्य फलं किम् ? न किमपि[1]।

१०.२.८ सुद्धु... णिद्दिट्ठउ—जीवो-जीवः शुद्धो निर्गुणो अकर्ता कायादिभिरसंस्पृष्टः[1] इति विशेषोक्तिः; चेट्ठ-अपिट्ठउ—(ख ग पं) एताभिश्चेष्टाभिरस्पृष्ट[2]ः।

१०.३.५ मंति—(ग पं) वञ्चयन्ति।

१०.३.७ न णियत्थु...सोक्खु (ग पं) संसारसौख्यं मुक्त्वा अन्यो[1] निजार्थो[2] नास्ति (पं) अतः किम् ?

१०.३.६ धम्महि....रुहेण—(ग पं) धर्म एवाद्रिः पर्वतस्तस्य शिखरं तत्र धरणीरुहः[3] वृक्षः[4] यस्तेन।

[९.१५] १ पं व्यवस्थाया। [९.१६] १ पं पुत्रं। [९.१७] १ पं °नीया। २ ग आगंतं संतं। ३ पं °चतुष्क°। ४ पं नामो। [९.१८] १ ख ग वंसपडु। २ ख ग वशदक्षः।

[१०.१] १ पं वर्णेत्यादि। २ पं अखिलशिखरिशृंगानि। ३ पं °सो। [१०.२] १ पं कस्यापि। २ पं °स्पृष्ट। [१०.३] १ पं अन्यं। २ पं °र्थं। ३ ग °रुहो। ४ ग वृक्षो।

१०.३.१० मिच्छा····सुसमु—(ग पं) मिथ्या असत्यो यः प्रपञ्चः जीवो नास्ति, धर्मो; नास्ति, परलोको नास्ति इत्यादिरूपस्तेन वञ्चितानां सुसमः सुन्दरः।

१०.३.११ तत्तत्थु····हसिउ—(ग पं) तत्तत्थु-तत्त्वार्थः, तत्त्वभूते परमार्थभूते अर्थे जीवादी ये साधवो जनाः गणधरदेवादयस्तैरुपहसितः[५]।

१०.४.१ सवियप्पहो····कारणु—(ग पं) पञ्चेन्द्रियमनः प्रभवतया सविकल्पस्य षट्प्रकारभेदभिन्नस्य ज्ञानस्य भूतानि पृथिव्यादीनि, साहारणु कारणु—सर्वेषां समानं यदि अन्तरङ्गकारणं स्यात्।

१०.४.२ तो ण····सुत्तहो—(ग पं) तो—ततः मूर्तकारणजन्यत्वात् मूर्त्तस्य ज्ञानस्य तदा समाना परिणतिः[१] सर्वेषां समानो ज्ञानपरिणामः किं न स्यात्? अत्रार्थे दृष्टान्तमाह—पडरंगेण···सुत्तहो—(ग पं) विशेषोक्ति-पदार्थे दिनमूर्तेण[२] साधारणकारणेन पटे रज्यमाने पटरङ्गेण समानः सूत्रस्य रङ्गो यथा भवति।

१०.४.३ अह····निरूविउ—(ग पं) सहकारिकारणं ज्ञानोत्पत्तौ भूतानि निरूपितानि नोपादानकारणं तर्हि [३]अण्णु जि[३]····सूइउ—(ग पं) अन्यदेव जीवलक्षणं [४]अन्तरङ्ग उपादानभूतं ज्ञानावरणादिक्षयोपशम-लक्षणं च त्वया एव सूचितं प्रतिपादितम्।

१०.४.४ कज्जहो····सलक्खणु—(ग पं) यत् सहकारिकारणभूतं पृथिव्याद्यात्मकं [५]शरीरादिकार्यं च[६] ज्ञानादि तन् कारणं सहकारिभावेन जनकं नवर वपुर्लक्षणं येन शरीरस्याचेतनत्वे ज्ञानादेरप्यचेतनत्वं स्यात्; अत्र दृष्टान्तमाह—मिउ···सविलक्खणु—(ग पं) यथा मृत्पिण्डो घटस्य जनको न पुनः तस्य लक्षणं स्वरूपं, न हि मृत्पिण्डसदृशो घटः मृत्पिण्डस्य जलधारणाहरणे [ऽ] समर्थत्वात्, घटस्य तु तत् समर्थत्वात्, पृथुबुध्नो-दराद्याकारत्वाच्च अलक्षणदृष्टान्तमाह; अविलक्षणमिति पाठे मृद्रूपतया मृत्पिण्डो घटेन अविलक्षणः सदृशः पृथुबुध्नोदराद्याकारतया जलधारणाहरणाद्यर्थक्रियाकारितया च विलक्षण इति।

१०.४.५ सच्चउ ···आयण्णहि—(ग पं) यस्यान्तरङ्गं उपादानभूतं यत्कारणं तत् सत्यं कथयामि, आकर्णय; णाणहो·· मण्णहि—(ग पं) ज्ञानस्योत्पाद्यमानस्योपादानकारणं ज्ञानमेव उपयोगलक्षणलक्षिता-त्मैवेत्यर्थः।

१०.४.६ बद्धउ····निरुद्धउ—(ग पं) साङ्ख्यमतमाश्रित्य त्वया सूचितं सदैव जीवो मुक्तः, बद्धो जीव इति तन्मोह;[६] अज्ञानमेतत् प्रकृतेरेव बन्धसद्भावात् यथा दर्पणे मुखमेव सम्बद्धं, मोहवशान्मुखदर्पणे सम्बन्ध [सम्बद्ध[७] ?] मिति दर्पणे वदनाभासो न[७] पुनः सत्यो वदनप्रतिभासस्तत्रेति।

१०.४.७ अत्र दूषणमाह—अवियारिउ···असारउ—(ग पं) अयं सिद्धान्तस्त्वदीयो[८]ऽविचारितः—विचार-क्षमो न भवति यतो विघटितेन युक्त्या विचार्यमाणः, अतो असारोऽयमिति प्रेक्ष्य अवलोकय त्वं मध्यस्थो भूत्वा, दर्पणे हि मूर्ते वदनं मूर्तं तावन्न प्रविशति अतः शरीरस्थवदनं मुक्त्वा दर्पणे वदनं कथं दृश्यते? किन्तु शरीरस्थमेव वदनं तत्प्रतीयते तत् प्रतिपत्तौ च प्रकृत्या प्रदर्श्यते।

१०.४.९ दप्पणतेय····विवरेरउ—(ग पं) दर्पणतेजसि मिलितं नायनं—तेजः[९], (पं) नायना रश्मयः, होइ विवरेरउ—दर्पणेऽभिमुखं सत् व्याघुट्य शरीराभिमुखं भवति तदिदमाश्चर्यम्, नच्छेउ—(पं) नेद-माश्चर्यम्।

१०.४.१०-११ चक्खु ''' अवलोयइ णाणु वि····मिलियउ—(ग पं) चक्षुषा निरुद्धं दर्पणतेजसा प्रतिहतम्, पुरउ—अग्रे स्थितं, शुद्धं दर्पणे स्थितं स्वरूपम्, न विलोयइ—न पश्यति, वदनस्वरूपं तु वलेवि—व्याघुट्य अवलोकते, तत् प्रभवं च ज्ञानमपि कर्मशक्तिसंचालितं[१०] मिथ्यात्वकर्मोदयसहितं मिथ्यादर्शनसहचरित-

---

५ पं °हसितो। [१०.४] १ पं °णति। २ पं दिनामूहूर्तेन। ३ पं अण्णु जे। ४ ग अंतरंग°। ५ पं °कार्यस्य। ६ पं °हो। ७ ग नः। ८ पं °सिद्धांतं त्व°। ९ पं तेजो। १० पं संच°।

मुत्पद्यते; मिच्छियमिति पाठे–मिथ्यादर्शनेन मिलितं जायत[11] इत्यर्थः, तथा च मोहवसे[शे]न—मोहनीयकर्म-सामर्थ्येन अविवेकसामर्थ्येन वा ।

१०.४.१२ वत्थु—(ग पं) दर्पणस्वरूपं मुखविम्बितम्, मुखं तु शरीरप्रदेशवर्ती[12] इति एवंविधं वस्तु-स्वरूपम् ।

१०.४.१३ वियाणहि[13]—(ग पं) विशेषेण जानीहि; सुद्ध....कुरु तिह—(ग पं) माम ! तथा कुरु त्वं सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा यथा स्वरूपं पश्यतु[14] इत्यर्थः ।

१०.४.१४ सुहभावें....खवइ—(ग पं) दुर्लभं मनुष्यत्वं लब्ध्वा शुभभावेन सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपरिणामेन अशुभं मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रं न परित्यजति, तथा शुद्धेन भावेन परमोदासीनतालक्षणेन न त्यजति, विपिण विशुद्धाशुद्धभावो[15] क्षपयति ।

१०.४.१५ अमइ—बुद्धिहीनः[16] ।

१०.५.१-३ अइ....अबद्ध उ—(ग पं) अथ साङ्ख्यमतमवलम्ब्य एकान्तनयेन अबद्धो जीवो[1] इष्यते[2] तदा—अच्छइ....सुविसुद्ध उ – (ग पं) आस्तां परितः[3] सुविशुद्धो जीवो यतः—पुग्गल....वियारिज्जइ—पुद्गल-कर्मणा तथाभूतो जीवो न विकार्यते[4] सुखदुःखादिस्वरूपां परिणतिं न नीयते; तेण वि....किज्जइ—तेनापि शुद्धस्वभावेनात्मना, तणुहं[5]—शरीरस्य, न काइ मि[6]—न किमपि विविधव्यापारादिलक्षणं फलं क्रियते; यत् च चार्वाकमताश्रयेन अप्पु पोग्गलु भणिउ[7] स मोहु—(ग पं) आत्मा पुद्गलः शरीरपरिणामस्वरूपो[8] भणितः, स मोहः, तन्मोहविजृम्भितं भवतीत्यर्थः[9], अतः करहि कम्मु—(ग पं) धर्माधर्मसंज्ञकं कर्म कुरु ।

१०.५.७ किब्बिसु[10]—(ग पं) किल्विषं पापं तदेव विषः[11] ।

१०.५.८ दिसवि—(ग पं) पापोपदेशं दत्वा ।

१०.५.१० पावकम्मे....अग्गेसरु—(ग पं) पापकर्मविषये ईश्वरः उपाध्यायः अग्रेसरश्च ।

१०.५.११ सोज्जे....संसारिउ—(ग पं) स एव, यः[12] आत्मा समोहः मोहनीयकर्मग्रस्तः[13] स संसारी अभिधीयते; °खारिउ—(ग पं) कर्षितः इत्यंभूतस्य आत्मनः ।

१०.५.१२ अहमिव मइ—(ख ग पं) अहमिति मतिः, जा—यावत्, ता—तावत्, कम्मरइ.... बंधगइ—कर्मोपार्जने रतिः आसक्तिः सैव जीवस्य बन्धगतिः, बन्धश्च कर्मभिः संश्लिष्टः, गइ—गतिश्चतुर्गति-परिभ्रमणम् ।

१०.५.१३ [14]कवाभावि—(ख ग पं) विकल्पपरित्यागेन परमोदासीनतायाम्; विसुद्धु ठिउ—(ख ग पं) शुभाशुभकर्मोपार्जनरहितः; सो मोक्खु....सिउ (ख ग पं) स मोक्षः सकलकर्मकलङ्करहितो विशुद्धः आत्मा मोक्षः निरञ्जनः शान्तः शिवः[15] इत्यादिभिः शब्दैरभिधीयते ।

१०.६.४ हयतमाकि—(ख ग पं) स्फेटितशकर-तमोनिकरः ।

१०.६.८ कम्मकीउ—(ख ग पं) [1]कर्मक्रीतमुपाजितं येनासौ कर्मक्रीतः ।

१०.७.२ बलविसुद्धु—(ख ग पं) बलेन विश्रब्धः[1] अतिपुष्टो[2] मन्दगतिरित्यर्थः ।

१०.७.३ तं महुरु....[3]वहंतु बाह—(ख ग पं) तं–तत्, महुरु—मधुरं स्मरन् अन्यत्पदार्थभक्षणे बुभुक्षा[4] बाधां पीडां, वहंतु—वहन्, धरन् (ख) धरंतु ।

---

११ ग °ते । १२ पं °र्ति । १३ पं °र्णाहि । १४ पं पश्येत् । १५ पं °भावं । १६ पं °हीनाः । [१०.५] १ पं जीव । २ पं ईप्यते । ३ पं परतः । ४ ग विचार्यते । ५ ग तनुहे । ६ पं वि । ७ पं °तं । ८ ग °रूपं । ९ पं भवे[दि]त्यर्थः । १० ग किं विसु । ११ ग विषं । १२ पं य । १३ ग °गुग्नः । १४ पं कवाभावे । १५ पं शिव । [१०.६] १ पं कम्मंकृत° । [१०.७] १ ख विशुद्धः । २ पं °पुष्टा । ३ पं अहंतु । ४ पं बुभक्षां ।

१०.७.५ तिट्ठमाह—(ख ग पं) असरालतृष्णाम् ।

१०.७.६ एक्कल्लउ—(ख ग पं) [5]अतितृष्णावशःत् एकाकी भट्टपुत्रमेकमपि [6]ससहायं न चरति, मणि-वाणिज्ये तृष्णा यस्य[7]; पीय····दिट्ठु—(ख ग पं) [8]पूर्वं पीतं सरसि सलिलं यत्र तत्तथाविधं पीतसरः सलिलं दृष्टं ।

१०.७.७ चोरहिं मुसिउ—(ख ग पं) ततो अग्रे गच्छन् चौरैर्मुषितः ।

१०.८.२ गुरुपंथसंतु—(ग पं) बृहन्मार्गश्रान्तः ।

१०.९.२ जमाइट्ठ[1]—(ग पं) यमेनादिष्टः[2] ।

१०.९.८ वेलाणई तीरे पत्तो—(ख ग पं) समुद्रोपकण्ठनदी [3]तस्यां वेला घटति ।

१०.१०.६ निउ सेणें—(ख पं) [1]नीतं सञ्चाणकेन ।

१०.१०.१० अहयाणए—(ख ग पं) पुंश्चल्याः[2]; देवि कक्खु—(ख ग पं) अभिमुखमवलोकयित्वा ।

१०.१०.१४ कक्काणकारि—(ख ग पं) हत्युपहासकारी वचनमेतत्; [3]तउ बुद्धिफल—(ख ग पं) तव बुद्धिफल सञ्जातमित्युपहासवचनम्[4] ।

१०.१०.१५ अवगमहि—(ख ग पं) जानीहि ।

१०.१२.३ विवण्णु—(ख पं) मृतः ।

१०.१४.६ बोलु—(ख) नटाव: [नटवः ?] ।

१०.१४.८ उरि—(ख) पुरि ।

१०.१५.५ तवंगे—(ग पं) प्रासादे ।

१०.१५.७ कज्जविमुक्कउ—(ग पं) कृत्याकृत्यविवेकशून्यम् ।

१०.१५.९ वेमिणि—(पं) विलासिनी ।

१०.१६.१ चंगाहिहाणु—(ग पं) चंगउ नाम ।

१०.१६.२ उप्पुंछिय—(ख) मुंडित, (ग पं) पश्चाद्भागमण्डित ।

१०.१६.३ चूल—(ख ग) कक्कल, (पं) चूलम् ।

१०.१६.४ कण्णंत—(ग पं) कर्णमध्य ।

१०.१६.५ नव····पवरु—(ग पं) नवानि प्रत्यग्राणि तानि कुसुमानि फलानि-पुष्पाणि तेषां सञ्चः सञ्जातो माला वा, तेन गर्भिणः-उपचितः (पं) स चासौ कचश्च केशभारः ।

१०.१६.६ [1]उप्फोडिय—(ख पं) समारितः ।

१०.१६.११ सहायसहु[2]—(ग पं) सहायशोभः ।

१०.१६.१२ संवाहियउ—(पं) वहितः ।

१०.१७.२ रूढ—(ख ग पं) रूढः उराघः प्रौढो वा ।

१०.१७.३ निरोहम्मणु—(ख ग पं) निरोधभाजनम् ।

१०.१७.७ विहप्फ—(ख ग पं) विकल्पक: ।

---

५ पं अपि° । ६ ग सहायं । ७ ग यस्या । ८ पं पूर्वपीतसरसि । [१०.९] १ पं दट्ठा । २ पं जमेनादृष्टः । ३ पं तस्या । [१०.१०] १ पं नीतो । २ पं °चल्या । ३ पं तव । ४ पं °हास्यवचनम् । [१०.१६] १ पं उप्फेडिय । २ पं °सहु ।

१०.१७.१२ विवण्णु—(ख ग पं) विकल्पकल्पः ।

१०.१७.१३ सुरहिएहिँ[1]—(ग पं) देवानामपिहितैः ।

१०.१७.१५ भूओ वि—(ख ग पं) भूयोऽपि, पुनरपीत्यर्थः; राउ—(ख ग) राजा ।

१०.१८.२ वंचियपवंचेण—(ग पं) परित्यक्तमायाप्रपञ्चेन ।

१०.१८.३ जुत्तोपउत्तेण—(ग पं) युक्तिज्ञेन ।

१०.१८.४ पोमाइउ—(ग पं) प्रशंसितः ।

१०.१८.५ कइरवबणाणं—(ग पं) कुमुदसङ्घातानाम् ।

१०.१८.६ तं तक्कराचाह—(ग पं) तत् तस्कराचारः[1] चौराचारः इत्यर्थः[2] ।

१०.१८.७ गयण···हरे—(ग पं) आकाशसमुद्रे; दिवसयर—(पं) दिवसतरे; दोसडिहि—(पं) दुष्टस्टैः[3]; अरहंति—(पं) अवस्थानं अक्रममाना, संघट्ट—दिवसकरदुस्तटैः अभिघातः ।

१०.१८.६ सियवट्टुव—(पं) श्वेतपट्ट इव; सउणगण—(पं) पक्षिगणः ।

१०.१८.१० तयाहाह—(पं) तदाकारो, तारोडु माणिक्कसंदोडु—निसिनीग[°का ?] धारयस्य तारोत्कस्य स अन्यत् माणिक्यसन्दोहः ।

१०.१८.११ उययाचले—(ग पं) उदयाचले; उइउ रवि—(ग पं) उदितः सूर्यः ।

१०.१८.१२ भवधारहो—(ग) संसारधारकस्य, (पं) भवधा° ।

१०.१६.५ णव····सुहं—(ग पं) नहरतिसुखम् ।

१०.१६.७ सिरहियं—(ग पं) शिरसि धृतं स्थापितम् ।

१०.१९.१२ सायरो—(ग पं) सादरः ।

१०.१९.१३ पासजणणंदणी—(ग पं) पार्श्वजनाः प्रेक्षकजनास्तेषां नन्दिनी[1] वृद्धिकर्गी[°रा] ।

१०.१६.१४ वहल···संठिया—(ग पं) प्रचुररसाढ्या; मंदणी—(ग पं) स्त्रङ्गटः ।

१०.१९.१६ सेवियरयइं—(पं) सेवितभूमी ।

१०.२०.५ वित्तमुत्ताहलु—(ग पं) वृत्तानि मुक्ताफलानि यत्र, विशेषेण वा इतं गतं मुक्तानां कर्मबन्धरहितानां फलं येन रागवृद्धिहेतुतया हि तेन फलं त्यक्तम् ।

१०.२०.६ विहरंतें[1]····कंकणु—(ग पं) विचरता यत्र तत्र नरजन्मनः कंकणु—कं—पानीयम्, तस्य कणं—लवं, नरजन्मनः[2] पानीयं दत्तमित्यर्थः ।

१०.२०.७ तउ मुद्दिउ—(ग पं) ततो (पं ततः) मुद्रिना ।

१०.२०.८ सपरियर—(ग) परिकरसहिता, (पं) परियरंदुलकशट्टिकया सहिता; सत्थी—(ग पं) छुरिका; लोहिणि—(ग पं) लोहनिर्मिता, लोभिनी, लोहमयावस्तु; बंध-समत्थी—(ग पं) बन्धसमर्था यत कारणात् ।

१०.२०.११ आसउ—(ग पं) आश्रयः ।

१०.२०.१२ परिहारु—(ग पं) मोचनम् ।

[१०.१७] १ पं °हिएहि [१०.१८] १ पं °चारो । २ पं °चारमित्यर्थः । ३ पं °स्टैः[°तटैः] । [१०.१९] १ पं नंदनी । [१०.२०] १ पं वियरंतें । २ पं °जन्मनो ।

१०.२२.११ बहिरत्तु वि आयहो भणिउ—(ग पं) बाह्यत्वमथास्य भणितम्; कउ—(ग पं) कुतः ।

१०.२२.१२ बहिद्दव्वावेक्खहे—(ग पं) आहारादिबाह्यद्रव्यापेक्षया[2] कुतो गुणो बाह्यत्वम्; अण्णु[3].... पुणु—(ग पं) अन्यदपि यद्बाह्येन्द्रियैः प्रत्यक्षत्वं तत् कृतमपि बाह्यत्वं तस्य[4] ।

१०.२३.५ पं गाथा अप्पणत्तु—(ग पं) आत्मनः[1] शरीरम् ।

१०.२३.९ गणहरसण्णिहु[2]—(ग पं) सौधर्मस्वामिगणधरसन्निभः सदृशः समीपवर्त्ती वा ।

१०.२३.१० पसरे तउ—(ग पं) प्रभाते ततः ।

इति दशमसन्धिः

सन्धि ११

११.१.१ पं गाथा ।

११.१.२ सयासे—(ग पं) समीपे; सव्वत्थगयवण्णा—(ग पं) सर्वस्मिन् [सर्वत्र ?] गतो वर्णो यशः स्वकाव्यरचिता [ता] अकारादिवर्णा वा येषाम् ।

११.१.३ छुरियउ—(ग पं) छुरिकाः ।

११.१.१० विज्जुल....उवहासणु—(ग पं) अतिचपलत्वेन विद्युच्चपलविलासं उपहसति, ततोऽपि [1]क्षणदृष्टादृष्टतया अतिचपलान्यंतानीत्यर्थः ।

११.२.२ धरियधुरमाणव—(ग पं) सङ्ग्रामधुराधारकाः सुभटा इत्यर्थः ।

११.२.३ सक्कंदणु—(ग पं) इन्द्रः; बहुरिअक्कंदण[1]—(ग पं) वैरिणां प्रकर्षेणाक्रन्दका [:] ।

११.३.२ विवज्जियसंकडे—(ग पं) विवर्जिता मर्यादा येन, भ्रमणेन क्वचिदुत्पद्यते क्वचिन्नोत्पद्यते इत्येवं मर्यादारहितः[1] [2]सर्व उत्पद्यते इत्यर्थः ।

११.३.८ वंदारउ—(ग पं) देवः ।

११.४.९ कलिज्जइ—(ग पं) गण्यते ।

११.५.७ कामंतहं—(ग पं) कामसेवां कुर्वताम् ।

११.७.२ जीवासउ—(ग पं) जीवाश्रितः ।

११.७.४ सिट्ठउ—(ग) श्लिष्टः, (पं) सृष्टः, निर्मितः नित्यसाम् ।

११.८.२ आसियकम्महो—(ग पं) उपार्जितकर्मणः ।

११.९.३ नियाणिय—(ग पं) निर्जिता ।

११.९.४ कीवहं[1]—(ग पं) क्लीबस्य ।

११.९.७ उवय[2]—(ग पं) उदयः ।

११.१०.२ रज्जू—(पं) असङ्ख्यातयोजनकोटिभिः एका रज्जूः; तिहिंमि....धरियउ—(ग पं) घनोदधि-घनानिल-तनवातवलयैः ।

[१०.२२] १ पं कओ । २ पं °पेक्षा । ३ पं अन्नु । ४ पं तस्याः । [१०.२३] १ पं आत्मानं । २ पं °सन्निहु । [११.१] १ पं क्षणदृष्टं तया । [११.२] १ पं बहरियक्कंदण । [११.३] १ पं °रहिते । २ पं सर्वोत्प° । [११.९] १ पं °हा । २ पं उदउ । [११.१०] १ ग पीनोदधि° ।

११.१०.४ तीस""सायर—(ग पं) त्रिंशल्लक्षादिनरकबिलानामाकरः, एकसागरोपम आयुः एकादि-सप्तभूमिषु बोधव्यम् ।

११.१०.१० पं घत्ता–धणुहइं""सवातिण्णि—(ग पं) सप्तधनूंषि त्रयो हस्ताः[2] षडङ्गुला उत्सेधः,[3] धनुः ७, ह० ३, अं० ६ ।

११.११.१ परिखंडिङ—(ग पं) परिछिन्नः ।

११.११.८ हिमायल-उवहिहिं—(ग पं) हिमवत्पर्वतसमुद्राभ्याम् ।

११.११.६ आयारें—(पं) आकारेण; रोवियधणु—(ग) आरोपितधनुः चटापितधनुः ।

११.११.१० तउ—(ग पं) ततः ।

११.१२.२ नव-गेविज्ज (पं °गेव°)—(ग पं) 'नव' शब्देन नवानुदिशा गृह्यन्ते, 'गेवज्ज' शब्देन नवग्रैवेयकाः; उवरि—(पं) उपरि ।

११.१२.३ बिण्णि""सायर—(पं) सौधर्मैशानयोः द्विसागरोपमायुः इत्यादि बोधव्यम् ।

११.१२.५ सुहायरु—(ग) शुभकरः, (पं) शुभाकरः ।

११.१२.१० सुहावइ—(ग पं) सुधा-अमृतम्, तस्याः पतिः ।

११.१३.६ घुसिणं—(पं) कुङ्कुमम् ।

११.१४.२ कयदोसेसु—(ग पं) कृतदोषेषु प्राणिषु ।

११.१४.३ जाइमयाइ—(ग पं) जातिमदादि ।

११.१४.५ पत्त""वि तहो—(ग पं) कस्यचित् सम्बन्धोयः स[1] परिग्रहः सुवर्णादिपदार्थः तत्र-लोभं त्यजतां निर्लोभानां शौचं भवति ।

११.१४.१० परिवज्जियकिंचणु—(ग पं) आकिञ्चन्यमित्यर्थः ।

११.१५.२ मुणंतहो—(पं) अभिलपतः ।

११.१५.११ सोयार—(ग) श्रोतॄणाम्; समदिट्ठिहिं—(ग पं) सम्यग्दृष्टेः मध्यस्थदृष्टेर्वा ।

पं इति श्री जम्बूस्वामिचरित्रे एकादशम सन्धिः समाप्त ॥११॥

प्रशस्ति

१. वरिसाणसयचउक्के—(ग) ४७० । २. छाहत्तरदससएसु—(ख ग) १०७६ ।

---

२ पं °हस्ता । ३ पं उत्सेधं । [११.१४] १ पं सप्त ।

शब्द-कोष

'अ'

अ–च ३.११.६;५.१३.१७

अइ–अति १.१२.४;८.१३.९

√अइक्कमंत–अति + क्रम् + शतृ० ८.८.८

अइकिण्ह–अतिकृष्ण ४.१३.१४

अइट्ठ–अदृष्ट १.५.१८

अइमुत्तअ–(i) अति + मुक्तकः—स्वच्छन्द
(ii) पु० अतिमुक्तक (पुष्पम्) ३.१२.१२

अइवाइ–अतिशायी, मात करनेवाला १०.१.९

अउव्व–अपूर्व ९.२.४

अंक–अङ्क, आसन ८.१२.१२

अंकियंग–अङ्कित + अङ्ग १०.१.१२

अंकुरिअ–अङ्कुरित ४.१९.१३

अंकुसिय–अङ्कुशित ४.१९.१५

अंकोल्ल–वृक्ष एवं पुष्प विशे। ५.८.८;५.१०.९

°अंग–अङ्ग ६.११ ८;७.२ ८;९.११ ८

अंगरक्ख–अङ्गरक्षक ३.४.९;४.१२.१५

°अंगरुह–अङ्गरुहः, पुत्र प्रश० १७;३.५.१०

अंगार–अङ्गार ६.६.२

अंगारपुंज–अङ्गारपुञ्ज ९.१५.१५

°अंगुलि–अङ्गुलि २.५.१३;४.१३.३

√अंच–अर्चय्. अंचवि ५.१.५

अंजण–अञ्जन वृक्ष ३.९.१७;५.८.७

अंजलि–अञ्जलि ८.७.५;११.१.७

°अंत–अन्त २.४.१

अंत–अन्त्र, हि० आंत ४.३.२

अंत–अन्त:, आभ्यन्तर ९.१६.६

अंतड–अन्त्र, हि० आंत ४.२.१७

अंतर–अन्तर १.४.९

अंतरसुद्धि–अन्तरशुद्धि १०.२०.१२

अंतरंग–अन्तरङ्ग, आभ्यन्तर बहादुन १०.४.१

अंतराअ–अन्तराय (कर्म)

अंतराअ–अन्तराय, विघ्न २.१५.८

अंतराल–अन्तराल ५.११.१०;९.५.९

अंतरिअ–अन्तरित १०.१३.७

अंतडिअ–अन्त्रडी हि० आंतें ६.१०.३

अंतेउर–अन्तःपुर ६.८.८;१.१९.१४;३.३.१४

अंतोघण–अन्तर्घन ८.१४ १०

अंथवण–अस्तगमन ८.८.१४

अंध–अन्धः २.२०.६

अंध–आन्ध्रः (देश) ९.११.१

अंधय–अन्धः + क (स्वार्थे) ९.१३.१४

अंबल–अम्ब २.६.८

°अंधयार–अन्धकार ८.१५.५

अंधारिय–अन्धकारित ६.५.४;१०.२५.१०

अंब–अम्बा, मातः २.१७.२

°अंब–आम्र ४.२१.२

°अंबर–अम्बर, आकाश, १.१५.७;४.८.१२;५.६.७;
१०.१९.६

अंबादेवय–अम्बादेवता, अम्बादेवी १.२.६

अंसु–अश्रु ४.११.१;९.१०,१२

अकत्तिअ–अ + कार्तिकः ४.८.१२

अकम्म–अकर्म ९.१५.४

अकयवंगु–अविकृताङ्ग ७.१.१३

अकलंकिअ–अ + कलंकित २.१४.३

अकसाय–अकषाय ११.७.७;११.७.१०

अकहिज्जमाण–अकथ्यमान १.१.१५.

अकिट्ठ–अ + कृष्ट १.१३.६

अकित्ति–अकीर्ति ५.१३.२१.

अकुलीण–(i) अ + कुलीन
(ii) अ + कु + लीन ६.५.२

अकुसल–अकुशल ११.९.३

अक्क–अर्क, सूर्य ४.५.१.,५.१३.६

अक्ख–(i) अक्ष, रावणका एक पुत्र
(ii) अक्ष-बहेड़ा वृक्ष, ५.८.३४

√अक्ख–आ + ख्या ४.१.३;५.४.८;५.१३.३३;
°इ ९.१५.१०;१०.१६.११
°ए ९.१६.८

अक्खय–अक्षय २.१२.४

अक्खय–अक्षत बिना टूटे सफेद चावल ७.१२.५

अक्खयणिहि–अक्षय + निधि ३.१४.१९

अक्खयतइय–अक्षय + तृतीया ४.१४.२१
अक्खर–(i) वर्णमाला अक्षर
(ii) अक्षर—अंक संख्या २.१४.५;८.३.१
अक्खाण–आख्यान ९ ५.१.
अक्खाणअ–आख्यानक १०.१२.९
अक्खिअ–आख्यात १.१५.८;४.४.२;६.१.१७
अक्खिय–आख्यात ३.१०.६;५.२.१०
अक्खुहिय–अक्षुभितः, अक्षुब्ध ४.२१ १५
अक्खयाणिहाण–अक्षयनिधान ३.८.६
अखिल–अखिल १०.१.१०
अखुहिय–अ + क्षुभित ४.२१.११
अगज्जर–अ + गर्ज् + इर (त,च्छील्ये) २.३.३
अगण–अ + गणय, अगणय,
अगणयित्वा ५.७.२६
अगणंत–अ + गणय् + शतृ
°हिं २.१०.९
अगलिय–अगलित ६.३.१०
अगाह–अगाध १०.१७.८
अगुण–(वि०) अ + गुण निर्गुण ४.१.१
अग्ग–अग्र २.१२.१४
अग्गअ–अग्रतः १०.१९.१२.
अग्गए–अग्रतः हि० आगे. ४.४.१;५.१०.९;५.१३.१४
अग्गाहार–अग्रहार २.४.८
अग्गिम–अग्रिम ८.५.७
अग्गिवंत–अग्नि + मतुप् ७.१.९
अग्गेय–आग्नेय ७.९५
अग्गेसर–अग्रसर १०.५.१०
अघडिय–अघटित ८.९.६
अचप्पिअ–अ (न्) + आक्रान्त, अनाक्रान्त ५.३.२
√अचयंत–अ + त्यज् + शतृ ९.९.४
अच्चंभअ–आश्चर्य हि० अचंभा १.१३.२,
अच्चग्गअ–अति + अग्रल ८.१०.१६
अच्छ–(दे) अच्छा, स्वच्छ ४.१३.९
√अच्छ-आस् °इ ५.१.३१
अच्छंतहिं ३.१.६
अच्छर–अप्सरा १०.१५.१
अच्छरिअ–आश्चर्य ३.६.११
अच्छि–अक्षी, नेत्र ४.१७.८
√अच्छिज्ज–(i) आस् (कर्मणि) °इ ९.१०.४
अच्छिण्ण–अच्छिन्न ९.९.९
अच्छेरअ–आश्चर्य (कारक) ९.१०.१३
अच्छोडिअ–अवमुक्तः अवछोटितः हि०
छोड़ना ७.१०.१८
अजंगम–अजङ्गम-अचेतन २.१.७;११.६.१
अजिब्भ–अजिह्व २.२०.५
अज्ज–आर्य १.७.६
अज्ज–अद्य, आज २.१०.१०;४.१४.१२;७.११.१०;
१०.१२.९
√अज्ज–अर्जय् °वि ९.८.१६
अज्जवभाव–आर्जवभाव ११.१४.४
अज्जवसू–आर्यवसु पु० २.५.२
अज्जिआ–आर्यिका १०.२१.५
अज्जिय–अर्जित ३.९.१८;३.११.२
अज्जिया–आर्यिका ३.१३.१४;१०.२१.४
अज्जेणअ–अद्यतन ५.२.१०
अज्जुण–(i) अर्जुन पाण्डव (ii) अर्जुनवृक्ष ५.८.३१
अज्झाण–अध्वान २.८.९
अट्ट–आर्त ११.९.५
अट्ठभेय–अष्टभेद ११.१२.८
अट्ठम–अष्टम हि० आठवाँ १.१६.८;८.१६.१८
अट्ठवरिस–अष्टवर्षीयः ३.४.६
अट्ठसहस–अष्ट + सहस्र १.१२.१;६.१४.२०
अट्ठारह–अष्टादश हि० अठारह २.५.१०;१०.२३.१०
अट्ठिवाउ–अस्थिवात ३.११.४
अडइ–अटवी १०.७.१;१०.१३.१०
अडयणा–(दे) व्यभिचारिणी स्त्री १०.१०.१०
अडवी–अटवी १०.७
?अडोहिय–अ + दोहित, मथित, अवगाहित ५.१०.२
?अड्डवियड्ड–अर्द्धवितर्द, आडे, टेढ़े, ११.६.२
?अड्डाइय–अर्द्धत्रिक, ढाई ११.११.११
अणउ–अ + नय अनीति ५.१३.८
अणंग–अनङ्ग ३.१२.१६;४.१३.३; ५.२.१४
अणंत–अनन्त २.२.१०;३.१४.१९
अणत्थ–अनर्थ ५.१३.७;९.१२.११
अणयचार–अ + नय + चार अनीत्याचार
५.१२.२४
अणवरय–अनवरत ५.१.२८;१०
अणसण–अन + अशन् अनशन २.२०.९;१०.२१.८
अणाइ–अनादिः ११.५.८
अणिच्च–अनित्य ११.१.५

अणिट्ठ—अनिष्ट २.२.८
अणिट्ठसंघ—अनिष्ट + संघ ४.५.८
अणिमिस—अनिमेष निर्निमेष ८.९.८
अणियच्छिय—अ + दृष्टः १.१.६
°अणिल—अनिल ६.८.५
अणुअ—अनुज २.५.१०;२.८.७
अणुकारिअ—अनुकारी ५.१.२५
अणुग्गह—अनुग्रह १०.२०.१
√अणुचिट्ठ—अनु + चेष्ट (विधिलिङ्ग)
°वउ ३.७.१६
√अणुणअ—अनुनय् ४.१७.१
√अणुणत—अनुनय् + शतृ ९.३.११
अणुदिट्ठय—अनुद्दिष्ट १०.२१.९
अणुदिण—अनुदिन २.८.४३;३.११.५
अणुपेहा—अनुप्रेक्षा ११.१५.१४
√अणुमण्ण—अनुमोदय् °ण्णिवि ७.७.८
अणुमण्णिअअ—अनुमोदित २.८.११;२.१२.३
अणुमाण—अनुमान ११.३.७
अणुमेअ—अनुमेय १०.२१.९
°अणुराय—अनुराग ९.१७.११;११.१.११
अणुरूव—अनुरूप १०.९.४
अणुहरत—अनुहरत १.१०.२
अणुवच्च—अनु + व्रज् °वि २.१२.४
अणुवल—अनुबल, सहायक सैन्य ५.४.१७
अणुविक्खा—अनुप्रेक्षा ११ १५.१४
अणुवेक्ख—अनुप्रेक्षा ११.३.१
अणुवेक्खा—अनुप्रेक्षा ११.१.४
√अणुसंचअ—अणु + सञ्चय् °इ अणु
कमपरमाणु संचय ११.७.८
अणुसर—अनु + सृ °मि १.२.६
°राव ९.३.१३
अणुसासिउं—अनु + शास् + तुमुन् सन्मार्गे
प्रवर्तयितुम् (टि०) १.म०.१२.
√अणुहर—अनु + हृ २.१६.१४;१०.१४.१६
°हरंत—अनु + हृ + शतृ ९.९.११
अणुहरिअ—अनुसृत ४.१९.२२;९.३.२
√अणुहव—अनुभव °इ २.१.१४
°हांववि १०.१७.१९
°हविअ—अनुभूत १०.१७.१७
√अणुहुंज—अनु + भुञ्ज °हि ५.४.१८
°हुंजि—(विधि०) १०.१०.१६
अणूव—अन् + उप(म) अनुपम ४.१९.२२
°अणेय—अनेक १०.२६.३
अण्ण—(i) अन्य १.२.१२;२.१६.५;४.१४.१०;
६.८.१०;९.८.७; (ii) आत्मभिन्न ११.५.१
अण्णत्ताणुविक्ख—अन्यत्वानुप्रेक्षा ११.५.१
अण्णत्थ—अन्यत्र १०.१०.५
अण्णवण्ण—अन्य + वर्ण १.२.१४
? अण्णहि—अन्यत्र १०.२५.५
अण्णहो—अन्यस्य ३.६.८
अण्णाण—अज्ञान ८.३.७;११.८.७
अण्णामिउअ—आ + नम् (कर्मणि) °इ १.७.८
अण्णालाव—अन्यालाप, अन्योक्ति २.१२ ७
अण्णासिरी—अन्या + श्री ४.८.११.
अण्णेक्क—अन्य + एक १.२.८
अण्णे तहिं—अन्ये तत्र ११.१२.८
अण्णेसअ—अन्वेषय् °वि १०.११.८
अण्णोण्ण—अन्योन्य ७.६.२;९.१८.८
अतित्त—अतृप्त °उ १.११.४
अतिव्व—अतीव्र २.३.३
अत्थ—अर्थ, धन ३.१४.२२;८.६.१३;१०.३.७
अत्थ—अर्थ-पदार्थ २.१.८
अत्थ—शब्दार्थ, भावार्थ ७.१.४;८.२.८
अत्थइरि—अस्त + गिरि-अस्ताचल ६.१०.१४
अत्थंगय—अस्तंगत ८.१४.१३
√अत्थंत—अस्तं गम् + शतृ ५.७.३;८.१३.९
अत्थछेअ—अर्थछेद ९.४.१०
अत्थवण—अस्तवनम् ८.९.१४;१०.२४.४
अत्थवणहो—अस्तवनस्य ८.१४.४
अत्थसिहर—अस्तशिखर ८.१४.६
अत्थाण—आस्थान, सभा ५.१.७;५.१२.८;७.६.३६
अत्थाणुरूव—अर्थ + अनुरूप ७.१.३
अत्थात्थि—अर्थ + अर्थी ८.८.९
अत्थि—अस्ति १.४.१;३.१०.१०
अत्थिजण—अर्थीजन ३.३.११
अथाम—अ + स्थाम ४.२१.१६
अदक्खिकय—(दे) निर्भय ९.१४.१४
अदीण—अदीन १०.२६.९
अद्ध—अर्द्ध ७.१०.६

अद्धंजिअ–अर्ध + अञ्जित ४.११.९
अद्धक्खर–अर्द्ध + अक्षर ९.१३.११
अद्धरत्ति–अर्द्धरात्रि ९.३.१०;९.११.१६;१०.९.१
अद्धासण–अर्द्ध + आसन ५.१.५
अद्धुव–अध्रुव ११.१.१३
अद्धेंदु–अर्ध + इन्दु ४.१३.४
अधीर–अधीर १०.२६.७
अन्न–अन्न १०.१२.१०
अपाउस–अ + प्रावृष ४.८.१३
अपूर–अ + पूर ५.५.१२
अपेअ–अपेय १.६.१०
√अप्प–अर्पय् °इ १.११.२०
अप्प–आत्मा, आत्मनः २.७.१;६.५.२;
९.११.६;११.६.९;११.८.९
अप्पउ–आत्मनः ८.१४.१५,९.१.१३;
९.१४.१२
√अप्पअ–अर्पय् °इ २.१९.९;५.४.४;
अप्पिवि १०.२१.३
√अप्पंत–अर्पय् + शतृ ८.१४.९
अप्पाण–अप्पाण, आत्मनः १०.१३.४;११.७.७
११.१५.२
अप्पणअ–आत्मनः १०.१८.९
अप्पणत्त–अपनत्व १०.२३.५
अप्पमाण–अ + प्रमाण, असीम ५.३.३;५.४.१
अप्पकप्पिय–आत्मकल्पित १०.२३.६
अप्पाणअ–आत्मनः ९.५११; ९.६९; ११.३.७
अप्पिअ–अर्पित ९.१३.३;१०.१०.१
अप्पिट्ठ–अस्पृष्ट १०.२.८.
अप्पिय–अर्पित ९.१३.१३
अप्फालिअ–आस्फालित १.१४.५;७.८ ८
अबल–(तत्सम) बलहीन ११.७.५
अबाहि–अबाध, निर्बाध ३.१०.४
अब्बुय–अर्बुद, आबू पर्वत ९.१९.६
अब्भंतर–आभ्यन्तर ३.२.४;७.११.१२
१०.२३.१०
अब्भंतरिअ–आभ्यन्तरिक १०.२३.८
अब्भत्थण–अभ्यर्थना १.२.६;३.९.५
√अब्भस–अभि + अस् °इ २.२०.२;
अब्भसियअ–अभ्यस्त ४.९.६.;४.१७.१९
अब्भहिअ–अभ्यधिक ९.६.८

अब्भास–अभ्यास १.२.४
√अब्भिड–(दे) सामने आकर भिड़ना
°इ ६.१.८;६.१४.१०;७.३.४
अब्भुत्थाण–अभ्युत्थान ८.९.३
√अभउ–अ + भू, अभूतः ३.५.११
°अभाउ–अभाव १०.३.६
°अमय–अमृत १०.१.९
अमयमहु–अमृतमधु ९.१.९
अमर–(तत्सम) ३.३.३;४.४.७
८.४.१४;११.७.१
अमरगय–अमर + गज-ऐरावत १.११.३
अमरालय–(तत्सम) स्वर्ग ३.१.५
°अमरिंद–अमरेन्द्र ४.१.५
अमल–अ + मल, निर्मल ११.१२.११
अमाण–अ + मान २.१३.१०;११.८.७
अमारिअ–अ + मारित ७.६.१६
अमिय–अमृत ८.२.१६
अमुक्क–अ + मुक्त, युक्त ३.१०.१
√अमुणंत–अ + ज्ञा + शतृ ३.१.१३; ७.११.१३
अमुणंति ९.१३.१
अमुणिय–अज्ञात ५.१४ ११;७.६.२३
अमेह–अमेघ १०.१७.८
अमोहउ–'अमोघ', प्रचुर १.१३.७
अम्म–माता हि० अम्मा ९.२७.६
अम्ह–अस्माकम्, नः ५.११.१५;७.३.१०;७.३.१४
अम्हाण–अस्माकम् ७.३.८
अम्हारम्–हमारा ९.१५.१२
अम्हारिस–अस्मादृश २.१५.१९;४.१८.१५
अयरु–अगरु ९.१२.२
अयस–अयश, अपयश ५.१३.१७
अयाण–अजान, अज्ञानी १.१८.११;१०.२६.७
अयाल–अकाल १.१३.३;४.८.२३
अरहंत–अर्हन्त ४.४ ११
√अरहंति–अ + रह (दे) + शतृ °f (स्त्रियाम्)
१०.१८.७
अरिमित्त–अरि + मित्र २.२०.४
अरिसंकड–अरिसंकट ५.४.५
अरुण–(तत्सम) अरुण २.१४.७
°अरुणच्छाअ–अरुण + छाया १.११.१५
°अरुणत्त–अरुणत्व ६.६.१

अरुहणाह–अरहनाथ, अर्हन्तनाथ ३.१३.७

अरुहभत्त–अर्हन् + भक्त १.११.८

अरुहयास–अरहद्दास (श्रेष्ठि) ४.१.७;४.३.१०;९.१३.२;१०.२१.३

अलंकरिय–अलङ्कृत २.५.२

अलंकार–अलङ्कार ४.१२.१२

°अलंकिअ–अलङ्कृत १.१६.२;३.८.३; °य ४.८.१;५.२.८

अलंभिरी–अ + लभ् + °इरी (ताच्छील्ये, स्त्रियाम्) ४.२१.९

√अलज्ज अ + लस्ज् °इर (ताच्छील्ये) हि० लज्जाहीन १०.१५.५

अलद्ध–अलब्ध ७.६.१८

अलय–अलक हि० अलके १.११.१६

अलयावलि–अलक + अवली ४.१३.३;५.२.१७

अलस–आलस्य १०.२३.४

अलि–(तत्सम) भ्रमर ८.१४.१७;९.९.२

अलिउल–अलिकुल १.१७.६

अलिमाला–(तत्सम) भ्रमर पङ्क्ति १.११.१६

अलिय–अलीक ५.१३.७

अल्लय–आर्द्रक हि० अदरक ७.१.२

अल्लइज–आर्द्रचणकाः गीले चने (टि०) ३.१२.१५

अवइण्ण–अवतीर्ण १.८.८;४.१६.८ °इण्णो ४.१४.२३

अवंती–अवंती ९.१९.८

अवक्क–अवाक् १०.२५.९

अवक्क–अवक्र ११.१४.४

√अवगणअ–अप + गणय् °हि ५.१३.२५ °इ ११.१.१२ °णिवि ९.६.८

अवगण्ण–अप + गणय् (विधि) °हि २.११.११

अवगण्णिय–अवगणित, अवमान ७.६.२६

√अवगम–अव + गम् (विधि) °हि १०.१०.१५

अवजस–अपयश ९.४.६

अवज्ज–अज्ज (देश) ९.१९.९

अवड–कूप ९.७.१६

√अवतस–अप + त्रस् °इ ४.२२.११

अवत्थ–अवस्था ७.२.१६;१०.५.१

अवद्ध–अबद्ध १०.५.१

√अवमाण–अप + मानय् °हि (विधि०) ५.१३.२४

अवमाणिय–अपमानित ७.६.२१

अवमोयर–अवमौदर्य १०.२१.१०

√अवयरंत–अव + तृ + शतृ ५.२.३

°अवयार–अवतार १०.१.७

अवयास–अवकाश २.१.८

अवर–अपर, हि० और २.१८.१४;२.२०.३

अवर–अपरा (स्त्री०) ४.११.१५;८.६.३;९.८.२०

अवरह्ण–अपराह्ण ८.१४.२

अवरत्तअ–अनुताप १०.१४.१४

अवरिक्क–अपर + एक ९.६.३

अवरुंडण–(दे) आलिङ्गन २.१४.९

√अवरुंड–अवरुण्ड, आलिङ्गय्. °डेवि आलिङ्गयित्वा ९.४.१५

अवरुप्पर–परस्पर २.२.२;५.२.३

अवरोप्पर–परस्पर १.१५.८;२.४.११

अवलंबिय–अवलम्बित ६.९.३;७.११.७

अवलोइअ–अवलोकित ९.८.७

√अवलोय–अवलोकय् °यइ ९.१.७;१०.४.१०;११.९.१
°यंत ९.१९.१७;४.१२.१६
°यहि (विधि०) १०.१५.६
°यहु, °यहो (विधि०) ८.९.१२;१०.११.८

अवस–अवश्य १.११.४;३.६.७

अवसद्द–अपशब्द १.२.७

अवसप्पिणी–अवसर्पिणी, कालचक्र ३.१.१०;४.३.१५;११.११.७

अवसर–(तत्सम) ६.३.५;७.३.११

अवसाण–अवसान २.२०.९;९.५.१

अवसार–अपसार, पीछे हटना ५.१४.२२

अवहत्थ–देखें : टिप्पण ५.१४.२१

अवहारण–अवधारण १०.२२.३

अवहि–अवधि (ज्ञान) २.२.७;३.५.१

√अवहुंज–उप + भुञ्ज °अहि (विधि) १०.५.५

अवहार–अपहार, अपहरण ९.५.२

अवाणअ–आपानक ४.१७.१५

अवि–अपि १.५.१२

अविग्घ–अविघ्न १.१८.७

अविज्ज–अविद्या ३.८.१३

अविणट्ठ अ + विनष्ट ८.४.१२

अविणयवंत–अविनय + मतुप् १.७.१

अवितत्तअ–अवितृप्त (वेश्याजन) ९.१२.८
अविद्याविअ–अविद्याग्नि १०.४.७;१०.७.११
अविरुद्धअ–अविरुद्ध, निर्दोष १०.२०.१०
अविलंब–(तत्सम) ३.८.१३
अविलक्खण–अविलक्षण १०.४.४
अविवेई–अविवेकी ७.८.१४
अविवेयहो–अविवेकस्य ९.२.७
अविसाय–अविषाद ११.१५.३
अवहित्त–अ + विभक्त २.५.९
अवेक्ख–अपेक्षा ९.१२.१७
असइ–असती (वेश्या) १०.१०.७;१०.१८.२
असंकिअ–अशङ्कित ८.२.२९
असंभव–असम्भव १०.३.६
असक्क–अ + शक्य ५.१३.३१;६.१.१२
असग्गाह–असद् + आग्रह ५.१३.४
असज्झ–असाध्य ९.१४.४;१०.१५.९
असम–अ + सम, असमान ५.३.१
असमत्त–असमाप्त ८.९.७
असमत्थ–असमर्थ ८.२.५
असरण–अशरण ११.२.१
असराल–बहु, अपर्यन्त
असरिस–असदृश ४.२२.२६
असवार–अश्व + वार, घुड़सवार ६.५.७
√ असहंत–अ + सह् + शतृ २.५.१५; ५.१.१६; ६.४.१०
°ी (स्त्रियाम्) ८.१४.७
असहमाण–असहमान ९.७.१०
असहिय–अ + सह्य ९.७.२
असार–(तत्सम) सारहीन ९.८.८; १०.४.७
असारय- (i) अ + सार (ii) अ + शारदीय ४.८.१९
°असि–अस्ति ६.१.२
असिघाय–असि + घात ६.१.१६
असिद्ध–प्रसिद्ध, अनुपलब्ध ९.४.१२;१०.१४.१५
असिद्धअ–असिद्ध, अप्राप्त ९.१०.२२
°असिधार–(तत्सम) असिधार ६.७.३
असिवसण– ६.१४.१५
असुइ–अशुचि १०.१७.७; ११.६.१;११.६.८
असुत्त–अ + सुप्त १०.९.४
असुद्ध–अशुद्ध १०.२.८
असुह–अशुभ १०.४.१४; ११.७.३
असुहंकर–अ + शुभंकर ११.५.७
असुहाविय–असुखापित, हि० स्वादरहित १.७.६
असेस–अशेष २.१२.११; ६.१.१६;१०.२४.३
असोय–अशोक (वृक्ष) १.१६.१२; ४.१७.४
अह–अथ ३.१२.१८; ९.८.६; ११.८.५
अहं–अहम् १.१८.१; २.१४.३
अहमिंद–अहमिन्द्र १०.२४.१२
अहमिय–अहम् + इदम् १०.५.१२
अहम्म–अधर्म १०.५.४; १०.१०.१३
°अहर–अधर १.११.१५; २.१६.४;४.१७.११
अहर–(i) अधर (ii) अधम ९.१२.१२
अहरत्त–अधरत्व ११.६.७
अहरमुद्द–अधरमुद्रा ४.१९.७; ८.१.१५
अहरबिंब–अधरबिम्ब २.१५.१५;५.१३.२०
अहरुल्ल–अधर + उल्ल (स्वार्थे) २.१४.७
अहरोट्ठ–अधर + ओष्ठ ४.२२.१०
अहरोवाहि–अधर + उपाधि-सन्निधि, नैकट्य १.१०.४
अहरोट्ठ–अधर + ओष्ठ ९.१८.५
अहल–अफल ८.१४.४
अहलीकअ–अफरी + कृत १.११.१६
अहव–अथवा ४.१८.१४; ८.१.४; १०.२३.३
अहि–(तत्सम) अहि, सर्प ४.१०.१३; ८.७.७
अहिअ–अधिक ९.१०.२१; १०.१२.८
अहिणंदिअ–अभिनन्दित २.१३.१
°ादत्त ४.४.९
√ अहिणेउं–अभिनय् + तुमुन् ८.२.१०
°अहिट्ठिअ–अधिष्ठित ४.१३.१९; ५.१.३४
अहिभवण–अहिभवन, नागमंदिर ३.१३.३
अहिमार–वृक्ष विशेष ५.८.६
अहिमुह–अभिमुख ७.१०.१८
अहिय–अधिक ८.२.१
अहिराम–अभिराम १०.१.८
√ अहिलस–अभि + लष् °इ १०.१४.१५
°सिवि ९.७.१२
°हि ५.१४.३
√ अहिलसंत–अभि + लष् + शतृ ९.१०.२१
अहिलास–अभिलाषा १.५.११; २.७.५; १०.७.१०
°अहिलासी–अभिलाषी ४.१४.४
अहिसारिआ–अभिसारिका ८.१५.१
√ अहिसिंच–अभि + सिच् °इ ४.१९.७

अहिहाण-अभिधान, नाम ३.५.११; ३.११.२१; १०.१६.१
अहो-(तत्सम) आश्चर्यार्थे १.१३.१

[आ]

आइअ-आगत १.११.१०; ६.२.१
आइच्चदंसणा-(स्त्री०) आदित्यदर्शना ३.१४.१
आइट्ठ-आदिष्ट ५.६.३
आइण्ण-आकीर्ण, सङ्कीर्ण १०.१९.१६
आइय-आगत ८.४.१३
आउ-आगतः २.१३.२; ६.११.६; १०.८.१४; १०.१७.२; ११.३.३
आउंचिय-आकुञ्चित ८.१३.३
√आउच्छ-आ + पृच्छ् °इ ३.५.५
°च्छेप्पिणु ८.७.२
आउण्ण-आ + पूर्ण ४.६.५
आउत्त-आयुक्त (अधिकारी) ५.१.१०
आउत्तमंग-आ + उत्तमाङ्ग ९.१८.५
°आउल-आकुल ५.१.२०; ५.६.१७
°आउस-आयुष्य ३.१.६; ३.५.८; ८.२.२६; ११.१.६
आउसमअ-आयुष्यमय २.२०.१०
आऊरिय-आपूरित १०.२४.१
आएस-आदेश ३.४.८; ५.२.२२; ८.७.३
आएसिअ-आदेशित १.४.९; ५.१२.१०
आकरिसण-आकर्षण ९.१२.९
आगअ-आगत १०.१८.६
आगब्भ-आ + गर्भ १०.३.१
आगमण-आगमन २.१०.१०; ११.७.२
आगया-आगता ९.१७.७; १०.१८.११
आगुरु-(तत्सम) पूज्य, गुरु-स्थानीय ९.१७.१३
आजाणु-आजानु ९.१८.२
आढविअ-आरब्ध ३.९.१०
√आण-आनय् °इ ३.९.१४
°वि १०.१४.९
°हि (विधि०) ३.९.१२
आणि (विधि०) १०.१५.८
आणिज्जइ (विधि०) १०.१६.८
आणंद-आनन्द ४.१.१४;४.८.४
आणंदण-आनन्दन-आनन्ददायक ४.६.१४
आणंदतूर-आनन्दतूर १.१४.५
°आणंदयर-आनन्दकर ८.४.६
°आणंदयरी-आनन्दकरी (स्त्रीयाम्) ३.३.६
आणंदरूअ-आनन्दरूप ९.२.१२
°आणंदवद्धावण-आनन्द + वर्द्धापन-बधाई ३.४.३
आणंदिय-आनन्दित ४.६.७
आणकर-आज्ञाकारी ३.३.१३
आणत्त-आज्ञप्त ४.१६.८;५.१४.८
आदण्णअ-(दे) व्याकुल ९.९.१४
आ + नमंसीय-नमस्कृतम् ९.१७.५
आपंडुर-आ + पाण्डुर, समन्तात् पाण्डुर ४.७.४
√आपील-आ + पीडय् °इ ४.१७.११
आभिट्ट-(दे) भिड़ना ६.१२.९
आमंतिय-आमन्त्रिता (स्त्रियाम्) १०.२५.४
आमिस-आमिष ९.५.४;९.११.४;१०.१०.९
आमुक्क-आ + मुक्त ५.११.१३
°आमोय-आमोद ५.१.२२;७.१२.२;८.५.६.
आय-आगता (स्त्री०) ८.५.५.
आय-आगत ६.१०.७
आयअ-आगत १०.१९.६;
°उ ४.२.४;७.१३.१०
आयउ-एषः, यह ९.६.११
आयंबिर-आताम्र ८.१३.७
आयड्ढिय-आकृष्ट ४.६.१
√आयण्ण-आकर्णय् २.४.५;४.३.१
°इ ९.३.३
आयण्णवि ९.७.१;
आयण्ण (विधि०) १०.६.१
आयण्णहि (विधि०) ९.१०.१५; १०.४.५
°ण्णियई (आत्मने०) ४.७.१३
आयत्त-(तत्सम) स्व + आधीन ९.१२.१;१०.१६.४
आयम-आगम ३.९.१९
आयर-आदर १.७.११;९.१२.१८;१०.२३.२
√आयर-आदृय् °इ १०.२०.५
आयरिय-आचार्य २.८.९;२.१७.५
आयरियपरंपरा-आचार्य-परम्परा प्रश० ५
आयहु-अस्य, एतस्य ५.१२.१९;
°हो २.१८.१;५.१२.२१
आया-आगता (स्त्री) १०.९.४;१०.२५.२
°आयार-आकार, समान ४.८.८

आयार–आचार ८.८.४
आयास–आकाश २.१.६
आरडिय–आरटित ७.८.९
आरणाल–आरनाल, कांजी, साबूदाना ३.९.१०
आरण्ण–अरण्य १०.७.६
आरत्त–आरक्त ४.२२.११
आराम–उद्यान ५.३.१०
आराहण–आराधना १०.२६.११
आरिस–ईदृश ९.१६.७
आरिसकहा–आर्षकथा ८.२.१
°आरुट्ठ–आरुष्ट ७.६.४
आरूढ–(तत्सम) आरूढ ११.८.३
आरोयतणु–आरोग्यतनु १०.१.१६
आरोह–(तत्सम) सवार, महावत ६.११.५
°नर ६.११.९
आलत्त–आलप्त ९.२.३
√आलावअ–आ + लापय् °इ ४.१७.१८
आलावणि–आलापिनी, वीणा ९.९.११
°आलिंगण–आलिङ्गन ९.१८.८
आलिंगिअ–आलिङ्गित ४.१७.२
√आलिंगिवि– ९.१२.१८
आलीढ–आसक्त ४.५.१३
आलोइणिविज्जा–अवलोकिनी विद्या ५.२.१०
√आलोइयंत–आलोचय् + शतृ ३.१२.१
आलोयण–आलोचन ११.९.७
√आव–आ + या (आना) °इ २.१४.५
°उ (विधि०) ९.१७.१४
आविवि १०.१४.५
√आवंत–आ + या + शतृ ५.१२.११;६.११.२;
१०.११.३
आवइ–आपत्ति ८.७.१७
आवज्जण–आवर्जन, उपयोग ११.१४.१
°आवज्जिय–आपादित, अर्जित २.५.१२;४.९.४;
१०.६.६
आवट्टिय–आवर्तित ६.९.२
आवण्ण–आपन्न ५.१.३
°आवद्ध–आबद्ध १०.२६.३
√आवलअ–आ + वल्, आवलिवि ४.२२.१४
√आवह–आ + वह् °ई ७.६.२३
आवाणअ–आपानक, मद्यगृह या चषक ४.२.७

आवास–(तत्सम) १०.१४.२
आवासिअ–आवासित ५.१०.२५
आविय–आगत ७.४.१६
आस–आशा ८.७.१६
आसम–आश्रय (स्थान) १०.२०.११
आसंक–आशङ्का २.१६.५
आसंकिअ–आशङ्कित ५.१.२१
√आसंघ–अध्यवस्, या आ + धृष् आसंघवि
६.१२.८
आसकअ–आशाकृत: ९.७.१६
आसण्ण–आसन्न, निकट ३.१३.६;१०.१८.५
आसत्ति–आसक्ति १.१०.४
आसत्थाम–(i) अश्वत्थामा
(ii) पीपलका गाछ ५.८.३२
आसन्न–(तत्सम) ९.१३.१२;१०.१८.२
आसम–आश्रम १०.१९.१५
√आसर–आ + श्रो °रिवि २.२०.९
°रेवि ९.१४.३
आसव–आस्रव ११.८.१
आसवार–अश्व + वार, हि० सवार ४.२१.७
आसा–आशा १०.१०.१०
आसाइय–आसादित, प्राप्त १०.१.१४
आसापास–आशापाश १०.२२.३
आसासियअ–आश्वासित ७.४.१८
√आसि–आसीत् ५.१३.१९;११.१.११
आसिय–आश्रित ११.९.२
आसीण– आसीन १०.२४.२
आहंडल–आखण्डल, इन्द्र २.४.७
√आहण–आ + हन् आहणेइ ६.१०.९
°आहय–आहत ८.७.१२
√आहर–आ + हृ °रिवि १०.१२.१०
आहरण–आभरण ४.८.५;११.१४.३
आहार–(तत्सम) २.१२.३
आहास–आ + भष् °इ २.१८.८;१०.२५.३
आहीर–आभीर (देश) ९.१९.४

[इ]

इअ–(अ०) इदम्, अयम्, इति २.२०.८;५.११.१५;
६.३.७
इंद–इन्द्र १०.२४.१०

इंदगोवय–इन्द्रगोपक ४.१८.६
इंदनील–इन्द्रनील ३.३.१०
इंदसमाण–इन्द्रसमान ३.१०.५
इंदाएस–इन्द्र + आदेश १.१६.३
इंदिंदिर–भ्रमर ८.१३.६
इंदिय–इन्द्रिय ३.९.२; ८.८.१३; १०.२०.१३
इंदियगिद्धि–इन्द्रियगृद्धि ११.१४.७
इंदियदप्प–इन्द्रियदर्प ३.६.२
इंदियदवण–इन्द्रियदमन २.१८.३
इंदियफडाल–इन्द्रिय + फणा + ल (स्वार्थे) ३.७.१३
इंदियवित्ति–इन्द्रियवृत्ति ११.८.२
इंदियविसय–इन्द्रियविषय २.२०.३
इंदीवर–(तत्सम) १.६.७
इंदु–(तत्सम) ४.९.१
इंधण–इंधन १०.१३.११
इक्क–एक १.५.१७, ६.२.१
इक्कलअ–अकेला १०.२६.११
√इच्छ–इच्छ् इच्छमि १.३.७
इच्छिय–इच्छित ३.९.११; १०.६.१०
इट्ठ–इष्ट २.५.१५; ९.१०.२१; ९.१७.११
इट्ठच्छर–इष्ट + अप्सरा २.२.७
इणं–इदम् ८.१२.१
इत्थ–अत्र १.६.२
इत्थइ–अत्रैव ९.१५.१३
इत्थिरज्ज–स्त्रीराज्य (देश) ९.१९.१२
इब्भ–इभ्य, धनवान ३.१०.१२
इमं–इदम् २.३.१
इय–इति, एवं ७.१२.१०; ९.४.७; ११.१५.१०
इयर–इतर १.४.१०; ४.१४.१४
इयरा–इतरा (स्त्री०) ८.११.१
इयराउत्त–इतर + आयुक्त ५.१.१०
इव–(तत्सम) ८.३.३
इहु–ईदृक्, (अप०) एतत् ३.१.२; ७.३.७

[ई]

√ईस–ईर्ष्य्, ईसाइवि ८.१४.७
ईस–ईर्ष्या ९.१३.२
ईसर–ईश्वर, समृद्ध १.९.१०
ईसालुअ–ईर्ष्यालु + क (स्वार्थे) ३.११.५
ईसि–ईषत् १०.३.८
√ईह–ईह, °इ ८.११.१२; °हि ९.१५.२
√ईहंतिय–ईह + शतृ °तिय (स्त्रियाम्) १.१०.५

[उ]

उअय–उदय ११.९.७
उअयागअ–उदय + आगत ९.१.१८
उइय–उदित ८.१५.४; १०.१८.१४; ११.९.२
उंट–उष्ट्र (कथा) १०.७.१; १०.१८.२
उंबर–उदुम्बर, वृक्ष विशेष ४.२१.२; ५.८.१३
उंस–ओस १०.७.९
√उक्कंकमंत–(दे) उक्कंक + शतृ, धनुष पर डोरी चढ़ाते हुए ६.७.१०
उक्कंठिअ–उत्कण्ठित ७.१२.१८
°उक्कंति–उत्क्रान्ति १.७.९
उक्कत्तिय–उत् + कर्तित ५.८.२६
√उक्कम–उत् + क्रम °वि ६.७.८
उक्करिसिय–उत् + कर्षित १.८.५
उक्कीरिय–उत्कीर्ण २.१५.१
√उक्कीरअ–उत् + कीरय् °मि, हि० उकेरना ८.८.११
उक्कुक्किरिय–उत्क + उत्क + कृतः ऊपर उठे हुए ४.१३.१२
√उक्खण–उत् + खन् °इ, हि० उखाड़ना ५.५.१
उक्खय–उत् + खात ५.११.१३
उक्खित्त–उत् + क्षिप्त, उखाड़े हुए ५.१४.१
°उक्खेव–उत्क्षेप ८.१३.४
उक्खेविअ–उत् + क्षेपित ७.१०.१५
उग्गअ–उत् + गत ५.७.४; ८.१३.११
उग्गंठिय–उत् + ग्रथित खुले हुए ९.१८.४
उग्गय–उद्गत १.१७.७
उग्गामिअ–उद् + गमित ६.४.८
°उग्गार–उद्गार ९.१२.२
उग्गिण्ण–उत् + गीर्ण, उद्गीर्ण ५.१४.१०
√उग्गिरंती–उत् + गृ + शतृ °ी (स्त्रियाम्) १.५.४
√उग्घाड–उद्घाटय् °इ ९.८.२०
उच्चंत–(दे) ऊँचे उठाये हुए ७.६.१५
उच्चत्तण–उच्चत्व, उत्सेध ११.१०.११
√उच्छल–उत् + चल् °इ, हि० उछलना १.९.३

√ उच्चलंत–उत् + चल् + शतृ ४.२१.११
√ उच्चर–उच्चारय्, उच्चरेवि ९.१७.४
√ उच्चाअ–उच्चय् °इवि ६.१४.७;
°यवि ७.११.२
उच्चाइय–उच्चायित, ऊपर उठाया हुआ ४.२०.८
√ उच्चारय–उत् + चारय् (कर्मणि) °रिअइ २.४.९
उच्चारिय–उच्चारित १.१७.८
उच्चालिय–उत् + चालित ५.४.१०
√ उच्चिण–उत् + चि, उच्चिणंति (बहु व०) ८.१५.१२
उच्चेडिय–उच्चाटित ६.४.६
√ उच्छल–उत् + चल् °इ ६.५.१
√ उच्छलंत–उत् + चल् + शतृ ९.९.१२
उच्छलिअ–उच्छलित ५.६.१७
उच्छव–उत्सव ४.८.१०
°उच्छहिय–उत्साहित ७.६.११
उच्छाह–उत्साह ७.१२.१०
°उच्छाहमण–उत्साह + मनस्, उत्साहितमन ३.५.३
उच्छाहिअ–उत्साहित ५.८.३८
उच्छु–इषु, बाण ३.१०.१४
उच्छु–इक्षु ५.९.१७
उच्छेह–उत्सेध ३.१.१२
उज्जल–उज्ज्वल १.१४.३
उज्जाण–उद्यान ३.१२.२१;८.४.१३;१०.२२.६
√ °उज्जाल–उत् + ज्वालय् °इ ८.८.४
उज्जीविअ–उज्जीवित ७.४.१७
उज्जोइअ–उद्योतित १.१५.९
उज्जोत्तिय–उद् + योक्तिताः, जोत उतार दिये गये ५.१०.२०
√ उज्जोयंत–उद्योतय् + शतृ ३.१३.३
उज्झाअ–उपाध्याय १०.५.१०
°उज्झिअ–उत्क्षिप्त ९.१२.११;१०.२०.५
√ उट्ठंत–उत् + स्था + शतृ ५.१४.८
उट्ठचम्म–ओष्ठचर्म ९.१.१०
उट्ठाविअ–उत्थापित १०.१३.६
उट्ठिअ–उत्थित ३.७.४;६.४.१०
√ उट्ठिउं–उत् + स्था + तुमुन्, उत्थातुम् ४.२१.१२
उड्डिय–उच्छ्रित ५.६.१६;५.१४.९
√ उड्डुंत–उत् + डी + शतृ ६.७.२
√ उड्डाव–उद् + डापय् °इ, हि० उड़ाना २.७.५
उड्डिअ–उड्डित १०.१८.२५
√ उड्डिज्ज–उत् + डी °इ (कर्मणि) ९.५.८
√ उड्डी–उद् + डी, उड़ना °इर (ताच्छील्ये) ५.७.६
उड्डेविणु ७.१०.२२
उण्णइय–उन्नयित, उदित: ७.९.९
उण्णामय–ऊर्णामय २.१०.५;८.११.३
उण्णाह–(दे) तीव्र प्रवाह, बाढ़ ९.१०.१
उण्ह–ऊष्ण १०.१५.६
उण्हविय–ऊष्णापित, ऊष्णीकृत ८.१३.५
उत्त–उक्त १०.८.४
उत्तमंग–उत्तमाङ्ग, शिर ५.१.१७
उत्तमखम–उत्तम क्षमा ११.१४.२
√ उत्तर–उत् + तृ, उत्तरेवि ७.१३.५;
°रइ १०.१०.२
°रिवि १०.२०.७
√ उत्तार–उत् + तारय् उत्तारमि १०.९.१२;
°रहि (विधि०) ९.१०.११
उत्तरिअ–उत्तरित, उत्तीर्ण १०.१०.२
उत्तारिय–उत्तारित ७.८.१
उत्ताल–उत्ताल, हि० उतावला ५.२.११
उत्तालिया–उतावली (स्त्री०) ४.११.९
°उत्ताविय–उत् + तापित ५.१०.४
°उत्तिण्ण–उत् + तीर्ण ५.११.२१
उत्तेडिय–(दे) उत्तिडित, बूंद-बूंद कर फैली हुई ७.७.११;५.७.२१
√ उत्थर–अव + तृ °इ ५.१४.११
उत्थरिय–आक्रान्त ७.८.६,
उद्दिट्ठअ–उद्दिष्ट–कथित ९.४.१३
उद्दंड–उद्धत ४.२०.११
°उद्दाम–उद्दाम, ऊंचे स्वरसे ४.८.३
°उद्दामइ–उद्दाम + मतुप् (स्त्रिय मू) ४.५.१८
उद्दिट्ठअ–उपदिष्ट १०.२.५
उद्दित्त–उद्दीप्त १.१८.१०
उद्दीविय–उद्दीपित ४.१५.२०
°विअ ७.४.१७
°उद्देस–उपदेश, कथन प्रश० २१
उद्देस–उद्देश्य, प्रदेश ७.४.३
√ उद्देस–उपदेशय् °हि (विधि) १०.१४.८.
उद्ध–ऊर्ध्व ५.१४.१२

उद्धंत–उद् + भ्रान्त २.१०.७
उद्धत्त–उद्धत ९.४.५
उद्धदिट्ठी–ऊर्ध्वदृष्टि १.१५.९
उद्धरिअ–उद्धृत ७.३.१३; ९.१०.८
°रिय प्रश० ६
उद्धाइय–उद्धावित ४.१३.६; ५.१०.८;९.७.८
°उद्धाविअ–उद्धावित ७.१०.१४
उद्धुसिय–उद्घुषित, रोमाञ्चित १०.१३.९
उद्धूस–रोमाञ्चित १.८.३
उन्नइअ–उन्नीत ७.९.७
उन्नयण–उन्नयन ११.१.९
√उप्पज्ज–उत् + पद उप्पज्जिवि ४.३.११
उप्पज्जंति ३.१.१०;
उप्पज्जेसइ ४.१.११
√उप्पज्ज–उत्पद् (कर्मणि) °इ २.१.१४; ११.३.६; ११.५.३४
उप्पज्जिअ–उत्पन्न जात ४.३.३
उप्पण्ण–उत्पन्न १.१८.३; ४.२२.२६; १०.२१.६
उप्पत्ति–उत्पत्ति प्रश० २;४.२२.१८
उप्पन्न–उत्पन्न ४.१९.१
उप्परि–उपरि ११.४.१०
√उप्पाअ–उत् + पादय् °इवि ४.३.१२;
उप्पायमि १.१३.८
उप्पायहि–उत्पादयिष्यति ९.४.१४
°उप्पाइय–उत्पादित १०.१.१३
°उप्पायण–उत्पादन १०.२०.४
उप्पायअ–उत्पादित ६.१४.३
√उप्पिड–उत् + पत् °इ उछलना, अर्घ देना ५.१०.१४
उप्पुंछिय–उत्प्रोञ्छित, मसृण १०.१६.२
उप्फोडिय–(दे) समारित, हि० सँवारी हुई १०.१६.६
उव्विग्ग–उद्विग्न ९.३.९
उव्वेविर–उद्विग्न + °इर (ताच्छील्ये) ६.१.१०
°उब्भड–उद्भट ६.७.८; ८.११.१५
उब्भरिय उद् + भृत ३.७.१४
उब्भविअ–उद्भूत ९.१२.७
°उब्भाविय–उद्भावित ९.१६.३
उब्भासिय–उद् + भासित ४.१६.९
उब्भासियअ–उद्भासित ८.१३.२
उब्भिअअ–ऊर्ध्वीकृत ७.२.६
√उब्भिम–उत् + घृ उब्भिमवि १.८.७
उब्भूसिअ–उद्भूषित ४.१९.१३
उम्मग्ग–उन्मार्ग ५.११.११
°उम्माय–उन्माद ४.११.११
उम्माहिअ–(दे) उत्साहित २.१४.१, ८.८.१९
उम्माहियअ–उत्साहित १०.१६.१२
√उम्मीलअ–उन् + मीलय् °लइ ४.१३.१
उम्मीलण–उन्मीलन ५.२.१७
उम्मीसिय–उन्मेषित १.९.६
√उम्मुच्छ–उत् + मूर्छय् °माण (ताच्छील्ये) ६.८.५
उम्मुच्छिय–उन्मूर्च्छित ३.७.७;८.७.११
उम्मुह–उन्मुख ६.११.१०
√उम्मूलय–उत् + मूलय °यामि ९.४.११
उययाचल–उदयाचल १०.१८.१४
उयर–उदर ११.५.४
उर–उरस् ७.६.२३;७.४.४.
उरसेल्लिअ–उरस् + उल्ल (स्वार्थे) ४.१९.११
उरु–ऊरु ८.१६.८
उरुभाअ–ऊरु + भाग ४.१५.१२
°उरुय–ऊरु + (क) स्वार्थे २.१४.१०
उल्लसिअ–उल्लसित ९.९.८
उल्लालिअ–उल्लालित, ताडित ५.७.१६
उल्लालिय–उछाला हुआ, लात खाया हुआ ५.७.२३
उल्लाव–उल्लाप ७.४.५
उल्लावण–उत् + लापन ८.११.१४
उल्लिचण–(दे) घटीयन्त्र (हि०) रहट, जल उलीचनेवाला ४.११.६
°उल्लिय–आर्द्रित, आर्द्र ९.१५.११
√उल्हाव–विध्मापय् °हि (विधि) १०.१५.८
√उवअ–उदय्, °इ ११.९.१०
°उवएस–उपदेश ५.२.२२;८.३.७
उवएस–उपदिश्, °मि १०.१४.७
उवएसिय–उपदेशित ११.२.१०
√उवभुंज–उप + भुञ्ज् °इ २.१३.६;३.१४.२२
°हि १०.५.५
उवय–उदय ११.९.७
उवयागअ–उदयागत ९.१.१८
उवयाण–उप + दान—दाम (नीति) ५.३.४

उवयार–उपकार २.८.६
उवर–उपरि, हि० ऊपर ७.६.३६
उवर–उदर ९.३.१२
उवरि–उपरि, हि० ऊपर १.९.४;९.३.१;४.५.२५
उवरिम–उपरिम ११.१२.१
उवरिल्ल–उपरि + इल्ल (षष्ठ्यर्थे), हि० ऊपरका ११.१२.६
°उवलंभ–उपलम्भ, उपलब्धि ८.७.१३;१०.५.३
उवलंभ–उपालम्भ २.१६.९
√उवलंभइ–उप + लभ् °इ ९.१३.७
उवलक्खिअ–उपलक्षित १.३.६
√उवलक्ख–उप + लक्षय् °हि (विधि) ७.१३.९
°क्खिवि १०.८.८
उवलद्ध–उपलब्ध ९.१७.१५
उववण–उपवन ३.५.२;७.१३.१५;८.३.६
उववण्ण–उपपन्न, प्रश० २
उववसिअ–उपवासित २.१५.७
उवविट्ठ–उपविष्ट ५.८.२८
√उवविसंत–उप + विश् + शतृ ५.१.२१
उवसग्ग–उपसर्ग १०.२५.४;१०.२६.९
उवसप्पिणि–उत्सर्पिणी (कालचक्र) ११.११.७
√उवसम–उप + शमय् °इ २.१८.४
उवसममण–उपशम + मनस्, उपशान्तमन ३.९.१५
उवसामण–उपशमन ८.१०.१४
उवसामिअ–उपशामित ६.५.११
उवसाव–उपशमय् °मि २.८.१०
√उवसावअ–उपशमय् °वमि ८.६.१०
उवहसिअ–(i) उपहासित (ii) उभयशिव १०.३.११
उवहासण–उपहासन, उपहास करनेवाला ११.१.१०
उवहि–उदधि सागर ४.१६.१३;११.१०.६;११.११.८
उवहिचंद–उदधि(सागर)चन्द्र ३.५.१३
उवहुंजिअ–उपभुञ्जित, उपभुक्त ४.९.१२
उवाअ–उपाय ९.८.१५
उवाय–उपाय ९.१०.९; १०.१४.५
°उवाहि–उपाधि २.१.७
उव्वडिय–उत् + पतित ६.६.९
√उव्वर–उद् + वृ °इ, हि० उबरना, बचना ३.११.९
√उव्वलंत–उद् + वल् + शतृ पीछे लौटना, ४.२१.११
उव्वेअ–कामोद्विग्न ९.३.९
उव्वेइय–उद्वेजित २.१९.१०
उव्वेविर–उद्विग्न + इर (ताच्छील्ये) ६.१.१०
उहय–उभय ७.५.११; ७.७.१२; १०.२.४
उहयमई–उभयमति १.२.१०
ऊरिया–पूरिता (स्त्री०) १०.१८.१४
ऊरुय–ऊरु + क (स्वार्थे) २.१६.२
ऊसारिय–अपसारित ७.७.१२

[ए]

एअ–एतत् २.१३.७; ४.१७.१७, ७.१३.९ १०.११.४
एउ–एतत् ४.२२.३५; ९.१.१६
°एए–एते, हि० ये १.१८.१०
एएण–एतेन ५.५.७
एक्क–एक, अकेला ४.१.९; ४.५.२; ५.१.१; ७.४.८
एक्कंग–एक + अङ्ग ५.१४.१९
एक्कंतर–एकान्तर, एक दिनके अंतरसे ३.९.१२
एक्कत्त–एकत्र ११.१२.८
एक्कत्थ–एकत्व १०.१०.१३
एक्कमेक्क–एकमेक १.९.२
एक्कल्ल–(दे०) अकेला ५.८.१७;७.१२.९
एक्कल्लउ–अकेला ९.१०.१६; १०.७.६;११.४.२
एक्कवयकण्ण–एक + पद + कर्ण एक चरण व एक कान वाली जाति ९.१९.९
एक्कसि–एकदा २.१५.१४
एक्केक्कमेक्क–परस्पर ६.४.९
एक्कोयर–एक + उदर, सहोदर भ्राता ११.५.५
एण–एतेन २.४.५; ६.३.६
एत्तउ–एतावत् ७.७.५
एत्तहिं–इतस्, यहाँ से ३.१०.४
एत्तहिं–इधर ४.३.१; ९.१४.६; १०.१०.९
एत्थहे–अत्र, हि० इधर २.१३.९;३.४.११;६.४.४. १०.१२.२
एत्तिअ–एतावन्मात्र, हि० इतना ८.६.४
एत्थ–अत्र २.११.१;३.७.३;८.३.८;९.६.६

एत्थंतर–अत्रान्तर २.५.११;१०.१८.१०
एम–एवम् ४.१२.१९; ६.१४.६; ९.६.४
एमइँ–एवमेव २.१८.१६
एमहि–इदानीम् ८.१०.७
एयअ–एतत् ९.२.७
एयं–एतत् ४.१८.४
एयंतनअ–एकान्त + नय १०.५.१
एयहो–एतस्य ४.१.८
एयाउ–एताः (कुमारिकाः) ४.१२.७
एयारसंग–एकादश + अङ्ग १०.२४.१३
एयारसम–एकादशम् ११.१५.१५
एयारहम–एकादशम् १.१८.१५
एरावअ–ऐरावत (क्षेत्र) ११.११.७
एरिस–ईदृश ६.१०.१; ८.१४.१५; ९.१.१३
एवड–ईदृश ७.२.१६
एवहि–(अप०) इदानीम्, एवधि, साम्प्रतम् ३.१०.७; ६.२.७; ७.३.११; ७.६.३७
एवि–आगम्य ७.७.३
एस–एष: १.१८.५; ९.१७.१४
एह–एषा(स्त्री०), (अप०) ईदृक् २.११.३; ५.१३.१४
एहउ–ईदृक् १.१३.७
एही–ईदृशा (स्त्री०) २.१३.८;१०.१०.१२
एहु–एषः ३.१०.२;५.११.१५;७.११.१३

[ओ]

ओछप्पिणी–उत्सर्पिणी, कालचक्र ३-१.१०
ओडिय–उद्धृत १.११.८
ओमुंछियअ–उन्मूर्छित ३.७.७
ओमुच्छिय–उन्मूर्च्छिता (स्त्री०) ८.७.११
ओलम्बिय–अवलम्बित ५-८.२५
ओवडिय–अव + पतित ६.१२.१०
ओसहत्थ–औषध + अर्थ ९.११.८
√ओसर–अप + सृ (विधि०) ५.७.२४
√ओसरंत–अप + सृ + शतृ ६.१२.११
ओसरिय–अपसृत ७.६.१०
ओसही–औषध ३.१४-१२
ओसारिय–अपसारित ७.८.३
°ओह–ओघ ६ ४.१;७.४.२
√ओहट्ट–अव + घट्ट् °ह ८.७.७
ओहामिय–अवधामित, तिरस्कृत, अभिभूत २.३ ९.८.५.५
ओहाछिय–अवलिप्त ६.१०.१३

[क]

क–का (स्त्री०) १०.१४.४
कअ–कृत ७.१.२; ८.१३.७
कइंद–कवि + इन्द्र १.५.१४
कइ–कवि ४.१८.१५; ८.१.३; ९.६.१
कइकुल–(i) कवि कुल (ii) कपिकुल ५.८.२४
कइरव–कैरव, कुमुद ८.१४.१५
कइरव–कैरव वन १०.१८.८
कइत्त–कवित्व १.५.१३
कइत्तधाम–कवित्वधाम ११.१.१
कइदेवयत्त–कवि देवदत्त प्रश. १
कइदिण–कई दिन १०.२१.६
कइयहं–कदा २.१४.१२
कइलासगिरि–कैलासपर्वत ९.६.१
कइवय–कतिपय १.१४.४; ३.१३.१२; ७.१२.१७; १०.८.८
कइवल्लह–कवि + वल्लभ ५.१.४
कइवीर–कविवीर प्रश. १९
कउ–कुतः, कथम् १०.१०.११; ११.१४.१३
कउह–ककुभ (चम्पा ?) वृक्ष ५.८.१२
कओ–कुतः १०.६.१०
कं–जलम् १०.२०.६
कंक–कङ्क, बक पक्षी ४.१८.७
कं कं–कांव कांव (ध्वन्या०) ९.५.१०
कंकड–(दे) रक्षा कवच ११-३-२
कंकण–कङ्कण, चक्र १०.२०.६
कंकर–(दे) हि० कंकर, कोड़ी ४.२ ८
कंकालधारि–कंकालधारी १०.२५-२
√कंक्खिर–काङ्क्षय् + इर (ताच्छील्ये) ८.११.१४
कंचण–कञ्चन, सुवर्ण ४.२.११;१०.१४.६
कंचाइणि–कात्यायनी, चामुण्डा ५.८.३५;७.६.८
कंचाइणी ७.६.६
कंचायणी १०.२५.२
कंचिपुर–काञ्चीपुर (नगर) ९.१९.३
कंचिवाल–काञ्चीदेशोत्पन्न ८.१२.११
कंचुय–कञ्चुक, हि० चोली ४.११.८

कंज–कम् + जात, कमल ४.११.५
कंजिय–कांजी ३.९.१३
कंटइय–कण्टकित १.१.४.४
कंटय–कण्टक ५.८.२४
कंटिवोरी–कंटीली बेरी ५.८.६
कंठअ–कण्ठा, कण्ठाभरण ३.१४.१३
कंठकल–कण्ठकूजन कण्ठरुत १.१२.३
कंठाल–(दे) कडाह, भार, कोठी ४.११.८;५ ७.१४
कंठिय–कण्ठित, परिवृत ५.९.८
कंड–काण्ड, बाण ८.५.७
√कंडुयंत–कण्डूय् + शतृ १०.२६.७
कंडुवण–कण्डूयन, खुजलाना ८.१६.९
कंत–कान्ता, पत्नी ४.१२.३
कंतारअ–कान्ता + रत ५.९.१७
कंतावसाण–(i) कान्ता + वशानाम्
(ii) कं–जलम् + तापसानाम् ४.१८.१०
√कंद–क्रन्दय् °इ ८.१४.१६
°हि (विधि०) २.२.६; ८.७.५
कंदण–क्रन्दन ४.२१.११
कंदप्प–कन्दर्प १०.२०.३
कंदर–कन्दरा ११.२.५
कंदल–(अप०) कलह, झगड़ा ४.२.१६
कंदाविय–क्रन्दापयिता, क्रन्दन करानेवाला १०.१.१२
√कंदिर–क्रन्द् + इर (ताच्छील्ये) ९.१०.२
कंदोट्ट–(दे) कन्दोट्ट, नीलकमल ५.९.७
कंध–स्कन्ध ४.२२.१७
कंधर–स्कन्ध ८.७.१६
√कंप–कम्प् °इ ८.१६.१३
√कंपंत–कम्प् + शतृ ७.८.११; १०.१५.६
कंपावण–कँपावन, कँपानेवाला ५.१३.९
कंपिय–कम्पिता (स्त्रियाम्) ८.७.१२
√कंपिर–कम्प् + इर (ताच्छील्ये) २.४.१२;९.११.५
कंपिरंग–कम्प् + इर + अङ्ग १०.१७.१६
कंम्पिय–कम्पित २.७.६
कंब–कम्ब, यष्टि, चाबुक ६.४.५
कंबु–कम्बु, शङ्ख ५.१२.१४
कंसार–(दे) कँसेरा, ठठेरा ५.७.१७
कंसाल–वाद्य विशेष १.१६.७; ४.८.७

कक्खंतर–कक्ष + अन्तर ८.१६.९
कच्च–काँच, शीशा २.१८.५
कच्छ–कच्छ (देश) ७.६.१६; ९.१९.९
कच्छडअ–(°य) कछोटक, कछोटा ५.७.१३; १०.१६.३
कच्छव–कच्छप ४.६ ५; ९.७.५
कच्छी–कक्षी, कक्षवती (स्त्री०) ५.१०.८
कच्छेल्ल–कच्छ (देश) ९.१९.४
कज्ज–कार्य, हेतु १०.२.११; ११.८.६
कज्जंतर–कार्यान्तिर ८.९.११
कज्जगइ–कार्यगति ९.१६.५
कज्जत्थिअ–कार्यार्थी + क (सवर्थे) ६.१२.३
कज्जलुद्ध–कार्यलुब्ध ४.१७.५
कज्जाकज्ज–कार्य + अकार्य ५.१३.१६
√कड्ढंत–कृत् + शतृ ४.१५.१५
कट्ठ–कष्ट २.२.८
कट्ठभार–कष्टभार १०.१३.१
कट्ठमय–कष्टमय ९.१.६
कट्ठाइ–काष्ठ + आदि ११.१५.६
कट्ठियधर–काष्ठधर, दण्डधर ७.७.११
कडअ–कटक, छावनी ६.१.१८
कडड–कटक, हि० कड़ा ३.१४.१३
कडक्किय–कडकडकृत, कडकडायित (ध्वन्या०) ७.८.१२
कडक्ख–कटाक्ष १.१०.११; ८.१०.५
√कडक्ख–कटाक्षय् °इ ११.१४.११
कडक्खण–कटाक्ष करना ११.६.६
कडक्खिय–कटाक्षित २.२०.११; १०.१९.१८
कडच्छ–कटाक्ष ९.१३.५
कडय–कटक हि० कड़ा २.२०.२१
√कडयडंत–कडकडाय् + शतृ(ध्वन्या०) ११.१५.६
कडयडिय–कडकडायित (ध्वन्या०) ७.५.६
कडविमद्दण–कृत + विमर्दन, ६.१०.४
कडह–कटभू, कटहल ५.८.१०
कडहत–देश (?) ६.१९.४
कडाह–कटाह ६.१४.४
कडि–कटि ९.१८.३;१०.१६.४
कडिपरिहाण–कटिपरिधान ९.१२.१३
कडिबिंब–कटि + बिम्ब ५.९.११

कडियल–कटितल ४.१३.१५
कडिल्ल–(दे) कटिवस्त्र ४.१९.१२
कडिसुत्त–कटिसूत्र ३.१९.१३;१०.१९.७
कडिहार–कटिहार ३.३.१४
कडुल्ल–कटुक ७.६.१०; ७.६.१३
कडुय–कटु + क (स्वार्थे) २.४.११
कडुरडिय–कटु + रटित > कटुरुदन ४.२२.१८
कडुवयण–कटु + वचन ६.१२.९
√ कड्ढंत–कृष् + शतृ ४.१५.१६;५.१४.११
कड्ढण–कर्षण ७.६.२९
कड्ढणिय–निकसनशील ५.७.२४
कड्ढिअ–कर्षित ७.६.२५
कड्ढिय–कृष्ट ६.१३.२; ९.१३.२५
√ कढंत–क्वथ् + शतृ २.२.२
कणिट्ठ–कनिष्ठ २.५.१०;२.८.१०; ९.१७.९
कणिय–कणी ११.१३.२
कणियार–कर्णिकार, हि० कनेरका वृक्ष ५.८.११
कणिर–क्वणित ३.८.३; ४.१५.९
कणिस–कणिश, शस्य या धान्यका तीक्ष्ण अग्रभाग २.१.१५
कण्ण–कर्ण, हि० कान ५.१.२५
कण्ण–कन्या ८.९.१३
कण्ण–कर्णराजः १०.१.९
कण्ण–किनारा ५.१०.२४
कण्णउ–कन्यकाः ४.१४.१४
कण्णउज्ज–कान्यकुब्ज, कन्नौज (नगर) ९.१९.१३
कण्णंत–कर्ण + अन्त, कर्णान्ति ५.२.१९;९.१८.३; १०.१६.४
कण्णचउक्क–कन्या + चतुष्क ४.१४.१७
कण्णपुड–कर्णपुट ३.१.२
कण्णरयण–कन्या + रत्न ५.९-२३
कण्णवडिअ–कर्ण + पतित ४.७.१३
कण्णहीण–कर्णहीन ९.२.६
कण्णा–कन्या १०.१.९
कण्णाड–कर्नाट (देश) ६.६.११
कण्णाडि–कर्नाटी, कर्नाटकवासिनी (स्त्री) ४.१५.९
कण्णारयण–कन्यारत्न ७.१३.९
कण्णावतंस–कर्ण + अवतंस ४.१५-९
कण्णिय–कर्णिका, बाण विशेष ७.१०.५
कत्थ–कुत्र ७.१.२३; १०.२६.६
कत्थइ–कुत्रचित् ७.१.१९;८.३.११
कत्थूरिय–कस्तूरिका ८.१४.१९
कद्दमिल्ल–कर्दम + °इल्ल (स्वार्थे) ५.७.८;८.१३.६
कद्दमेल्ल–कर्दम + इल्ल-युक्त ४.२१.४
कद्दविय–कर्दमित ४.२२.३
कप्प–कल्प; प्रमाण, तुल्य ४.९.४
कप्पड–कर्पट हि० कपड़ा ११.७.४
कप्पंत–कल्प + अन्त ५.५.५
कप्पण–कर्तन ७.६.११
कप्पदुम–कल्पद्रुम ३.३.११
कप्पयरु–कल्पतरु ४.१६.८
कप्पवासि–कल्पवासी (देव) १.१६.९
कप्पिय–कर्तित ६.९.७;८.११.१
कप्पूर–कर्पूर ७.१२.२; ८.१५.७
कप्पूरायरु–कर्पूर + अगरु ८.१६.५
कबंध–कबन्ध, कवच ६.१४.१३
√ कम–क्रम, उत्क्रम, कमंत ५.१४.२;७.१०.२२; ११.१५.१०
कम–क्रम, चरण ४.१.५
कमलदलच्छि–कमलदल + अक्षि ... ३.३.१
कमला–(तत्सम) लक्ष्मी ३.३.२
कमलायर–कमल + आकर, कमलाकर २.५.३; ५.९.४
कमलालिंगिय–कमला + आलिङ्गित १.१.७
°कमलुज्जल–कमल + उज्ज्वल ३.३.२
कमायअ–क्रमागत २.४.८
कम्म–कर्म २.२०.८; ४.४.८
कम्मकर–कर्मकर, शोषक १०.१७.७
कम्मकिअ–कर्मक्रीत १०.६.८
कम्मकिस–कर्म + कृश २.३.९
कम्मक्खय–कर्मक्षय ११.१४.८
कम्मट्ठ–कर्म + अष्ट १०.२४.९
कम्मडहण–कर्मदहन, कर्मदाहक १०.२१.८
कम्मपरिणाम–कर्मपरिणाम ११.५.२
कम्मफल–कर्मफल ११.४.९
कम्मबंध–कर्मबन्ध
कम्मभंति–कर्मभ्रान्ति १०.२०.१३

कम्ममल-कर्ममल 11.7.3
कम्मरइ-कर्मरति, कर्मासक्ति 10.5.12
कम्मवस-कर्मवश 11.3.1
कम्मवियार-कर्मविकार 9.13.13
कम्मसत्ति-कर्मशक्ति 10.4.11
कम्मासव (°य)-कर्म + आस्रव 2.7.12;4.3.14; 9.1.19
कम्मोवहि-कर्म + उपाधि 11.14.5
कय-कच 6.3.3
कय-कृत 2.9.15;4.20.11
°कयंत-कृतान्त 3.7.5;5.14.3;7.5.15
कयंब-समूह 9.10.20
कयंबु-कदम्ब (वृक्ष) 4.16.4;5.10.13
कयग्गह-कृत + आग्रह 9.4.3
कयग्गह-कृत + ग्रह-ग्रहण 5.10.23
कयडिल्ल-कडिल्ल, कटिवस्त्रयुक्त 9.18.3
कयणाअ-कृतनाद 9.11.14
कयणीड-कृतनीड 5.3.12
कयतविडवि-समृद्धिविटपी, समृद्धि रूपी वृक्ष प्रशं० 17
कयत्थ-कृतार्थ 6.1.2
कयत्थउ-कृतार्थ 4.1.3
कयदोस-कृतदोष, अपराधी 11.14.2
कयपयज्ज-कृत + प्रतिज्ञ 5.11.18
कयबंध-कचबन्ध, केशबन्ध 9.18.4
कयबंध-कृतबन्ध 8.11.25
कयमण-कृतमना 8.4.1
कयरू-कृतरूप 3.9.9
कयली-कदली, केला 4.16.3
कयवमाल-कृतवमाल 10.9.5
कयायर-कृत + आदर 10.1.5; 11.5.5
कयावि-कदा + अपि 3.6.5;4.9.7
कर-कर, हस्त 3.14.19; 4.22.7;9.8.23
कर-शुण्डा 4.22.7
कर-किरण 5.7.5
√कर-कृ °इ 9.10.5
करेवि 9.8.10
°उ (विधि०) 8.7.1
करेविणु 8.14.14
करेसइ-करिष्यति 10.25.9
°प्पि (कर्मणि) 9.12.13
करु (आज्ञा०) 9.3.11
करहि (विधि०) 10.5.3
करेवि 8.12.7;9.8.19;10.14.14
करहु (विधि०) 8.9.15
करिव्वउ (विधि०) 3.9.3
करंत-कृ + शतृ 4.11.2;9.5.10
करंक-अस्थि, घड़ 6-9.10
करंबिय-करम्बित, व्याप्त 5-1.23
करकट्ट-(दे) ले जाने योग्य वस्तुएँ 5.6.5
करकत्तिया-करकर्तिका, कैंची 7.6.14
करकेंटि-करकंटा 9.10.14
करड-वाद्यविशेष 5.6.7;10.19.2
√करडंत-करड-करड ध्वनि करते हुए 10.12.7
√करडंतयं-देखें: करडंत 10.19.2
करडयल-कुम्भस्थल 7.5.3
करडि-करट्टिन, हस्ति 6.9.10
करण-(i) करण, राजसाधन, पैंतरा
(ii) करण, मैथुनविधि 9.13.12
करणगाम-इन्द्रियग्राम 2.1.11
करणुज्जम-करण + उद्यम 1.15.13
करतक्कड-(दे) ध्वन्या० 1.15.5
करफंसण-कर + स्पर्शन 2.10.3;5.4.12
करमर-(तत्सम) वृक्ष विशेष 4.16.5
करमुद्द-कर + मुद्रा—मुद्रिका 4.13.7
करधणु-धनुष 7.10.2
करयत्थ-करक + स्थ 1.5.11
करयल-करतल 4.17.20; 10.24.6
करुह-(तत्सम) कररुह, नख 2.15.15
करवंद-वृक्ष विशेष 4.16.2
करवंदि-करवंदी, हि० करौंदा वृक्ष 5.8.12
करवत्त-करपत्र, करौंत 8.9.1;11.4.4
°करवाल-(i) करवाल (तत्सम) असि
(ii) करेण वालाः केशाः 9.13.15
करवावड-कर + व्यापृत, व्याकुलहस्ता (स्त्री०) 8.15.10
करसंगह-करसंग्रह, पाणिग्रहण 8.12.8
करह-करभ 5.6.5
करहाड-करहाटक (नगर) 9.19.10
कराल-(तत्सम) भयंकर 10.26.1

कव्वर–कर्बुर, हि० कबरा ७.६.२२
कव्वाड़–कबाड़ीपन ९.८.१६
कव्वाडिअ °य–कबाड़ी ९.८.२;१०.१८.२
कव्वामय–काव्य + अमृत ७.१.१
√कस–कष्, कसेऊण ९.२.३.
कस–कषा, हि० कसौटी १.४.२; ९.१.२
कसण–कृष्ण (वर्ण) २.१४.८; ८.१५.२
कसमस–(दे) हि० कसमसाना ४.२२.११
कसमीर–कश्मीर (देश) ९.१९.१०
कसर–(दे) अधम बैल ७.३.१३
कसरक्क–कुड्मल, फूलकी कली ७.१.२
°कसवट्टअ–कषपट्टक, कसौटी ९.१.३
कसाअ–कषाय ८.६.६
√कसाइयंत–कषायमानः, कसैला बनाता हुआ ४.१५.१४
कसिण–कृष्ण (काला) १०.२५.१०
कसु–कस्य ४.२२.२५; ११.४.१०
कह–कथा ५.११.८
√कह–कथय् °ह ८.३.९; ९.३.४
कहहे (विधि०) ४.१.१४
कहमि २.१३ ९
कहवि १०.८१४
कहिवि १०.२५.६
कहेइ ८.१७.९
कहेमि ९.४.३
कहहि–(विधि०) ९.१०.१८
कहि–कथय् (विधि०) ९.१८.९
कहिज्ज–कथय् (कर्मणि)°इ २.११.९
√कहंत–कथय् + शतृ ५.४.९
कहंतर–कथान्तर २.३.१
कहण–कथन ७.१.६
कहवंध–कथा + बन्ध १.७.५
कह व–कथम् वा २.१६.७; ३.११.४; १०.६.९
कहव कहव–कथम् कथम् + अपि ३.७.७
°कहा–कथा १.५.७;७.१.६
कहाणअ–कथानक ९.५.३;१०.६.१०
कहार–कारली (जाति विशेष) ५.६.५
कहावसेस–कथा + अवशेष ९.१४.५
कहाविराम–कथा + विराम ४.४.९
कहिँ–कुत्र, हि० कहीं १.६.११;३.१४.५;९.७.६
कहिँमि–कुत्रचित्, कहीं भी १.१५.२;९.१३.८
कहिअ–कथित ३.५.११;९.८.१४
°य ७.११.१०;८.८.१६
कहि मि–कुत्रचित्, कहीं भी ३.४.५;८.२.१०
कहियंतर–कथित + अन्तर ७.४.९
कहु–कस्य ७.१.१६
कहो–कस्य ३.६.८;८.१०.७
का–(तत्सम) का (स्त्री०) २.१४.६
काअ–काक ८.१५.१४;९.५.११
काइँ–किम् २.१८.१४;३.१४.१७;१०.२.९
काइं मि–किमपि ८.११.११;१०.५.२
√काउं–कृ + तुमुन्, कर्तुम् ८.२.९
काउरिस–कापुरुष ७.२.१६
काढिय–कर्षित ६.४.९;१०.१४.१३
काणण–कानन २.१३.१२
काणिअ–काणित ९.११.३
काम–काम (देव) ४.१६.१०
काम–कामना ११.१.१३
√कामंत–कामय् + शतृ ११.५.६
कामकरि–काम + करि, मदनहस्ति ४.१९.१५
कामकरेणु–कामहस्तिनी ४.११.५
कामकीड–कामक्रीड़ा १०.१३.३
कामट्ठाण–कामस्थान ९.१३.९
कामत्थ–काम + अर्थ ५.९.१५
कामधेणु–कामधेनु ४.१८.६
कामपंडुर–काम + पाण्डुर १.९.४
कामरूव–कामरूप (असम देश) ९.१९.१५
कामलय–कामलता (स्त्री) ३.१४.२१; (वेश्या) ९.१२.४
कामवेअ–काम + वेग ४.१९.१
कामाउर–कामातुर ९.७.२
कामाउल–कामातुर २.६.९
कामिणी–कामिनी १.९.३;३.१४.२१
कामिणीजणाउल–कामिनीजन + आकुल ५.१.८
कामिणीयण–कामिनीजन ३.१२.११
कामुअ–कामुक ४.२१.९
कामुय–कामुक ३.१२.४
कामुच्छाह–काम + उत्साह १०.२.२

°काय-(i) काय, देह २,२०.३;
(ii) काक, कौवा ११.७.१०
कायाकिलेस-कायक्लेश १०.२२.८
कायमाण-(दे) आसन ८.१३.३
कायरी-कातरा (स्त्री०) ९.१७.१
√कार-कारय् ६.३.७
कारिवि ३.१३.१३
कारेवि ६.३.७
कारंड-कारण्ड (पक्षी विशेष) ४.१८.२
कारण-हेतु, कारण ४.१२.१२
कारिअ-कारित २.१९.५;१०.२०.४
कारियं-कारापितं, लिखाया प्रश० १९;२२
काल-(तत्सम) मृत्युराज २.१९.१;६.१.१५
कालकूड-कालकूट १०.५.६
कालदव्व-कालद्रव्य ३.१.८;८.८.१४
कालभुयंग-कालभुजङ्ग ३.८.१०
कालरत्ति-कालरात्रि १०.१३.७
कालवट्ठ-कालपृष्ठ, धनुष ५.१४.२१
कालसप्प-कालसर्प ९.१.९;९.१०.७
कालाहि-काल + अहि, कृष्णसर्प १.१८.८
कावालिय-कापालिक ७.६.१३
कास-कास, खांसी २.१३.९.३.११.३;९.९.८
कासु-कस्य ६.१.१५
काहल-कोल, भील ५.८.२१
काहल-वाद्यविशेष १.१४.९
काहि-कस्या ४.११.१
किउ-कृतः २.११.१०;४.९.१०
किं-किम् २.१४.११;८.१२.५
किंकर-किङ्कर, सेवक ६.८.४;७.१३.१३
किंकिणी-किङ्किणी, क्षुद्रघण्टिका २.३.७;५.२.१
किंपि-किम् + अपि ८.७.१
किंपुरिस-(i) किंपुरुष, देव
(ii) किंपुरुष, हीनपुरुष ९.१२.१०
किंसुय-किंशुक (पुष्प) ३.१२.१३
किक्किंध-किष्किन्धा नगरी ९.१९.४
किच्छ-कृच्छ्र ९.४.१६
√किज्ज-कृ (कर्मणि) °इ १३.९;२.१४.१०;
५.४.३;९.१२.१३
°उ (विधि) २.१२.२;९.१०.१७
किट्ठ-कृष्ट ९.९.१०
किणंक-किणाङ्कित, चिह्नयुक्त ७.४.७
√किण-क्री °वि १०.११.५
°इ (विधि०) ९.१.२
किणिअ-क्रीत १०.११.२
कित्ति-कीर्ति ४.९.९;४.१४.१६
कित्तिलय-कीर्तिलता १०.१.१२
कित्थ-कुत्र १०.१०.३
किपिण-कृपण ७.८.१४
किम्-कथम् ५.४.३
किमि-कृमि ११.६.४
किमेयमेरि-किम् + एतम् + एरि-किल २.३.४
कियउ-कृतः + क (स्वार्थे) १.१०.१८;९.१५.१४
कियंत-कृतान्त ८.८.१५
कियंतर-कियत् + अन्तर २.१५.१२
किया-क्रिया २.१६.६
किर-किल ७.७.१०;९.११.११
किरण-(तत्सम) १.९.७
किरणाहय-किरण + आहत १.१७.१
किरभुल्लअ-किल + विस्मृतः ९.४.१०
किराड-किरात, भील ५.७.२०;९.१८.२
किरिमाल-वृक्षविशेष ५.८.११
किरिरि-वाद्यविशेष ५.६.११
किरिरिकिरितट्ट-ध्वन्या० ५.६.११
किलेस-क्लेश ९.८.३
किवाण-कृपाण १.१.११
किविण-कृपण, दीन ३.१.७
किव्विस-किल्विष, पाप १०.५.७
किसाण-कृषक, हि० किसान ९.१३.१३
किसि-कृषि ११.६.१०
किसोर-किशोर ५.१२.१४
कीड-कीट ७.२.१२;११.६.४
√कीर-कृ (कर्मणि) कीरंति ७.४.५
कीर-(तत्सम) शुक ५.९.८
कीर-कीरदेश ९.१९.१०
√कीलअ-क्रीडय् °ए (आत्मने०) ४.१६.१०
कीलिय-क्रीडित ४.२०.२;७.४.१
कीलण-क्रीडन ४.१६.१
कीलणअ-क्रीडनक, खिलौना ५.२.१६

कीकामहिहर-क्रीड़ा + महीधर	३.२.७
कीलाल-रुधिर	६.१०.१३
कीलालकीला-रुधिरप्रवाह	१०.२६.१
कीव-क्लीव	४.१५.१५
कु-को, कोई	१०.७.५
कुंकुम-(तत्सम) कुंङ्कुम	१.९.३
कुंच-कूर्च	१०.१६.६
कुंचइय-कुञ्चित	१.९.९
कुंचिय-कुञ्चित	४.१५.११
कुंजर-कुञ्जर	१.१४.२
कुंडल-(कर्ण) कुण्डल	१.१४.३
कुंडलियंग-कुण्डलित + अङ्ग	६.१०.८
कुंत-(तत्सम) कुन्त, भाला	१.१५.५
कुंतल-कुन्तल (देश)	९.१९.३
कुंतलभर-कुन्तल + भार, केशकलाप	४.१५.१०
कुंताउह-कुन्तायुध	७.१०.१३
कुंद-कुन्द (पुष्प, वृक्ष)	४.११.१४;४.२१.२
कुंदुज्जल-कुन्द + उज्ज्वल	८.२.१६
कुंभ-कुम्भ, गण्डस्थल	६.३.४
कुंभंड-कूष्माण्ड	५.७.१७
कुंभत्थल-कुम्भस्थल	७.१.१८
कुंभयल-कुम्भतल, कुम्भस्थल	४.२०.८
कुंभविलया-घटधारिणी	१.९.१
कुंभि-कुम्भी, हस्ति	८.१५.३
कुकइ-कु + कवि	१.६.५
कुकलत्त-कु + कलत्र	१.७.१
कुक्कुड-कुक्कुट (पक्षी)	१०.२६.४
कुगइ-कु + गति	११.७.७
कुगइपह-कुगतिपथ	२.१६.२
कुट्टणि-कुट्टिनी	५.७.२४
कुट्टिणी-कुट्टिनी	४.१९.२०
कुट्ठ-कोष्ठ, हि० कोठा	७.६.७
कुडंब-कुटुम्बी	४.६.१
कुडय-कुटज वृक्ष	५.८.११
कुडि-कुटी	९.१०.२
कुडिल-कुटिल	८.१६.१०
कुडिलभाव-कुटिलभाव	११.७.९
कुडुंबी-कुटुम्बी, कृषक	१.८.७
कुड्ड-कुडय, भित्ति	१.१६.४;९.१४.१४

कुढार-कुठार	९.१५.१४
√कुण-कृ °इ	२.२०.६;५.४.१२
कुणवि	१०.१७.१२
कुतक्क-कु + तर्क	१०.२४.८
कुत्थिय-कुत्सित, अधम	२.२.५
कुद्ध-क्रुद्ध	५.८.१४
कुद्दमण-कुद्रमन	९.७.८
कुमइ-कु + मति	५,१३.२३
°कुमर-कुमार	३.४.८
कुमाणुसत्त-कु + मनुष्यत्व	११.७.७
कुमारभाव-(तत्सम) कुमार अवस्था	४.१४.१३
कुमारिया-कुमारिका	४.१२.७
कुम्म-कूर्म	४.२०.११
कुम्मायार-कूर्म + आकार	४.१३.१७
कुम्मासणट्ठ-कूर्मासन + स्थ	५.१४.२१
कुरंगसिसु-कुरङ्ग + शिशु	५-१०.१५
कुरवअ-(i) कुरवक (वृक्ष विशेष)	
(ii) कु + रत	४.१७.२
कुरु-कुरुदेश (हस्तिनापुर प्रदेश)	९.११.१३
√कुरु-कृ (विधि०)	१०.१४.१३
कुरुल-पर्वत	५.१०.११;७.१३.३
कुरुलभंग-कुरल + भङ्ग, केशभङ्गिमा	४.१५.८
कुरुविसय-कुरुविषय	१०.१८.६
कुलउत्तिय-कुल + पुत्री, कुलवधू	४.५.२६
कुलकम-कुलक्रम, कुलपरम्परा	५.३.३.१५
√कुलकुल-कुरकुराय्, कुर-कुर ध्वनि करना	५.१०.१६
कुलक्ख-(तत्सम) कुलचातुरी	७.५.१५
कुलमइलण-कुल + मलिनः, कुलको मलिन करनेवाला	४.३.४
कुलमंगल-कुल + मङ्गल	४.७.११
कुलमग्ग-कुलमार्ग	२.१७.७
कुलपर-कुल + पर-परम, श्रेष्ठकुल	४.१.१२
कुलपहु-कुलप्रभु	९.१०.१४
कुलबालिया-कुलबालिका	२.९.१४
कुलभूसण-कुलभूषण	
कुलयर-कुलकर	११.२.४
कुलायार-कुल + आचार	२.१९.३
कुलिस-कुलिश,वज्र	७.४.१

कुल्लतल्ल–कुल्या + तल ४.२१.७
कुवलअच्छि–कुवलय + अक्षि ४.१२.६
कुवलय–(तत्सम) (i) कुवलय, नीलकमल
(ii) कु + वलय, पृथ्वीमण्डल ८.३.१६
कुवि–कोऽपि ६.५.७
कुविअ–कुपित ७.७.१०
कुस-कुश, अंकुश ५.७.११
कुसम–कुसुम ८.१०.८
कुसल–कुशल ९.१८.९
कुसामि-कु + स्वामी, पृथ्वीपति ७.६.२५
कुसुंभ–कुसुम्भ, रंग विशेष ६.१४.१३
कुसुमंकिअ–कुसुम + अङ्कित १.१७.२
कुसुमदाम–(तत्सम) कुसुममाला १.९.३
कुसुमाल–स्तेन, चोर ९.१५.७
कुसुमिय–कुसुमित १.८.५
कूअ–कूप १०.१७.७
कूइय–कूजित ४.६.३
कूडअ–कूट + क, प्रतिरूप ९.१३.४
कूडमंत–कूटमन्त्र ४.१७.१७
कूर–क्रूर ५.५.८
कूरगह–क्रूर + ग्रह १०.२५.१०
कूरग्गह–क्रूर + ग्रह ५.५.३
कूलावहि–कूल + अवधि १.१०.१४
कूव–कूप १०.१७.४
कूवार–सागर १.१८.९
के–क:, कौन ७.३.१०
केऊर–केयूर १.१४.३; २.२०.११
केणय–क्रययोग्य वस्तु ५.११.३
केणिय–क्रीत ६.३.३
केत्तिय–कियत्, हि० कितना ११-३.७
केम–कथम् ५.४.२१
केयार–केदार, खेत ५-९.६
केरअ–(अप०) षष्ठि प्रत्यय ६.२.३
केरल–देश ९.१९.१
केरलनयरी–केरलनगरी ५.५.१७
केरलपुरि–केरलपुरी ५.३.६
केरलबल–केरलसैन्य १०.१.१४
केरलि–केरलवासिनी स्त्री ४.१५.८
केरिस–कीदृश ४.१८.११
केलि–कदली, हि० केली ८.७.१२
केवल–केवल (ज्ञान) ४.४.२
केवलदीवअ–केवल (ज्ञान) + दीपक ४.३.१४
केवलणाण–केवलज्ञान, सम्पूर्ण ज्ञान, १०.२१.६
केवलवाह–केवल(ज्ञान)वाहक १.१६.२
केस–केश १.१७.६
केसबंध–केशबन्ध ५.१२.१८
केसभर–केशभार १०.१६.५
केसर–(i) केशर-तिलक (वृक्ष) ४.१७.३;
(ii) सिंहके कन्धेपर-के बाल ७.४.३
केसरि–केशरी, सिंह ५.१२.१४
केसलडी–केशलटी, केशोंकी लटें ९.१८.३
केसव–केशव, नारायण ४.४.४
को–क:, कौन २.१८.५
कोइ–क: अपि-कोऽपि, हि० कोई ४.१८.१
कोइल–कोकिला ५.१०.१६
कोऊहलत्थ–कौतूहल + अर्थ ९.१२.१३
कोऊहल–कौतूहल १.१३.८
कोंकण–कोंकण (देश) ९.१९.४
कोंग–कुर्ग देश ९.१९.१४
कोंत–कुन्त ५.१४.१०;७.१०.१३
कोंतकोडि–कुन्त + कोटि, भालेकी नोक ४.२१.११
कोंतग्ग–कुन्ताग्र (अस्त्र विशेष) ७.६.१
कोंताउह–कोन्त + आयुध ६.६.९
√कोक्किज–व्या + हृ (कर्मणि) °इ ११.५.२
√कोक्कि.–व्या + हृ + इर ताच्छील्ये २.४.११
कोट्ट–कोट, दुर्ग ५.३.१३
कोट्टाल–(दे०) कच्चे फलोंका समूह ६.४ १
कोट्टवाल–कोटपाल, हि० कोतवाल ५.११.३
कोट्टअ–कोष्ठक, हि० कोठा १.१८.१५
कोट्ठा–कोष्ठ, हि० कोठा १.१६.४
कोड–(दे) कौतुक २.१२.६
कोड-कोटि, हि० करोड़ ६.३.२
कोडि–कोटि, किनारा, अग्रभाग ६.७.४
कोडी–कोटि, हि० करोड़ ३.४.९
कोडु–(दे) कौतुक ३.११.८
कोड्डावण–कौतुक उत्पन्न करनेवाला १०.७.११
कोढ–कुष्ठ, हि० कोढ़ २.५.१२
कोणंत–कोण + अन्त ५.१४.१६

कोणंतर–कोण + अन्तर, एक कोना २.१६.१३
कोवंड–कोदण्ड, धनुष १०.१२.१
कोलउल–कोल + कुल, जंगली सूअरोंका मुण्ड ५.८.१६
कोव–ईषत् ८.१४.५
कोविय–कुपित ६.४.६
कोस–कोष ८.१४.५
कोसंब–कोशाम्र (वृक्ष विशेष) ५.८.१३
कोह–क्रोध ११.८.७
क्खज्जोयय–खद्योतक ७.२.१३
क्खयकर–क्षयकर ३.७.१५
√क्खव–क्ष ˚इय् ˚इ २.७.१०
˚क्खाणय–आख्यानक ९.१९.१९
क्खारिय–क्षरित ˚उ २.६.१०
˚क्खालिय–क्षालित १.१३.५
√˚क्खिल्लंत–क्रीड् + शतृ ६.३.९
क्खीणारिंधण–क्षीण + अरि + इंधन १.११.४
क्खोह–क्षोभ ६.४.१

[ख]

ख–(तत्सम) आकाश २.३.७;५.५.८
खअ–क्षय, विनाश ९.७.१५;११.८.५
खइअ–क्षयित ३.५.८
खइय–खचित ७.१०.२३
खइर–खदिर, हि० खैर ५.८.६
खं–खम्, आकाश ५.७.४
√खंच–कृष् ˚वि ५.१.५
˚हि (विधि०) ५.११.२९
√खंड–खण्डय् ˚मि २.१५.१५
खंडिऊण ७.६.३१
खंड–खण्ड २.१७.११
खंडयंद–(i) खण्ड + चन्द्र
(ii) खण्ड + कन्द (मूल) ५.८.३६
खंडिय–खण्डित १.११.९;७.१०.२
खंतव्व–क्षन्तव्य ७.१२.१२
खंति–क्षान्ति ११.८.७
खंध–स्कन्ध, समूह ७.४.७.१०.२४.५
खंधंत–स्कन्ध + अन्त १०.१६.५
खंधार–स्कन्धावार ५.८.१;७.१३.४
खंभ–स्तम्भ, हि० खंभा १.१०.१२
खग्ग–खड्ग ६.३.४;७.६.१
खग्गंक–खड्ग + अङ्क १.११.१०
खग्गफल–खड्गफलक ६.१४.९
√खज्ज–खा (कर्मणि) ˘इ २.२.२
√खज्जंत–खा + शतृ ९.१.१०;९.५.६
खडक्किय–खटत्कृत (ध्वन्या०) ७.६.५
खडखडिय–खडत्कृत, हि० खड़खड़ाना (ध्वन्या०) ६.७.३
खडतड–(ध्वन्या०) १.१४.७
√खडहडंत–(दे) खटत्कृ + शतृ ६.१०.११
खडिया–खटिका, हि० खड़िया ६.१४.१५
√खण–खन् ˚इ ९.८.१३
√खणंत–खन् + शतृ ५.१०.७
खण–क्षण (मात्र) ४.१९.५;८.१३.१०
√खणखणंत–खनखनाय् + शतृ ६.६.६
खणण–खननः, खनक ९.७.६
खणंतर–क्षणान्तर २.१६.१३
खणदिट्ठ–क्षण + दृष्ट ९.१२.६
खणद्ध–क्षण + अर्द्ध ५.५.१५
खत्तिय–क्षत्रिय ५.३.१५
खद्ध–(दे) भुक्त १.१८.८;१०.७.२
खद्धउ–(दे) भुक्त ९.१.८
खप्पर–कपाल, हि० ठीकरा ५.२.२२
खम–क्षमा ३.६.२
√खम–क्षम्, खमंतु (विधि०) ८.१.२
√खमावअ–क्षमापय् ˚मि ८.७.१०
खमिय–क्षमित ८.७.१०
खय–क्षय ७.९.११;८.८.१५;१०.१९.५
√खय–क्षि ˚इँ १०.४.१४
खयकरि–क्षयकारी ८.७.१६
खयकाल–क्षयकाल १०.२५.११
खयचियउ–क्षत + चित्, क्षतयुक्त ६.६.११
खयर–ख + चर, खचर, खेचर–विद्याधर (जाति) ५.४.१२;५.११.१५
खयरंतअ–खेचर + अन्तक–मारक ७.११.१४
खयरबल–खेचर + बल ७.१.७
खयरवइ–खेचरपति ७.५.१०
खयरवि–क्षय + रवि, प्रलयसूर्य ५.१३.१४

खयरोअ–क्षयरोग ३.११.३
खयाण–खदान, खड्डा ५.१०.७
खयाल–कन्दरा ५.१३.३२
खर–क्षर, कठोर, प्रखर ५.८.६
खलखलिय–खलखलायित ५.८ २१
खलण–स्खलन ४.१५ १०
√खलंत–स्खल् + शतृ ३.८.३;९.१३.११
खलहल–खलखल (ध्वनि) १.७.९
√खव–क्षपय् °इ २.१.१५;
° °वि २.७.१५
खस–खश खुजली (व्याधि) ९.१९.७;१०.७.१
√खा–खाद्, °मि १०.१२.६
खाइया–(दे) खातिका,गहरी खाई ४.१८.७
√खाउं–भोक्तुम्, खादितुम् १०.२६.५
खाणि–खानि, खान, निधान १०.१८.८
खामियअ–क्षमित + क(स्वार्थे) २.८.५;२.१६.१३
खारसमुद्द–क्षारसमुद्र ६.१.१३
खारिअ–क्षारित १०.५.११
खारिय–क्षारिय, कटु ७.४.१६
√खिज्ज–क्षि, (कर्मणि) °इ २.१.१४;३.१२.३
खित्त–क्षिप्त १०.१६.४
खित्त–क्षेत्र १०.२०.८
खित्तकम–क्षेत्रक्रम ११.११.१०
खिन्न–खिन्न,श्रान्त, ५.९.११;९.१३.१८
√खिर–क्षर् °इ १.१३.७
खीण–क्षीण (रहित) १.१८.१३
खीर–क्षीर १.१३.७
खीरमऽण्णव–क्षीर + महार्णव, ८.१५.६
खीरोवहि–क्षीर + उदधि (क्षीरसागर) ४.१०.६
खील–कील २.१५.२
खुंद–खुंदा, वाद्यविशेष ५.६.१२
खुण्ण–क्षुण्ण मर्दित ४.२१.८
√खुट्ट–त्रुट् °इ ३.८.९
√खुट्टंत–त्रुट् + शतृ ११.१५.५
खुत्त–(दे०) निमग्न २.७.९;६.१०.४;९.७.१४
खुद्दअ–(i) क्षुद्र + क (स्वार्थे), क्षुद्राः जनाः
(ii) क्षुद्राः(वेश्याजनाः) ९.१२.१९
खुद्दजंतु–क्षुद्रजंतु ९.१०.११
खुद्दु–क्षुद्र ३.११.९
खुप्पाविय–मज्जित, निमग्न ६.१४.९२
खुर–तत्सम १.१५.३
खुहिअ °य–क्षुभित ४.१०.८;१०.१९.१८
खेअ–खेद १०.१६.८
खेड–खेल ४.१९.१९
खेत्त–क्षेत्र ११.११.५
खेत्तकम–क्षेत्रक्रम, क्षेत्रसंख्या ११.११.१०
खोट्टिया–(दे) खोट्टिका, दासी ४.२१.१२
खोर्डी–गर्दभी ५.१०.२२
खोणी–क्षोणी, पृथ्वी १.१५.३
खोणीरुह–क्षोणीरुह, वृक्ष ४.१६.३
खोयण–खोदना, खनन ९.८.१६
खोर–(दे) खोर ९.१३.६
खोह–क्षोभ ६.११.४

[ग]

गइ–गति १०.१४.१५
गइंद–गजेन्द्र ३.९.१६;४.२१.१३
गउ–गतः ३.१२.२१;९.४.८
गउड–गौड (देश) ९.१९.१३
गउरअ–गौरव ९.१२.१७
गंग–गङ्गा ९.१९.१५
गंगवाडी–गंगराजाओंकी राजधानी (आन्ध्रमें) ९.१९.२
गंगोवहि–गङ्गोदधि ९.१९.१५.
गंट्ठि–(i) ग्रन्थी, हि० गांठ
(ii) ग्रन्थी, छल ५.९.१६
गंड–गण्ड(स्थल) कपोल प्रदेश ५.१३.१०
गंडपळमालण–दे० गण्डमाला (रोग) ८.७.८
गंडयल–गण्डतल-गण्डस्थल ४.२२.१९
√गंतूण–गम् + तुमुन्; गम् + क्त्वा ८.२.८
गंथुद्धरिअ–ग्रन्थ + उद्धृत, विरचितम् १.५.५
गंध–(तत्सम) गन्ध ४.६.१
गंधलुद्ध–गन्धलुब्ध ९.९.२
गंधव्वाणुलग्ग–गन्धर्व + अनुलग्न, गन्धर्वोंके समान १.१०.२
गंधिभिर–गन्ध + उत्तेजित ५.१०.९
√गंधुब्भंत–गन्ध + उद्भाव् + शतृ ८.१२.४

गंभीर–(तत्सम) गम्भीर 1.6.6
√गग्गिर–गद्गद् °इर (ताच्छील्ये) 2.10.7
√गच्छ–गमय् °इ 2.8.18;10.8.7
°इ (विधि०) 9.4.12
गच्छि (विधि०) 10.8.11
√गज्ज–गर्ज °इ 5.13.23
√गज्जंत–गर्ज् + शतृ 5.8.14
गज्जमाण–गर्ज् + शानच् 7.4.15
√गज्जिर–गर्ज् + इर (ताच्छील्ये) 5.8.32
गज्जिरव–गर्जि + रव, गर्जन 4.20.12
√गडयडड्–(दे) गिड़गिड़ाना (ध्वनि) 6.14.4
√गड्डुवि–(दे) गाड़कर 9.8.17
√गण–गणय् °इ 6.7.14
√गणंत–गणय + शतृ 6.13.6
√गणंती–गणय् + शतृ °ी (स्त्रियाम्) 9.13.1
गणण–गणना 8.8.4
गणहर–गणधर 1.16.5
गणियउ–गणिकाजनाः 9 12.7
गणियार–गणिकार वृक्ष 5.8.11
गत्त–गात्र 6.7.6
गद्दह–गर्दभ 5.11.5
गब्भ–गर्भ 4.1.8
गब्भब्भंतर–गर्भ + आभ्यन्तर 4 7.2
गब्भंतर–गर्भ + अन्तर 1.9.4
गब्भवई–गर्भवती 4.7.8
गब्भिण–गर्भित 10.16.5
गब्भुब्भव–गर्भ + उद्भूत 1.5.8
गब्भोरुय–गर्भ + उरु + ज 4.13.16
गम–गमन 8.5.13
गमण–गमन 2.8.10
गमणविलंब–गमन + विलम्ब 1.7.10
गमणि–गमनी, जानेवाली 10.8.1
गमतूर–गमनतूर, प्रस्थानतूर्य 4.2.4
गमागम–गम + आगम- गमनागमन 5.13.27
गमिअ–गमित 6.18.10
√गम्म–गम् °इ (आत्मने) 3.12.13
गय–गज 5.3.14
गय–गताः (स्त्री०) 4.18.5
गयउल–गजकुल 3.2.11
गयंद–गजेन्द्र 4.21.13
गयखेव–गतक्षेप, गतकाल 6.3.5
गयगंड–गज + गण्ड (स्थल) 5.7.8
गयघड–गजघटा 8.13.19
गयण–गगन 1.1.10
गयणगई–गगनगति (विद्याधर) 5.11.9; 6.10.13
गयणगमण–गगनगमन, गगनगति विद्याधर 6.10.5
गयणंगण–गगन + आङ्गन 5.4.7
गयणपव–गगनप्रवह–गगने प्रवहमान इत्यर्थः 7.2.12
गयणवह–गगनपथ 7.5.4
गयपहरण–(i) गत + प्रहरण
(ii) गदा + प्रहरण 1.11.14
गयपार–गत + पार 4.6.13
गयवइय–गतपतिका (स्त्री०) 8.15.4
गयवर–गजवर 7.10.13
गयसारि–गजशारि, युद्धके लिए हाथीका पर्याण 7.11.2
गरल–(तत्सम) हालाहल 3.7.14
गरिट्ठ–गरिष्ठ 10.26.6
गरिल्ल–गरिष्ठ 7.11.1;11.10.3
गरुअ–गुरु + क (स्वार्थे) 3.7.4
गरुड–(तत्सम) गरुड़ (पक्षिराज) 3.7.15; 11.2.2
गरुय–गुरु + क (स्वार्थे) 1.5.14;6.1.5
गरुयउ–गुरुक 8.11.3;7.4.6
गरुयमाण–गुरुक + मान 10.6.5
गरुयारउ–गुरुकार + क (स्वार्थे) 1.5.9
गरुयारंभ–गुरुक + आरम्भ-उद्योग 5.8.30
गरुव–गुरुक 4.20.12;9.5.7;10.1.4
√गल–गल् °इ 11.17
√गलंत–गल् + शतृ 5.1.26;5.13.18
गल–गल, कण्ठ, हि० गला 10.26.3
गल–बडिश, मछली पकड़नेका काँटा 5.8.25
गलगज्जि–गल + गर्जित 6.5.6
गलत्थि–क्षेपक, फेंकनेवाला 4.20.7
गलपमाण–गलप्रमाण 6.2.4
गलिअ–गलित 10.18.12
गलिय–गलित, स्रस्त 5.9.6;8.7.5

गवक्ख-गवाक्ष ८.१५.९
गवक्खंतर-गवाक्ष + अन्तर १.९.४
गवय-नीलगाय ५.८.१५
√गवेस-गवेषय् ँसेह (विधि०) १०.९.६
गव्व-गर्व ७.७.६;७.१२.१२
√गस-ग्रस् ॅइ १०.१२.१०
गसिअ-ग्रसित-ग्रस्त १०.१३.१३
गहण-गहन वन ११.८.१०
गहण-ग्रहण, लेना १०.१०.८
गहण-प्रवेश, सामर्थ्य ५.१३.२८
गहिअ-ग्रहीत १.१७.९
गहियण्ण-ग्रहीत + अन्य १.१.१२
गहियाहर-ग्रहीत + अधर ४.१७.१४
गहिर-गभीर, गम्भीर ५.१०.२;८.११.२
गहिरक्खर-गम्भीर + अक्षर १.१४.२
गहिरसर-गम्भीर + स्वर ३.४.४
√गाइज्ज-गा (कर्मणि) ॅइ ४.१५.१
√गायंत-गा + शतृ ५.१.१९
गाएव्वउ-गाना ४.१२.१३
गाढ-गाढ़, दृढ़ ६.४.९;७.८.१३
गाढगंठि-गाढ़ ग्रन्थि ९.१२.१
गाढत्तण-गाढ़त्व, दृढ़ता ८.११.६
गाढिअ-गाढ़, हि० गाढ़ी, दृढ़ १०.१४.१३
गाम-ग्राम ५.९.१;८.२.२०
गामलग्ग-ग्राम + लग्न २.१६.१०
गामार-(दे) ग्रामीण ५.९.१
गामि-(तत्सम)गामी, जानेवाला ३.५.२
गामी-(तत्सम) गामी, जानेवाली १.१८.७
गामीणजण-ग्रामीण जन ३.१.१९
गाविउ-धेनवः १.१३.७
√गाविज्ज-गा (कर्मणि) ँए ५.९.११
√गास-ग्रासय्, ॅइ ६.९.९
√गाह-ग्रह्, गाहु-ग्रह् + क्त्वा १०.१४.९
गाह-ग्रह (कुग्रह) ९.२.७
गाहा-गाथा १.११.१५
√गिज्ज-गी (कर्मणि) ॅइ ४.१०.२
√गिज्जंत-गी + शतृ २.१२.१; ५.१.२३
√गिण्ह-ग्रह् ॅइ ८.१५.१३
ॅह(विधि०) ९.१.४
ॅहि(विधि०) ९.१५.६
√गिण्हाविज्ज-ग्रह् + णिच् + ॅइ (विधि०) ९.८.९
गिद्ध-गृद्ध ६.७.७; ६.८.६
ॅगिर-गिरा ५.१३.१३;९.१७.१६
गिरा-(तत्सम)गिरा २.१९.७
गिरिंद-गिरि + इन्द्र ४.१०.५;५.१०.११
गिरिकडणि-गिरिकटनी, गिरिमेखला, ५-८.१४; ९.९.१०
गिरितणय-गिरितनया, पार्वती ५.९.१४
गिरितुल्ल-गिरितुल्य ९.४.१०
गिरिदरि-गिरिविवर ९.१०.१९
गिरिनइ-गिरिनदी ८.७.७; ११.१.६
गिरिसिंग-गिरिशृंङ्ग ७.८.७
गिरु-गिरा २-१८.१०
√गिल-गि, निगलना ॅइ ७.५-१४
गिलिअ-गिलित ९.५.८
गिव्वाण-गीर्वाण, सुर ७.११.३; ८.४.१५
गिहासम-गृह + आश्रम २.६.३
गुंजकियं-गुञ्जङ्कृत (ध्वनि) १०.१९.४
√गुंजंत-गुञ्ज् + शतृ ४.२२.४; ५.६.१०
गुंजा-गुञ्जा वृक्ष विशेष ५.८.१०
गुंजरिय-गुञ्जारिता (स्त्री०) ५.८.१५
गुंजिय-गुञ्जित १.१२.५
गुंजुज्जल-गुञ्जा + उज्ज्वल ५.१३.११
गुंठ-(दे) कपटी, मायावी ४.२१.११
√गुड-गुड्, हौदा आदि लगाकर सजाना गुडंति (बहुव०) ५.६.४
गुडाई-गुड + आदि १०.१.३
गुडिअ ॅय-गुडित, कवचयुक्त ६.११.३;७.५.७
गुडुर-(दे) तंबू, डेरा ५.१०.२३
गुण-(तत्सम) ज्या, प्रत्यञ्चा ५.१४.११
गुणजुत्त-गुणयुक्त ४.६.११
गुणथाण-गुणस्थान ४.४.५
गुणथाम-गुणस्थान ४.२.३
गुणनिलअ-गुणनिलय १.५.२
गुणपरिमिअ-गुणपरिमित ३.६.१
गुणबंध-रसना, मेखलाबन्ध १०.१८.११
गुणभाव-गुण + भाग, गुणभाजन ५.१३.३०

गुणमंदिर–(तत्सम) गुणनिधान ३.२.१२
गुणसीला–गुणशीला: (बहु व०) २.११.७
गुणहार–(तत्सम) हि० हारकी लड़ें ८.१६.६
गुज्जरत्ता–गूर्जरत्रा, गुजरानवाला (सिन्ध) ९.११.९
गुज्झ–गुह्य (स्थान) ४.१९.१६
गुत्त–गोत्र ८.१०.१२
गुत्त–गुप्त ८.१६.६
गुत्तायार–गोत्राचार ८.१२.६
गुत्तितअ–गुप्तित्रय १०.२०.७
√गुप्प–गोपय् °ए (आत्मने०) १०.१०.३
गुप्फाविय–गुल्फायित ६.१४.१२
गुमगुमिय–गुमगुमित (ध्वन्या०) ५.१.२५
गुरु–(i) गुरु द्रोणाचार्य
(ii) गुरु—बड़े-बड़े ५.८.३२
गुरुपंथ–गुरुपथ, दीर्घयात्रा १०.८.१२
गुरुपय–गुरुपद, गुरुचरण १०.१९.१७
गुरुय–गुरुक ९.५.७
गुरुवयण–गुरुवचन २.७.१२
°गुरुसरि°–गुरुसरित्, महानदी २.८.७
गुरुहार–गुरुभार ४.७.३
गुलखेड–ग्राम (मालवा) १.४.१
गुलियाठाण–गुलिका–गुटिका + स्थान ४.१३.१३
गेअ–गेय, गीत १०.८.९
√गेण्ह–ग्रह °इ ८.१६.१३,
°मि ९.११.१०
गेण्हेवि २.१२.१
गेय–गेय, गीत ८.९.१०
गेयारव–गेयरव, गीतरव ९.२.६
गेरुय–गेरु + क (स्वार्थे) २.९.३
गेवज्ज–ग्रैवेयक ११.१३.५
गेविज्जअ–ग्रैवेयक ११.१२.२
गेह–गृह ३.११.११;१०.१७.२
गेहिणि–गृहिणी २.५.४;२.१९.३
गो–(i) धेनु (ii) जल २.५.३
गोउर–गोपुर १.९.१;१.१६.३
गोट्ठ–गोष्ठ, हि० गोथान; भोजपुरी : वथान ८.१५.११
गोट्ठंगण–गोष्ठ + आङ्गन १.७.९
गोट्ठि–गोष्ठी ९.१७.११
गोत्त–गोत्र ८.७.१६

गोत्तवइ–(स्त्री०) गोत्रवती ४.२.३
गोधण–(तत्सम) गो + धन १.९.२
गोधूम–(तत्सम) गोधूम, हि० गेहूँ ५.८.२९
गोमंडल–(तत्सम) गो (पृथ्वी) + मण्डल १.११.१३
गोमय–(तत्सम) हि० गोबर २.९.२
गोरंगी–गौर + अङ्गी (स्त्री०) ३.३.९
गोरसवियार–(i) गोरस + विकार
(ii) गो-वाणी + रस + विचार १.३.३
गोरी–(i) गौरी, पार्वती
(ii) गौरवर्णा स्त्री ४.१८.१२
√गोव–गोपय् °इ ११.८.९
गोवयण–गोवदन, गोमुख ९.१९.१२
गोवाल–(i) गो + पाल; पृथ्वीपालक, राजा
(ii) गो + पाल, गायोंका पालक; ग्वाला ५.९.५
गोवी–गोपी, गोपिका ५.९.११
गोसामि–गो + स्वामी ५.७.१५
गोसामिणि–गो + स्वामिनी १.१०.३
गोहण–(i) गो + धन, पशुधन
(ii) पृथ्वीधन ५.९.५
गोहत्तण–(दे) पुरुषत्व, पौरुष ५.४.४
ग्घविअ °य–शोकसूचक ध्वनि २.५.१६;३.९.१०

[घ]

घंट–घण्टा (वाद्य विशेष) ५.६.९
घग्घरियगिर–घर्घरित + गिरा, खोखलीवाणी २.१८.१०
घट्ट–घृष्ट ५.१०.१०
घट्टण–घट्टन ४.२१.११
°घड–घटा, समूह ५.१०.४;६.६.५
√घड–घटय् °इ ४.१.४;८.१०.१५
घडिवि ४.१२.१५
√घडाव–घटापय् °इ ८.९.६
घडिअ °य–घटित ६.३.२;६.१०.५
घण–घना, सघन ४.१६.२;५.८.६;७.६.२२
घणड–घना, निबिड, सान्द्र ७.१.२२
घणणील–घननील १०.१.११
घणणेह–घनस्नेह ११.५.५
घणथण–घन + स्तन १.७.९
घणथणतड–घनस्तनतट ८.११.११

[च]

चंदणसाह–चन्दनशाखा १.१०.६
चंदणह–(i) चन्द्रनखा; रावणकी बहन,
(ii) चन्दनवृक्ष ५.८.२३.
चंदफलभ–चन्द्रफलक ८.८.११
चंदमंडल–चन्द्रमंडल १.१२.२
चंदमुहिय–चन्द्रमुखी ७.१२.७
चंदवयण–चन्द्रवदन ३.३.४.
चंदसरिस–चन्द्रसदृश ४.१७.१६
चंदसूर–चन्द्रसूर्य १.१८.१०
चंदायण–चान्द्रायण (व्रत) ४.१४.१२
चंदिण–चाँदनी ८.१५.१५
चंदोवय–चँदोवा १.१५.७
चंप–(दे) भोजपुरी : चाँपना, दबाना १.९.९
चंपाणयरि–चम्पानगरी ३.१०.११
चंपापुर–चम्पापुर नगर १०.२४.११
चंपिअ–(दे) चंपित; देखें : चंप' १.१.१
चक्क–चक्र, हि० चक्का ६.१०.४,७.६.१६
चक्क–चक्र (i) समूह (ii) सुदर्शन चक्र ५.५.९
चक्कधर–चक्रधर ३.३.१२
चक्कड–(दे) चक्राकार, विशाल १.१२.४
चक्कवइ–चक्रवर्ती ३.१.११
चक्कवइविहूइ–चक्रवर्तीविभूति ३.३.१६
चक्कवट्टी–चक्रवर्ती ३.८.७
चक्कवाय–चक्रवाक, हि० चकवा ५.७.२;८.१४.१६
चक्की–चक्री, चक्रवर्ती ३.४.७.
चक्केसर–चक्र + ईश्वर—चक्रेश्वर ३.७.१०
√चक्ख–आ + स्वादय्, चक्खमि २.१५.११
√चक्खंत–आ + स्वादय् + शतृ ९.५.१२
√चक्खिज्ज–आ + स्वादय् (कर्मणि) °इ १.८.६
चक्खु–चक्षु १.१.५;११.१३.८
चच्चर–चत्वर ४.१०.१;८.७.६
चच्चरियबंध–चर्चरी + बन्ध १.४.५
चच्चिय–चर्चित ६.२.५
चट्ट–चट, शिष्य ८.३.११;१०.८.२
√चड–आ + रुह्, °मि ५.१४.१६; °वि ८.११.११;
१०.१४.१०; °इँ (बहुव०) ८.१०.१६;
°हि (विधि०) ५.१४.१२; चडेवि
९.३.१०;११.१४.११
√चडाव–आ + रुह् + णिच् विवि ८.७.५
√चडफडंत–(दे) तड़फड़ाते हुए १०.१४.१३
चडाविअ °य–आरोहित ४.१८.३;६.१३.१;
१०.१३.१
चडिउ–आरूढ ७.५.७
चडिण्ण–आरूढ ५.५.१४
चडिण्णउ–आरूढ ३.६.१२
चडिय–आरूढ १०.१२.४
चड्डिय–आरूढ ९.८.५
चत्त–त्यक्त २.१९.८;१०.२६.५.
√चप्प–आ + क्रम्, चप्पेवि ७.११.१
चप्पण–आक्रमण ७.६.१०
चप्पिय–आक्रान्त ९.१३.९
√चमक्क–चमत् + कृ °इ २.१५.१७
चमक्क–चमत्कार ५.१२.११
चमक्किय–चमत्कृत ९.१४.१३
चमर–चामर, हि० चंवर १.१२.५;८.१३.४
चमराणिल–चमर + अनिल ३.७.७
चम्म–चर्म ११.६.२
चम्मजट्ठि–चर्म + यष्टि ४.२१.७
√चय–त्यज्, °मि ८.५.१३; °वि ३.५.९;६.१०.१०;
९.८.६;१०.६.३
√चयंत–त्यज् + शतृ २.७.११;११.१४.५
चयण–त्यजन, त्याग १०.२१.८
चयणिज्ज–त्यजनीय ३.८.५
चयारि–चत्वारि ३.१३.१४;११.११.५
√चर–चर्, °ई ३.३.१०;चरिवि ८.३.१२;चरेप्पिणु
८.२.१०; १०.२१.७; °उ(विधि०)१०.७.३
√चरंत–चर् + शतृ ९.१०.७
चरण–(तत्सम) चारित्र ८.२.१२
चरणग्ग–चरण + अग्र १.१.१
चरणजुयल–चरणयुगल ३.३.५
चरमतणु–चरमशरीरी, जम्बूस्वामी ७.१.२१
चरमसरीर–चरमशरीर, अन्तिमशरीर ४.३.८;८.७.१
चरित्त–चरित्र १.१८.२२; ११.१५.१०
√चरिज्ज–चर् (कर्मणि) °इ २.२.११
चरिय–चरित्र प्रश० ६
चरियकरण–चरित्ररचना प्रश० १०
चरियसय–चरित्र + शत ४.४.६
चरिया–चर्या ३.६.६

चरियामग्ग–चर्यामार्ग २.१५.८
√चल–चल °इ ५.१२.१; °उ (विधि०) ५.१२.२
√चलंतु–चल् + शतृ (विधि०) ९.१४.१
चलण–चरण २.१९.९; ३.५.३; ७.५.३
चलणग्ग–चरण + अग्र १.१.३
चलणच्छवि–चरण + छवि ४.१४.५
चलणजुगल–चरण + युगल ४.४.१३
चलरमण–चञ्चलरमणा (स्त्री० विशे०) ४.१९.८
चलवलिय–चलवलित, चञ्चल १.९.८
चलसिह–चञ्चल + शिखा २.४.१२
चलिअ–चलित १.११.६; ७.१३.२; १०.१०.३
चलिउ–चलित १.१४.१०; ४.१६.१
चलियअ–चलित ९.१३.२
√चव–वद् °इ २.१८.१; ८.८.३, १०.८.१
चवण–च्यवन २.२.६
चवल–चपल २.९.६
चवलय–चपल + क (स्वार्थे) १.८.३
चविअ–कथित ५.१३.१३; १०.२५.७
√चव्वंति–चर्व् + शतृ °ि (स्त्रियाम्) ७.१.१६
√चव्विअ–चर्वित, चबाया हुआ ५.११.५
चवेड–चपेट ४.१९.२१
चसअ–चषक ४.१७.१५
चहरी–(दे) मर्दित ५.१०.१०
चहुट्ट–(दे) निमग्न होना, चपेटा जाना, फँसा हुआ °इ ७.६.२०;८.११.१०
चहुट्ट–(दे) चिपक गया, फँस गया ९.७.१२
चाअ–त्याग ८.१४.९; ११.१४.९
चाअ–चाप ४.१३.५; ६.१.३
चाउरंग–चतुरङ्ग ५.६.१५
चामीयर–चामीकर, सुवर्ण १.१२.७
चाय–त्याग १०.१.९
चार–(i) आचरण (ii) प्रियाल वृक्ष ५.८.३३
चारणरिद्धि–चारणऋद्धि ३.५.२
चारणाइ–चारण + आदि ३.६.४
चारहडि–चारभटी ७.७.५
चारहडिय–चारभटी ७.६.१९
चारित्त–चारित्र १.३.५; ११.१.१४
चारिय–चारित, ५.३.११
चारु–(तत्सम) सुन्दर १.१.७;१०.८.५
चालिय–चालित १.१२.१
√चाव–चर्व् °हि १०.५.६
चाव–चाप ४.१८.३;६.१३.१
√चाह–वाञ्छ °इ २.१४.२;७.१३.८
चाहिअ–वाञ्छित ६.११.१०
चिंचइय–(दे) मण्डित १.९.८
√चिंत–चिन्तय् °इ ९.५.१;११.८.१; °वइ २.१४.६; ७.१.२१; °वि २.८.९; ९.११.१३; चिंतिवि ९.५.१; ९.८.१०; ११.८.१
√चिंतंत–चिन्तय् + शतृ ८.२.३
चिंतासल्ल–चिन्ता + शल्य ९.१५.८
चिंतिअ–चिन्तित ९.६.७
√चिंतिज्ज–चिन्तय् (कर्मणि) °इ ५.१३.१९
चिंतिव्वउ–चिन्तयितव्यम् ११.१३.१०
चिंध–चिह्न, पताका ७.२.६
√चिक्कमंत–चक्रम् + शतृ २.१५.१०
चिक्कराड–चीत्कार, चिंघाड़ ४.२१.११
चिक्कार–चीत्कार ५.७.१४
चिक्किण–चिक्कण, चिकना ७.६.२०
चिक्खिल्ल–(दे) कर्दम ७.६.२०
चिच्चुय–(दे) चिपटा २.१८.१२
चिण्ण–चीर्ण २.४.५
√चिज्जंतु–चि + शतृ (कर्मणि) ११.१४.८
चित्त–मन १.१८.४;२.१५.१०
चित्तउ–चित्त + वत्, चित्त ३.१३.११
चित्तउड–चित्तौड़ ९.१९.७
चित्तब्भमण–चित्त + भ्रमण ९.१४.१३
चित्तय–चित्र + क (स्वार्थे) ५.८.२६
चित्तलिय–चित्रलित, चित्रित ४.८.८
चित्तुत्ताल–चित्त + उत्ताल, उतावला ५.५.१६
चिय–चिता २.५.१४
चिय–च + एव ७.१.६
चिरकव्व–चिरकाव्य, प्राचीनकाव्य ९.१.३
चिरजम्म–पूर्वजन्म २.५.१२
चिरभव–पूर्वभव ८.२.१४
चिरहिल्ल–वृक्षविशेष ५.८.८
चिराउस–चिर + आयुष्य २.१७.२
चिलिचिल–(दे) आर्द्र, गीला ५.७.८
चिलिसावण–(दे) जुगुप्सनीय २.५.१३
चिव्विक–(दे) परित्याज्य ९.१.१०

चीण–चीन (कोचीनपत्तन) ९.१९.२

चीआ–चिता १०.२६.८

चीर–चीर, वस्त्र ८.१२.१२

चीरंचल–चीराञ्चल ७.४.१४

चुअ–च्युत ३.९.७;४.७.२;७.६.३३

चुंमल–चुम्मल, शेखर ६.१०.३

√चुंब–चुम्ब् °इ ४.१७.१८; चुंबवि ७.१३.७

चुंबण–चुम्बन ४.१६.११; ९.१३.९

चुंबिअ–चुम्बित ४.२१.४

चुंबियास–चुम्बित+आस्य ३.१२.२

चुक्क–भ्रष्ट २.९.३

√चुक्क–(दे) भ्रंश् °मि ९.१०.९

चुक्का–भ्रष्टा (स्त्री॰ विशे॰) २.१९.३

चुय–च्युत ३.७.३;७.९.३

चूडुल्लय–चूड़ा, बाहुवलय + °उल्ल (स्वार्थे) ४.११.२; ६.३.१

चूय–चूत, आम्र ३.१२.५

√चूर–चूरय्, °इ ४.२१.३;७.६.१३;९.११.११

चूरिअ °य–चूरित ४.२२.५;७.३.४

√चूरिज्जमाण–चूरय् (कर्मणि) + शानच् ९.११.११

चूल–(तत्सम) केश १०.१६.३

चेइगेह–चैत्यगृह २.१९.५

चेइहर–चैत्यगृह २.१६.११;३.२.७

चेउल्ल–चेउल्ल (देश) ९.१९.४

चेट्ठ–चेष्टा ५.७.१७

चेडअ–चेट + क (स्वार्थे) १०.१४.१

चेय–च + एव १.१८.११;१०.९.६.

√चेयअ–चेतय् °इ २.२०.७;९.१.१६

चेल–(तत्सम) वस्त्र ८.१२.११

चेव–च + एव ७.४.८

चोइउ °य–चोदित ६.४.६;६.१२.५;६.१२.९

चोज्ज–(दे) आश्चर्य १.३.९

चोड–(दे) चूड़ा, चोटी ९.१३.५

चोडदेस–चोलदेश ९.१९.१

चोर–(तत्सम) चोर ३.१०.८

√चोर–चोरय् °मि ९.१५.५

चोरत्तण–चौर्यत्व ९.१४.४

चोरिय–चौर्य हि॰, चोरी ३.१४.१७

चोरियअ–चोरित १०.८.१०

√चोरेवइ–चोरय् + तुमुन् ९.११.१७

°च्चण–अर्चना ८.४.१

°च्चिय–च + एव, चैव ४.१८.७.

°च्छउ–अच्छतु, अस्तु १०.१२.६

°च्छरा–अप्सरा ९.२.९

°च्छि–अक्षि ३.१.२

[छ]

छइय–छादित ५.१२.१६;८.१४.१७

छइल्ल–(दे) विदग्ध, चतुर ५.८.३७

छंकार–जलकण १.१.२

√छंट–(दे) छंटय्, छाँटना, छंटइ ५.७.२१

छंद–छन्द ४.१२.१२

छंद–(i) अभिप्राय, (ii) आच्छादित ५.८.३६

छक्खंडवसुंधर–षट्खण्डवसुन्धरा ३.३.१२

छक्खंडिअ–षट्खण्डित ११.११.९

√छज्ज–छाज् °इ-शोभित ४.१३.१०;१०.१८.१४

छट्ठ–षष्ठ ६.१४.१८

छट्ठअ–षष्ठ १०.२२.८

छट्ठट्ठम–षष्ठ + अष्टम, ३.९.१२.

छडउ–छटा ७.१२.२

√छड्ड–छर्द, मुच्, छड्डिवि ६.५.२;९.७.४; छड्डेविणु ७.१०.२३

छड्डाविअ–छर्दित, मोचयित ९.७.१०

छड्डिय–त्यक्त (त्यक्त्वा) ९.१.१९

छड्डिय–छर्दित, मुक्त ८.१४.२०

छण–क्षण, उत्सव ४.१९.२;९.८.१२

छणइंदु–क्षण + इन्दु, पूर्णचन्द्र १०.१.८

छणदिण–क्षणदिन, उत्सव दिवस ९.८.१२

छणससि–क्षण + शशि, पूर्णचन्द्र ४.१०.३;८.३.१६

छणिंदु–क्षण + इन्दु ६.१३.३.

छण्ण–छन्न, छादित २.१२.९;९.९.८

छण्णवइ–षट्नवति ३.३.१४

छत्त–छत्र ६.७.६;७.१.१०

छत्तपउ–छत्रपट ५.७.९

छत्तायार–छत्र + आकार ११.१२ १०

छद्दव्व–षड् द्रव्य १०.१८.७

°छड्डिय–छर्दित १.१.१४

छप्पयार–षट् प्रकार, छः प्रकार १०.२२.११

छप्पयालि–षट्पद + अलि ४.२०.१०

√छमछम–छमच्छमाय् (ध्वन्या॰) °छमेइ ४.११.३

√ छमछमंति–छमच्छमाय् + शतृ °ि (स्त्रियाम्) ७.१.१२
छम्मास–षण्मास २.४.१; १०.१२.५
छम्मासावहि–षण्मासावधि ८.५.३
छल–(तत्सम) छल, कौशल ६.९.११;१०.२.४
छल–छल, बहाना ६.५.३
छलय–छलक (जुआड़ी) ४.२.१०
छलिअ–छलित ११.३.१०
छवि–(तत्सम) कान्ति, शोभा १०.१८.१४
छव्विह–षड्विध १०.२३.८
छाअ–छाया, कान्ति ५.५.११
छाइय–छादित १.७.२
छाय–छाया, कान्ति २.१३.२
छाया–छाया ९.१४.१
छार–क्षार, भस्म ११.१३.९
छाहत्तरदससअ–१०७६ प्रश० ३
√ छिज्ज–छिद् (कर्मणि) °इ २.२.११
√ छिज्जंत–छिद् + शतृ ४.१७.१४; ५.७.५
छिण्ण–छिन्न २.५.१४; ६.१०.८
छित्त–स्पृष्ट ९.१७.३
छिद्द–छिद्र ११.८.५
छिन्न–छिन्न ८.२.४
छिन्नुच्छाह–छिन्न + छाया, कान्तिहीन ८.१६.४
√ छिव–स्पृश्, छिवेइ ६.१३.८
छुट्ट–(दे) मुक्त १०.१७.१८
√ छुट्ट–छुट् °मि ९.११.९
छुडुछुडु–(दे) (i)शीघ्र-शीघ्र; (ii)पुनः-पुनः ४.२०.२
छुद्ध–क्षिप्त, निमग्न १०.६.७
छुद्धउ–क्षिप्तः ५.१३.१५; ८.१४.६
छुरिय–छुरिका ९.१२.१
छुह–क्षुधा १.७.७
√ छुह—क्षिप्, छुहेवि(विधि०)३.११.९; छुवहि–(विधि०) ५.१३.५; छुहेवि ९.८.१८
छेअ–छेद १०.७.१०
छेत्त–क्षेत्र ५.९.९
छेत्तमाला–क्षेत्रमाला ९.९.१०
छेय–छेद ६.३.५
छेरअ–आश्चर्य १०.४.९
छोक्कार–(दे) छोक्कार शब्द ५.९.९
छोडिअ–छोटित, त्यक्त १०.२०.३
√ छोलिज्ज–तक्ष् (कर्मणि) °इ हि० छीलना १.१०.५
√ छोल्ल–तक्ष्, छीलना, °ई ५.२.१८
छोहार–छोहार (द्वीप) ९.१९.६

[ज]

जअ–जय-जेयः ९.१६.४
जअ–जग ७.४.८
जइ–यदि २.१८.४; ४.११.६
जइच्छ–यथा + इच्छा, स्वेच्छाचारी १०.२२.९
जइयहुँ–यदा २.२.१
√ जइल्ल–जि + इल्ल (ताच्छील्ये) ५.७.६
जइवर–यतिवर १०.२५.६
जइवि–यद्यपि ५.४.१; ८.११.३
जउ–जव, वेग, शीघ्रता ६.१०.९
जउण–यमुना ९.१९.१५
जं–यत् २.१३.७
जंगम–जङ्गम २.१.७; ११.१३.३
जंघ–जङ्घा, हि० जांघ १०.१५.७; १०.१६.२
जंघंतराल–जङ्घा + अन्तराल ४.११.१२
जंघथाम–जङ्घा + स्थाम बल ५.८.२८
√ जंत–गम् + शतृ ३.६.१३;३.११.१३;१०.१०.२
√ जंतअ–गम् + शतृ ११.८.३
√ जंति–गम् + शतृ °ि (स्त्रियाम्) ९.२५
√ जंतीण–गम् + शतृ °ीण (स्त्री० बहुव० विशे०) १.१०.१
जंतु–जन्तु, जीव ८.१४.४;१०.२२.७
√ जंप–जल्प् °इ ५.१३.१३
√ जंपंत–जल्प् + शतृ ९.४.१३
जंपाणअ–जम्पानक, पालकी ११.१.९
जंपाणय–जम्पानक, पालकी ४.२०.४
जंपाणाहिरूढ–जम्पानक + अधिरूढ ३.१३.२
जंपिय–जल्पित ५.५.६;८.७.१२
जंभीर–जम्भीर, जंबीरी नीबूका वृक्ष ४.१६.४
जंबु–जम्बू (वृक्ष), हि० जामुन ४.२१.२
जंबुअ °य–जम्बूक ९.११.८.५.८.१०;
जंबुअ–जम्बूक, शृगाल १०.१०.८
जंबुद्द–वेतस् (बेंत का वृक्ष) ५.८.१३
जंबुसामि–जम्बूस्वामी ४.१०.२;११.१५.१०
जंबुहल–जम्बूफल ४.८.२७

जंबूदीउ–जम्बूद्वीप ६.१.१३
जंबूदीव–जम्बूद्वीप ३.२.३
जक्ख–यक्ष ४.१.९;४.३.७
जक्खामर–यक्ष+अमर, यक्षदेव
जक्खेसर–यक्ष+ईश्वर १.१७.३
जग–जगत् २.१४.१०
जगडण–(दे) कदर्थन, पीडन १.१०.११
√जग्ग–जागृ °इ १०.२२.१
√जग्गंत–जागृ+शतृ ३.१४.१३;१०.८.१६
जज्जरिअ–जर्जरित ४.१९.२१;६.९.६
जड–(i) जटाएँ (ii) जड़, मूल ५.८.३६
जडमइ–जडमति १.६.११;६.५.५
जडिअ–(दे) जटित °इल्ल (स्वार्थे) ५.७.७;१०.८.७
जडिल–जटिल ९.९.१२
जडिल्ल–जटिन्, जटाधारी ५.७.७;१०.८.७
जण–जन, लोक ९.१०.१३
√जण–जनय् °इ ९.७.३; °हि(विधि०)८.१०.१७; जणवि २.१७.१
√जणंत–जनय्+शतृ ४.२२.१३
जणअ–जनक २.१८.१४
जणकम्मण–जनकर्मण, वशीकरण ९.१६.८
जणकिण्ण–जन+आकीर्ण ३.१०.११
जणखेल्लणअ–जन+क्रीडनक; लोगोंका खिलौना ९.३.९
जणजाणिय–जन+ज्ञात, लोकप्रसिद्ध ८.४.४
जणण–जनन, जनक प्रश० ११;८.८.९;१०.२४.१०
जणणंदिणी–जननन्दिनी १०.१९.१३
जणणयण–जननयन ३.१.९
जणणायर–जननागर, नागरिकजन १०.१९.१२
जणणि–जननी ४ २२.२६; °णी ८.७.१
जणदाण–जनदान ३.२.९
जणघण–जनघन, जनसंकुल ५.४.७
जणंभोरुह–जन+अम्भोरुह ४.५.२
जणमण–जनमन ४.१५.५
जणवय–जनपद, पौरजन २.९.१३
जणविंद–जनवृन्द ४.२२.२४
जणसंकिण्ण–जनसंकीर्ण ४.१४.२३
जणाणंद–जन+आनन्द ४.८.११
जणिअ °य–जनित २.१.१३; ९.९.६
√जणिज्ज–जनय् (कर्मणि) °इ ११.५.४
जणेर–(अप०) जनक २.१०.८
जत्ता–यात्रा ३.१२.१२; १०.२५.३
जत्तकज्ज–यात्रा + कार्य ३.१२.११
जत्तुच्छव–यात्रा + उत्सव ३.१३.२
जन्त–यन्त्र १.९.१; १.९.७
जम–यम ७.४.११
जमउरी–यमपुरी १०.१४.८
जमणिह–यमनिभः, यमसदृश ६ १०
जमदूय–यमदूत ११.२.१
जममहिस–यममहिष ५.५.१
जमल–युगल १०.१६.२
जमाइट्ठ–यम + आदिष्ट १०.९.२
जम्म–जन्म ९.१२ ६
√जम्म–जनी °इ ११.३.७
जम्मण–जन्मन, जन्म ११.९.१
जम्मंतर–जन्मान्तर २.८.२; ३.५.५
जम्मदिवस–जन्मदिवस ३ ४.३
जम्मावहि–जन्मावधि, आजन्म ८.१०
जम्माहिसेअ–जन्माभिषेक १,१.२
जय–मेघेश्वर ३.१.११
√जय–जि °उ (विधि०) १.१.३; ३.१.४; °हि० (विधि०) ४.४.१२
√जयकंखिर–जय+कांक्ष्+इर (ताच्छील्ये) १.१०.८
√जयकार–जय+कारय् °रिवि ५.२.७
जयकारिअ–जयकारित ३.४.८; ७.१३.५
जयघंट–(तत्सम) विजयघण्टा ५.६.९
जयथोत्त–जय+स्तोत्र १०.१.१३
जयभद्द–जयभद्रा (श्रेष्ठिपत्नी) ३.१०.१३
जयमंदिर–जगमन्दिर १.१७.६
जयवल्लह–जगवल्लभ ४.७.११
जयसासण–जगशासन १.१.५
जयसिरि–जयश्री १०.१.१४
जयादेवी–वीर कविकी चौथी पत्नी प्रश० १६
जयास–जय+आशा ४.१४.२२
जयासय–जय+आशय ६.१३.६
जर–जरा ३.८.१०
जर–(तत्सम) वृद्ध ९.७.९
जरजुण्ण–जराजीर्ण १०.१४.३
जरमरण–जरा+मरण १.१.१०

जाव–यावत् २.१.१२
जि–एव, चैव, खलु १.१४.५;८.६.४
जिअ–जितः ७.८.१४
जिउ–जीव ९.१.१७
जिट्ठ–ज्येष्ठ (मास) ४.३.२;४.७.९
जिण–जिन (भगवान्) ३.३.५
√जिण–जि, °इ ५.९.१४; जिणिवि ६.१४.१; जिणेवए ३.१०.१५
जिणंद–जिन + इन्द्र १.१७.८;४.४.९;४.५.११
जिणकित्तण–जिनकीर्त्तन ८.८.६
जिणण्हवण–जिनस्नपन ३.३.१७
जिणणाह–जिननाथ ३.१३.१३
जिणदंसण–जिनदर्शन, जिनधर्म २.१८.२
जिणदिट्ठ–जिन + उपदिष्ट ३.९.१९
जिणपय–जिनपद १.४.६
जिणपडिम–जिनप्रतिमा ५.१०.१५
जिणपुंगम–जिनपुङ्गव ४.१.५
जिणभवण–जिनभवन ५.३.८
जिणमइ–जिनमती ४.७.२
जिणयास–जिनदास ४.२.५
जिणवइ–जिनवती ४.२२.८;९.१७.१६
जिणवइणाह–जिनमतीनाथ, वीरकवि १.६.१
जिणवंदण–जिनवन्दना १.१४.११
जिणवयधर–जिनव्रतधर : (विशे०) ४.३.१३
जिणवर–जिनवर ३.७.१५
जिणवरिंद–जिनवरेन्द्र ४.१.१३
जिणसमय–जिनसमय, जिनधर्म ५.९.३
जिणसेन–जिनसेन १०.२१.३
जिणहर–जिनगृह ८.३.२४
जिणुदिट्ठ–जिन + उपदिष्ट ४.५.५
√जिणेवइ–जि + तुमुन् १०.१५.२; °वए ३.१५.१५
जिणेसर–जिनेश्वर १.१.१
जिणेसुर–जिनेश्वर ४.४.३
जित्त–विजित २.३.१५;५.१.१४
जित्तसिरि–जितश्री (श्रेष्ठिकन्या) ८.१०.११
जित्थु–यत्र २.११.९;३.११.६
जिम–यथा १०.४.२;१०.४.१५
√जिम–भुज्, °इ ३.९.१४
जिय–जित, विजित ८.५.६
जिय–जीव २.७.४
जियअ–जीवित ७.४.८
√जियंतु–जीव् + शतृ ७.१.१५
जिह–यथा ४.६.६;९.३.३
जीउ–जीव १०.२.१०;११.७.६;११.१४.१२
जीउगुण–जीवगुण ११.५.१०
√जीव–जीव्, °इ ३.१.१२; जीवेसमि (भवि०) ९.११.९; जीवेसहिं ९.३.१३
√जीवंत–जीव + शतृ ७.६.३५
जीवण–जीवन २.६.९
जीवतच्च–जीवतत्त्व २.१.२
जीवभाव–जीवभाव, जीवस्वरूप १०.२४.४
जीवसरण–जीवशरण १.१.५
जीवाइ–जीवादि (द्रव्य) २.६.७
जीवासउ–जीव + आश्रय ११.७.२
जीवासा–जीव (जीवन) + आशा २.५.१४
जीविअ–जीवित ८.७.७
जीविउ–जीवातुः, जिलानेवाला ७.११.९
√जीविज्ज–जीव् (कर्मणि) °इ ११.२.७
जीवियमरण–जीवित (जीवन) + मरण २.२०.४
जीवियास–जीवित + आशा ९.११.१२
जीह–जिह्वा ५.१४.१३
जीहा–जिह्वा ८.७.७
जुअ–युत १.१६.१
जुअल–युगल १.११.१५;८.१४.१४
√जुज्झ–युध् °इ ६.४.३; °हि (विधि) ५.१२.२५
√जुज्झंत–युध् + शतृ °उ ७.११.१४; °इं (बहुव०) ६.९.१
√जुज्झंतिय–युध् + शतृ ७.३.९
√जुज्झमाण–युध् + शानच् ७.१४.११
जुज्झभाव–युद्धभाव ७.४.१६
जुज्झमइ–युद्धमति ६.१.७
जुज्झिअ–युद्ध ६.५.५;७.१२.१२;८.१६.१५
जुण्ण–जीर्ण ९.१०.२
जुत्त–युक्त ८.२.४;११.१२.२
√जुप्प–युज्, जुप्पंति (बहुव०) ५.६.४
जुयल–युगल १.१.१२
जुयलुल्ल–युगल + उल्ल (स्वार्थे) ४.१३.१७
जुवइ–युवती ४.१९.२२
जुवईयण–युवतीजन १.१६.६

जुवलुल्ल–युगल + °उल्ल (स्वार्थे) ४.४.१३;१०.१५.७
जुवाण–युवान, हि० जवान १०.१५.८
जुवार–द्यूतकार ४.२.८
जुव्वण–यौवन २.१६.७
जूअ–द्यूत ४.२.९
जूड–जूट, जूड़ा ९.१२.२
जूयार–द्यूतकार ४.२.१०
√जूरंत–जूर + शतृ ७.६.१०; जूरंतिय (स्त्रियाम्) ९.१३.३
जूवफल–द्यूतफल ४.३.८
जूवार–द्यूतकर ८.३.१३
जूह–यूथ ८.१०.४
जूहवई–यूथपति ९.७.१
जे–ये २.२.६
जेट्ठ–ज्येष्ठ (भ्राता) २.१३.१०
जेत्तहे–यत्र ३.४.११
जेत्थ–यत्र १.३.२;४.१०.२;५.४.१४;८.३.१४
जेम–यथा ३.४.९
जेह–सदृश १०.५.८
जेहउ–(अप०) यादृश ६.१०.१४
जोअ–जोग (ध्यान) ११.४.८
जोइंगण–ज्योतिर्गण, खद्योतक ८.१४.२१
जोइय–दृष्ट ४.६.२;७.१०.२
जोइस–ज्योतिष् (देव) १.१६.८;२.५.८
जोइसगण–ज्योतिष् + गण १.१.७
जोइसिअ–ज्योतिष्क ४.१४.२१
जोक्कार–जयकार ५.१.२१
जोग–योग्य ११.१४.९
जोग्ग–योग २.१.१०.;८.९.४
√जोड–योजय्, °वि १.२.६.
जोडणय–योजनकः, जोड़नेवाला ९.१६.१०
जोडिअ °य–योजित ४.२.१७;२.९.१७
जोणि–योनि २.२.३;११.३.२
जोण्हा–ज्योत्स्ना ४.१०.३
जोण्हारस–ज्योत्स्नारस ८.१५.६
जोत्तार–योक्तारः (कर्तरि) ५.१०,२०
जोय–योग (काय, वाक्, मन) ११.३.२
√जोय–दृश् °इ ९.५,९; °ह (विधि०) ८.१२.१४; °हिं(बहुवचन)७.८.५; जोइ(विधि०)४.१८.१
√जोयंत–दृश् + शतृ ७.१३.७;१०.११.११
जोयण–योजन ७.८.५;११..१२
जोयणसय–योजनशत ५.४.३
जोयलीण–योगलीन १०.२६.९
√जोव–दृश् °इ ९.१४.८
°जोव्वण–यौवन २.१५.३
जोव्वण–यौवन २.१४.६
जोह–योद्धा ६.१०.४
जोहणय–योधनकः, लड़ानेवाला ९.१६.८
जोहणार–योधनद्वीप ९.१९.१६

[झ]

झंकार–झङ्कार (ध्वनि) ५-१.२२
√झंकार–झङ्कृ °इ ४.१३.८;८.१९.११
झंकोलिर–आन्दोल + °इर (ताच्छील्ये) ४.१५.१३
झंख–झखना °इर(ताच्छील्ये),परेशान होना८.११.१४
झंझं–ध्वनि ५.६.१०
√झंपंत–(दे) त्रुट् + शतृ ६.७.३
झंपाण–आच्छादन, हि० झाँपना ४.१७.९
झंपिर–(दे) झम्प + इर (ताच्छील्ये) हि० कूदना २.४.१२
झंसी–वृक्ष विशेष ५.८.७
झडा–झड़प ६.६.५
झडत्ति–झटिति ७.८.७
√झणप्पंत–आ + छिद् + शतृ ६.७.३
झडप्पसाळ–झपटनेवाला ७.२.१४
झडप्पिअ °य–आच्छिन्न ४.२०.१०;८.१०.४
√झणझणंत–झणझणाय् + शतृ(ध्वन्या०)१.१४.७
झत्ति–झटिति ५.४.६.८.१३.२; १०.१०.९
√झर–क्षर्, झरन्ति (बहुव०) ७.१.१०
झरिह–क्षरणशील ६.९.१०
झरि–(दे) झाड़ी ५.८.२४
√झलक्क–जाज्वल् °हि ४.१९.७
झलक्किय–झलझलायित ७.८.११
झलज्झल–झलझलाय् (ध्वन्या०), हि० झलझलाना ७.५.१२
झल्लरी–वाद्यविशेष १०.१९.३
झसिय–(दे) पर्यस्त, उत्क्षिप्त, गलित २.५.१८
झाण–ध्यान १०.२३.७
झाणग्गि–ध्यान + अग्नि १.६.६

[ढ]

ढउह–ढौह वृक्ष ५·८·१२
ढक्क–ढक्का, वाद्य विशेष ४.५.१२;५.६.१०
√ढक्क–छादय् °इ ११.८.२
ढक्कसार–वाद्यविशेष १.१४.८
ढकिकय–(दे) ढुलक गये ७.८.१०
ढलिअ–(दे) ढलित, ढुलक गये १०.१४.१५
√ढालिज्जइ–(दे) ढाला जाता है १०.१४.११
ढिल्ल–शिथिल ९.१७.३
ढुक्क–ढौकित ६.११.३
√ढुक्क–प्र + विश् °इ १०.२५.१
√ढुक्कंत–प्र + विश् + शतृ ६.९.७
ढुक्कउ–ढौकित ८.१३.१४
√ढोइज्जमाण–ढौकय् + शानच् ५.१.२२;९.१३.७
√ढोय–ढौकय् (विधि०) °ह १०.११.८
√ढोयंतु–ढौकय् + शतृ १.३.८
ढ़ोर–(दे) पशु ८.११.१०

[ण]

णं–ननु १.१०.१; २.३.३; ४.७.४; १०.२०.७
ण्हविय–स्नापित ५.१०.१६
√ण्हा–स्ना, ण्हाएवि ९.८.१५
√ण्हाव–स्नपय् °इ ५.१०.१५
ण्हाण–स्नान ४.१८.८

[त]

तइअ °य–तृतीय २.२०.१०; ३.५.८;१०.९.६
तइयअ–तृतीय + क (स्वार्थे) ८.२.२२; १०.२२.२
तइयहुँ–तदा २.२.१
तइया–तदा, तृतीया १.१.४; प्रश० १६
तइलोक्क–त्रैलोक्य १.१.८; १.१७.७; ८.११.६
तई–तदा, तस्मिन् काले ४.८.१४
तउ–ततः, हि० तो ७.१३.१८
तउ–तव, तुम्हारा ८.६.६
तउ–तप २.२०.८
तउधम्म–तपधर्म ८.१०.१४
तए–तव, तुम्हारा १.१८.१०
तओ–ततः ४.५.१६;१०.९.७; १०.२६.७
तं–तत् २.१२.३; ४.१७.१३
तं–तम् ६.४.२
तंजिया–तंजिका (देश) ९.११.१
तंडविय–तत, विस्तीर्ण ५.७.९
तं तं–तत् तत् ३.१४.१०
तंतवाल–तन्त्रपाल ५.६.२
तंति–तन्त्री (वाद्य) ४.१५.३
तंबा–गो: ४.१८.१३
तंबाहर–ताम्र + अधर ४.१८.१२
तंबिर–ताम्र १.१२.३;५.१८.१२
तंबोल–ताम्बूल ८.९.४
तंबोलवत्त–ताम्बूलपत्र ९.१२.३
तक्क–तर्क ४.१२.११
तक्कर–तस्कर ९.१५.२
तक्करकम्म–तस्करकर्म ३.१४.१६
तक्करवित्ति–तस्करवृत्ति ३.१४.२३
तक्करायार–तस्कर + आचार १०.१८.९
तक्खड–(श्रेष्ठि) १.५.३;१.५.८
तक्खण–तत् + क्षण ५.१०.२०; ६.१२.१०
तखिखितखितकिख–वाद्य ध्वनि ५.६.१२
√तज्ज–तर्जय्, तज्जिऊण ७.३.६
तट्ठउ–त्रस्त + क (स्वार्थे) १.१०.८
√तड–तन् °इ ,६.५.२.
तड–तट ४.१९.५
तडतडण–तडतडण (ध्वन्या०) १.१४.९;५.६.७
तडतडिअ °य–तडतडित ५.६.१३; ७ ८.७
तडत्ति–तड़ इति, हि० तड़से ५.७.१९
√तडत्तीह–तड् + इति + इह, तड़से २.१९.१
√तडफिड–(दे) तड़फड़ाना, तडफिडवि ७.५.१२
√तडयडंत–तडतडाय् + शतृ ११.१५.५
तडि–तडित् ७.८.७
तडिक्खरतडि–ध्वन्या० १.१४.७
तडिमालि–तडित् + माली, विद्युन्माली देव ४.७.२
तडिय–तत, विस्तीर्ण ९.१०.८
तडियतडि–ध्वन्या १०.१९.४
तडिवडण–तडित् + पतन ५.६.७
तण–तृण ६ १३.६
तणउ–प्रति, सम्बन्धी (सम्बन्धवाचक अव्यय) १.११.१९; २.१८.१४
तणअ–तनय, पुत्र ४.७.११; ९.३.१२
तणभूमि–तृणभूमि १.९.४

तणिया–(अप०) षष्ठि (सम्बन्धसूचक) अव्यय (स्त्री०) २.१६.३
तणु–तनु, शरीर ३.१०.१;८.१२.१३.११.१२.११
तणु–तृण ४.२.११
तणुअ–तनुक-क्षीण ४.१८.११
तणुकंति–तनुकान्ति, ३.१३.३
तणुचेट्ठा-तनुचेष्टा, शारीरिक सेवा १०.२३.३
तणुत्ताण–तनु + त्राण, रक्षाकवच ६.७.४;६.९.७
तणुपह–तनु + प्रभा, देहकान्ति ३.१०.६.
तणुब्भव–तनूद्भव ८.६.३.
तणुरुह–तनुरुह, पुत्र १०.३९.
तणू–तनु ८.४.१०
तण्हालुयउ–तृष्णालु + क (स्वार्थे) २.६.९
तत्त–तप्त १०.१३.२
तत्त–तत्त्व २.१.५; २.६.७
तत्तत्थ–(i) तत्त्वार्थ (ii) तत्रत्यः १०.३.११
तत्थ–तत्र ३.७.३; ११.११.४
तत्थत्थि–तत्र + अस्ति ३.१.१३
तदिदिमुदिमुंद–ध्वन्या० ५.६.१२
तद्दव्व–तत् + द्रव्य १०.९.८
तद्दिवस–(तत्सम) तत् + दिवस ३.९.६
√तप्प–तप् °इ १.११.१९; २.६.१२
तप्पणदेव–तर्पण देवता ४.१७.१३
तम–(तत्सम) अन्धकार १.९.७;१०.२५.११
तमणाम–तमनाम, तमःप्रभा नरकभूमि ११.१०.८
तमणासण–तमनाशन १०.२३.३
तमणियर–तमनिकर ४.३.१५
तमारि–(तत्सम) तम + अरि, सूर्य ५.११.१६
तमालि–(तत्सम) तमसमूह १०.६.४
तमी–रात्रि ४.५.२२
√तर–तृ, तरेइ ५.५.५; तरंति (बहु व०) ७.१.१०; तरवि १०.१०.२
√तरंत–तृ + शतृ °इं (बहु व०) ६.९.८
तरड–वाद्य १.१४.८
तरंग–तरङ्ग २.१२.९;४.१९.६
तरंगिणि–तरङ्गिनी, सरित् ८.११.१२
तरट्ट–(दे) प्रगल्भ ९.३.८
तरट्टि–(दे) प्रगल्भ स्त्री ४.२१.१२
तरणि–तरणि, सूर्य ४.१९.३
तरल–चंचल ३.१.१७
तरलच्छि–तरल + अक्षि ४.८.४
तरलदल–(तत्सम) चञ्चलपत्र ४.१६.३
तरवार–तलवार ७-६.७
√तरिय–तृ + क्त्वा १०.१०.२
तरिया–हि० तैराक १०.११.७
√तरिल्ल–तृ + इल्ल (ताच्छील्ये) ५.७.१२
तरु–तरु २.४.८
तरुणअ–तरुण + क(स्वार्थे) ९.३.८
तरुणत्तण–तरुणत्व, तारुण्य २.१८.३
तरुणभाव–तरुणभाव, तरुणावस्था ४.९.७
तरुणारुण–तरुण + अरुण ४.८.१
तरुणि–तरुणी ३.१२.१५
तरुणियण–तरुणीजन ४.१९.६
तरुणी–तरुणी, युवती ३.९.९
तल–तल १०.१३.२;११.९.९
√तलप्पंत–(दे) उछलकर आते हुए ५.१४.६
तलवायह–(दे) तलस्पर्शीगतिसे तैरना ४.१९.१०
तलाय–तडाग ४.६.४
तलार–(तत्सम) कोतवाल, नगररक्षक ९.१४.१; १०.८.११
√तलिज्ज–तल् (कर्मणि) °इ २.२.२
तल्लुबिल्लि–(दे) तड़फड़ाहट ९.१०.५
तव–तप २.६.५
तव–तव, तेरा ४.६.१४;४.११.१३
√तव–तप्, °इ ३.६.७
तवंग–प्रासाद ४.१९.१६;१०.१५.५
तवंतर–तप + अन्तर, तप प्रकार ३.१०.१०
तवगहण–तपग्रहण ३.८.१
तवचरण–तपश्चरण ३.५.८;३.९.४;८.१२.१८; ९.१६.१२
तवण–तपन, सूर्य ८.१४.४; ९.१०,३;
तवतविय–तपतपित ८.४.१०
तवफल–तपफल १०.२६.६
तवमंतक्खर–तप + मन्त्र + अक्षर ३.७.१५
तवसाहिअ–तप + साधित ३.१३.१५
तवसिरि–तपः श्री ३.६.१
तविय–तपित ५.१२.१२
तवोवण–तपोवन ८.११.२
√तस–त्रासय्, °इ ३.१६.१४
तह–तथा २.६.१२; ३.१२.३; ९.५.१२

तिलोयग्ग–त्रिलोक + अग्र १.१८.७
तिल्ल–तैल २.२.२
तिल्लिय–तैलिक, हि० तेली १०.४.१५
तिवग्ग–त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) ४.६.६
तिवलि–त्रिवली ४.१९.१६
तिव्व–तीव्र ५.१.१६
तिव्वतव–तीव्र ताप ६.१४.३
तिस–तृषा २.२.११
तिसट्ठि–त्रिषष्ठि ४.४.५
तिसायअ–तृषित ९.७.१५
तिसिअ °य–तृषित ८.११.१०; ९.७.११
तिह–तथा १०.४.१३
तिहिवार–तिथि + वार (रविवारादि) ३.४.१
तिहुअण–त्रिभुवन ४.९.९
तिहुयण–त्रिभुवन ४.१४.१६
तिहुयणतिलअ–त्रिभुवनतिलक २.१८.२
तिहुवण–त्रिभुवन २.४.६;७.५.१४;११.२.८
तीर–तीर, तट १०.९.८;१०.१०.७
तीरुत्तार–तीर + उत्तरण ११.८.४
तुंगिम–तुङ्गिमा १.१५.११
तुच्छ–तुच्छ १.९.११
√तुट्ट–त्रुट्, °इ १०.४.१३
√तुट्टंत–त्रुट् + शतृ ४.८.४;११.१५.५
तुट्ठ–तुष्ट ९.१०.२०
तुट्ठमण–तुष्ट + मन १.१४.१२
तुडिअ–त्रुटित १०.१२.७
तुण्हिक्क–तूष्णीक ८.२.६
तुरंग–तुरङ्ग ४.२१.१४
√तुरंगम–तुरङ्गम ५.११.१२
√तुरंत–त्वरय् + शतृ ९.१०.१०
तुरय–तुरग ४.१३.१५; १०.१९.७
तुरयविंद–तुरगवृन्द ७.८.३
तुरिअ तुरिअ–त्वरया त्वरया २.१३.५
तुरुक्क–तुरुष्क, तुर्की (देश) ९.१९.१०
तुलिय–तुलित ७.४.९
तुल्ल–तुल्य ४.१३.१७
तुसार–तुषार ७.२.८
तुहिणायल–तुहिनाचल, हिमालय ४.१०.५
तूर–तूर (वाद्य) ५.१०.१४; ६.२.८
तूरसद्द–तूरशब्द ५.६.१५
तूल–तूल, रुई ८.१६.३
तूलियंक–तूलि + अङ्क, गद्दा ४.५.२३
तेअ–तेज ३.१२.१९;४.८.१
तेत्तीसोवहि–त्रयस्त्रिंशत + उदधि (आयु प्रमाण) ११.१२.६
तेत्तड–(अप०) तावत् ६.१.१८
तेत्थ–तस्मात्, तत्र ५.४.६; ६.११.३
तेय–तेज १.१८.१९;५.१२.१२
तेयपूर–तेजपूर, तेजपूर्ण १.१८.२
तेयमाल–तेजमाला १०.१.११.
तेयवारि–तेज + वारि, तेजवारि २.३.२
तेरउ–(अप०) तेरा ५.१३.२७; ६.२.३
तेलोक्क–त्रैलोक्य ४.३.१४
तेल्ल–तैल ५.७.२३
तेल्लिय–तैलिक, हि० तेली ५.७.१९
तेहअ–तथैव ८.१३.८
तो–ततः, तावत् २.१७.१; ६.७.१२; ९.२.१२
तोअ–तोय १.१.२
√तोड–त्रुट्, °मि ४.२.१२
√तोडंत–त्रुट + शतृ ४.७.१३
तोडणय–त्रोटनक, तोड़नेवाला ९.१६.१०
तोडिअ–त्रोटित ४.२१.५
तोण–तूणीर ७.८.१
तोमर–तोमर, शस्त्र विशेष ७.९.१३
तोयावलीदीव–तोयावलीद्वीप ९.१९.६
तोरविय–(दे) उत्तेजित ५.१०.५
तोरा–(दे) तुम्हारा ४.१८.१
√तोल–तोलय् °ए (आत्मने०) ७.४.१०; °हि (विधि०) ११.६.५
तोलिय–तोलित ८.३.१०
√तोस–तोषय्, °इ ११.८.७
तोसल–तोशल (देश) ९.१९.१
त्ताडिअ–ताड़ित ५.५.१०
त्तार–तार, विशाल, ८.१२.९
त्तास–त्रास १.१५.४
त्ति–इति ५.१४.८
°त्थवण–अस्तवन ९.९.२
°त्थाणु–आस्थान ६.१.१६

[थ]

थंभ–स्तम्भ ५.१२.१३
√थंभ–स्तम्भय्, थंभेवि ३.१४.१२
थंभण–स्तम्भनः, रोकनेवाला ९.१६.८;११.८.१
थक्क–स्तब्ध, ६.१३.८;७.९.११;८.१५.१४
√थक्क–क्लम् थकना, श्रान्त होना °इ ५.८.३७; ११.२.८; °उ (विधि०) ११.१४.४
√थक्किज्ज–क्लम् (कर्मणि) °ए ५.९.११
थगदुग–वाद्य ५.९.११
थगथुगि–(ध्वन्या०) १.१४.६
थट्ट–समूह ४.८.४;१०.१६.१२
थड–यूथ, समूह ५.१.११
थड्ढ–स्तब्ध ५.८.३४;५.१०.१०
थण–स्तन ४.१९.११;५.९.१०
थणपब्भार–स्तनप्राग्भार ४.१९.२१
थणमंडल–स्तनमण्डल २.१४.८;२.१५.१५
थणयड–स्तनतट, चूचक ९.१३.९
थणवट्ट–स्तनवृत्त ४.१५.११;४.१९.१५
थणसिहर–स्तनशिखर ४.१९.६
थणहर–स्तनधर, वक्षस्थल ८.१६.६
थणहारउ–स्तनधराः, स्तनधारिणी (स्त्री० विशे०) १.६.८.
थत्ति–स्थिति, स्थान १०.२५.७
√थरहरंतु–थरहराय् + शतृ ६.५.८
थरहरिअ–कम्पित १.१.१.
थलकमलिणि–स्थलकमलिनी १.७.४
थलीमंडल–स्थलीमण्डल, राजस्थान ९.१९.७
√थव–स्थापय् °इ २.७.१
थवई–स्थपति, निर्माता ५.२.१४
थवियउ–स्थापित, रखा हुआ ११.६.४
थाण–स्थान, आसन ५.१.३;७.१०.३
थाणंतर–स्थान + अन्तर १०.१७.१
थाणयर–स्थानकरः, पहरेदार ३.१४.१२
थाणु–स्थान २.५.१३
थाम–स्थाम, बल २.१.११;३.१०.८
थाम–स्थान ११.१०.८
√थाव–स्थापय् °इ ११.१०.१; °उ(विधि०)८.२.८; थावन्ति (बहु व०) ४.१९.११
√थावंत–स्थापय् + शतृ ११.१५.१
थावण–स्थापन ११.७.१
थावर–स्थावर (जीव) ११.१३.३
थाविअ–स्थापित ३.७.१;७.११.१६
थाहर–स्थान, हि० ठौर ७.१०.२१
थिअ–स्थित ३.९.१८;८.४.११;९.६.९;१०.८.१६
√थिप्पिर–वि + गल + इर (ताच्छील्ये) ९.१०.२
थिय–स्थिता (स्त्री०) १०.१०.७
थिय–स्थित °उ (स्वार्थिक) २.८.५;७.४.१७
थिया–स्थिता (स्त्री०) ९.६.६
थिर–स्थिर ४.९.९;५.२.७
थिरगमण–स्थिर + गमन °उ (वत्) १.६.६
थिरदिट्ठि–स्थिरदृष्टि ५.१२.१३
थिरिरि–वाद्य ५.६.१३
थिरिरिकिटतट्टकट–(ध्वन्या०) ५.६.१३
थुइ–स्तुति ४.११.७
थुगिधग–(ध्वन्या०) १.१४.६
√थुच्चंत–स्तु + शतृ १०.१९.१६
√थुण–स्तु थुणिवि १०.१८.६
थुत्थुक्कारिअ–धिक्धिक्कृत ८.७.१३
√थुव्वंत–√स्तु + णिच् + श १०.१९.१५
थेर–स्थविर १०.८.१
थेरि–स्थविरा (स्त्री०) ९.९.८
थोअ–स्तोक १०.८.३
थोत्त–स्तोत्र १.१८.१४
थोर–(दे) स्थूल, गोल ८.११.६
थोरियगरिल्ल–(दे) गोलाईसे मोटा ऊँचा लपेटा हुआ शिरोवस्त्र ५.७.१२
थोव–स्तोक ५.१०.१७
थोव–स्तोक + °उ (स्वार्थिक) १.५.११
थोवंतर–स्तोक + अन्तर १.१५.८
थोह–(दे) बल, पराक्रम ९.९.५

[द]

दइअ–दैव २.१५.२
दइउ–दैव, दैत्य ९.१९.१८
दइच्च–दैत्य ५.१४.८;१०.९.३
दइय–दयिता, पति, प्रेमी ३.११.१४;४.१७.७
दइयंबरिय–दिगम्बरी + क (स्वार्थे) २.१७.५; ८.५.१४

दइवायत्त–दैव + आयत्त, दैवाधीन ७.१२.१४
दइव–दैव ४.१२.१६
दइवसंजोअ–दैवसंयोग १०.१४.१२
दउवारिय–दौवारिक १.१२.९
दंड–दण्ड (नीति) ४.२१.८;५.३.५
दंडकर–दण्डकरः, दण्डधारी, २.७.५
दंडकरंबिअ–दण्डगर्वित ५.१३.९
दंडगब्भिअ–दण्ड + गर्भित–शक्तिगर्वित, मानगर्भित ५.१३.१३
दंडधार–दण्डधारक १.१५.६
दंडियाचउक्क–दण्डिका चतुष्क ५.१.१२
दंत–दन्त ५.२.१८
दंतग्ग–दन्त + अग्र ६.७.६
दंतपंति–दन्तपङ्क्ति १.१०.५
दंतवण–दन्तवन, दातून ९.११.३
दंति–दन्ती, हस्ति ६.७.६
दंतिम–दन्तमय ४.११.२
दंतुर–दन्तुर ४.१४.२;९.१८.५
दंसण–दर्शन २.८.२;४.१०.८
दंसणावरण–दर्शनावरण (कर्म) १०.२४.३
दंसिअ–दर्शित २.१०.१०;६.१२.७
दक्ख–द्राक्षा, अंगूरका वृक्ष, १.१०.११;४.१६.३
दक्खवण–दर्शावन, दिखलाना ५.१४.५
दक्खविय–दर्शित ४.२.१०
दक्खारस–द्राक्षारस १.७.४
√दक्खालंत–दर्शय् + शतृ १०.१४.१२
दक्खिण–दक्षिण (दिशा) ९.१९.१
दच्छ–दक्ष १०.१०.८
दच्छि–दक्षा (स्त्री० विशे०) ४.१८.५
दट्ठ–दष्ट ६.६.१०
दट्ठाहर–दष्ट + अधर ५.१३.११
दट्ठोट्ठ–दष्ट + ओष्ठ ५.१४.१२
दट्ठुं–दृष्टुम् ४.१.१
दडिअ–दडदडायित (ध्वन्या०) ५.१४.१६
दडिडंबर–वाद्य ५.६.७
दड्ढ–दग्ध ४.१८.९;११.६.४
दढ–दृढ ५.१४.२१
दढ–दग्ध २.६.१
दढपइज्ज–दृढप्रतिज्ञ ९.१४.९
दद्दुर–दर्दुर ७.९.१०;८.१३.६
दप्प–दर्पण १०.२०.३;१०.२२.५
दप्पण–दर्पण १०.३.५;१०.४.८
दप्पणकरा–दर्पणकरा, दर्पणहस्ता (स्त्री० विशे०) १.१०.४
दप्पणतेय–दर्पणतेज १०.४.९
दप्पहरण–दर्पहरण ६.४.८
दप्पिअ–दर्पित ५.३.३
दप्पिट्ठ–दर्पिष्ठ ५.१४.९
दप्पिणि–दर्पिणी, दर्पित करनेवाली ४.३.१४
दप्पिय–दर्पित १.१२.१;५.१३.७
दप्पुब्भड–दर्प + उद्भट ५.१२.२५
√दम–दमय्–दमय् °हि १०.१०.१५
दम–दम, इन्द्रियनिग्रह ३.६.२
दमण–दमनः, दमन करनेवाला ४.१५.७
दमदमिय–दमदमित (ध्वन्या०) ७.५.५
√दम्म–दमय् °इ ५.१३.२२
दय–दया ९.१०.१७;११.१३.१०
दयवंत–दयावन्त ३.४.१२
दयावण–(दे) भयोत्पादक, दीन १.९.११
दर–दर, ईषत् ४.१३.१७;४.१५.१२
दरसाविय–दर्शित ७.१२.१
दरसिय–दर्शित ८.२.१६;८.११.७
दरहसिय–दरहसित ११.६.६
दरि–गिरिकन्दरा २.८.७;४.२०.१२
दरिद्द–दारिद्र्य ६.१.१;३.८.२
√दरिस–दर्शय् दरिसावइ ४.११.५; दरिसावमि ९.११.६
दरिसि–दर्शी, दिखलानेवाली, दर्शनीय १.५.१
दरिसिअ–दर्शित ३.१२.१२
दरुण्ह–दर + उष्ण, ईषदुष्ण ८.१४.२
दलवट्टण–दलमर्दन १.८.९
दलिअ°–दलित ६.८.१;७.४.१;९.६.२
√दलिज्ज–दलय् (कर्मणि) °इ ११.२.६
दवक्किय–(दे) द्रुतकृत, दुबकना, छिपना ७.८.११
दवण–दमनः, दमन करनेवाला १०.२६.११
°दवण–दमन ५.१२.१६;६.१०.५
दवत्ति–झटिति, तुरन्त १०.१०.९
दविड–द्रविड़ ९.१९.२
दविण–द्रविण ९.१५.६;१०.२.३
दव्व–द्रव्य १०.२.१०;१०.१०.१

दव्वसरूव–द्रव्यस्वरूप ९.१.१७
दव्वावेक्ख–द्रव्य + अपेक्षा १०.२२.१२
दस–दश २.३.९
दसण–दशन ९.१३.१०
दसदिस–दशदिश् १०.२५.१०
दसदिसि–दशदिशि ४.७.१२
दसपयार–दशप्रकार ११.१२.८
दसम–दशम १.१६.९;४.८.१
दसम्मि–दशमी तिथि, प्रश० ४
दसलक्खण–दशलक्षण ११.१४.१२
दससायर–दशसागर ३.१०.२
दह–द्रह ९.९.११
दह–दश ११.१०.६
दहम–दशम, दसवाँ, १.१६.९
दहमुह–दशमुख, रावण ३.१२.१
दहलक्खण–दशलक्षण (धर्म) ११.१३.७
दहविह–दशविध (धर्म) ११.२.१०
दहि–दधि, दही ७.१२.५;८.१५.११
√दाव–दा, °इ ५.७.३; दाऊण ६.७.९
√दिंत–दा + शतृ ४.१९.७
दाइज्ज–दायाद, दहेज ८.१२.८
दाढावलि–दंष्ट्रा + आवलि ९.७.५
दाढिय–दाढ़ी १०.१६.६
दाढिय.ल–(दे) दाढ़ीयुक्त ५.८.२७
दाढुक्खय–दंष्ट्रा + उत्खात ५.८.१६
दाण–दान २.१२.४;४.७.८
दाणंबु–दान + अम्बु ४.२२.५
दाणपवत्ति–दानप्रवृत्ति १०.२.३
दाणवसण–दानव्यसन १०.२.३
दामिअ–दामित, दमित ५.७.१५
दार–द्वार ९.१७.३;१०.१३.५;१०.१७.८
दारकवाड–द्वारकपाट ९.१५.१०
दारिय–दारित, विदारित ६.८.८;८.१०.३
दारुवण–(i) दारुण, ताण्डवनृत्य (ii) दारु (वृक्ष)वन ५.८.३६
दालिमालि–दाडिम + माला ४.२१.२
√दाव–दर्शय् °इ १.१०.३; °ए (आत्मने०) १.९.५
√दावंत–दर्शय् + शतृ ४.१७.२२
√दाव–दापय् °इ ८.१७.८
दाविय–दर्शित ८.६.९
दासत्तण–दासत्व ५.१.११
दासि–दासी ४.१९.२०;८.१२.१२
दाहिण–दक्षिण, दाहिना ७.१०.१७;९.१२.३
दाहिणपह–दक्षिणापथ ५.२.१२
दिअ–द्विज २.११.१;२.१३.१
√दिंतु–दा + शतृ ३.११.६; देंतु ३.११.१४; ४.१७.११; दिंती (स्त्रियाम्) ८.११.९
√दिक्ख–दीक्ष्, दिक्खंकहि (विधि०) २.१९.१०
दिक्खंकिअ–दीक्षाङ्कित २.७.१०;३.५.१३
दिक्खा–दीक्षा २.१४.२;१०.२०.१
दिक्खिअ–दीक्षित २.४.१०
√दिज्ज–दा (कर्मणि) °इ ४.२.१४;१०.१०.४; ११.८.६. °उ (विधि०) २.८.११;८.५.१४; °हि (विधि०) ३.१३.५
दिट्ठ–दृष्ट २.३.८; ४.१३.११; १०.९.७
दिट्ठअ–दृष्ट ९.१.६
दिट्ठु–दृष्टम् ५.५.१५
दिट्ठफल–दृष्टफल १०.२१.९
दिट्ठि–दृष्टि २.८.४;८.११.१६
दिट्ठिवह–दृष्टिपथ १०.१५.११
√दिढ–दृढय् °वि १०.२५.९
दिढ–दृढ ७.४.६;११.८.२
दिढचित्त–दृढचित्त ९.२.१
दिढधम्म–दृढधर्म (मन्त्रिपुत्र) ३.७.८;३.९.१०
दिढप्पहारि–दृढप्रहारी (भील) १०.१२.१
दिढमइ–दृढमति २.७.१२
दिढवग्ग–दृढवल्गनः, खूब कूदनेवाले ७.८.३
दिण–दिन ३.९.१२
दिणमणि–दिनमणि, सूर्य ५.१०.४;७.२.१२
दिणयर–दिनकर २.११.६
दिणसंकु–दिनशङ्कु १.१.७
दिण्ण–दत्त ५.७.१३;६.१०.७
दिण्णअ–दत्त ६.८.७
दिण्णदिहि–दत्तधृति, दुःसाहसी ८.९.६
दिण्णय–दत्त २.१९.४
दित्त–दीप्त ४.८.१
दित्ति–दीप्ति २.१४.१०;४.८.२
√दिप्पिर–दिप् + इर (ताच्छील्ये) २.९.३
दिम्मुह–दिङ्मुख ८.१४.१९
दिय–द्विज २.१७.४

दिय-(हे) दिवस ३.१०.७
दियंत-दिग् + अन्त २.३.२
दियंबर-दिगम्बर २.१३.४
दियणंदण-द्विजनन्दन ३.५.६
दियतणय-द्विजतनय २.१७.३
दियवर-द्विजवर २.४.८;२.८.१३
दियह-दिवस ४.१४.३
दिव-दिवस २.४.१०
दिवि-दिवि-द्यौ-द्यौ २.१४.६
दिवसपहर-दिवसप्रहर ३.१२.४
दिवसयर-दिवसकर, सूर्य १०.१८.७
दिवायर-दिवाकर ५.५.१;८.१४.१२
दिव्व-दिव्य १.१७.४
दिव्वच्छर-दिव्य + अप्सरा २.२०.११
दिव्वझुणि-दिव्यध्वनि ८.४.९
दिव्ववत्थ-दिव्यवस्त्र ५.१२.१५
दिव्वाउह-दिव्य आयुध ७.९.७
√दिस-दृश् °वि १०.५.८
दिसउ-दिशा २.१५.१२
दिसकरेणु-दिशागज ४.२०.९
दिसमाण-दृश्यमान ३.१.१५
दिसाविजअ-दिशाविजय ५.१४.२
दिसि-दिशा ६.१४.११
दिहि-धृति १.५.४;२.८.१
दीउ-द्वीप ८.१४.११
दीउ-दीपक ११.७.५
दीण-दीनता १०.१५.९
दीव-द्वीप ११.११.२
दीवअ-दीपक ८.१५.५
°दीवणि उत् + दीपनः (स्त्री० विशे०) ८.११.४
दीवसमुद्द द्वीप + समुद्र ११.११.१
दीविय-उद्दीपक ८.१६.११
दीविया-उद्दीपिका (स्त्री० विशे०) ९.१२.८
दीविय-दीप्त, ज्वालित °। (स्त्रियाम्) ८.१५.१३
दीवोह-दीप + ओघ २.४.८
√दीस-दृश्य् °इ (आत्मने०) ४.१९.१९;६.११.८; १०.५.९; दीसति (बहुव०) ५.८.२४; ८.३.२४; दीसंइ (आत्मने०) १०.१८.१०; दिसिहिइ (भवि०) २.१४.११
दीह-दीर्घ ४.१३.१४;४.२१.४;१०.१५.६

दीहणयणि-दीर्घनयना (स्त्री० विशे०) ४.१७.१६
दीहत्त-दीर्घत्व ३.२.१
दीहर-दीर्घ १.६.७;९.२.२
दीहरसर-दीर्घस्वर ९.४.१५
दीहिदीहिआ-दीर्घदीर्घिका ४.२१.४
दुंदुहि-दुन्दुभि १.१७.३;५.१०.१४
दुक्कर-दुष्कर २.१४.९.९.२.८
दुक्किय-दुष्कृत ४.६.८
दुक्ख-दुःख २.२.१०;६.१२.५
दुक्खअ-दुःखित ३.१३.१०;८.९.१६
दुक्खियाउ-दुखिताः (बहुव० स्त्री० विशे०) ३.११.१२
दुग्ग-दुर्ग ४.१४.७
दुग्गंध-दुर्गन्ध १०.१७.१०
दुग्गमिल्ल-दुर्गम + इल्ल (स्वार्थे) ५.७.८;९.१९.९
दुज्जण-दुर्जन ६.५.११
दुज्जोहण-दुर्योधन ५.१३.७
दुट्ठ-दुष्ट ५.१४.९;१०.१२.६
दुट्ठभाउ-दुष्टभाव ३.११.१२
दुणय-दुर्नय, दुर्नीति ५.१४.५
दुण्णिरिक्ख-दुर्निरीक्ष्य ५.१२.१२
दुत्तर-दुस्तर ३.८.९;४.४.१३;१०.९९
दुत्थ-दुःस्थ (विशे०) १.१.६;१.९.११
दुद्दम-दुर्दम ९.४.८;११.१४.७
दुद्ध-दुग्ध ४.१८.६
दुद्धर-दुर्द्धर ४.२०.१२;६.१०.१
दुन्नय-दुर्नय, दुर्नीति ५.१३.२
दुप्पिच्छ-दुष्प्रेक्ष्य १०.२६.३
दुब्बल-दुर्बल ८.११.१०
दुम-द्रुम ५.१०.१३;५.१४.५
दुम्मण-दुर्मन, दुःखी ६.१.१
दुम्मरिसण-दुर्मर्षण (ब्राह्मण) २.११.१
दुलंघ-दुर्लंघ्य ४.५.१०
दुलह-दुर्लभ १०.१०.१६
दुल्ललिअ-दुर्ललित, दुर्विदग्ध ९.३.४
दुल्लह-दुर्लभ २.८.१;९.१७.११;१०.१.१५
दुवाअ-दुर्वात, आंधी ९.३.८
दुवार-द्वार १.१६.२;९.१७.१२
दुवाल-द्वार ४.२०.१०
दुव्व-दूर्वा ७.१२.५
दुव्वयण-दुर्वचन (i) अपशब्द; (ii) दुर्जन १.३.६

दुव्वसण–दुर्व्यसन ४.२.५;८.८.९
दुव्वाय–दुर्वात, आंधी १.११.१८
दुव्वार–दुर्वार ४.२२.६
दुह–दुःख ३.१३.१०;११.१५.३
दुहमहाणल–दुःखमहानल ३.८.२
दुहयर–दुःखपरः, दुःखी ६.८.६
दुहिय–दुहिता °उ (बहुव०) ४.१४.१५
दूअ °य–दूत ५.१२.७;५.१३.२४;१०.९.२
दूई–दूती १०.१६.८
दूयडिया–दूतिका ८.१५.१
दूयत्तण–दूतत्व + न (स्वार्थे) दूतपना ५.१२.१९
दूरंतर–दूर + अन्तर ४.१८.१५;४.१९.१९
दूरंतराल–दूर + अन्तराल २.१५.१३
दूरट्ठिय–दूरस्थित ७.८.५
दूरपिय–दूर + प्रिय (पति) ३.१२.३
दूरप्पयंत–दूर + प्र + यण् + शतृ, प्रयान्तम् ७.६.४
दूरयर–दूरतर ६.६.३;७.१.५
दूरुज्झिय–दूर + उज्झित, त्यक्त १.१६.१
दूरुब्भड–दूर + उद्भट ७.६.१३
दूव–दूर्वा ३.३.१०
दूव–दूत ५.१२.२०
दूवालाव–दूत + आलाप ७.३.१
दूसह–दुस्सह १०.२२.९;११.१.४
दूसावास–दूष्य + आवास, तम्बू ५.१०.२३
दूसिअ–दूषित ९.१५.४
√दूसिउं–दूषय् + तुमुन् १.१५.६
दूहव–दुर्भग ४.१८.४
√दे–दा, °इ ६.७.९; देउ (विधि०) १.१.१२; देवि ७.१३.१४; १०.१०.१०; देविणु २.६.१;१०.२३.३; देहि (विधि०) ८.६.१०; देहु (विधि०) ८.९.१५
√देंत–दा + शतृ ६.१.१
देउ–देव १.१.१२;१.१५.१२;११.३.८
देउल–देव + कुल ४.१०.१;१०.८.१५
देज्जउ–दातव्या (स्त्री० बहुव०) ४.१४.१५
देवत्त–देवदत्त (कवि) १.५.४
देवदारु–वृक्ष ४.२१.३
देवय–देवता ६.९.४
देवयत्त–देवदत्त (कवि) ५.१.१
देवल–देवालय, देवल १०.८.१२
देवाउस–देवायुष्य ३.१.७
देवागम–देवागम १०.२४.७
देवाविअ–दापित, दिलाया ५.१२.२२
देवाहिदेव–देवाधिदेव १.१५.१२;४.४.१०
देवि–देवी ३.१०.१०
देविउ–देवता (स्त्री० बहुव०) १.१६.५
देवोत्तर–जिस नामके अन्तमें 'देव' पद है, अर्थात् भवदेव ८.२.९
देवोत्तरकुरु–देवकुरु + उत्तरकुरु, जैन पौराणिक भूमियाँ ११.११.५
देस–देश ५.३.९;६.१२.७
देसंतर–देशान्तर १०.१५.२
देसंतराल–देशान्तराल १०.८.२
देसभासा–देशभाषा ५.१.९
देसल्लइलिसंबंधियउ–तद्देशसम्बन्धी ५.१२.४
देहदित्ति–देहदीप्ति ३.६.८
देहरिद्धि–देह + ऋद्धि ४.९.१
दो–द्वि, दो (संख्या) ७.४.७;१०.१२.६
दोण–(i) द्रोणाचार्य (ii) द्रोण, माप विशेष ८.३.९
दोणी–द्रोणी ९.१९.७
दोत्तडि–दुष्टतटी,दुष्टनद २.१३.९;५.७.१९;१०.१८.७
दोमियंग–दूमित + अङ्ग ४.२१.११
दोर–(दे) प्रत्यञ्चा ६.१३.४
दोर–(दे) डोर, कटिसूत्र ३.३.१४;६.१३.४
दोलिय–दोलित १.१.३
दोस–दोष १.१.२;४.१८.१
दोस–द्वेष ५.१३.१७

[ध]

धअ–ध्वज ४.२१.१७;६.४.१०
√धंत–धाव् + शतृ १.१५.५
धक्कडवग्ग–धाकडवर्ग (कुल) १.५.२
√धगधगंत–धगधगाय् + शतृ ४.६.२
धडि–(दे)कुण्डल १०.१६.४
धण–धन्या, भार्या २.१५.२
धण–धन १०.२.३;१०.२३.३
धणअ °य–धनद, कुबेर १.९.१०;१.१६.३
धणइत्त–धन + वत्, धनवान् ३.१०.१२;४.२.२
धणकण–धन + कण, धनधान्य १.५.१
धणकणय–धनकण + क (स्वार्थे), धनधान्य १.६.२

धणयत्तउ–धनदत्त (श्रेष्ठि) ४.१२.६
धणरासि–धनराशि (ज्योतिषीय नक्षत्र) ४.१४.२१
धणलोह–धनलोभ ११.५.७
धणहड–धनदत्त (कृषक) ९.३.२
धणिय–धनिक, कृषक, स्वामी ७.६.१६
धणिय–धन्या २.१६.१
धणु–धनुष २.५.१;७.९.१४;१०.१२.३
धणुंतउ–धनु + वत्, धनुषवान् ६.७.१४
धणुद्धर–धनुधर, कामदेव ३.१०.१४;८.५.७
धणुसय–धनुषशत ३.१.१२
धणुहर–धनुर्धर ६.४.९
धण्ण–धन्य २.१८.२
धण्णउ–धन्य २.१५.६;४.१४.१४
धण्णवउ–धन्य + वत्, धन्य २.१४.१३
धण्णिय–धन्या (स्त्री० विशे०) ७.१२.७
धम्म–धर्म २.११.५;५.९.१५
धम्मकज्ज–धर्मकार्य २.१९.४
धम्मचक्क–धर्मचक्र १.१७.७
धम्मण–धम्मन (वृक्ष) ५.८.६
धम्मतरू–धर्मतरु १०.१८.८
धम्मत्थ–धर्म + अर्थ(दो पुरुषार्थ) ४.१२.१२; प्रश०९
धम्मद्दि–धर्म + अद्रि १०.३.९
धम्मरयण–धर्मरत्न ८.६.६.
धम्मलाह–धर्मलाभ १०.२५.८
धम्मवुड्ढि–धर्मवृद्धि २.१७.१
धम्माणुगअ °य–धर्मानुगत ५.९.३;११.१४.११
धम्मायार–धर्माचार १.६.३
धम्माहम्म–धर्म + अधर्म ४.४.८
धनुह–धनुष (उत्सेध प्रमाण) ११.१०.१०
°धय–ध्वज १.१५.७;६.१०.११;१०.१६.११
धयग्ग–ध्वज + अग्र ४.२१.१७
धयचिंध–ध्वज + चिह्न- छोटी पताका ६.२.१०
धयमाला–ध्वजमाला ५.२.४.
धयवड–ध्वजपट ७.५.४;७.५.१६
धयाडंबर–ध्वज + आडम्बर १०.१९.१३
धवलगेह–धवलग्रह, प्रासाद ४.७.६
धवलहर–धवलगृह ३.६.१२
धर–धरा:, धारण करनेवाली स्त्रियाँ ६.२.६
धर–धरा, पृथ्वी ५.१०.२
√धर–धृ, °इ; ४.१९.१९;५.८.३; °हि (विधि०); धरेसइ (भवि०) २.१६.४; धरि (विधि०) ८.११.१७; धरेऊण ७.४. १४; ९.१९.१; धरेवि ७.११.१; ८.१० ९; ११.११.११
√धरंत–धृ + शतृ ७.१०.९
√धरंतु–धृ + शतृ ९.१८.१
√धरंती–धृ + शतृ °ी (स्त्रियाम्) ६.१.२
धरण–धारण:, धारक ३.९.८
धरणि–धरणी १.८.२
धरणिपीढ–धरणिपीठ १०.२०.११
धरणियल–धरणीतल १.५.१९
धरणीयल–धरणीतल १.९.८
धरणीरुह–पर्वत १०.३.९
धरवीढ–धरा + पीठ ५.१२.३
धराइ–धरा + आदि २.१.८
धरायल–धरातल ९.८.५
धरिअ °य–धृत ३.६.१४;८.१४.११;११.२.२
√धरिज्ज–धृ (कर्मणि) °इ ११.५.४
धरित्ति–धरित्री ६.४.११
धरियउ–धृतः ११.१०.२
धरियकर–धृतकरः, 'कर' लेनेवाला ३.३.१२
धव–धव (वृक्ष) ५.८.६
धवल–(तत्सम) श्रेष्ठ वृषभ ७.३.१३;७.६.१७
धवलचिंध–धवलचिह्न, श्वेतपताका ५.११.११
धवलहर–धवलगृह, प्रासाद १.९.४; १०.१५.१०
धवलिय–धवलित १.१७.६;१०.१.१०
धवलीकिअ–धवलीकृत ४.१०.३
धसक्किय–धसक्कन, भीत ६.१३.७
√धा–धाव्, °इ ४.१७.८; धाइवि ९.१३.५
धाउ–धावित ९.११.१३
धाइअ–धावित ७.११.१२; १०.१०.८
धाइयसंड–धातकीखण्ड (द्वीप) ११.११.१०
धाउ–धातु (वात, पित्त, कफ) ३.११.४
धाडिय–(दे) निस्सारित १०.१३.९
धाणुक्क–धानुष्क ६.५.८; ६.७.२
धाणुक्किय–धानुष्क ९.१३.१३
√धाम–धाव् + इर (ताच्छील्ये) ४.२१.९
√धाय–धाव्, धायवि ९.१३.५
धाय–धातकी, धतूरा १०.३.३; °ई ५.८.८
√धार–धारय्, धारंति (बहुव०) ४.१४.२; धारिऊण ४.२१.९; ५.७.२५; धारेवि ६.३.७

धारालंडण–धारा (असिधारा) + खण्डन १.११.१०
धाराहर–धाराधर, मेघ ४.१.६;९.९.१३
धारि–धारी, धारण करनेवाली ५.१.१५
धारि–धारी, धारक १०.१२.१
धारिणी–धारिणी (रानी) ३.१०.१३
धारिय–धृत °उ (स्वार्थ) २.६.१०
धारिय–धृत, धारित ८.९.११
√धाव–धाव् °इ ६.१.१०; ९.८.३; धावहो (आज्ञा०) ६.२.७; धावेवि ५.१४.१७
√धावंत–धाव् + शतृ ६.६.५
√धावमाण–धाव् + शानच् ७.६.८
धाविअ–धावित १.१६.२; ७.९.६; १०.१९.१२
√धाह–(दे) धाह, पुकार, चिल्लाहट, धाहावइ ४.१९.२०; १०.११.७
धाहाविअ–(दे) धाह, पुकार, चिल्लाहट ३.७.५
धिक्कारिअ–धिक्कृत ३.१४.१६
धिट्ठ–धृष्ट ५.७.१७
धिय–धृत १०.९.२
धीय–धूता, पुत्री, हि० धी ११.३.५
धीरत्तण–धैर्यत्व; धीरता ५.४.३
√धुण–धुन् °इ १.९.९
धुत्त–धूर्त ४.१७.५; ९.१०.२३
धुत्ति–धूर्ता (स्त्री०) ८.१३.१५
धुमधुमिय–धुमधुमित-(ध्वन्या०) ५.६.८
धुमधुमुक्क–धुमधुमुक् (ध्वन्या०) ५.६.८
धुय–धुत, कम्पित ४.२२.१७
धुयकंध–धुतस्कन्ध ७.६.२०
धुयधय–धुतध्वज ३ २.१६.१०
धुर–धुरा ७.१.२०;११.२.३
धुरंधर–धुरंधर १.११.८;१०.१५.२
धुरधर–धुरा + धर, धुरन्धर १.४.६
धुरि–धुरी ११.११.१२
धुव–ध्रुव ७.६.२९
√धुव्वंत–धुत् + शतृ ५.७.९
√धुव्विर–धुत् + °इर (ताच्छील्ये) ५.२.४;५.११.११;७.५.१६
धूम–धूम्र (-प्रभा, नरकभूमि) ११.१०.७
धूमाउल–धूम्राकुल ७.९.६
धूमिर–धूम्र + इर (ताच्छील्ये) ४.१४.८
धूमुग्गार–धूम्र + उद्‌गार ६.५.१
धूव–धूप ११.६.८
धूलीरअ–धूलिरज ५.७.४
धूव–धूता, पुत्री ९.७.३; ९.१२.२
धूसर–मुद्‌ग, मूँग १.८.३
√धोव–धोव्, धोना, धोविवि ४.३.२

[न]

नअ–नय १०.४.७;१०.४.१४
नइ–नदी ९.१०.१;११.१.६;११.११.४
नइमित्तिअ–नैमित्तिक २.१.१२
नउ–न २.६.११;३.४.५; ३.४.९; ७.९.११
नउरहियं–नम्रहृदय ४.६.९
नउल–(i) नकुल, पाण्डव (ii) नकुल-नेवला (iii) न + कुल–हीनकुल ५.८.३१; ९.१२.७
नउलदरि–नकुलदरि ९.१०.१०
√नंदअ–नन्दय्, नंदंति (बहुव०) ८.७.५
नंदण–नन्दन, पुत्र ४.६.१४;९.७.३
नंदणवण–नन्दनवन (उद्यान) १०.१९.१५
नंदणि–नन्दिनी पुत्री ५.२.१४
नंदणी–नन्दिनी (स्त्री० विशे०) १०.१८.१३
नंदिणअ–नन्दनकः, आनन्ददायक ८.१५.१५
नंदिघोस–नन्दीघोष ५.६.१४
नक्ख–नख ४.२१.८;६.१०.६
नक्खत्त–नक्षत्र १.१.१०
नक्खत्तसामि–नक्षत्रस्वामी, चन्द्रमा ५.१.१५
नग्गा–नग्ना (स्त्री० विशे०) १०.१०.१४
नग्गोह–न्यग्रोध २.१२.८;४.१६.५
नच्च–नृत्य ९.१.५
√नच्च–नृत् °इ ३.१.४;४.३.९;८.१४.१८;
√नच्चंती–नृत् + शतृ °ी (स्त्रियाम्) ३.१.४
नच्चणसाल–नर्तनशाला ३.२.६
नच्चाविय–नर्तित ६.१४.१३;९.१३.१०
√नच्चिज्ज–नृत् (कर्मणि) °इ १.५.६; ३.९.९
नच्चिय–नर्तित ७.९.९
√नच्चिर–नृत् + इर (ताच्छील्ये) ८.१४.१८
नच्चुच्छव–नृत्योत्सव ९.२.६
नच्चेव्वअ–नर्तन ४.१२.१३
नच्छेरअ–न आश्चर्यकम् १०.४.९
√नज्ज–ज्ञ °इ (आत्मने०) ४.१३.१०;११.११.९
नट्ठ–नष्ट ७.७.१;८.३.७

नट्ठिय–नष्टा (स्त्री०) १०.१४.१४
नड–नट १०.१४.३
√नडंत–नृत् + शतृ ४.७.१३
√नडंति–नृत् + शतृ f° (स्त्रियाम्) ९.१.५
नडवेडअ–नटवेडा, नटोंका बेड़ा १०.१४.१
√नडाव–नृत् + णिच् °इ ५.१३.१७
नडिअ–नटित, छलित २.१५.४;१०.८.७
नत्थि–नास्ति ३.३.१६;९.४.६
नद्–नाद १°१५°६
नद्ध–नद्ध, गाँठ १०.१२.७
नद्ध-नद्ध, आच्छादित २.१८.१६
√नम–नम्, नमंसेवि ४.५.१
नमंसिय–नमस्कृत १.१२.१०; ३.१०.५
नम्मय–नर्मदा ७.१३.३; ९.५.५
नम्माउर–नर्मपुर (नगर) ५.९.१२
नम्मयाड–नर्मदा + तट ९.१९.४
नय–नय, न्याय, नीति ३.५.१३
नय–नग १०.२२.७
नयजुत्त–नययुक्त ४.१४.१२
नयण–नयन °उल्ल (स्वार्थे) ७.६.१२
नयणंजण–नयन + अञ्जन ९.१६.९
नयणदल–नयनदल ९.१३.१७
नयपवर–नयप्रवर २.६.३
नयपसत्थ–नयप्रशस्त, नीतिकुशल ५.१२.६
नयमग्ग–नयमार्ग १०.१८.१
नयर–नगर १.१०.१३; १.१४.१२
नयरजण–नागरजन ४.२१.१८
नयरि–नगरी ४.२.२; ४.७.१२
नयरी–नगरी १.५.१; ३.३.६
नयरीरक्ख–नगरीरक्षक ३.१२.२१
नर–नर ९.१९.१७; ११.७.१
नरअ–नरक ११.४.२
नरजम्म–नरजन्म १०.२०.६
नरजाण–नरयान १०.१९.९
नरजोअ–नरयोग, मनुष्यसंयोग १०.१५.४
नरणाह–नरनाथ ४.४.६;७.१३.५
नरत्तण–नरत्व ११.१३.५
नरपरमेसर–नरपरमेश्वर, राजा ५.२.२३
नरय–नरक (गति) ४.४.७;११.९.४
नरयगइ–नरकगति २.२.१
नरयायर–नरकाकर ११.१०.४
नरयण–नररत्न ४.१.४
नररूव–नररूप ६.३.७
नरवइ–नरपति १.१२.६; ९.१७.१८
नरवेस–नरवेश ४.२.४
नरसंकमण–नरसंक्रमण ४.९.१०
नरामर–नर + अमर २.३.१
नरालय–नरालय, मनुष्यलोक ११.११.११
नराहिव–नराधिप ३.१४.७
नराहिवइ–नराधिपति १.१०.१३; ३.१.३
नरिंद–नर + इन्द्र ५.१२.७; ११.७.५
नरिंदसंदिणी–नरेन्द्र + स्यन्दनी, राजमार्ग ४.२१.१२
नरेंद–नरेन्द्र ४.१.५
नरेसर–नरेश्वर १.१६.१४
नल–नल, सरकंडे १.८.४
नल–चरण ७.५.६
√नव–नम् °इ ५.१२.२१; नविवि–५.१०.१६; नवेविणु ७.११.८
नवअ–नवक, नवीन ११.८.२
नवंग–नव + अङ्ग, अभिनव अङ्ग १०.१७.१४
नवगेवज्ज–नव + ग्रैवेयक (स्वर्ग) ११.१२.२
नवनिहि– नवनिधि ३.३.१२
नवनेह–नवस्नेह ५.९.१४
नवम–नवम १.१६.८
नवर–(अप०) केवल, ७.४.६; १०.२६.९
नवल्ल–नव + ल्ल (स्वार्थे) नवीन १०.१७.२
नववत्थ–नववस्त्र ८.१२.५
नववहु–नववधू ४.१७.९
नवविह–नवविध, ३.९.८; ११.१४.११
नवसिय–नवीन वस्त्र, उपयाचितक २.१०.५
नविण–नवीन ९.१.१८
नस–मज्जा ६.१४.१२
नह–नभ ६.६.१
नह–नख ७.४.१
नहकंति–नख + कान्ति १.१.४
नहंगण–नभ + आङ्गन ६.१३.७;८.१५.४
नहगइ–नभगति, गगनगति (विद्याधर) ७.७.४
नहणिउरंब–नख + निकुरम्ब, नखसमूह ५.१.१७
नहमग्ग–नभमार्ग १.१७.१९
नहमणि–नखमणि ५.१२.१२;१०.१६.२

नहयल–नभस्तल २.१४.१०; ५.६.१६
नहर–नखर, नख ४.१९.१५
नहरुक्ख–नखवृक्ष ८.१४.१२
नहलच्छि–नभलक्ष्मी ८.१५.५
नाअ–नाग, हस्ति ४.२२.१; ५.१४.७
नाइँ–(अप०) इव, हि० नाई २.१५.२;४.१९.१३
नाइय–नादित ५.६.१०
नाउ–नाद २.१३.७
नाउ–नाम ९.१.११
नाग–नाग (वृक्ष) ४ १६.५
नागर–नागर (देश) ९.१९.५
नाडय–नाटक ५.१.२६; ८.१३.९
नाडिय–नाटित ५.६.१३
नाणचउक्क–ज्ञानचतुष्क ३.५.१
नाणजोई–ज्ञानज्योति १.१८.१०
नाणदिट्ठि–ज्ञानदृष्टि ९.१.७
नाणब्भास–ज्ञान + अभ्यास १०.२३.४
नाणवंत–ज्ञान + मतुप्, ज्ञानवन्त २.१४; ९.१.१३; १०.४.५
नाणावरण–ज्ञानावरण (कर्म) १०.२४.३
नामंकिय–नाम + अङ्कित ५.२.८
√ नामंत–नामय् + शतृ ५.१४.१०
नामपत्थाव–नाम-प्रस्ताव, परिचय ५.१.२०
नामिय–नामित ५.१०.१४; ६.५.१०
नाय–नाग, हस्ति ३.१०.१
नायएवि–नागदेवी (ब्राह्मणी) २.११.२
नायक्क–नायक, नेता ७.३.८
नायण–नयन + घ्णि, नेत्रोंका १०.४.९
नायर–नागर, नागरिक ८.३.५
नायरजण–नागरजन, नागरिक ३.१२.२०
नायरमिहुण–नागरमिथुन ३.१.१९
नायरपय–नागरप्रजा, नागरिक ३.२.१०
नायरिय–नागरिक ५.९.१
नायवसू–नागवसू (ब्राह्मण कन्या) २.११.२
नायवेल्लि–नागबेल १.७.८; ४.२१.२
नायाहिट्ठिय–नागाधिष्ठित °उ(स्वार्थे) ८.३.६
नारअ °य–नारकी ११.३.८; ११.१०.११
नारइय–नारकीय २.२.२
नारउ–नारद ७.११.४
नारंग–नारङ्ग, नारङ्गी ४.१६.५
नाराय–नाराच, बाण ७.९.४
नाराहिअ–न + आराधित ११.३.९
नालियर–नालिकेर २.१८.१०
नाली–कमलनाल ९.२.१०
√ नाव–नम्, नाविवि ८.७.५
नावइ–(अप०) इव, हि नाई ७.४.१९
नास–नासा, नाक ३.११.८
√ नास–नाशय्, °इ,२.२०.३; नासंति (बहुव०) ३.९.१५
नासउड–नासापुट ५.१३.११
√ नासंक–न + आ + शङ्क् °इ ५.१३.२०
नासावंस–नासावंश, नासिका ४.१३.७
नासाहर–नासा + अधर २.५.१३
नासिय–नाशित ८.४.१२
नाह–नाथ ३.३.९;९.१२.७
नाहल–म्लेच्छ ५.८.२१
नाहि–नाभि ७.४.१२
ना हि–न + हि; न खलु, नहीं १०.८.१०
नाहिमंडल–नाभिमण्डल ४.१३.१३;नाही° ८.१६.७; °बिंब-°बिम्ब ८.११.९
नाहेय–नाभेय, ऋषभजिन ३.१.११
√ निअ–दृश्, निएवि ६.११.२;९.१२.४; निएज्जु (विधि०) ३.११.८; नियच्छइँ (बहुव०) ४.२०.३
निउ–निज ४.५.१२
निउ–नीत, ले जाया गया ३.१.१;९.१०.१०
निउ–नृप ५.१३.२५;१०.१०.९
निउइ–निवृत्ति, मोक्ष ११.४.२
निउंज–निकुञ्ज २.३.३
निउण–निपुण १.२.८
निउणइ–निपुणाः (वेश्या) ९.१२.१९
निउराउल–नृप + राजकुल, प्रासाद ५.१.६
निउरंब–निकुरम्ब, समूह ४.६.१
निएँमिअ–दृष्ट २.१५.७
निएसिअ–निर्देशित, निर्दिष्ट ७.११.१०
√ निंद–निन्द्, निंदिवि २.१९.९
निंदा–निन्दा १.१८.३
निंदापसंस–निन्दा + प्रशंसा २.२०.५
निंब–निम्ब वृक्ष ४.२१.२;५.८.१३

निओय–नियोग	२.६.९
निक्कंट–निष्कंटक	९.३.१५
√ निक्कंत–निः + कर्त् °इ	११.१३.१
√ निक्कंद–निः + कर्त् °इ	११.१४.१२
निक्कंप–निष्कम्प + °इर (ताच्छील्ये)	१०.२५.९
निक्कारण–निष्कारण	२.२.३
√ निक्खंत–नि + क्रम् + शतृ °उ (स्वार्थे)	३.१३.१४
√ निक्खव–निः + क्षिप् °इ	९.१३.६
निक्खत्त–निः + क्षात्र, निःक्षत्रिय	७.७.३
निक्खय–निः + क्षय, अशेष	४.८.१३
निक्किवल्ल–निः + क्रीड्, निष्क्रिय	४.११.१२
निग्गअ–निर्गत	१.१४.१२
निग्गंथ–निर्ग्रन्थ	१०.२१.३
निग्गम–निर्गम (न)	२.१९.८
निग्गय–निर्गत	९.१०.१
√ निग्गह–नि. + ग्रह् °इ	३.९.२;५.५.३
निघंटु–निघण्टु	१.३.३
निघण–निघन वृक्ष	५.८.९
निच–निरय	३.१४.२०; १०.१७.५
निच्चल–निश्चल	५.४.१८
निच्छअ–निश्चय	८.६.११
निच्छइ–न + इच्छति	९.६.११
निच्छइयउ–निश्चित	२.१३.७
निच्छए–न + इच्छति	९.१७.१२
√ निऊ–नी °इ (आत्मने०) ११.२.१; °ए (आत्मने०) ३.४.९	
√ निज्जंतु–नी (कर्मणि) + शतृ	६.७.११;७.६.६
√ निज्जर–निः + जृ °इ	२.२०.८;११.९.६
निज्जर–निर्जरा	११.९.२
निज्जरिय–निर्जीर्ण	११.९.८
√ निज्जिण–निः + जि °इ	४.७.४
निज्जिय–निर्जित	८.८.६
निज्जीणअ–निर्जित	७.१.९
निज्झर–निर्झर	५.८.४;११.२.५
√ निज्झा–निः + ध्याय् °ह्रवि	२.१५.१२
निज्झाइउ–निर्ध्यात, दृष्ट	४.५.१७
निट्ठ–निट्ठविय, मार डालना	७.६.२.
√ निट्ठव–निः + स्थापय् °इ, अन्त करना	४.२०.१०
निट्ठुर–निष्ठुर	२.१३.४;६.६.११
निड्डुरिय–(दे) निः + डरित, त्रस्त	४.२२.१८
निडाल–(दे) ललाट	२.१८.१२
निणाअ–निनाद	७.८.८
√ निण्णास–निर्नाशय् °मि	२.१८.११;
निण्णासिय–निर्नाशित	४.३.१८;५.१३.२
निति–नीति	६.१४.२३
नित्तिंस–निस्त्रिंश, निर्दय	६.११.८
निद्द–निद्रा	१०.१३.२
निद्दा–निद्रा	६.८.३; १०.११.१०
निद्दिट्ठ–निर्दिष्ट	१०.२३.७; प्रश० ५
निद्दिट्ठअ–निर्दिष्ट	१०.२.८
निद्दूसण–निर्दूषण	१.६.३
निद्ध–स्निग्ध	१०.१६.२
निद्धण–निर्धन	९.१२.१७
√ निद्धाड–निः + घाटय् °इ	३.१२.९
निद्धाडण–निर्घाटन, निष्कासन	१०.२०.४
निद्धूम–निर्धूम	४.६.२
निनद्द–निनाद	७.२.३; १०.९.१
निनाअ–निनाद	४.२१.१;५.१४.७
निप्पह–निष्प्रभ	३.११.२
निप्पहा–निष्प्रभ	४.८.२
√ निप्पीड–निष्पीडय् °इ	४.२०.२;७.४.१२
निप्फंद–निष्पन्द	८.११.१०
√ निबंध–निः + बन्ध् °इ	११.५.३
निबंधण–निबन्धन	२.१.१३; २.२.३;११.८.६
निबद्धिअ–निबद्ध + क (स्वार्थे)	११.२.७
निब्बुद्धिय–निर्बुद्धि + क (स्वार्थे)	१०.१०.११
निब्भच्छिउ–निर्भर्त्सित	१०.१४.४
निब्भर–निर्भर	६.९.१०
निब्भिंद–निर्भेद्य	१.१२.४
निब्भिण्ण–निर्भिन्न	६.९.४
निमिस–निमेष	७.४.१३
निमुत्त–नियुक्त	६.८.३
निम्मम–निर्मम	१०.२४.२
निम्मयणरि–नर्मदा सरित्	९.५.५
निम्मल–निर्मल	५.३.१५; ११.१५.१
निम्मविउ–निर्मिताः (स्त्री० बहुव०)	४.१४.१०
निम्मंस–निर्मांस	२.१८.३
निम्माअ–निर्माया, मायारहित	३.१०.९
निम्माणिय–निर्मानित	७.६.१४

√ निवड–नि + पत् °इ ६.८.८;८.१४.५;११.४.२; °हिं (बहुव०) ८.१५.७; निवडेवि ९.५.१३; °डिवि–९.५.१०
निवडण–निपतन ५.७.१८
निवडिअ–निपतित १०.१४.१३
निवथाण–नृपस्थान, राजकुल ३.२.४
निवनंदन–नृपनन्दन ३.९.१४
निवमण–नृपमन ५.६.१७
निववाहिणी–नृपवाहिनी, सैन्य ५.१०.११
निवस–निवास, गृह ३.११.६
√ निवस–निवस् °इ ३.१४.१९; ५.१३.३२
निवसंपय–नृपसम्पदा १०.११.५
निवसिय–निवसित १.१५.११
निवसिरि–नृपश्री ८.४.११
निवाडिय–निपातित ७.९.१३
निवाण–निपान ३.१२.७:९.९.११
निवायार–नृपाचार, राजनीति ४.५.९
निवार–निवारक ७.१०.८
√ निवार–निवारय् °इ २.१६.२
निवारिय–निवारित ५.७.१६;७.७.१२
निवासण–निवासन, रहना १०.२२.६
निविट्ठ–निविष्ट ८.१३.७;८.१५.११
निविड–निविड, घना ९.६.२;६.७.१
निविडअ–निविड + क (स्वार्थे) ८.१६.२
निविस–निमेष ५.११.९
निवेइय–निवेदित ५.१२.८; °उ(स्वार्थे) २.१९.९
√ निवेस–निवेशय् °इ १.२.११
√ निवेसंत–निवेशय् + शतृ ७.१४.११
निवेसिय–निवेशित ४.११.८;८.४.१०;८.९.१८
√ निव्वट्ट–नि + वृत् °इ ६.१४.४
निव्वट्टिय–निर्वर्तित ७.१.२०
√ निव्वड–नि + पत् °इ १.१५.१९
√ निव्वड–निः + पादय् °इ १०.१.४
निव्वडिअ–निपतित १.१७.१८
निव्वडिय–निर्वृत्त, निष्पन्न, सिद्ध ५.१.१२
√ निव्वण्ण–निः + वर्णय् °मि ४.१.१०; °हि (विधि०) ५.१३.१५
√ निव्वत्त–निः + वर्तय् °मि २.१३.५
निव्वत्तिअ–निवृत्ता (स्त्री० विशे०) ९.१३.४
निव्वत्तिय–निवृत्त ९.१३.१८
निव्ववसाय–निर्व्यवसाय ९.१०.३
निव्वाण–निर्वाण, मोक्ष १०.२३.११
निव्वासिय–निर्वासित ५.३.९
√ निव्वाह–निर्वाहय् °इ २.१४.२
निव्वाहिय–निर्वाहित ९.३.६
निव्विण्ण–निर्विण्ण ६.४.११;८.५.१३
निव्वुड्ड–निमज्जित १०.१८.९
निव्वूढ–निर्व्यूढ १.४.२
निसंत–(i) निशा + अन्त
(ii) निशांत, राजगृह ४.८.१
निसग्ग–निसर्ग, नैसर्गिक ७.६.१५
निसा–निशा ९.१६.१२
निसागम–निशा + आगम ८.१५.१;९.११.६
निसामिअ–निः + श्रुत ९.४.७
निसि–निशि, निशा ३.१४.१२; १०.१४.२; °नाव १०.१८.७
निसिय–निशित ५.१४.७;६.५.७
√ निसुण–निः + श्रु °हि (विधि०) ९.५.३; निसुणंति(बहुव०) ९.३.३; निसुणेवि ६.१.९; १०.१०.१; निसुणेप्पिणु ९.१६.१
√ निसुणि–निः + शृणु (विधि०) सुनो ९.१८.१०
√ निसुणंत–निः + श्रु + शतृ °उ (स्वार्थे) ४.१.९
निसुणिय–निःश्रुत ७.१.८
निसुंभिय–निशुम्भित ७.२.६
निह–निभ, समान ७.४.९
√ निहम्म–नि + हन् °इ ५.१३.२२; ७.६.१७
निहय–निहत १.१७.३
निहस–निकष, कसौटी ७.४.६
निहसण–निघर्षण ७.६.३
निहाण–निधान ५.४.११; १०.८.२
√ निहाल–निभालय्. °हि (विधि०) २.१८.१४; ४.१७.६; ११.६.५
निहि–निधि ९.८.१; ९.८.२३
निहिअ–निहित ९.७.१३
निहित्त–निहित, निक्षिप्त ९.१८.४
निहिय–निहित, पिहित ८.९.१२
निहुअअ–निभृत + क (स्वार्थे) शान्त, मन्द ९.१४.२
निहुअणकेलि–निधुवनक्रीड़ा ४.१६.१२

[प]

पउसिय-प्रवासित ३.११.१४
पएस-प्रदेश २.१२.११;५.५.१७
पओहर-पयोधर (i) स्तन (ii) मेघ °हरिया (स्त्री०-विशे०)४.७.९;°हरीय(स्त्री० विशे०)९.९.७
पंकअ °य-पङ्कज, कमल ४.२१.५;५.१३.४; °दल ४.१३.१०;°सर ८.१४.१७
पंकप्पह-पङ्कप्रभा (नरक भूमि) ११.१०.७
पंकयसिरि-पङ्कजश्री, पद्मश्री (श्रेष्ठिकन्या) ९.२.३
पंकिल-पङ्क + इल, पङ्कयुक्त ४.७.७
पंगण-प्राङ्गण ९.१५.९; १०.१९.१
पंगुरिय-प्रावृत ९.१८.५
पंचंग-पञ्च + अङ्ग ४.१५.२
पंचत्त-पञ्चत्व, मृत्यु ९.३.५
पंचमगइ-पञ्चमगति, मोक्ष ११.१५.९
पंचमुह-पञ्चमुख (सिंह) ५.१४.७
पंचबाण-पञ्चबाण, कामदेव ४.१५.४
पंचवीस-पञ्चविंशति, पच्चीस ११.१०.५
पंचसय-पञ्चशत ७.१३.१
पंचाणण-पञ्चानन, सिंह ५.८.१४
पंचाणणावलोय-सिंहावलोकन, देखें: सं० टिप्पण ५.१४.२२
पंचपयार-पञ्चप्रकार ११.१२.९
पंचिंदिय-पञ्चेन्द्रिय ११.१३.४
पंचेंदिय-पञ्चेन्द्रिय १०.२२.५
पंजर-पंजर, पिंजड़ा ८.८.७
पंजलअ-प्राञ्जल + क (स्वार्थे), शुद्ध ११.७.१०
पंडवणाह-पाण्डवनाथ, युधिष्ठिर १.६.३
पंडि-पाण्ड्य (देश) ९.१९.३
पंडिअ-पण्डित प्रश० २१
पंडियमरण-पण्डितमरण २.२०.९
पंडीपहावंत-पाण्ड्यदेशोद्भव ४.८.६
पंडुरंग-पाण्डुर + अङ्ग, पाण्डुर शरीर १०.१७.६
पंडुरिअ-पाण्डुरित १०.१३.१०
√पंडुरिज्जंत-पाण्डुर + कृ(कर्मणि) + शतृ १.१.३
पंडुरिय-पाण्डुरित १०.९.२
पंति-पङ्क्ति ४.१८.२;९.१४.१
पंथ-पथ ५.२.११
पंथसमिय-पथश्रमित, पथश्रान्त ९.१८.९
पंथिय-पथिक, ३.१२.६
पक्क-पक्व ४.२१.३;९.४.९; °उ ११.९.९
पक्ख-पक्ष, हि० पखवाड़ा ४.१०.७;६.२.३
पक्खालिय-प्रक्षालित ६.९.११
पक्खि-पक्षी ९.१०.४,११.१३.५
पक्खिराय-पक्षिराज ५.५.९
पगि-प्राक् ४.२.१५
पगिव-प्राक् + एव २.१३.७
पच्च-पक्व १.१३.६
पच्चअ-प्रत्यय २.१३.८
पच्चक्ख-प्रत्यक्ष २.११.५;९.२.११
√पच्चारयंत-उपा + लम्भ् + शतृ ६.६.४
पच्चारिअ-उपालब्ध, आहूत ७.६.३२.
पच्चुज्जीवियअ-प्रति + उत् + जीवित-पुनरुज्जीवित ७.४.१८
पच्चुत्तर-प्रति + उत्तर १०.१०.४
√पच्चुप्फिड-प्रति + उत् + स्फिट् °प्फिडेवि९.२.५
पच्चूस-प्रत्यूष: ४.७.२१
पच्चेल्लिउ-(अप०) प्रत्युत २.४.४;३.१४.२०
पच्छ-पृष्ठ १०.१५.१
पच्छ-पश्चात् ४.३.१३
पच्छअ-पश्चात् ९.१३.६;१०.१५.३
पच्छइ-पश्चात् ५.१३.१८
पच्छइय-प्रच्छादित १०.१६.११
पच्छल-पृष्ठभाग, नितम्ब ९.१.१२
पच्छा-पश्चात् ९.१.१५
पच्छाइय-प्रच्छादित ८.१६.३
पच्छामुह-पश्चात् + मुख ९.३.१०
पच्छाहर-पश्चात् + गृह, पीछेका घर १०.१७.१
पच्छिम-पश्चिम, अन्तिम २.३.६; प्रश० १६
पज्जंत-पर्यन्त १०.३.१
पज्जलिय-प्रज्वलित °उ (स्वार्थे) १.११.६
पज्झरिय-प्रक्षरित ३.३.८;७.६.६
पट्टण-पत्तन ५.३.८;५.९.१
पट्टहत्थि-पट्टहस्ति ४.२०.७
पडिवाहर-प्रति + व्याहर, प्रत्युत्तर ४.२१.१२
पट्टोल-वस्त्रविशेष ४.८.६
√पट्ठा-प्र + स्थापय् °वेवि ८.१६.२
पट्ठविअ-प्रेषित, हि० पठाया हुआ ५.१२.७
पड-पट ९.१८.२

पढिय–पठित ४.९.५
√पड–पत् °इ १०.१७.२०; °उ (विधि०) २.८.७; पडंति (बहुव०) ७.८.१०; पडेऊण १०.२६.८; पडेविणु ९.११.५
√पडंत–पत् + शतृ १.१८.८;९.७.१६
पउमावइ–पद्मावती (श्रेष्ठिपत्नी) ४.१२.२
पडह–पटह वाद्य ७.३.१;१०.१९.२
पडावेढ–पट + आवेष्ट(न),वस्त्रवेष्टन, चादर ४.५.१६
पडिअ–पतित ७.१.१३;९.६.२;९.१४.११
पडिंद–प्रति + इन्द्र ३.१०.५; १०.२४.१०
√पडिकह–प्रति + कथय् °इ १०.७.५
पडिकेसव–प्रतिकेशव (जैन पौरा० पुरुष) ४.४.४
√पडिखल–प्रति + स्खल् °इ ५.५.१
पडिखुहिय–प्रतिक्षुभित, प्रतिक्षुब्ध ७.५.११
पडिगय–प्रतिगज, शत्रुहस्ति ६.६.५
पडिगाहिअ °य–प्रतिगृहीत ४.१७.२०;५.१०.२१; ७.७.३
√पडिच्छ–प्रति + इच्छ् °इ ६.६.५
पडिच्छिय–प्रतीच्छित १०.२१.१; °यउ ३.९.११
पडिछंद–प्रतिच्छन्द, प्रतिरूप २.१८.१४
पडिछित्त–प्रति + क्षिप्त, प्रतिबिम्बित ५.१.१५
√पडिजंप–प्रति + जल्प् °इ ९.१६.१
पडिण्ण–पतित ५.५.१४
पडितुल्ल–प्रतितुल्य ११.१.१
पडितुल्लअ–प्रतितुल्य + क (स्वार्थे) ४.१३.१७
पडिपट्ट–प्रतिपट्ट, वस्त्र विशेष ४.८.६
पडिपुच्छिय–प्रतिपृच्छित १०.१.५
√पडिप्फुर–प्रति + स्फुर् °इ १.५.२१
√पडिफुर–प्रति + स्फुर् °इ ७.१.३
पडिबंधण–प्रतिबन्धन ११.८.४
पडिबिंब–प्रतिबिम्ब २.१५.१;९.१२.१०
पडिबिंबिअ–प्रतिबिम्बित ४.१७.१२
पडिबुद्ध–प्रतिबुद्ध, जाग्रत ४.६.६
पडिबोह–प्रतिबोध १०.१८.१
पडिभअ–प्रतिभय ९.४.६
पडिभड–प्रतिभट, शत्रुयोद्धा १०.१.१२
पडिभग्ग–प्रतिभग्न ४.२२.२
√पडिभण–प्रति + भण् °इ १.५.६;५.४.१६
पडिभरिअ–प्रतिभृत ५.७.१५
पडिमक्कड–प्रतिमर्कट, शत्रुवानर ९.७.२
पडिमयगल–प्रतिमदगल, शत्रुहस्ति ४.२०.७
पडिमा–प्रतिमा प्रश० ७
पडिमिलिउ–प्रतिमिलित ४.२२.२४
पडिय–पतित ५.१०.९;७.८.७
पडियार–प्रतिकार, खड्गकोष, म्यान ७.८.२
पडिरक्खिय–प्रतिरक्षित ५.३.१५
पडिरडिय–प्रतिरटित (ध्वन्या०) ५.६.७
पडिलग्ग–प्रतिलग्न १.१.५;७.६.५
√पडिलग्गंत–प्रति + लग् + शतृ ८.५.९
पडिवक्ख–प्रतिपक्ष ८.४.६
√पडिवज्ज–प्रतिपादय् °ज्जेवि ९.४.६
पडिवज्जिअ–प्रतिपादित ३.९.६
पडिवण्णिय–प्रतिपन्न ४.१२.८
पडिसद्द–प्रतिशब्द १.१७.३
पडिहर–प्रतिमार ७.६.२५
√पडिहा–प्रति + भा °इ २.१५.१;१०.१६.७
पडिहार–प्रतिहार ५.१२.६
पडिहारय–प्रतिहार + क (स्वार्थे) ५.१.१८
पडिहासिय–प्रतिभाषित ३.१४.११
पडु–पटु ९.१३.९; १०.१९.२
पडुपडह–पटुपटह वाद्य ४.८.३;५.६.७
पडुल–पाटल पुष्प ८.१६.४
√पढ–पठ् °इ ८.१६.११;१०.८.९
√पढंत–पठ् + शतृ १०.१.१३
पढम–प्रथम ५.१३.१९;११.१०.४
पढमकलत्त–प्रथमकलत्र प्रश० १७
√पढमाण–पठ् + शानच् ५.१.२७
पढमुट्ठिअ–प्रथम + उत्थित ६.६.२
√पढिउं–पठ् + तुमुन् ८.२.९
√पढिज्ज–पठ् (कर्मणि) °इ ४.१०.२
पणअ °य–प्रणय ७.११.१६; ८.११.१३
पणइणि–प्रणयिनी ८.११.१३
√पणच्च–प्र + नृत् °इ ४.१.१४
पणच्चिय–प्रनर्तित १. मं०८
पणट्ठ–प्रनष्ट ४.२१.१७;१०.९.८
पणमण–प्रनमन, प्रणाम ५.१.१६;६.१.३
पणमिय–प्रणमित ९.१८.७
पणयकुद्ध–प्रणयक्रुद्ध ४.१७.५

पणयारूढ–प्रणयारूढ़ ९.१२.६
√ पणव–प्र + नम् °इ; पणविवि १.२.१; पणवेवि ३.५.५; पणवेप्पिणु ८.१.११
पणमिअ °य–प्रणमित ३.६.९;७.१३.१७;१.१७.८
√ पणविज्ज–प्र + नम् (कर्मणि) °इ २.१०.१
पणाम–प्रणाम ५.१.१९
पण्ण–पर्ण, पत्ते ५.८.२२;११.१.८
पण्णगतिय–पन्नगस्त्रियः, नागनियाँ १०.१७.११
पण्णसाल–पर्णशाला ५.११.२
पण्णारह–पञ्चदश, पन्द्रह ११.१०.६
पण्णारहखेत्त–पञ्चदशक्षेत्र ११.२.४
पत्त–पात्र, वाहन १.१६.१
पत्त–पदाति ४.२१.१६
पत्त–प्राप्त २.८.२;६.११.१;९.८.११
पत्त–पात्र, भाजन १०.२०.१०;११.१४.५
पत्तउ–प्राप्त + वत्, प्राप्त ८.१४.३;१०.१९.१५
पत्तल–(दे) पतली २.१५.३
पत्ति–पदाति ४.२१.१५;७.६.१
पत्ति–पत्नी १०.१३.७
पत्तिवाल–तलवार ९.१२.३
पत्थ–(i) पार्थ-अर्जुन (ii) प्रस्थ एक माप ८.३.९
पत्थाण–प्रस्थान ८.२.१
पत्थार–प्रस्तार, विस्तार, ४.९.२
पत्थाव–प्रस्ताव ५.१.२०
पत्थिव–पार्थिव, राजा ६.१२.१
पदिण्ण–प्रदत्त १०.२०.११
पद्धडियाबंध–पद्धडियाछन्द १.४.३
पद्धा–स्पर्द्धा १.११.१३
पधाइय–प्रधावित ७.१३.३
पन्नग–पन्नग ५.८.२२
पप्फुल्लिय–प्रफुल्लित ४.६.४
पबंध–प्रबन्ध १.४.१०;१.५.१४
पबल–प्रबल ६.५.११
पबोह–प्रबोध ४.५.२
पब्भार–प्राग्भार ४.१३.२
√ पभण–प्र + भण् °इ २.१०.७; ४.१४.१९; ५.१३.२४
पभास–प्रभास (तीर्थ) ९.१९.४
पमाअ–प्रमाद, कष्ट ११.१३.५
पमाउ–प्रमाद २.८.१०
पमाण–प्रमाण, संख्या २.५.१०;५.१४.११
पमाणिअ–प्रमाणित, कथित ११.१२.९
पमाय–प्रमाद-दोष २.८.११
पमुक्क–प्रमुक्त ४.२१.११
पमुह–प्रमुख ४.८.१०;८.८.१९
पमेय–प्रमेय १०.३.१०
√ पमेल्ल–प्र + मुच् °ल्लेवि १०.९.४
पमेल्लिअ–प्रमुक्त ७.११.२
पम्मुक्क–प्रमुक्त १०.२६.२
पय–जल १.१.३
पय–पद, चरण १.२.१;६.५.२
पय–(i) जल (ii) दुग्ध ४.७.९
पयइ–प्रकृति ५.१३.३३
पयंग–पतङ्ग ५.१४.२५
पयंड–प्रचण्ड १०.९.२
√ पयंप–प्र + जल्प् °इ २.१.३; ६.७.११; पयंपंति (बहुव०) १०.२६.६;
पयंपिअ–प्रजल्पित ५.४.२०
पयकमल–पदकमल १०.१६.२
पयक्खलण–पद (पाठ) स्खलन; (ii) पद-व्यवसाय (या मार्ग) स्खलन ८.४.११
पयग्ग–प्रयाग ९.१९.१५
पयचप्पण–पद + आक्रमण, पदाघात ५.७.१३
पयछिण्ण–पदछिन्न, पदनिर्धारित ९.१.४
पयज–प्रतिज्ञा, हि० पैज ४.२.१४
√ पयट्ट–प्र + वर्त् °इ ५.३.५;७.३.१;११.६.४
पयट्ठिया–प्रतिष्ठिता (स्त्री०) प्रश० ८
√ पयडअ–प्रकटय् °इ ८.२.१०; ८.१६.६; °मि १०.६.१; °डेवि ७.१.६
√ पयडंत–प्रकटय् + शतृ ६.४.१
पयडबन्ध–प्राकृतबन्ध १.२.१४
पयडिअ °य–प्रकटित २.९.८; ८.७.१४
पयडीकय–प्रकटीकृत ३.१२.२०
पयणछवी–पचन + छवि ३.३.७
पयणेउर–पगनूपुर ३.८.३
पयदलिय–पददलित ६.८.११
पयपूरण–पदपूरण २.१५.१९

पयबंध–पदबन्ध (i) (सप्त) पदबन्ध, सप्तपदी
(ii) पदबन्ध–पदरचना १.३.५
पयभर–पदभार ५.१२.३
पयर–प्रकर, समूह ४.१६.६;८.१३.१४
पयरण–प्रकरण २.१०.४
पयलग्ग–पादलग्न २.५.६; उ° (स्वार्थे) ८.११.१५
पया–प्रजा ४.५.९;८.८.८
पयाउ–प्रताप ३.६.८;५.११.१७
पयाण–प्रयाण ५.५.१७
पयाणअ–प्रयाण + क (स्वार्थे) ७.१३.१४
पयार–प्रकार २.६.५
पयाव–प्रताप ५.१.१६;५.५.८
पयावइ–प्रजापति ४.१४.१०
पयावघोसणा–प्रतापघोषणा १.११.१२
पयावहुयास–प्रतापहुताश(न), प्रतापाग्नि १.११.४
√पयास–प्रकाशय् °इ ८.१६.७; °मि ९.१६.५
पयाहिण–प्रदक्षिणा १.१६.४;१.१७.८
पर–परम ११.१४.५
परइ–परतः, परे, दूर ९.३.११; °पुं १०.५.१; ए° १.२.५;१.१५.११
परंपर–परम्परा ४.९.१०
परकयत्थ–पर (म) + कृतार्थ २.८.१;४.१.१०
परकुबुद्धि–पर(म) + कुबुद्धि १०.१०.१२
परकेवल–पर(म) + केवल, बिल्कुल अकेले-अकेले ३.१३.१०
परघर–परगृह ३.९.१४
परतउ–पर(म) + तप ८.१०.१५
परतक्क–पर (म) + तर्क १.३.३
परधण्ण–पर (म) + धन्य ४.२२.२६
परपच्चक्ख–परप्रत्यक्ष १०.२२.१२
परमगुरु–पञ्च परमेष्ठि १.१.१५
परमत्थ–परमार्थ ४.६.१०; १०.१२.८
परमपर–परमपरः, परमात्मा २.२०.२
परमप्पअ °य–परमात्मा ४.४.१०;११.४.८
परमरई–परमरति ८.९.१५
परमिट्ठि–परमेष्ठि २.१.३
परमेट्ठि–परमेष्ठि ८.४.३
परमेसर–परमेश्वर २.४.१;३.१३.५
परयारकज्ज–परदारकार्य, परस्त्रीगमन १०.८.८
परलोअ °य–परलोक २.१८.१६;१०.३.६
परवंचण–परवञ्चनः, परवञ्चक ९.१२.१४
परवस–परवश, पराधीन ५.९.१७
परव्वस–परवश २.१४.२
परस–स्पर्श २.२०.७
परसंकप्प–परसंकल्प १०.२३.६
परसु–परशु, कुल्हाड़ा ८.१०.५
पराइय–परागत ८.९.२
√परज्जि–परा + जि °ऊण ७.३.६
परायउ–परागत २.१५.६;४.१८.८
पराहउ–पराभव ५.७.२७
√परिउंछ–परि + प्रोञ्छ °छिवि १.२.८
√परिओस–परि + तोषय् °इ २.१५.१०
√परिकमंत–परि + क्रम् + शतृ १०.२४.७
√परिकलअ–परि + कलय् °लिवि ४.२२.१४
परिकलिअ °य–परिकलित १.३.२; ६.६.३
√परिक्ख–परि + ईक्ष् °हि (विधि०) १.२.३; ६.७७; परिक्खिऊण ९.१.१
√परिक्खल–परि + स्खल् °इ ४.१७.२३
√परिगल–परि + गल् °उ (विधि०) १०.२५.७
√परिगलिअ–परिगलित °ए २.१८.४
परिग्गह–परिग्रह २.७.१;५.१.२२
परिग्गह–परिग्रह, सैन्य ६.१.१४
परिघुट्ठ–परिघुष्ट १.१५.१०
√परिचअ °य–परि + त्यज् °इ १०.४.१४ °चइवि ५.४.३
परिचइयउ–परित्यक्त ६.८.१९
परिचत्त–परित्यक्त ९.१२.८;११.१३.८
परिचअ–परिचय ८.२.१४
√परिछल–परि + छलय् °इ ४.१७.२३; °वि ४.१७.११
परिट्ठिअ °य–परिस्थित १.१२.८;५.८.३;६.१३.१
√परिठव–परि + स्थापय् °वि २.७.१०
परिठविअ–परिस्थापित ५.११.१
√परिणअ–परि + णी °इ ५.४.१९;१०.४.२; ११.६.५
√परिणंत–परि + णी + शतृ ११.५.६
परिणयण–परिणयन, परिणय ४.१४.२०;८.११.१७.
परिणामउ–परिणाम + मतुप्, भावयुक्त ११.४.६

परिणाविअ–परिणायित ३.४.७;°यउ ९.१५.१३
परिणिअ °य–परिणीत १०.१०५ ५.२.१३
परिणेवव–परिणायितव्या (स्त्री०) ४.१४.१५; ५.२.२३
परिणेयव्व–परिणायितव्य ८.५.८
परित्त–परित्राण ७.३.१०
परितुट्ठ–परितुष्ट ७.६.१४
परितोसिअ–परितोषित, परितुष्ट ७.११.४
परिथिअ–परिस्थित २.५.१३
परिथोडअ–परिस्तोक, बहुत थोड़ा ५.४.४
परिपक्क–परिपक्व °उ (वत्) १.७.५;८.१३.१२
√परिपालअ–परिपालय् इ° ८.३.१५
परिपीडिअ–परिपीड़ित २.५.११
परिपूरअ–परिपूरित ८.१३.१०
परिपूरिय–परिपूरित २.५.९
√परिफुर–परि + स्फुर् °इ १०.३.२
परिभट्ठ–परिभ्रष्ट २.२.८
√परिभम–परि + भ्रम् °इ९.११.१.७;°वि ९.५.१०
√परिभमंत–परि + भ्रम् + शतृ १०.२४.७
√परिभमिर–परि + भ्रम् + इर (ताच्छील्ये) ५.१२.३; ७.६.१०
√परिभाव–परिभावय् °इ ११.७.१; °हि (विधि०) १०.२.६
परिभाविअ–परिभावित ८.११.१६
परिमिअ °य–परिमित १.१६.३;४.९.११;५.३.१४
परिमुणिय–परिज्ञात १०.१८.४
परियण–परिजन ८.१५.१६;१०.१६.११
√परियत्त–परि + वर्तय् °वि ४.१७.७;९.१८.१
परियत्तण–परिवर्त्तन १.२.१४
परियर–परिकर ६.१.६
√परियर–परिचर् °रिवि ७.५.८
परियरिअ °य–परिचरित १.१४.११;११.१०.२
√परियाण–परि + ज्ञ °इ ४.१८.१५;°वि ६.१२.१; ८.८.१८
परियाणिअ °य–परिजात १.१७.४; २.५.८; ४.१८.१५ ३.१४.१०;
परिरक्खिय–परिरक्षित ५.९.५
परिवज्जिय–परिवर्जित ११.१४.१०
परिवडिय–परिपतित ७.५.३
√परिवड्ढ–परि + वृध् °इ ४.९.१
√परिवड्ढंत–परि + वृध् + शतृ ३.१४.९
परिवड्ढिअ °य–परिवर्द्धित २.१.१०;९.७.५
परिवाडी–परिपाटी ९.२.३
परिवारिअ–परिवारित ३.४.८
परिसंठिअ–परिसंस्थित ११.११.१
√परिसक्क–परि + ष्वक् °इ २.१५.१७;५.८.३७
√परिसीलंत–परि + शीलय् + शतृ ३.१४.११
परिसीलिय–परिशीलित २.१२.११
√परिसुक्क–परि + शुष् °इ २.४.२
√परिसुस–परि + श्वष् °इ ९.१४.६
परिसेसिअ–परिशेषित; परित्यक्त १०.२०.९
°परिहच्छ–उपरिहस्त ७.६.१३
परिहच्छअ–(दे) दक्ष ९.१३.१२
परिहण–परिधान ४.२०.३
√परिहर–परि + हृ °इ ९.७.३; °हि (विधि०) २.१६.४; °रिवि ६.१२.११;९.४.१७
परिहरणअ–परिहरणः, परिहारक ११.१४.३
परिहरिअ–परिहृत ८.१३.१५
परिहव–परिभव, पराभव ६.९.११;७.४.१५
√परिहव–परा + भू °इ ३.७.१२
परिहा–परिखा १.८.८
परिहाण–परिधान ९.१८.२
परिहामंडल–परिखामंडल ३.१.२०
परिहासापेसल–परिहास + आपेशल-अतिशय मनोज्ञ ४.१७.१
√परिहिज्ज–परि + हीय् (कर्मणि) °इ ३.१२.७
परिहिय–परिधृत १०.१८.८
परीसह–परीषह २.२०.७; ११.९.६
परूढ–प्ररूढ़ १०.८.१४
परोप्पर–परस्पर ३.११.१२;९.७.८
परोहण–जलयान १०.११.१
पल–(तत्सम) मांस ६.८.९;१०.१०.८
पलय–प्रलय ६.१४.२;९.९.४; °काल ४.२२.१२
पलाण–पलायित १०.२६.७
√पलायंत–पलाय् + शतृ ४.२१.१७
पलाल–(तत्सम) पुआल, तृण ९.१५.७
पलास–(i) पलाश, मांसभोजी राक्षस (ii) पलाश वृक्ष ५.८.३४;६.८.६

√पडाइ–परा + अय् (आज्ञा०) १.११.११
पलित्त–प्रदीप्त ५.१३.१०
√पलोय–प्रलोकय् °इ १०.४.१०;°यंति (बहुव०) ७.४.४; °हु (विधि०) १०.११.९
पलंक–पर्यङ्क ८.१५.१६
√पलट्ट–परि + वर्तय् °इ २.१५.९;४.११.२; ११.६.४
पल्लाणिय–पर्याणित ५.६.४;७.१.१९
पल्लि–पल्लि, छोटा गाँव ५.८.२९
पल्लीवण–(दे) चोरोंके निवास योग्य वन ५.८.२४
पल्लहत्थ–पर्यस्त, परिवर्तित ७.१.१९
पवंच–प्रपञ्च १०.१८.२
√पवच्च–प्र + व्रज् °च्चेइ ५.५.१२; °च्चमि ९.९.४
√पवज्जंत–प्र + वद् + शतृ ४.५.८;१०.०.१
पवड्ढिअ °य–प्रवर्द्धित ९.३.६;९.११.७;११.५.८
पवणाहअ–पवनाहत ५.७.१
√पवत्त–प्र + वर्तय् °इ ११.११.७; °हि (विधि०) ५.१२.२४
पवत्त–प्रवृत्त १०.२६.५
पवत्ति–प्रवृत्ति ९.१०.६
पवत्तिअ–प्रवर्त्तित ८.१२.१४;१०.२४.४
पवन्न–प्रपन्न ९.८.४
पवर–प्रवर ४.१२.२;६.१०.६
पवरभुअ–प्रवरभुजः (पु० विशे०) ३.५.७
पवल–प्रबल २.९.१२
√पवहंत–प्र + वह् + शतृ °ि (स्त्रियाम्)१०.१८.७
पवहाविय–प्रवाहित ७.६.६
पवाल–प्रवाल ५.९.८
पवाह–प्रवाह ६.५.१०;१०.१७.८
पवाही–प्रवाही (स्त्री० विशे०) ५.१०.७
पवि–(तत्सम) वज्र ५.४.९;५.१२.२५
पवित्त–पवित्र ४.५.१४;८.१२.८
√पवित्तअ–पवित्रय् °त्तेउ (विधि०) १.१८.४
पवित्ति–प्रवृत्ति ६.१.४
पविपंजर–पविपञ्जर, वज्रपञ्जर ११.२.५
पविरल–प्रविरल ९.१०.६;१०.५.९
√पविसंत–प्र + विश् + शतृ ५.१.२७
√पवुच्च–प्र + वद् °इ (आत्मने०) ४.१.१४;५ २२. २३;१०.२३.४
पवुत्त–प्र + उक्तः ४.३.५
√पवेस–प्र + वेशय् °हि (विधि०) ९.१६.६
√पवोत्तुं–प्र + युज् + तुमुन् ८.११.१०
पव्व–पर्व ९.८.१८
पव्वइअ–प्रव्रजित ८.४.११
√पव्वज्ज–प्र + व्रज् °ज्जेमि २.१३.११; °मि८.७.९
पव्वज्ज–प्रव्रज्या १०.१९.१८;१०.२१.१
पव्वज्जिअउ–प्रव्रजिताः (स्त्री० बहुव०) १०.२१.५
पव्वय–पर्वत ८.१४.१८;११.११.४
√पसंस–प्रशंस् °इ ४.३.९
पसंसणु–प्रशंसनः (कर्तरि) ४.३.९
पसंसिअ–प्रशंसित ६.१२.१
पसण्णवयण–प्रसन्नवदन प्रश० १३.
पसत्थ–प्रशस्त २.५.८;५.१२.१५;९.१५.१३
पसत्थपद–प्रशस्त + पद (शब्द) प्रश० ६
पसन्न–प्रसन्न ७.११.१५
पसर–प्रसार २.२०.३
पसर–पुरतः ९.४.८
पसर–प्रातः, हि० पसर, सवेरा ९.४.४;१०.२३.१०
√पसरंत–प्र + सृ + शतृ ८.३.९;१०.२६.११
पसरण–प्रसरण ५.७.६
पसरिअ °य–प्रसृत १.१४.१;५.३.७;७.८.८;८.१४.९
पसविय–प्रसवित १.१३.६
पसाअ–प्रसाद २.१३.१९;१०.१९.१८
पसारिअ °य–प्रसारित ६.१४.१; ७.१.१३
पसाहण–प्रसाधन ५.२.१६
√पसिंचमाण–प्र + सिञ्च् + शानच् ८.१३.३
पसित्त–प्रसिक्त ८.१३.१
पसु–पशु २.६.१२;११.१३.५
पसुत्त–प्रसुप्त ९.४.७;१०.९.४
पसुया–प्रसूता ९.७.४
पसेय–प्रस्वेद ६.१३.५;१०.१३.१०
पसोवण–प्र + स्वपन १०.९.१
पह–पथ २.१६.५;१०.८.४
पहअ °य–प्रहत ६.२.८;६;१०.११,७.५.४
पहंजण–प्रभञ्जन ८.१३.४
पहर–प्रहार ९.१०.२१
√पहरंत–प्र + हृ + शतृ ७.९.१४
पहरण–प्रहरणः (कर्तरि) ६.४.८;७.११.७

पहरणट्ठिअ–प्रहरण + स्थित ३.९.१६
पहरद्ध–प्रहर + अर्द्ध १०.२४.१
पहरिय–प्रहारित ८.११.१३
√पहसंत–प्र + हस् + शतृ ३.१.१९
पहाअ–प्रभाव ४.६.६;९.११.४
°पहाउ–प्रभाव ३.१३.९
√पहाव–प्र + धाव् °इ ३.१२.८
√पहाव–प्र + भू °इ ११.१.५
पहावइ–मति, कान्ति; देखें: सं० टिप्पण ३.१२.८
पहि–पथिक ९.८.१८
पहिअ °य–पथिक १.७.६;३.१२.१२;५.९.९
पहिकउ–(दे) प्रथम, हि० पहला ५.१३.१८
पहिलारअ–(दे) प्रथम, हि० पहला १०.२१.८
पहु–प्रभु २.१९.९;६.८.४;८.५.१४
√पहुच–(दे) प्र + आप् °ए (आत्मने०) ३.४.५
पहुत्त–(दे)प्राप्त ३.११.१५;४.१५.७;५.१२.५
पहुल्लिय–प्रफुल्लित °या (स्त्री०) ४.८.१४
पाअ–पाद, चरण २.१२.८
पाअ–पाद, प्ररोह ४.१९.१९
पाइअ–पदाति ६.११.१
पाइक्क–पदाति १.१५.५;६.८.१०
पाउ–पाप ३.११.६
पाउस–पावस १०.१४.१
पाउसंत–प्रावृष् + अन्त ९.५.५
पाउसपूर–पावसपूर ९.५.६
पाउससिरि–पावसश्री ९.९.७
√पाड–पत् + णिच् °इ ५.१४.१४ °वि ५.७.१४; पाडेवि २.६.२; °हिहि (भवि०) ५.७.१७
पाडल–पाटल ३.१२.८; ४.१५.१३
पाडिअ–पातित ७.९.१४; ७.१०.१८
पाढअ °य–पाठक ५.१.२७; ११.१५.११
√पाढंत–पठ् + णिच् + शतृ २.१४.५
पाढण–पठन ४.९.५
पाण–प्राण ४.३.६
पाणहिय–प्राणाधिक, प्राणप्रिय २.५.६
पाणिउ–पानी ४.१९.२२; ९.७.११
पाणिग्गहण–पाणिग्रहण ४.१४.१८
पाणिपत्त–पाणिपात्र, करपात्र ३.९.१४
पामर–(तत्सम) कृषक ९.४.१
पामरी–(तत्सम) कृषक वधू ५.९.९
पामा–खुजली रोग ८.७.८
पाय–पाद, चरण ६.७.९; १०.८.६
पायव–पादप ४.१०.७
पायच्छित्त–प्रायश्चित्त १०.२३.१; ११.८.८
पायत्थवण–पादस्थापन, पादपीठ ५.१.१४
पायपहार–पादप्रहार ४.१७.४
पायय–प्राकृत १.४.१०
पायार–प्राकार ३.१.२०; ४.६.५
पायाल–पाताल ८.३.६
पायालसग्ग–पातालस्वर्ग, पाताललोक १०.१७.११
√पारभ–आरभ्, °ए (आत्मने०) ४.१२.९
पारक्क–परकीय (विशे०) ६.१.१०
पारग्गह–(दे) युद्ध ६.१.१२
पारणकज्ज–पारणकार्य ३.९.१२
पारणत्थ–पारण + अर्थ २.१५.७
पारद्धि–पारधी, मृगया ४.१३.१
पारंभिय–प्रारम्भित १.६.१; १.१०.१२; ५.३.५
पारस–पारस (देश) ९.१९.६
पाराविय–पारित ३.६.१०
पारिय–पारित ४.११.८
पारियत्त–पारियात्र (प्रदेश) ९.१९.८
पारोह–प्ररोह प्रश० १७
√पाल–पाल् °इ २.१६.७; ११.१३.९
पालंब–प्रालम्ब, शाखा २.४.१२
पालणिट्ठ–पालन + इष्ट, पालननिष्ठ ४.५.९
पालद्धयालि–(दे) बांसमें लगी हुई छोटी-छोटी झंडियाँ ५.७.१०
पालि–(तत्सम) पङ्क्ति, मेंढ़ ९.१०.१
√पालिज्ज–पाल् °उ (विधि०) ३.१४.१८
पालियकर–पालितकर, शुल्कग्राहक १.१०.१४
पालियधर–पालित + धरा, धरापालक ५.२.२३
√पाव–प्रापय् °इ ५.१३.२१; ९.२.१३; ११.४.२; °मि ९.११.६; °हो (विधि०) ६.२.७; पाविऊण ६.१०.१०; पाविवि ९.५.५; पावेसमि (भवि० उ० पु०) ९.१०.१४
पाव–पाप ३.१३.१०
पावकम्म–पापकर्म २.५.१२; १०.१०.१३
पावक्खअ–पापक्षय ११.१४.८

पावज्ज–प्रव्रज्या ३.८.५
√पावज्ज–प्र + व्रज् + णिच् °इ १०.२.४
पावपिंड–पापपिण्ड २.२.४
पावमई–पापमति २.१८.१
पावरस–पापरस ५.१३.१९
पावालिया–प्रपालिका (स्त्री०) ५.९.१०
पाविअ–प्रापित, प्राप्त ७.१०.१४
√पाविज्ज–प्र + आप् (कर्मणि) °इ १. ११. ५. ११.३.१
पाविय–प्राप्त १.७.८; ७.४.१६; ८.६.५
पास–पार्श्व, हि०पास २.१३.९; २.१९.८; ४.१२.२
पास–पाश १०.२६.९
पासंगिउ–प्रासङ्गिक ५.४.८
पासगंठि–पाशग्रन्थि १०.१४.१३
पासट्ठिअ–पार्श्वस्थित ३.९.९
पासणाह–पार्श्वनाथ १.१.१३
पासेय–प्रस्वेद ५.१३.१०
पाहण–पाषाण, हि० पाहन ९.११.११
पाहरिय–प्राहरिक, पहरेदार ९.१४.२
पाहाण–पाषाण १.२.९; २.२०.७; °मय प्रश०२०
पाहुड–प्राभृत ५.१.२३
पि–अपि १.५.२१
पिउ–प्रिय, पति ४.१७.१७; ४.४.१९.१८; ६.८.१२; ९.४.१६
√पिक्खमाण–दृश् + शानच् १.१८.११
पिंग–पिङ्ग (वर्ण) २.९.३; ४.२१.२
पिंगल–पिङ्गल (ग्रन्थ) ४.९.२
पिंगलिय–पिङ्गलित ७.६.३
पिंगीकय–पिङ्गीकृत ३.६.८
पिंड–पिण्ड, पितर पिण्ड २.६.२
पिंडवास–पिण्ड + आवास, छावनी ५.११.२
√पिज्ज–पा °इ (आत्मने०) १.७.४; ३.३.८; १०.५.७
√पिज्जंत–पा + शतृ ९.१०.१०
√पिड्ड–पीड् °ट्टिवि १०.१३.९
पिट्ठि–पृष्ठ ४.२०.११
पित्तल–पित्तल (धातु), हि० पीतल २.१८.५
पिय–प्रिया, कान्ता २.१५.११
पिय–प्रिय (जन) ३.११.१३
पिय–पति °खंध-स्कन्ध ४.१९.४; °मरण २.५.१५; °यम-प्रियतम ४.१२ २; ८१३.१
पियर–पितृ २.६.२; ८.१०.५
पियलालिया–प्रियलालिता (स्त्री०विशे०) पतिकी लाडली ५.९.१४
पियल्लि–(दे) टीका, तिलक ८.१४.१४
पियवयण–पितृवचन ३.९.६
पियसंग–प्रियसङ्ग ३.१२.९
पिया–प्रिया २.१०.८; ३; ३.३.२; °चउक्क-चतुष्क ३.१३.१
पियामह–पितामह १.१७.७
पियारी–प्रियतरा, हि० प्यारी २.११.२
पियालवण–(i) प्रियाल + वन; (ii) प्रिया + आलापन १.७.३; ४.१८.४
पियासिअ–पिपासित, प्यासा ३.१३.१०
पिल्लणअ–प्रेरणकः (कर्तरि) ९.३.९
पिल्लिय–प्रेरित ९.१७.४
पिसुण–पिशुन, दुर्जन २.१०.८; ११.५.७
पिहु–पृथु ९.१२.१
√पी–पा, पियइ ४.२.७; ९. ७.११; ११. १५. ४; पियवि १०.७.८
पीऊस–पीयूष ३.१.१
√पीड–पीड् °इ ९.१२.१६
पीडायर–पीडाकर ७.८.९
पीडिअ °य–पीडित १.१.५; ८.११.६; १०.७.७
पीढ–पीठ, हि० पीढ़ा ९.१८.८
पीणखंध–पीनस्कन्ध ५.१२.१८
पीणत्थणी–पीनस्तनी (स्त्री०विशे०) ७.१२.६
पीणिय–प्रीणित १०.१.९
पीवर–पीवर, पीन, स्थूल ५.१२.१३; °तड-तट ४.१३.१२
√पुंज–पुञ्ज्, °इ ३.१४.२२
पुंजय–पुञ्ज + क (स्वार्थे) २.३.३
पुंजिअ–पुञ्जित ३.९.९
पुंडुच्छुजंत–पुण्ड्र + इक्षु + यन्त्र १.८.६
पुंडरिंकिणी–पुण्डरीकिनी (नगरी) ३.१.२१
पुंडरिंगिणी–पुण्डरीकिनी (नगरी) ३.४.१२
√पुक्कर–पूत् + कृ °इ ४.१.९.२०
√पुक्कार–पूत् + कृ + णिच् °इ ५.७.२०

पुक्खरद्धय–पुष्करार्द्ध, पुष्करवरद्वीप ११.११.१०
पुक्खलावइ–पुष्कलावती (नगरी) ३.१.१३
पुग्गल–पुद्गल १०.३.४
पुच्छ–(तत्सम) पुच्छ, हि० पूँछ ४.२१.५
√पुच्छ–प्रच्छ्, °इ २.७.१; ९.१७.६; °सु (विधि०) ८.६.२; °ह (विधि०) ८.११.८
√पुच्छंत–प्रच्छ् + शतृ °ताहँ (बहुव०) ८.६.१२
पुच्छिअ–पृष्ट : २.१.२
√पुच्छिज्ज–प्रच्छ् (कर्मणि) °इ ४.१.१३; ६.११.४; ८.१.१२; ९.१८.९
पुच्छिय–पृष्टः २.१८.९; ९.७.६
पुज्ज–पूजा ३.१२.१४
√पुज्ज–पूज्, °इ ३.१४.९; °वि ३.१३.४
√पुज्ज–पूर् (कर्मणि) °इ ३.१४.१०
√पुज्जमाण–पूज् + शानच् १.१८.५
पुज्जवय–पूज्यव्रत: (पु० विशे०) ८.३.१४
पुज्जारह–पूजार्ह १०.२३.२
पुजिअ–√पूजित १.१४.३
√पुजिज्ज–पूज् (कर्मणि) °ए १.१८.२
पुट्ठ–पृष्ठ, पीठ ९.४.८
पुट्ठाहर–स्पृष्ट + अधर ९.१९.११
पुट्ठि–पृष्ठ २.१०.३
पुट्ठी–पृष्ठ, पीठ ९.८.४
पुढवि–पृथिवी ११.१०.३
पुण–पुनः २.१९.२
पुणरवि–पुनरपि २.१०.१
पुणुण्णअ–पुनः + उन्नत २.२०.१०
पुणुरुत्त–पुनरुक्त, पूर्ववत् १०.१७.१६
पुण्ण–पुण्य १.१८.५
पुण्णपहाव–पुण्यप्रभाव ३.३.१७
पुण्णपाव–पुण्यपाप ३.१३.८
पुण्णपुंज–पुण्यपुञ्ज ४.२.४
पुण्णणिमित्त–पुण्यनिमित्त ११.७.१०
पुण्णिमइंद–पूर्णिमा + चन्द्र ३.४.१
पुण्णिमचंद–पूर्णिमा + चन्द्र १.१४.११
पुण्णु–पुनः २.१४.११
पुत्त–पुत्र २.५.१७; ११.५.६
पुत्तउ–पुत्र ४.१४.२०
पुत्तकुर–पुत्र + अङ्कुर ९.७.६
पुत्तदुह–पुत्रदुःख १०.१९.९
पुत्तवच्छल–पुत्रवत्सल ३.८.१
पुत्ताणण–पुत्रानन ३.४.४
पुत्ति–पुत्री ४.१२.५
पुप्फ–पुष्प ५.२.१९
पुप्फपरिणाम–पुष्पपरिणाम १.१२.१६
पुप्फयंत–पुष्पदन्त (अप० महाकवि) ५.१.२
पुरउ °ओ–पुरतः १.१.८; ४.१९.९; ५.११.१; १०.४.१०
पुरंदर–पुरन्दर २.२.९
पुरट्ठिय–पुरस्थित ५.१.१९
पुरलोअ–पुरलोक, नागरिक ९.११.७
पुरवासि–पुरवासी ५.९.१५
पुराण–(तत्सम) प्राचीन ४.४.५; ४.४.१०
पुरावासि–पुर + आवासी, नगरनिवासी ४.५.११
पुरि–पुरी, नगरी ७.११.११
पुरिय–पुरी + क (स्वार्थे) ६.१.१७
पुरिस–पुरुष ९.१२.६
पुरीस–पुरीष १०.१७.४
पुरुसोत्तम–पुरुषोत्तम १.११.१३
पुलय–पुलक २.९.२०
पुलिण–पुलिन ९.१३.१५
पुलिणट्ठाण–पुलिनस्थान ५.१०.८
पुलिंद–पुलिन्द, भील ३.१२.१६
पुव्व–पूर्व ७.६.१२
पुव्वत्थ–पूर्व + अर्थ १.५.१८
पुव्वदिट्ठ–पूर्वदृष्ट ९.१०.१०
पुव्वभणिअ–पूर्वभणित, पूर्वकथित ४.१४.१८
पुव्वभवंतर–पूर्वभवान्तर ३.१०.१०
पुव्वभाय–पूर्वभाग ९.१९.१३
पुव्वविदेह–पूर्वविदेह ८.२.२३
पुव्वसंकेय–पूर्वसङ्केत २.१९.८
पुव्वावर–पूर्वापर २.११.९
पुव्वावरविदेह–पूर्व + अपर विदेह ११.११.६
पुव्वावरोवहि–पूर्व + अपर उदधि ५.८.३
पुव्वास–पूर्व + आशा, पूर्वदिशा ३.१.९
पुव्वासिय–पूर्वाश्रित २.२०.८
पुहइ–पृथिवी १०.११.१
पुहईसर–पृथिवी + ईश्वर ५.१.३०
पूइ–पूति ९.१.११
पूय–पूति ११.६.३

पूआ–पूजा १.१८.२
पूर–पूर(क) १.१४.५
√पूर–पूर् °इ ३.६.१०; °हु (विधि०) ९.८.१८
√पूरंत–पूर् + शतृ १.१४.९
पूरिअ °य–पूरित ४. ६. ३; ४.२१. ६; ९. ८. ७; ९.९.९.१३
पुव्वाणकोडि–पूर्वकोटि, कालप्रमाण ३.१.१२
√पेक्ख–दृश्, °इ–९.१०.२१; ११.१५.५; °मि–३.११.१०; ९.१५.७; पेक्खु(विधि०) १.१३.२;२.१२.८;४.१७.१३;४.१८.६; १०. ४. ७; °हि (विधि०) ९.८.१४; पेक्खिवि ४.२.१५; ६.१२.१०; पेक्खेवि-४. १७. १२; ७. ११. ३; ८. १३. ६; १०.१४.१४; पेक्खेवि १.१०.७;पेक्खवि ६.८.५; पेक्खेसहुँ(भवि०बहुव०)८.११.८
√पेक्खंत–दृश् + शतृ ९.१३.८
√पेक्ख–दृश्, पेक्खु (लोट्) १.१३.२
पेक्खणय–प्रेक्षणक ५.१.२५
पेक्खेवड–द्रष्टव्य ८.११.१३
पेच्छ–√दृश् °इ १०.१३.३
पेम्म–प्रेम ८.१३.१५
पेम्मपुंज–प्रेमपुञ्ज २.१५.१६
पेयखंड–प्रेतखण्ड ५.१४.१४
√पेल्ल–प्र + इर्, पेल्लिवि ७.१० १३
पेल्लिअ–क्षिप्त ७.९.५
पेल्लिय–प्रेरित ४.१९.११;४.२१.१३;७.८.६; १०.२०.२
√पेस–प्र + इष्. °इ १०.१७.५; °हि (विधि०) १०.१४.८
पेसणकार–प्रेषणकार ७.७.१०
पेसणयार–प्रेषणकार ४.८.११
पेसिअ °य–प्रेषित १. १३. ९; २.१५.७; ८. ९. ५; १०.२०.९
पोअ °य–पोत १०.११.३;१०.११.९
पोइय–प्रोत, पिरोया हुवा ७.८.२
पोग्गल–पुद्गल १०.५.३
पोग्गलखंध–पुद्गलस्कन्ध ९.१.१३
पोट्टल–(दे) पोटली, पोट ११.६.३
पोत्त–पोत, वस्त्र ४.२०.२
पोमराअ °य–पद्मराग १.९.६;१.१६.११
√पोमाअ–स्तु °इवि ६.१४.७
पोमाइअ–प्रशंसित १०.१८.४
पोमावइ–पद्मावती (वीर कविकी पत्नी) प्रश० १५.
पोस–पोष (क) १०.१७.५
°प्प–आत्म ९.९.५
°प्पयंड–प्रचण्ड ५.१.२१
°प्पयार–प्रकार ४.१५.१
°प्पयाव–प्रताप ४.५.७;५.५.११
°प्पवण्ण–प्रपन्न, उद्यत १०.१.९
°प्पसत्थ–(अ)प्रशस्त १.१८.६
°प्पहार–प्रहार ७.६.१०
°प्पिअ–अर्पित ५.१४.१५

[फ]

फंस–स्पर्श १.६.४
फंसण–स्पर्शन् २.१६.२;३.६.१५
फडक्क–फलक १.५.२०
फडाडोय–फटा + आटोप ५.१४.७
फणकडप्प–फण + कटप्र, फणसमूह १.१.१४
फणस–फनस (वृक्ष) ५.८.९
फणाल–फण + आल-मतुप्, फणवाला ७.२.१४
फणिजक्ख–फणि + यक्ष, नागयक्ष ३.१२.२१
फणिंद–फणि + इन्द्र ११.२.२
फरय–फलक (शस्त्र) ५.७.१७
फरहरिय–फरफरायित ७.५.४
फलभर–फल + भार १.७.८
फलबंध–फलबद्ध, फलयुक्त, फूले हुए ५.९.६
फलिह–स्फटिक १.१७.५
फलिहफलअ–स्फटिक + फलक ५.१.१४
फलिहमअ–स्फटिकमय ४.१७.१५;९.९.१२
फलिहुल्लय–स्फटिक + उल्लय (मतुपार्थे) स्फटिक-मय ४.१०.१७
√फाड–स्फाट्, फाडिवि ९.१०.२०; फाडेवि ९.१५.१४
√फाडिज्ज–स्फाट् (कर्मणि) °इ २.२.१;११.४.४
फाडिय–स्फाटित ७.१.१८
फार–स्फार, बड़ा ४.५.१५;७.२.११
फारक्क–फारक्क:, फारक्क शस्त्रधारक ९.१३.१४
फाल–फाल, फलांग, हि० छलांग ५.१०.१४

√फालिज्जमाण–स्फाट् (कर्मणि) + शानच् ७.६.६
फिक्कार–फेत्कार ध्वनि ५.८.२०
√फिट्ट–स्फेट्, °इं (बहुव०) ५.१४.२४;६.१.७
फुक्कार–फूत्कार ५.८.२३
√फुट्ट–स्फुट्, भ्रंश् °इ ६.१.११;७.६.२१; फुट्टंति (बहुव०) ७.८.१२; फुट्टिवि ३.७.६;७.८.४
√फुट्टंत–स्फुट् + शतृ ७.८.१२
फुड–स्फुट २.१७.९;८.२.१८
फुडिअ–स्फुटित १०.१२.७
फुडिय–स्फुटित ५.६.७
√फुर–स्फुर् °इ ८.२.७;८.८.१३
√फुरंत–स्फुर + शतृ ५.१२.१२;१०.२०.३
फुरण–स्फुरण ५.१३.२१;८.७.७
√फुरहुरंत–स्फुर + शतृ ५.१३.११
फुरिय–स्फुरित ७.५.२
फुरियरुइ–स्फुरितरुचि, शोभायमान ७.५.१३
फुरियाहरण–स्फुरिताभरण ५.२.६
फुलिंग–स्फुलिङ्ग ८.१४.२०
फुल्ल–पुष्प,फूल ४.१५.१३;१०.१९.१५
√फुस–√स्पृश्, फुसंति (बहुव०) ४.१९.२
फेक्कार–फेत्कार १०.२६.२
√फेड–स्फेट् °मि १०.१५.६; फेडिवि ११.६.८
फेडिय–स्फेटित ६.४.६
फेणावलि–फेन + आवलि १.६.८
फेरिय–(दे) घुमाता हुआ ९.१२.३
√फोड–स्फुट्, हि० फोड़ना, फोडिवि ९.४.५
फोडिअ °य–स्फोटित ५.३.१३; ५.७.२१;५.१०.१०; ९.४.५
फोफल–पूगफल, हि० सुपारी १.७.८

[ब]

बइल्ल–(दे) बैल ५.७.१४; ९.४.४
√बइस–उप + विश् °इ ५.१२.२१
बंदि–बन्दी ४.११.७
°बंध–बन्ध, कर्मबन्ध २.९.१०;२.२०.२; ९.१३.१३
बंध–(रति) बन्ध ९.१३.१३
√बंध–बन्ध् °इ ९.१.१३;११.५.३
बंधिऊण १०.९.७
बंधण–बन्धन ५.१२.१५; ६.१२.४
बंधव–बान्धव ३.७.१; ७.३.१४; ९.१५.१२; ११.३.४
बंधसमत्थी–बन्धसमर्था (स्त्री० विशे०) १०.२०.८
बंधुक्क–बंधूक (पुष्प) १०.१८.११
बंधुर–बन्धुर, श्रेष्ठ ६.१.७
बंधूय–बन्धूक (पुष्प) १.१२.३
बंभंड–ब्रह्माण्ड ८.८.७
बंभण–ब्राह्मण २.४.९; २.६.१
बंभचेर–ब्रह्मचर्य ३.९.८; ११.१४.११
बंभोत्तर–ब्रह्मोत्तर (स्वर्ग) ३.१०.१; ८.२.२५
√बज्झ–बन्ध् °इ ११.५.२, °ति ४.१५.६
√बज्झंत–बन्ध् + शतृ ७.१२.४
बत्तीस–द्वित्रिंश, बत्तीस ३.३.१३; १०.२१.११
बद्धउ–बद्ध ७.११.१;१०.४.६;१०.१४.१०
बप्प–(दे) बाप, पिता ११.३.४
बलएव–बलदेव ४.४.४
बलद्द–बलीवर्द, हि० बलद ९.११.२; १०.४.१५
बलविसद्ध–बलविश्रब्ध, अत्यन्त बलवान् १०.७.२
बलहर–बलहरः, (कर्तरि) ४.२०.१२
बलाहिय–(i) बलाहक (ii) बलाधिक,बलवान् १.६.३
बलाय–बलाका, बगुला ४.६.४
बलाबल–बल + अबल ५.१३.१६
बलिअ–बली, बलवान ९.४.२
बलिट्ठ–बलिष्ठ ४.२१.१६
बलुद्धर–बल + उद्धर-उत् + धरः (कर्तरि), बलधारक ६.१२.२
बहल–बहुल ६.१२.३; १०.१९.१४
बहलरंग–बहुलरङ्ग ११.७.४
बहि–बहिस्, बाह्य १०.२२.१२
बहिणि–भगिनी ५.२.१३; १०.६.५
बहिर–बधिर, हि० बहरा २.२०.६
बहिरत्त–बाह्यत्व १०.२२.११
√बहिरंत–बधिर + कृ + शतृ-बधिरी कुर्वन् ७.८.८
बहिरत्थ–बाह्य + अर्थ, बाह्यपदार्थ १०.२०.१२
बहिरिय–बधिरित ५.८.५
बहुअ–बहुक ५.४.४; १०.१९.१०
बहुकाम–बहुकाम, बहुवासनायुक्त ११.४.६
बहुचेड–बहुचेट + °उ-मत् (विशे०) १०.१४.१
बहुजाण–बहु + ज्ञानी १.२.१५

बहुत्त–बहुत्व ५.२.४; ५.१२.४
बहुत्तण–बहुत्व ११.१३.५
बहुमोल्ल–बहुमूल्य °उ-वत् ८.१२.११;१०.११.२
बारस–द्वादश १.१६.४
बारह–द्वादश, बारह २.५.१०; २.१६.६; °विह–°विध ३.६.३; ३.७.१६
बारहम–द्वादशम्, बारहवाँ १.१६.१०
बाल–बाला ४.१७.१४
बालक्क–बाल + अर्क, बालसूर्य १०.१.११
बालकीला–बालक्रीड़ा ३.१.१
बालदिवायर–बालदिवाकर ३.६.७
बालत्तण–बालत्व, बालपन २.१२.११
बालत्तर–बालतर २.२.५
बालंतउर–बाल + अन्तःपुर ३.७.५
बालिया–बालिका ८.१०.८
बालुप्पह–बालुकाप्रभा (नरकभूमि) ११.१०.६
बालुयासायर–बालुकासागर(देश) ९.१९.११
बाहिय–बाधित, बाध्य, प्रेरित ९.३.७
बाहिरअ–बाहिरकः, बाह्य २.७.५
बाहिरउ–बाह्य २.७.५
बाहिरिअ–बाहर १०.१७.१६
बाहुपास–बाहुपाश ९.१४.११
बाहुलय–बाहुलता ९.१२.१५; ९.१८.६
बाहुल्ल–बाहुल्य ११.१३.४
बिण्णि–द्वौ, हि० दोनों २.८.१८; १०.४.१४
बीय–द्वितीय १०.८.१६
बीयउ–द्वितीय + क (स्वार्थे) ४.१०.१०; ६.११.७; ११.४.९
बीया–द्वितीया, हि० दूज ४.९.१; प्रश० १५
√बुज्झ–बुध् °इ ८.९.१६; °मि ९.१६.७; बुज्झु (विधि०) ९.१७.८
√बुज्झंत–बुध् + शतृ ५.१.१८
बुज्झाविअ–बोधित ८.९.१५
बुज्झिअ–बोधित ९.११.४
√बुज्झिउं–बुध् + तुमुन् ८.२.९
√बुड्ड–ब्रुड्, मस्ज्, बुड्डेविणु ४.१९.१९; बुड्डेवि ११.८.५
√बुड्डंत–ब्रुड् + शतृ ११.२.९
बुद्धि–बुद्धि १.६.१०.२.८.६;५.१३.१८
बुह–बुध ३.५.१०
√बूहि–ब्रु + (विधि०) ९.१७.१३
बे–द्वौ २.१७.३;८.७.१०;९.१७.४
बेण्णि–द्वौ ८.८.१९;९.४.६;९.१८.८
बोज्झ–(दे) हि० बोझ ५.७.८;५.७.१५
√बोल्लिज्ज–वद् (कर्मणि) °इ १०.३.९
बोल्ल–वद् °इ ४.११.१३;९.९.१; °ए (आत्मने०) ९.१७.१३; °मि ९.१६.६
√बोल्लंत–वद् + शतृ ८.९.८; ९.११.१६; १०.१०.१४
बोल्लण–बोलना ८.९.५
बोल्लाविअ–आहूत,पुकारा७.९.१२;९.१५.१;१०.१.६
बोहि–बोधि १.२३.७;११.१३.१

[भ]

भअ–भय २.६.११;३.११.१४;८.१६.१०
भंग–भङ्ग, विनाश १०.१.१३;१०.१७.४
भंगी–भङ्गी, शैली ७.१.६
√भंज–√भञ्ज् °इ ११.४.१
भंजणय–भञ्जनकः (कर्तरि) ९.१६.९
भंड–भाण्ड १०.११.५
भंतचित्त–भ्रान्तचित्त ३.१२.१३
भंति–भ्रान्ति ४.१८.१३;९.११.१५
भंसण–भ्रंशनः (कर्तरि), भ्रंशक ३.६.१५
भंसिय–भ्रंशित २.२.९
भक्ख–भक्ष्य ८.१२.१४
√भक्ख–भक्ष् °हि (विधि०) ९.१०.१९
भक्खंत–भक्ष् + शतृ ९.११.३
भक्खण–भक्षण ९.१०.८;१०.१०.६
√भक्खिज्ज–भक्ष् °उ (विधि०) ९.१०.१७
भग्ग–भग्न ४.१९.१४;९.१३.५
भज्ज–भार्या २.११.२;४.११.६
√भज्जंत–भञ्ज् + शतृ ११.१.५६
√भज्जंत–भ्राज् + शतृ ७.६.७;७.१२.१३
भट्ट–भट्ट,वेदवित् विप्र (अथवा भ्रष्ट) ५.७.२१;५.११.७
भड–भट ६.२.५;६.२.९
भडयड–भटसमूह ६.४.७
भडभीस–भटभीष(ण) ६.३.६
भडयण–भटजन ७.४.४
भडरक्खिय–भटरक्षित १.९.१

भडवूक–भटशार्दूल ६.१४.६
भडारा–भट्टारक, स्वामी ३.१०.१०;९.१०.१९
भडारिआ–भट्टारिका, स्वामिनी १०.१०.६
√भण–भण् °इ ४.२.२;१०.१२.९. °मि ५.१२.२४; °उ (विधि०) १०.३.४; °हि ३.७.१०; भणिवि ५.४.१०; भणेवि ८.१०.९; भणेवि ९.१०.१२ भणु (विधि०) १०.१.१६;१०.८.१२
√भणंत–भण् + शतृ ३.६.९
भणिअ–भणित २.१२.२;५.१२.६;१०.१०.१२
√भाणिज्ज–भण् (कर्मणि) °इ ११.१४.९
भणिय–भणित ४.१७.७;५.१.१;१०.२५.६; °य १.५.१२
√भण्ण–भण् °इ ३.१४.२;८.१०.१४;१०.२३.६
भत्त–भक्त ४.५.१२;८.५.१२
भत्तार–भर्त्तार, पति ६.३.३;९.३.२
भत्तारधम्म–भर्त्तारधर्म, पतिधर्म २.१९.३
भत्ति–भक्ति १.१४.४
भद्द–भद्र १.१७.३
भद्दंग–भद्ररङ्ग (देश) ९.१९.४
√भम–भ्रम् °इ ६.६.२;९.२.१०;१०.४.१५;भामि-भ्रम् + क्त्वा ९.९.१; भमेवि १०.१७.१९; भमेसइ (भवि०) ४.३.१५
√भमंत–भ्रम + शतृ ९.१.१७; °ी (स्त्रियाम्) ८.११.८
भमण–भ्रमण १०.२०.१०;११.३.२
भमर–भ्रमर १.१२.५;८.५.६
भमरउल–भ्रमरकुल ४.१६.७
भमरपंति–भ्रमरपङ्क्ति ४.१७.६
भमरी–भ्रमरवती (स्त्री० विशे०) ५.१०.८
भमरोली–भ्रमर + आवलि ५.९.८
√भमाड–भ्रामय् °डेइ ७.४.१४
भमाडिअ–भ्रमित ६.१४.११
भमिअ–भ्रमित ८.१५.५; ९.१८.९
भमिय–भ्रमित ४.१४.१६; ४.१६.७
√भमिर–भ्रम् + इर (ताच्छील्ये) १.१.७; ५.८.५
भम्मड–भ्रमकः (घुमक्कड़) १०.७.१
भम्मुट्ठि–ब्रह्ममुष्टि (एक धूर्त्त वट) १०.८.२
भयंदर–भगन्दर (व्याधि) ३.११.३

भयवंत–भगवन्त ४.५.८
भयवत्त–भवदत्त २.५.७; २.६.३; ८.४.३
भयावण–भयावना ५.१३.११; ७.१.२२
भर–भार ४.११.१०; ७.३.१३
√भर–भृ, °इ ५.९.१०
√भरंत–भृ + शतृ ९.९.११
भरनिव्वाह–भारनिर्वाह ७.६.१९
भरह–भरत १.५.८; ३.१.११
भरहखेत्त–भारत + क्षेत्र ४.३.१५; ११.११.९
भरहाइय–भरत (चक्रवर्त्ती) + आदिक ४.४.३
भरहालंकार–भरत (मुनि) + अलंकार ३.१.३
भरिय–भरित ३.१.१६
भरिय–भृता (स्त्री० विशे०) १०.१६.१०
भरियअ–भरित + क (स्वार्थे) ७.५.२; ९.८.१३
भरुयच्छ–भरुकच्छ, भड़ौंच (बन्दरगाह) ९.१९.४
भल्ल–भाला (शस्त्र) ७.६.९
भल्ल–भद्र, भला ८.१२.११
भल्लउ–भद्र + क (स्वार्थे) ८.१६.८; ११.९.८
भल्लायई–भल्लातकी (वृक्ष) ५.८.८
भल्लि–बर्छी ४.११.४; ८.१५.३
भल्लुक्कि–(दे) शिवा, शृगाली ५.८.२०; ७.१.१७
भवएउ–भवदेव २.८.७; ३.५.७; ८.४.१४; °एव २.९.१५
भवएवामर–भवदेव अमर ३.३.१८
भवकद्दम–भवकर्दम २.७.९
भव–भव, संसार ९.११.१६; ११.१३.११; °गइ-गति (जन्म) ३.५.१२; °छेय-°छेद ८.२.१९; °जल ४.३.१२; °णिसि-°निशि ३.१३.८; °तरण भवतरण:(कर्तरि)भवतारक१९.२३.१;°तारअ °तारक ४.४.१३; °घर-°गृह १०.१८.१२; °वइतरिणी°-वैतरणी २.११.१३; °संधारण-°संधारण-भवधारण ११.५.९; °समुद्द-°समुद्र ४.६.१३; °सायर-°सागर ११.२.९
भवयत्त–भवदत्त ३.३.३; ८.२.२१
भव्व–भव्य ८.२.१९; १०.१८.२
भव्वबंधु–भव्यबन्धु १.५.७
भव्वयण–भव्यजन १.१.६; १०.२४.८
भसल–भ्रमर ३.३.५; ९.९.३
√भा–भा, °इ ४.१९.१५; भाति १०.३.५

भुयंग–भुजङ्ग (i) सर्प (ii) भुज + अङ्ग, देहलता (iii) प्रेमी, पति (iv) कामीपुरुष १.१०.६; ९.१२.७
भुयंगम–भुजङ्गम, सर्प, ९.१०.९;१०.१२.२
भुयंगिणि-भुजङ्गिनी, नागिन ४.१९.१७
भुयजुवक–भुजयुगल ९.७.७
भुयतुल–भुजतुला (i) भुजारूपी तुला (ii) भुजाओं-में धारण की हुई तुला ८.३.१०
भुयदंड–भुजदण्ड १.११.२; °बल ६.१४.९; °वेय–°वेग १ म० ७
भुवडालिया–भ्रू + डालिका (दे); भ्रूलतिका ५.९.१०
भुवण–भुवन १.६.४;३.१०.१५
भुवणुल्ल–भुवन + उल्ल (स्वार्थे) १.१०.१२
√भू–भू, भविस्सए (भवि० तृ० पु० एकव०) २.३.४
भूअ–भूय: १०.१७.१५
भूइ–भूति, भस्म १.१.६;५.५.११
भूगोयर–भूगोचर ५.१३.२८
भूजुयलउ–भ्रूयुगल ५.१३.५
भूभंग–भ्रूभङ्ग, कटाक्ष १.१०.१०;९.१३.१०
भूभंगवत्त–भ्रू + भङ्ग + वत् (युक्त) ४.२२.११
भूमिकम–भूमिक्रम, देखें: सं० टिप्पण; १.१५.५
भूमिभाय–भूमिभाग ४.२१.७;५.१.२३
भूय–भूत, प्राणी १०.३.२
भूय–भूत, पञ्चभूत १०.४.१
भूयावलि–भूत + आवलि १०.२५.४; ११.१५.४
भूवंकुडत्त–भ्रू + वक्रत्व ४.१७.२१
भूवल्लि–भ्रूवल्लि, भ्रूलता १.११.१५
भूवाल–भूपाल ५.१.१६
भूसण–भूषण १०.१९.७
भूसिअ–भूषित ३.१३.१;४.९.८
भूसिअंग–भूषित + अङ्ग ३.६.१
भेअ–भेद ११.९.३
भेडसंघाय–(दे) भेड-कायर + संघात ७.६.१३
भेय–भेद (नीति) ५.३.४
भेय–भेद, फूट, विग्रह ६.१.१४
भेयअ–भेदक ८.१५.३
भेसिय–भेषित ५.११.१३
भोअ–भोग (i) भोगेच्छा (ii) केंचुली ३.९.१७
भोइअ–भोगिक:, भोगयुक्त, साधनसम्पन्न ५.९.२
भोग–(तत्सम) (i) फणाटोप (ii) वस्त्राभरणादि भोगोपभोगसामग्री १.१०.६
भोज्ज–भोज्य १०.२.१;१०.२०.१०
भोज्जसत्ति–भोज्यशक्ति १०.२.१
भोय–भोग २.९.११;४.९.१२
भोयण–भोजन २.१२.२;८.१३.८
भोयणसत्ति-भोजनशक्ति १०.२.१
भोयभूमि–भोगभूमि ११.११.५
भोयायर–भोग + आदर ५.२.१६

[म]

म–मा (निषेधार्थे) ३.७.१०; ३.१३.५
मअ–मद ६.५.१०
मइ–मति, मतिज्ञान ३.५.१; १०.५.१२
मइंद–मृगेन्द्र ६.७.८; ७.८.६
मइंध–मत्यन्ध ११.८.५
मइजरढ–मतिजरठ, अतिशय प्राज्ञ ९.१०.७
मइणाण–मतिज्ञान १०.१८.७
मइमोहण–मतिमोहनः (कर्तरि) ५.१३.७
मइर–मदिरा ४.१७.१५
√मइलंत–(दे) मलिन + क्विप् + शतृ ६.४.१०
मइलण–(दे) मलिनीकरण ६.५.११
मइलिय–(दे) मलिनित ११.७.९
मइल्लक–(दे) मलिनीक्रियमाण: (विशे०) ५.७.६
मइवर–मतिवर, श्रेष्ठ, मतिमान् ५.१२.२२
मई–मति ८.९.१५; ९.१६.५
मउ–मय, युक्त १.१६.११
मउ–मृत ३.९.१६
मउ–मद ३.१२.५
मउड–मुकुट, हिं० मोड़ २.२०.११; ८.१२.४; १०.२०.३
मउपिंड–मृत्पिण्ड १०.४.४
√मउरिज्ज-√मुकुर् (कर्मणि) °इ ३.१२.५
मउरिय–मुकुरित ४.१५.१३
√मउलंत–मुकुलय् + शतृ ९.१३.१७
मउलाविय–मुकुलायित ७.२.५
मउलि–मौलि, मुकुट ५.१.१६; ८.११.१५
मउलिय–मुकुलित ८.१६.९
मऊर–मयूर ४.७.६; ५.१०.१४; ७.९.९
मं–मा (निषेधार्थे) ६.१२.३

मंकुण–मत्कुण १०.२६.४
मंगकराइअ–मङ्गलराजि ४.५.१७
मंगलवंत–मङ्गलवन्त ९.४.९
मंच–मञ्च ८.१६.३
मंचअ–मञ्चक, मञ्च ८.१२.१२
मंजरि–मञ्जरी १.८.२
मंजिट्ठ–मञ्जिष्ठ, हि० मंजीठ ११.७.४
मंड–मण्ड, हठात्, बलपूर्वक १.११.२; ५.५.४
मंड–मण्ड, बल ७.१०.९
मंडण–मण्डन, वस्त्र ४.१९.२
मंडण–मण्डन, बनाव-शृङ्गार ९.१२.१७
मंडलंतर–मण्डल + अन्तर, प्रदेशान्तर ९.१७.९
मंडलग्ग–मण्डलाग्र, असि ७.२.९
मंडलवइ–मण्डलपति, राजा २.५.३; ४.२०.६
मंडलि–मण्डली ५.८.२८
मंडलिय–माण्डलीक ५.१.९; ५.७.१०
मंडली–मण्डली १.११.९
मंडव–मण्डप २.९.४; २.१०.३
मंडवथाण–मण्डपस्थान ३.२.९
मंडिअ °य–मण्डित ३.१.२१; ४.२.८; ४.१३.२; ११.११.१
√मंडिज्ज–मण्डय् (कर्मणि) °इ ११.१४.२
√मंडिर–मण्ड् + इर (ताच्छील्ये) ६.१०.२
मंत–मन्त्र, मन्तव्य ९.४.३;९.९.४
√मंतउ–मा + शतृ, हि० समाना २.१०.२०; मंतु ८.८.७
मंतत्थ–मन्त्र + अर्थ ४.९.५
मंति–मन्त्री १.१२.८;५.१३.१२
√मंतिज्ज–मन्त्रय् (कर्मणि) °इ ९.८.८
मंतितणुब्भव–मन्त्रितनूद्भव, मन्त्रिपुत्र ३.७.८
मंतिसुअ–मन्त्रिसुत ३.९.१०
√मंथ–मथ् °इ ८.१५.११
मंथाण–मन्थान, हि० मथानी, हाँड़ी ८.१५.११
मंदमई–मन्दमति १.२.१
मंदमार–मन्दमार वृक्ष ४.२१.३
मंदर–मन्दर पर्वत १.१.१
मंदल–मर्दल वाद्य १०.१४.१२;१०.१९.३
मंदार–मन्दार वृक्ष ४.१६.२
मंदी–मन्द-मन्द (क्रिये०) ९.१०.६
मंदुज्जोअ–मन्द + उद्योत ११.७.५
मंदुर–मन्दुरा ५.१०.२२
मंसदक–मांसखण्ड १०.१०.७
मगह–मगध २.३.१०;५.८.३८
मगहदेस–मगधदेश १.६.२;३.१४.६
मगहा–मगध २.४.७
मगहाहिअ–मगधाधिप, मगधेश ३.१४.३;४.२२.२५
मगहेस–मगधेश ७.१३.६
मगहेसर–मगधेश्वर १.१४.१
मग्ग–मार्ग ४.२१.२;१०.१७.१;१०.१९.११
√मग्ग–मार्गय् °इ ४.९.७;६.१२.८
√मग्गंत–मग् + शतृ ५.३.४
मग्गण–मार्गण, बाण ७.८.१४
मग्गरोह–मार्ग + रोध (अवरोध) ५.७.२४
मचकुंद–मुचकुन्द वृक्ष ४.१६.२
मच्छ–मत्स्य ४.२१.४;१०.१०.८
मच्छिय–मक्षिका ७.१.१२
मच्छी–मत्स्यवती (स्त्री० विशे०) ५.१०.८
मज्ज–मद्य ४.२.७;४.१७.१३
√मज्ज–मस्ज्, °इ ६.५.३
√मज्जंत–मस्ज् + शतृ १०.१८.१८
मज्जणवड–मज्जनघट ४.१३.१२
मज्जपट्ट–मद्यपात्र ५.७.२१
√मज्जमाण–मस्ज् + शानच् ५.१०.६
मज्जाय–मर्यादा ५.३.७
मज्झ–मध्य, कटि २.५.५;९.१७.७
मज्झंकिय–मध्यङ्कृत ११.११.२
मज्झट्ठिय–मध्यस्थित १.१७.५
मज्झण्ण–मध्याह्न ५.७.२;८.१२.१४
मज्झत्थ–मध्यस्थ १.२.६
मज्झिम–मध्यम ११.११.१
मडप्फर–(दे) मान, गर्व ७.११.७
मडिय–(दे) आवृत, मढ़ा हुआ ११.६.२
मण–मन २.१५.१४;४.२१.१९;१०.११.३
मणअहिराम–मनः + अभिराम २.९.७
मणकसाय–मनः + कषाय २.७.१०
मणत्थोहथेण–मनः + अर्थ + ओघ + स्तेन; मन (या मनोरथ) समूह रूपी धनको चुरानेवाला ४.५.६

मणपज्जय–मनःपर्यय (ज्ञान) ३.५.१
मणमंकुण–मनमत्कुण ८.८.१२
मणरंजण–मनरञ्जनः, मनोरंजन करनेवाला ४.४.११
मणरोहण–मनरोधन, मनोनिरोध ११.१४.७
मणवल्लह–मनोवल्लभ २.१५.११
मणसुद्धि–मनशुद्धि ५.९.१५
मणहर–मनोहर ५.२.२१
मणहारिणी–मनोहारिणी २.१५.४
मणाअ–मनाक् २.१५.१७
मणिकडय–मणिकटक ९.६.२
मणिखइअ–मणिखचित १.१५.६
मणिचंदकंति– चन्द्रकान्तमणि ३.३.८
मणिजुत्त–मणियुक्त १०.१९.७
मणिट्ठ–मनः + इष्ट, मनोज्ञ ५.१०.४
मणिमउडधर–मणिमुकुटधर ३.३.१३
मणिमुंच–मणिमुक्, मणि छुड़ानेवाला ५.५.९
मणिरयण–मणिरत्न ९.८.७
मणिवण्ण–मणिवर्ण (रंग) ७.१२.३
मणिसार–मणिजटित ३.१.१०
मणिसिह–मणिशिख, मणिशेखर, रत्नचूल (विद्याधर) ६.१०.८; ७.३.४
मणिट्ठा–मनिष्टा (स्त्री० विशे०) प्रश० १५
मणुअ–मनुज ३.१०.७
मणुब्भव–मनोद्भव ८.६.३
मणुय–मनुज २.११.७; १०.१०.१६
मणुयत्त–मनुजत्व १०.४.१५; १०.१७.१९
मणुयत्तण–मनुजत्व + ण (स्वार्थे) २.२.४
मणुस–मनुष्य ५.१३.१७
मणुसइअ–मनुष्यगति ५.४.५; ७.७.९
मणुसोत्तरगिरि–मानुषोत्तरगिरि(पौरा०) ११.११.११
मणोरम–मनोरम ३.२.३
मणोरह–मनोरथ १.११.२०; ७.३.१२
मणोहरगारअ–मनोहरकारक ९.१५.१२
मणोहारिय–मनोहारी ५.६.१४
√मण्ण–मनु, °इ ३.९.९; ९.३.१; १०.४.१२; °मि ४.२.११; १०.६.८; मण्णंति (बहुव०) ३.१.७; ९.१२.३; मण्णेविणु ८.१४.१३; °हि (विधि०) ३.५.१२
√मण्णंत–मनु + शतृ २.१४.३; ५.१२.२२
मण्णिय–मानित, स्वीकृत ९.११.१२
√मण्णिज्ज–मनु (कर्मणि) °इ १.५.११
मत्त–मात्र, केवल २.१५.१९
मत्त–मत्त, मतवाला ४.१६.७; ५.१०.२०
मत्थअ–मस्तक २.४.२
मत्थिअ–मथित ७.१.१०
मद्दल–मर्दल ५.६.८; ४.८.३
मद्दव–मार्दव; मार्दवयुक्तचित्त ११.१४.३
ममत्ति–मम + इति, ममत्व ११.५.१०
मम्मण–(दे) कन्दर्पालाप, कामवार्ता; कामुक फुस-फुसाहट ८.११.१४
मम्मण–अव्यक्तवचन ९.१९.४
मय–(i) मद, हस्तिमद (ii) मद-सुरा १.१०.११; १.१५.२; ५.१०.६
मयंक–मृगाङ्क, चन्द्रमा ४.५.१५
मयंक–मृगाङ्क राजा ५.२.१३; ६.१.१२
मयंग–मातङ्ग, हस्ति ५.१०.२१; ६.७.१०
मयंद–मृगेन्द्र ६.१०.६
मयगल–मदगल, हस्ति ५.१०.६
मयच्छि–मृगाक्षी(स्त्री०विशे०) १०.८.११; १०.१०.६
मयजल–मद जल ४.२०.९; ७.५.३
मयजोडिय–मदयोजित, गर्विष्ठ ९.३.८
मयण–मदन, कामदेव ४.१८.३; ४.१८.१४
मयणबाहु–मदनबाहु ४.१३.१
मयणमय–मदनमद ८.११.१२
मयणबाण–मदन बाण ९.२.५
मयणावास–मदनावास ४.१९.१६
मयनाहि–मृगनाभेय, कस्तूरी ४.१७.१६
मयमुक्क–मदमुक्त ४.२२.१९
मयरंद–मकरन्द ५.९.७; १०.१.१०
मयरचिंध–मकरचिह्न, मकरध्वज कामदेव ४.१३.८; १०.२०.४
मयरद्धय–मकरध्वज ४.७.६; ९.१.५
मयरमच्छ–मकरमत्स्य, मगरमच्छ ४.६.५
मयरहर–मकरगृह, समुद्र ८.३.८; १०.१८.७
मयरायर–मकराकर, समुद्र ९.५.७
मयलंछण–मृगलाञ्छन, चन्द्रमा ४.७.१०; ८.१५.४
मयसंग–मदसङ्ग, मदसहित १.१०.१०
मयाइ–मद आदि कषाय ११.१४.३
मयामिस–मृगामिष ५.८.२६

मयालोयणी–मृगलोचनी ४.५.६

√मर–मृ, °इ ९.६.५;१०.१४.१६; °मि ९.६.६; °उ (विधि०) ७.७.७; मरिवि २.२०.९; मरेवि ३.१३.१५; मरेवि ३.५.८; ११.१५.७; मरेप्पिणु ८.२.२२

√मरंत–मृ + शतृ १०.१४.१४

मरगइवण्ण–मरकतवर्ण १.११.३

मरगय–मरकत (मणि) ५.९.८;८.१५.२

मरगयभित्ति–मरकतभित्ति ३.३.९

मरट्ट–दर्पयुक्त ७.५.१५

मरहट्टि–महाराष्ट्री स्त्री, हि० मराठिन ४.१५.१५

√मरिज्ज–मृ (कर्मणि) °इ १०.१४.११

मरु–मरुत्, मारुत् ४.६.३;९.१२.३

मरुभोयण–मरुत् + भोजन, वायुभोजी सर्प ३.९.१७

मलण–मर्दनः (कर्तरि) ४.१५.१०

मलयाचल–पर्वत ५.२.१२;९.११.१

मल्लिक–वृक्ष ४.२१.२;५.८.८

मव–√मापय् °इ ४.१९.१८

मसाण–स्मशान ११.६.४

मसिण–मसृण २.१४.१०;८.१६८.

मसिकाल–मसिकाल (विशे०) १०.२६.४

मसी–मसि ४.७.४

मह–मम २.१६.८; २.१९.७; ४.३.८

√मह–मह्, काङ्क्ष् °इ ९.२.७; ९.१४.१२

महं–महत्, महान् ९.१९.७

महएवि–महादेवी १०.१६.१०; १०.१७.२

महकइ–महाकवि १.३.४; १.३.९

महण–मन्थन ८.१४.१०

महणइ–महानदी ४.९.२

महण्णव–महार्णव ८.१४.१५; ९.५.१३

महंत–महन्त, महात्मा ३.७.१; ५.१३.२३

महपुरिस–महापुरुष ४.४.५

√महमहंत–मह् + मह् + शतृ ४.६.३

महाराय–महाराजा ४.२०.७; ५.१३.३

महरिट्ठ–महाराष्ट्र ९.१९.४

महरिसि–महर्षि ४.६.८; ५.२.२२

महल्ल–महत् + ल (स्वार्थे) १.८.२; ११.४.२

महाउड्डिय–महाउत्कलिक, उड़ीसा निवासी ९.१९.१९

महाउहि–महायुधिः, महायोद्धा ६.१४.१०

महाकरि–महाकरि-महागज ९.५.५

महाकव्व–महाकाव्य १.१८.२२; ३.१४.२५

महागअ °य–महागज ६.५.३; ७.१०.११

महागइ–महागति, परमगति १.१.५

महाचुण्ण–महाचूर्ण, (हि०) मुर्दाशंख चूर्ण १०.९.२

महाडइ–महा अटवी ५.८.५

महाणयर–महानगर ८.१३.१२

महाणस–महानस ३.३.७

महाणुभाअ–महानुभाव ७.३.७

महातउ–महातप १०.२२.८; १०.२३.५

महातम–महातम (प्रभा, नरकभूमि) ११.१०.९

महादिहि–महाधृति ९.१६.१०

महादुम–महाद्रुम २.१२.८

महाधय–महाध्वज ५.११.११

महापउम–महापद्म (राजा) ३.५.१०;८.२.२३

महापह–महापथ ८.५.१३

महाफडाल–महाफण + आल (मतुप्) महाफणयुक्त ७.२.१४

महाभर–महाभार २.९.१९; ५.१३.२२

महाभव्व–महाभव्य १०.१८.४

महामरु–महामरुत् ३.१४.७

महामांस–(तत्सम) नरमांस १०.२६.२

महारअ–हमारा ११.१४.१०

महारइ–महारति, महाप्रीति ८.११.१७

महारडि–महारुदन २.१३.९

महारह–महारथ १.११.८

महारा–हमारा ९.१०.१९

महारायाहिराय–महाराजाधिराज ५.१.१४

महारिसि–महा + ऋषि, महर्षि ३.१३.८; ७.१३.१५

महावइ–महा आपत्ति ५.१३.८

महावण्ण–महावर्ण, रक्तवर्ण १०.९.२

महावय–महाव्रत ३.९.१५; ८.२.२२

महासंत–(तत्सम) महासन्त, महाजन ८.२.८

महासिहर–महाशिखर १.१३.१०

महाहउ–महा + आहव, महायुद्ध ५.७.२७

महि–मही, पृथ्वी ७.२.६; १०.२५.११

महिअ–महित, पूजित २.६.४

महिणाह–महीनाथ १.१६.२

महिपत्तउ–महीप्राप्त ४.२.१७

महियल–महीतल १.६.२;७.५.५

महिल–महिला ५.७.२; ९.१.१६
महिलायण-महिलाजन २.१२.६
महिवइ–महीपति, भूपति १०.१३.४;११.४.७
महिवट्ट–महीपृष्ठ, धरणिपृष्ठ ४.२२.२२; ५.१२.२; °वीढ °पीठ २.१०.१;८.३.१६
महिस–महिष ५.८.१७
महिसि–महिषी, महारानी १०.१५.३
महिसी–महिषी (i) महारानी (ii) भैंस २.५.३; ५.९.४
महिहर–महीधर ८.७.१४;११.४.५
महीयल–महीतल ३.१४.१०
महीस–महि + ईश, नृपति ५.८.३२;७.१३.१७
महीहर–महीधर ९.५.५;९.१२.१०
महु–मधु १.१०.११
महु–मधु (महुआ) वृक्ष १०.७.२
महुअर–मधुकर ८.१२.४
महुकीला–मधुक्रीड़ा, वसन्तक्रीडा ८.२.१
महुवड–मधुघट, मदिराकुम्भ ४.१७.१२
महुमत्त–मधुमत्त ८.१४.५
महुर–मधुर ४.१५.३;४.१७.११;८.११.१४
महुरक्खर–मधुर + अक्षर ५.१.२७
महुरत्त–मधुरत्व, माधुर्य १०.१.३
महुरयर–मधुरकरः (कर्तरि) ८.१३.१४
महुसंच–(i) मधुसंचय, मधुछत्र ९.१२.१८
महुरसद्द–मधुरशब्द ३.१२.१७
महुसत्ति–मधुरशक्ति १३.३.३
महुसूयण–मधुसूदन (श्रेष्ठि) १.५.२
महेसर–महेश्वर १.१०.७
मा–मा (निषेधार्थे) १०.२.६
माअ–माता ९.१५.१०
माइ–मातृ, माँ ९.१५.२;९.१६.५
माइहर–मातृगृह ८.१०.९
माण–मान, सम्मान २.२०.१२;३.१२.५
√माण–मन् °ए (आत्मने०) ३.४.१०; °हिं० (बहुव०) १०.५.४; °हुं (उ० पु० बहुव०) ८.१०.१७
माणदंड–मानदण्ड ५.८.३
माणव–मानव ११.२.२
माणस–मानस ३.१.७
माणिक्क–माणिक्य ४.८.१२;१०.११.४
माणिक्कजडिय–माणिक्यजटित ५.१.२०
माणिणि–मानिनी ३.१२.५;८.११.१४
माणिय–मानित, स्वीकृत २.९.११
माणुण्णअ–मान + उन्नत ७.१३.२
माणुस–मनुष्य ९.१५.१;१०.१७.५
माणुसगोत्त–मनुष्यगोत्र ४.२.१
माणुसत्त–मनुष्यत्व १०.१३.६
माम–मामा, मातुल ९.१८.९;१०.१२.९
माय–मातृ ९.१५.६;१०.१९.९
मायंग–मातङ्ग ५.११.१२;७.६.३
मायरि–मातृ, माता ४.१.३;११.३.५
मायरी–मातृ ९.१७.१
माया–माता ८.६.२
मायामाम–मायामामा, छद्मवेशी मातुल १०.१.५
मार–वृक्ष ५.८.१२
मार–कामदेव १०.१.७
√मार–मारय् °इ ८.८.९; मारिऊण ५.७.२५; ६.१२.८
मारण–मारना २.२.३
माराविअ °य–मारायित, मरवा डाला ७.७.२; १०.१०.१३
मारि–मार-काट ५.३.३
मारिअ °य–मारित ६.७.१३; ९.११.१३;१०.१२.२
√मारिज्ज–मृ (कर्मणि) °इ ९.४.१
मारिणि–मारिणी (स्त्री० विशे०) २.१५.४
मारुय–मरुत् ११.८.१०
मारुय–मरुत् (i)हनुमानके पिता, (ii) पवन ३.१२.२
मारुयवेय–मारुत् + वेग ५.२.४
माल–माला २.४.२
माल–माला, लक्ष्मी १०.१.१२
मालइ–मालती लता ३.१२.१०; ४.१३.११
मालइलय–मालतीलता (मृगाङ्ककी रानी) ५.२.१३
मालंतकणय–माला + कनक, स्वर्णमाला ४.१२.३
मालव–मालवा (देश) १.५.१;९.१९.८
मालविणि–मालविनी, मालवदेशवासिनी ४.१५.१२
मास–मांस ७.१.१०;१०.१२.५
माह–माघ (महीना) प्रश० ४ १०.२३.१०
माहव–माधव, वसन्त ४.१६.८

माहव–माधव (धूर्तनाम) ९.१०.२३
माहुलिंग–मातुलिङ्ग वृक्ष ४.२१.३
माहेसर–माहेश्वर ४.१८.९
मि–अपि ३.४.५;७.११.११;८.९.१०;९.२.८;९.६.८
मिग–मृग ३.३.१०;५.९.९
मिगकडगपाअ–पैंतरा, देखें : सं० टिप्पण, ५.१४.२२
मिगणयण–मृगनयना ९.५.१३
मिच्चु–मृत्यु ५.५.१२
मिच्छत्त–मिथ्यात्व २.६.८; २.८.८; °भर °भार २.१६.४; °मोह ३.७.१३
मिच्छा–मिथ्या ९.१.१४;१०.३.१०; °दंसण °दर्शन १०.४.११; ११.७.८
मिट्ठ–हि० मेंठ, महावत ७.६.२
मिट्टंत–मिष्टत्व ९.१२.१६
मित्त–मित्र ६.१२.४
मियंक–मृगाङ्क (राजा) ७.३.२;११.२.३; °पहु-°प्रभु ५.१२.९
मिरियविल्लि–हि० मिर्चकी बेल १.७.६
√मिल–मिल्, इँ° (बहुव०) १०.२५.११; मिलिवि ९.११.१४
√मिलंत–मिल् + शतृ १.१२.५;४.१५.१४;७.६.३
मिलण–मिलन, मिलना ७.५.११
मिलिअ °य–मिलित ५.१०.१२;८.८.१४;१०.४.११ १०.८.३
√मिल्ल–मुच् मिल्लिवि ४.२१.१९; ७.७.१; १०.१०.८
मिल्लिय–मुक्त ८.६.३
मिस–मिष्, बहाना ४.१७.९;८.१६.६
मिहुण–मिथुन °उल्ल (स्वार्थे) ४.२०.१;८.१४.१६
मीण–मीन ९.५.८;१०.१०.९
मुअ–मृत ५.१३.६;१०.१२.८
√मुअ–मुच्, मुअवि २.१८.११; मुइवि १०.३.७; मुएवि ८.११.३
√मुअंत–मुच् + शतृ २.५.१६
मुइय–मृत १०.१४.७
मुउ–मृत ३.१३.१२;९.११.२
मुंड–मुण्ड ६.२.५;६.१०.२
मुंडिय–मुण्डित उ° (स्वार्थे) २.१८.१०
मुक्क–मुक्त १.१७.२;५.७.१४;१०.१४.२
मुक्कअ–मुक्त ९.८.१७;१०.२०.६
मुक्कट्टहास–मुक्त + अट्टहास ७.६.७
मुक्कणाय–(i) मुक्तनाद (ii) मुक्तफेत्कार ५.८.३५
मुक्कविरोह–मुक्तविरोध १.१६.१०
मुक्कसद्द–मुक्तशब्द, निःशब्द १०.९.१
मुक्ख–मुक्त १०.१५.१
मुक्ख–मूर्ख ४.१७.४
मुक्खत्तण–मूर्खत्व ९.५.२
√मुच्चमाण–मुच् + शानच् ९.१४.७
मुच्छ–मूर्च्छा ३.७.४
√मुच्छ–मूर्च्छ् °इर (ताच्छील्ये) ६.९.८;९.१३.१६
मुच्छावसंग–मूर्च्छावश + अङ्ग ६.११.८
√मुच्छिज्ज–मूर्च्छ् (कर्मणि) °इ ९.१०.४
मुज्झिअ–मूर्च्छित, मोहित ९.११.४
मुट्ठउ–मुषित ५.७.२०
मुट्ठ–मुषित ९.१०.२३
मुट्ठिगाह–(i) मुष्टिग्राह्य (ii) मूठ ४.१३.४
√मुड–मुक्त, मुडिवि ७.३.१३
√मुण–ज्ञ, °इ ५.१३.१६; मुणेइ ६.१०.९; °उ ४.१२.११; (वर्त० द्वि० पु० एकव०) ९.५.३; °हु (विधि०) ११.३.७; मुणि (विधि०) ३.९.१२; ११.९.६; मुणिवि ८.६.११; १०.१७.१२; मुणेवि ३.९.१ मुणेवि ९.१७.५
√मुणंत–ज्ञ + शतृ ९.६.१०
√मुच–मुच्, मुचइ १०.२०.८; १०.२३.४; मुच्चए ३.४.५; मोत्तूण ८.२.१०
√मुच्चंत–मुच् + शतृ ४.१९.४
मुणाल–मृणाल ४.१४.१७
मुणि–मुनि २.१५.९; °दंसण-°दर्शन ३.६.५; °पुंगव २.१२.३;१०.२४.२; °मग्ग–°मार्ग १०.२२.१; °वयण–°वचन २.१२.१
मुणिंद–मुनीन्द्र २.११.४;२.१९.८
मुणिय–ज्ञात ६.११.७;९.१४.२
मुणी–मुनि २.६.६;२.६.७
मुत्त–मूर्त १०.४.२
मुत्तदुवार–मूत्रद्वार ९.१.११
मुत्तनिहाण–मूत्रनिधान ११.६.३
मुत्ताहल–मुक्ताफल ४.१०.५;७.४.२
मुत्ति–मुक्ति, त्याग १.१.७
मुत्तिअमय–मुक्तमद ५.१.१९

मुत्तियसय–मौक्तिकशत ५.१.१७
मुद्द–मुद्रा, चिह्न ३.११.१०;८.१४.११
मुद्दिअ–मुद्रित १०.२०.७
मुद्ध–मुग्ध, भोला ४.१७.८;८.१५.१०;९.१७.२
मुद्धडिअ–मुग्धा (स्त्री० विशे०) २.१५.४
मुद्धमुहि–मुग्धमुखी ९.५.३
मुद्धि–मुग्धा (स्त्री० विशे०) ४.१७.८
मुद्धिय–मुग्धा १.१०.५
√मुय–मुच्, °इ २.१८.६; ९.७.९; १०.१४.६; मुयवि ७.२.१०;१०.१०.११
√मुयंत–मुच् + शतृ ९.१०.१२
मुयअ–मृतक, मृत ७.४.१७;६.११.६
मुयसेस–मृतशेष, मृतप्राय ७.२.२
मुरअ–मुरज वाद्य १०.१४.९
मुरय–मुरज १.१४.६;११.१२.१
मुसिय–मुषित १०.७.७
मुसुंढि–मुसुंढि शस्त्र ७.६.२
मुह–मुख १.१०.५; ४.१६.११; ४.१७.१६; °कंति–°कान्ति ५.१.१५; °कुहर ५.५.२; °नालि ६.७.५; °बिंब–°बिम्ब १०.३.५; °मरु–°श्वास १.१३.५; °वड–°पट ६.४.६; °सास–°श्वास ८.५.६
मुहतंब–मुख + ताम्र, ताम्रमुख ९.१०,१२
मुहाणल–मुखानल ७.१.१७
मुहाभास–मुखाभास + क (स्वार्थे) १.१८.११
मुहिय–मोहित १.३.७
°मुहिय–मुखी (स्त्री० विशे०) ४.१२.४
मुहुत्त–मुहूर्त्त ७.१३.१२;८.१२.३
मुहुल्ल–मुख + उल्ल (स्वार्थे) २.१४.७
मूढमण–मूढमन १०.१७.२०
√मूस–मुष्, मूसिवि ३.१४.२२
मूसिअ °य–मुषित ३.१४.५; ९.१५.४
मेच्छ–म्लेच्छ ११.४.६
मेच्छदेस–म्लेच्छदेश ९.१९.११
मेट्ठ–महावत ५.१०.२१
मेत्त–मात्र, केवल २.१.५;९.८.३
मेय–मेद ८.१५.३
मेरु–सुमेरु पर्वत १.१.३;११.११.२
√मेलव–मिल् (कर्मणि) °इ २.७.१
मेलावअ–मेलापक, मिलाप, हि० मेला ७.२.११
√मेल्ल–मुच्, °इ ९.१४.८; मेल्लि (विधि०) ५.१३.४; मेल्लवि ५.९.१७; ८.१०.६; मेल्लेवि ७.१२.११; ९.६.१०; १०.१.१६
√मेल्लंत–मुच् + शतृ १०.१९.१०;११.३.३
मेल्लिय–मुक्त ४.१६.७;७.११.३;८.६.३;९.१३.१४ १०.२०.२४
मेवाड–मेवाड़ प्रदेश ९.१९.७
मेहवण–मेघवन प्रश० २०
मेहवणपट्टण–मेघवनपत्तन प्रश० ७
मेहुणेड–मैथुनिक, मामाका लड़का, साला, ६.११.७
मोक्ख–मोक्ष २.१.१३;९.२.१३;१०.३.७
मोक्खथाण–मोक्षस्थान ४.३.१२
मोक्खवास–मोक्षवास ९.१४.११
मोग्गर–मुद्गर, मुगदर ६.१०.१०;७.१.१३;७ ३.४
√मोड–मुड् + णिच् °इ ३.११.४;५.७.१९
मोडिअ °य–मोडित ६.९.३;९.३.८;१०.२०.३
मोडियक्ख–मोडित + अक्ष (धुरी) ७.१.२०
मोत्तिअ–मौक्तिक ५.१४१;८.१२.९
मोयण–मोचन ६.३.६
मोर–मयूर, हि० मोर ४.१८.१;८.१४.१८
मोह–मोह, मोहनीय कर्म २.६.८
मोह–मोह, मूर्च्छा ६.१०.४
मोह–मयूख ७.१२.१
√मोहअ–मुह् °इ ४.१३.७
मोहजाल–मोह (कर्म) जाल २.१९.१
मोहणय–मोहनकरः (कर्तरि) ९.१६.८
मोहवइरि–मोहवैरी १०.२६.१०
मोहिअ–मोहित ११.८.५
मोहियमाणस–मोहितमानस ३.२.२

[य]

य–च १.५.१२;२.९.२०;६.१२.२ °यड-तट ८.११.११
√याण–ज्ञा, °इ ८.१४.१४; °मो ६.२.२; याणेमि १०.९.६

[र]

रअ–रज ६.४.१०

√रअ–रच्, रएप्पिणु ७.१०.३; रएविणु १.१०.९
रइ–रति ५.१३.१५;९.५.४;११.१५.९
रइअ–रचित १.४.९;३.९.४
रइकाममिहुण–रतिकाममिथुन, रति-काम युगल ४.१६.९
रइखेय–रतिखेद, सुरतश्रम ४.१९.१४
रइणाडय–रतिनाटक ८.११.५
रइणाह–रतिनाथ, कामदेव ४.१३.५
रइथावण–रतिस्थापकः (कर्तरि), रतिभाव उत्पन्न करनेवाला ३.११.१५
रइदाढ–रतिदंष्ट्रा ३.७.१४
रइभंग–रतिभङ्ग ७.१.१
रइय–रचित ५.१.२५
रइरंधी–रति + रन्ध्री, रतिरन्ध्र, कामस्थान ४.१.११
रइरस–रतिरस ३.१२.४;४.१५.४
रइराम–रतिराम, कामदेव, रमण ४.१३.१६
रइवइ–रतिपति, कामदेव ४.९.७;४.१२.१६
रइवइराय–रतिपतिराज कामदेव ४.१३.१२
रइवंत–रति-प्रीति + वान् ४.१४.१३
रइवर–रतिवर, कामदेव १.१०.१२;४.६.११
रइवसण–रतिव्यसन ९.७.२
रइविंडब–रतिविडम्बना ९.१.७
रइविहलंघल–रतिविह्वल ८.११.७
रइसुह–रतिसुख १.१.९;१०.१९.५
रई–रति, आसक्ति ९.१६.६;२.७.७
रउ–रव ३.७.४;७.२.३
रउ–रज ६.४.१०;६.६.१
रउद्द–रौद्र ५.६.७;६.१.१३
रउरव–रौरव (नरकभूमि) २.१८.६
रंग–रङ्ग, आसक्त ४.२१.१४
रंगावलि–रङ्गावली १.९.६
रंगिय–रञ्जित, रंगीले ६.४.७
√रंज–रञ्ज् °इ ५.१३.१९; °मि २.१५.१४; रंजेसइ (भवि० तृ० पु० एक व०) १.५.७
रंजण–रञ्जनः (कर्तरि) ९.१२.१६
रंजणय–रञ्जनकः (कर्तरि) ९.१६.९
रंजिय–रञ्जित १.२.१२;१.४.४;९.१६.२
रंडिय–रण्डित, विधवाकृत ६.२.६
रंध–रन्ध्र १.८.१;४.६.३
√रंध–रध्, रान्धना °इ ९.२.१०
रंधणी–रांधनेवाली, रसोई बनानेवाली ५.७.१६
रंधिणी–रन्धिनी, पाकशाला ५.११.४
रंभा–रम्भा, कदली ४.१३.१६
√रक्ख–रक्ष्, °इ ११.१४.११; °हि (विधि०) २.२.९,७.९.१२;११.२.८
रक्खण–रक्षणः, रक्षकः ३.११.१०;१०.१४.२
रक्खस–राक्षस ६.७.१४;८.३.१२
√रक्खिज्ज–रक्ष् (कर्मणि) °इ ११.२.१ २.१४.४, ३.४.९
रक्खिय–रक्षित (°ए आत्मने०) १.११.१३
रच्छा–रथ्या ४.११.७;१०.१५.११
रच्छामुह–रथ्यामुख ९.११.२
रज्ज–राज्य १.११.१९;३.८.११
रज्जधर–राज्यधर, राजा ३.२.१२
रज्जु–राजू (प्रमाण) ११.११.१
रज्जु–(i) राज्य (ii) रज्जु-रस्सा ६.१२.४
रट्ठ–राष्ट्र ९.१९.३
√रडंत–रट् + शतृ ७.६.२०;७.१०.१०
रणाविय–रणरणायित ४.१५.९
रणंगण–रण + अङ्गना, रणदेवी; रण + आङ्गन, रणभूमि ६.१३.३;७.२.१
√रणझणझणंत–रणझण् (ध्वन्या०) १.१४.७
रणरण–रणरण (ध्वन्या०) २.१८.१२
रणरणअ–(दे) उद्विग्न होना १०.१.६
रणरणिय–रणरणायित ध्वनि ५.७.१८
रणसूर–रणशूर ३.२.१३
रत्त–रक्त ९.१२.९
रत्त–रक्त + वत्, रक्त, आसक्त ८.१४.५
रत्तंदण–रक्तचन्दन ४.११.४
रत्तंबर–रक्ताम्बर ८.१४.१४
रत्तकण–रक्तकण ६.७.६
रत्तकिरण–रक्तकिरण ५.७.२
रत्तपोत्त–रक्तपोत, लालवस्त्र ६.२.६
रत्ताणण–रक्तानन ९.६.९
रत्तासोय–रक्ताशोक ८.५.६
रत्ताहर–रक्ताधर ५.२.१८
रत्ति–रात्रि ४.५.९;९.१७.७;१०.२५.७
रत्ती–रक्ता, आसक्ता (स्त्री० विशे०) २.५.५

√रम–रम्, °इ ९.११.१६; रमंति (बहुव०) ७.१.११; रमहिं (बहुव०) ५.९.५
रमण–नितम्ब १.७.९
रमण–(तत्सम) कामस्थान ९.१.११
रमणत्थल–रमणस्थल, ८.११.८
रमणसत्ति–रमणशक्ति १०.२.२
रमणि–रमणी २.४.७;९.२.१२;१०.१.१२
रमणुल्ल–रमण + उल्ल (स्वार्थे) १.१०.१२
रमाउल–रमा (लक्ष्मी) + आकुल शोभापूर्ण ५.१.६;५.६.१७
रमिय–रमित ३.१.१९;४.१८.१३
रम्म–रम्य १.११.१७
रय–रज, पराग ४.१६.६
रय-रज, धूलि ६.६.३
रय–रज (स्त्री रज) १०.१५.७
√रय–रच् °मि ८.५.१३;९.८.१५; °वि ७.१०.२२
रयजल–रजजल, धूलिरूपी जल ५.६.१६;१०.१५.७
रयण–रत्न २.१८.५;४.१२.१५;११.१३.१
रयणचूल–रत्नचूल (विद्याधर) रत्नशेखर ५.११.१९; ६.१०.५
रयणत्तय–रत्नत्रय १.१.७
रयणप्पह–रत्नप्रभा (नरक भूमि) ११.१०.४
रयणमाला–रत्नमाला ७.१२.४
रयणरिद्धिल्ली–रत्न + ऋद्धि + इल्ली (मतुपार्थे), रत्नऋद्धि युक्त (स्त्री० विशे०) ३.८.६
रयणविट्ठि–रत्नवृष्टि ३.६.१०
रयणसिह–रत्न + शिख, रत्नशेखर विद्याधर ५.३.१;५.१२.११
रयणायर–रत्नाकर, सागर (आयु प्रमाण) ७.२.१३; ११.१२.३
रयणायरंत-रत्नाकर + अन्त, सागर पर्यन्त १.१३.१
रयणाहार–रत्न + आधार, रत्नधारक ४.६.१३
रयणाहिव–रत्नाधिप ३.३.१२
रयणि–रजनी १.१.७;९.४.१३; °माण–रात्रिप्रमाण ३.१२.३
रयणुद्धरण–रत्न + उद्धरण ३.१.१४
रयणुरुयअ–रदन + रुचि + क(स्वार्थे) दन्तरुचि, दन्त-दीप्ति ३.२.११

रयभर–(i) रज + भार, धूलिसमूह
(ii) रज + भार, (स्त्री)रजस्राव
(iii) रत + भार, सुरत आवेग ६.६.१०
रयभर–रतभार, सुरत आयास ९.१३.१८
रव–रव, वेग १.६.९;४.१९.८
रवण–(i) रमण, कामी (ii) रमण-नितम्ब ९.१२.१७
रवण–रमण-रमणीक ५.३ ८
रवण्ण–रमणीय, रमणीक २.८.१३;३.१३.६
रविकंत–रविकान्त, सूर्यकान्तमणि १.९.७;२.१.९
रविगहण–रविग्रहण ८.१३.१०;९.८.६
रविसेण–रविषेण (श्रेष्ठि) ३.१३.१
रस–रस, रुधिर ६.१४.१२
रस–रस, आस्वाद, आनन्द ८.१२.१५
रसंकिय–रस + अङ्कित ५.१४.२४
रसंत–रस + अन्त, रसान्त, उत्कृष्ट रस ५.१.२६
रसगिद्धि–रसगृद्धि ११.८.८
रसचाअ–रसत्याग १०.२२.५
रसड्ढ–रसाढ्य ५.८.३४
रसड्ढिअ–रसाढ्य ७.११.५
रसड्ढिय–रसाढ्य, रसिक ६.१३.२
रसण–रसन (वानर ध्वनि) .७.२
रसण–रशना, मेखला ३.८.३
रसणा–रसना, जिह्वा ७.१.१
रसदित्त–रसदीप्त ९.१.४
रसपीणिय–रसप्रीणित ६.९.९
रसभरिय–रसभरित ९.१८.८
रसमउलिय–रसमुकुलित–आनन्दवश निमीलित नेत्र ३.१.२
रसा–चर्बी ७.१.१७
रसायण–रसायन १०.५.७
°रसिय–रसिक ६.२.८
रसियअ–रसदा, रस (फल) देनेवाली ४.९.६
रसिल्ल–रस + इल्ल (मतुपार्थे) रसयुक्त, रसीला ८.१३.९
रह–रथ ६.२.९;१०.१९.१४;११.१.९
रहचक्क–रथचक्र ५.७.१३
रहस–रभस्, उत्कण्ठा ९.८.५;९.१६.३
रहस–रहस्य, एकान्त ९.८.१५
रहस–रहस्य (गुप्तवार्ता) १०.१५.१०
रहसिअ–रभसित, उत्कण्ठित ५.६.९;५.१०.१६

रहि–रथी, रथवान् ६.७.८
रहिअ °य–रहित १.७.६;२.६.४ °यअ ११.९.८
रहुकुल–रघुकुल ८.३.७
रहुवइ–रघुपति, राम ५.१३.२९
राअ–राजा ३.१०.८
राअ–राग १०.८.१४
राअपरिग्गह–राजपरिग्रह, राजसैन्य ६.१.१४
राअवारिअ–राजद्वारिक राजसेवक ५.१.२२
राइअ–राजित १.१.४
राइजागरण–रात्रिजागरण ४.८.१०
राइय–राजित, रञ्जित ६.१४.१३
राई–रागी ९.१.१२
राउत्त–राजपुत्र ३.५.१३
राउल–राजकुल ६.१.९;६.४.३;७.१२.१०; °वार–°द्वार ५.१२.५
राड–रट, चिल्लाहट ५.७.२०
राढ–राढ़ (देश) ९.१९.१३
राणउ–राणा, राजा ७.१३.५
राणि–रानी, राज्ञी १०.१५.११; °यण–°जन १.१२.१
राणी–रानी, राज्ञी ८.४.४
राम–रामा, रमणी ८.१४.१३
राम–रमणीय ४.५.१५
राम–रामचन्द्र ३.१२.१
रामय–रञ्ज्, मनोरंजन कराना १०.१९.३
रामा–(तत्सम) रमणी ३.१२.१
राय–राजा ५.१३.२८
राय–राग, स्वर ८.१६.१२
रायअंतेउर–राज + अन्तःपुर ५..१०.१९
रायउत्त–राजपुत्र १०.१८.३
रायउल–राजकुल ९.१३.१२; १०.१३.५; °कज्ज–°कार्य प्रश० ९; °कण्णा–°कन्या ३.४.७; °कुमार ४.९.११; °त्थाण-राज आस्थान, राजसभा ३.७.११;५.२.५; °दुहिय-°दुहिता ७.१२.७, °परिग्गह-°परिग्रह ५.१०.२३; °पुरोहिअ–°पुरोहित ९.१०.२३; °लच्छि-लक्ष्मी ३.८.६; °लील-°लीला ४.९.११;१०.१३.३; °वाणी ५.५.१२; °सासन-°शासन ५.१.१७; °सुअ-°सुत ३.९.७
रायगिह–राजगृह (नगर) ३.१४.२१; °गेह ४.५.४
रायदोस–राग + द्वेष २.२०.२;११.९.८
रायभार–राजभार १०.१८.१२
रायविरोह–राग + विरोध, रागद्वेष ८.७.१०
रायरायाहिअ–राजराजाधिप, राजाधिराज १०.१९.६
रायागमण–राजा + आगमन ५.१०.१३
रायाणअ–राजन्यक, योद्धासमूह ५.१.१७
रायाणुमग्ग–राज + अनुमार्ग, राजमार्ग ४.१६.१
रायाहिराय–राजाधिराज १.१३.१
राव–रव, शब्द ६.७.१;७.४.१५
रावण–विशेषओषधवृक्ष ५.८.७
रावल–राजकुल ७.१२.१०
रिउ–रिपु ६.८.४;७.२.८; °घरिणी-°गृहिणी १.११.६ ४.१८.२; °रमणी १.११.१७; °बल ७.३.७; °सह-°सभा ७.३.१;७.११.११; °सेण्ण-सैन्य ६.२.१
√रिञ्चेवअ–रिच् (कर्मणि) °इ ९.१२.१९
√रिज्जअ–री (कर्मणि) °इ ३.१२.५
रिण–ऋण ६.८.३.६.१४.१६
रित्त–रिक्त ९.८.२०
रिद्ध–ऋद्ध, समृद्ध १.९.११;९.१३.१३
रिद्धि–ऋद्धि ३.१.५; ३.६.४
रिसह–ऋषभ् १ मं० १२;४.४.३
रिसि–ऋषि २.८.११;२.१८.७; °चरण ३.५.३; °संघ २.१२.१२;२.१६.२
रीण–क्षरित, °अ (स्वार्थे) २.६.१०
√रुअंत–रुद् + शतृ २.५.१७
रुइ–रुचि ८.२.१५;१०.१८.१०
रुइर–रुचिर ९.१२.१५
रुई–रुचि १.११.१७
रुंज–वाद्य ५.६.१०
√रुंज–रुञ्ज्, रुंजंति (बहुव०) ७.४.३
रुंजिय–रुञ्जित १.१४.८
रुंड-रुण्ड, धड़ ६.२.५
रुंद–वृक्ष ४.२१.२
रुं रुं रुं–ध्वन्या० १.१४.८
रुक्ख–वृक्ष, हि० रूख ४.१६.८;८.१०.५; °संताण–°सन्तति ४.८.१५
√रुव–रुद् °इ २.११.४;३.१४ १८;९.१५.६

√रुक्ष-रुष् °इ ८.९.१७
रुट्ठ-रुष्ट ३.११.५;४.२२.१०
रुट्ठारि-रुष्ट + अरि ५.१४.१२
रुणुरुंटिय-रुणरुण्टित (ध्वन्या०) २.१२.९
रुण्णअ-रुदित ९.१०.१२
रुद्दक्ख-रुद्राक्ष वृक्ष ४.१६.३
रुद्ध-रुद्ध अवरुद्ध ३.१.१८;१०.१७.१
रुप्पमय-रूप्यमय ४.७.५
रुप्पिणि-रुक्मिणी (रानी) ८.४.२
√रुंभ-रुम्भ् °इ २.२०.३
रुरुघुरु-निःश्वास छोड़ना ४.२२.२१
रुहिर-रुधिर ६.५.१०;११.१५.४
रुहिरोह-रुधिर + ओघ ६.२.५;६.९.८
रुहिरलित्त-रुधिरलिप्त ४.१५.१५
रूअ-रूप ४.१७.१२
रूढ-आरूढ १०.१७.२
रूवकम-रूपक्रम, वेशरचना ९.१८.१
रूव-रूप ४.६.११; ९.१८.१; १०.२६.३; °णिहि-°निधि१.१२.१;-°दंसण-°दर्शन २.२०.६; °रिद्धि-°ऋद्धि २.१५.४; °लच्छि-°लक्ष्मी (श्रेष्ठिकन्या) ४.१२.६; °सिरि-रूपश्री (श्रेष्ठिकन्या) ९.९.५
√रूव-रोप् °मि ९.४.११
रूवअ-रूप्यक, रुपया ९.८.१२;९.८.२१
रूवड-रूप, सौन्दर्य ९.१२.५
रूवाभाव-रूप + अभाव १०.५.१३
रूवासत्त-रूपासक्त १०.१७.११
रूविय-रूपित, रचित ९.१३.१३
रेणु-रेणु, धूलि ६.५ ११
रेय-(i) रेत, बालू (ii) रेतस्, रज-वीर्य ९.१३.१५
रेल्लाविय-प्लावित ४.२०.९
रेवाणइ-रेवानदी ५.१०.५;५.१०.२४
रेह-रेखा १.१.१३;१०.२०.५
√रेह-राज् °इ ८.१३.१३;१०.२०.५
रेहा-रेखा ५.१२.२०
रेहाइद्ध-रेखा + ऋद्ध, रेखायित,रेखायुक्त ४.१३ १०
रेहाविय-राजित २.१६.३
रोअ-रोग ९.११.७
रोक्क-(दे) रोकड़, जमा ९.८.४
रोड-(दे) हैरान होना ९.१०.३
रोमंच-रोमाञ्च ४.१३.१९;१०.१८.२
√रोव-रोद् °इ९.४.१५; रोवंति (बहुव०) ३.७.६; ९.६.६
रोवाविय-रुद् + णिच् + क्त रोदित ६.१४.१४
रोविअ-रोदित, रुदित ९.१०.१५
√रोविज्ज-रुद् + णिच् °इ ७.२.४
रोवियधणु-रोपितधनुष ११.११.९
रोस-रोष, क्रोध १०.१७.१२;११.९.८;११.१४.२
रोसाविअ-रुष् + णिच् + क्त, रोषायित १.१५.२
रोसिअ °य-रोषित, रुष्ट ५.८.१९;८.१५.१४
रोहिणि-नक्षत्र, वृक्ष विशेष ४.७.१०;५.८.७
रोहिय-रोधित, अवरुद्ध ५.९.१३;६.४.२

[ल]

√लअ-ला, लएविणु ४.२.१७; लइ-ला + क्त्वा ४.१७.४; ४.१८.६; लएसइ (भवि०) २.१३.२;४.६.१५
√लइ-ला ५.१२.२१;९.६.६
लइअ-लात, स्वीकृत, गृहीत ७.३.७;१०.९.७
√लइज्ज-ला (कर्मणि) °इ ५.१०.१७
लइय-लात ८.१४.२;११.५.९
लइयउ-लात ९.८.१९
लउडि-लकुटि ६.५.९;७.१.१४;७.६.१०
लउडिदंड-लकुटिदण्ड १०.९.२
लंकाणयरी-लङ्कानगरी ५.८.३३
लंगल-लाङ्गल हलः ९.४.९
√लंघ-लघ् °इ २.१४.८;५.१०.१७;१०.११.३
लंघिअ-लङ्घित ६.१२.७
लंछिय-लाञ्छित १०.१४.४
लंजिया-लञ्जिका (देश) ९.१९.२
लंपड-लम्पट ७.५.१६;८.११.११
√लंब-लम्ब्, °इ ४.१३.२१
लंबउ-लम्ब, दीर्घ, हि० लम्बे ८.१५.१०
√लंबंत-लम्ब् + शतृ ४.८.७;७.६.१३;७.८.१०
लंबाविय-लम्बायित १०.१६.३
लंबिअ °य-लम्बित ५.११.२१;७.१३.४
√लक्ख-लक्ष् + णिच् (स्वार्थे)-°इ ९.१०.२१; °हि (विधि०) ५.१३.३३;७.१३.९; ९.१०.१९
लक्खण-लक्षण ३.४.२;४.१४.१७

लक्खणंक–लक्षणाङ्क वीरकविका दूसरा अनुज प्रश० १४
लक्खिअ–लक्षित १.१५.८;४.४.२;६.१.१८
√लक्खिज्ज–लक्ष् + णिच् (स्वार्थे) (कर्मणि) °इ १.२.१५;२.१४.४
लक्खिय–लक्षित ५.२.१०;१०.८.५
√लग्ग–लग्, °इ ११.७.३; लग्गिवि १०.१०.४; लग्गेसइ (भवि० तृ० पु० एकव०)७.१२.८
लग्ग–लग्ना (स्त्री०) ६.७.८;१०.१०.१४
लग्गअ–लग्न १०.१९.११
√लग्गंत–लग् + शतृ १.१.२;३.९.७
√लग्गिर–लग् + इर (ताच्छील्ये) ९.१२.९
लग्गी–लग्ना (स्त्री० विशे०) ४.१६.११
लच्छि–लक्ष्मी २.१०.६;१०.१.१६
लच्छिपउत्त–लक्ष्मी + प्रयुक्त ४.३.१०
लच्छिफल–लक्ष्मी + फल ५.४.१८
लच्छिलक्ख–लक्ष्मी + लक्षित–कान्तिमान् देहयुक्त ६.१०.६
लच्छी–लक्ष्मी १.१५.९;१.१८.१
√लज्ज–लस्ज् °इ ५.१३.२३
√लज्ज–लस्ज (विधि०) °इ १०.१०.१४
√लज्जमाण–लस्ज् + शानच् २.१९.६
लज्जंकिअ–लज्जा + अङ्कित १.१४.१६
√लज्जिज्ज–लस्ज् + णिच् °इ ९.१.१२;९.४.१
लट्ठ–(दे) प्रधान ५.१४.९
लट्ठि–यष्टि, हि० लाठी ३.११.६
लडह–लटभ, सुन्दर, लाडला ७.१.५
लडहंग–लटभ (ललित) + अङ्ग २.१४.५
लद्ध–लब्ध ७.७.१;८.६.६;°बंध ६.८.८;°वर १.४.६ °रस ८.१०.१७;°संस–लब्धशंस, प्रशंसाप्राप्त २.५.१
√लभ–लभ् °इ (आत्मने०) ९.९.१४;१०.१०.१२ °हिं (बहुव०) १०.५.८
लयउ–लात२.१२.३;७.१०.२३;९.१३.५;१०.२१.४
लयाहर–लतागृह २.४.११
ललण–ललना, जिह्वा ९.१०.८
√ललंत–लप्लप् + शतृ ९.१०.८
ललिअ–ललित २.१५.३;५.२.४
ललणिज्ज–ललनीय २.१०.६
ललिय–ललित ८.१४.१९; ९.१८.६; °कण्ण–°कर्ण २.५.५; °क्खर–°अक्षर ७.१.४; °बाहु १०.२१.३
लव–लव, कण, किंचित् ९.१३.११;१०.१७.२०
लवण–(i) लावण्य (ii) लवण, क्षार ८.१३.११
लवणण्णव–लवण + अर्णव १.१०.१४
लवलविय–उपलपित ५.१४.१३
लवलि–लवली वृक्ष ४.१६.३
लविय–लपित, कथित ९.१६.३
√लह–लभ् °इ २.२.३; ७.१०.२१; ११.१५.९; °मि ९.१३.७; १०.११.११; लहिँवि ८.२.१.; १०.४.१५; लहेवि ११.१३.७; लहेप्पिणु ८.७.३
लहु–लघु, शीघ्र ८.२.१३;८.१५.४
लहुअ–लघु + क (स्वार्थे) ३.७.१;८.४.१४
लहुण–लघुनः, लघुकः प्रश० १३
लहुयारअ–लघुक + आरअ (स्वार्थे), अनुज ३.५.७
लहू–लघु ९.१७.१३
√ला–ला °इवि ९.७.१३
लाइय–लात ४.२०.३;८.४.६
लाडदेस–लाटदेश ९.१९.७
√लाय–लागय् °इ ३.१२.१६
लायण्ण–लावण्य २.४.३; २.१८.९; ४.१४.११, °तरंग–°तरङ्ग २.१७.८,°रस २.१८.४
लाल–लार ८.१५.९
लालस–कोमल ४.७.३
लालामल–लारमल ९.१.१०
लालाविल–लार + आविल २.१८.१०
√लाव–लग् + णिच् °इ ४.१७.१८; °हि (विधि०) १०.१५.८
लावण्ण–लावण्य ४.११.१४;११.१.७
लाविअ–लगाया १०.१४.५
लाह–लाभ ८.१०;१४;१०.१४.६
√लिंत–ला + शतृ ८.६.१२; ८.७.१५; °उ ८.९.१७; लिंताहँ ८.६.१२; लिंतु ८.११.१८
लित्त–लिप्त, हि० लीपना २.९.२;४.१३.१४
लिंपिअ–लिप्त ४.१०.३
√लिह–लिख् °इ ८.१५.९; १०.७.९; °मि ४.११.१३

लिहिअ °य–लिखित ७.८.५;८.९.१२
लीण–लीन १.१८.१३;२.१५.१
लीलउ–लीला + वत् ४.२०.१३
लीलावइ–लीलावती, वीरकविकी तीसरी पत्नी प्रश० १६
लीह–लेखा, रेखा ५.१४.१३
लुअ–लून ९.११.८
लुंचिय–लुञ्चित २.१६.८
लुंठ–लुण्ठकः, लूटनेवाला ९.१९.६
लुंबि–लुम्बि वृक्ष ४.२१.२;५.१०.५
लुक्क–लुञ्चित ५.८.२७
√लुक्क–नि + ली °इ २.६.११; °मि ९.१०.९
√लुण–लु °मि ३.११.८
लुणिय–लुनित ६.३.१०;६ ७.५
लुद्द–लोध्र वृक्ष ४.१०.७
लुद्ध–लुब्ध, हि० लोभी ५.१३.१५
लुद्धि–लुब्धता ९.१४.१०
लुय–लून ७.३.३
√लुलंत–लुट् + शतृ ६.१४.१२
लुलाविय–लुलावित ९.१८.३;१०.१६.५
लूडिय–लुण्टित ५.३.१०
लूरण–छेदन, हरण ८.८.८
√ले–ला, लेइ २.१८.७; लेमि ९.८.१६; लेवि ८.४.९; १०.८.२; लेसइ (भवि० तृ० पु० एकव०) ९.१५.१३; लेसमि (भवि० उ० पु० एकव०) १०.१४.७
√लेंत–ला + शतृ ३.७.१०;११.३.३
लेव–लेप ९.७.१२
लेस–लेश, अल्प १.२.२;१.१८.५
√लेहु–लभ् °हु (आज्ञा०) लभताम् ५.१४.८
लेहण–लिहन, चाटना ९.७.१६
लोअ–लोक ७.१२.१४;९.२.८
लोट्टिय–लुण्टित, मुषित ५.३.८;६.४.१
लोय–लोक, लोग ३.१.२१;८.५.१०
लोयग्ग–लोकाग्र, लोकान्त ११.१२.१०
लोयण–लोचन १.१.६;३.९.१७
लोयणिंद–लोकनिन्द्य ५.४.३
लोयपवर–लोकप्रवर, लोकोत्तम ८.१२.१३
लोयवाल–लोकपाल २.११.६;१०.१५.२
लोयाणुरूव–लोक + अनुरूप, लोकेस्वरूप ११.१०.१
लोयायार–लोकाचार ८.८.३
लोयालोय–लोकालोक १०.२४.६
लोयाहाण–लोक + आख्यान ५.४.१३
लोयाहिव–लोकाधिप, लोकपति ३.१.१०
√लोल–लुट् ४.१९.१८
√लोलमाण–लुट् + शानच् ४.२१.४
लोह–लोभ ३.९.१६;९.५.४
लोहउर–लोहपुर ९.१९.११
लोहिणि–(i) लोभिनी (ii) लोहिनी शृङ्खला १०.२०.८
लोहिय–लोहित ४.११.४

[व]

व–इव, वत् १.१४.११; ११.१५.६
वअ–व्रत २.८.८
वइ–पति ६.११.३;७.१३.१०
वइट्ठ–उपविष्ट ७.१२.१०;१०.१४.६
वइतरणि–वैतरणी (नरक नदी) ११.४.३
वइदब्भ–वैदर्भ, विदर्भ (देश) ९.१९.३
वइयर–व्यतिकर, प्रसङ्ग, वृत्तान्त ७.११.९;९.१५.११
वइर–वैर १.१८.३;
वइर–वज्र देश ९.१९.७
वइराय–वैराग्य ८.९.१७;१०.१८.१
वइरायर–वज्राकर, वज्रमणिकी खान ८.१२.१०; वज्राकर देश ९.१९.३
वइरि–वैरिन्, वैरी ६.१.१४;७.१०.८;८.८.५
वइवस–वैवस्वत, यम ४.२०.१३;७.१२.२
वइवाह–विवाह ८.८.१९
√वइस–उप + विश्, °सरिवि २.१६.१२; ५.१२.२३; वइसरवि ३.७.११
वइसरिय–उपविष्ट ९.१८.८;१०.१६.१०
वइसवण–वैश्रवण (श्रेष्ठि) ४.१२.५
वइसाण–वैश्वानर ६.६.२
वइसारिअ–उप्+विश् + ल्यप्, बैठाया ५.१.५; ७.१३.७
वओहर–वृत्तधर, दूत ५.१३.१२
वंक–वक्र, कुटिल, वंकी (स्त्री० विशे०) ४.१८.११; ५.९.१६
वंकअ–पङ्कज ४.२१.६

वंकालाव–वक्रालाप, वक्रोक्ति आलाप ४.१७.२३
वंकुज्जल–वक्र + उज्जवल ४.१३.४
वंकुडड–वक्र, हि० बाँका ४.१५.४
वंकुडिय–वक्र, हि० बाँका ९.१८.३
वंग–वङ्ग (देश) ९.१९.१४
√वंच–वञ्च्, वंचिवि २.१५.१२;१०.१०.३
√वचंत–वञ्च् + शतृ ५.१४.२०
√वंचमाण–वञ्च् + शानच् ६.१०.८
वंचय–वञ्चक ९.१३.३
वंचिअ °य–वञ्चित १०.३.१०;१०.१०.१०; १०.१८.२
√वंचिज्ज–वञ्च् (कर्मणि) °इ ११.१४.२
√वंछ–वाञ्छ् °इ २.६.११;९.४.१६;९.१५.१; °हि (विधि०) ९.४.१२
वंठ–(दे) धूर्त, ठग ४.२१.१०
√वंद–वन्द् °इ ५.११.५; वंदेवि १.१८.५;२.१९.९
वंदण–वन्दना २.१६.१२;३.५.३
वंदणहत्ति–वन्दना + भक्ति ८.४.८
वंदणा–वन्दना २.३.५
वंदारअ–वृन्दारक, देव ११.३.८
वंदि–वन्दी ८.७.४;१०.१९.१५
वंदिअ °य–वन्दित २.१२.१३;३.१३.७;४.१.५; ४.४.९;७.१३.१७
वंदियसवण–वन्दितश्रमण ३.३.१७
वंदिर–वन्दिन् + र (स्वार्थे), वृन्द, समूह ८.७.४
वंस–वंश, कुल १.५.२;५.१३.१७
वंसपव्व–वंशपर्व, बांसकी ग्रन्थियाँ ५.८.२
वंसि–वंशी ५.८.७
वग्ग–वर्ग ७.६.१८
√वग्ग–वल्ग् °ग्र ५.१३.१४
√वग्गंत–वल्ग् + शतृ १०.९.३
वग्गिय–वल्गित ६.४.७
√वग्गिर–वल्ग् + इर (ताच्छील्ये) ७.६.१३
वग्गुर–वागुरा, पशुओंको फँसानेका जाल ४.१३.२; ५.८.२५
वग्घ–व्याघ्र, हि० बाघ २.१३.९;५.८ १५
√वच्च–व्रज् °मि ९.५.१३; °सु (विधि०) ८.६.२
√वच्चंत–व्रज् + शतृ ४.२१.२;१०.८.३
वच्छ–वक्ष (स्थल) ६.१.४;६.१३.३;७.३.५
वच्छ–वत्स २.१२.१०
वच्छयल–वक्षतल, वक्षस्थल २.५.१७
वच्छर–वत्सर, संवत्सर ९.१७.१०
वच्छायण–वात्स्यायनः (कामसूत्र) ८.१६.११
वज्ज–वज्र ४.१५.२;५.११.१८
√वज्ज–वृज् °इ ३.१२.१०
√वज्जंत–वृज् + शतृ ८.९.९
वज्जिअ °य–वर्जित ४.३.३;४.२०.४
वज्जयंत–पु० वज्रदन्त (राजा) ८.२.२३
वज्जासणि–वज्र + अशनि ६.५.९;८.१०.३
वज्जिय–वादित ५.६.११;८.१२.२
वट्ट–(i) वर्त्म मार्ग, हि० बाट, (ii) प्याला ८.१३.१२
√वट्ट–वृत् °इ २.१४.६,८; ६.१.१६ ५.११.८; ६.१४.८; ९.१५.८; १०.४.१३; °ए (आत्मने०) १०.१९.१४
वट्टिया–वर्तिता, प्रवर्तिता (स्त्री०) १०.१९.१४
वट्टुल्ल–वर्तुल २.१४.८
वट्ठ–पृष्ठ ५.१४.२१
वट्ठी–पृष्ठ ५.१४.२०
वड–(दे) बड़ा ९.१०.२१
वडवानल–बड़वानल ७.२.१३
वडुअ °य–वटुक, ब्राह्मणपुत्र २.४.१२;१०.६.२
वडुप्फर–(दे) बड़ा फलक ४.२.८
वडुहर–बड़हर, काशीके पास एक गाँव ९.१९.१६
वड्डुअ–(दे) बड़ा १.१३.८
वड्डुल–(दे) बड़ा १०.१६.६
√वड्ढ–वृध् °इ ९.१६.६
√वड्ढंत–वृध् + शतृ ४.१७.१८
वड्ढमाण–वर्द्धमान १.१३.१०;२.८.१३
वड्ढमाणंकित–वर्द्धमान + अङ्कित, वर्द्धमान नामक ग्राम ८.२.२०
वड्ढमाणु–वर्द्धमान (तीर्थंकर) १.१.१; °जिन प्रश० ७
√वड्ढार–वृध् + णिच् (स्वार्थे) °इ ७.११.१५
वड्ढारिअ–वर्धापित ६.१२.६
वड्ढिअ °य–वर्धित १.१३.५;३.८.२;४.१४.२२; ५.१४.५;१०.८.५.७
वढ–वंठ, मूर्ख ९.४.१२
वण–व(द)न, मुख ९.११.३
वण–वन ५.८.२४;१०.१३.१; °करि–वनहस्ति ५.१०.४; °गअ–वनगज १.३.३
वणवड्ढ–चुनार (नगर) ९.१९.१५

वणफल–वनफल, कार्पासफल कपासका फूल १.८.४
वणमाल–वनमाला (रानी) ३.३.१५;३.८.३
वणयर–वनचर ५.८.५;११.४.५
वणराइ–वनराजि ८.१४.६
वणासइ–वनस्पति १.१३.३;४.८.१४.
वणिउत्त–वणिक्पुत्र ४.१४.१२;१०.७.५
वणिणंदण–वणिक्नन्दन ४.१.७
वणिय–व्रणित ९.१२.७
वणिय–वणिक् ९.१९.१६
वणिवग्ग–वणिक्वर्ग १०.१८.९
वणीस–वणिक् + ईश ३.६.९;४.२.२
√वण्ण–वर्ण् + णिच्(स्वार्थे)°इ ४.१०.२;४.२२.२५ °उ (विधि०) ८.१.५; वण्णिऊण १.१८.१
√वण्णिज्ज–वर्ण् + णिच्(स्वार्थे)(कर्मणि)°इ १.६.४
वण्ण–वर्ण, शब्द ८.२.७;१०.१.१०
वण्ण–वर्ण, वर्णन, कीर्ति ११.१.२
वण्णण–वर्णन ७.२.९
वण्णुक्करिस–वर्ण + उत्कर्ष १.५.१६
वत्त–वृत्त, वृत्तान्त ५.१२.८;६.११.७
वत्थ–वस्त्र २.९.१९;१०.१९.८
वत्थाइ–वस्त्र + आदि १०.९.१०
वत्थु–वस्तु १०.४.१२; १०.९.१०; °रूव–°रूप १.१८.१२; °सरूव–स्वरूप° ९.१.१४; १०.२०.९
√वद्धाव–वृध् + णिच् (स्वार्थे), हि० बधाई देना, °मि १.१३.८
वद्धावअ–वर्द्धापकः (कर्तरि) १.१४.३;४.१५.२
वद्धावण–वर्द्धापन, बधाई ४.७.१२
वद्धावणा–वर्द्धापना ४.८.४
वप्प–बाप, पितृ ८.६.४
वमाल–व्याप्त २.९.९;७.९.१०
वम्मह–मन्मथ ८.१४.२०;१०.८.९
वय–व्रत २.१२.१;३.६.२
वयखग्ग–व्रतखड्ग १०.२६.१०
वयण–वदन, मुख ३.४.१;४.१९.९
वयण–वचन २.१०.७;१०.२.८
वयणमइरा–वदनमदिरा ४.१७.३
वयणरंग–वदनरङ्ग मुखरूपी रङ्गमञ्च ३.१.४
वयणाभास–वदनाभास, मुखाभास १०.४.६
वयणासव–वदनासव ९.१.९
वयणिज्ज–व्रतनिर्जित ३.८.१३
वयणिम्मल–व्रतनिर्मल ३.९.१८
वयणीय–वचनीय, निन्द्य ५.३.१५
वयणुल्ल–वदन (मुख) + उल्ल (स्वार्थे) ५.२.२१
वयतरणी–वैतरणी २.१३.१३
वयधार–व्रतधारक २.४.५
वयभर–व्रतभार १०.२१.१
वयविड्ढि–व्रतवृद्धि १०.२२.७
वयविमल–व्रतविमल २.२०.५;८.११.१८
वयस–वयस्, वयः २.१८.४
वयसील–व्रत + शील ८.२.१५
वयोवासि °य–व्रत + उपवासित २.१९.५
वयोहर–वृत्तधर ८.१०.१;८.१०.९
वरइत्त–वरयिता, वर, दूल्हा २.१२.१४;७.१२.९; ९.८.१
वरइत्ती–वरयित्री (कर्तरि), वरण करनेवाली ३.८.८
वरंग–वर + अङ्ग, वराङ्ग, नितम्ब ४.१९.६; ४.१९.११
वरंगचरिअ–वराङ्गचरित १.४.३
वरच्छि–वर + अक्षि ६.१३.८;९.९.१
वरताअ–वर + तात ८.९.५
वरयत्त–वरयिता, वर, दूल्हा ८.१४.३
वरलच्छी–वर (श्रेष्ठ) + लक्ष्मी ४.६.१२
वरवण्ण–वर + वर्णक, द्यूतविशेष ४.२.९
वरवहुय–वर-वधू ९.१४.५
वराअ °य–वराकः, बेचारा ७.७.७; १०.९.७; १०.२६.७
वराड–बरार (प्रान्त) ९.१९.४
वरि–वरम्, अच्छा २.१५.११;९.३.१;९.५.२
वरिट्ठ–वरिष्ठ ५.८.४;८.१०.६
वरिस–वर्ष, अब्द २.५.१०;१०.१७.२
√वरिस–वृष् °इ ९.९.९
वरिसण–वर्षण, हि० बरसना ७.९.१०
वरिसा–वर्षा ६.६.८
वरेंदीसिरी–वरेन्द्र (श्री), उत्तरी बंगाल ९.१९.१३
वलअ–वलय, मण्डल ६.३.२;८.८.१७
√वल–वल्, वलु (लोट्), वलु-वलु, लोटो लोटो ६.१२.६
√वलंत–वल् + शतृ ५.१.२३;१०.१०.४
वलग्ग–अवलग्न ६.७.१०

वाह–प्रवाह ७.६.५;१०.१३.१०
√वाह–वह्+णिच् °इ १०.११.१
√वाहंत–वह्+शतृ ९.४.४;९.४.९
वाहण–वाहन ४.२०.५;५.३.१४
वाहथट्ट–घोटक संघात ४.२०.१०
√वाहर–व्या+हृ °इ ३.३.४
वाहरिअ–व्याहृत १०.१७.१६
वाहल–(दे) क्षुद्र जलप्रवाह ५.८.२१
वाहि–व्याधि २.५.११; ३.११.२
वाहिणी–वाहिनी, नदी ७.६.६
वाहितरंगिणि–व्याधितरङ्गिणी ३.८.९
वाहियालि–(तत्सम) अश्वक्रीड़ास्थल ३.२.१०; ४.१३.१५
√वाहुड–(दे) वल् °वि १०.९.१०; °हि (विधि०) २.१२.१०
वाहुडण–(दे) गमन २.१२.७
वि–इव, अपि १.२.४;१.२.५;५.८.३;१०.८.५
√विउज्झ–वि+बुध् °इ १०.७.८
विउण–द्विगुण ११.११.३;११.११.१०
विउणअ–द्विगुण+क (स्वार्थ) ११.१०.११
विउल–विपुल (पर्वत) १.१३.१०
विउलइरि–विपुलगिरि१०.१३.११; °गिरि १.१५.८
विउस–विद्वस् १.२.६;४.९.३; °यण–°जन १.२.१२; °सह-°सभा १.४.४
विओय–वियोग ९.१५.१४
विक्कंत–विक्रान्त, शूर ६.७.४
विंजण–(i) व्यञ्जन–अक्षर
(ii) व्यञ्जन–भोज्य पदार्थ ८.१३.९
विंझ–विन्ध्य ५.८.१; ९.१९.४; १०.१२.१
विंझइरि–विन्ध्यगिरि ४.१५.९
विंझएस–विन्ध्यदेश ५.८.३८
विंझाडइ–विन्ध्याटवी ५.८.३०
विंट–वृन्त ११.९.९
विंतर–व्यन्तर (देव) १.१६.८;११.१२.८
विंद–वृन्द ४.५.४;१.१.१२
√विंध–विध् °इ ३.१०.१५;४.१२.१६
विंधण–हि० बींधना ७.९.३
विंभअ–विस्मय ३.६.१४;४.१०.१०
विंभइय–विस्मित ९.६.३
विंभिय–विस्मित २.३.१०; ९.१९.१६; °चित्त ३.६.६; °मण–°मन ९.३.३
√विक्क–वि+क्री °इ २.१८.५; °मि १०.११.४
विक्कम–विक्रम, पराक्रम ४.२२.८;७.१०.१६
विक्कमकाल–विक्रम संवत् प्रश० २
विक्कार–विकार १.८.६
विक्खाअ °य–विख्यात °इय ३.१४.८; ४.१४.१६; °यउ ७.१३.१० प्रश० २१; प्रश० १४;
विक्खिरिय–विकीर्ण ५.१.२४
विगय–विगत २.१८.११
विग्गह–विग्रह, युद्ध ६.१.१२;१०.१५.३
विग्गहगइ–विग्रहगति, शरीरगति ८.८.१२
विग्घ–विघ्न ३.७.१०
विचित्त–विचित्र ४.१२.१३; °धाम १.८.८; °मइ–°मति, धूर्त, चतुर ८.३.१३
√विचिंत–वि+चिन्त् °इ ११.१३.१
विच्चंतर–वृत्ति+अन्तर, वृत्यन्तर, वृत्तिपरिवर्तन २.१४.४
विच्छड्डिर–विच्छर्द्+इर, वैभवशील ७.१.२१
√विच्छुरंत–व्याप्+शतृ ४.२१.५
विजउत्साउ–विजय+उत्साह ७.३.७
विजय–विजय (नामक स्वर्ग विमान) ११.१२.२
√विजय–वि+जि °यंतु (विधि०) १.१.१;१.५.१८
विजयंतरिअ–विजय+अन्तरित ६.१.७
विजयद्ध–विजयार्द्ध ११.११.८
विजयसंख–विजयशङ्ख ४.१३.१०
विजयास–विजय+आशा ७.४.१८
विज्ज–विद्या ३.१४.११;४.१२.१०
विज्ज–वैद्य ५.४.१३
√विज्ज–विद् °इ ४.१४.६
√विज्जमाण–वीज्+शानच् १०.१३.४
विज्जा–विद्या ३.१४.९;८.५.५; °कुसल–°कुशल ३.३.५; °पवर–°प्रवर ८.४.५; °बल ३.१०.८;६.१४.३; °वंत–°वन्त ३.१४.२४; °वयण–°वचन ५.४.६; °सरीर–शरीर १.१८.९
विज्जावच्च–वैयावृत्य १०.२३.३
विज्जाहर–विद्याधर ५.२.६; ७.२.९

विज्जाहरिंद–विद्याधर + इन्द्र ५.१४.६
विज्जु–विद्युत् २.३.३;७.९.९
विज्जुचर–विद्युच्चर (चोर) ९.१८.६
विज्जुच्चर–विद्युच्चर (i) चोर ३.१४.४; (ii) मुनि ११.१५.३
विज्जुप्पह–(देवी) विद्युत्प्रभा ३.१४.१
विज्जुमालि–विद्युन्माली (देव) २.३.५;१०.६.४
विज्जुल–विद्युत् ११.१.१०
विज्जुलचल–विद्युत् + चल-चञ्चल, क्षणभङ्गुर ३.५.१२
विज्जुवई–विद्युत्वती (देवी) ३.१४.१
√विज्झाअ–वि + ध्माप्, विज्झाएसइ (भवि० तृ० पु० एकव०) ४.३.१५
विटलटक–(दे) गठरी ११.६.३
विट्टलिड–(दे) बिगाड़ा हुआ ५.११.४
विट्ठ–उपविष्ट २.३.८;२.५.१४
विट्ठंतरंधदार–विष्टा + अन्तर + अन्ध + द्वार १०.१७.८
विट्ठि–वृष्टि ४.८.१५;४.२०.११; ७.११.३
विड–विट ५.११.४;६.१२.३
विडंग–विडङ्ग (i) वृक्ष (ii) विदग्धजन ३.२.६
√विडंब–वि + डम्ब् °इ ४.१३.११
विडंब–विडम्ब, प्रपञ्च ४.१५.११
विडजण–विटजन ८.१४.२०;९.१२.१७
विडपुरिस–विटपुरुष १०.८.१
विडप्प–(दे) राहु ५.५.८
विडव–विटप, वृक्ष ८.१०.५
विडवि–विटपी, वृक्ष प्रश० १७
विडाल–मार्जार, बिलार ८.१५.९
विण–विना ७.३.८;८.६.६
विणअ–विनय २.१२.२;१०.२३.२
विणट्ठ–विनष्ट ९.६.११;९.८.२१
विणडिय–विनटित, विडम्बित ११.१४.१३
विणमि–विनमि १.१.११
विणय–विनय २.९.१६
विणयगुण–विनयगुण ३.१०.३
विणयजुअ–विनय + युत-युक्त १.४.८
विणयमइ–विनयमति (श्रेष्ठिपत्नी) ४.१२.६
विणयमाल–विनयमाला (श्रेष्ठिपत्नी) ४.१२.५
विणयवंत–विनयवन्त ९.४.२
विणयसिरि–विनयश्री (श्रेष्ठिकन्या) ४.१२.५;९.८.१
विणास–विनाश २.४.२;३.८.११
विणासण–विनाशनः (कर्तरि), विनाशक १०.२२.३; ११.१४.६
विणासिय–विनाशित ३.१३.८;७.३.१४
विणिग्गअ–विनिर्गत १.४.१;१०.१७.९
विणिज्जिअ–विनिर्जित १.१०.१३
विणिबद्ध–विनिबद्ध १.३.४;१.१२.९;७.७.११
√विणिबद्ध–वि + नि + बन्ध् °इ ११.७.८
विणिम्मिय–विनिर्मित १.१६.३;५.८.२५
विणियत्तण–विनिवर्तन १०.२३.६
विणिवाइय–विनिपातित ७.११.१२
√विणिवाय–वि + नि + पत् + णिच्. °इ (विधि०) ९.३.१४
विणिवारण–विनिवारणः (कर्तरि), विनिवारक ११.७.७
√विणिहम्ममाण–वि + नि + हन् + शानच् ७.६.२
विणोय–विनोद ४.९.१२;५.१.३१
विणोयकर–विनोदकराः (पु० बहुव० विशे०) ५.१.१
विणोयपरा–विनोदपरा (स्त्री० विशे०) पराजित करनेवाली ५.२.२०
विण्णत्त–विज्ञप्त २.७.८
√विण्णप्प–वि + ज्ञा + णिच् °इ ६.१३.४;३.१४.३
√विण्णव–वि + ज्ञा + णिच् °इ ३.२.१२; °मि ६.११.५
विण्णविअ–विज्ञापित १०.१९.१८
विण्णाण–विज्ञान ३.१४.१०;८.४.५
वित्त–वृत्त, व्यतीत, घटित ८.१.४
वित्त–(i) वृत्त + स्थूल, गोल (ii) वर्तन आचरण १०.२०.५
वित्तंत–वृत्तान्त ६.१.१८; ७.४.८
वित्तिपरिसंखअ–वृत्तिपरिसङ्ख्यक, वृत्तिपरिसङ्ख्यान नामक तप १०.२२.२
वित्थर–विस्तार १.५.६;१.५.९; ११.११.३
वित्थारिअ–विस्तारित १.४.४;५.६.१४
वित्थिण्णअ–विस्तीर्ण + क (स्वार्थे) ६.१४.१५; १०.२०.११
वित्थिण्णी–विस्तीर्ण (स्त्री० विशे०) ६.१४.१५
वियारियंग–विदारिताङ्ग ६.११.८
विद्दविय–विद्रवित ५.१३.२

विद्दारिय–विदारित ५.८.१५
विदुम–विद्रुम ४.१४.२; ७.१२.३
विद्दुमराय–विद्रुमराग २.१४.७
विद्धउ–विद्ध ४.१३.६;६.५.८; ६.१२.९
विद्धपुरिस–वृद्धपुरुष ३.११.१०
विद्धंस–विध्वंस ६.१२.७;८.७.१७
विद्धंसयर–विद्ध्वंसकर १.१.१०
विद्धंसिय–विद्ध्वस्त ५.१३.२३
विद्धि–वृद्धि, समृद्धि १.३.५;४.८.९
विणोअ–विनोद ४.१३.१३
विप्प–विप्र २.९.८
विप्पिओय–विप्रयोग, विरह ४.१४.१
विप्फार–विस्फार ४.२.१३
विप्फारिय–विस्फारित (नेत्र) ८.९.९
विप्फुर–विस्फुर °इ १.५.१५
विप्फुरिय–विस्फुरित ११.६.७
विबंधणी–असहाय स्त्री ५.७.१६
विब्भम–विभ्रम ९.२.४;१०.१५.४
विब्भुल्लउ–विस्मृत ८.१४.१६;१०.१५.७
विभाविअ–विभावित ३.१४.१४
विंभिय–विस्मित ५.२.३
विमण–विमन, विषण्ण ३.१२.१२
विमत्तिअ–विमदा, (काम)मदरहिता (स्त्री० विशे०) ९.१३.४
विमल–विमल, शुद्ध ३.५.१. °कमलाणण °कमलानन ३.३.१; °जस— °यश १.४.२
विमलगिरि–पर्वत २.२०.९
विमलिय–विमलित २.३.९
विमाण–विमान २.२.७;२.२०.१२
विमाणय–विमान + क (स्वार्थे) २.३.७
विमीस–विमिश्र २.९.१६;२.१२.१३
विमुक्क–विमुक्त ९.४.१५;१०.१८.१२;११.१५.३
विमुक्कअ–विमुक्त + क (स्वार्थे) ४.१२.१५
विमुद्द–विमुद्र, अमुद्रित, मुद्राभग्न ३.११.१०
वियक्खण–विचक्षण ८.२.२४;११.६.६
वियड–विकट, विस्तीर्ण २.१४.९;५.९.११
वियडयड–विकटतट, विस्तीर्ण १०.१६.१
वियप्प–विकल्प १०.२.१०; ११.४.८
वियप्पण–विकल्पना ८.७.१
वियप्पिअ–विकल्पित ९.१३.३
√वियंभ–वि + जृम्भ् °इ ९.१३.७; ११.१३.४ वियंभिवि ६.१४.६
√वियर–वि + किर् °इ ४.११.५
वियल–विकल ४.२२.१९;९.७.१२
वियलंग–विकलाङ्ग ९.१३.१६
√वियलंत–वि + गल् + शतृ १.७.४
वियलपाण–विकलप्राण ९.१४.७
वियलमइ–विकलमति ६.१०.१३
वियलिंदिय–विकल + इन्द्रिय ११.१३.४
वियलिय–विगलित १.१५.४
√वियस–विकस् °इ ४.१५.१४
√वियसंत–विकस् + शतृ ५.९.७
वियसिय–विकसित ३.१२.११;४.१२.४
वियाण–वितान ४.१८.४; ५.१.१३
√वियाण–वि + ज्ञा °इ २.७.२;८.१५.११
वियाणिय–विजानित ११.१२.९
वियार–विकार २.१७.११;१०.२.१०
वियार–विचार ८.६.१०
वियारिअ–विदारित ६.११.८
√वियारिज्ज–वि + कृ (कर्मणि) °इ १०.५.२
वियास–विकास करनेवाला १०.१.१४
√वियास–वि + काश् + णिच् °इ ८.१६.७
√विरअ–वि + रचय् ; विरइवि २.५.१४; विरएवि ४.१७.१६
विरइ–विरति ११.८.६
विरइअ–विरचित ३.१४.२६;१०.२६.१३
विरइज्ज–वि + रच् °उ १.४.१०;९.१२.१३
विरइय–विरचित ८.२.७;९.१२.१
विरइयंजलि–विरचित + अञ्जलि १.१४.१
√विरज्जमि–वि + रज् °मि ८.७.९
√विरम–वि + रम् °इ ५.७.२६
√विरय–वि + रचय् °इ ४.१५.४
√विरयंत–वि + राज् + शतृ ४.५.१;४.७.८
विरयण–विरचना, सजावट ८.१६.७;९.१२.१५
विरयत्त–विरक्त १०.२०.६
विरसक्खर–विरसाक्षर ४.२.८
विरहग्गि–विरह + अग्नि ८.१४.२०

विरहाउर–विरहातुर ३.१२.१
विरहाणल–विरह + अनल ४.११.१
विरहिअ–विरहित १०.२२.७
विरहीयण–विरहीजन ८.१४.७
√विराअ–वि + राज् °इ ४.१७.८
विराइय–विराजित ५.२.६;१०.२४.१४
विराय–विराग ८.१२.२
√विरायमाण–वि + राज् + शानच् + क (स्वार्थे) २.३.७
विरायवंत–विराग + मतुप्, विरागवन्त ८.१०.१५
√विरुज्झ–वि + रुध् °इ ४.२.१
विरुद्ध–विरुद्ध १०.४.१०
विरूअ–विरूप, रूपहीन ९.१२.५
विरूव–विरूप, कुरूप २.१६.१४
विरूवअ–(i) वि + रूप्यक, रूप्यक-रहित (ii) विरूपकः, कुरूप ५.१३.३१;९.१२.५
विरूढ–विरूढ, आरूढ ७.२.१३
विरेणु–(तत्सम) (i) रेणु बिना (ii) विशिष्ट रेणु ४.१८.६
विरोह–विरोध ५.१३.२३;७.१३.१३
विसयजीहा–विषय (कामभोग), जिह्वा ३.७.१४
विसयंध–विषय + अन्ध ९.११.१५
विसयसार–विषयसार (i) प्रदेशोंमें श्रेष्ठ (ii) भोगोंमें श्रेष्ठ १.६.४
विसयसुक्ख–विषयसुख ९.७.१५
विसयसुह–विषयसुख ९.६.७
विसयासत्त–विषयासक्त ९.५.१२
विसयाहिलास–विषयाभिलाष २.१८.४
विसर–विस्वर–दुःखद २.२०.३
विसरिस–वि + सदृश, विशेषसदृश ५.८.२५; ५.११.१७
विसविल्लि–विषवेल ५.१३.५
√विसह–वि + शोभ् (राज्) सह् °इ ७.१०.२१
विसहर–विषधर (कथा) ४.१०.७;१०.१८.१
विसहल–विषफल ७.४.११
√विसहेव्व–वि + सह् (कर्मणि, भवि०) २.२.८
विसाय–विषाद २.१६.५;११.१.११
विसायर–विष + आकर, जलनिधि १.६.२०
विसाल–विशाल १.१८.१;९.१३.१५
विसिट्ठसहा–विशिष्टसभा १.५.७
विसुद्ध–विशुद्ध २.५.१;४.२२.९
विसुद्धअ–विशुद्ध + क (स्वार्थे) १०.२०.१०
विसुद्धगुणि–विशुद्धगुणी, विशुद्धगुणवान् ३.४.११; १०.२३.११
विसुद्धमई–विशुद्धमति २.७.७;४.७.८
विसुद्धमण–विशुद्धमन ३.५.६
√विसूर–वि + घुर °इ ९.११.११
विसूरिअ–विसूरित, खिन्न ६.८.१२; °य ६.८.१
विसेस–विशेष ६.८.२;१०.२.९
विसोहण–विशोधन ८.१४.१
विह–विध १.२.१०
विहउ–वैभव ३.१२.२०
√विहड–वि + घट् °इ ९.१६.५; °हिं ८.१५.७
√विहडंत–वि + घट् + शतृ ७.६.१३;९.१६.१०; १०.१८.१८
विहडण–विघटन ७.६.१४
विहडप्फड–(दे) व्याकुल ७.१०.२९;८.११;९
√विहडावअ–वि + घट् + णिच् °इ ८.९.६
विहडिअ–विघटित ८.१४.१२
विहंडिअ–वि + खण्डित, आहत ६.८.१
विहत्त–विभक्त ६.८.४; प्रश० ९
विहत्थ–विध्वस्त ७.१.१९
√विहरंत–विहर् + शतृ २.१५.५; ७.१३.१६; १०.१२.४
विहव–विभव, वैभव ५.२.१५;१०.१.१
विहवीहुय–विधवाभूता (स्त्री० विशे०) १.११.५
√विहसंत–वि + हस् + शतृ ५.४.१२
√विहा–वि + भा °इ ४.१७.१५;५.७.४; °इँ (बहुव०) ९.९.८
विहाइय–विभावित, दृष्ट ८.२.२
विहाइय–शोभित ९.८.६
विहाण–विभान, विधान २.१२.३;९.१५.१३
विहि–विधि ३.६.१०
विहिय–वि + धा ३.१०.१०
विही–विधि, दैव ८.९.६
विहीण–विहीन ९.१०.२;१०.२.५
√विहुण–वि + धुन् °वि ९.१९.१७
विहुणिय–विधूनित ५.७.१०;५.७.२२

विहुर–विधुर, विषमपरिस्थिति आपत्ति ६.१२.२; ७.८.१२
विहूसण–विभूषण ८.१५.२
विहूसिय–विभूषित ९.१२.५;११.१४.९
विहोयअ–वैभवयुक्त ९.१२.११
वी–अपि २.८.२
वीअ–द्वितीय ४.१९.१२;५.७.१५
वीण–वीणा ८.९.१७
वीणज्झंकार–वीणाझङ्कार ४.१३.८
वीणाइ–वीणा आदि ४.१२.१३
वीणावज–वीणावाद्य ८.१६.१२
वीणावायण–वीणावादन ५.२.२९
वीणोवम–वीणोपम २.१६.१
वीयराउ–वीतराग १.१७.८;१.१८.३;८.९.१३
वीयसोय–वीतसोका (नगरी) ३.६.५
वीयसोया–वीतशोका ३.३.६
वीर–वीर कवि १.५.४;३.१.४
वीर–वीर, महावीर तीर्थंकर १ मं० १; १.२.१; ११.१.१
वीरकहा–वीर + कथा १.४.४
वीरजिणिंद–वीरजिनेन्द्र ४.४.२
वीरवयण–वीर (कवि) वचन ३.१.१
वीस–विंशति ७.८.१४
√वीसर–वि + स्मृ (बहुव०) ३.२.२
वीसर–(i) विस्वर (ii) वी–पक्षी + स्वर १.६.५
वीसरिअ–विस्मृत ७.६.१९
वीसमण–विश्राम ४.९.१०
वीसोवहि–विंशति + उदधि, बीससागर (काल प्रमाण) ११.१२.५
√वीह–भी °इ ७.१.१५
√वीहंत–भी + शतृ ५.१३.३३;१०.२५.८
वीहच्छ–बीभत्स १०.१७.७;१०.२६.३
वुक्कार–गर्जना (ध्वन्या०) ५.८.१८
वुच्च–वच् °इ ३.१४.१८;५.७.२४;९.१.१९
वुण्णउ–(दे) दीन, उद्विग्न ९.१०.१२
वुण्णिय–(दे) भयभीत ५.३.१२
वुत्तउ–उक्त ४.१४.२०
वुत्त–उक्त २.५.७;१०.१०.२
वुत्त–वृत्त ५.१३.३१
वेअ–वेग ७.१०.१४;१०.१४.१२
वेइल्ल–विचकिल्ल (पुष्पलता) ४.१६.४
वेंतर–व्यन्तर १.१६.७
वेज्ज–वैद्य ११.४.१
वेढिअ °य–वेष्टित ५.३.६;६.१.१३;११.११.३
√वेढिज्ज–वेष्ट् (कर्मणि) °इ ११.७.६
वेमाणिय–वैमानिक ११.१२.७
√वेमेल्ल- वि + मुच् °इ २.२०.२
वेय–वेद २.५.८
वेय–वेग ७.६.६
वेयघोस–वेदघोष २.४.९
वेयण–वेदना १०.२६.५;११.५.८
वेयंड–(?) हस्ति ६.१०.३
वेयल्ल–वेग + ल्ल (मतुपार्थे), वेगयुक्त ३.१२.१२
वेयाल–वैताल ७.१.११;१०.२६.३
वेलाउल–वेलाकूल १०.११.४
वेलाणई–वेलानदी, समुद्रोपकण्ठनदी, देखें : सं० टिप्पण १०.९.८
वेल्ल–वेलि, लता ४.१७.२१
वेल्लपास–वेलपाश, लताजाल १०.२६.८
वेल्लि–वेलि, लता ५.१०.२२
वेस–वेश्या ९.१२.५;९.१३.१
वेस–वेश २.१३.१
वेसपट्ट–वेशपट्ट, पटुवेशधारी ९.१८.२
वेसर–(तत्सम) वेसर, अश्वतर, खच्चर १.१५.४
वेसा–वेश्या ४.२१.१४
वेसायत्त–वेश्यायत्त, वेश्याकी आधीनता, वेश्यागमन ५.९.१६
वेसायण–वेश्याजन ४.२.६
वेसावाड–वेश्यावाट ९.१२.४
वेसिणि–वेषणी, परिचारिका १०.१५.९
वोड–वोड (नट) १०.१४.३
वोमहाअ–व्योम + भाग ५.५.१५
वोरीहल–बेरीफल ८.१५.१३
√वोल–वि + उत्क्रम् °वि १०.१०.२; वोलेविणु ७.१२.१७
√वोक्किज्जमाण–ब्रुड् + णिच् + शानच् ४.१९.२०; ५.८.३७

संजायरइ–संजातरति ५.२.९
संजीवणि–संजीवनी ८.१८.४
संजुअ–संयुक्त १०.२४.१३
संजुत्त–संयुक्त ८.१४.३
संजोअ–संयोग ९.१२.११
संझा–सन्ध्या ५.११.५; ६.१०.१४
संठुविय–संस्थापित, धैर्य बँधाया २.५.१७
संट्ठिय–संस्थित ५.८.२२
√संठवि–सम् + स्था + णिच् + विधि० ४.१८.८
संठाण–संस्थान, पैंतरा, देखें, सं० टिप्पण ५.१४.२१
संठिअ°य–संस्थित ८.१३.३;९.१७.८;१०.१९.११; १०.२६.११
संठिया–संस्थिता (स्त्री०) १.११.७;६.१०.२
√संडज्झमाण–सम् + दह् + शानच् ५.५.११
संढ–षण्ढ, नपुंसक ९.२.५;११.४.६
संत–शान्त (स्थान, मोक्ष) १०.५.१३
संत–श्रान्त १०.८.१२
संतचित्त–शान्तचित्त २.६.६
संतट्ठ–संत्रस्त ७.६.६
संतत्त–संतृप्त °ह ३.१३.१२;६.१.११
संतप्पिअ–सन्तप्रिय ४.२.२
संताविअ–संतापित ५.११.१७;८.१२.५
संताण–सन्तान, सन्तति २.७.१०; १०.१८.८; १०.२१.२ प्रश० १७
संताविअ–संतापित ६.१४.३
संति–शान्तिनाथ तीर्थंकर १.४.५
संतुआ–सन्तुवा (वीरकविकी माता) १.४.८; प्रश १२
संतोस–सन्तोष २.७.३; ७.१३.६
संथउ–सार्थ, वणिक् दल ८.३.११
संथर–संस्तरण, बिछौना १०.२०.११
संथाण–संस्थान, शस्त्रकोष, म्यान ५.१४.१०
संथाविअ–संस्थापित ३.४.७; १०.१४.५
संथुअ–संस्तुत ७.१३.१८
संदण–स्यन्दन ६.४.५;७.१.२०
संदरिसिय–संदर्शित ३.७.९
संदिणी–स्यन्दिनी, राजमार्ग १०.१९.१४
संदिण्ण–संदत्त ५.६.१०; ९.१४.१६
संदीवण–संदीपन १०.८.९
संदीविअ–संदीप्त, प्रज्वलित १०.१५.८
√संदेस–सम् + दिश् °ह ९.३.१
√संध–सन्ध् °वि ७.९.५
संधी–सन्धि १.१८.२३;६.१४.१८
संनिवेसिय–सन्निवेशित ५.१.१२
√संपच्चमाण–सं + पच् + शानच् ५.८.२९
√संपज्ज–सम् + पद् + णिच् °ह (आत्मने०) ९.२.९; १०.२.४;११.७.८
संपण्ण–सम्पन्न ५.३.११
संपण्णय–सम्पन्न + क (स्वार्थे) १०.१९.१६
संपत्त–सम्प्राप्त ३.६.५
संपन्न–सम्पन्न ४.१२.९;९.८.४
संपन्ननाणसा–सम्पन्न (संप्राप्त) ज्ञान, देखें : सं० टिप्पण ३.१.८
संपय–सम्पत्, सम्पदा १.१३.९;४.१४.११; ९.२.८
संपया–साम्प्रतम्, सम्प्रति ६.१.६
संपलित्त–सम् + प्रदीप्त ४.११.१
संपाइअ°य–संपादित ४.९.६; ७.१३.३
संपुण्ण–सम्पूर्ण ३.६.४;९.८.११
संपुण्णिदियत्त–सम्पूर्ण + इन्द्रियत्व ११.१३.६
संपेसिअ°य–सम्प्रेषित २.८.१२;५.४.१७;५.१२.४; ७.११.१०;८.८.१९
√संबज्झ–सम् + बन्ध् °ह ४.२.१
संबोहणालाव–संबोधन + आलाप २.१९.१
संबोहिअ–संबोधित १.१७.१०;८.८.१०
संभव–संभव ८.१२.९
संभारिअ°य–संस्मृत ३.६.५;७.८.९
√संभाव–सम् + भू °ह २.८.१०;११.४.१०
संभाविय–संभावित, सम्मानित ६.११.९
संभावियअ–संभावित + क (स्वार्थे) २.१०.२
संभासण–संभाषण ७.१३.११;११.१४.६
संभूअ°य–संभूत ३.३.७;१०.३.४
√संमाणिज्ज–सम् + मान् (कर्मणि) °ह ८.१६.४
संरक्खिय–संरक्षित ७.६.१२
√संलग्ग–सम् + लग् °ह ४.९.७
संलद्ध–संलब्ध २.११.६
संलीण–संलीन, लगा हुआ ९.१४.१४
संवच्छर–संवत्सर २.५.१०; १०.१५.३
√संवड–सम् + पद् °ह (आत्मने०) ४.११.१५
संवरिय–संवृत्त ८.६.१४;११.८.९

संचलिअ °य-संचालित ४.१४.१; ५.१.१८; १०.४.११
सचित्त-सचित्र, विविध ४.१२.१३
सचेयण-सचेतन ११.५.८
सच्च-सत्य ११.१४.६; °उ-सत्य २.१३.८; ४.१७.४
सच्चरिअ °य-सच्चरित्र ८.२.४; प्रशा० ११
सच्चविय-(दे) दृष्ट, विलोकित ७.६.१४
सच्छ-स्वच्छ ६.१.४
सच्छंद-स्वच्छन्द १०.७.२
सच्छमई-स्वच्छमति १.२.३
सच्छाय-सच्छाया, शोभायुक्त ३.१३.४
सछंद-(i) स्वच्छंद, (ii) स + छन्द १.३.३
सज्ज-सर्ज वृक्ष ५.८.१०
सज्ज-सज्जित, तैयार ७.३.१२; ७.१२.१५
सज्जण-सज्जन १.८.२; ८.८.५
सज्जिअ-सज्जित ४.९.९; ७.१२.१८; °य ४.२०.४; ७.८.१३
सज्झ-साध्य ३.९.४; ९.५.१२
सज्झइरि-सह्यगिरि, सह्याद्रि ४.१५.९; °गिरि ९.१९.४
सज्झाअ °य-स्वाध्याय २.८.३; १०.२३.४
सडप्प-(दे) झटपट ५.१४.२०
√सडंत-षद् + शतृ ६.१०.११
√सण-शण धान्य १.८.५
सणाह-सनाथ (स्त्री० विशे०) १.१०.६
सणेह-स्नेह ९.१२.८
√सण्णंत-सम् + ज्ञप् + णिच् (स्वार्थे) + शतृ १०.१६.७
सण्णाण-स्व + ज्ञान २.१.५
सण्णालुअअ-संज्ञालु + क (स्वार्थे) २.६.९
सण्णास-संन्यास ३.९.१९; १०.२४.१२
सतक्क-(i) सतर्क (ii) सतक्र, मट्ठे सहित ८.१३.१३
सताल°-सताल, सरोवरयुक्त ३.२.५
सत्त-सप्त ३.१.६; ४.५.१३
सत्त-सत्त्व ६.९.३
सत्तंग-सप्त + अङ्ग १.१२.६
सत्तगोयावरीभीम-सप्तगोदावरीभीम (तीर्थ) ९.१९.१४
सत्तम-सप्तम १.१६.८; २.३.६
सत्तरि-(हि) सत्तर (७०) प्रशा० १
सत्तारह-सप्तदश, सत्रह ११.१०.७
सत्ति-शक्ति ७.८.१२; ९.१९.१६
सत्तिरूव-शक्तिरूप, शक्ति अनुसार ८.२.६
सत्तु-शत्रु १.१.८; ६.१.१८; ६.४.२; °धर-शत्रुरूपी पर्वत ५.४.९
सत्थ-सार्थ समूह २.१३.१
सत्थ-शास्त्र ४.९.५; ४.१२.९; ६.१४.५; ९.१५.१३
सत्थत्थ-शास्त्र + अर्थ ५.१.१८
सत्थाण-स्वस्थान ५.१.२१; °अ-क(स्वार्थे) ७.१३.१४
सत्थिय-स्वस्तिक २.९.१०
सत्थी-स + स्त्री १०.२०.८
सदप्पण-सदर्पण ८.३.१४
सदक्ख-सद् + अक्ष ४.१७.७
सदाण-स + दान, दानयुक्त ४.५.१७
सदाण-स + दान, मदयुक्त हस्ति ४.२१.१३
सदित्त-सदीप्त, दीप्तियुक्त ४.५.१४
सद्द-शब्द १.१७.३; २.२०.६; °त्थ, °अर्थ २.५.९; °सत्थ-°शास्त्र, व्याकरण १.३.२
सद्दूल-शार्दूल ५.८.३५
सद्दोहम्मिंदु-शब्द + ओघ + इन्दु
सद्ध-श्रद्धा १.५.२९.९.१२.१६
सद्ध-श्रद्धः, श्रद्धावान् ९.१७.१२
सद्धालु-श्रद्धालु १.३.८
सधर-स + धर, पर्वतसहित १.१०.१४
सधर-स + धरा, धरासहित ५.१०.१
सधूमग्गि-स + धूम्र + अग्नि १०.२६.२
सनियंसण-सनिवसन ४.१९.३.
सन्नज्झ-सम् + नह् (कर्मणि क्तः) सन्नद्ध °इ ६.१.९; सन्नहवि ७.३.२; सन्नहिवि ६.२.७
सन्नाम-सन्नाम (धारक) ५.१३.१२
सन्निह-सन्निभ ५.१४.७; ९.७.११; १०.२३.९
सपत्त-सपत्र, बाणसहित ७.८.१३
सपरियण-सपरिजन ३.१२.२०; ४.७.१; ७.१२.१५
सपरियर-सपरिकर १०.२०.८
सपलास-(i) स + पलाश-राक्षस सहित (ii) स + पलाश वृक्षसहित ५.८.३४
सपहरण-सप्रहरण ६.११.३
सपिअ-सप्रिया १०.८.१६
सप्प-सर्प ३.७.१२; ९.९.५; १०.१२.४
सप्पपंति-सर्पपङ्क्ति ७.९.४

सप्पवंच–सप्रपञ्च १०.२५.३
सप्पसंका–सर्पशङ्का १.९.८
सप्पुरिस–सत्पुरुष ७.९.२;११.१४.६
सबंधव–सबान्धव ८.१३.८
सबर–शबर, भील ५.१०.९
सबल–स + बल, सैन्यसहित ५.६.१;६.४.२
सब्भाव–स्वभाव २.१.४
समज्ज–सभार्या ४.६.७;७.१३.२
सभोअ–सभोग ४.५.१२
√सम–शम् °इ २.८.१०;४.१७.४;१०.१७.१७
समअ–समय २.२.६;१०.१७.३
समउं–समकं, सह २.१३.६;८.१६.१३
समउसिय–समवासित, वस्त्र पहनाये १०.१९.८
समगंध–सम + गन्ध, गन्धसहित ५.९.६
समग्ग–समग्र ४.१५.१६
समग्ग–स्वमार्ग ९.८.४;९.८.९
समग्गल–सम् + अग्रल, समधिक ९.८.२२
समचाइअ–(दे) बलवान् (?) ६.१४.५
समत्त–समस्त ५.१२.८
समत्त–समाप्त ५.१४.१६;६.१४.१८;८.१६.१८
समत्थ–समर्थ २.१.८;७.१२.८
√समत्थमाण–सम् + अर्थ + शानच् १.५.१२
समत्थिय–समर्थित ८.११.१
√समप्प–सम् + अप्, समप्पंति (वहुव०) ७.४.५
समप्पिअ–समर्पित १.१०.११
√समभाव–सम + भू, समान होना °हिं (बहुव०) १०.५.६
समय–समद मदयुक्त हस्ति ५.७.१
समयण–समदन, सकाम २.५.५
समरखेत्त–समरक्षेत्र ६.४.२
समरंगण–समराङ्गण ५.४.१७
समरि–शबरी ८.१६.१३
समरीसी–सदृशता १.१५.१२
समलंकिय–समलंकृत ८.९.१०
समवसरण–समवशरण १.१.५;८.४.८
समवाअ–समवाय, अभिप्राय २.१.१;९.११.१४ °य १०.३.२
समसंत–सम + सत्त्व, समान बलवाले ६.९.१
समसीसिया–समशीर्षिका, स्पर्द्धा ७.६.२९
समसीसी–समशीर्षता, समानता १.१५.१२
समहत्थ–पैंतरा, देखो सं० टि० ५.१४.२१
समहिट्ठिय–सम् + अधिष्ठित, ५.९.८
समहिट्ठिअअ–समहृषित ९.१८.७
समाण–समान, सार्द्धम् ४.२.७;४.१२.३;१०.८.२
समाण–स + मान, मानसहित ९.१७.१४
√समाणय–सम् + आ + नी °णियइ ५.४.१७
समाणिअ–सामानिक छन्द ९.१७.१४
समाणिअ–समाप्त ११.१५.१०
√समार–सम् + आ + रच् °इ ३.१२.१४
समारद्ध–सम् + आरब्ध ५.१४.११
√समारोव–सम् + आ + रोप् °ए(आत्मने०)५.५.१३
समालत्त–समालप्त, कथित १०.९.५
समावासिय–समावासित, सुवासित ४.१६.९
समास–(i) समास रचना (ii) स + मास, मासयुक्त १.३.६
√समास–सम् + आ + श्वस् °इ २.१३.१२
समासाइय–समासादित, प्राप्त ९.१९.१२
समासीसदाण–समाशीषदान ५.५.१४
समाहअ–समाहत ७.१०.११
समाहि–समाधि ३.१३.१५;१०.१२.१;११.१५.७
समिद्ध–समृद्ध ८.१६.३
समिद्ध–समृद्धि ३.१२.९
समिद्धि–समृद्धि १.१३.३
समिय–शमित १.११.१६
समियंक–स + मृगाङ्क, मृगाङ्क (राजा) सहित ५.४.१८
समी–शमी, छोंकार वृक्ष ५.८.१०
समीरण–समीर + न (स्वार्थिक) १.८.१
समीरणवलय–समीरवलय, वातवलय, देखें : सं० टि० ११.१०.२
समीव–समीप ५.२.२
√समीहमाण–सम् + ईह् + शानच्२.३.५;५ १.१८
समुग्गअ °य–सम् + उद्गत ८.१३.११;९.१३.१६
समुग्गीरिय–सम् + उद्गीरित समुद्गीर्ण १.१८.४
समुच्चय–समुच्चय, साथ ८.२.१४
समुच्चय–सम् + उच्च + क (स्वार्थे) ५.१३.१७
समुज्जोअ–समुद्योत ५.२.१
समुज्जोइय–समुद्योतित १.१८.३

√समुट्ठंत–सम + उत् + स्था + शतृ ४.५.७
समुट्ठिय–समुत्थित ९.१८.७
समुब्भिय–समुद्भित ८.१४.११
समुब्भिय–समुद्धृत ८.७.१६
समुद्द–समुद्र ५.३.७; ८.१४.११; ९.१६.१
समुद्दत्त–(श्रेष्ठि) ४.१२.१
समुद्दित्त–समुद्दीप्त ४.५.४
समुद्धरिअ–समुद्धृत ३.७.१५
समुद्धाइय–समुद्धावित ५.५.१५; १०.२६.१
√समुप्पाअ–सम् + उत् + पद् + णिच् °ए (आत्मने०) १.९.५
समुप्फालिय–समुत्फालित ५.६.६
समुब्भव–समुद्भव ११.९.४
√समुब्भासअ–सम् + उद् + भास् °ए (आत्मने०) १.१८.१०
√समुल्लालयंत–सम् + उत् + लल् + णिच् + शतृ १०.२६.२
समुहु–सन्मुख ५.११.२०
समोसारण–समुत्सारण, हटाना ५.१.२०
सम्मइ–सन्मति, तीर्थंकर महावीर १.१.१२
सम्मइ–सन्मति, सद्बुद्धि १.१.१२; २.१.२
सम्मज्जण–सम् + मार्जन ५.१.२४
सम्मत्त–सम्यक्त्व २.८.१; ३.७.२; सम्मत्तदिट्ठि–सम्यक्त्वदृष्टि २.१८.१; °धर ३.५.९; °वित्ति–°वृत्ति ११.१३.१०
सम्मन्नाण–सम्यक्ज्ञान १०.२३.७
सम्मन्नाणिअ–सम्यक्ज्ञानी ९.१.१६
सम्माण–सन्मान ७.६.१२
सम्माणिअ–सन्मानित ४.८.९; ७.१२.११; ११.१५.१०
सम्मुह–सन्मुख ११.८.१०
सय–शत ६.१४.१४; ११.३.२
सयंभू–स्वयम्भू (कवि) १.२.१२
सयंभूएव– स्वयम्भूदेव (कवि) ५.१.१
सयखंड–शतखण्ड १०.६.१६
सयड–शकट ५.७.१२
सयण–शयन ९.१३.१७; १०.८.१६
सयण–स्वजन, सज्जन ४.६.७; ६.११.९
°विंद–स्वजनवृन्द ८.१०.३
सयणिज्ज–शयनीय, भोग्य ३.११.१३
सयपंच–शतपञ्च ३.४.७
सयल–सकल ३.४.६
सयवत्त–शतपत्र १.७.१; ४.१२.४; ९.९.२
सयसक्कर–शत + शर्कर, शतधाकृत शतशः विदीर्ण ९.१५.१५
सया–सदा ३.१.११
सयास–सकाश, पार्श्व ११.१.२
सर–स्वर ४.१६.७; ५.८.१९; ६.४.९
सर–शर ४.१०.८
सर–सरोवर ४.१९.३
√सर–स्मृ °इ १०.७.१०
√सरंत–स्मृ + शतृ २.५.१४; ४.५.६; १०.७.३ १०.७.३; °उ (स्वार्थे) १०.७.४
√सर–सृ °इ १०.२.१०; १०.२१.२१
√सरंत–सृ + शतृ ३.६.३
सरड–सरठ, करकैंटा ९.१०.७
सरण–शरण १.१०.८.३.९.१६
सरणाइय–शरणागत ५.१३.३
सरणागय–शरणागत ७.१२.८
सरधोरण–शरधोरणः (कर्तरि), शरधारक, धनुष ३.१२.१६
सरपालिअ–(i) सरपालि-सरोवर पंक्ति, (ii) स्मर-पालित, मदनपोषित (वेश्याएँ) ३.२.६
सरभेय–स्वरभेद ४.१५.३
सरमंद–स्वरमन्द ४.८.३
सरल–सरल वृक्ष ३.१.१७; ५.१०.२०
सरलंगुलि–सरल + अङ्गुलि १.८.७
सरलत्तण–सरलत्व, सीधापन ९.१२.१४
सरलाइय–सरलायित, सरलित ४.१३.६
सरलालिय–स्वरललित, ललितस्वर ५.६.६
सरलाविय–सरलायित, सरलित ४.१५.८
सरवत्त–शरवक्त्र, बाणमुख, बाण ७.८.१
सरवर–सरोवर १.७.१; ४.२०.१; ५.९.७
सरस–सरस, रसयुक्त १.५.१०
सरस–स + रस, सङ्ग्रामरस, वीररस ५.६.१
सरस–(तत्सम) (i) स + रस, (i) रसयुक्त (ii) सस्नेह, सानुराग (iii) घनयुक्त ९.१२.१८
सरसइ–सरस्वती, देवी १.४.७
सरसव–सर्षप, सरसों ७.२.९

सरसव्वण–(i) सरस + व्रण, नवीन व्रण(ii) शर + स + व्रण, बाणके व्रणसे युक्त ६.६.१०
सरस्सई–सरस्वती ३.१.४
सरह–शरभ, शार्दूल १.१.८; ५.८.३१; ७.४.३
सरह–स + रथ ५.८.३१
सरह–स + रभस् सोत्कण्ठा, २.१५.१४; ७.११.८
सरहस–स + रभस् ९.८.१४
सराढ–स + राढ, राढ़देश सहित ९.१९.१०
सराय–स + राजन्, राजासहित ६.१.१६
सरावणीय–(i) रावण सहित (ii) रावण वृक्ष सहित ५.८.३३
सरासण–शर + आसन, धनुष ७.९.१२
सरि–सरित् १.५.१०; ४.१०.४; ६.९.१०
सरिअ–स्वरित १.६.१०
सरिअ–स्मृत ६.११.३
सरिच्छ–सदृश, २.१८.१५; ९.१२.९
सरिय–स्वरित ६.७.२
सरिस–सदृश ५.९.१; ६.१.२; १०.१.११
सरीर–शरीर २.४.२; ४.१९.१०; १०.२६.५
सरूअ–स्व + रूप १.१८.१२; ४.१७.१२
सरूव–स + रूप, सुन्दर ९.१२.१५
सरूवअ–(i) स + रूप्यक ९.८.२१
सरूवायर–स्वरूपाकार ९.११.१५
सरोरुह–सरोरुह, कमल १.१८.७
सरोस–सरोष ५.१३.१२
सलक्खण °उ–सलक्षण ५.४.१९; ८.२.१२; ४.७.११
सलज्ज–लज्जा सहित ७.२.४; १०.८.२
सलवट्टि–(दे) सलवट, सिकुड़न ४.१२.१२; ४.१४.७
√सलसल–सलसल्, °लति (बहुव०) ९.१०.३
सलसलिय–सलसलित (ध्वन्या०) ५.६.८
√सलह–श्लाघ्, °हंति २.११.३
√सलहंत–श्लाघ् + शतृ २.७.११
√सलहिज्ज–श्लाघ् (कर्मणि) °इ ४.९.८; ५.८.२८
सलील–स + लीला, लीलायुक्त ४ ११.५
सलेव–स + लेप, सदर्प ६.११.५
सलोण–(i) स + लवण (ii) स + लावण्य १.६.११
सल्ल–शल्य, कांटा २.१८.१५; ५.११.१५
सल्लइ–सल्लकी वृक्ष ४.१६.४; ४.२१.१
सल्लतुल्ल–शल्यतुल्य ३.१३.१०
सल्लिय–शल्यित, शल्ययुक्त ५.४.६; १०.१९.१२
सल्लेहण–सल्लेखना १०.२४.१०
सव–शव १.११.१४
√सवंत–स्रव् + शतृ ८.२.४
सवचूरिअ–सर्वचूरित ६.८.११
सवण–श्रवण, कर्ण, ४.८.१६
सवण–श्रमण २.८.५; २.१८.२; °संघ १०.२४.१३
सवत्ति–सपत्नी, हि० सौत ९.२.३
सवर–शबर ५.१०.१०
सवहु–सवधू ८.१३.८
सवातिण्णि–हि० सवातीन (३¼) ११.१०.१०
सवासण–(i) स + वासन (हि० बासन), भाजन-सहित, (ii) शव + आसन, राक्षस८.३.१२
सवाह–स + बाष्प १०.१३.१०
सविडंब–स + विडम्ब(ना) ९.१०.३
सविणय–सविनय १.२.१; २.१.१; ४.१.१३; १०.२५.३
सवियप्प–सविकल्प २.१.११; १०.४.१
सवियास–स + विकास ५.१४.२२
सविलक्ख–सवैलक्ष्य, लज्जित ९.२.२
सविवेय–सविवेक ८.२.७
सविसेस–सविशेष, विस्तारपूर्वक ५.४.९; ६.११.१०; ८.५.११
सविसेसदिक्ख–सविशेष दीक्षा २.२०.१
सविहीसण–(i) सविभीषण, विभीषण सहित (ii) विभीषणः (कर्तरि), भयभीत करनेवाले जंगली पशुओं सहित ५.८.३४
सव्व–सर्व २.१९.४; ३.९.६
सव्वंग–सर्व + अङ्ग १.८.५
सव्वगुण–सर्वगुण ३.३.१६
सव्वण– सव्रण, व्रणयुक्त ७.२.२
सव्वण्हु–सर्वज्ञ १.१८.१
सव्वत्थ–सर्व + अर्थ ८.९.९
सव्वत्थगय–(i) सर्वार्थगत, सर्वपदार्थज्ञात (ii) सर्वार्थ(सिद्धि)गत (iii) कैवल्यप्राप्त ११.१.२
सव्वत्थसिद्धि–सर्वार्थसिद्धि (स्वर्ग) ११.१२.२; ११.१५.७

सब्बल–शवल शस्त्र, हि० सब्बल ७.६.१
सब्बवाणी–सर्ववाणी, सर्वभाषाएँ १.१७.४
सब्बस–सर्वस्व १.१०.९
सब्बस्स–सर्वस्व ६.१.१
सब्वहि–स + व्याधि ११.५.८
सब्वावयव–सर्व + अवयव १.१.६
सब्वास–सर्व + अशः (कर्तरि) अग्नि ५.४.४;५.५.३
सब्बास–सर्व + आशा ४.६.२
ससंक–शशाङ्क ४.१२.४
√ससंत–श्वस् + शतृ ९.२.२
ससद्द–ससाध्वस् २.१२.५
ससर–(i) स + शर, शरयुक्त (ii) स + सर, सरोवरयुक्त ५.८.३२
ससरीर–स्वशरीर १०.२.११
ससहर–शशधर ७.३.३४;८.१२.४
ससि–शशि २.११.६;४.१३.९;११.६.५; °कंति–चन्द्रकान्ति ९.२.१
ससिलंछण–शशिलाञ्छन, मृगाङ्क राजा, १०.१८.९
ससिहर–शशधरः ५.२.२१
ससी–शशि ४.७.४
ससेण–स + सैन्य ४.५.८
√सह–राज् °इ १.१२.७; ८.१३.१३; °हि (बहुव०, आत्मने०) ८.३.१३
√सहंत–राज् + शतृ १०.२६.५
सहण–सहन, हि० सहना ४.१४.५;१०.२५.८
सहयर–सहचर ५.२.१५
सहयार–सहकार, आम्र ४.१५.१३
सहयारि–सहकारी (कारण) १०.४.३
सहल–(i) स + फल, फलयुक्त (ii) सफल ३.२.९; ६.१२.३;९.१५.२
सहल–सरल, आसान ९.१५.२
सहस–सहस्र ३.९.१७;४.२.९
सहसक्ख–सहस्राक्ष, इन्द्र १.१.५
सहसट्ठ–सहस्र + अष्ट, अष्ट सहस्र ५.१४.९
सहसत्ति–सहसा + इति १.१४.२
सहससिंह–सहस्रशृङ्ग-पर्वत ५.२.८
सहा–सभा २.९.१८;४.५.३
सहाअ–साहाय्य ९.८.५;१०.२४.७
सहायर–साहाय्यकरः, सहायक ८.१६.१

सहाव–स्वभाव १.२.३;९.६.७
सहि–सखी १०.१७.१६
सहिअ–सहित १.३.९;८.१५.१६; °य ४.४.७
√सहिज्ज–सह् (कर्मणि) °हो (विधि०) ६.३.८
सहुं–सह, साथ १.१८.१४; ३.१०.३
सहुं–सभा २.३.९
सहुट्ठउ–स + ओष्ठ ३.११.८
√सहेउं–सह् + तुमुन् १०.२६.६
सहोयर–सहोदर २.१३.१०; प्रश० १३
सहोयरि–सहोदरा, भगिनी ११.३.५
साइणि–शाकिनी, डाकिनी ९.१२.९
साकंद–स + आक्रन्द(न) १०.१८.९
साडण–शाटन, नष्ट करना ३.६.२;११.८.८
साडिय–शाटित ११.९.१०
साण–श्वान ९.११.१३
साणंद–स + आनन्द ४.१७.८
साणुत्तर–स + अनुत्तर (देव विमान) ११.१२.५
साम–साम (नीति) ५.३.४
साम–साम्य ४.१४.५
सामग्गि–सामग्री ४.१५.६;१०.१३.५
सामण्ण–सामान्य ४.१४.९;८.८.११
सामंतचक्क–सामन्तचक्र, सामन्तवृन्द ५.१.२३
सामरिस–स + अमर्ष ६.६.७
सामल–श्यामल,नीलवर्ण २.१५.३; ५.८.२३;७.९.६
सामली–श्यामल (स्त्री० विशे०), हि० सांवली ३.३.९;४.१८.१२
सामाणिअ–सामानिक छंद ९.१७.१४
सामि–स्वामी ६.८.३; °अ °क (स्वार्थे) ८.६.८; °य–°क (स्वार्थे) २.७.८;६.८.७
सामिसाऊ–स्वामिसार, स्वामिश्रेष्ठ ९.१०.११; ११.३.६
सामी–स्वामी १.११.११
सायंभरी–शाकम्भरी (नगरी) ९.१९.९
सायड्ढण–स + आकर्षण, खींचनेवाली ९.१२.१५
सायत्त–स्वायत्त १०.१०.१६
सायर–सागर (कालप्रमाण) २.१०.१०;८.२.१४
सायर–सागर(दत्त) (श्रेष्ठि) ८.८.१९;१०.१९.१२
सायर–सागर, समुद्र १.३.७; °चद–°चन्द्र (राजकुमार) ३.६.४;३.१०.४;°जल १०.११.३;

°दत्त (श्रेष्ठि) ४.१४.१२; °दत्ताइ सागर-दत्त आदि ८.५.४; °ससि-°शशि, सागरचन्द्र (राजकुमार) ८.२.१२
सार-(1) सार वृक्ष (ii) सार-सारभूत १.७.३
सार-सार, सारभूत ७.२.११
सार-सारण, सरकाना, खिसकाना ८.१७.८
सारंग-सारङ्ग, मृग ४.१८.५; १०१.८
सारभूअ-सारभूत ५.१२.७
सारिच्छ-सदृश ४.१.२
सारिउ-सार + वत्, श्रेष्ठ (नारियाँ) १.१६.७
सारिमर-(दे) महावत ६.७.१३
साल-शाल (वृक्ष) ४.२१.१
साल-वाद्य ४.८.४
सालत्तय-स + आलक्तक (हि० अलता) १०.१६.२
सालस-स + आलस्य ४.७.३
सालि-शालि धान्य ५.९.६; ९.४.११
सालिछेत्त-शालिक्षेत्र ४.६.३; ९.४.९
साली-शाली, धान्य ४.६.१२
सावज्ज-सावद्य १.१८.५
सावण्ण-सामान्य ४.११.१५
सावय-श्वापद ८.३.६
सावय-श्रावक २.१२.१; °कुल ४.३.३; °घर ३.९.११; °वय-°व्रत ३.१३.११; ४.३.६
सावलेड-सावलेप, सदर्प ५.१२.२३
सावहि-सव्याधि ३.१४.१८
सावहि-स अवधि ११.५.८
सास-श्वास १.१४.९; ९.१४.२
सासण-शासन, धर्मानुशासन ४.४.१२
सासमरु-श्वासमरुत् १.९.५
सासय-शाश्वत् १.१.९; ३.८.१२; °सोक्ख-°सौख्य ११.१५.२
सासयसुह-स्व + आश्रय + सुख, आत्मसुख ३.६.५
सासवार-स + अश्ववार, सवारसहित ७.१.१९
सासिय-शासित ९.१७.२
सासुया-श्वश्रू + का (स्वार्थे), हि० सास १०.१४.४
साह-शाखा १०.१४.१०
√साह-साध् + णिच् (स्वार्थे) °इ ४.६.१० १०.११.१; °हवि ४.१८.१४ °हिवि ४.१८.४
साहण-साधन २.२.५
साहण-साधन, सैन्य ४.२०.५; ७.२.२
साहणिअ-साधनिक, सेनापति ५.६.१
साहयवट्टि-साधकवर्तिका १.६.८
साहरण-साभरण ७.१२.६
साहस-साहस, पराक्रम ५.३.१
साहसिअ-साहसीक, साहसी १०.३.११
साहार-स + आधार ७.१२.१७
√साहार-सम् + धारय् °इ ११.२.९
साहारण-साधारण १०.४.१
साहिअ°य-साधित, कथित ४.२२.२५; ६.११.९; ७.८.३
साहिज्जअ-साहाय्य, सहायक ११.४.१
साहिमाण-साभिमान ५.१२.२१
साही-(दे) रथ्या, मार्ग ५.१०.७
साहीण-स्वाधीन ९.११.१; १०.१०.११
साहु-साधु २.३.४; ८.९.१४
साहुक्कारिअ-साधुकारित ७.१३.७
साहुजण-साधुजन १०.३.११
साहुसील-साधुशील ६.१.३
√सि-अस्ति २.१८.२; ४.१७.२
सिअ-सित, श्वेत ४.५.१५
सिव-शिव १०.५.१३
सिंग-शृङ्ग, हि० सींग ३.१.१४; ४.१.६; १०.१.१०
सिंगार-शृङ्गार ४.९.८; ५.२.१४
सिंगाररस-शृङ्गाररस ४.१८.१४
सिंगारवीर-शृङ्गारवीर (रसात्मक काव्य) १.१८.२२; ३.१४.२५
सिंगारासव-(i) शृङ्गार + आश्रय
(ii) शृङ्गार + आशय ८.४.२
सिंगाहय-शृङ्ग + आहत ५.८.१७
सिंगि-शृङ्गी, शृङ्गयुक्त ११.१३.५
सिंघासण-सिंहासन ५.१.७; १०.१३.४
सिंचिय-सिंचित ३.७.७
सिंदि-सिंदी, खजूरी, खजूरका वृक्ष ५.८.१२
सिंदुवार-वृक्ष ४.२१.३
सिंधु-सिन्धु (नदी) °तड-°तट ९. १९. ११; °तीर ९.१७.१७
सिंधुर-सिन्धुर, हस्ति ८.७.१७
सिंधुवरिसी-सिन्धुवर्षी (नगरी) १.५.१

सिंसमी–शीशम (वृक्ष) ५.८.१०
सिंहल–सिंहल (देश) ९.१९.१
सिंहवार–सिंहद्वार ५.१०.१९
सिंहासण–सिंहासन १.१२.७;१.१४.२
सिक्कार–सीत्कार १.८.६
√सिक्कारंती–सीत्कृ + शतृ °ी(स्त्रियाम्)८.१६.१३
सिंक्किरी–(दे) पताका १.१५.७
सिक्ख–शिक्षा ८.८.१८
सिक्खापमाण–शिक्षाप्रमाण २.१९.६
सिक्खिअ °य–शिक्षित ४.१७.२१; ५.२.१५
°या–शिक्षिता (स्त्री०) ४.१२.१०
सिग्घ–शीघ्र ३.५.११;१०.१०.४
सिग्घजाण–शीघ्रयान, विमान ६.१०.११
सिग्व–शीघ्र २.१५.१२
सिज्ज–शैय्या १०.१६.१०
√सिज्झ–सिध् °इ १०.२.६;°उ(आत्मने०)३.९.२
सिट्ठ–शिष्ट, कथित ९.१२.६; °अ ९.४.१३; °उ १०.२.५ °जण–शिष्टजन ९ १५.४
सिट्ठि–श्रेष्ठि ३.११.१
सिढिल–शिथिल ९.१८.५
सिण्ण–सैन्य ७.३.३
सिणेह–स्नेह ५.९.४
सित्त–सिक्त ४.११.४;४.१९.२
सिद्ध–(i) सिद्ध (ii) शिक्षित ११.१.२;११.१२.११
सिद्ध–सिद्ध, तान्त्रिक, अघोर (पंथी) ६.७.७
सिद्ध–प्राप्त ९.४.१२; °उ १०.३.६
सिद्धंत–सिद्धान्त १०.४.७
सिद्धविणास–सिद्धविनाश, उपलब्धनाश ९.१०.२२
सिद्धालय–सिद्धालय, मोक्षस्थान १०.२४.९
सिद्धिणअ–सिद्धिनय, दैवयोग ९.८.१५
सिद्धिवहु–सिद्धिवधू, मोक्षवधू ४.४.११;८.४.१०
सिप्प–शिल्प २.९.८
सिप्पिणी–(i)शिल्पिनी (ii) सूक्ति,हि० सीपी ७.४.२
सिमिर–शिविर, स्कन्धावार, सैन्य ५.१०.३;६.१.१३ ११.७.५
सिय–लक्ष्मी, श्री, शोभा ४.१६.८;९.३.१५
सिय–सित, श्वेत ४.११.१४; °गुणधवलिमा१.१०.५; °छुह °सुधा, चूना, २१६१०; °थण गोरस्तन ४.७.४; °पंचमी-शुक्लपक्षपंचमी ३.१२.१८; °वड-श्वेतपट १०.१८.९; °सत्तमि-शुक्लसप्तमी १०.२३.१०;°हारउ-श्वेतहार धारिणी (स्त्री० विशे०) १.६.८
सियाल–शृगाल, हि० सियाल, सियार ९.११.२
सिर–शिरा १०.१३.८;११.६.२
सिर–शिर २.१६.८; ५.१३.१०; १०.१९.१७ °कमल १.१३.१; २.१०.१; °भार ५.२.१९ °हिय-शिरो धृत १०.१९.७
सिरस–सिरीष (पुष्प) ८.१०.८
सिरसिय–सरसिज, कमल ८.१२.४
सिराबंध–शिराबन्ध ४.२२.१७
सिरि–श्री २.१४.६; ४.१६.८; °खंड–श्रीखण्ड ७.१२.२;८.१५.८; °तक्खड–श्रीतक्खड(श्रेष्ठि) १.६.१; °लाडवग्ग श्रीलाटवर्ग (गोत्र) १.४.२
सिरिस–सिरीष पुष्पवृक्ष ५.८.१०
सिरिसंतुआ–श्रीसन्तुवा (वीरकविकी माता) प्रश० १२
सिरिसेण–श्रीसेना (श्रेष्ठिपत्नी) ३.१४.८
सिरिमज्झदेस–श्रीमध्यदेश ९.१९.१३
सिरी–श्री ४.५.३; °घर ८.२.१३; °पव्वय–श्रीपर्वत ९.१९.२
सिल–शिला १.९.६;८.६.१४
सिलायड–शिलातट ६.९.१०;९.९.१०
सिव–शिव, शृगाल ७.१.१२
सिव–शिव (धूर्तनाम) ९.१०.२३;१०.१८.१
सिवएवि–शिवदेवी (नेमि तीर्थंकरकी माता)९.१४.७
सिवकुमार–शिवकुमार (राजपुत्र) ८.१३.४; °कुमारि ३.५.११; °कुमाराहिहाण शिवकुमार + अभिधान (नाम) ३.४.४;
सिवधाम–शिवधाम, मोक्ष ११.१.१४; °पह–शिवपथ ९.१०.१४; °वहु, °वधू–मोक्षलक्ष्मी ११.१४.११; °सुह–शिवसुख २.६.११; ८.८.१८
सिवाल–शृगाल १०.१२.४
सिविण–स्वप्न १.२.२; °उ ४.५.१७; °त्थ–स्वप्नार्थ ४.६.१०
सिसिर–शिशिर (ऋतु) ४.१८.९
सिसु–शिशु २.१०.४;५.९.१३; °भाव–शैशव ३.४.६
सिहंडि–(i) शिखण्डी-मयूर; (ii) शिखण्डी अर्जुन-का सहयोद्धा ५.८.३१
सिहर–शिखर ४.७.६; सिहरा (बहुव०) १०.३.९

सिहरि–शिखरिन्, पर्वत ५.१३.३२;७.८.१२; १०.१.१०
सिहि–शिखिन्, अग्नि २.१८.४
सिहि–शिखिन्, मयूर ९.९.६
सिहिण–स्तन ४.१३.१२
सिहिसाहुल–शिखि + साहुल–(दे) वस्त्र शिखिवस्त्र, मयूरध्वज ५.७.७
सिही–शिखिन्, अग्नि ५.५.११
सीम–सीमा (क्षेत्र) ५.३.१०
सीमंतिणि–सीमन्तिनी ३.९.१७;६;१४.१४
सीमंतिणी–सीमन्तिनी १.९.१०
सीय–शीत, शीतल १०.७.६
सीय–सीता ३.१२.१;५.१३.६
सीयर–शीकर ८.१५.८
सीयल–शीतल १.७.२;३.१.१६; ७.१५.८; °घण–अतिशीतल १.१३.४
सील–शील ३.६.२
°सील–शील (ताच्छील्ये) २.१२.७
सीवाव–षिवु + णिच्, सीवाविअ–सिलवाया ४.३.२
सीस–शीर्ष २.१२.१३;७.१३.१७
सीस–शिष्य ७.१३.१६;११.१.२
√सीस–शास् °इ ३.६.१३;९.८.१
सीसक्क–(दे) शिरस्त्राण ६.१३.९
सीसत्तभाउ–शिष्यत्वभाव ४.१७.२१
सीह–सिंह ५.१४.२; ११.२.६; °दार–सिंहद्वार ४.५.१०
सीहवार–सिंहद्वार ५.१०.१८;५.११.१
सीहल्ल–वीर कविका एक अनुज प्रश० १४
सीहसिलिंब–सिंहशिशु ७.६.३०
√सु–श्रु, सुम्मइँ (बहुव०) ४.१५.२;७.२.३
सुअ–सुत ३.५.९;३.१४.८;७ ५.८
सुअ–श्रुत ६.१.५
सुअकेवलि–श्रुतकेवली ४.३.१३
सुइ–श्रुति–श्रवण १.१.११
सुइण–स्वप्न १०.१३.३;१०.१३.१२
सुइणंतर–स्वप्नान्तर १०.७.८
सुइणाण–श्रुतिज्ञान, शास्त्रज्ञान १०.१८.१
सुइणालोयं-स्वप्न + आलोकन, स्वप्नदर्शन ४.६.९
सुइर–सुचिर ९.१२.१८

सुइसत्थ–श्रुति + शास्त्र ९.१६.७
सुउ–सुत ४.२.५
सुंड–शुण्ड, हि० सूंड ४.२०.११;६.१०.३
सुंदर–सुन्दर, शुद्ध १.२.७;२.११.४
सुंदरि–सुन्दरी २.१४.६;१०.१४.११
सुकइत्त–सुकवित्व १.३.१
सुकम्म–सुकर्म, पुण्य २.५.४;४.५.५
सुकन्ति–सुकान्ति, सुकान्ते (स्त्री० सप्तमी) ४.१८.१२
सुकर–सुकर, सहल, आसान २.७.२;२.७.३
सुकुमार–सुकुमार १०.१६.१
सुकुलक्कम–सु + कुलक्रम ११.१३.६
सुक्क–शुक्र, रज-वीर्य ९.१३.१६
सुक्क–शुष्क १०.२.६
√सुक्कंत–शुष् + शतृ ५.८.२६
सुक्कंग–शुष्क + अङ्ग १०.१३.८
सुक्कज्झाण–शुक्लध्यान १०.२४.१
सुक्कवंस–शुष्क + वंश (बांस) ४.१५.२९
सुक्ख–शुष्क (चर्म) १०.१२.६
सुक्ख–सुख ८.२.१४
सुक्खय–शुष्क ५.८.१६
सुक्खारह–सुखार्ह ११.१२.७
सुखट्ट–(i) सु + खट्वा, खाटोंसे युक्त (ii) सुखट्टा, खट्टे पदार्थोंसे युक्त ८.१३.१२
सुघडिअ–सुघटित ८.९.६
सुचित्तउ–सु + चित्त + वत्, शुद्धचित्तवाला ३.१०.१२
सुट्ठु–सुष्ठु ३.११.५
√सुण–श्रु °मि ५.१२.२१; °हि (विधि०) १०.१२.९; सुणी (विधि०) १.५.९; सुणु (विधि०) २.१८.९; सुणिवि ६.२.८.५;८.६.११; सुणेवि १०.८.१४ सुणेऊण ५.५.१३;
√सुणंत–श्रु + शतृ २.१३.४;३.६.१२
सुणह–सुनख, श्वान ९.११.५
सुणिय–श्रुतम् ४.१२.११;९.१६.३
सुण्ण–शून्य, रिक्त ४.१०.९; ४.११.२; °अ–शून्य ८.१६.१३; णिहो–°निधि ९.८.२३; °हत्थ–°हस्त ६.१०.९
सुण्णागार–शून्य + आगार, शून्य घर आदि १०.२२.६
सुण्णार–सुवर्णकार, हि० सुनार १०.१६.१

सुण्णासण–शून्य + आसन ७.६.२
सुण्ह–स्नुषा, वधू ९.१७.४
सुतरणि–सु + तरणि, सूर्य १.१.२
सुत्त–सूत्र, धागा, हि० सूत १.३.१०;१०.४.३
सुत्तउ–सुप्त + वत्, सुप्त ३.१४.१३
सुत्तकण्ठ–सूत्रकण्ठ (ब्राह्मण) २.५.२
सुत्ति–शुक्ति, हि० सीपी ८.११.९
सुत्थिय–सु + स्थित १.१६.१०;८.२.१३
सुत्तिय–सुप्ता (स्त्री० विशे०) ४.५.१७
सुदंसणा–सुदर्शना (देवी) ३.१४.२
सुदिट्ठ–सुदृष्ट ४.१९.५
सुद्द–कथानाम १.४.४
सुद्ध–शुद्ध (भाव) १०.४.१४
सुद्ध–शुद्ध १०.२.८; °गामि–शुद्धाचारी १०.२१.७; °चरित्त–शुद्धचरित्र ११.१४.१३; °पक्ख–°पक्ष, शुक्लपक्ष प्रश० ४; °मई–°मति–२.१८.८;८.४.७; °मण–°मन १०.२६.११; °वंस–°वंश प्रश० १२; °सरूअ–शुद्धस्वरूप १०.४.१३
सुद्धावास–शुद्धाकाश ११.१०.१
सुद्धि–शुद्धि ४.१८.१०;१०.२१.९
सुधम्म–स्वधर्म ९.१७.१४
सुपइट्ठिय–सुप्रतिष्ठित (राजा) ८.३.१२
सुपत्त–(i) सुपत्र, सुन्दर पत्ते (ii) सुपात्र (व्यक्ति) ३.२.९
सुपत्त–(i) सुपात्र सुन्दरभाजन (ii) सुपात्र–योग्य-व्यक्ति ८.१३.१३
सुपमाण–सुप्रमाण ७.१३.४
सुपयोहर–(i) सुपयोधरा, स्वच्छ जलयुक्त (ii) सुपयोधरा-सुस्तनी ३.२.८
सुपरिक्खिअ–सुपरीक्षित २.११.८
सुपसत्थ–सुप्रशस्त २.१३.१;५.६.१४
सुपसाअ–सुप्रसाद, कृपा ३.७.२
सुपसिद्ध–सुप्रसिद्ध १.६.२
सुप्पइट्ठ–सुप्रतिष्ठ (राजा) ८.४.७
सुप्पमाण–सुप्रमाण ६.१०.७
सुप्पह–सुप्रभा (जैन साध्वी) १०.२१.४
सुफुरिय–सु + स्फुरित १.६.५
सुबंधुतिलअ–सुबन्धुतिलक मुनि ३.५.२
सुभद्द–सुभद्रा (श्रेष्ठि पत्नी) ३.१०.१३
सुमइ–सुमति, सुबुद्धि प्रश० १३.
सुमइ–सुमति मुनि ३.१३.७
√सुमरंत–स्मृ + शतृ ३.७.४;१०.१७.१२
सुमरण–स्मरण ५.४.८
√सुमराव–स्मृ + णिच् °इ ४.१९.८
√सुमरावंत–स्मृ + णिच् + शतृ ८.३.५
√सुमरिज्ज–स्मृ (कर्मणि) °इ १.११.५
सुमरिय–स्मृत ७.५.१५;८.५.११
सुमहत्थ–सुमहत् ५.६.१४
सुमहुर–सुमधुर ८.१६.५
सुमाणिक्क–सुमाणिक्य ४.५.१०
√सुम्म–श्रु °इ (आत्मने०) १.१०.२;३.१२.६
सुय–सुता ४.१२;६
सुय–सुत १.३.५
सुय–श्रुत, सुना ३.१२.१३
सुयंध–सुगन्ध १.१३.४;२.९.१०;४.५.१६
सुयकेवलि–श्रुतकेवली ४.३.१३
सुयण–स्वजन २.९.१८;१०.२१.२
सुयण–सुजन, सज्जन ३.१४.१६;७.१.२;९.१.१
सुयणंतर–स्वप्नान्तर १०.१३.३
सुया–सुता ३.७.६
सुर–सुर, देव ४.३.१०;५.११.१९; °करि–ऐरावत-हस्ति ४ १०४; °दंति–ऐरावतहस्ति ७.४.१०; °नर–सुर + नर २.१.१; °नारी–अप्सरा ९.४.१७; °रमणि– °रमणी, अप्सरा ८.३.३; °वइ–°पति, इन्द्र १ मं० ८; °वहु–°वधू, अप्सरा ६.४.५;७.६.३; °सरि–°सरित्, सुरगङ्गा, गङ्गा ४.१०.४;१०.१७.९
सुर–सुरा, मदिरा ६.७.२१
सुरअ °य–सुरत २.१३.६;४.१९.८
सुरमणीअ–सुरमणीक ३.२.८
सुरहि–सुरभित ८.३.४
सुरहिअ °य–सुरभित १०.१७.१३;८.१३.४;९.१२.२
सुरहिवाउ–सुरभितवायु ३.१०.१
सुरा–सुरा, मदिरा ४.८.१५
सुरालअ °य–सुर + आलय २.३.६;३.७.३
सुरिंद–सुरेन्द्र १.१७.१
सुलक्खण–सुलक्षणा (स्त्री० विशे०) २.११.३

सुकलिय–सुकलित ३.१.१६;५.१२.१५
√सुव–स्वप् °इ ६.८.३
सुवण्ण–सुवर्ण ४.५.१६;९.८.७
सुवित्थर–सुविस्तार ३.२.१
सुविसुद्ध–सुविशुद्ध ३.५.६
सुविहोय–सुवैभवयुक्त ३.६.११
सुव्वय–सुव्रता (जैनसाध्वी) ३.१३.१४
√सुस–श्वस् °इ ४.११.४
सुसंद–सुसान्द्र ९.९.१०
सुसक्क–सुशक्त, सशक्त ५.४.२१
सुसत्त–सुसत्व, सुहृदय, शुद्धात्मा ८.५.१२;११.१५.७
सुसम–सुसम, सरल, मुग्ध १०.३.१०
सुसाउ–सुस्वादु ३.३.८
सुसिअ–शुष्क १०.१५.६
सुसिर–सुषिर, छिद्र ११.८.३
सुसुत्ति–सुषुप्ति ९.१७.७
सुह–शुभ, सुन्दर ४.७.७; ८.५.१४ °कम्म–°कर्म २.११.५;८.५.११; °गंध–°गन्ध ४.६.३; °चरण २.७.८; °चरण-चारित्र १.४.१; °दंसण (i) °दर्शन-सुन्दराकृति (ii)शुभदर्शन-सम्यक्श्रद्धा २.६.६; °भाव-शुभभाव १०.४.१४; °भावण–शुभ भावना (युक्त) १.१६.१०;°मण–शुभमन ४.३.७; °लक्खण–शुभलक्षण ८.४.१;१०.८.५
सुह–सुख ८.४.१२;८.६.९; °निलअ–°निलय २.१८.२; °णिहाण–°निधान ६.८.५; °तित्त–°तृप्त २.३.१०; °दुह–सुखदुःख २.२०.४; °धाम–°धाम ५.३.१०; °पुण्ण–°पूर्ण ५.१.२९; °भायण–°भाजन ३.१३.९; °मिच्चु–°मृत्यु १०.१४.८; °यर–°कर १.२.११; °रंजय–रञ्जत १०.८.१५; °सायर–°सागर १०.२.५; °साहिय–°साधित ६.४.७; °सुत्त–°सुप्त ९.१६.७
सुहंकर–शुभङ्कर, कल्याणकारी ११.२.४
सुहकरण–शुभकरण २.७.७
सुहड–सुभट ५.३.३;६.५.१०
सुहडंग–सुभट + अङ्ग ७.६.५
सुहडत्त–सुभटत्व °ण (स्वार्थिक),हि० सुभटपना ७.७.५
सुहडसार–सुभट + सार, श्रेष्ठसुभट ५.१२.९
सुहणक्खड–शुभ + नख + वत्, सुन्दर नखोंवाली ३.१०.१४
सुहणक्खत्तजोअ–शुभनक्षत्रयोग ३.४.१
सुहसील–शुभशील, शुद्धाचरण प्रश० १२
सुहम्म–सौधर्म या सुधर्म मुनि १०.१९ १७; १०.२१.६; °सामि–सुधर्मस्वामी ७.१३.१६
सुहय–सुभग, सुन्दर ४.१९.२२;१०.१६.८
सुहयत्त–सुभगत्व °ण (स्वार्थिक) १०.१७.१७
सुहा–सुधा, अमृत १.१८.८;२.१२.१
सुहापंडु–सुधापाण्डु, चूनेसे पुता हुआ ४.५.१४
सुहाभाविय–सुधा + भावित (प्रभावित) २.१२.१
सुहायर–सुधाकर, सुखकर ८.१३.६;११.१२.५
√सुहाअ–शोभ् °इ (आत्मने०) ११.१२.१०
सुहावण–सुखायन, हि० सुहावना १.१६.४;४ ८.१६; ४.१५.७
सुहावणि–सुखायनी (स्त्री० विशे०) १.१०.२
सुहासायर–सुधासागर १.१८.६
सुहासुह–शुभ + अशुभ ३.७.१४;४.४.८
सुहि–सुहृत् ५.१.३०;८.१०.१४
सुहिय–सुखित, हि० सुखी २.६.१२
सुहिल्ल–सुखद °इल्ल (स्वार्थ) ११.६.१०
सुही–सुहृत् १.५.४
सुहुम–सूक्ष्म ८.१२.५
सूइअ–सूचित १०.४.३
√सूइज्ज–सूच् (कर्मणि) °इ ५.१०.१८
सूडिअ °य–शाटित, भञ्जित ४.२१.६;५.३.१०; ८.१०.३
सूयाहर–सूति + गृह, प्रसूतिगृह ४.८.३
सूर–शूर ६.२.९;६.७.१
सूर–सूर्य ८.१२.१४; °कंति–°कान्त (मणि) ३.३.७; °कर–°किरण ४.१५.५; °गो–°किरण २.३.३ °चक्क–°चक्री, सूर्य चक्रवर्ती, १०.२५.१
सूरसेण–सूरसेन (वणिक्) ३.१०.१२;३.१३.५
सूलिणि–शूलिनी, शूलधारिणी, चण्डिका देवी २.१६.१४
सेउ–(i) सेतु-पुल १.१.२; (ii) सेतु-सेतुबंध काव्य १.३.४
सेज्ज–शैय्या ६.१४.१४
सेट्ठि–श्रेष्ठि ३.१०.१२;४.६.७

सेण–श्येन, बाज १०.१०.९
सेणावइ–सेनापति ५.१.२२;५.६.१
सेणिअ °य–श्रेणिक राजा १.१८.२३;५.१०.२५; ५.१४.२६
सेणियराअ °य–श्रेणिक राजा २.१.१; ७.१२.८
सेण्ण–सैन्य ५.११.१९;६.१२.११;६.१३.७
सेण्ण–श्रेणी, पङ्क्ति ७.३.८
सेय–श्वेत ८.१२.५
सेय–स्वेद ३.८.४;५.१३.१८; °चुय–स्वेदच्युत १.९.३
सेलक–(दे) कुन्त, भाला ७.८.२; °हर–कुन्तगृह, भालोंके कोश ७.८.१
सेव–सेवा ११.६.१०
√सेव–सेव् °इ ३.३.१३; ७.१.१७
सेवडि–वृक्ष ५.८.१०
सेवय–सेवक १.४.६
√सेविज्ज–सेव् (कर्मणि) °इ ५.९.१७; °उ (विधि०) ८.७.२
सेविय–सेवित ८.१३.५;९.१२.१०
सेस–शेष ४.५.१५
सेस–शेष (नाग) ४.१०.७
सेसमहाफणि–शेषमहाफणिन्, शेषनाग ५.५.४
सेसिय–शेषित, अवशेषमात्र ७.४.१
सेहर–शेखर १०.१९.७
सेहरिय–शेखरिक, शेखरयुक्त ४.७.५
सोक्ख–सौख्य ३.१३.१६; ९.६.१०; °चत्त सौख्य-त्यक्त १०.१४.१६; °रासि–°सौख्यराशि १०.६.२; °वास–°सौख्यवास १०.१.१४
√सोच्च– √शुच् °इ २.१५.५
सोढव्व–सोढव्य, सहनीय १०.२२.९
सोत्त–स्रोत ७.१.१०
सोपारय–सोपारक (पत्तन) सूरत ९.१९.४
सोम–सोमनाथ ९.१९.७
सोमपाण–सोम (रस) पान २.४.१०
सोमसम्म–सोमशर्मा (ब्राह्मणी) २.५.४;२.५.१५
सोमालिआ–सुकुमारिका, सुकुमार कन्या ८.१०.८
सोयाउर–शोकातुर ३.७.५
सोयाणल–शोकानल २.६.१
सोयार°–श्रोतारः, श्रोता ११.१५.११
सोरट्ठ–सौराष्ट्र ९.१९.७
सोलह–षोडश ४.६.१४;११.१२.१
√सोव–स्वप् °इ २.६.१०;१०.८.१२
सोवण्ण–सुवर्ण (द्वीप) ९.१९.७
सोवाविय–स्वापित ६.१४.१४
सोसिय–शोषित २.१९.५
सोसिया–शोषिता (स्त्री० विशे०) १०.१३.६
सोह–शोभा ६.७.४; °इल्ल शोभित ८.१३.९
√सोह–शोभ् °इ ४.७.७;६.३.३
सोहमाण–शोभ् + शानच् ५.१.१३
√सोहिज्ज–शुध् (कर्मणि) °इ १०.१७.७
सोहग्ग–सौभाग्य ५.९.१४;९.१३.६
सोहण–शोभन १०.१६.३
सोहम्म–सौधर्म (मुनि) २.६.४
सोहालिय–शोभावत्, शोभायुक्त ७.२.९
सोहालिया–शेफालिका (फल वृक्ष) ५.८.१०
सोहिय–शोधित ७.१३.१९
सोहिय–शोभित ५.९.१३

[ह]

हअ–हत ४.२.१६
हउं–अहम् ३.७.१;१०.१०.१२
हओ–हय, अश्व १.१५.३
√हंतुं–हन् + तुमुन् ५.१४.११
हंसगई–हंसगति (स्त्री० विशे०) ५.४.१९
हंसदीव–हंसद्वीप (?) ५.३.१
हक्क–(दे) आह्वान, हि० हांक ४.५.८;४.२१.१८
√हक्कंत–(दे) आ + ह्वे + शतृ ६.५.९
√हक्कार–आ + कृ + णिच् °रिवि ३.१४.१६
हक्कारिअ °य–आकारित, आहूत,५.८.२०; ६.१२.६; ९.१७.१६; ७.४.१६
हक्किय–(दे) हुङ्कृत, हुंकार १०.९.५
हट्ट–(दे) हाट, आपण ४.१०.१; ७.१२.१; °मग्ग–हाटमार्ग १.९.२;८.३.८
हड्ड–(दे) अस्थि, हि० हाड़ २.१८.१३;७.१.२१
√हण–हन् °इ ९.७.३; °इ ९.७.३; °इ ६.७.१४; हणंति ६.६.६; हणु-हणु (आज्ञा०) ५.१४.९; हणिवि ५.१४.३
√हणंत–हन् + शतृ २.५.१७;७.११.१३
हणुवंत–हनुमत्, हनुमान ३.१२.२
°हत्ति–°भक्ति १.१४.१२;५.१०.१२

हत्थ–हस्त २.९.१७;७.१.१४;१०.१९.८
हत्थंकुड–हस्त + अङ्कुश ४.१५.१५
हत्थतल–हस्ततल ५.१४.१; °पमाण–हस्तप्रमाण ११.१२.८
हत्थि–हस्ति ४.१०.४;१०.१२.२; °णाउर–हस्तिनापुर(नगर)३.१४.६; °णी–हस्तिनी ४.२१.११; °मणि–गजमुक्ता ६.३.१; °रोह–महावत ५.७.२४; °हडा–°घटा, हस्तिसेना ६.६.५
हत्थियार–(दे) हथियार, शस्त्र ४.२१.१३
हम्म–हर्म्य ४.६.१२
हम्मीर–हम्मीर (देश) ९.१९.१०
हय–(तत्सम) हय, अश्व १.१६.१; °वयण–हयवदन, अश्वमुख (जाति) ९.१९.१२; °हिंसिय–हयहिंसित, घोड़ेका हींसना ६.५.६
हय–हत १.११.१७;४.२०.९; °उ(स्वार्थे)८.१०.५; °दण्ड–दण्डाहत, ५.८.१५; °विमाण–हतविमान ६.११.६
हयवच्छ–(i) हतवक्ष(स्थल) (ii) हतवृक्ष ९.१३.१२
हयास–हताश, दुर्जन १.२.५;१०.१०.३
√हर–हृ °इ ५.५.४; °मि ९ १४.४; हरेप्पिणु ४.२.६
हराविय–हारापित, खोया हुआ १०.११.११
हरि–विष्णु, नारायण ३.८.७; ७.४.१३
हरि–हरि, अश्व १०.११.५
हरि–हरि, सिंह ८.१०.४
हरि–(i) कृष्ण (ii) सिंह ५.८.३१
√हरिज्ज–हृ (कर्मणि)°इ १०.२२.५
हरिणंकरेह–हरिणाङ्कलेखा, चन्द्रलेखा ४.१८.११
हरिणंकसिया–हरिणाङ्कश्री, चन्द्रशोभा, चन्द्रकान्ति ३.३.१५
हरिणणयणी–हरिणनयनी, मृगलोचनी ३.४.१०
हरिणी–हरिणी १.१२.२; ३.१.१७
हरिय–हृत १.११.१५; ३.१२.१; ३.१४.१३
हरियंदण–हरितचन्दन ४.११.३
हरिवयण–हरिवदन, सिंहमुख ९.१९.१२
हरिविट्ठर–हरिविष्टर, सिंहासन १.१७.१
हरिस–हर्ष २.१६.५; ८.३.१६
हरिसंगय–हरिसङ्गत, अश्वसहित ३.२.१०
हरिसरिस–हरिसदृश, सिंहसदृश ९.११ १३
हरिसिय–हर्षित ४.३.९; ४.७ १; ८.२.११
हलहर–हलधर, बलदेव, बलराम २.११.६; ३.८.७; ९.४.८
हलिअ °य–हालिक, ३.१.१८; ९.३.४
हलुअत्तण–लघुत्व ४.१९.१०
हला–सखी ९.३.१; १०.१५.६
√हल्लिर–(दे) कम्प्, (हिलना) + इर (ताच्छील्ये) १.८.८; २.१२.९; ३.१.१५; ४.१९.११; ५.१२.३
√हव–भू °इ २.१८.८; ९.६.४; १०.२१.११; °अंति ११.१२.७; °विण–भू + क्त्वा ९.१.१९; हवेसइ (भवि०, तृ० पु०, एकव०) ४.१.८; ९.१०.१७; हवेसहिं(भवि०,तृ० पु०, बहुव०) ९.३.१२
हवी–हवि, अग्नि ३.३.७
√हस–हस् °इ १.८.४
√हसंत–हस् + शतृ ९.२.२; १०.३.८
हसिअ°–हसित १.७.१; ४.१६.९; १०.१०.१०
हा–हाय, शोक २.१५.४; २.१६.१
हारिय–हारित ४.२.९
हालिय–हालिक, हाली ९.३.२; १०.१८.१
हास–हास्य ८.१६.१५
हासिय–हासित ४.१४.११
√हासिर–हस् + इर (ताच्छील्ये) ५.५.६
हिअ–हित १०.२.११
हिंगुणी–वृक्ष ५.८.९
√हिंड–(दे) भ्रम् °मि ९.१५.३
√हिंडंत–(दे) भ्रम् + शतृ ६.७.७
हिंडिर–(दे) भ्रमण + इर (ताच्छील्ये) ६.१०.२
√हिंदोलअ–हिन्दोलक (राग), हि० हिंडोला राग ८.१६.१२
हिट्ठ–हृष्ट १.१५.१०
हिडहिडिम ९.३.९
°हिण्हाणु–अभिज्ञान, चिह्न ३.११.११
हिमवंत–हिमवन्त, हिमवान् पर्वत ११.११.४
हिमसिहर–हिमशिखर १.१.४
हिमालय–पर्वत ११.११.८
हिय–हृदय ३.१२.१४;४.१५.५; °अ २.६.१; ६.६.११; ७.१.३; °इच्छिय–हृदय + इच्छित २.२०.१२; °उल्ल–हृदय + उल्लउ (स्वार्थे) ३.७.६; °घण–हृदयघन ९.१३.१

हियत्थ–हित + अर्थ २.१५.१३;५.१३.१६
हियय–हृदय ४.१०.९; ९.१२.१४; °च्छिय–°इच्छित ८.११.१; °दुक्ख–°दुःख ३.१३.४; °सल्ल °शल्य ७.६.१५; °सूल–°शूल–५.११.१९
हियवउ–हृदय + क (स्वार्थे) १.११.६;९ १५.२; १०.१५.७
°हिरोविय–अधिरोपित ७.८.२
हिलिहिलिय–(ध्वन्या०) हिनहिनाना ५.११.१२
ही–धिक्, दुःख, शोक, आश्चर्य २.११.११
हीर–हीरा १.३.१०
हीरय–हीरक, हीरा ४.१४.२;११.१३.२
हु–खलु १.५.२१;२.६.१२
हुअ–भूत ७.११.१२;९.९.१४;९.११.४
√हुंत–भू + शतृ १.११.१२;३.७.१२;४.११.६
हुय–भूतः ३.७.३; ४.७.४; ४.१०.४; हुया(बहुव०) ९.७.४
हुयउ–भूतः २.१५.१०
√हुंकरंत–हुङ्कृत + शतृ ५.७.२२
हुंकरिय–हुङ्कारित ६.७;२
हुंकारिय–हुङ्कारित ५.८.१७
√हुंवडयमाण–हुङ्कृ + शानच् १०.२६.४
हुडुक्का–वाद्य ४.२.७;५.६.१०
हुणिय–धुनित १.१.५
हुयवह–हुतवह, अग्नि २.५.१९;७.६.३
हुयास–हुताश(न), अग्नि ८.१४.८;१०.२६.८
√हुलिज्जंत–हूल् (कर्मणि) + शतृ ६.७.६
हूकण–हूकना ४.२०.४
हूहुय–शङ्ख ध्वनि १.१४.९
हेइ–हेति शस्त्र ७.१.१९
हेउ–हेतु १०.२०.१२;१०.२१.९
हेंवाइय–(अप०) गर्वित ४.२.१३;७.७.५
हेट्ठामुह–अधोमुख २.१८.८
हेट्ठिल–अधस्तन, नीचेका ११.१०.३
हेमेवड–हेममय, सुवर्णघटित ८.१६.३
हेरिय–हेरिक, गुप्तचर ६.१.१७;७.३.२
हेलअ–हेला, वेग १.१०.७
हेलि–(दे) अद्भुत (?) ९.२.४
√हो–भू °इ ३.१२.८; °मि १०.१७.१०; °मि ४.१४.३; ५.४.९; °उ (विधि०) ४.४.१३; °हु (विधि०) ७.३.१२; °हवि ९.७.१५; °णप्पिणु ३.१०.७; °वि ५.२.८; °सइ (भवि० तृ० पु० एकव०) २.१५.१०; °संति (भवि० तृ० पु० बहुव०) ९.३.१४ °एसहिं (भवि० तृ० पु० बहुव०) ४.३.१३
√होंत–भू + शतृ; १.६.३
होंतउ–भू + शतृ (भूतार्थे) २.१६.११
√होमिज्ज–हु (कर्मणि) °इ २.४.१०

खाद्य-पदार्थ

कूर–विशिष्ट चावल ८.१३.१०
आरणाल–कांजी, साबूदाना ३.९.१०
गोधूम–गोधूम, गेहूँ ५.८.२९
तंबूल–ताम्बूल ८.८.४
तंबोलवत्त–ताम्बूलपत्र ९.१२.३
तक्क–तक्र, छाछ ८.१३.१३
तिलजव–तिल + यव २.६.१
तेल्ल–तैल ५.७.२३
दहि–दधि ७.१२.५
दुद्ध–दुग्ध ४.१८.६.९.१०.२१
नाली-कमलनाल ९.२.१०
खट्टउ–खट्टे अचार, चटनी आदि ८.१३.१२
नेह–स्नेह, घृत ८.१३.१०
लवण-लवण ८.१३.११
मुग्ग–मूंग ८.१३.११

ध्वन्यात्मक-शब्द

आरड < आ + रट्–चीत्कार करना ७.८.९
कणकणिर–क्वण्क्वण् + इर(ताच्छील्ये) क्वणनशील ३.११.६;५.१.२१;५.२.१
कडक्क–कडक्किय, कड़ाकसे टूटना ७.८.१२
खडक्क-खडक्किय, खड़खड़ करके टकराना ७.६.५
करड-करड-करड १०.१९.२
कलयल–कलकल, कोलाहल १.१६.१;६.७.१;७.८.४
कलरोल–कलकल मधुररव ९.१३.११
किरिरिकिरितट्ट–किरिरि वाद्यकी ध्वनि ५.६.११
कुलकुल–कलकल ५.१०.१६
खडतड–खड़खड़ाहट १.१५.७
खडहड–खड़खड़ाहट ६.१०.११
खणखणखण ६.६.६
खलखल ५.८.२१
खलहल १.७.९
गग्गर–गद्गद २.१०.७
गडयड–गड़गड़ाहट ६.१४.४
गुमगुमिय–गुमगुम ५.१२.८
घग्घर–घर्घर, घरघराहट २.१८.१०
घग्घरिय–घर्घरायित २.१८.१०
घरहरिय–रथादिकी घरघराहट १.१६.४
घुघुइय–घुग्घू, उलूकध्वनि ५.८.१९
घुमघुम १.१५.६
घुरुहुरिय–घरघराहट ५.८.१६
छोक्कार–पशु-पक्षियोंसे खेतोंकी रक्षाके लिए कृषक वधुओंका शब्द ५.९.९
झलज्झल–जलका झलझलाना ७.५.१२
झणझणंत–झनझनाहट १.१५.७
टंटं–टिविलवाद्यका शब्द १०.१९.३
डमडंक–डमरू शब्द ५.६.९
डमडक्किय–ढक्का शब्द १०.१९.५
डमडमिय–डमरू शब्द ५.६.९
तखिखितखितक्खितखि–तबला वाद्यका शब्द ५.६.१२
तडतडण–तड़तड़ १.१५.९
तडत्ति–तडतडिय, विद्युत् गर्जन ५.६.१३;५.७.१९;७.८.७
तडिखरतडि–तरड वाद्यका शब्द १.१४.७
तडिफिड–हि० तड़फड़ाना ७.१५.१२
त्रं त्रं–ढक्का शब्द ५.६.१०
थगगदुग–थगगथुग वाद्य शब्द ५.६.११
थगथुग–वाद्य शब्द १.१५.६
थरहर–थरथर काँपना ५.७.११;६.५.८
थिरिरिकटतट्टकट–थिरिरि वाद्य ध्वनि ५.६.१३
थुगियग–वाद्य शब्द १.१५.१६
दमदमिय–दमदमाना, दहलना ७.५.५
धगधग–जलनेका शब्द ४.६.२
धाह–धाड़ देकर रोना ३.७.५;४.१९.२०;१०.११.७
रणझण–वाद्य शब्द १.१५.७
रण रण– ,, २.१८.१२
रुं रुं रुं रणिय–रुञ्जा वाद्यका शब्द १.१५.८
रुणरुंटिय–भ्रमर गुञ्जार। ५.१०.९
रुणरुणिय–रुणरुणाहट २.१२.९
वोक्कार–बुक्कार, हि० बूम मारना, गर्जना ५.८.१८
सलसलय–कंसाल शब्द ५.६.८
सलसलय ९.१०.३
हिलहिलिय–हि० घोड़ोंका हिनहिनाना ५.११.१२
हुहुय–शङ्ख शब्द १.१५.९

वाद्य-यन्त्र

आलावणि–आलापिनी, वीणा ९.९.११
कंसाल १.१५.७;४.८.७;५.६.८
करड ५.६.७;१०.१९.३
कलवेणु–मधुरवंशी ४.८.६
काहल १.१५.९
किरिरि ५.६.११
खुंद ५.६.१२
घंटा ५.६.९
झल्लरी १०.१९.४
टिविल १०.१९.३
डमरू ५.६.९;७.३.१
ढक्का ४.५.१२;५.६.१०

तंति–तन्त्री ४.१५.३
तरड १.१५.७
थगदुग ५.६.११
थिरिरि ५.६.१३
दडिडंवर ,,
पडुपडह–पटुपटह ४.८.५,५.६.७
हंज–हंजा ५.६.१०
संख–शङ्ख १.१५.९
साल ४.८.७
हुडुक्का ४.२.७;५.६.१०

वृक्ष-वनस्पति

अंकोल्ल–पुष्प ५.१०.९
अंकोल्ल–वृक्ष ५.८.८
अंजण–वृक्ष ५.८.७
अक्ख–बभुविभीतक या बहेड़ा ५.८.३४
अज्जुण–अर्जुन ५.८.३१
अंब–आम्र ४.२१.२
अल्लय–आर्द्रक, अदरक ७.१.२
अल्लहज्ज–आर्द्रचणकाः, गीले चने ३.१२.१५
असोय–अशोक १.१७.१२;४.१७.४
अहिमार ५.८.६
आसत्थाम–अश्वत्थ, पीपल ५.८.३२
इंदीवर–इन्दीवर, कमल १.७.७
उंबर–उदुम्बर ५.८.१३
कंटिबेरी–कंटीली बेरी ५.८.६
कंदोट्ट–नीलकमल समूह ५.९.७
कणवीर–हि० कनेर ४.१६.५
कणियार–कणिकार-कनेर ५.८.११
कयंब–कदम्ब ४.१६.४;४.२१.३;५.१०.१३
करवंद, करवंदि — हि० करौंदा ४.१६.२;५.८.१२
करीर–करील (झाड़ी) १०.७.३
करीरायण–करीर + रायण–राजन, सं० राजादनी वृक्ष ४.१६.५
कलमसालि–कलमशालि, धान्य-विशेष १.९.१
कुंद–पुष्प वृक्ष ४.११.१४;४.२१.३
कुडय–कुटज ५.८.११
कुरवअ–कुरवक ४.१७.२
कुवलय–नील कमल ८.२.१६
केलि–कदली ८.६.१२
खइर–खदिर, खैर ५.८.६
गणियार–गणिकार ५.८.११
गुंजा–गुञ्जा, हि० चौंटली ५.८.१०
गोधूम–गोधूम-गेहूँ ३.८.२९
घम्मण– ५.८.६
धव– ५.८.६
घुसिण–केसर २.९.९;११.१३.९
घोंटि– ५.८.९
चंदण–चन्दन ५.८.३३
चार–चार, प्रियाल ५.८.३३;४.२१.३
चिरहिल्ल ५.८.८
जंबुहा–जम्बू ४.२१.२
जंबुहल–जम्बूफल, हि० जामुन ४.८.२३
जंबीर–नींबू (वृक्ष) ४.१६.३
टिंबर ५.८.९
ताल ४.१६.३
तिरिंगिच्छ ५.८.७
थलकमलिणि–स्थलकमलिनी १.८.४
दक्ख–द्राक्षा, अंगूरफल १.७.४
दक्ख–द्राक्षा (वृक्ष) १.११.११;४.१६.३
दालिम–दाड़िम ४.२१.३
दुव्वा–दूर्वा, घास ७.१२.५
देवदारु– ४.२१.३
धायइ–धातकी, धतूरा १०.३.३
धायई–धातकी ५.८.८
नग्गोह–न्यग्रोध (वट) २.१२.८
नालियर–नालिकेर, नारियल (वृक्ष) २.१८.१०
निघण– ५.८.९
निंब–निम्ब, नीम ५.८.१३;४.२१.२
पंकज–पङ्कज, कमल ४.२१.८
पडल–पाटल, गुलाब पुष्प ८.१५.४

पाडल–पाटल, गुलाब ४.५.१३
पलास–पलाश ५.८.३४
फोफल–पूगफल, सुपारी १.८.८
मल्लायई–मल्लातकी वृक्ष ५.८.८
मंदमार– ४.२१.३
मंदार– ४.१६.२
मचकुंद–मुचकुन्द ४.१६.२
मल्लि– ४.२१.२;५.८.८
महु–मधु–मधूक, महुआ (वृक्ष) १०.७.२
मार– २.८.१२
मालइ–मालती लता ३.१२.१०;४.१३.११
माहुलिंग–मातुलिंग ४.२१.३
मिरियविल्लि–मिर्च बेल १.८.६
मुणाल–मृणाल ४.१४.१७
रत्तंदण–रक्तचन्दन ४.११.४
रत्तासोय–रक्ताशोक ८.४.६
रावण–विशेष औषधि वृक्ष ५.८.७
रुंद– ४.२१.३
रुद्दक्ख–रुद्राक्ष ४.१६.३
लवलि–लवली, लवंग (वृक्ष) ४.१६.३
वंधुक्क–बन्धूक पुष्प १०.१८.१४
बंधूय– " १.३.१३
वणफल–वनफल-या कपास फल, कपासका फूल १.९.४
वल्लरी–लता ८.६.१७
विडंग– ३.२.६
वेइल्ल–विचकिल्ल, पुष्पलता ३.१२.१२,४.१६.४
वोरीहल–बेरीफल, बेर ८.१४.१३
सज्ज–सर्ज ५.८.१०
सण–धान्य विशेषके पौधे १.९.५
समी–शमी छोंकार ५.१८.१०
सरल ३.१.१७,५.१०.२०
सरसव–सर्षप, सरसों ७.२.९
सल्लई–शल्यकी ४.१६.४,४.२१.१
सार १.८.३
साल–शाल ४.२१.१
सालि–शालि (धान्य) ५.९.६,९.४.११, °खेत्त शालिक्षेत्र ४.६.३;९.४.९
सिसमी–शीशम ५.८.१०
सिरसिय–सरसिज-कमल ८.११.४
सिरिस–शिरीष ५.८.१०
सेवण्णि ५.८.१०
सोहालिया–शेफालिका ५.८.१०
हिंगुणी ५.८.९

व्यक्तिगत-नाम

अंबादेवय–अंबादेवी १.५.६
अक्ख–अक्ष, रावणपुत्र ५.८.३८
अज्जुवसू–शर्यवसू (ब्राह्मण) २.५.२
अज्जुण–अर्जुन (पांडव) ५.८.३१
अमरेंद–अमरेन्द्र, देवेन्द्र ४.१.५
अरुहयास–अर्हद्दास(श्रेष्ठी) ४.१.७;४.३.१०;८.५.२, ९.१४.२;१०.२१.३
अरुणणाह–अरहनाथ (तीर्थंकर) ३.१३.७
अहमिंद–अहमिन्द्र १०.२४.१२
आइच्चदंसणा–आदित्यदर्शना (विद्युन्माली देवकी एक देवी) ३.१४.१
अलोइणिविज्ज–अवलोकिनी विद्या ५.२.१०
आसत्थाम–अश्वत्थामा (द्रोणाचार्यपुत्र) ५.८.३२
आहंडल–आखण्डल-इन्द्र २.४.७
उवहिचंद–उदधिचन्द्र, सागरचन्द्र ३.५.१३
कंचाइणि–कात्यायनी–चामुण्डादेवी ५.८.३५, कंचायणी १०.२५.२
कणयसिरि–कनकश्री-श्रेष्ठिकन्या (जंबूस्वामीकी एक पत्नी) ४.१२.४;९.६.१
कामधेणु–कामधेनु ४.१८.६
कामलय–कामलता (वेश्या) ३.१४.२१;९.१२.१४
केसव–केशव, कृष्ण ४.४.४
गयणगइ–गगनगति विद्याधर ५.११.९
गयणगमण–गगनागमन, गगनगति विद्याधर ६.१०.५
गिरितयण–गिरितनया, पार्वती ५.९.१४
गुरु–द्रोणाचार्य ५.८.३२

भौगोलिक–नाम

करिवयण–करिवदन, हस्तिमुख, एक हिमालय पर्वतीय जाति, ९.१९.३

कलिंग–कलिंग नगर, उड़ीसाकी राजधानी, भुवनेश्वर ९.१९.१४

कवेरीतड–कावेरी तट, मांधाता (ओंकारनाथ) के निकट नर्वदाकी उत्तरी शाखा, ९.१९.५

कसमीर–काश्मीर ९.१९.१०

कामरूव–कामरूप, आसाम ९.१९.१५

किंकाण–केकय देश, पंजाबमें सतलज और व्यासके बीचका प्रदेश । ९.१९.११

किक्किंध–किष्किंधा धारवाडमें तुंगभद्रा नदीके दक्षिणी तटपर अनगंडीके पास छोटी बस्ती, इसे अनगंडी भी कहते हैं, ९.१९.६

कीर–कीर नगर, पंजाबमें बैजनाथ नामक तीर्थ, कोट कांगड़ासे तीस मील पूर्व ९.१९.६

कुंतल–कुंतल देश, सीमाएँ उत्तरमें नर्बदा, दक्षिणमें तुंगभद्रा, पश्चिममें अरब सागर, पूर्वमें गोदावरी और पूर्वीघाट ९.१९.३

कुरु–कुरुदेश, हस्तिनापुर. ९.१९.१३

कुरुविसय–कुरुविषय, वही, १०.१८.६

कुरुल–कुरल पर्वत ५.१०.११

केरल–केरलराज्य ९.१९.१

केरलनयरि–केरलनगरी ५.५.१७

केरलपुरि–केरलपुरी वही ५.२.६

कोंकण–कोंकण देश, पश्चिमीघाट और अरबसागरके बीचका संपूर्ण प्रदेश, प्राचीन परशुराम क्षेत्र ९.१९.५

कोंग–कुर्ग, कोयंबटूर, सलेम और तिन्नेवल्ली तथा ट्रावनकोर जिलोंका कुछ भाग ९.१९.१४

कोसल–(दक्षिण) कोसल, गोंडवाना, आधुनिक महाकोसल ९.१९.१

खस–खसदेश, काश्मीरके दक्षिणका प्रदेश, दक्षिणपूर्वमें कास्तवार नदी, पश्चिममें वितस्ता (व्यास) ९.१९.१०

खीरमहण्णव–क्षीर महार्णव, क्षीर समुद्र, क्षीरोद (पौराणिक) ६.१.१३ (द्रष्टव्य बृ० स० १४.६)

खीरोवहि–क्षीरोदधि–वही ४.१०.६

गउड–गौडदेश ९.१९.१३ उत्तर कोसल, राजधानी श्रावस्ती, आधुनिक गोंडा (उ० प्र०) प्राचीन कालमें भारतका एक विशाल भूभाग गौड़ कहलाता था। पंजाबको उत्तर गौड, गोंडवाना (महाकोसल) को पश्चिम गौड़, कावेरीके तटपर एक दक्षिण गौड़, एवं संपूर्ण बंगालको पूर्व गौड़ कहा जाता था। अंगदेशके दक्षिणमें दक्षिण बंगाल, जिसकी राजधानी ताम्रलिप्ति रही, उसे भी गौड़ देश कहते थे। उ० प्र० में गोंडा स्थानका भी नाम (गोनर्द) गौड़ था और उज्जयिनी तथा विदिशाके बीच एक कस्बा भी गौड़ नामसे जाना जाता था। (विशेष द्रष्टव्य : नं० ला० डे: प्रा० म० भा० भौ० कोश)

गंग–गंगानदी ९.१९.१५

गंगवाडी–गंगवाडी नगरी (आंध्र) गंगराजाओंकी राजधानी ९.१९.२

गंगोवहि–गंगोदधि, गंगासागर, सागर संगम, ९.१९.१६

गुलखेड–गुलखेड १.५.१; मालवामें प्राचीन सिंधुवर्षी नगरीके पास वीर कविका जन्म गाँव।

गुज्जरत्त–गूर्जरत्रा प्रदेश, गुजरात खानदेश और मालवाका एक बड़ा भाग गूर्जरत्रा कहलाता था। धीरे-धीरे वही गुजरात बन गया। ९.१९.९

गोल्ल (?) संभवतः गौड़देश ९.१९.१४; अंगदेशका दक्षिण भाग; अथवा दक्षिण बंगालकी राजधानी ताम्रलिप्ति (तमलुक)।

गोवयण–गोवदन, हिमालयीन गोमुखजाति ९.१९.१२; देखिये : बृ० सं० १०.२३; ६८.१०३

चंपानयरि–चंपानगरी, दक्षिण बिहारमें भागलपुरसे चार मील पश्चिम ३.१०.११

चंपापुर–चंपापुर (वही, १०.२४. ११)

चित्तउड–चित्तौड़ ९.१९.२

चीण–कोचीन पत्तन (केरल राज्य) ९.१९.९

चेउल्ल–चेउल्ल (?)

चोड–चोल, द्रविड़ देश ९.१९.२; उत्तरमें पेन्नार या दक्षिण पिनाकिनी नदी, पश्चिममें तंजौरको लेकर कुर्ग अर्थात् वेल्लोरसे पुदोकोट्टई तक

छोहारदीव–छोहारद्वीप (?) ९.१६ ६

जउण–यमुना नदी ९.९.१५

जंबूदीव–जम्बूद्वीप, एक विशाल जैन पौराणिक क्षेत्र, हिंदू पुराणोंके अनुसार भारतवर्ष ३.२.३; ६.१.१३

जलकांत–जलकांत, एक स्वर्ग विमान ९.२.१३

जालंधर–उड़ीसामें यज्ञपुर या जयपुर ९.१९.१५

जोहणार–योधनद्वीप ९.१९.१६

टक्क-पंजाब (झेलम और सिन्धु नदियों के बीच) ९.१९.१०

डहाला–डाहल-बुंदेलखंडमें चंदेरी ९.१९.१५

तंजिया–तंजइ ९.१९.२, चोल राजाओंकी राजधानी, मद्राससे २१८ मील दक्षिण-पश्चिममें प्राचीन तंजौर स्थित है (देखिये : B. C. Law Hist. Geog. of Ancient India)

तलहार–तलहार (?) ९.१९.८

ताइय–ताजिक, पर्शिया, पारस या फारस देश ९.१९.१०

तावलित्ति–ताम्रलिप्ति नगर, तमलुक (बंगाल) ९.१९.९

तावयड–ताप्ती तट ९.१९.४

तिलंगि–तैलंग-तेलंगाना (हैदराबाद) वासिनी स्त्री ४,१५.८

तुरुक्क-तुरुक्क, पूर्वी तुर्किस्तान ९.१९.१०

तुहिणायल–तुहिनाचल, हिमालय ४.१०.५

तोयावलीदीव–तोयावली द्वीप (?) ९.१९.६

तोसल–तोशल, तोशली तोशल अथवा कोशल, बृ० सं० का कोशलक या कोसल अर्थात् दक्षिण कोसल या गोंडवाना। यही प्राचीन कोसल था ९,१९.२

दहिणावह–दक्षिणापथ, नर्मदाके दक्षिणका समस्त प्रदेश ५.२.१२

दविड–द्रविड़ देश, मद्राससे शृंगपत्तम् और कन्या-कुमारी तकका दक्षिणी प्रदेश ९.१९.२

देवोत्तरकुरु–(१) देवकुरु (२) उत्तर कुरु (पौराणिक भोग भूमियाँ) ११.११.१०

धाइयखंड–धातकीखंडद्वीप (पौराणिक) ११.११.१०

धूमप्पह–धूम्रप्रभा (एक नरक-पृथ्वी) ११.१०.७

नंदणवण–नंदनवन, राजगृहीके निकट एक प्राचीन उद्यान १०.१९.२

नम्मयसरि–नर्मदा सरित्, नर्मदा नदी ९.५.५

नम्माउर पट्टण–नर्मपुरपत्तण ५.९.१२

नम्मयाड–नर्मदा तट ९.१९.४

नवगेवज्ज–नवग्रैवेयक स्वर्ग ११.१२.२

नागर–नगर चमत्कारपुर, गुजरातके अहमदाबाद जिलेमें आनन्दपुर या बड़नगर। प्राचीन नाम आनर्त देश; नागर ब्राह्मणोंका मूलस्थान ९.१९.५

नायर–नागरपुर, हस्तिनापुर १०.१८.३

पइट्ठाण–प्रतिष्ठान, पैठण (नगर) ९.१९.४

पंकप्पह–पंकप्रभा, एक नरक भूमि ११.१०.७

पंचमगइ–पंचम गति, मोक्षस्थान ११.१५.९

पंडि–पांड्यदेश, आधुनिक तिन्नेवली और मदुरा जिले ९.१९.२

पभास–प्रभास (तीर्थ) जूनागढ़ (काठियावाड़) में प्रसिद्ध सोमनाथ तीर्थ या देवपत्तन ९.१९.४

पयग–प्रयाग ९.१९.१५

पायालंसग–पाताल स्वर्ग तुर्किस्तान तथा कैस्पियन सागरके उत्तरी भागको लेकर हूणोंके पश्चिम तारतारी (तार्तार) नामक प्रदेश, जिन्हें ते ले-संस्कृत 'तल' भी कहते थे। पाताल या रसातल उस संपूर्ण देशका भी साधारण नाम था, तथा उसके एक विशेष प्रांतका भी। हूणोंको ही 'नाग' या सर्प कहा जाता था। 'नाग' शब्द हूणोंके प्राचीन ह्यूंग-नू का अपभ्रंश रूप है। उन लोगोंका यह विश्वास था कि सर्प पृथ्वीका प्रतीक है (विशेष द्रष्टव्य: नं० ला० डे० प्रा० और म० का० भार० भौगो० नामकोशमें 'रसातल') १०.१७.११

पारस–पारस्य, पर्शिया या फारस देश ९.१९.६

पारियत्त–पारियात्र-पारिपत्र देश, चंबल नदीके स्रोतसे लगाकर खंभातकी खाड़ी तक विंध्यका पश्चिमी भाग, जिसमें अरावलीकी पहाड़ियाँ, राजस्थानकी पाथर (पारियात्र) श्रेणीको मिलाकर अन्य पर्वत श्रेणियाँ थीं। ९.१९.९

पुंडरिगिणि-पुंडरीकिनी नगरी (पौराणिक) ३.१.२१

पुक्खरद्ध–पुष्करार्द्ध, पुष्करवरद्वीप (पौराणिक); ११.११.१०

पुक्खलावइ–पुष्कलावती नगरी (पौराणिक) ३.१.१३

पुव्वावरविदेह–पूर्वविदेह + अपर विदेह (पौराणिक) ११.११.६

पुव्वावरोवहि–पूर्वोदधि + अपरोदधि, भारतके पूर्व और पश्चिम समुद्र ५.८.३

बंग–बंगदेश, बंगाल सर्वप्राचीन कालमें कामरूपको

मिलाकर बंगालके पाँच विभाग थे। पुण्ड्र-उत्तरी बंगाल, समुद्रतट पूर्व बंगाल, कर्ण सुवर्ण-पश्चिम बंगाल, ताम्रलिप्त-दक्षिण बंगाल और कामरूप-आसाम। कामरूपको छोड़कर पश्चात् कालमें बंगालके निम्न चार विभाग हुए—वरेन्द्र और बंग गंगाके उत्तरमें; तथा राढ और बागड़ी गंगाके दक्षिणमें; वरेन्द्र और बंग ब्रह्मपुत्र नदीसे विभाजित थे, तथा राढ और बागड़ीके बीच गंगाकी एक शाखा जालिंगी नदी बहती थी। वरेन्द्र अर्थात् पुण्ड्र, महानंदा और करोतोया नदियोंके बीच। बंग–पूर्व बंगाल। राढ़-भागीरथी (गंगा) के पश्चिममें कर्णसुवर्ण। और बागड़ी अर्थात् दक्षिण बंगाल ९.१९.१४;

बंभोत्तर—ब्रह्मोत्तर स्वर्ग ३.१०.१;८.२.१३

बब्बर–बर्बरजातिका देश, बर्बर देश, बार्बरिका द्वीप जो सिंधु नदीके डेल्टाके एक ओर फैला था; और सिंधु नदीके मुहानेपर बर्बर नामक एक बड़ा बंदरगाह तथा व्यापारी नगर भी था।

बालुप्पह–बालु (का) प्रभा,(एक नरक भूमि)१०.१०.६

बालुयासायर–बालुका सागर, संभवतः अरबसागर ९.१९.१२

भद्दरंग–भद्ररंग ९.१९.३; प्राचीन भद्रावती (भद्रा) नदीके आसपासका प्रदेश, चाँदा (जिला उ०प्र०) से अठारह मील उत्तर-पश्चिममें भंडक नामक गाँव ९.१९.३

भरहखेत्त–भरतक्षेत्र, भारत ४.३.१५;११.११.९

भरुयच्छ–भृगुकच्छ, भड़ौच ९.१९.५

भारह–भारत देश १.६.१७;

भारत–महाभारतकी युद्धभूमि ८.३.८, °रणभूमि-वही ८.८.३१

भिल्लमाल–आधुनिक भीनमाल, प्राचीन श्रीमाल, आबू पर्वतसे पचास मील पश्चिम ९.१९.७

भोयभूमि–भोगभूमि, देवकुरु उत्तरकुरुमें पौराणिक भोगभूमियां ११.११.५

मंदर–मंदारगिरि (जिला भागलपुर, द० बिहार)

मगह–मगध देश २.३.१०;५.८.३८ °विसअ-मगध विषय वही, २.४.७ सीमाएँ—गंगाके उत्तरमें बनारससे लगाकर मुंगेर तक; दक्षिणमें सिंहभूम जिला संपूर्ण; पश्चिममें सोननदी, और पूर्वमें बंगाल

मणुसोत्तरगिरि–मानुषोत्तर पर्वत (पौराणिक) ११.११.११

मज्झदेस–प्राचीन मध्यदेश ९.१९.१४; सीमाएँ—पश्चिममें कुरुक्षेत्रमें सरस्वती, पूर्वमें इलाहाबाद, उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें विंध्य एवं पारियात्र [विशेष द्रष्टव्य : नंदलाल डे प्रा०और म० का० भार० भौगो० नामकोश तथा B. C. Law-Hist. Geog. of Ancient. India 'मध्यप्रदेश']

मलयाचल–मलयगिरि, पश्चिम घाटका दक्षिणपर्वत ५.२.१२;९.१९.१

महरट्ठ–महाराष्ट्रदेश, ऊपरी गोदावरी और कृष्णा नदीके बीचका प्रदेश, जो किसी समय 'दक्षिण' कहलाता था ९.१९.३

मालव–मालवदेश इसकी प्राचीन राजधानी अवंती या उज्जयिनी रही, और भोजके समय धारा। इसको अवंती देश भी कहते थे। १.६.१;९.१९.८

मालविणी–मालव स्त्री ४ १५.१२

मेच्छदेस–म्लेच्छ देश सरस्वतीके उत्तर पश्चिममें कोई देश (?) ९.१९.११

मेरु–सुमेरु पर्वत (पौराणिक); ऐतिहासिक दृष्टिसे गढ़वालमें रुद्रहिमालय १.१.५;११.११.२

मेवाड़–मेवाड़ प्रदेश (राजपूताना) ९.१९.८

मेहवणपत्तन–मेघवनपत्तन (?) प्रश० गाथा ७

रयणप्पह–रत्नप्रभा, एक नरक भूमि, ११.१०.४

राढ–राढ़देश, गंगाके पश्चिममें बंगालके तमलुक, मिदनापुर, हुगली और बर्दवान जिले (देखें 'बंग') ९.१९.१४

रायगिह–राजगृह, आधुनिक राजगिरि (दक्षिण-बिहार) ३.१४.२१;४.५.५

रेवानई–रेवा, नर्मदा नदी ५.१.५;५.१०.२४

लंकानयरि–लंकानगरी पालि साहित्यके प्रमाणानुसार आधुनिक सीलोनको लंका कहा जाता है। परंतु कुछ कारण हैं जिनसे प्राचीन लंका सीलोनसे भिन्न प्रतीत होती है। आधुनिक विद्वानोंमें डॉ० राजबली पाण्डेय आदिका मत भी सीलोनको लंका माननेके विरुद्ध है। (विशेष द्रष्टव्य : नं० ल० डे : प्रा० म० भा० भौगो० नामकोश) ५.८.३३;

लंजिया–लंजिकादेश, संभवतः लांगुलिनी नदीका

प्रदेश गोदावरी और महानदीके बीच लांगुलिया, लांगुलिनी (मा०पु०) लांगली (महाभा०) नागलंदी अथवा नागवती नदी बहती है जो कलहंडीसे निकलकर गंजम जिलेमें होती हुई मद्रासमें चिकाकोलके बीच खाड़ीमें गिरती है चिकाकोल विजयानगरम् और कलिंगपत्तम्के बीच स्थित है। ९.१९.१

लाडदेश–लाटदेश ९.१९.८; निम्न ताप्तीके बीचमें खानदेश सहित दक्षिण गुजरात।

लोहपुर–लोहपुर, लोहावर, लवपुर, आधुनिक लाहौर ९.१९.११

वइतरणी–वैतरणी नरक नदी ११.४.३; वयतरणी-वही, २.१३.१३

वइदब्भ–वैदर्भ, विदर्भ ९.१९.३; बरार, खानदेश, निजामके प्रदेशका कुछ भाग और म०प्र०का कुछ भाग। प्राचीन समयमें इसमें भोपाल और विदिशाके राज्य सम्मिलित थे, और इसकी प्राचीन राजधानी विदर्भनगर (बीदर) थी।

वइर–वज्रदेश कलकुंड या गोलकुण्डा, हैदराबादसे सात मील दक्षिणमें, जो अपने हीरोंके लिए प्रसिद्ध रहा है। ९.१९.५

वइरायर–वज्राकर वैडूर्य पर्वत या विंध्यपाद अर्थात् सतपुड़ा पर्वत श्रेणी, जो अपने हीरे-पन्नोंकी खानोंके लिए प्रसिद्ध है। १.२.१०; ९.१९.३

वज्जर–वज्र, हैमवन, हेमकूट या कैलास पर्वत, जो कुबेरका निवास समझा जाता है ९.१९.११

वडुहर–बड़हर, काशीके पास एक गाँव ९.१९.१६

वड्ढमाण–वर्द्धमान प्राचीन मगधमें एक गाँव २.४.१२; ८.२.८

वणघट्ट–आधुनिक चुनार (उ० प्र०) ९.१९.१६

वराड–बरार प्रान्त ९.१९.४; देखें 'वइदब्भ'

वरेंदीसिरी–वरेंद्रश्री, वीरेंद्र, उत्तरी बंगाल, (देखें : 'बंग') ९.१९.१४

वाणरमुह–वानरमुख, एक उत्तर पर्वतीय जाति ९.१९.१३ (देखिए बृ० सं० ६८.१०३)

वाणारसी–वाराणसी, बनारस ९.१९.१६

वाराणसि–वही, १०.१५.१

वालभ–वल्लभी ९.१९.६; खम्भातकी खाड़ीमें आधुनिक वल या बल्ले बन्दरगाह, भावनगर (गुजरात) से १८ मील उत्तर-पश्चिम।

विउल–विपुल पर्वत १.१४.१०; °इरि–गिरि, वही १०.२३.१२; °गिरि १.१६.८

विज्झ–विन्ध्यपर्वत ५.८.१; ९.१९.४; १०.१२.१; °इरि–गिरि ४.१५.९; °एस–वंध्यदेश ५.८.३८, °डइ–विन्ध्याटवी ५.८.३०

विजय–विजय नामक एक स्वर्ग

विजयड्ढ–विजयार्द्ध पर्वत (पौराणिक) ११.११.८

विमल गिरि–विमलाचल, विपुलाचल २०.२०.९

वीयसोया–वीतशोका नगरी (पौराणिक) ३.३.६

संजाण–संजन ९.१९.४; बंबईके थाना जिलेमें संजय नामक एक पुराना गाँव; अरबोंका सिंदन, महाभारतके अनुसार संजयंती नगरी। इसे शाहपुर भी कहा जाता था और एक नाम साहंजन भी था।

संवाहण–संवाहन नगर ९.१९.४; मगधमें गंगाके तटपर कोई प्राचीन नगर।

सक्करपह–शर्कराप्रभा (एक नरक पृथ्वी), ११.१०.५

सज्झगिरि–सह्यगिरि, सह्याद्रि पश्चिमी घाट पर्वत श्रेणी, कावेरी नदीके उत्तरकी श्रेणियाँ ४.१५.२० ९.१९.३

सत्तगोयावरी–सप्तगोदावरी भीम, गोदावरीके सात मुहाने और गोदावरी जिलेमें सोलंगीपुर नामक तीर्थ ९.१९.१६

सरसइ–सरस्वती नदी, जो हिमालयकी शैवालिक नामक पहाड़ी नदीसे निकलकर कई स्थानोंपर लुप्त और फिर प्रगट होती हुई घग्घर या घाघरा नदीमें मिल जाती है, जो सरस्वतीका ही निचला भाग है, ९.१९.११

सव्वत्थसिद्धि–सर्वार्थसिद्धि, सर्वोच्च स्वर्ग ११.१२.२

सरूवायर–स्वरूपाकर (विशेषण), कामरूप ९.१९.११

सहसंसिग–सहस्रशृंग पर्वत, संभवतः सह्याद्रि (?) ५.२.८

सायंभरी–शाकंभरीतीर्थ, अजमेर (उ० प्र०) के पास सांभर ९.१९.९

सिंघल–सिंहल, सीलोन ९.१९.१

सिंधु–सिंधु नदी, उत्तर भारतकी सबसे बड़ी व प्रधान नदी, ९.१९.११

सिंधुतीर–सिंधुतट, सिंधुनदी, मालवामें कालीसिंधु जिसे दक्षिण सिंधु भी कहा जाता है, ९.१५.५

सिंधुवरिसी–सिंधुवर्षी नगरी मालवामें सिंधुनदीके तटपर कोई प्राचीन नगर १.६.१

सिरीपव्वत–श्रीपर्वत, कर्नूलके उत्तर-पश्चिममें कृष्णा-नदीके दक्षिणमें स्थित श्रीशैल, ९.१९.२

सुरसरि–सुरसरित् गंगा, ४.१०.४;१०.१७.९

सोपारय–सोपारक या सूर्पारक पत्तन, ९.१९.५। इसे पहले सूरत समझा जाता था, जो ठीक नहीं। थाना जिलेमें बंबईके सैंतीस मील उत्तरमें सूपर या सोपर नामक स्थान है, जहाँ अशोक-का एक शिलालेख भी है। यह अपरांत या उत्तर कोंकणकी राजधानी थी।

सोरट्ठ–सौराष्ट्र, काठियावाड़ (गुजरात) ९.१९.७

सोवण्णदोणी–सुवर्ण द्रोणी ९.१९.७, संभवतः सुवर्ण-गिरि बंबईके थाना जिलेके उत्तरमें बाडके पश्चिममें, खानदेशमें वाघली नामक स्थानपर स्थित पर्वत।

हंसदीव–हंसद्वीप, लंकानगरीके समीप एक द्वीप ५.३.१; ९.१९.६; (द्रष्टव्य : विमलसूरि प० च० ५४.४५ आदि)

हत्थिणाउर–हस्तिनापुर, प्राचीन कुरुक्षेत्रकी राजधानी (जिला मेरठ, उ० प्र०) ३.१४.६

हम्मीर–हम्मीर देश, राजपूतानेमें रणथंभौर९.१९.१०

हयवयण–हरिवदन, व्याघ्रमुख जाति ९.१९.१३; (द्रष्टव्य बृ० सं० १४.५)

हिमवंत–हिमवान् पर्वत ११.११.४

हिमालय–हिमालय प्रर्वत ११.११.८